श्री भगवत्-पुष्पदन्त-भूतबलि-प्रणीतः

षट्खंडागमः

श्रीवीरसेनाचार्य-विरचित-धवला-टीका-समन्वितः ।

तस्य

पंचमखंडे वर्गणानामधेये

हिन्दीभाषानुवाद-तुलनात्मकटिप्पण-प्रस्तावनानेकपरिशिष्टैः सम्पादितानि

स्पर्श-कर्म-प्रकृत्यनुयोगद्वाराणि

सम्पादकः

नागपुर-विश्वविद्यालय-संस्कृत-पाली-प्राकृतविभागाध्यक्षः

प्राकृत-जैन-विद्यापीठ-प्रधानः

एम्. ए., एल्एल्. बी., डी. लिट्. इत्युपाधिधारी

हीरालालो जैनः

सहसम्पादकौ

पं. फूलचन्द्रः सिद्धान्तशास्त्री * पं. बालचन्द्रः सिद्धान्तशास्त्री

संशोधने सहायकः

डा. नेमिनाथ-तनय-आदिनाथः उपाध्यायः एम्. ए., डी. लिट्.

प्रकाशकः

श्रीमन्त शेठ शिताबराय लक्ष्मीचन्द्र

जैन-साहित्योद्धारक-फंड-कार्यालय

मेलसा (म. भा.)

वि. सं. २०१२] वीर-निर्वाण संवत् २४८२ [ई. स. १९५५

मूल्यं रूप्यक-द्वादशकम्

प्रकाशक—
श्रीमन्त शेठ शिताबराय लक्ष्मीचन्द्र
जैन-साहित्योद्धारक फंड कार्यालय
भेलसा (म. भा.)



मुद्रक—
रघुनाथ दिपाजी देसाई,
न्यू भारत प्रिंटिंग प्रेस,
६, केलेवाड़ी, गिरगांव, बम्बई ४.

THE
ṢAṬKHAṆḌĀGAMA

OF

PUṢPADANTA AND BHŪTABALI

WITH

THE COMMENTARY DHAVALĀ OF VĪRASENA

VOL. XIII

SPARSHA-KARMA-PRAKṚTI ANUYOGADWĀRAS

Edited

with translation, notes and indexes

BY

Dr. HIRALAL JAIN, M. A., LL. B., D. LITT.
Head of Sanskrit, Pali and Prakrit Department, Nagpur University;
Director, Prakrit Jaina Institute, Vaishali.

ASSISTED BY

Pandit Phoolchandra Siddhānta Shāstri



Pandit Balchandra Siddhānta Shāstri

with the cooperation of

Dr. A. N. UPADHYE, M. A., D. LITT.

Published by

Shrimant Seth Shitabrai Laxmichandra,
Jaina Sāhitya Uddhāraka Fund Kāryālaya,
Bhilsa (M. B.).

1955

Price Rupees Twelve Only

Published by—
Shrimant Seth Shitabrai Laxmichandra,
Jaina Sahitya Uddharaka Fund Karyalaya,
Bhilsa (M. B.)



Printer:—
R. D. Desai,
New Bharat P. Press,
6, Kelewadi, Girgaon, Bombay 4.

विषय-सूची



प्राक् कथन



गत वर्षसे इस प्रकाशनको जो विशेष हस्तावलम्ब श्रद्धेय पं. नाथूरामजी प्रेमीका प्राप्त हुआ है उसके फलस्वरूप अल्प कालमें ही हम इससे पूर्वके तीन भाग पूरे कर सके और तत्पश्चात् अब कुछ महिनोंमें ही यह तेरहवां भाग पाठकोंके हाथोंमें पहुंच रहा है। इसके लिये हम प्रेमीजीका जितना उपकार माने थोड़ा है। इस भागके अनुवादका विशेष कार्य पं. फूलचन्द्रजी सिद्धान्त-शास्त्रीके द्वारा किया गया है, तथा मुद्रण कार्यको सुसम्पन्न करानेमें पं. बालचन्द्रजी शास्त्रीने बम्बईमें प्रेमीजीके यहां रहकर परिश्रम किया है। इसके लिये मेरे ये दोनों सहयोगी धन्यवादके पात्र हैं। प्रतियों आदिका उपयोग पूर्ववत् ही किया गया है जिसके लिये हम उन प्रतियोंके मालिकोंके ऋणी हैं। पूर्व भागोंके अनुसार इस भागका भी शुद्धिपत्र तैयार करनेमें हमें सहारनपुर निवासी पं. रतनचन्द्रजी मुख्तार व उनके लघुभ्राता बाबू नेमीचन्द्रजी वकीलके स्वाध्यायसे प्राप्त संशोधनोंसे बड़ी सहायता मिली है, जिसके लिये हम उनके बड़े आभारी हैं।

इस बीच इन ग्रन्थोंकी विक्री उत्तरोत्तर क्षीण होती गई है, जिसके कारण न केवल ग्रन्थमालाका कोष ही समाप्त हुआ है, किन्तु संस्थापर ऋण भी बहुतसा हो गया है। इस परिस्थितिमें शेष भाग किस प्रकार प्रकाशित होते हैं इसके लिये हम कुछ चिन्तातुर हैं। तथापि श्रुतवाणीकी उपासनाके बलपर हम अपने कर्तव्यको निवाहनेका प्रयत्न कर रहे हैं। धन्य हैं वे जो इस पुण्य कार्यमें निस्पृह भावसे सहायता कर रहे हैं। किंबहुना विज्ञेषु किमधिकम् ?

नागपुर
२५-११-५९

हीरालाल जैन

विषय-परिचय

स्पर्श अनुयोगद्वारसे वर्गणाखण्ड प्रारम्भ होता है। इसमें स्पर्श, कर्म और प्रकृति इन तीन अधिकारोंके साथ बन्धन अनुयोगद्वारके बन्ध और बन्धनीय इन दो अधिकारोंका विस्तारके साथ विवेचन किया गया है। फिर भी इसमें बन्धनीयका आलम्बन लेकर वर्गणाओंका सविस्तर वर्णन किया है, इसलिए इसे वर्गणाखण्ड इस नामसे सम्बोधित करते हैं।

१ स्पर्श अनुयोगद्वार

स्पर्श छूनेको कहते हैं। वह नामस्पर्श और स्थापनास्पर्श आदिके भेदसे अनेक प्रकारका है, इसलिए प्रकृतमें कौनसा स्पर्श गृहीत है यह बतलानेके लिए यहां स्पर्श अनुयोगद्वारका आलम्बन लेकर स्पर्शनिक्षेप, स्पर्शनयविभाषणता, स्पर्शनामविधान, स्पर्शद्रव्यविधान आदि १६ अधिकारोंके द्वारा स्पर्शका विचार किया है।

१ स्पर्शनिक्षेप—स्पर्शनिक्षेपके नामस्पर्श, स्थापनास्पर्श, द्रव्यस्पर्श, एकक्षेत्रस्पर्श, अनन्तरक्षेत्रस्पर्श, देशस्पर्श, त्वक्स्पर्श, सर्वस्पर्श, स्पर्शस्पर्श, कर्मस्पर्श, बन्धस्पर्श, भव्यस्पर्श और भावस्पर्श ये तेरह भेद हैं।

२ स्पर्शनयविभाषणता—अभी जो स्पर्शनिक्षेपके तेरह भेद बतलाए हैं उनमेंसे कौन स्पर्श किस नयका विषय है, यह बतलानेके लिए यह अधिकार आया है। नयके मुख्य भेद पांच हैं—नैगमनय, व्यवहारनय, संग्रहनय, ऋजुसूत्रनय और शब्दनय। इनमेंसे नैगमनय नामस्पर्श आदि सब स्पर्शोंको स्वीकार करता है। व्यवहार और संग्रहनय बन्धस्पर्श और भव्यस्पर्शको स्वीकार नहीं करते, शेष ग्यारहको स्वीकार करते हैं। ये दोनों नय बन्धस्पर्श और भव्यस्पर्शको क्यों स्वीकार नहीं करते, इसके कारणका निर्देश करते हुए वीरसेन स्वामी कहते हैं कि इन नयोंकी दृष्टिमें एक तो बन्धस्पर्शका कर्मस्पर्शमें अन्तर्भाव हो जाता है, इसलिए इसे अलगसे स्वीकार नहीं करते। दूसरे बन्धस्पर्श बनता ही नहीं है, क्योंकि बन्ध और स्पर्श इनमें कोई भेद ही नहीं है, इसलिए भी इसे स्वीकार नहीं करते। तथा भव्यस्पर्श वर्तमान समयमें उपलब्ध नहीं होता, इसलिए बन्धस्पर्शके समान भव्यस्पर्श भी इनका विषय नहीं है। ऋजुसूत्रनय स्थापनास्पर्श, एकक्षेत्रस्पर्श, अनन्तरस्पर्श, बन्धस्पर्श और भव्यस्पर्श इन पांचको स्वीकार नहीं करता; शेष नौ स्पर्शोंको स्वीकार करता है। ऋजुसूत्रनय एकक्षेत्रस्पर्शको क्यों विषय नहीं करता, इसके कारणका निर्देश करते हुए वीरसेन स्वामी कहते हैं कि इस नयकी दृष्टिमें एकक्षेत्र नहीं बनता, क्योंकि एकक्षेत्र पदका 'एक जो क्षेत्र वह एकक्षेत्र' ऐसा अर्थ करनेपर आकाशकी दृष्टिसे एक आकाशप्रदेश उपलब्ध होता है। परन्तु वह ऋजुसूत्रकी दृष्टिमें एकक्षेत्रस्पर्श नहीं बन सकता, क्योंकि स्पर्श दोका होता है, और यह नय दोको स्वीकार नहीं करता। इसी प्रकार इस नयकी दृष्टिसे अनन्तरक्षेत्रस्पर्श भी नहीं बनता, क्योंकि यह नय आधार-आधेयभावको स्वीकार नहीं

करता। इसी प्रकार इस नयकी दृष्टिसे स्थापनास्पर्श, बन्धस्पर्श और भव्यस्पर्शका निषेध जानना चाहिए। यहां यद्यपि सूत्रगाथामें ऋजुसूत्रके विषयरूपसे स्थापनास्पर्शका निषेध नहीं किया है, पर स्थापना ऋजुसूत्रका विषय नहीं है, इसलिए उसका निषेध स्वयं ही सिद्ध है। शब्दनय नामस्पर्श, स्पर्शस्पर्श और भावस्पर्शको स्वीकार करता है। इसका कारण बतलाते हुए वीरसेन स्वामी कहते हैं कि भावस्पर्श शब्दनयका विषय है, यह तो स्पष्ट ही है। किन्तु नामके विना भावस्पर्शका कथन नहीं किया जा सकता है, इसलिए नामस्पर्श भी शब्दनयका विषय है। और द्रव्यकी विवक्षा किये विना भी कर्कश आदि गुणोंका अन्य गुणोंके साथ सम्बन्ध देखा जाता है, इसलिए स्पर्शस्पर्श भी शब्दनयका विषय है।

आगे स्पर्शनामविधान आदि चौदह अनुयोगद्वारोंका मूलमें कथन न कर स्पर्शनिक्षेप आदि तेरह निक्षेपोंका ही स्वरूप निर्देश किया है जो इस प्रकार है—

नामस्पर्श—एक जीव, एक अजीव, नाना जीव, नाना अजीव, एक जीव और एक अजीव, एक जीव और नाना अजीव, नाना जीव और एक अजीव, तथा नाना जीव और नाना अजीव; इनमेंसे जिस किसीका भी 'स्पर्श' ऐसा नाम रखना नामस्पर्श है।

स्थापनास्पर्श—काष्ठकर्म, चित्रकर्म, पोतकर्म आदि विविध प्रकारके कर्म तथा अक्ष और वराटक आदि जो भी संकल्पद्वारा स्पर्शरूपसे स्थापित किये जाते हैं वह सब स्थापनास्पर्श है।

द्रव्यस्पर्श—एक द्रव्यका दूसरे द्रव्यके साथ जो सम्बन्ध होता है वह सब द्रव्यस्पर्श है। सब मिलाकर यह द्रव्यस्पर्श ६३ प्रकारका है, क्योंकि छहों द्रव्योंके एकसंयोगी ६, द्विसंयोगी १५, त्रिसंयोगी २०, चतुःसंयोगी १५, पञ्चसंयोगी ६ और छहसंयोगी १, कुल ६३ संयोगी भङ्ग होते हैं।

एकक्षेत्रस्पर्श—जो द्रव्य अपने एक अवयवद्वारा अन्य द्रव्यका स्पर्श करता है उसे एकक्षेत्र-स्पर्श कहते हैं। जैसे एक आकाशप्रदेशमें अनन्तानन्त पुद्गलपरमाणु संयुक्त होकर या बन्धको प्राप्त होकर निवास करते हैं।

अनन्तरक्षेत्रस्पर्श—विवक्षित क्षेत्रसे लगा हुआ क्षेत्र अनन्तर क्षेत्र कहलाता है। कोई द्रव्य विवक्षित क्षेत्रमें स्थित है और अन्य द्रव्य उससे लगे हुए क्षेत्रमें स्थित है। ऐसी अवस्थामें इन दो द्रव्योंका जो स्पर्श होता है वह अनन्तरक्षेत्रस्पर्श कहलाता है। इसी प्रकार जो द्विप्रदेशी आदि स्कन्ध होते हैं उनका दो आकाशप्रदेशों आदिमें निवास करनेपर उन स्कन्धोंमें रहनेवाले परमाणुओंका भी अनन्तरक्षेत्रस्पर्श घटित कर लेना चाहिए। तात्पर्य यह है कि जहां क्षेत्रका व्यवधान न होकर दो द्रव्योंका स्पर्श होता है वहां यह स्पर्श घटित होता है।

देशस्पर्श—एक द्रव्यके एकदेशका अन्य द्रव्यके एकदेशके साथ जो स्पर्श होता है उसे देशस्पर्श कहते हैं। यह देशस्पर्श स्कन्धोंके अवयवोंका ही होता है, परमाणुरूप पुद्गलोंका नहीं; क्योंकि, परमाणुओंके अवयव नहीं उपलब्ध होते; यदि ऐसा कोई कहे तो उसका यह कथन उपयुक्त नहीं है, क्योंकि परमाणुका विभाग नहीं हो सकता इस अपेक्षा उसे अप्रदेशी कहा है।

वैसे तो परमाणु भी सावयव होता है, अन्यथा परमाणुओंके संयोगसे स्कन्धकी उत्पत्ति नहीं हो सकती। इसलिए दो या दोसे अधिक परमाणुओंका भी एकदेशस्पर्श होता है।

त्वक्स्पर्श—वृक्षकी छालको त्वक् और पपड़ीको नोत्वक् कहते हैं। तथा सूरण, अदरख, प्याज और हलदी आदिकी बाह्य पपड़ीको भी नोत्वक् कहते हैं। द्रव्यका त्वचा और नोत्वचाके साथ जो स्पर्श होता है उसे त्वक्स्पर्श कहते हैं। त्वचा और नोत्वचा ये स्कन्धके ही अवयव हैं, इसलिए पृथक् द्रव्य न होनेसे इसका द्रव्यस्पर्शमें अन्तर्भाव नहीं किया है। यहां त्वचा और नोत्वचाके एक और नाना भेद करके आठ भङ्ग उत्पन्न करने चाहिए। ये भेद वीरसेन स्वामीने लिखे हैं, इसलिए उनका अलगसे विवेचन नहीं किया है। यहां त्वचा और नोत्वचाका द्रव्यके साथ अथवा परस्पर स्पर्श विवक्षित है, इतना विशेष जानना चाहिए।

सर्वस्पर्श—एक द्रव्यका दूसरे द्रव्यके साथ जो सर्वांग स्पर्श होता है उसे सर्वस्पर्श कहते हैं। उदाहरणार्थ एक आकाशप्रदेशमें बन्धको प्राप्त हुए दो परमाणुओंका सर्वांग स्पर्श देखा जाता है। इसी प्रकार अन्य द्रव्योंका यथासम्भव सर्वस्पर्श जानना चाहिए।

स्पर्शस्पर्श—स्पर्श गुणके आठ भेद हैं। उनका स्पर्शन इन्द्रियके साथ जो स्पर्श होता है उसे स्पर्शस्पर्श कहते हैं। यहांपर कर्कश आदि गुणोंके परस्पर स्पर्शकी विवक्षा नहीं है, क्योंकि ऐसा माननेपर अन्य रूप आदि गुणोंका भी स्पर्श लेना पड़ेगा। किन्तु सूत्रमें स्पर्शस्पर्शसे कर्कश आदि आठ प्रकारके स्पर्शका ही ग्रहण किया है। इससे स्पष्ट है कि यहां कर्कश आदिका परस्पर स्पर्श विवक्षित नहीं है।

कर्मस्पर्श—ज्ञानावरण आदिके भेदसे कर्म आठ प्रकारके हैं। इनका तथा इनके विस्रसोपचयोंका जीवके साथ जो सम्बन्ध है वह सब कर्मस्पर्श कहलाता है। ज्ञानावरणादि कुल कर्म आठ हैं। इनमेंसे प्रत्येक कर्मका अपने साथ व अन्य कर्मोंके साथ सम्बन्ध है, अतः कुल चौंसठ भंग होते हैं। उनमेंसे पुनरुक्त २८ भंगोंको कम कर देनेपर ३६ अपुनरुक्त भङ्ग शेष रहते हैं।

बन्धस्पर्श—औदारिकशरीरका औदारिकशरीरके साथ, तथा इसी प्रकार अन्य शरीरोंका अपने अपने साथ जो स्पर्श होता है उसे बन्धस्पर्श कहते हैं। कर्मका कर्म और नोकर्मके साथ तथा नोकर्मका नोकर्म और कर्मके साथ स्पर्श होता है, यह दिखलानेके लिए कर्मस्पर्श और बन्धस्पर्शको द्रव्यस्पर्शसे अलग कहा है। इस बन्धस्पर्शके कुल भङ्ग २३ हैं। उनमेंसे ९ पुनरुक्त भङ्ग अलग कर देनेपर १४ अपुनरुक्त भङ्ग शेष रहते हैं। वीरसेन स्वामीने इनका अलगसे निर्देश किया ही है।

भव्यस्पर्श—जो आगे स्पर्श करने योग्य होंगे, परन्तु वर्तमानमें स्पर्श नहीं करते, वह भव्यस्पर्श कहलाता है। मूल सूत्रमें इसके कुछ उदाहरण इस प्रकार दिए हैं—विष, कूट, यन्त्र, पिंजरा, कन्दक और जाल आदि तथा इनको करनेवाले और इन्हें इच्छित स्थानमें रखनेवाले। यद्यपि इनका वर्तमानमें अन्य पदार्थसे स्पर्श नहीं हो रहा है, पर आगे होगा; इसलिए इसकी भव्यस्पर्श संज्ञा है।

भावस्पर्श— स्पर्शविषयक शास्त्रका जानकार और वर्तमानमें उसके उपयोगवाला जीव भावस्पर्श कहलाता है। जो स्पर्शविषयक शास्त्रका ज्ञाता नहीं है, परन्तु स्पर्शरूप उपयोगसे उपयुक्त है, उसकी भी भावस्पर्श संज्ञा है। अथवा जीव और पुद्गल आदि द्रव्योंके जो ज्ञान आदि भाव होते हैं उनके सम्बन्धको भी भावस्पर्श कहते हैं।

इस प्रकार ये कुल १३ स्पर्श हैं। इनमेंसे इस शास्त्रमें कर्मस्पर्शसे ही प्रयोजन है, क्योंकि यह शास्त्र अध्यात्मविद्याका विवेचन करता है, इसलिए यहां अन्य स्पर्श नहीं लिए गये हैं और न स्पर्शनामविधान आदि अन्य अनुयोगद्वारोंका आलम्बन लेकर उनका विचार ही किया है। उसमें भी कर्मका विवेचन वेदना आदि अनुयोगद्वारोंमें विस्तारके साथ किया है, इसलिए यहां उसका भी कर्मस्पर्शनयविभाषणता आदि अनुयोगद्वारोंका आलम्बन लेकर विचार नहीं किया है।

२ कर्म अनुयोगद्वार

कर्मका व्युत्पत्तिलभ्य अर्थ है क्रिया। निक्षेपव्यवस्थाके अनुसार इसके नामकर्म, स्थापनाकर्म, द्रव्यकर्म, प्रयोगकर्म, समवदानकर्म, अधःकर्म, ईर्यापथकर्म, तपःकर्म, क्रियाकर्म और भावकर्म ये दस भेद हैं। साधारणतः कर्मका कर्मनिक्षेप, कर्मनयविभाषणता आदि सोलह अनुयोगद्वारोंका आलम्बन लेकर विचार किया जाता है। यहां सर्वप्रथम कर्मनिक्षेपके दस भेद गिनाकर किस कर्मको कौन नय स्वीकार करता है, यह बतलाया गया है। इसके बाद प्रत्येक निक्षेपके स्वरूपपर प्रकाश डाला गया है। नयके पांच भेद पहले लिख आये हैं। उनमेंसे नैगमनय, व्यवहारनय और संग्रहनय सब कर्मोंको विषय करते हैं। ऋजुसूत्रनय स्थापनाकर्मके सिवा शेष नौ कर्मोंको स्वीकार करता है। तथा शब्दनय नामकर्म और भावकर्मको ही स्वीकार करता है। कारण स्पष्ट है।

नामकर्म और स्थापनाकर्म सुगम हैं। जीव या अजीवका 'कर्म' ऐसा नाम रखना नामकर्म है। काष्ठकर्म आदिमें तदाकार या अतदाकार कर्मकी स्थापना करना स्थापनाकर्म है।

द्रव्यकर्म—जिस द्रव्यकी जो सद्भाव क्रिया है। उदाहरणार्थ— ज्ञान-दर्शन रूपसे परिणमन करना जीव द्रव्यकी सद्भाव क्रिया है। वर्ण, गन्ध आदि रूपसे परिणमन करना पुद्गल द्रव्यकी सद्भाव क्रिया है। जीवों और पुद्गलोंके गमनागमनमें हेतुरूपसे परिणमन करना धर्म द्रव्यकी सद्भाव क्रिया है। जीवों और पुद्गलोंके स्थित होनेके हेतुरूपसे परिणमन करना अधर्म द्रव्यकी सद्भाव क्रिया है। सब द्रव्योंके परिणमनमें हेतु होना काल द्रव्यकी सद्भाव क्रिया है। अन्य द्रव्योंके अवकाशदानरूपसे परिणमन करना आकाश द्रव्यकी सद्भाव क्रिया है। इस प्रकार विवक्षित क्रिया रूपसे द्रव्योंके परिणमनका जो स्वभाव है वह सब द्रव्यकर्म है।

प्रयोगकर्म— मनःप्रयोगकर्म, वचनप्रयोगकर्म और कायप्रयोगकर्मके भेदसे प्रयोगकर्म तीन प्रकारका है। मन, वचन और काय आलम्बन हैं। इनके निमित्तसे जो जीवका परिस्पंद होता है उसे प्रयोगकर्म कहते हैं। मनःप्रयोगकर्म और वचनप्रयोगकर्ममेंसे प्रत्येक सत्य, असत्य, उभय और अनुभयके भेदसे चार प्रकारका है। कायप्रयोगकर्म औदारिकशरीर कायप्रयोगकर्म आदिके

भेदसे सात प्रकारका है। यह तीनों प्रकारका प्रयोगकर्म यथासम्भव संसारी जीवोंके और सयोगी जिनके होता है।

समवदानकर्म— जीव आठ प्रकारके, सात प्रकारके या छह प्रकारके कर्मोंको ग्रहण करनेके लिए प्रवृत्त होता है; इसलिए यह सब समवदानकर्म है। समवदानका अर्थ विभाग करना है। जीव मिथ्यात्व, असंयम, कषाय और योगसे निमित्तसे कर्मोंको ज्ञानावरणादिरूपसे आठ, सात या छह भेद करके ग्रहण करता है, इसलिए इसे समवदानकर्म कहते हैं; यह उक्त कथनका तात्पर्य है।

अधःकर्म—जीव अंगछेदन, परिताप और आरम्भ आदि नाना कार्य करता है। उसमें भी ये कार्य औदारिकशरीरके निमित्तसे होते हैं, इसलिए उसकी अधःकर्म संज्ञा है। यद्यपि नारकियोंके वैक्रियिकशरीरके द्वारा भी ये कार्य देखे जाते हैं, पर वहां इनका फल जीववध नहीं दिखाई देता। इसीलिए औदारिकशरीरकी ही यह संज्ञा है।

ईर्यापथकर्म— ईर्या अर्थात् केवल योगके निमित्तसे जो कर्म होता है वह ईर्यापथकर्म कहलाता है। यह ग्यारहवेंसे लेकर तेरहवें गुणस्थान तक होता है, क्योंकि केवल योग इन्हीं गुणस्थानोंमें उपलब्ध होता है। यहां वीरसेन स्वामीने तीन पुरानी गाथाओंको उद्धृत कर ईर्यापथ-कर्मका अति सुन्दर विवेचन करते हुए लिखा है कि ईर्यापथकर्म अल्प है, क्योंकि इसके द्वारा गृहीत कर्म अल्प अर्थात् एक समय तक ही रुकते हैं। वह बादर है, क्योंकि इसके द्वारा गृहीत कर्मपुद्गल बहुत होते हैं। यहां यह कथन वेदनीय कर्मकी मुख्यतासे किया है। वह मृदु है, क्योंकि इसके द्वारा गृहीत कर्म कर्कश आदि गुणोंसे रहित होते हैं। वह रूक्ष हैं, क्योंकि इसके द्वारा गृहीत कर्म रूक्ष गुणयुक्त होते हैं। वह शुक्ल है, क्योंकि इसके द्वारा गृहीत कर्म अन्य वर्णसे रहित एक मात्र शुक्ल रूपको लिए हुए होते हैं। वह मन्द है, क्योंकि वह सातारूप परिणामको लिए हुए होता है। वह महाव्ययवाला है, क्योंकि यहां असंख्यातगुणी निर्जरा देखी जाती है। वह सातारूप है, क्योंकि वहां भूख-प्यास आदिकी बाधा नहीं देखी जाती। वह गृहीत होकर भी अगृहीत है, बद्ध होकर भी अबद्ध है, स्पृष्ट होकर भी अस्पृष्ट है, उदित होकर भी अनुदित है, वेदित होकर भी अवेदित है, निर्जरावाला होकर भी एक साथ निर्जरावाला नहीं है, और उदीरित होकर भी अनुदीरित है। कारणका निर्देश वीरसेन स्वामीने किया ही है।

तपःकर्म— रत्नत्रयको प्रगट करनेके लिये जो इच्छाओंका निरोध किया जाता है वह तप कहलाता है। इसके बारह भेद हैं— छह अभ्यन्तर तप और छह बाह्य तप। बाह्य तपोंमें पहला अनशन तप है। इसे अनेषण भी कहते हैं। विवक्षित दिन या कई दिन तक किसी प्रकारका आहार न लेना अनशन तप है। स्वाभाविक आहारसे कम आहार लेना अवमौदर्य तप है। सामान्यतः पुरुषका आहार ३२ ग्रासका और महिलाका आहार २८ ग्रासका माना गया है। एक ग्रास एक हजार चावलका होता है और इसी अनुपातसे यहां पुरुष और महिलाके ग्रासोंका विधान किया गया है। वैसे जो जिसका स्वाभाविक आहार है वह उसका आहार माना गया है और उससे न्यून आहार अवमौदर्य तप कहलाता है। भोजन, भाजन और घर आदिको वृत्ति कहते हैं और इसका परिसंख्यान करना वृत्तिपरिसंख्यान तप है। क्षीर, गुड़, घी, नमक और

दही आदि रस हैं। इनका परित्याग करना रसपरित्याग तप है। वृक्षके मूलमें निवास, आतापन योग और पर्यंकासन आदिके द्वारा जीवका दमन करना कायक्लेश तप है। तथा विविक्त अर्थात् एकान्तमें उठना, बैठना व शयन करना विविक्तशय्यासन तप है। यह छह प्रकारका बाह्य तप है। यह बाह्य अर्थात् मार्गविमुख जनोंके भी ध्यानमें आता है, इसलिए इसकी बाह्य तप संज्ञा है।

कृत अपराधके निराकरणके लिए जो अनुष्ठान किया जाता है उसकी प्रायश्चित्त संज्ञा है। यहांपर प्रायः शब्दका अर्थ लोक है और चित्तका अर्थ मन है। अतः चित्तका संशोधन करना ही प्रायश्चित्त है, यह उक्त कथनका तात्पर्य है। वह प्रायश्चित्त आलोचना, प्रतिक्रमण, तदुभय, विवेक, व्युत्सर्ग, तप, छेद, मूल, परिहार और श्रद्धानके भेदसे दस प्रकारका है। इनमेंसे आलोचना गुरुकी साक्षीपूर्वक और प्रतिक्रमण गुरुके विना अल्प अपराध होनेपर किया जाता है। तदुभय स्पष्ट ही है। गण, गच्छ, द्रव्य और क्षेत्र आदिसे अलग करना विवेक है। तात्पर्य है कि जिस द्रव्य आदिके संयोगसे दोषोत्पत्तिकी सम्भावना हो उससे जुदा कर देना विवेक प्रायश्चित्त है। ध्यानपूर्वक नियत समयके लिए कायसे मोह छोड़कर स्थित रहना व्युत्सर्ग प्रायश्चित्त है। उपवास, आचाम्ल आदि करना तप प्रायश्चित्त है। विवक्षित समय तककी दीक्षाका छेद करना छेद प्रायश्चित्त है। पूरी दीक्षाका छेद करना मूल प्रायश्चित्त है। परिहार दो प्रकारका है– अनवस्थाप्य और पारंचिक। अनवस्थाप्यका जघन्य काल छह माह और उत्कृष्ट काल बारह वर्ष है। वह कायभूमिसे दूर रहकर विहार करता है, उसकी कोई प्रतिवन्दना नहीं करता, वह गुरुके साथ ही संभाषण कर सकता है। पारंचिक तपमें इतनी विशेषता है कि इसे जहां साधर्मी बन्धु नहीं होते ऐसे क्षेत्रमें आहारादिकी विधि सम्पन्न करते हुए निवास करना पड़ता है। यह दोनों प्रकारका प्रायश्चित्त राज्यविरुद्ध कार्य करनेपर दिया जाता है। मिथ्यात्वको प्राप्त होनेपर पुनः सद्धर्मको स्वीकार करना श्रद्धान नामका प्रायश्चित्त है।

ज्ञानादिके भेदसे विनय पांच प्रकारका है। आचार्य आदिकी आपत्तिको दूर करना वैयावृत्त्य तप है। जिनागमके रहस्यका अध्ययन करना स्वाध्याय तप है। एकाग्र होकर अन्य चिन्ताका निरोध करना ध्यान तप है। कषायोंके साथ देहका त्याग करना कायोत्सर्ग तप है। यह छह प्रकारका अभ्यन्तर तप है।

यहां ध्यानका विस्तारसे वर्णन करते हुए ध्याता, [illegible] और ध्यानका फल, इन चारोंका विस्तारसे विवेचन किया गया है। ध्यानके च[illegible] धर्मध्यान [illegible] सम्यग्दृष्टि गुणस्थानसे लेकर सूक्ष्म[illegible] न तक, और [illegible] होता है, यह बतलाया है। [illegible] चार भेदोंमेंसे [illegible] ध्यान उपशान्तकषाय [illegible] होता है और [illegible] भी होता है। क्षीणमोह [illegible] वीचार [illegible] तर्कवी[illegible] ध्या[illegible]

क्रियाकर्म— इस [illegible] जि[illegible] जाती है। अथवा तीनों [illegible]

बैठकर नमस्कार किया जाता है। विधि यह है कि शुद्धमनसे और पादप्रक्षालन कर जिन भगवान्‌के आगे बैठना प्रथम नमस्कार है। फिर उठकर और प्रार्थना करके बैठना दूसरा नमस्कार है। पुनः उठकर और सामायिकदण्डक द्वारा आत्मशुद्धि करके कषाय और शरीरका उत्सर्ग करके जिन देवके अनन्त गुणोंका चिन्तवन करते हुए चौबीस तीर्थंकरोंकी वन्दना करके तथा जिन, जिनालय और गुरुकी स्तुति करके बैठना तीसरा नमस्कार हैं। इस प्रकार एक क्रियाकर्ममें तीन अवनति होती हैं। सब क्रियाकर्म चार नमस्कारोंको लिये हुए होता है। यथा— सामायिकके प्रारम्भमें और अन्तमें जिनदेवको नमस्कार करना तथा 'त्थोस्सामि' दण्डकके आदिमें और अन्तमें नमस्कार करना। इस प्रकार एक क्रियाकर्ममें चार नमस्कार होते हैं। तथा प्रत्येक नमस्कारके प्रारम्भमें मन, वचन और कायकी शुद्धिके ज्ञापन करनेके लिए तीन आवर्त किये जाते हैं। सब आवर्त बारह होते हैं। यह क्रियाकर्म है। मूलाचार और प्राचीन अन्य साहित्यमें भी उपासनाकी यही विधि उपलब्ध होती है। यह साधु और श्रावक दोनोंके द्वारा अवश्यकरणीय है।

भावकर्म— जिसे कर्मप्राभृतका ज्ञान है और उसका उपयोग है उसे भावकर्म कहते हैं। इस प्रकार कर्मके दस भेद हैं। उनमेंसे प्रकृतमें समवदानकर्मका प्रकरण है, क्योंकि कर्म अनुयोगद्वारमें विस्तारसे इसीका विवेचन किया गया है।

इसके आगे वीरसेन स्वामीने प्रयोगकर्म, समवदानकर्म, अधःकर्म, ईर्यापथकर्म, तपःकर्म और क्रियाकर्म; इन छह कर्मोंका सत्, संख्या, क्षेत्र, स्पर्शन, काल, अन्तर, भाव और अल्पबहुत्व इन आठ अधिकारोंके द्वारा ओघ और आदेशसे विवेचन किया है। यथा—ओघसे छहों कर्म हैं। आदेशसे नारकियों और देवोंमें प्रयोगकर्म, समवदानकर्म और क्रियाकर्म हैं। शेष नहीं हैं। तिर्यञ्चोंमें ईर्यापथकर्म और तपःकर्म नहीं हैं, शेष चार हैं। मनुष्योंमें छहों कर्म हैं। कारण स्पष्ट है। इसी प्रकार शेष मार्गणाओंमें घटित कर लेना चाहिए। तात्पर्य इतना है कि प्रयोगकर्म तेरहवें गुणस्थान तक सब जीवोंके उपलब्ध होता है, क्योंकि यथासम्भव मन, वचन और कायकी प्रवृत्ति अयोगी और सिद्ध जीवोंको छोड़कर सर्वत्र पायी जाती है। समवदानकर्म सूक्ष्मसाम्पराय गुणस्थान तक सब जीवोंके होता है, क्योंकि यहां तक किसीके आठ, किसीके सात और किसीके छह प्रकारके कर्मोंका निरन्तर बन्ध होता रहता है। अधःकर्म केवल औदारिकशरीरके आलम्बनसे होता है, इसलिए इसका सद्भाव मनुष्य और तिर्यञ्चोंके ही होता है। ईर्यापथकर्म उपशान्तकषाय, क्षीणकषाय और सयोगिकेवलीके होता है, इसलिए यह मनुष्योंके बतलाया गया है। क्रियाकर्म अविरतसम्यग्दृष्टि गुणस्थानसे होता है, अतः इसका सद्भाव चारों गतियोंमें कहा गया है। तपःकर्म प्रमत्तसंयत गुणस्थानसे होता है, अतः इसके स्वामी मनुष्य ही हैं। यह चार गतिका विवेचन है। अन्य मार्गणाओंमें इस विधिको जानकर घटित कर लेना चाहिए। तथा इसी विधिके अनुसार ओघ और आदेशसे इनकी संख्या आदि भी जान लेनी चाहिए। इतनी विशेषता है कि संख्या आदि प्ररूपणाओंका विचार करते समय इन छह कर्मोंकी द्रव्यार्थता और प्रदेशार्थताकी अपेक्षा कथन किया है, इसलिए यहां इनकी द्रव्यार्थता और प्रदेशार्थताका ज्ञान करा देना आवश्यक है।

दही आदि रस हैं। इनका परित्याग करना रसपरित्याग तप है। वृक्षके मूलमें निवास, आतापन योग और पर्यंकासन आदिके द्वारा जीवका दमन करना कायक्लेश तप है। तथा विविक्त अर्थात् एकान्तमें उठना, बैठना व शयन करना विविक्तशय्यासन तप है। यह छह प्रकारका बाह्य तप है। यह बाह्य अर्थात् मार्गविमुख जनोंके भी ध्यानमें आता है, इसलिए इसकी बाह्य तप संज्ञा है।

कृत अपराधके निराकरणके लिए जो अनुष्ठान किया जाता है उसकी प्रायश्चित्त संज्ञा है। यहांपर प्रायः शब्दका अर्थ लोक है और चित्तका अर्थ मन है। अतः चित्तका संशोधन करना ही प्रायश्चित्त है, यह उक्त कथनका तात्पर्य है। वह प्रायश्चित्त आलोचना, प्रतिक्रमण, तदुभय, विवेक, व्युत्सर्ग, तप, छेद, मूल, परिहार और श्रद्धानके भेदसे दस प्रकारका है। इनमेंसे आलोचना गुरुकी साक्षीपूर्वक और प्रतिक्रमण गुरुके विना अल्प अपराध होनेपर किया जाता है। तदुभय स्पष्ट ही है। गण, गच्छ, द्रव्य और क्षेत्र आदिसे अलग करना विवेक है। तात्पर्य है कि जिस द्रव्य आदिके संयोगसे दोषोत्पत्तिकी सम्भावना हो उससे जुदा कर देना विवेक प्रायश्चित्त है। ध्यानपूर्वक नियत समयके लिए कायसे मोह छोड़कर स्थित रहना व्युत्सर्ग प्रायश्चित्त है। उपवास, आचाम्ल आदि करना तप प्रायश्चित्त है। विवक्षित समय तककी दीक्षाका छेद करना छेद प्रायश्चित्त है। पूरी दीक्षाका छेद करना मूल प्रायश्चित्त है। परिहार दो प्रकारका है– अनवस्थाप्य और पारंचिक। अनवस्थाप्यका जघन्य काल छह माह और उत्कृष्ट काल बारह वर्ष है। वह कायभूमिसे दूर रहकर विहार करता है, उसकी कोई प्रतिवन्दना नहीं करता, वह गुरुके साथ ही संभाषण कर सकता है। पारंचिक तपमें इतनी विशेषता है कि इसे जहां साधर्मी बन्धु नहीं होते ऐसे क्षेत्रमें आहारादिकी विधि सम्पन्न करते हुए निवास करना पड़ता है। यह दोनों प्रकारका प्रायश्चित्त राज्यविरुद्ध कार्य करनेपर दिया जाता है। मिथ्यात्वको प्राप्त होनेपर पुनः सद्धर्मको स्वीकार करना श्रद्धान नामका प्रायश्चित्त है।

ज्ञानादिके भेदसे विनय पांच प्रकारका है। आचार्य आदिकी आपत्तिको दूर करना वैयावृत्त्य तप है। जिनागमके रहस्यका अध्ययन करना स्वाध्याय तप है। एकाग्र होकर अन्य चिन्ताका निरोध करना ध्यान तप है। कषायोंके साथ देहका त्याग करना कायोत्सर्ग तप है। यह छह प्रकारका अभ्यन्तर तप है।

यहां ध्यानका विस्तारसे वर्णन करते हुए ध्याता, ध्यान, ध्येय और ध्यानका फल, इन चारोंका विस्तारसे विवेचन किया गया है। ध्यानके चार भेदोंमेंसे धर्मध्यान अविरतसम्यग्दृष्टि गुणस्थानसे लेकर सूक्ष्मसाम्पराय गुणस्थान तक, और शुक्लध्यान उपशान्तमोह गुणस्थानसे होता है, यह बतलाया है। शुक्लध्यानके चार भेदोंमेंसे पृथक्त्ववितर्कवीचार नामक प्रथम ध्यान उपशान्तकषाय गुणस्थानमें मुख्य रूपसे होता है और कदाचित् एकत्ववितर्कअवीचार ध्यान भी होता है। क्षीणमोह गुणस्थानमें एकत्ववितर्कअवीचार ध्यान मुख्य रूपसे होता है और प्रारम्भमें पृथक्त्ववितर्कवीचार ध्यान भी होता है।

क्रियाकर्म— इसमें आत्माधीन होकर गुरु, जिन और जिनालयकी तीन बार प्रदक्षिणा की जाती है। अथवा तीनों संध्याकालोंमें नमस्कारपूर्वक प्रदक्षिणा की जाती है, तीन वार भूमिपर

बैठकर नमस्कार किया जाता है। विधि यह है कि शुद्धमनसे और पादप्रक्षालन कर जिन भगवान्‌के आगे बैठना प्रथम नमस्कार है। फिर उठकर और प्रार्थना करके बैठना दूसरा नमस्कार है। पुनः उठकर और सामायिकदण्डक द्वारा आत्मशुद्धि करके कषाय और शरीरका उत्सर्ग करके जिन देवके अनन्त गुणोंका चिन्तवन करते हुए चौबीस तीर्थंकरोंकी वन्दना करके तथा जिन, जिनालय और गुरुकी स्तुति करके बैठना तीसरा नमस्कार हैं। इस प्रकार एक क्रियाकर्ममें तीन अवनति होती हैं। सब क्रियाकर्म चार नमस्कारोंको लिये हुए होता है। यथा— सामायिकके प्रारम्भमें और अन्तमें जिनदेवको नमस्कार करना तथा 'त्थोस्सामि' दण्डकके आदिमें और अन्तमें नमस्कार करना। इस प्रकार एक क्रियाकर्ममें चार नमस्कार होते हैं। तथा प्रत्येक नमस्कारके प्रारम्भमें मन, वचन और कायकी शुद्धिके ज्ञापन करनेके लिए तीन आवर्त किये जाते हैं। सब आवर्त बारह होते हैं। यह क्रियाकर्म है। मूलाचार और प्राचीन अन्य साहित्यमें भी उपासनाकी यही विधि उपलब्ध होती है। यह साधु और श्रावक दोनोंके द्वारा अवश्यकरणीय है।

भावकर्म—जिसे कर्मप्राभृतका ज्ञान है और उसका उपयोग है उसे भावकर्म कहते हैं। इस प्रकार कर्मके दस भेद हैं। उनमेंसे प्रकृतमें समवदानकर्मका प्रकरण है, क्योंकि कर्म अनुयोगद्वारमें विस्तारसे इसीका विवेचन किया गया है।

इसके आगे वीरसेन स्वामीने प्रयोगकर्म, समवदानकर्म, अधःकर्म, ईर्यापथकर्म, तपःकर्म और क्रियाकर्म; इन छह कर्मोंका सत्, संख्या, क्षेत्र, स्पर्शन, काल, अन्तर, भाव और अल्पबहुत्व इन आठ अधिकारोंके द्वारा ओघ और आदेशसे विवेचन किया है। यथा—ओघसे छहों कर्म हैं। आदेशसे नारकियों और देवोंमें प्रयोगकर्म, समवदानकर्म और क्रियाकर्म हैं। शेष नहीं हैं। तिर्यञ्चोंमें ईर्यापथकर्म और तपःकर्म नहीं हैं, शेष चार हैं। मनुष्योंमें छहों कर्म हैं। कारण स्पष्ट है। इसी प्रकार शेष मार्गणाओंमें घटित कर लेना चाहिए। तात्पर्य इतना है कि प्रयोगकर्म तेरहवें गुणस्थान तक सब जीवोंके उपलब्ध होता है, क्योंकि यथासम्भव मन, वचन और कायकी प्रवृत्ति अयोगी और सिद्ध जीवोंको छोड़कर सर्वत्र पायी जाती है। समवदानकर्म सूक्ष्मसाम्पराय गुणस्थान तक सब जीवोंके होता है, क्योंकि यहां तक किसीके आठ, किसीके सात और किसीके छह प्रकारके कर्मोंका निरन्तर बन्ध होता रहता है। अधःकर्म केवल औदारिकशरीरके आलम्बनसे होता है, इसलिए इसका सद्भाव मनुष्य और तिर्यञ्चोंके ही होता है। ईर्यापथकर्म उपशान्तकषाय, क्षीणकषाय और सयोगिकेवलीके होता है, इसलिए यह मनुष्योंके बतलाया गया है। क्रियाकर्म अविरतसम्यग्दृष्टि गुणस्थानसे होता है, अतः इसका सद्भाव चारों गतियोंमें कहा गया है। तपःकर्म प्रमत्तसंयत गुणस्थानसे होता है, अतः इसके स्वामी मनुष्य ही हैं। यह चार गतिका विवेचन है। अन्य मार्गणाओंमें इस विधिको जानकर घटित कर लेना चाहिए। तथा इसी विधिके अनुसार ओघ और आदेशसे इनकी संख्या आदि भी जान लेनी चाहिए। इतनी विशेषता है कि संख्या आदि प्ररूपणाओंका विचार करते समय इन छह कर्मोंकी द्रव्यार्थता और प्रदेशार्थताकी अपेक्षा कथन किया है, इसलिए यहां इनकी द्रव्यार्थता और प्रदेशार्थताका ज्ञान करा देना आवश्यक है।

प्रयोगकर्म, तपःकर्म और क्रियाकर्ममें उस उस कर्मवाले जीवोंकी द्रव्यार्थता संज्ञा है और उन जीवोंके प्रदेशोंकी प्रदेशार्थता संज्ञा है। समवदानकर्म और ईर्यापथकर्ममें उस उस कर्मवाले जीवोंकी द्रव्यार्थता संज्ञा है और उन जीवोंसे सम्बन्धको प्राप्त हुए कर्मपरमाणुओंकी प्रदेशार्थता संज्ञा है। अधःकर्ममें औदारिकशरीरके नोकर्मस्कन्धोंकी द्रव्यार्थता संज्ञा है और औदारिक शरीरके उन नोकर्मस्कन्धोंके परमाणुओंकी प्रदेशार्थता संज्ञा है। इसलिए संख्या आदिका विचार इन कर्मोंकी द्रव्यार्थता और प्रदेशार्थताकी संख्या आदिको समझकर करना चाहिए।

३ प्रकृति अनुयोगद्वार

प्रकृति, शील और स्वभाव इनका एक ही अर्थ है। उसका जिस अनुयोगद्वारमें विवेचन हो उसका नाम प्रकृति अनुयोगद्वार है। इसका विचार प्रकृतिनिक्षेप आदि सोलह अनुयोगद्वारोंका आलम्बन लेकर किया जाता है। उसमें पहले प्रकृतिनिक्षेपका विचार करते हुए इसके नामप्रकृति, स्थापनाप्रकृति, द्रव्यप्रकृति और भावप्रकृति ये चार भेद किये गये हैं और इसके बाद कौन नय किस प्रकृतिको स्वीकार करता है, यह बतलाते हुए कहा है कि नैगम, व्यवहार और संग्रह नय सब प्रकृतियोंको स्वीकार करते हैं। ऋजुसूत्रनय स्थापना-प्रकृतिको स्वीकार नहीं करता। शब्दनय केवल नाम और भावप्रकृतिको स्वीकार करता है। कारण स्पष्ट है। आगे नामप्रकृति आदिका विस्तारसे विचार किया है। यथा—

नामप्रकृति— जीव और अजीवके एकवचन और बहुवचन तथा एकसंयोगी और द्विसंयोगी जो आठ भेद हैं उनमेंसे जिस किसीका 'प्रकृति' ऐसा नाम रखना वह नामप्रकृति है।

स्थापनाप्रकृति– काष्ठकर्म आदिमें व अक्ष और वराटक आदिमें बुद्धिसे 'यह प्रकृति है' ऐसी स्थापना करना वह स्थापनाप्रकृति है।

द्रव्यप्रकृति— द्रव्यका अर्थ भव्य है। इसके दो भेद हैं— आगमद्रव्यप्रकृति और नोआगम-द्रव्यप्रकृति। आगमद्रव्यप्रकृतिमें प्रकृतिविषयक शास्त्रका जानकार उपयोगरहित जीव लिया गया है। अतः आगमके अधिकारीभेदसे स्थित, जित, परिजित, वाचनोपगत, सूत्रसम, अर्थसम, ग्रन्थसम, नामसम और घोषसम ये नौ भेद करके उनकी वाचना, पृच्छना, प्रतीच्छना, परिवर्तना, अनुप्रेक्षणा, स्तव, स्तुति और धर्मकथा द्वारा ज्ञान सम्पादनकी बात कही है। इस विधिसे प्रकृति विषयक ज्ञान सम्पादन कर जो उसके उपयोगसे रहित है वह आगमद्रव्यप्रकृति कहलाता है, यह उक्त कथनका तात्पर्य है। द्रव्यप्रकृतिका दूसरा भेद नोआगमद्रव्यप्रकृति है। इसके दो भेद हैं— कर्मद्रव्यप्रकृति और नोकर्मद्रव्यप्रकृति। यहां सर्वप्रथम नोकर्मद्रव्यप्रकृतिके अनेक भेदोंका संकेत करके कुछ उदाहरणों द्वारा नोकर्मकी प्रकृति बतलाई गयी है। यथा— घट, सकोरा आदिकी प्रकृति मिट्टी है, धानकी प्रकृति जौ है, और तर्पणकी प्रकृति गेहूं है। तात्पर्य यह है कि किसी कार्यके होनेमें जो पदार्थ निमित्त पड़ते हैं उन्हें नोकर्म कहते हैं। गोम्मटसार कर्मकाण्डमें ज्ञानावरणादि आठ कर्मोंकी दृष्टिसे प्रत्येक कर्मके नोकर्मका स्वतन्त्र विवेचन किया है। यथा— वस्त्र ज्ञानावरणका नोकर्म है। प्रतीहार दर्शनावरणका नोकर्म है। तलवार वेदनीयका नोकर्म है। मद्य मोहनीयका नोकर्म है। आहार आयुकर्मका नोकर्म है। देह नामकर्मका नोकर्म है। उच्च-नीच शरीर

गोत्रकर्मका नोकर्म है। भण्डारी अन्तराय कर्मका नोकर्म है। तात्पर्य यह है कि वस्त्रादि द्रव्यके सामने आ जानेपर ज्ञानावरणका उदयविशेष होता है, जिससे वस्तुका ज्ञान नहीं होता, इसलिए इसकी नोकर्म संज्ञा है। इसी प्रकार अन्य कर्मोंके नोकर्मको घटित कर लेना चाहिए। वहां ये मूल प्रकृतियोंकी अपेक्षा नोकर्म कहे गये हैं। उत्तर प्रकृतियोंकी अपेक्षा नोकर्मका विचार करते हुए इष्ट अन्न-पान आदिको सातावेदनीयका और अनिष्ट अन्न-पान आदिको असाता-वेदनीयका नोकर्म कहा है। इसका भी यही तात्पर्य है कि इष्ट अन्न-पान आदिका संयोग होनेपर सातावेदनीयकी उदय-उदीरणा होती है और अनिष्ट अन्न-पान आदिका संयोग होनेपर असाता-वेदनीयकी उदय-उदीरणा होती है। इन बाह्य पदार्थोंके संयोग-वियोग यथासम्भव उस कर्मके उदय-उदीरणामें निमित्त होते हैं, यह उक्त कथनका तात्पर्य है। यहां प्रकृति अनुयोगद्वारमें मुख्य रूपसे नोकर्मकी क्या प्रकृति है, इसका विचार हो रहा है। इसलिए किस कार्यका क्या नोकर्म है, यह न बतला कर जो पदार्थ नोकर्म हो सकते हैं उनकी प्रकृतिका निर्देश किया है।

कर्मप्रकृतिके ज्ञानावरण आदि आठ भेद हैं। इनका स्वरूप इनके नामसे ही परिज्ञात है। ज्ञानावरण—ज्ञान एक होकर भी बन्धविशेषके कारण उसके पांच भेद हैं, अतः सर्वत्र ज्ञानावरणके पांच भेद किये गये हैं। जो इन्द्रिय और नोइन्द्रियके अभिमुख अर्थात् ग्रहणयोग्य नियमित विषयको जानता है वह आभिनिबोधिकज्ञान है। यह पांच इन्द्रियों और मनके निमित्तसे अप्राप्तरूप बारह प्रकारके पदार्थोंका अवग्रह, ईहा, अवाय और धारणारूप तथा प्राप्तरूप उन बारह प्रकारके पदार्थोंका स्पर्शन, रसना, घ्राण और श्रोत्र इन्द्रियोंके द्वारा मात्र अवग्रहरूप होता है; इसलिए इसके अनेक भेद हो जाते हैं। यथा—अवग्रह आदिके भेदसे वह चार प्रकारका है, इन चार भेदोंको पांच इन्द्रिय और मन इन छहसे गुणा करनेपर चौबीस प्रकारका है, इन चौबीस भेदोंमें व्यंजनावग्रहके चार भेद मिलानेपर अट्ठाईस प्रकारका है, और इनमें अवग्रह आदि चार सामान्य भेद मिलानेपर बत्तीस प्रकारका है। पुनः इन ४, २४, २८ और ३२ भेदोंको छह प्रकारके पदार्थोंसे गुणा करनेपर २४, १४४, १६८ और १९२ प्रकारका है तथा १२ प्रकारके पदार्थोंसे गुणा करनेपर ४८, २२८, ३३६ और ३८४ प्रकारका है।

अवग्रहके भेदोंका स्वरूपनिर्देश करते हुए वीरसेन स्वामीने उनकी स्वतन्त्र व्याख्या प्रस्तुत की है। वे कहते हैं कि अप्राप्त अर्थका ग्रहण अर्थावग्रह है और प्राप्त अर्थका ग्रहण व्यंजनावग्रह है। इस आधारसे उन्होंने स्पर्शन, रसना, घ्राण और श्रोत्र इन चार इन्द्रियोंको प्राप्त और अप्राप्त दोनों प्रकारके अर्थका ग्रहण करनेवाला माना है। इस कथनकी पुष्टिमें उन्होंने अनेक हेतु भी दिये हैं।

श्रोत्रेन्द्रियके विषयका ऊहापोह करते हुए उन्होंने भाषाके स्वरूपपर भी प्रकाश डाला है। वे अक्षरगत भाषाके भाषा और कुभाषा ये दो भेद करके लिखते हैं कि काश्मीर देशवासी, पारसीक, सिंहल और वर्वरिक आदि जनोंकी भाषा कुभाषा है और ऐसी कुभाषायें सात सौ हैं। भाषायें अठारह हैं। इनका विभाग करते हुए वीरसेन स्वामीने भारत देशके मुख्य छह विभाग

किये हैं और प्रत्येक विभागकी तीन तीन भाषायें मानी हैं। वे छह विभाग ये हैं—कुरु, लाढ, मरहठा, मालव, गौड़ और मागध।

इसी प्रकार शब्द एक स्थानपर उत्पन्न होकर अन्य प्रदेशमें कैसे सुना जाता है, इस विषयका ऊहापोह करते हुए उन्होंने लिखा है कि शब्द जिस प्रदेशमें उत्पन्न होते हैं उनमेंसे बहुभाग तो वहीं रह जाते हैं और एक भाग प्रमाण शब्द उससे लगे हुए प्रदेश तक जाते हैं। इनमें भी बहुभाग उस दूसरे प्रदेशमें रह जाते हैं और एक भाग प्रमाण शब्द आगेके प्रदेश तक जाते हैं। इस प्रकार उत्तरोत्तर कम कम होते हुए वे लोकके अन्त तक जाते हैं। समयके सम्बन्धमें विचार करते हुए उन्होंने दो समयसे लेकर अन्तर्मुहूर्त प्रमाण काल निर्धारित किया है। अर्थात् इन शब्दोंको अपने उत्पत्तिस्थानसे लोकान्त तक जानेमें कमसे कम दो समय लगते हैं और अधिकसे अधिक अन्तर्मुहूर्त काल लगता है। उन्होंने शब्द लोकान्त तक जाते हैं, इस विषयको स्पष्ट करते हुए कहा है कि वे उछल कर जाते हैं। इसलिए जो शब्द उत्पन्न होते हैं वे ही उछल कर लोकान्त तक जाते हैं या तरङ्गक्रमसे वे आगे नये नये शब्दोंको उत्पन्न कर लोकान्त तक जाते हैं, यह विचारणीय है। वे शब्द सुने कैसे जाते हैं, इस विषयका स्पष्टीकरण करते हुए वीरसेन स्वामीने लिखा है कि उत्पत्तिस्थानसे जो शब्द सीधमें सुने जाते हैं वे दो प्रकारसे सुने जाते हैं— परघातरूपसे और अपरघातरूपसे। यदि वे दूसरे पदार्थसे टकराये नहीं हैं तो बाणके समान सीधी गतिसे आकर और कर्णछिद्रमें प्रविष्ट होकर सुने जाते हैं, और यदि वे दूसरेसे टकराकर सुने जाते हैं तो पहले वे सीधमें किसी पदार्थसे टकराते हैं और तब फिर सीधको छोड़कर अन्य दिशामें गति करते हैं, पश्चात् वे फिरसे अन्य पदार्थसे टकराकर सीधमें आकर सुने जाते हैं। यह श्रेणिगत शब्दोंके सम्बन्धमें विचार हुआ। इनसे भिन्न उच्छ्रेणिगत शब्द पराघातसे (टकराकर) ही सुने जाते हैं।

आभिनिबोधिकज्ञानावरणके प्रकरणको समाप्त करते हुए यहां अन्तमें आभिनिबोधिकज्ञान और अवग्रह आदिके पर्याय शब्द दिये गये हैं और उसे 'अण्णा परूवणा' कहा है। आभिनिबोधिकज्ञानके पर्यायवाची शब्द लिखते हुए कहा है कि संज्ञा, स्मृति, मति और चिन्ता ये उसके पर्यायवाची नाम हैं। जहां तक विदित हुआ है आगमिक परम्परामें प्रथम ज्ञानको अभिनिबोधिकज्ञान ही कहा है और संज्ञा आदि उसके पर्यायवाची नाम कहे गये हैं। सर्वप्रथम आचार्य कुन्दकुन्दके ग्रन्थोंमें आभिनिबोधिकज्ञान शब्दके स्थानमें मतिज्ञान शब्द दृष्टिगोचर होता है और उसके बाद तत्त्वार्थसूत्रमें यह क्रम दिखाई देता है। श्वेताम्बर आगम साहित्यमें भी इन शब्दोंके प्रयोगमें व्यत्यय देखा जाता है। उदाहरणार्थ समवायांग व नंदीसूत्रमें आभिनिबोधिकज्ञान शब्दका प्रयोग हुआ है, किन्तु अन्यत्र व्यत्यय देखा जाता है। इससे स्पष्ट है कि ये आभिनिबोधिक, मति और स्मृति आदि शब्द एक ही अर्थको कहते हैं। व्युत्पत्तिभेदसे इनमें जो अर्थभेद किया जाता है वह ग्राह्य नहीं है। हां परोक्ष ज्ञानके भेदोंमें जो स्मृतिज्ञान, प्रत्यभिज्ञान और तर्कज्ञान ये भेद आते हैं वे अवश्य ही आभिनिबोधिकज्ञानसे भिन्न हैं और उनका समावेश मुख्यतया श्रुतज्ञानमें होता है।

ज्ञानका दूसरा भेद श्रुतज्ञान है। यह मतिज्ञानपूर्वक मनके आलम्बनसे होता है। तात्पर्य यह कि पांच इंद्रियों और मनके द्वारा पदार्थको जानकर आगे जो उसीके सम्बन्धमें या उसके सम्बन्धसे अन्य पदार्थके सम्बन्धमें विचारकी धारा प्रवृत्त होती है उसे श्रुतज्ञान कहते हैं। यहां सर्वप्रथम द्वादशांग वाणीकी मुख्यतासे उसके संख्यात भेद किये गये हैं, क्योंकि कुल अक्षर और उनके संयोगी भङ्ग संख्यात ही होते हैं। कुल अक्षर ६४ हैं। यथा– २५ वर्गाक्षर, य, र, ल और व ये ४ अन्तस्थ अक्षर; श, ष, स और ह ये ४ ऊष्माक्षर; अ, इ, उ, ऋ, ऌ, ए, ऐ, ओ और औ ये नौ स्वर ह्रस्व, दीर्घ और प्लुतके भेदसे २७; तथा अं, अः, ⫰ क और ⫰ प ये ४ अयोगवाह। इस प्रकार सब मिलाकर ६४ स्वतन्त्र अक्षर होते हैं। इनके एकसंयोगी और द्विसंयोगीसे लेकर चौंसठसंयोगी तक सब अक्षर एकट्ठी प्रमाण होते हैं। एकट्ठीसे तात्पर्य १८४४६७४४०७३७०९५५१६१५ संख्यासे है। चौंसठ बार दोका अंक (२×२×२ इत्यादि) रख कर और परस्पर गुणा कर लब्ध राशिमेंसे एक कम करनेपर यह संख्या आती है। द्वादशांगवाणीका संकलन इन सब अक्षरोंमें हुआ था और इसलिए यह बतलाया गया है कि किस अंगमें कितने अक्षर थे। वीरसेन स्वामीने इन संयोगी और असंयोगी अक्षरोंका स्वयं ऊहापोह किया है। वे बतलाते हैं कि अ आदि प्रत्येक अक्षर असंयोगी अर्थात् स्वतंत्र अक्षर है और अनेक अक्षर मिलकर जो शब्द या वाक्य बनता है वह संयोगी अक्षरोंका उदाहरण है। इसके लिए उन्होंने 'या श्रीः सा गौः' यह दृष्टान्त उपस्थित किया है। इस दृष्टान्तमें 'य्, आ, श्, र्, ई, अः, स्, आ, ग्, औ और अः' ये ग्यारह अक्षर आये हैं। वीरसेन स्वामी इन्हें एक संयुक्ताक्षर मानते हैं। इससे द्वादशांगमें संयुक्त और असंयुक्त अक्षर किस प्रकारके होंगे और उनका उच्चारण किस प्रकारसे होता होगा, यह सब स्थिति स्पष्ट हो जाती है। पुनरुक्त अक्षरोंका जो प्रश्न खड़ा किया जाता है उसपर भी इससे पर्याप्त प्रकाश पड़ता है। द्वादशांग वाणीमें पदका प्रमाण अलगसे माना गया है। इससे विदित होता है कि वहां पदोंकी परिगणना किसी वाक्य या श्लोकके एक चरणके आधारसे नहीं की जाती रही है, जिस प्रकार कि वर्तमानमें गद्यात्मक या पद्यात्मक ग्रन्थके परिमाणकी गणना बत्तीस अक्षरोंके अधारसे की जाती है। विचार कर देखा जाय तो वहां एक अनुष्टुप्में केवल बत्तीस अक्षर ही नहीं होते; किन्तु मात्रा, विसर्ग और संयुक्त अक्षर बाद करके ये लिए जाते हैं। तथा गद्यात्मक या अनुष्टुप्के सिवा अन्य पद्यात्मक साहित्यमें चाहे वाक्य पूरा हो या न हो जहां बत्तीस अक्षर होते हैं वहां एक अनुष्टुप् श्लोकका परिमाण मान लिया जाता है। उसी प्रकार द्वादशांग वाणीमें भी मध्यम पदके द्वारा इन अक्षरोंकी परिगणना की गई होगी। मात्र वहांपर गणना करते समय मात्रा आदि भी अक्षरके रूपमें परिगणित किये गये होंगे। हां प्रत्येक अंग ग्रन्थमें अपुनरुक्त अक्षरोंका विभाग किस प्रकार किया गया होगा और प्रत्येक ग्रन्थका इतना महा परिमाण कैसे सम्भव है, ये प्रश्न अवश्य ही ध्यान देने योग्य हैं। सम्भव है उत्तर कालमें इनका भी निर्णय हो जाय और एतद्विषयक जिज्ञासा समाप्त हो जाय।

इस प्रकार अक्षरोंकी अपेक्षा श्रुतज्ञानका विचार कर आगे क्षयोपशमकी दृष्टिसे उसका विचार किया गया है। इसमें सबसे अल्प क्षयोपशम रूप ज्ञानको श्रुतज्ञानका प्रथम भेद माना गया है। इसका नाम पर्यायज्ञान है। यह सूक्ष्म निगोद लब्ध्यपर्याप्तकके होता है और नित्योद्घाटित है। अर्थात् इस ज्ञानके योग्य क्षयोपशमका संसारी छद्मस्थ जीवके कभी अभाव नहीं होता। इसका परिमाण अक्षरस्वरूप केवलज्ञानका अनन्तवां भाग है। इसके बाद दूसरा भेद पर्यायसमास है। यह पर्यायज्ञानसे क्रमवृद्धिरूप है। वृद्धिका निर्देश धवलामें किया ही है। तीसरा भेद अक्षरज्ञान है। विवक्षित अकारादि एक अक्षरके ज्ञानके लिए जितना क्षयोपशम लगता है तत्प्रमाण यह ज्ञान है। इसी प्रकार क्रमवृद्धिरूप आगेके ज्ञान जानने चाहिए। इतनी विशेषता है कि पर्यायज्ञानके ऊपर छह स्थानपतित वृद्धि होती है और अक्षरज्ञानके ऊपर अक्षरज्ञानके क्रमसे वृद्धि होती है। यद्यपि कुछ आचार्य अक्षरज्ञानके ऊपर भी छह स्थानपतित वृद्धि स्वीकार करते हैं, पर वीरसेन स्वामी इससे सहमत नहीं हैं। पदज्ञानसे यहां मध्यम पदका ज्ञान लिया गया है। एक मध्यम पदमें १६३४८३०७८८८ अक्षर होते हैं, क्योंकि द्वादशांगके पदोंकी गणना इतने अक्षरोंका एक पद मानकर की जाती है। इसी प्रकार उत्तरोत्तर वृद्धि होकर पूर्वसमास ज्ञानके अन्तिम विकल्पमें श्रुतज्ञानकी समाप्ति होती है। यह ज्ञान श्रुतकेवलीके होता है। इस प्रकार क्षयोपशमकी दृष्टिसे श्रुतज्ञानके कुल भेद २० होते हैं।

पूर्व चौदह हैं। उनमेंसे प्रथम पूर्वका नाम उत्पादपूर्व है और अन्तिम पूर्वका नाम लोकबिन्दुसार है। इसलिए प्रथम पूर्वको मुख्य मान कर क्षयोपशमकी वृद्धि करनेपर भी यही क्रम बैठता है और अन्तिम पूर्वको प्रथम मान कर क्षयोपशमकी वृद्धि करनेपर भी यही क्रम उपलब्ध होता है, क्योंकि सब पूर्वोंमें अक्षर, अक्षरसमास, पद, पदसमास, संघात, संघातसमास, प्रतिपत्ति, प्रतिपत्तिसमास, अनुयोगद्वार, अनुयोगद्वारसमास, प्राभृतप्राभृत, प्राभृतप्राभृतसमास, प्राभृत, प्राभृतसमास, वस्तु, वस्तुसमास, पूर्व और पूर्वसमासरूप ज्ञान विवक्षित हैं। किस क्रमसे ज्ञान होता है, इसकी यहां मुख्यता नहीं है; यह अभ्यासकी बात है। हो सकता है कि पर्याय और पर्यायसमास ज्ञानके बाद किसीको उत्पादपूर्वके एक अक्षरका ज्ञान सर्वप्रथम हो, किसीको लोकबिन्दुसारके एक अक्षरका ज्ञान सर्वप्रथम हो, और किसीको अन्य पूर्वके एक अक्षरका ज्ञान सर्वप्रथम हो। ज्ञान किसी भी पूर्वका हो, वह होगा अक्षरादि क्रमसे ही; क्योंकि संघात आदि पूर्वके अधिकार हैं। किस पूर्वमें कितनी वस्तुएं होती हैं, इसका अलगसे निर्देश किया है। सब वस्तुओंका ज्ञान वस्तुसमासज्ञान कहलाता है। मात्र एक अक्षरका ज्ञान इस ज्ञानमेंसे घटा देना चाहिए, क्योंकि एक पूर्वसम्बन्धी सब वस्तुओंका पूरा ज्ञान हो जानेपर वह पूर्वज्ञान इस संज्ञाको प्राप्त होता है और सब पूर्वसम्बन्धी सब वस्तुओंका पूरा ज्ञान हो जानेपर उसकी पूर्वसमास श्रुतज्ञान संज्ञा होती है। इसी प्रकार वस्तुके अवान्तर अधिकार प्राभृतोंके सम्बन्धमें जानना चाहिए। तथा यही क्रम अन्य अधिकारों, अधिकारोंके पदों और पदोंके

अक्षरोंके विषयमें भी जानना चाहिए। तात्पर्य यह है कि समस्त श्रुतज्ञानके विकल्प मुख्यतया चौदह पूर्वज्ञानसे सम्बन्ध रखते हैं, क्योंकि श्रुतज्ञानमें पूर्वज्ञानकी ही मुख्यता है।

इस प्रकार समस्त श्रुतज्ञान चौदह पूर्वोंके ज्ञानके साथ सम्बन्धित हो जानेपर अंगबाह्यज्ञान, ग्यारह अंगोंका ज्ञान; और परिकर्म, सूत्र, प्रथमानुयोग तथा चूलिकाओंका ज्ञान; ये श्रुतज्ञानके किस भेदमें गर्भित हैं, यह प्रश्न उठता है। वीरसेन स्वामीने इस प्रश्नका इस प्रकार समाधान किया है— वे कहते हैं कि इस सब ज्ञानका अनुयोगद्वार और अनुयोगद्वारसमासमें या प्रतिपत्तिसमास ज्ञानमें अन्तर्भाव किया जा सकता है। यह पूछनेपर कि ये सब तो पूर्वसम्बन्धी अवान्तर अधिकार हैं, इनमें पूर्वातिरिक्त श्रुतज्ञानका अन्तर्भाव कैसे हो सकता है। इसपर वीरसेन स्वामीका कहना है कि ये पूर्वके अवान्तर अधिकार ही होने चाहिए, ऐसी कोई बात नहीं है; पूर्वातिरिक्त साहित्यके भी ये अधिकार हो सकते हैं।

साधारणतः इस प्रकार समाधान तो हो जाता है, पर फिर भी यह जिज्ञासा बनी रहती है कि यदि यही बात थी तो समस्त श्रुतज्ञानके भेद-प्रभेद समस्त पूर्वों और उनके अधिकारों व अवान्तर अधिकारोंकी दृष्टिसे ही क्यों किये गये हैं। पूर्वोंके ये अधिकार और अवान्तर अधिकार केवल दिगम्बर परम्परा ही स्वीकार करती हो, ऐसी बात नहीं है; श्वेताम्बर परम्परामें भी ये इसी प्रकार स्वीकार किये गये हैं। हमारा विश्वास है कि विशेष अनुसन्धान करनेपर इससे ऐतिहासिक तथ्यपर प्रकाश पड़ना सम्भव है। क्या इससे यह निष्कर्ष नहीं निकाला जा सकता है कि श्रुतज्ञानमें पहले पूर्वों सम्बन्धी ज्ञान ही विवक्षित था। बादमें उसमें आचारांग आदि सम्बन्धी अन्य ज्ञान गर्भित किया गया है। जो कुछ हो, है यह प्रश्न विचारणीय। इस प्रकार श्रुतज्ञानकी प्ररूपणा करके अन्तमें उसके पर्याय नाम दिये गये हैं जो कई दृष्टियोंसे महत्त्व रखते हैं।

तीसरा ज्ञान अवधिज्ञान है। इसे मर्यादाज्ञान भी कहते हैं, क्योंकि यह ज्ञान द्रव्य, क्षेत्र, काल और भावकी मर्यादा लिए हुए इन्द्रिय, मन और प्रकाश आदिकी सहायताके विना होता है। क्षयोपशमकी दृष्टिसे असंख्यात प्रकारका होकर भी इसके मुख्य भेद दो हैं—भवप्रत्यय और गुणप्रत्यय। भवप्रत्यय अवधिज्ञान देवों, नारकियों तथा तीर्थङ्करोंके होता है और गुणप्रत्यय अवधिज्ञान तिर्यञ्चों व मनुष्योंके होता है। देवों और नारकियोंके भवप्रत्यय अवधिज्ञान होते हुए भी वह पर्याप्त अवस्थामें ही होता है, इतना विशेष समझना चाहिए। तिर्यञ्चों और मनुष्योंके गुणप्रत्यय अवधिज्ञान पर्याप्त अवस्थामें ही होता है, यह स्पष्ट है। इन दोनों अवधिज्ञानोंके अनेक भेद हैं—देशावधि, परमावधि और सर्वावधि तथा हीयमान, वर्द्धमान, अवस्थित, अनवस्थित, अनुगामी, अननुगामी, सप्रतिपाती, अप्रतिपाती, एकक्षेत्र और अनेकक्षेत्र। इन सबका विशेष विचार यहां वीरसेन स्वामीने किया है। किस अवधिज्ञानका द्रव्य, क्षेत्र और काल कितना है; इसका भी विचार मूल सूत्रोंमें और धवला टीकामें भी किया गया है।

ज्ञानका चौथा भेद मनःपर्ययज्ञान है। यह दूसरेके मनमें अवस्थित विषयको जानता है, इसलिए इसकी मनःपर्ययज्ञान संज्ञा है। इसके दो भेद हैं—ऋजुमति और विपुलमति। इनमें विपुलमति मनःपर्यय ज्ञानके उत्कृष्ट क्षेत्रका विचार करते हुए सूत्रमें कहा है कि यह ज्ञान उत्कृष्ट रूपसे मानुषोत्तर शैलके भीतर जानता है, बाहर नहीं। वीरसेन स्वामीने इसका व्यख्यान करते हुए क्षेत्रके विषयमें तो यह बतलाया है कि मानुषोत्तर शैल पैंतालीस लाख योजन प्रमाण क्षेत्रका उपलक्षण है। इसलिए इससे मानुषोत्तर शैलके बाहरका प्रदेश भी लिया जा सकता है। कारण कि उत्कृष्ट विपुलमतिमनःपर्ययज्ञानी जहां स्थित होगा वहांसे दोनों ओरके समान क्षेत्रके विषयको ही जानेगा। मान लीजिये कि कोई एक विपुलमतिमनःपर्ययज्ञानी मानुषोत्तर शैलसे एक लाख योजन हटकर अवस्थित है। ऐसी अवस्थामें वह दोनों ओर साढ़े बाईस लाख योजन तकके विषयको जानेगा, अतः स्वभावतः उसका विषयक्षेत्र मानुषोत्तर शैलके बाहर हो जायगा। यह नहीं हो सकता कि एक ओर वह एक लाख योजन क्षेत्रका विषय जाने और दूसरी ओर ४४ लाख योजनका (देखिये पृ. ३४४ का विशेषार्थ)।

ज्ञानका पांचवां भेद केवलज्ञान है। यह सकल है, सम्पूर्ण है, और असपत्न है। खण्डरहित होनेसे वह सकल है। पूर्णरूपसे विकासको प्राप्त होकर अवस्थित है, इसलिए सम्पूर्ण है। कर्म-शत्रुओंका अभाव हो जानेके कारण असपत्न है। इसके विषयका निर्देश करते हुए बतलाया है कि यह सब लोक, सब जीव और सब भावोंको एक साथ जानता है। कारण स्पष्ट है, क्योंकि आत्माका स्वभाव जानना और देखना है। यदि वह समर्याद जानता है तो उसका कारण प्रतिबन्धक कारण है। किन्तु जब सब प्रकारके प्रतिबन्धक कारण दूर हो जाते हैं तो फिर ज्ञानमें यह मर्यादा नहीं की जा सकती कि वह इतने क्षेत्र और इतने कालके भीतरके विषयको ही जान सकता है। इसलिए केवलज्ञानका विषय तीनों कालों और तीनों लोकोंके समस्त पदार्थ माने गये हैं। ये ज्ञानके पांच भेद हैं, इसलिए ज्ञानावरण कर्मके भी पांच भेद माने गये हैं।

आत्मसंवेदनका नाम दर्शन है। इसका जो आवरण करता है उसे दर्शनावरण कहते हैं। इसकी चक्षुदर्शनावरण आदि ९ प्रकृतियां हैं।

साधारणतः दर्शनके स्वरूपके विषयमें विवाद है। कुछ ऐसा मानते हैं कि ज्ञानके पूर्व जो सामान्यावलोकन होता है उसे दर्शन कहते हैं। किन्तु वीरसेन स्वामी यहां 'सामान्य' पदसे आत्माको ग्रहण करके यह अर्थ करते हैं कि उपयोगकी आभ्यन्तर प्रवृत्तिका नाम दर्शन और बाह्य प्रवृत्तिका नाम ज्ञान है। दर्शनमें कर्ता और कर्ममें भेद नहीं होता, परन्तु ज्ञानमें कर्ता और कर्मका स्पष्टतः भेद परिलक्षित होता है। तात्पर्य यह है कि किसी विषयको जाननेके पहले जो आत्मोन्मुख वृत्ति होती है उसे दर्शन कहते हैं और घट आदि पदार्थोंको जानना ज्ञान है। दर्शनके मुख्य भेद चार हैं—चक्षुदर्शन, अचक्षुदर्शन, अवधिदर्शन और केवलदर्शन। श्रुतज्ञान

मतिज्ञानपूर्वक होता है, इसलिए उसके पहले दर्शन नहीं होता; यह स्पष्ट ही है। इसी प्रकार मनःपर्ययज्ञान भी मतिज्ञानपूर्वक होता है इसलिए उसके पहले भी दर्शन नहीं होता, यह भी स्पष्ट है। शेष रहे तीन ज्ञान, सो इनमें मतिज्ञान पांच इन्द्रियों और मनके निमित्तसे होता है। उसमें भी चाक्षुष ज्ञानको मुख्य मानकर दर्शनका एक भेद चक्षुदर्शन कहा गया है। शेष इन्द्रियों और मनकी मुख्यतासे दूसरे दर्शनका नाम अचक्षुदर्शन रखा है। अवधिज्ञानके पहले अवधिदर्शन होता है। यद्यपि आगममें अवधिदर्शनका सद्भाव चौथे गुणस्थानसे माना गया है; इसलिए विभंगज्ञानके पहले कौनसा दर्शन होता है, यह शंका होती है जो वीरसेन स्वामीके सामने भी थी। पर वीरसेन स्वामीने विभंगज्ञानके पहले होनेवाले दर्शनको अवधिदर्शन ही माना है। केवलज्ञानके साथ जो दर्शन होता है उसे केवलदर्शन कहते हैं। इस प्रकार दर्शन चार हैं, अतः इनको आवरण करनेवाले चार दर्शनावरण और निद्रादिक पांच, कुल नौ दर्शनावरण कर्म माने गये हैं।

वेदनीय—जो आत्माको सुख और दुःखका वेदन करानेमें सहायक है उसे वेदनीय कर्म कहते हैं। इसके सातावेदनीय और असातावेदनीय ये दो भेद हैं। सात परिणामका कारण सातावेदनीय और असात परिणामका कारण असातावेदनीय कर्म है। यहांपर वीरसेन स्वामीने दुक्खके प्रतिकारमें कारणभूत द्रव्यका संयोग कराना और दुःखको उत्पन्न करनेवाले कर्मद्रव्यकी शक्तिका विनाश करना भी सातावेदनीय कर्मका कार्य माना है।

मोहनीय कर्म—जो मोहित करता है वह मोहनीय कर्म है। परको स्व समझना, स्व और परमें भेद न करना, स्व को परका कर्ता मान इष्टानिष्ट करनेके लिए या उसे ग्रहण करनेके लिए उद्यत होना, और गृहीत वस्तुको स्व मान कर उसका संग्रह करना आदि यह सब मोहका कार्य है। इसके दो भेद हैं—दर्शनमोहनीय और चारित्रमोहनीय। दर्शनमोहनीयके उदयमें 'स्व' की प्रतीति नहीं होती या 'पर'में 'स्व' की बुद्धि होती है और चारित्रमोहनीयके उदयमें परका ग्रहण और उसमें विविध प्रकारके भाव होते हैं।

दर्शनमोहनीय—यह मूलमें एक है, अर्थात् बन्ध केवल मिथ्यात्वका ही होता है। और अनादि कालसे जब तक जीव मिथ्यादृष्टि रहता है तब तक एक मिथ्यात्वकी ही सत्ता रहती है, फल भी इसीका भोगना पड़ता है। किन्तु प्रथम बार सम्यक्त्वके होनेपर यह मिथ्यात्व कर्म तीन भागोंमें बट जाता है—मिथ्यात्व, सम्यग्मिथ्यात्व और सम्यक्प्रकृति। नामानुसार कार्य भी इनके अलग अलग हो जाते हैं। मिथ्यात्वके उदयसे जीव मिथ्यादृष्टि ही रहता है, सम्यग्मिथ्यात्वके उदयसे सम्यग्मिथ्यादृष्टि होता है, और सम्यक्त्वप्रकृतिके उदयसे सम्यग्दर्शनमें दोष लगाता है। आगे दर्शमोहनीयकी क्षपणा होने तक मिथ्यात्वकी सत्ता तो नियमसे बनी रहती है, परन्तु शेष दोकी सत्ता मिटती-बनती रहती है। पल्यके असंख्यातवें भाग कालसे अधिक समय तक यदि मिथ्यात्वमें रहता है तो इनकी सत्ता नहीं रहती और इस बीच या नये सिरेसे सम्यग्दृष्टि हो जाता है तो इनकी सत्ताका क्रम या तो चालू हो जाता है या पुनः प्राप्त हो जाती है। हां दर्शनमोहनीयकी क्षपणाके बाद इनकी सत्ता नियमसे नहीं रहती, यह निश्चित है।

चारित्रमोहनीय—इसके दो भेद हैं कषायवेदनीय और नोकषायवेदनीय। कषायवेदनीयके १६ और नोकषायवेदनीयके ९ भेद हैं। इनके नाम और कार्य स्पष्ट हैं।

आयुकर्म— जो नारक आदि भवधारणका कारण कर्म है उसे आयुकर्म कहते हैं। भव अन्य कर्मके उदयसे होता है। किन्तु उसमें विवक्षित समय तक रखना इस कर्मका कार्य है। भवकी तीव्रता और मन्दताके अनुसार इस कर्मकी भी तीव्रता और मन्दता जाननी चाहिए। भव मुख्यरूपसे चार हैं— नारकभव, तिर्यञ्चभव, मनुष्यभव और देवभव। अतः आयुकर्मके भी चार ही भेद हैं— नारकायु, तिर्यञ्चायु, मनुष्यायु और देवायु।

नामकर्म—जो जीवकी नारक आदि नाना अवस्थाओं और शरीर आदि नाना भेदोंके होनेमें कारण है उसे नामकर्म कहते हैं। इसके पिण्ड प्रकृतियोंकी दृष्टिसे मुख्य भेद ब्यालीस हैं। जिस प्रकृतिका जो नाम हैं तदनुरूप उसका कार्य है। मात्र इन प्रकृतियोंका लक्षण करते समय जीवविपाकी और पुद्गलविपाकी प्रकृतियोंके विभागको ध्यानमें रखकर लक्षण करना चाहिए। आनुपूर्वीका उदय विग्रहगतिमें होता है। इसके उदयसे विग्रहगतिमें जीवप्रदेशोंका आनुपूर्वीक्रमसे विशिष्ट आकार प्राप्त होता है। तात्पर्य यह है कि विग्रहगतिमें संस्थान नामकर्मका उदय नहीं होता, इसलिए जीवप्रदेशोंको विशिष्ट आकार प्रदान करना इसका मुख्य कार्य प्रतीत होता है। आनुपूर्वी क्षेत्रविपाकी प्रकृति है, इसलिए अपनी अपनी गतिके विग्रहक्षेत्रके अनुसार तो इसके भेद होते ही हैं, साथ ही जितनी प्रकारकी अवगाहनाओंका त्याग होकर अगली गति प्राप्त होती है वे सब अवगाहनाएँ भी आनुपूर्वीके अवान्तर भेदोंकी कारण हैं। यही कारण है कि प्रत्येक अनुपूर्वीके विकल्पोंका विवेचन सूत्रकारने इन दो दृष्टियोंको ध्यानमें रखकर किया है। पहले तो एक अवगाहना और क्षेत्रके कारण जितने विकल्प सम्भव हैं वे लिए हैं, फिर इन विकल्पोंको अवगाहनाके विकल्पोंसे गुणित कर दिया है और इस प्रकार प्रत्येक आनुपूर्वीके सब विकल्प उत्पन्न किये गए हैं। इस प्रकार राजुके वर्गको जगश्रेणिके असंख्यातवें भाग प्रमाण अवगाहनाविकल्पोंसे गुणित करनेपर जो लब्ध आवे उतने नरकगत्यानुपूर्वीके भेद हैं। लोकको जगश्रेणिके असंख्यातवें भागप्रमाण अवगाहनाविकल्पोंसे गुणित करनेपर जो लब्ध आवे उतने तिर्यग्गत्यानुपूर्वीके विकल्प हैं। पैंतालीस लाख योजन बाहल्यवाले राजुवर्गको जगश्रेणिके असंख्यातवें भागप्रमाण अवगाहना-विकल्पोंसे गुणित करनेपर जो लब्ध आवे उतने मनुष्यगत्यानुपूर्वीके भेद होते हैं। और नौ सौ योजन बाहल्यरूप राजुप्रतरको जगश्रेणिके असंख्यातवें भाग प्रमाण अवगाहनाविकल्पोंसे गुणित करनेपर जो लब्ध आवे उतने देवगत्यानुपूर्वीके अवगाहनाविकल्प होते हैं। यहां पैंतालीस लाख योजन बाहल्य रूप राजुप्रतरको जगश्रेणिके असंख्यातवें भागप्रमाण अवगाहनाविकल्पोंसे गुणित करनेपर मनुष्यगत्यानुपूर्वीके कुल भेद उत्पन्न होते हैं, एक ऐसा उपदेश भी उपलब्ध होता है। इस प्रकार इन दो उपदेशोंमेंसे प्रथम उपदेशके अनुसार नरकगत्यानुपूर्वीके भेद सबसे कम प्राप्त होते हैं और दूसरे उपदेशके अनुसार मनुष्यगत्यानुपूर्वीके भेद सबसे कम प्राप्त होते हैं। ये दोनों ही

उपदेश सूत्रसिद्ध हैं, क्योंकि चारों आनुपूर्वियोंके अल्पबहुत्वका विचार इन दोनों उपदेशोंका आलम्बन लेकर किया है।

गोत्रकर्म—गोत्रकर्मका अर्थ है जीवकी आचारगत परम्परा। यह दो प्रकारकी होती है—उच्च और नीच। इसलिए गोत्रकर्मके भी दो भेद हो जाते हैं—उच्चगोत्र और नीचगोत्र। ब्राह्मण परम्परामें रक्तकी आनुवंशिकता गोत्रमें विवक्षित है और जैन परम्परामें आचारगत परम्परा विवक्षित है। इसका अभिप्राय यह है कि ब्राह्मण परम्परामें जहां उच्चत्व और नीचत्वका सम्बन्ध जन्मसे अर्थात् माता-पिताकी जातिसे लिया गया है, वहां जैन परम्परामें यह वस्तु सदाचार और असदाचारसे सम्बन्ध रखती है। इसी कारण वीरसेन स्वामीने अनेक प्रकारके शंका-समाधानके बाद उच्चगोत्रका लक्षण कहते समय यह कहा है कि जो दीक्षा योग्य साधु आचारवाले हैं, तथा साधु आचारवालोंके साथ जिन्होंने सम्बन्ध स्थापित कर लिया है, जिन्हें देखकर 'आर्य' ऐसी प्रतीति होती है, और जो आर्य कहे भी जाते हैं, ऐसे पुरुषोंकी सन्तानको उच्चगोत्री कहते हैं और इनसे विपरीत परम्परावाले नीचगोत्री कहलाते हैं।

अन्तरायकर्म— दानशक्ति, लाभशक्ति, भोगशक्ति, उपभोगशक्ति और वीर्यशक्ति ये जीवकी स्वभावगत पांच प्रकारकी शक्तियां मानी गई हैं। इन्हें पांच लब्धियां भी कहते हैं। इन्हीं पांच लब्धियोंकी प्राप्तिमें जो अन्तराय करता है उसे अन्तराय कर्म कहते हैं। न्यूनाधिक रूपमें सब संसारी जीवोंके अन्तराय कर्मका क्षयोपशम देखा जाता है, इसलिए अपने अपने क्षयोपशमके अनुसार प्रत्येक जीवके ये पांच लब्धियां उपलब्ध होती हैं और तदनुसार इनका कार्य भी देखा जाता है। लोकमें माला, ताम्बूल आदि भोग; और शय्या, अस्त्र आदि उपभोग माने जाते हैं। धनादिककी प्राप्तिको लाभ गिना जाता है, और आहारादिकके प्रदान करनेको दान कहा जाता है। इन वस्तुओंका ग्रहण होता तो है कषाय और योगसे ही; पर इनके ग्रहणमें जो भोग, उपभोग और लाभ भाव होता है वह अन्तराय कर्मके क्षयोपशमका फल है। इसी प्रकार आहारादिकका दान होता तो है कषायकी मन्दता या उसके अभावसे ही, पर आहारादिकके देनेमें जो दान भाव होता है वह भी दानान्तराय कर्मके क्षयोपशमका फल है। आशय यह है कि अन्तराय कर्मके क्षय और क्षयोपशमका कार्य इन भोगादिक भावोंको उत्पन्न करना है। यदि मिथ्यादृष्टि जीव है तो वह पर वस्तुओंके इन्द्रियोंके विषय होनेपर या उनके मिलनेपर उन्हें अपना भोग आदि मानता है, और यदि सम्यग्दृष्टि जीव है तो वह स्वके आधारसे स्वमें ही अपने भोगादिकको मानता है। भोगादि रूप परिणाम स्वमें हो या परमें, यह तो सम्यक्त्व और मिथ्यात्वका माहात्म्य है। यहां तो केवल आत्मामें ये भोगादि भाव क्यों नहीं होते हैं, और यदि होते हैं तो किस कारणसे होते हैं, इसी बातका विचार किया गया है और इसके उत्तरस्वरूप बतलाया है कि भोगादि भावके न होनेका मुख्य कारण अन्तराय कर्म है। भोगादि भाव पांच हैं, इसलिए अन्तरायके भी पांच ही भेद हैं।

भावप्रकृति-- प्रकृतिनिक्षेपका चौथा भेद भावप्रकृति है। भावका अर्थ पर्याय है। इसके दो भेद हैं— आगमभावप्रकृति और नोआगमभावप्रकृति । आगमभावप्रकृतिमें प्रकृतिविषयक स्थित-जित आदि अनेक प्रकारके शास्त्रोंका जानकार और उनके वाचना, पृच्छना आदि अनेक प्रकारके उपयोगसे युक्त आत्मा लिया गया है। जब तक कोई जीव प्रकृति विषयका प्रतिपादन करनेवाले स्थित-जित आदि शास्त्रोंको जानते हुए भी उन शास्त्रोंकी वाचना, पृच्छा, प्रतीच्छना और परिवर्तना आदि करता है तब तक वह आगमभावप्रकृति कहलाता है; यह उक्त कथनका तात्पर्य है। तथा नोआगमभावप्रकृतिमें वर्तमान पर्याययुक्त वह वस्तु ली गई है। यथा—सुर, असुर और नाग। जो अहिंसा आदिके अनुष्ठानमें रत हैं वे सुर हैं, इनसे भिन्न असुर हैं। तथा जो फणसे उपलक्षित है वे नाग हैं आदि। इसमें पर्यायकी मुख्यता है।

इस प्रकार प्रकृतिनिक्षेप नामादिकके भेदसे चार प्रकारका है। उनमेंसे यहां किसकी मुख्यता है, इस प्रश्नको ध्यानमें रख कर सूत्रकारने बतलाया है कि यहां कर्मप्रकृतिकी मुख्यता है। वीरसेन स्वामीने इसकी टीका करते हुए कहा है कि सूत्रकारने ' यहां कर्मप्रकृतिकी मुख्यता है ' यह वचन उपसंहारको ध्यानमें रखकर कहा है। वैसे यहां नोआगमद्रव्यप्रकृति और नोआगमभावप्रकृति इन दोनोंकी मुख्यता है। वीरसेन स्वामीके ऐसा कहनेका कारण यह है कि आगे केवल कर्मप्रकृतिका ही विवेचन न होकर इन दोनोंका भी विवेचन किया गया है।

यहां प्रारम्भमें १६ अनुयोगद्वारोंका नामनिर्देश किया था। किन्तु प्रकृतमें प्रकृतिनिक्षेप और प्रकृतिनयविभाषणता इन दो अधिकारोंका ही विचार किया है, शेषका विचार नहीं किया। अतएव उनके विषयमें विशेष जानकारी करानेके लिए यह कहा है—' सेसं वेदणाए भंगो '। आशय यह है कि वेदनाखण्डमें जिस प्रकार वर्णन किया है तदनुसार यहां शेष अनुयोगद्वारोंका वर्णन कर लेना चाहिए।

विषय-सूची



शुद्धि-पत्र



पृष्ठ	पंक्ति	अशुद्ध	शुद्ध
१	२	फासस्स	पासस्स
९	१	सुज्ञेन्दु-	सुज्ञेंदु-
,,	४	लेण्ण-	लेण-
,,	३१	अ-ताप्रतौ'''३ ताप्रत्यो	अ-ताप्रत्योः'''३ ताप्रतौ
१२	१०	मवट्ठाणाणुव-	-मवट्ठाणुव-
१६	६	दव्वमेयक्खेत्तणे पुसदि सो दव्वो	दव्वमेयक्खेत्तेण पुसदि सो सव्वो
,,	२८	वह द्रव्य एकक्षेत्रस्पर्श	वह सब एकक्षेत्रस्पर्श
१८	२२	जो द्रव्य एकदेश रूपसे	जो द्रव्यका एक देश एक देशके साथ
१९	८	रूक्खाणं	रुक्खाणं
२४	,,	रूक्खपासो	लुक्खफासो
२५	,,	सगंतोक्खित्तासेस-	सगंतोक्खित्तासेस-
२६	४	-आउ-	-आउअ-
३३	१३	पुणरूत्तभंगा	पुणरुत्तभंगा
१९	२७	१९ भंगोंमें	१८ भंगोंमें
३६	६	फासण्णिदस्स	फाससण्णिदस्स
३९	३०	स्थापन	स्थापना
४३	५	दव्ववम्मं	दव्वकम्मं
९१	९	त्याग करना	ग्रहण करना
५६	६	ट्ठिदे	ट्ठिदे
,,	८	कवलभेद	कवलभेद-
५९	७	विणव्वदि	वि णव्वदि
६२	५	-विहिदो-	-विरहिदो
७२	११	एगाणेगमवगयं	एगाणेगभवगयं[२]
,,	१२	विचिणादी	विचिणादी[३]
,,	३२	२ प्रतिपु	२ प्रतिपु ' एगाणेगमवगयं ' इति पाठः । ३ प्रतिपु
८०	३०	आर्जव और मुक्ति	आर्जव और सन्तोष
८१	७	उवसंतो	' उवसंतो

पृष्ठ	पंक्ति	अशुद्ध	शुद्ध
८३	५	व्यञ्जन योग-	व्यञ्जन-योग-
८४	,,	णाम तदियसमए	णाम । तदियसमए
८५	३१	द्वितीकादि	द्वितीयादि
८८	११	अप्पायतत्तं	अप्पायतत्तं
,,	३२	× × ×	४ ताप्रतौ ' अप्पायतत्तं ' इति पाठः
८९	१	पदा	पदा-
,,	२२	द्स	इस
९५	४	प्रक्षेपकः	प्रक्षेपक-
,,	७	-मसंभवादो । पंचिंदिय-	-मसंभवादो । [एवमसंजद-किण्ह-णील-काउलेस्सियाणं पि वत्तव्वं ।] पंचिंदिय-
,,	२४	नहीं है । पंचेन्द्रिय	नहीं है । [इसी प्रकार असंयत तथा कृष्ण, नील और कापोत लेश्यावाले जीवोंके भी कहना चाहिये ।] पंचेन्द्रिय
९६	७	-भागेण	-भागे
,,	२१	जगश्रेणिके	जगश्रेणिके
९७	८	सव्ववणफ्फकाइय-	सव्ववणफ्फदिकाइय-
,,	१३	-कम्मपदेदेसु	-कम्मपदेसेसु
९८	५	केवलणाणि-केवल-	केवलणाणि-[जहाक्खादविहारसुद्धिसंजद-] केवल-
,,	२०	केवलज्ञानी और केवल	केवलज्ञानी [यथाख्यातविहारशुद्धिसंयत] और केवल-
९९	६	कवेडि	केवडि
१००	५	सव्वतसदोण्णि । एइंदिएसु	सव्वतसदोण्णि [-सुक्कलेस्सिया] । एइंदिएसु
,,	९	एवं केवल-	एवं [अकसाइ-] केवल-
,,	१६	मनृष्य	मनुष्य
,,	२०	पंचेन्द्रियद्विक और त्रसद्विकके	पंचेन्द्रियद्विक, त्रसद्विक और शुक्ललेश्यावाले जीवोंके
,,	२७	इसी प्रकार केवलज्ञानी, केवल-	इसी प्रकार केवलज्ञानी, अकषायी, केवल-
१०१	५	सव्वददाणं	सव्वपदाणं
१०६	३	तवकम्मस्स	तवोकम्मस्स
१०९	१२	संजमणु-	संजममणु-

पृष्ठ	पंक्ति	अशुद्ध	शुद्ध
११२	१०	-पलिदोवमेमत्त-	-पलिदोवममेत्त-
११५	२	अंतोमुहुत्तद्ध-	अंतोमुहुत्तूणद्ध-
,,	१५-१७	अन्तर्मुहूर्त अधिक	अन्तर्मुहूर्त कम
,,	३३	अप्रतौ...इति पाठः।	अप्रतौ 'अंतोमुहुत्तद्धसागरोवमसादिरेयाणि', आप्रतौ 'अंतोमुहुत्तद्धसागरोवमाणिसादिरेयाणि' का-ताप्रत्योः 'अंतोमुहुत्तद्धसागरोवमेण सादिरेयाणि' इति पाठः।
११९	२	पडुच्च	पडुच्च
१२६	६	जहण्णेण	जहण्णेण
१३९	२	अंतोमुहुत्तेहिं ऊणियाओ	अंतोमुहुत्तेहि [अब्भहियअट्ठवस्सेहि] ऊणियाओ
,,	१७	अन्तर्मुहूर्त कम	अन्तर्मुहूर्त अधिक आठ वर्ष कम
१४५	२९	अन्तर	अनन्तर
१४७	२१	त्रयकायिक	त्रसकायिक
१५१	१२	जहा—णिव्वुइ-	जहा णिव्वुइ-
,,	१४	तोछम्मास-	तो छम्मास-
१६९	१५	समाणा	समाणो
१७२	१३	-वचिजोगि-ओरालिय-	-वचिजोगि- [कायजोगि-] ओरालिय-
,,	१५	सण्णि-	[सम्माइट्ठि-] सण्णि-
,,	३०	औदारिककाययोगी,	[काययोगी,] अदारिककाययोगी,
,,	३१	संज्ञी	[सम्यग्दृष्टि,] संज्ञी
१७३	६	सासणसम्माइट्ठि-मिच्छाइट्ठि-	सासणसम्माइट्ठि-सम्मामिच्छाइट्ठि-मिच्छाइट्ठि
,,	२९	सासादनसम्यग्दृष्टि सब मिथ्यादृष्टि	सासादनसम्यग्दृष्टि, सम्यग्मिथ्यादृष्टि, मिथ्यादृष्टि
,,	३३	'सव्वमिच्छाइट्ठि'	'सासणसम्माइट्ठिसव्वमिच्छाइट्ठि'
१७७	७	-पज्जत्ताणं वत्तव्वं।	-पज्जत्ताणं [तस-तसपज्जत्ताणं] वत्तव्वं।
,,	१०-११	पओअकम्म...... संखेज्जगुणाओ[2]	पओअकम्मदव्वट्ठदा संखेज्जगुणा[2]।
,,	२७-२८	प्रयोगकर्म...संख्यातगुणी हैं।	प्रयोगकर्मकी द्रव्यार्थता संख्यातगुणी है।
,,	३३	का-ताप्रत्योः 'पओअकम्मदव्वट्ठदा संखेज्जगुणा'	×　×　×

पृष्ठ	पंक्ति	अशुद्ध	शुद्ध
१७८	१०	कम्मइय-	[आहार-आहारमिस्सकायजोगीसु पओअ-कम्म-समोदाणकम्म-तवोकम्म- किरियाकम्मदव्वट्ठदाओ चत्तारि वि तुल्लाओ थोवाओ। आधाकम्मदव्वट्ठदा अणंतगुणा ।] कम्मइय-
"	२७	चाहिये । कार्मण-	चाहिये । [आहारक और आहारकमिश्रकाययोगी जीवोंमें प्रयोगकर्म, समवदानकर्म, तपःकर्म और क्रियाकर्मकी द्रव्यार्थतायें चारों ही समान होकर स्तोक हैं । तथा अधःकर्मकी द्रव्यार्थता उनसे अनन्तगुणी है ।] कार्मण-
१८०	२१	समाधानकर्मकी	समवधानकर्मकी
१८९	२	समोदाणकम्म······। किरियाकम्म	समोदाणकम्मं···। किरियाकम्मं-
"	१०	वत्तव्वं । पंचिंदिय	वत्तव्वं । [सव्वएइंदिय-वणप्फदिकाइय-दोअण्णाणि-मिच्छाइट्ठि-असण्णि त्ति एवं चेव वत्तव्वं । णवरि सव्वत्थोवा आधाकम्मदव्वट्ठदा त्ति भाणिदव्वं । किरियाकम्मं णत्थि ।] पंचिंदिय-
"	२९	कहना चाहिये । पंचेन्द्रिय-	कहना चाहिये । [तथा इसी प्रकार सब एकेन्द्रिय, सब वनस्पतिकायिक, दो अज्ञानी, मिथ्यादृष्टि और असंज्ञी जीवोंके कहना चाहिये । इतनी विशेषता है कि इनके अधःकर्मकी द्रव्यार्थता सबसे स्तोक है, ऐसा कहना चाहिये । इनके क्रियाकर्म नहीं है ।] पंचेन्द्रिय
१९२	१३	केवलणाणि-केवल-	केवलणाणि- [जहाक्खादविहारसुद्धि-संजद-] केवल-
"	३१	केवलज्ञानी और	केवलज्ञानी [यथाख्यातविहारशुद्धिसंयत] और
२०६	१	दंसणावरणी-	दंसणावरणीय-

पृष्ठ	पंक्ति	अशुद्ध	शुद्ध
२१२	२२	बातमें	बात हमें
२१३	२४	जो मात्र आत्माके संनिधानसे उत्पन्न	जो आत्मा और अर्थके संनिधान मात्रसे उत्पन्न
२१८	३१	जाने हुए	अवायके द्वारा जाने हुए
२२४	३	सुणेदि, दो	सुणेदि । कुदो[1] ?
२२४	१७	है तो समश्रेणिसे	है, क्योंकि समश्रेणिसे
,,	२३	किन्तु	× × ×
,,	२४	इसलिये अशब्द-पुद्गलरूप शब्दोंका सुनता	किन्तु अशब्द (शब्द पर्यायसे रहित) पुद्गलोंके साथ शब्द-पुद्गलोंको सुनता
,,	३०	१ अ-आ-काप्रतिषु	१ प्रतिषु ' सुणेदि दो ' इति पाठः । २ अ-आ-का-प्रतिषु
२३२	१०	कम्मं	कम्मं[1]
,,	१३	मावाया-	मावाया-[2]
,,	३१	३३. प्रतिषु	३३. २ प्रतिषु
२३३	९	कम्म	कम्मं
,,	११	आवरिणिज्ज-	आवरणिज्ज-
२३५	१	संखावाची	संख्यावाची
२३६	२	ह्स्व-	ह्रस्व-
,,	३	स्थाणो	स्थाणौ
२३८	,,	द्वारेणाणु-	द्वारेणानु-
२४२	१४	अवधीयते	अवदीयते
,,	१५	अवधान	अवदान
२४३	३०	एगट्ठिआः	एगट्ठिआ
२४७	१	देसामासिभाव-	देसामासियभाव-
२४८	४	भवेद्धृस्वो	भवेद्ध्रस्वो
२५०	८	अत्थु-	अत्थ-
२५१	२	-वण्णेसु ण समुदाओ	-वण्णेसु समुदाओ
२६३	८	लद्धिक्खरं	लद्धिअक्खरं
२८१	३२	साड्डुए	सड्डाए
२८८	९	द्वादशांगस्स	द्वादशांगस्य
२९७	४	आदिसुत्तय-	अदिसुत्तय-
२९९	१	जीवट्ठाणदिसु	जीवट्ठाणादिसु

शुद्धि-पत्र

पृष्ठ	पंक्ति	अशुद्ध	शुद्ध
३०१	१२	ओही	ओही[उ]
३०८	,,	पूर्ण चन्द्रके अर्ध	अर्ध और पूर्णचन्द्रके
३२१	८	समखडं	समखंडं
३२४	१३	-जहणो-	-जहण्णो-
३२८	११	पूच्छासुत्तं	पुच्छासुत्तं
३३४	५	-विगोगो	-वियोगो
३४९	१२	-कुंभारदीणं	कुंभारादीणं
३५०	१	चिन्तिदट्ठा	चिंतिदट्ठा
३५३	१४	सकता	सकता।
३५४	२४	संवेदनके	स्वसंवेदनके
३५७	१	सातवेदणीयं	सातवेदनीयं
,,	२	सादावेदाणीयं	सादावेदणीयं
३६४	३	अण्णहा	अण्णहा
३६५	,,	सचरणा-	संचरणा-
३६८	२१	मण्डल	मण्डल।
३७६	६	जहणो-	जहण्णो-
३९१	२८	असुा	असुर



सिरि-भगवंत-पुप्फदंत-भूदबलि-पणीदो

छक्खंडागमो

सिरि-वीरसेणाइरिय-विरइय-धवला-टीका-समण्णिदो

तस्स पंचमे खंडे वग्गणाए

फासाणिओगद्दारं

सयलोवसग्गणिवहा संवरणेणेव जस्स फिट्टंति।
फासस्स तस्स णमिउं फासणियोअं परूवेमो ॥

फासे त्ति ॥ १ ॥

जं तं फासे त्ति अणियोगद्दारं पुव्वमादिट्ठं तस्स अत्थपरूवणं कस्सामो त्ति पुव्वुद्दिट्ठ-अहियारसंभालणमेदेण सुत्तेण कदं।

....

जिसकी आराधना करनेसे ही सब प्रकारके उपसर्गोंके समुदाय नष्ट हो जाते हैं, उस पार्श्व जिनेन्द्रको नमस्कार करके मैं स्पर्श अनुयोगद्वारका निरूपण करता हूं ॥

अब 'स्पर्श अनुयोगद्वार' का प्रकरण है ॥ १ ॥

जो पहले स्पर्श अनुयोगद्वारका निर्देश कर आये हैं उसके अर्थका कथन करते हैं। इस प्रकार इस सूत्रद्वारा पहले कहे गये अधिकारकी सम्हाल की गई है।

विशेषार्थ—पहले सत्प्ररूपणाकी उत्थानिकामें जो कृति, वेदना आदि चौवीस अनुयोगद्वारोंका नाम-निर्देश कर आये हैं, उनमेंसे प्रारम्भके दो अनुयोगद्वारोंका विवेचन हो चुका है। स्पर्श यह तीसरा अनुयोगद्वार क्रमप्राप्त है। इसी बातका ज्ञान करानेके लिये 'फासे त्ति' यह सूत्र आया है, यह उक्त कथनका तात्पर्य है।

पयदं के वा तेरस अत्था त्ति पुच्छिदे तेरसण्णं फाससद्दत्थाणं[1] परूवणं काऊण अपयदत्थे णिराकरिय पयदत्थपरूवणट्ठमागदो ।

तेरसविहे फासणिक्खेवे[2] – णामफासे ठवणफासे दव्वफासे एयखेत्तफासे अणंतरखेत्तफासे देसफासे तयफासे सव्वफासे फासफासे कम्मफासे बंधफासे भवियफासे भावफासे चेदि ॥ ४ ॥

एवं फाससद्दो तेरसेसु अत्थेसु वट्टदे । ण च तेरसेसु चेव अत्थेसु फाससद्दो वट्टदि त्ति अवहारणमत्थि, किंतु फाससद्दत्थाणं दिसादरिसणमेदेण कयं ।

फासणयविभासणदाए ॥ ५ ॥

फासस्स णयविभासणदा फासणयविभासणदा, तीए फासणयविभासणदाए अहियारो[3] त्ति भणिदं होदि । तेरसणिक्खेवे भणिदूण तेसिमट्टमभणिय किमट्ठं फासणयविभासा कीरदे ? ण एस दोसो; णयविभासणदाए विणा णिक्खेवत्थपरूवणाणुववत्तीदो । निश्चये क्षिपतीति निक्षेपो नाम । ण च णयविभासणदाए विणा संसयाणज्झवसायविवज्जासट्ठिय-जीवे तत्तो ओहट्टिदूर्ण[4] णिक्खेवो णिच्छयम्मि ट्ठविदुं समत्थो, अणुवलंभादो । तम्हा पुव्वं

शब्दके तेरह अर्थोंका कथन करके, उनमेंसे अप्रकृत अर्थोंका निराकरण करके प्रकृत अर्थका प्ररूपण करनेके लिये यह स्पर्शनिक्षेप अधिकार आया है ।

स्पर्शनिक्षेप तेरह प्रकारका है—नामस्पर्श, स्थापनास्पर्श, द्रव्यस्पर्श, एकक्षेत्रस्पर्श, अनन्तरक्षेत्रस्पर्श, देशस्पर्श, त्वक्स्पर्श, सर्वस्पर्श, स्पर्शस्पर्श, कर्मस्पर्श, बन्धस्पर्श, भव्य-स्पर्श और भावस्पर्श ॥ ४ ॥

इस प्रकार स्पर्श शब्द तेरह अर्थोंमें उपलब्ध होता है । स्पर्श शब्द इन तेरह अर्थोंमें ही पाया जाता है, ऐसा कोई निश्चय नहीं है; किन्तु इस सूत्र द्वारा स्पर्श शब्दके अर्थोंका मात्र दिशाज्ञान कराया गया है ।

स्पर्शनयविभाषणताका अधिकार है ॥ ५ ॥

स्पर्शका नयद्वारा विशेष व्याख्यान करना स्पर्शनयविभाषणता कहलाता है । उसका यहां अधिकार है, यह उक्त कथनका तात्पर्य है ।

शंका—तेरह प्रकारके निक्षेपोंका निर्देश तो किया, पर उनका अर्थ न कहकर पहले स्पर्शोंका नयद्वारा विशेष व्याख्यान क्यों किया जा रहा है ?

समाधान—यह कोई दोष नहीं है, क्योंकि, नयद्वारा विशेष व्याख्यान किये विना निक्षेपार्थका कथन करना सम्भव नहीं है । निक्षेप शब्दका व्युत्पत्तिलभ्य अर्थ है—'निश्चये क्षिपतीति निक्षेपः' अर्थात् जो किसी एक निश्चयपर पहुँचाता है उसे निक्षेप कहते हैं । परन्तु निक्षेप नयविभाषणता अधिकारका कथन किये विना संशय, अनध्यवसाय और विपर्यय ज्ञानमें स्थित जीवोंको वहांसे हटा कर किसी एक निश्चयमें स्थापित करनेमें समर्थ नहीं है, क्योंकि,

१ अप्रतौ 'फासं सव्वं दव्वाणं', ताप्रतौ 'फाससद्दा (त्था) णं' इति पाठः । २ ताप्रतौ 'तेरसविहो फासणिक्खेवे' इति पाठः । ३ अ-ताप्रत्योः 'अहियादो (रो)' इति पाठः । ४ प्रतिषु 'आयट्टिदूण' इति पाठः।

तत्थ इमाणि सोलस अणियोगद्दाराणि णादव्वाणि भवंति— फासणिक्खेवे फासणयविभासणदाए फासणामविहाणे फासदव्वविहाणे फासखेत्तविहाणे फासकालविहाणे फासभावविहाणे फासपच्चयविहाणे फाससामित्तविहाणे फासफासविहाणे फासगइविहाणे फासअणंतर-विहाणे फाससण्णियासविहाणे फासपरिमाणविहाणे फासभागाभाग-विहाणे फासअप्पाबहुए त्ति ॥ २ ॥

एवमेदे फासाणियोगद्दारस्स सोलस अत्थाहियारा । किमट्ठमेदे सोलस अत्थाहियारा एत्थ पडिवज्जंति ? ण, एदेहि विणा फासाणियोगद्दारस्स अवगमोवायाभावादो । तम्हा सोलसेहि अणियोगद्दारेहि फासपरूवणा कायव्वा त्ति सिद्धं ।

जहा उद्देसो तहा णिद्देसो त्ति णायादो पढमं फासणिक्खेवपरूवणट्ठमुत्तरसुत्तं भणदि—

फासणिक्खेवे त्ति ॥ ३ ॥

पुव्वं जमादिट्ठो फासणिक्खेवो तस्स परूवणं कस्सामो । किमट्ठं फासणिक्खेवो आगदो ? एसो फाससद्दो तेरसेसु अत्थेसु वट्टदे । तत्थ केण अत्थेण पयदं केण वा ण

उसमें ये सोलह अनुयोगद्वार ज्ञातव्य हैं—स्पर्शनिक्षेप, स्पर्शनयविभाषणता, स्पर्शनामविधान, स्पर्शद्रव्यविधान, स्पर्शक्षेत्रविधान, स्पर्शकालविधान, स्पर्शभावविधान, स्पर्शप्रत्ययविधान, स्पर्शस्वामित्वविधान, स्पर्शस्पर्शविधान, स्पर्शगतिविधान, स्पर्श-अनन्तरविधान, स्पर्शसंनिकर्षविधान, स्पर्शपरिमाणविधान, स्पर्शभागाभागविधान और स्पर्शअल्पबहुत्व ॥ २ ॥

इस प्रकार स्पर्श अनुयोगद्वारके ये सोलह अर्थाधिकार होते हैं ।

शंका—यहां ये सोलह अर्थाधिकार क्यों कहे गये हैं ?

समाधान—नहीं, क्योंकि इनके विना स्पर्श अनुयोगद्वारके ज्ञान करानेका अन्य कोई उपाय नहीं है । इसलिये इन सोलह अनुयोगोंके द्वारा स्पर्शका कथन करना चाहिये, यह बात सिद्ध होती है ।

अब 'उद्देशके अनुसार निर्देश किया जाता है' इस न्यायके अनुसार पहले स्पर्शनिक्षेप अधिकारका कथन करनेके लिये आगेका सूत्र कहते हैं—

अब 'स्पर्शनिक्षेप' का अधिकार है ॥ ३ ॥

पहले जिस स्पर्शनिक्षेपका निर्देश कर आये हैं, उसका यहां कथन करते हैं ।

शंका—स्पर्शनिक्षेप अधिकार किसलिये आया है ?

समाधान—यह स्पर्श शब्द तेरह अर्थोंमें विद्यमान है । उनमेंसे प्रकृतमें किस अर्थसे प्रयोजन है और किस अर्थसे प्रयोजन नहीं है, अथवा वे तेरह अर्थ कौन हैं, ऐसा प्रश्न करनेपर स्पर्श

---

१ प्रतिपु 'तं जहा' इति पाठः ।

पयदं के वा तेरस अत्था त्ति पुच्छिदे तेरसण्णं फाससद्दत्थाणं[1] परूवणं काऊण अपयदत्थे णिराकरिय पयदत्थपरूवणट्ठमागदो ।

तेरसविहे फासणिक्खेवे[2]–णामफासे ठवणफासे दव्वफासे एयखेत्तफासे अणंतरखेत्तफासे देसफासे तयफासे सव्वफासे फासफासे कम्मफासे बंधफासे भवियफासे भावफासे चेदि ॥ ४ ॥

एवं फाससद्दो तेरसेसु अत्थेसु वट्टदे । ण च तेरसेसु चेव अत्थेसु फाससद्दो वट्टदि त्ति अवहारणमत्थि, किंतु फाससद्दत्थाणं दिसादरिसणमेदेण कयं ।

फासणयविभासणदाए ॥ ५ ॥

फासस्स णयविभासणदा फासणयविभासणदा, तीए फासणयविभासणदाए अहियारो[3] त्ति भणिदं होदि । तेरसणिक्खेवे भणिदूण तेसिमट्ठमभणिय किमट्ठं फासणयविभासा कीरदे ? ण एस दोसो; णयविभासणदाए विणा णिक्खेवत्थपरूवणाणुववत्तीदो । निश्चये क्षिपतीति निक्षेपो नाम । ण च णयविभासणदाए विणा संसयाणज्झवसायविवज्जासट्ठिय-जीवे तत्तो ओहट्टिदूणं[4] णिक्खेवो णिच्छयम्मि ट्ठविदुं समत्थो, अणुवलंभादो । तम्हा पुव्वं

शब्दके तेरह अर्थोंका कथन करके, उनमेंसे अप्रकृत अर्थोंका निराकरण करके प्रकृत अर्थका प्ररूपण करनेके लिये यह स्पर्शनिक्षेप अधिकार आया है ।

स्पर्शनिक्षेप तेरह प्रकारका है—नामस्पर्श, स्थापनास्पर्श, द्रव्यस्पर्श, एकक्षेत्रस्पर्श, अनन्तरक्षेत्रस्पर्श, देशस्पर्श, त्वक्स्पर्श, सर्वस्पर्श, स्पर्शस्पर्श, कर्मस्पर्श, बन्धस्पर्श, भव्य-स्पर्श और भावस्पर्श ॥ ४ ॥

इस प्रकार स्पर्श शब्द तेरह अर्थोंमें उपलब्ध होता है । स्पर्श शब्द इन तेरह अर्थोंमें ही पाया जाता है, ऐसा कोई निश्चय नहीं है; किन्तु इस सूत्र द्वारा स्पर्श शब्दके अर्थोंका मात्र दिशाज्ञान कराया गया है ।

स्पर्शनयविभाषणताका अधिकार है ॥ ५ ॥

स्पर्शका नयद्वारा विशेष व्याख्यान करना स्पर्शनयविभाषणता कहलाता है । उसका यहां अधिकार है, यह उक्त कथनका तात्पर्य है ।

शंका—तेरह प्रकारके निक्षेपोंका निर्देश तो किया, पर उनका अर्थ न कहकर पहले स्पर्शोंका नयद्वारा विशेष व्याख्यान क्यों किया जा रहा है ?

समाधान—यह कोई दोष नहीं है, क्योंकि, नयद्वारा विशेष व्याख्यान किये विना निक्षेपार्थका कथन करना सम्भव नहीं है । निक्षेप शब्दका व्युत्पत्तिलभ्य अर्थ है—'निश्चये क्षिपतीति निक्षेपः' अर्थात् जो किसी एक निश्चयपर पहुँचाता है उसे निक्षेप कहते हैं । परन्तु निक्षेप नयविभाषणता अधिकारका कथन किये विना संशय, अनध्यवसाय और विपर्यय ज्ञानमें स्थित जीवोंको वहांसे हटा कर किसी एक निश्चयमें स्थापित करनेमें समर्थ नहीं है, क्योंकि,

१ अप्रतौ 'फासं सव्वं दव्वाणं', ताप्रतौ 'फाससद्दद्धा (त्था) णं' इति पाठः । २ ताप्रतौ 'तेरसविहो फासणिक्खेवे' इति पाठः । ३ अ-ताप्रत्योः 'अहियादो (रो)' इति पाठः । ४ प्रतिषु 'आयट्टिदूण' इति पाठः ।

ताव णयविभासणदा कीरदे । उक्तं च—

> प्रमाणनयनिक्षेपै [र्योऽर्थो नाभिसमीक्ष्यते ।
> युक्तं चायुक्तवद्भाति तस्यायुक्तं च] युक्तवत्[1] ॥ १ ॥

को णओ के फासे इच्छदि ? ॥ ६ ॥

के वा णेच्छदि त्ति एत्थ पुच्छा किण्ण कदा ? ण, एदे इच्छदि त्ति अवगदे सेसे ण इच्छदि त्ति उवदेसेण विणा अवगमादो ।

सव्वे एदे फासा बोद्धव्वा होंति णेगमणयस्स ।
णेच्छदि य बंध-भवियं ववहारो संगहणओ य ॥ ७ ॥

एदस्स गाहासुत्तस्स अत्थो उच्चदे । तं जहा – णेगमणयस्स असंगहियस्स एदे तेरस वि फासा होंति त्ति बोद्धव्वा, परिग्गहिदसव्वणयविसयत्तादो । ववहारणओ संगहणओ च बंध-भवियफासे णेच्छंति । एदेहि णएहि किमट्ठं बंधफासो अवणिदो ? ण एस दोसो, कम्मप्फासे तस्स अंतब्भावादो । तं जहा – कम्मफासो दुविहो कम्मफासो णोकम्मफासो चेदि । तेसु दोसु वि बंधफासो पददि; तेहिंतो वदिरित्तबंधाभावादो । अधवा बंधफासो

ऐसा देखा नहीं जाता । इसलिये पहले नयविभाषणता अधिकारका कथन करते हैं । कहा भी है—

जिस पदार्थका प्रत्यक्षादि प्रमाणोंके द्वारा, नैगमादि नयोंके द्वारा और नामादि निक्षेपोंके द्वारा सूक्ष्म दृष्टिसे विचार नहीं किया जाता है, वह पदार्थ युक्त (संगत) होते हुए भी अयुक्तसा (असंगतसा) प्रतीत होता है, और अयुक्त होते हुए भी युक्तसा प्रतीत होता है ॥

कौन नय किन स्पर्शोंको स्वीकार करता है ? ॥ ६ ॥

शंका—यहां ' और किन स्पर्शोंको नहीं स्वीकार करता है ' ऐसी पृच्छा क्यों नहीं की ?

समाधान—नहीं, क्योंकि इन स्पर्शोंको स्वीकार करता है, ऐसा ज्ञान हो जानेपर शेषको नहीं स्वीकार करता, यह उपदेशके विना ही जाना जाता है ।

नैगमनयके ये सब स्पर्श विषय होते हैं, ऐसा जानना चाहिये । किन्तु व्यवहारनय और संग्रहनय बन्धस्पर्श और भव्यस्पर्शको स्वीकार नहीं करते ॥ ७ ॥

इस गाथासूत्रका अर्थ कहते हैं । यथा—असंग्रहिक नैगमनयके ये तेरह ही स्पर्श विषय होते हैं, ऐसा यहां जानना चाहिये, क्योंकि यह नय सब नयोंके विषयोंको स्वीकार करता है । व्यवहारनय और संग्रहनय बन्धस्पर्श और भव्यस्पर्शको नहीं स्वीकार करते ।

शंका—बन्धस्पर्श इन दोनों नयोंका विषय क्यों नहीं है ?

समाधान—यह कोई दोष नहीं है, क्योंकि इन दोनों नयोंकी दृष्टिमें उसका कर्मस्पर्शमें अन्तर्भाव हो जाता है । यथा—कर्मस्पर्श दो प्रकारका है कर्मस्पर्श और नोकर्मस्पर्श । बन्धस्पर्शका उन दोनोंमें ही अन्तर्भाव होता है, क्योंकि इन दोनोंके सिवाय बन्ध नहीं पाया जाता । अथवा बन्धस्पर्श है ही नहीं, क्योंकि, बन्ध और स्पर्श इन दोनों शब्दोंमें अर्थभेद नहीं

---

१ ति. प. १, ८२., वि. भा. २७६४.

णत्थि चेवं; बंध-फाससद्दाणमत्थभेदाभावादो। बंधेण विणा वि लोहग्गीणं फासो दीसदि त्ति भणिदे– ण, संजोग-समवायलक्खणसंबंधेहि विणा फासाणुवलंभादो।

भवियफासो किमट्ठमवणिदो[1]? विस-जंत-कूड-पंजरादीणमिच्छिददव्वेहि संपहि फासो णत्थि त्ति अवणिदो[1]। ण च दोण्णं[2] फासेण विणा फाससण्णा जुज्जदे, विरोहादो। अपुट्ठकाले फासो णत्थि, पुट्ठकाले कम्म-णोकम्म-सव्व-देसफासेसु पविसदि त्ति भवियफासो अवणिदो त्ति दट्ठव्वो। भवियफासो ठवणफासे पविसदि त्ति संगहणओ अवणेदि, सो एसो त्ति अज्झारोवेण विणा संपहि जंतादिसु फासाणुववत्तीदो।

पाया जाता। यदि कहा जाय कि बन्धके विना भी लोह और अग्निका स्पर्श देखा जाता है, इसलिये बन्धसे स्पर्श भिन्न है, सो ऐसा भी कहना ठीक नहीं है; क्योंकि संयोग सम्बन्ध और समवाय सम्बन्धके विना स्पर्श स्वतन्त्ररूपसे नहीं पाया जाता।

विशेषार्थ—यहां यह प्रश्न है कि बन्धस्पर्श संग्रहनय और व्यवहारनयका विषय क्यों नहीं हैं? इस प्रश्नका दो प्रकारसे समाधान किया है। प्रथम तो यह बतलाया है कि बन्धस्पर्शका कर्मस्पर्शमें अन्तर्भाव हो जाता है। कर्मस्पर्शके कर्म और नोकर्म ये दो भेद हैं। लोकमें और आगममें बन्ध शब्द द्वारा इन्हींका ग्रहण होता है, इसलिये बन्धस्पर्शका कर्मस्पर्शमें अन्तर्भाव किया गया है। पर बन्ध शब्दका जो अर्थ है वही अर्थ स्पर्श शब्दसे भी ध्वनित होता है, यह देखकर दूसरा उत्तर यह दिया गया है कि बन्धस्पर्श स्वतन्त्र वस्तु ही नहीं है, इसलिये उसे व्यवहारनय और संग्रहनयका विषय नहीं माना गया है।

शंका—भव्यस्पर्शको उक्त दोनों नयोंका विषय क्यों नहीं कहा है?

समाधान—एक तो विष, यन्त्र, कूट और पिंजरा आदिका विवक्षित द्रव्योंके साथ वर्तमानमें स्पर्श नहीं उपलब्ध होता, इसलिये भव्यस्पर्शको उक्त दोनों नयोंका विषय नहीं कहा है। यदि कहा जाय कि दोका स्पर्श हुए विना भी स्पर्श संज्ञा बन जायगी, सो भी बात नही है; क्योंकि, ऐसा माननेमें विरोध आता है। दूसरे, अस्पृष्ट कालमें स्पर्श है नहीं और स्पृष्टकालमें उसका कर्मस्पर्श, नोकर्मस्पर्श, सर्वस्पर्श और देशस्पर्शमें अन्तर्भाव हो जाता है, इसलिये भी भव्यस्पर्शको व्यवहारनय और संग्रहनयका विषय नहीं माना, ऐसा यहां जानना चाहिये। तथा भव्यस्पर्श स्थापनास्पर्शमें अन्तर्भूत हो जाता है, इसलिये संग्रहनय उसे स्वीकार नहीं करता; क्योंकि 'वह यह है' ऐसा अध्यारोप किये विना वर्तमान कालमें यन्त्रादिकमें स्पर्श-व्यवहार नहीं बन सकता।

विशेषार्थ—भव्यस्पर्शका स्वरूप आगे बतलानेवाले हैं। उससे स्पष्ट है कि भव्यस्पर्शमें वर्तमानकालीन स्पर्श विवक्षित न होकर स्पर्शकी योग्यता ली गई है, और व्यवहारनय तथा संग्रहनय ऐसे स्पर्शको स्वतन्त्ररूपसे ग्रहण नहीं करते; इसलिए यहां भव्यस्पर्श व्यवहारनय और संग्रहनयका विषय नहीं है, यह कहा है।

१ अप्रतौ अभणिदो इति परिवर्तितः पाठः। २ अप्रतौ 'च दोण्णं', ताप्रतौ 'च (ण) दोण्णं' इति पाठः।

एयक्खेत्तमणंतरबंधं भवियं च णेच्छदुज्जुसुदो ।
णामं च फासफासं भावप्फासं च सद्दणओ ॥ ८ ॥

एदस्स गाहासुत्तस्स अत्थो वुच्चदे । तं जहा — क्षियन्ति[1] निवसन्ति यस्मिन्पुद्गलादयस्तत्[2] क्षेत्रमाकाशम् । एकं च तत्क्षेत्रं च एकक्षेत्रमिति व्युत्पत्तिमाश्रित्य जदि एगो आगास-पदेसो घेप्पदि तो एगक्खेत्तफासो णत्थि । कुदो ? अण्णेसिमण्णत्थ अप्पाणं मोत्तूण णि-वासाभावादो, सव्वेसिं पयत्थाणं सरूवे चेव णिविट्ठाणमुवलंभादो च । जो जस्स अप्पोव-लद्धीए कारणं सो तस्स आहारो । इयरो वि तत्थ वसदि त्ति भणिदे[3], ण च आगासादो सेसदव्वाणं सरूवोवलद्धी; णिप्फण्णाणं[4] तत्थावट्ठाणदंसणादो । तदो आगासस्स खेत्तत्ता-भावादो एगक्खेत्तफासो णत्थि । अथ खियंति[5] णिवसंति जम्हि तं खेत्तमिदि जदि सगरूवं चेव घेप्पदि तो वि एगक्खेत्तफासो णत्थि, एगक्खेत्ते एगसरूवे दुभावाभावादो । ण च एक्कम्हि फासो अत्थि; तस्स दुप्पहुडीसु चेव उवलंभादो ।

ऋजुसूत्र एकक्षेत्रस्पर्श, अनन्तरस्पर्श, बन्धस्पर्श और भव्यस्पर्शको स्वीकार नहीं करता । किन्तु शब्दनय नामस्पर्श, स्पर्शस्पर्श और भावस्पर्शको ही स्वीकार करता है ॥ ८ ॥

अब इस गाथासूत्रका अर्थ कहते हैं । यथा— ' क्षि ' धातुका अर्थ ' निवास करना ' है । इसलिये क्षेत्र शब्दका यह अर्थ है कि जिसमें पुद्गल आदि द्रव्य निवास करते हैं उसे क्षेत्र अर्थात् आकाश कहते हैं । एक जो क्षेत्र वह एकक्षेत्र कहलाता है । इस प्रकार इस व्युत्पत्तिका आलम्बन लेकर यदि एक आकाशप्रदेश ग्रहण किया जाता है, तो एक क्षेत्रस्पर्श नहीं बनता; क्योंकि, अन्य द्रव्योंका अपने सिवाय अन्य द्रव्योंमें निवास नहीं पाया जाता, और सभी पदार्थ अपने स्वरूपमें निविष्ट ही उपलब्ध होते हैं । ऐसा नियम है कि जो जिसकी स्वरूपोपलब्धिका कारण होता है वही उसका आधार माना जा सकता है ।

यदि कहा जाय कि इतर पदार्थ भी उसमें निवास करता है तो इसपर हमारा कहना यह है कि आकाश द्रव्यसे शेष द्रव्योंकी स्वरूपोपलब्धि तो होती नहीं, क्योंकि, निष्पन्न पदार्थोंका ही आकाशमें अवस्थान देखा जाता है, इसलिये आकाशको क्षेत्रपना नहीं प्राप्त होनेसे एक-क्षेत्रस्पर्श नहीं बनता ।

जिसमें ' खियंति णिवसंति ' अर्थात् निवास करते हैं वह क्षेत्र है, इस व्युत्पत्तिके अनुसार यदि वस्तुका अपना स्वरूप ही ग्रहण किया जाता है, तो भी एकक्षेत्रस्पर्श नहीं बनता; क्योंकि ऐसा माननेपर एकक्षेत्रका अर्थ होता है एक स्वरूप, और ऐसी अवस्थामें उसमें द्वित्व नहीं बन सकता । यदि कहा जाय कि एकमें भी स्पर्शकी उपलब्धि हो जायगी, सो भी बात नहीं है; क्योंकि, उसकी दो आदि द्रव्योंके रहनेपर ही उपलब्धि होती है ।

१ प्रतिषु ' क्षीयंति ' इति पाठः । २ ताप्रतौ-' सन्त्यस्मिन् ' इति पाठः । ३ अ-काप्रत्योः ' भणदे ' इति पाठः । ४ ताप्रतौ ' णिप्फणाणं ' इति पाठः । ५ प्रतिषु ' खीयंति ' इति पाठः ।

एवमणंतरखेत्तफासो वि णत्थि । कुदो ? खेत्ताभावादो । जदि आगासस्स खेत्तत्तं सिद्धं तो सांतरखेत्त-अणंतरखेत्ताणं पि संभवो होज्ज । ण च वुत्तणाएण आगासस्स खेत्तत्तमत्थि । तदो अणंतरखेत्ताभावादो अणंतरखेत्तफासो वि णत्थि त्ति घेत्तव्वो । खेत्तसद्दे सरूवे वट्टमाणे संते वि णाणंतरक्खेत्तमत्थि; एदमेदस्स अणंतरमिदि वयणपवुत्तीए णिबंधणाभावादो । ण च अच्चंतपुधभूदाणमत्थाणमणंतरमत्थि, विरोहादो । बंधफासो वि णत्थि । कुदो ? बंधो णाम दुभावपरिहारेण एयत्तावत्ती । ण च तत्थ फासो अत्थि; एयत्ते तव्विरोहादो । ण च सव्वफासेण वियहिचारो, तत्थ एगत्तावत्तीए विणा सव्वावयवेहि फासब्भुवगमादो[1] । तहा भवियफासो वि णत्थि; अणुप्पण्णफासपज्जायस्स वट्टमाणकाले अत्थित्तविरोहादो, उप्पण्णस्स विसेसफासेसु अंतब्भावदंसणादो, वट्टमाणकालं मोत्तूण सेसकालाभावादो च । तहा ट्ठवणफासो वि णत्थि; सोयमिदि संकप्पवसेण अण्णस्स अण्णसरूवावत्तीए अभावादो, वट्टमाणकालेण सह ट्ठवणाए विरोहादो च ।

इसी प्रकार अनन्तरक्षेत्रस्पर्श भी नहीं बनता, क्योंकि, क्षेत्र नामकी कोई वस्तु ही नहीं ठहरती । यदि आकाश द्रव्यको क्षेत्रपना सिद्ध हो, तो सान्तरक्षेत्र और अनन्तरक्षेत्र भी सिद्ध हो सकते हैं । परन्तु पूर्वोक्त न्यायसे आकाशके क्षेत्रपना सिद्ध नहीं होता, इसलिये अनन्तर क्षेत्रकी सिद्धि न होनेसे अनन्तरक्षेत्र स्पर्श भी नहीं बनता, ऐसा यहां स्वीकार करना चाहिये ।

यदि स्वरूपार्थमें विद्यमान क्षेत्र शब्द लिया जाता है, तो भी अनन्तरक्षेत्र नहीं बनता, क्योंकि यह इसके अनन्तर है, इस वचनप्रवृत्तिका कोई कारण नहीं पाया जाता । यदि कहा जाय कि अत्यन्त पृथग्भूत पदार्थोंका अन्तर नहीं पाया जाता, सो भी बात नहीं है, क्योंकि, ऐसा माननेमें विरोध आता है ।

बन्धस्पर्श भी नहीं है, क्योंकि द्वित्वका त्यागकर एकत्वकी प्राप्तिका नाम बन्ध है । परन्तु एकत्वके रहते हुए स्पर्श नहीं पाया जाता, क्योंकि एकत्वमें स्पर्शके माननेमें विरोध आता है । यदि कहा जाय कि इस तरह तो सर्वस्पर्शके साथ व्यभिचार हो जायगा, सो भी बात नहीं है; क्योंकि वहांपर एकत्वकी प्राप्तिके विना सब अवयवोंद्वारा स्पर्श स्वीकार किया गया है ।

इसी प्रकार भव्यस्पर्श भी नहीं है, क्योंकि जब स्पर्श पर्याय ही उत्पन्न नहीं हुई तब उसका वर्तमान कालमें सद्भाव माननेमें विरोध आता है । और यदि स्पर्श पर्याय उत्पन्न भी हो गई है, तो उसका शेष स्पर्शोंमें अन्तर्भाव देखा जाता है । दूसरे, वर्तमान कालके सिवाय शेष कालोंका अस्तित्व भी नहीं पाया जाता, इसलिये भी भव्यस्पर्श नहीं बनता ।

इसी प्रकार स्थापना स्पर्श भी नहीं है, क्योंकि 'वह यह है' इस संकल्पके कारण अन्य अन्यस्वरूप नहीं हो सकता, और वर्तमान कालके साथ स्थापना-निक्षेपका विरोध भी है ।

विशेषार्थ—यहां युक्तिपूर्वक यह बतलाया गया है कि ऋजुसूत्र नय एकक्षेत्रस्पर्श, अनन्तरक्षेत्रस्पर्श, बन्धस्पर्श, भव्यस्पर्श और स्थापनास्पर्शको क्यों नहीं स्वीकार करता । सार यह है कि ऋजुसूत्र नयका विषय न तो द्वित्व है और न अतीत अनागत काल है, किन्तु इन

1 अप्रतौ 'पारब्भुवगमादो', ताप्रतौ 'पारंभुवगमादो' इति पाठः ।

सद्दणओ पुण णामफासमिच्छदि, फाससद्देण विणा भावफासपरूवणाए उवाया-भावादो। फासफासं पि इच्छदि; दव्वेण विणा कक्खडादिगुणाणं अण्णेहि गुणेहि सह संबंधदंसणादो। भावफासं पि इच्छदि, णाणेण परिछिज्जमाणकक्खडादिगुणाणमुवलंभादो। अवसेसफासे ण इच्छदि, सगविसए तेसिमभावादो। एवं फासणयविभासणदा समत्ता।

संपहि [णाम-] फासणिक्खेवपरूवणट्ठं उत्तरसुत्तमागदं[1]—

जो सो णामफासो णाम सो जीवस्स वा अजीवस्स वा जीवाणं वा अजीवाणं वा जीवस्स च अजीवस्स च जीवस्स च अजीवाणं च जीवाणं च अजीवस्स च जीवाणं च अजीवाणं च जस्स णाम कीरदि फासे त्ति सो सव्वो णामफासो णाम ॥ ९ ॥

णामस्स आहारभूदा जीवाजीवाणं एगाणेगसंजोगजणिदा अट्ठ चेव भंगा होंति; अण्णेसिमणुवलंभादो। एदेसु अट्ठसु जस्स णामं कीरदि फासे त्ति सो सव्वो फाससद्दो

एकक्षेत्रस्पर्श आदिकी सिद्धिके लिये कहीं तो द्वित्व और कहीं अतीत-अनागत कालको स्वीकार करना पड़ता है; तभी इनका सद्भाव बनता है। यही कारण है कि यहां पर ऋजुसूत्र नयके विषय रूपसे इन पाँचोंको अस्वीकार किया है। यद्यपि गाथासूत्रमें स्थापनास्पर्शका ऋजुसूत्र नयके अविषयरूपसे निर्देश नहीं किया है, किन्तु स्थापनानिक्षेप ऋजुसूत्रनयका विषय न होनेसे स्थापनास्पर्शको ऋजुसूत्रनय नहीं स्वीकार करता, यह अपने आप फलित हो जाता है।

परन्तु शब्द नय तो नामस्पर्शको स्वीकार करता है, क्योंकि स्पर्शशब्दके विना भाव-स्पर्शके कथन करनेका अन्य कोई उपाय नहीं है। वह स्पर्शस्पर्शको भी स्वीकार करता है, क्योंकि द्रव्यके विना कर्कश आदि गुणोंका अन्य गुणोंके साथ सम्बन्ध देखा जाता है। भावस्पर्शको भी वह स्वीकार करता है, क्योंकि, ज्ञानसे जिन कर्कश आदि गुणोंको हम जानते हैं उनका वर्तमान कालमें सद्भाव पाया जाता है।

विशेषार्थ—शब्दनय नामनिक्षेप, द्रव्यनिक्षेप और भावनिक्षेपको विषय करता है, इसीसे यहां उक्त तीन स्पर्श शब्दनयके विषयरूपसे निर्दिष्ट किये गये हैं।

शब्दनय शेष स्पर्शोंको स्वीकार नहीं करता, क्योंकि अपने विषयमें उन स्पर्शोंका अभाव है।

इस प्रकार स्पर्शनयविभाषणताका कथन समाप्त हुआ।

अब नामस्पर्शनिक्षेपका कथन करनेके लिये आगेका सूत्र आया है—

जो वह नामस्पर्श है वह एक जीव, एक अजीव, नाना जीव, नाना अजीव, एक जीव और एक अजीव, एक जीव और नाना अजीव, नाना जीव और एक अजीव, नाना जीव और नाना अजीव, इनमेंसे जिसका स्पर्श ऐसा नाम किया जाता है वह सब नामस्पर्श है ॥ ९ ॥

नामके आधारभूत, जीव और अजीवके एक और अनेकके संयोगसे, आठ ही भंग उत्पन्न होते हैं; अन्य भंग नहीं होते। इन आठोंमें जिसका स्पर्श ऐसा नाम रखा जाता है, वह सब

१ अप्रतौ 'संपहि फासणिक्खेव–', ताप्रतौ 'संपहि [णाम] फासणिक्खेव–' इति पाठः।

णामफासो णाम । कधमेक्कम्हि कम्म-कत्तारभावो जुज्जदे ? ण, सुज्जेन्दु-खज्जोअ-जलण-मणि-णक्खत्तादिसु उभयभावुवलंभादो । एवं णामफासपरूवणा गदा ।

जो सो ठवणफासो णाम सो कट्ठकम्मेसु वा चित्तकम्मेसु वा पोत्तकम्मेसु वा लेप्पकम्मेसु वा लेण्णकम्मेसु वा सेलकम्मेसु वा गिहकम्मेसु वा भित्तिकम्मेसु वा दंतकम्मेसु वा भेंडकम्मेसु वा अक्खो वा वराडओ वा जे चामण्णे एवमादिया ठवणाए ठविज्जदि[1] फासे त्ति सो सव्वो ठवणफासो णाम ॥ १० ॥

कट्ठेसु जाओ पडिमाओ घडिदाओ दुवय-चउप्पय-अपाद-पादसंकुलाणं ताओ कट्ठकम्माणि णाम । एदाओ चेव चउव्विहाओ पडिमाओ कुड्ड-पड-त्थंभादिसु रायवट्टादि-वण्णविसेसेहि चित्तियाओ चित्तकम्माणि णाम । हय-हत्थि-णर-णारि-वय-वग्घादिपडिमाओ वत्थ[2]विसेसेसु उद्दाओ पोत्तकम्माणि णाम । मट्टिया-खडं[3]-सक्करादिलेवेण घडिदाओ पडिमाओ

स्पर्शशब्द नामस्पर्श कहलाता है ।

शंका—एक ही स्पर्श शब्दमें कर्मत्व व कर्तृत्व दोनों कैसे बन सकते हैं ?

समाधान—नहीं, क्योंकि लोकमें सूर्य, चन्द्र, खद्योत, अग्नि, मणि और नक्षत्र आदि ऐसे अनेक पदार्थ हैं जिनमें उभयभाव देखा जाता है । उसी प्रकार प्रकृतमें जानना चाहिये ।

विशेषार्थ—यहां स्पर्श शब्दको अन्य पदार्थका वाचक न मानकर वही उसका वाच्य और वही उसका वाचक माना गया है । इसीपर यह शंका की गई है कि एक ही स्पर्श शब्द एक साथ कर्ता और कर्म दोनों कैसे हो सकता है ? इसका जो समाधान किया है उसका भाव यह है कि जिस प्रकार सूर्य और चन्द्र आदि प्रकाशमान एक एक पदार्थमें युगपत् प्रकाश्य-प्रकाशक-भाव देखा जाता है उसी प्रकार यहां एक स्पर्श शब्दको भी युगपत् कर्ता और कर्म माननेमें कोई बाधा नहीं आती ।

इस प्रकार नाम स्पर्श प्ररूपणा समाप्त हुई ।

जो वह स्थापनास्पर्श है वह काष्ठकर्म, चित्रकर्म, पोतकर्म, लेप्यकर्म, लयनकर्म, शैलकर्म, गृहकर्म, भित्तिकर्म, दन्तकर्म और भेंडकर्म इनमें; तथा अक्ष और वराटक एवं इनको लेकर इसी प्रकार और भी जो एकत्वके संकल्पद्वारा स्थापना अर्थात् बुद्धिमें स्पर्शरूपसे स्थापित किये जाते हैं वह सब स्थापनास्पर्श है ॥ १० ॥

दो पैर, चार पैर, विना पैर और बहुत पैरवाले प्राणियोंकी काष्ठमें जो प्रतिमाएं बनाई जाती हैं उन्हें काष्ठकर्म कहते हैं । जब ये ही चार प्रकारकी प्रतिमाएं भित्ति, वस्त्र और स्तम्भ आदिपर रागवर्त आदि वर्णविशेषोंके द्वारा चित्रित की जाती हैं तब उन्हें चित्रकर्म कहते हैं । घोड़ा, हाथी, मनुष्य, स्त्री, वृक और वाघ आदिकी वस्त्रविशेषमें उकीरीं गई प्रतिमाओंको पोतकर्म कहते हैं ।

१ प. खं. पु. ९ पृ. २४८. २ अ-ताप्रतोः 'वत्थु' इति पाठः । ३ ताप्रत्यो 'स (क) ड' इति पाठः ।

लेप्पंकम्माणि णाम । सिलामयपव्वदेहिंतो अभेदेण घडिदपडिमाओ लेणकम्माणि णाम । पुधभूदसिलासु घडिदपडिमाओ सेलकम्माणि णाम । गोपुराणं सिहरेहिंतो अभेदेण इट्ठ-पत्थरादीहि चिदपडिमाओ गिहकम्माणि णाम । कुड्डेहिंतो अभेदेण कदएहि[1] णिप्पाइय-पडिमाओ भित्तिकम्माणि णाम । हत्थिदंतुक्किण्णपडिमाओ दंतकम्माणि णाम । भेंडमोएण घडिदपडिमाओ भेंडकम्माणि णाम । आदिसद्देण कंस-तंब-रुप्प-सुवण्णादीहि सेक्कारेहि भरिद-पडिमाओ वि घेत्तव्वाओ । एवं सब्भावट्ठवणाए आधारपरूवणा कदा[2] । जूअट्ठवणे जय-पराजयणिमित्तकवड्डओ खुल्लो पासओ वा अक्खो णाम । जो अण्णो कवड्डओ सो वराडओ णाम । एवमेदेहि दोहि वि पदेहि असब्भावट्ठवणविसओ दरिसिदो होदि । पुव्विल्लेहि च पदेहि सब्भावट्ठवणविसओ णिदरिसिदो । 'जे च अमी अण्णे एवमादिया' एदस्स वयणस्स उभयत्थ वि संबंधो कायव्वो अवुत्तसगहट्ठं । ठवणा त्ति वुत्ते मदिविसेसधारणाणाणं घेत्तव्वं । एदेसु पुव्वुत्तेसु सब्भावासब्भावभेएण दुब्भावमावण्णेसु ट्ठवणाए बुद्धीए अमा एयत्तेण जं ठविज्जदि फासे त्ति सो सव्वो ठवणफासो णाम । कधमत्र स्पृश्य-स्पर्शकभावः ?

मिट्टी, खड़िया और वालू आदिके लेपसे जो प्रतिमाएं बनाई जाती हैं उन्हें लेप्यकर्म कहते हैं। शिलास्वरूप पर्वतोंसे अभिन्न जो प्रतिमाएं बनाई जाती हैं उन्हें लयनकर्म कहते हैं। पृथक् पड़ी हुई शिलाओंमें जो प्रतिमाएं बनाई जाती हैं उन्हें शैलकर्म कहते हैं। गोपुरोंके शिखरोंसे अभिन्न ईंट और पत्थर आदिके द्वारा जो प्रतिमाएं चिनी जाती हैं उन्हें गृहकर्म कहते हैं। भित्तिसे अभिन्न तृणोंसे जो प्रतिमाएं बनाई जाती हैं उन्हें भित्तिकर्म कहते हैं। हाथीके दांतमें जो प्रतिमाएं उत्कीर्ण की जाती हैं उन्हें दन्तकर्म कहते हैं। तथा भेंड अर्थात्…से घड़ी गई प्रतिमाओंको भेंडकर्म कहते हैं। आदि शब्दसे कांसा, तांबा, चांदी और सुवर्ण आदि द्वारा साँचेमें ढाली गई प्रतिमाएं भी ग्रहण करनी चाहिये। इस प्रकार सद्भावस्थापनाके आधारका कथन किया। द्यूतकर्मकी स्थापनामें जो जय-पराजयकी निमित्तभूत छोटी कौड़ियां और पांसे होते हैं उन्हें अक्ष कहते हैं और इनके अतिरिक्त कौड़ियोंको वराटक कहते हैं। इस प्रकार इन दोनों पदोंके द्वारा असद्भावस्थापनाका विषय दिखलाया है और पूर्वोक्त पदोंके द्वारा सद्भावस्थापनाका विषय दिखलाया है। सूत्रमें 'जे च अमी अण्णे एवमादिया' यह जो वचन आया है सो अनुक्तका संग्रह करनेके लिये इसका उभयत्र ही सम्बन्ध करना चाहिये। 'स्थापना' ऐसा कहनेपर उससे मतिविशेषरूप धारणाज्ञान ग्रहण करना चाहिये। इन पूर्वोक्त सद्भाव और असद्भावके भेदसे दो प्रकारके पदार्थोंमें स्थापना अर्थात् बुद्धिसे अमा अर्थात् अभेदरूपसे जो स्पर्श ऐसी स्थापना होती है वह सब स्थापनास्पर्श है।

शंका—यहां स्पृश्य-स्पर्शक भाव कैसे हो सकता है?

समाधान—नहीं, क्योंकि बुद्धिसे एकत्वको प्राप्त हुए उनमें स्पृश्य-स्पर्शक भावके होनेमें कोई

1 ताप्रतौ 'कद (ड) एहि' पाठः । 2 ताप्रतौ 'गदा' इति पाठः ।

ण, बुद्धीए एयत्तमावण्णेसु तदविरोहादो सत्त-पमेयत्तादीहि सव्वस्स सव्वविसयफोसणुवलंभादो वा ।

जो सो दव्वफासो णाम ॥ ११ ॥

एदं पुव्वपइज्जासंभालणवयणं । एदस्स अत्थो वुच्चदे त्ति वा जाणावणट्ठमेदं वुच्चदे ।

जं दव्वं दव्वेण पुसदि सो सव्वो दव्वफासो णाम ॥ १२ ॥

तं जहा—परमाणुपोग्गलो सेसपोग्गलदव्वेण पुसदि; पोग्गलदव्वभावेण परमाणुपोग्गलस्स सेसपोग्गलेहि सह एयत्तुवलंभादो । एयपोग्गलदव्वस्स सेसपोग्गलदव्वेहि संजोगो समवाओ वा दव्वफासो णाम । अधवा जीवदव्वस्स पोग्गलदव्वस्स य जो एयत्तेण संबंधो सो दव्वफासो णाम । जीव-पोग्गलदव्वाणममुत्त-मुत्ताणं कधमेयत्तेण संबंधो ? ण एस दोसो, संसारावत्थाए जीवाणममुत्तत्ताभावादो । जदि संसारावत्थाए मुत्तो जीवो, कधं णिव्वुओ

विरोध नहीं आता, अथवा सत्त्व और प्रमेयत्व आदिकी अपेक्षा सबका सर्वविषयक स्पर्शन पाया जाता है ।

विशेषार्थ—स्थापनाके दो भेद हैं सद्भावस्थापना और असद्भावस्थापना । तदाकार स्थापनाको सद्भावस्थापना कहते हैं और अतदाकार स्थापनाको असद्भावस्थापना कहते हैं । जिनमें स्थापना की जाती है वे पदार्थ जुदे होते हैं और जिनकी स्थापना की जाती है वे पदार्थ जुदे होते हैं । प्रकृतमें स्पर्शका विचार चला है, इसलिये प्रश्न है कि स्पर्शसे भिन्न पदार्थोंमें स्पर्श शब्दका व्यवहार कैसे किया जा सकेगा । समाधान यह है कि बुद्धिसे अन्य पदार्थमें स्पर्शका आरोप कर लिया जाता है जिससे उसमें 'यह स्पर्श' है ऐसा व्यवहार बन जाता है । प्रकृतमें इसी दृष्टिसे स्पर्शस्थापनाके दो भेद और उनके विविध उदाहरण उपस्थित किये गये हैं ।

अब द्रव्यस्पर्शका अधिकार है ॥ ११ ॥

यह वचन पूर्व प्रतिज्ञाकी सम्हाल करता है । अथवा आगे 'इसका अर्थ कहते हैं' यह जतलानेके लिये यह वचन कहा है ।

जो एक द्रव्य दूसरे द्रव्यसे स्पर्शको प्राप्त होता है वह सब द्रव्यस्पर्श है ॥ १२ ॥

यथा— परमाणु पुद्गल शेष पुद्गल द्रव्यके साथ स्पर्शको प्राप्त होता है, क्योंकि, पुद्गल द्रव्यरूपसे परमाणु पुद्गलका शेष पुद्गलोंके साथ एकत्व पाया जाता है। एक पुद्गल द्रव्यका शेष पुद्गल द्रव्योंके साथ जो संयोग या समवाय सम्बन्ध होता है वह द्रव्यस्पर्श कहलाता है । अथवा जीव द्रव्य और पुद्गल द्रव्यका जो एकमेक सम्बन्ध होता है वह द्रव्यस्पर्श कहलाता है ।

शंका—जीव द्रव्य अमूर्त है और पुद्गल द्रव्य मूर्त है । इनका एकमेक सम्बन्ध कैसे हो सकता है ?

समाधान—यह कोई दोष नहीं है, क्योंकि संसार अवस्थामें जीवोंके अमूर्तपना नहीं पाया जाता ।

शंका—यदि संसार अवस्थामें जीव मूर्त है तो मुक्त होनेपर वह अमूर्तपनेको कैसे प्राप्त हो सकता है ?

संतो असुत्तत्तमल्लियइ ? ण एस दोसो, जीवस्स मुत्तत्तणिबंधणकम्माभावे तज्जणिदमुत्तत्तस्स वि तत्थ अभावेण सिद्धाणममुत्तभावसिद्धीदो । जीवपोग्गलाणं कधमादिबंधो ? ण, पवाहसरूवेण अणादिबंधणबद्धाणं आदीए अभावादो । ण च कम्मवत्तिबंधं पडि अणादित्तमत्थि, कम्म-विणासाभावेण जीवस्स मरणाभावप्पसंगादो उवजीविदोसहाणं वाहिविणासाभावप्पसंगादो च । ण च पोग्गलाणं जीव-पोग्गलेहि चेव फासो, किंतु आगासादिदव्वेहिं पि फासो अत्थि; णेगमणएण पच्चासत्तिदंसणादो[1] । कधं दव्वस्स फाससण्णा ? ण, स्पृश्यते अनेन स्पृशतीति[2] वा स्पर्श-शब्दसिद्धेर्द्रव्यस्य स्पर्शत्वोपपत्तेः । सत्त-पमेयत्तादिणा सरिसाणं दव्वाणं छण्णं पि दव्वफासो णइगमणयमस्सिदूण अत्थि त्ति एगादिसंजोगेहि भंगपमाणुप्पत्तिं वत्तइस्सामो । तं जहा— जीवदव्वं जीवदव्वेण पुस्सिज्जदि, अणंताणं णिगोदाणमेगणिगोदसरीरे समवेदाणमवट्ठाणाणुवलंभादो जीवभावेण एयत्तदंसणादो वा । १ । पोग्गलदव्वं पोग्गल-दव्वेण पुस्सिज्जदि, अणंताणं पोग्गलदव्वपरमाणूणं समवेदाणमुवलंभादो पोग्गलभावेण

समाधान—यह कोई दोष नहीं है, क्योंकि जीवमें मूर्तत्वका कारण कर्म है, अतः कर्मका अभाव हो जानेपर तज्जनित मूर्तत्वका भी अभाव हो जाता और इसलिये सिद्ध जीवोंके अमूर्त-पनेकी सिद्धि हो जाती है ।

शंका—जीव और पुद्गलोंका आदि बन्ध कैसे है ?

समाधान–नहीं, क्योंकि प्रवाहरूपसे जीव और पुद्गल अनादि बन्धन बद्ध हैं, अतः उसका आदि नहीं बनता । पर इसका अर्थ यह नहीं कि कर्मव्यक्तिरूप बन्धकी अपेक्षा वह अनादि है, क्योंकि, ऐसा माननेपर कर्मका कभी नाश नहीं होनेसे जीवके मरणके अभावका प्रसंग आता है और उपजीवी औषधियोंके निमित्तसे व्याधिविनाशके अभावका प्रसंग प्राप्त होता है ।

पुद्गलोंका जीव और पुद्गलोंके साथ ही स्पर्श नहीं पाया जाता, किन्तु आकाश आदि द्रव्योंके साथ भी उनका स्पर्श पाया जाता है; क्योंकि नैगम नयकी अपेक्षा इनकी प्रत्यासत्ति देखी जाती है ।

शंका—द्रव्यकी स्पर्श संज्ञा कैसे है ?

समाधान—नहीं, क्योंकि 'जिसके द्वारा स्पर्श किया जाता है या जो स्पर्श करता है' इस व्युत्पत्तिके अनुसार स्पर्श शब्दकी सिद्धि होनेसे द्रव्यकी स्पर्श संज्ञा बन जाती है ।

सत्त्व और प्रमेयत्व आदिकी अपेक्षा सदृश ऐसे छहों द्रव्योंके भी द्रव्यस्पर्श नैगम नयकी अपेक्षा पाया जाता है, इसलिये एक आदि संयोगोंकी अपेक्षा जितने भंग उत्पन्न होते हैं उन्हें बतलाते हैं । यथा—एक जीव दूसरे जीव द्रव्यके द्वारा स्पर्शको प्राप्त होता है, क्योंकि, एक निगोदशरीरमें समवेत अनन्त निगोद जीवोंका अवस्थान पाया जाता है; अथवा जीवरूपसे उन सबमें एकत्व देखा जाता है । १ । एक पुद्गल द्रव्य दूसरे पुद्गल द्रव्यके द्वारा स्पर्शको प्राप्त होता है, क्योंकि, समवेत अनन्त पुद्गल परमाणु पाये जाते हैं; अथवा पुद्गल रूपसे

१ ताप्रतौ 'णेगमणयपच्चासत्तिदंसणादो' इति पाठः । २ ताप्रतौ 'स्पृश्यतीति' इति पाठः ।

एयत्तदंसणादो वा । २ । धम्मदव्वं धम्मदव्वेण पुसिज्जदि, असंगहियणेगमणयमस्सिदूण लोगागासपदेसमेत्तधम्मदव्वपदेसाणं पुध पुध लद्धदव्ववएसाणमण्णोण्णं पासुवलंभादो । ३ । अधम्मदव्वमधम्मदव्वेण पुसिज्जदि, तक्खंध-देस-पदेस-परमाणूणमसंगहियणेगमणएण पत्तदव्वभावाणमेयत्तदंसणादो । ४ । कालदव्वं कालदव्वेण पुसिज्जदि, लोगागासपदेसमेत्तकालपरमाणूणं एगक्खेत्तठइदंमुत्ताहलाणं व समवायवज्जियाणं कालभावेण एयत्तुवलंभादो एगलोगागासावट्ठाणेण एयत्तदंसणादो वा । ५ । आगासदव्वमागासदव्वेण पुसिज्जदि, आगासक्खंध-देस-पदेस-परमाणूणं णेगमणएण पुध पुध लद्धदव्वभावाणं अण्णोण्णफासुवलंभादो । ६ । एत्थुवउज्जंतीओ गाहाओ—

लोगागासपदेसे एक्केक्के जे ट्ठिया हु एक्केक्का ।
रयणाणं रासी इव ते कालाणू मुणेयव्वा ॥ २ ॥
खंधं सयलसमत्थं तस्स दु अद्धं भणंति देसो त्ति ।
अद्धद्धं च पदेसो अविभागी जो स परमाणू ॥ ३ ॥

संपहि दुसंजोगेण दव्वभंगुप्पत्ती कीरदे । तं जहा— जीवदव्वेण पोग्गलदव्वं पुसिज्जदि; जीवदव्वस्स अणंताणंतकम्म-णोकम्मपोग्गलक्खंधेहि एयत्तदंसणादो । ७ । जीव-धम्मदव्वाण-

उनमें एकत्व देखा जाता है । २ । धर्म द्रव्य धर्म द्रव्यके द्वारा स्पर्शको प्राप्त होता है, क्योंकि असंग्रहिक नैगम नयकी अपेक्षा लोकाकाशके प्रदेश प्रमाण और पृथक् पृथक् द्रव्य संज्ञाको प्राप्त हुए धर्म द्रव्यके प्रदेशोंका परस्परमें स्पर्श देखा जाता है । ३ । अधर्म द्रव्य अधर्म द्रव्यके द्वारा स्पर्शको प्राप्त होता है, क्योंकि असंग्रहिक नैगमनयकी अपेक्षा द्रव्यभावको प्राप्त हुए अधर्म द्रव्यके स्कन्ध, देश, प्रदेश और परमाणुओंका एकत्व देखा जाता है । ४ । काल द्रव्य काल द्रव्यके द्वारा स्पर्शको प्राप्त होता है, क्योंकि एक क्षेत्रमें स्थापित मुक्ताफलोंके समान समवायसे रहित लोकाकाशके प्रदेश प्रमाण कालपरमाणुओंका कालरूपसे एकत्व देखा जाता है; अथवा एक लोकाकाशमें अवस्थान होनेसे उनमें एकत्व देखा जाता है । ५ । आकाश द्रव्य आकाश द्रव्यके द्वारा स्पर्शको प्राप्त हो रहा है, क्योंकि नैगम नयकी अपेक्षा पृथक् पृथक् द्रव्यभावको प्राप्त हुए आकाशके स्कन्ध, देश, प्रदेश और परमाणुओंका परस्पर स्पर्श देखा जाता है । ६ । प्रकृतमें उपयुक्त गाथाएं—

लोकाकाशके एक एक प्रदेशपर रत्नोंकी राशिके समान जो एक एक स्थित हैं वे कालाणु हैं, ऐसा जानना चाहिये ॥ २ ॥

जो सर्वांशमें समर्थ है उसे स्कन्ध कहते हैं । उसके आधेको देश और आधेके आधेको प्रदेश कहते हैं । तथा जो अविभागी है उसे परमाणु कहते हैं ॥ ३ ॥

अब द्विसंयोगकी अपेक्षा द्रव्यके भंगोंकी उत्पत्तिका कथन करते हैं । यथा— जीव द्रव्यके द्वारा पुद्गल द्रव्य स्पर्श किया जाता है, क्योंकि जीव द्रव्यका अनन्तान्त कर्म व नोकर्मरूप पुद्गलस्कन्धोंके साथ एकत्व देखा जाता है । ७ । जीवद्रव्य और धर्मद्रव्यका परस्परमें स्पर्श है, क्योंकि, सत्त्व

१ अ-ताप्रत्योः 'एगक्खेत्तं रइद' इति पाठः । २ गो. जी. ५८८. ३ पंचा. ७५, मूला. १३१, ति. प. १-९५, गो. जी. ६०३.

मत्थि फासो, सत्त-पमेयत्तादीहि लोगमेत्तावट्ठाणेण एयत्तदंसणादो ।८। जीव-अधम्म-दव्वाणमत्थि फासो। कारणं पुव्वं व वत्तव्वं ।९। जीव-कालदव्वाणमत्थि फासो। कारणं सुगमं ।१०। जीवागासदव्वाणमत्थि फासो। कारणं सुगमं ।११। पोग्गल-धम्म-दव्वाणमत्थि फासो ।१२। पोग्गल-अधम्मदव्वाणमत्थि फासो ।१३। पोग्गल-काल-दव्वाणमत्थि फासो ।१४। पोग्गल-आगासदव्वाणमत्थि फासो ।१५। धम्माधम्म-दव्वाणमत्थि फासो ।१६। धम्म-कालदव्वाणमत्थि फासो ।१७। धम्मागासदव्वा-णमत्थि फासो ।१८। अधम्म-कालाणमत्थि फासो ।१९। अधम्मागासाणमत्थि फासो ।२०। कालागासाणमत्थि फासो ।२१। जीव-पोग्गल-धम्मदव्वाणमत्थि फासो ।२२। जीव-पोग्गल-अधम्मदव्वाणमत्थि फासो ।२३। जीवपोग्गलकालदव्वाणमत्थि फासो ।२४। जीवपोग्गलागासदव्वाणमत्थि फासो ।२५। जीवधम्माधम्मदव्वाणत्थि फासो ।२६। जीवधम्मकालदव्वाणमत्थि फासो ।२७। जीवधम्मागासदव्वाणमत्थि फासो ।२८। जीवअधम्मकालदव्वाणमत्थि फासो ।२९। जीवअधम्मागासदव्वाणमत्थि फासो ।३०। जीवकालागासदव्वाणमत्थि फासो ।३१। पोग्गलधम्माधम्मदव्वाणमत्थि फासो ।३२। पोग्गलधम्मकालदव्वाणमत्थि फासो ।३३। पोग्गलधम्मागासदव्वाणमत्थि फासो ।३४। पोग्गलअधम्मकालदव्वाणमत्थि फासो ।३५। पोग्गलअधम्मागासदव्वाणमत्थि फासो ।३६। पोग्गलकालागासदव्वाणमत्थि फासो ।३७। धम्माधम्मकालदव्वाणमत्थि फासो

व प्रमेयत्व आदि धर्मोंकी अपेक्षा और लोकमात्र अवस्थानकी अपेक्षा इनका एकत्व देखा जाता है ।८। जीव और अधर्म द्रव्यका परस्परमें स्पर्श है। कारण पहलेके समान कहना चाहिये।९। जीव और काल द्रव्यका स्पर्श है। कारण सुगम है।१०। जीव और आकाश द्रव्यका स्पर्श है। कारण सुगम है।११। पुद्गल और धर्म द्रव्यका स्पर्श है ।१२। पुद्गल और अधर्म द्रव्यका स्पर्श है। १३। पुद्गल और काल द्रव्यका स्पर्श है।१४। पुद्गल और आकाश द्रव्यका स्पर्श है।१५। धर्म और अधर्म द्रव्यका स्पर्श है।१६। धर्म और काल द्रव्यका स्पर्श है।१७। धर्म और आकाश द्रव्यका स्पर्श है ।१८। अधर्म और काल द्रव्यका स्पर्श है ।१९। अधर्म और आकाश द्रव्यका स्पर्श है ।२०। काल और आकाश द्रव्यका स्पर्श है ।२१। जीव, पुद्गल और धर्म द्रव्यका स्पर्श है।२२। जीव, पुद्गल और अधर्म द्रव्यका स्पर्श है।२३। जीव, पुद्गल और काल द्रव्यका स्पर्श है।२४। जीव, पुद्गल और आकाश द्रव्यका स्पर्श है।२५। जीव, धर्म और अधर्म द्रव्यका स्पर्श है।२६। जीव, धर्म और काल द्रव्यका स्पर्श है।२७। जीव, धर्म और आकाश द्रव्यका स्पर्श है।२८। जीव, अधर्म और काल द्रव्यका स्पर्श है।२९। जीव, अधर्म और आकाश द्रव्यका स्पर्श है।३०। जीव, काल और आकाश द्रव्यका स्पर्श है।३१। पुद्गल, धर्म और अधर्म द्रव्यका स्पर्श है।३२। पुद्गल, धर्म और काल द्रव्यका स्पर्श है।३३। पुद्गल, धर्म और आकाश द्रव्यका स्पर्श है।३४। पुद्गल, अधर्म और काल द्रव्यका स्पर्श है।३५। पुद्गल, अधर्म और आकाश द्रव्यका स्पर्श है।३६। पुद्गल, काल और आकाश द्रव्यका स्पर्श है।३७। धर्म, अधर्म और काल द्रव्यका स्पर्श है।३८।

। ३८ । धम्माधम्मागासदव्वाणमत्थि फासो । ३९ । धम्मकालागासदव्वाणमत्थि फासो । ४० । अधम्मकालागासदव्वाणमत्थि फासो । ४१ । जीव-पोग्गल-धम्माधम्मदव्वाणमत्थि फासो । ४२ । जीवपोग्गलधम्मकालदव्वाणमत्थि फासो । ४३ । जीवपोग्गलधम्मागास-दव्वाणमत्थि फासो । ४४ । जीवपोग्गलअधम्मकालदव्वाणमत्थि फासो । ४५ । जीवपोग्गल-धम्मागासदव्वाणमत्थि फासो । ४६ । जीवपोग्गलकालागासदव्वाणमत्थि फासो । ४७ । जीवधम्माधम्मकालदव्वाणमत्थि फासो । ४८ । जीवधम्माधम्मागासदव्वाणमत्थि फासो । ४९ । जीवधम्मकालागासदव्वाणमत्थि फासो । ५० । जीवअधम्मकालागासदव्वाणमत्थि फासो । ५१ । पोग्गलधम्माधम्मकालदव्वाणमत्थि फासो । ५२ । पोग्गलधम्माधम्मागास-दव्वाणमत्थि फासो । ५३ । पोग्गलधम्मकालागासदव्वाणमत्थि फासो । ५४ । पोग्गल-अधम्मकालागासदव्वाणमत्थि फासो । ५५ । धम्माधम्मकालागासदव्वाणमत्थि फासो । ५६ । जीवपोग्गलधम्माधम्मकालदव्वाणमत्थि फासो । ५७ । जीवपोग्गलधम्माधम्मआगासदव्वाण-मत्थि फासो । ५८ । जीव-पोग्गल-धम्म-कालागासदव्वाणमत्थि फासो । ५९ । जीवपोग्गल-अधम्मकालागासदव्वाणमत्थि फासो । ६० । जीवधम्माधम्मकालागासदव्वाणमत्थि फासो । ६१ । पोग्गलधम्माधम्मकालागासदव्वाणमत्थि फासो । ६२ । जीवपोग्गलधम्माधम्म-कालागासदव्वाणमत्थि फासो । ६३ । एवं तेसट्ठिदव्वफासवियप्पा सकारणा वत्तव्वा । एत्थुव-उज्जंती गाहा—

धर्म, अधर्म और आकाश द्रव्यका स्पर्श है । ३९ । धर्म, काल और आकाश द्रव्यका स्पर्श है । ४० । अधर्म, काल और आकाश द्रव्यका स्पर्श है । ४१ । जीव, पुद्गल, धर्म और अधर्म द्रव्यका स्पर्श है । ४२ । जीव, अधर्म, काल पुद्गल, धर्म और काल द्रव्यका स्पर्श है । ४३ । जीव, पुद्गल, धर्म और आकाश द्रव्यका स्पर्श है । ४४ । जीव, पुद्गल, अधर्म और काल द्रव्यका स्पर्श है । ४५ । जीव, पुद्गल, धर्म और आकाश द्रव्यका स्पर्श है । ४६ । जीव, पुद्गल, काल और आकाश द्रव्यका स्पर्श है । ४७ । जीव, धर्म, अधर्म और काल द्रव्यका स्पर्श है । ४८ । जीव, धर्म, अधर्म और आकाश द्रव्यका स्पर्श है । ४९ । जीव, धर्म, काल और आकाश द्रव्यका स्पर्श है । ५० । जीव, अधर्म, काल और आकाश द्रव्यका स्पर्श है । ५१ । पुद्गल, धर्म, अधर्म और काल द्रव्यका स्पर्श है । ५२ । पुद्गल, धर्म, अधर्म और आकाश द्रव्यका स्पर्श है । ५३ । पुद्गल, धर्म, काल और आकाश द्रव्यका स्पर्श है । ५४ । पुद्गल, अधर्म, काल और आकाश द्रव्यका स्पर्श है । ५५ । धर्म, अधर्म, काल और आकाश द्रव्यका स्पर्श है । ५६ । जीव, पुद्गल, धर्म, अधर्म और काल द्रव्यका स्पर्श है । ५७ । जीव, पुद्गल, धर्म, अधर्म और आकाश द्रव्यका स्पर्श है । ५८ । जीव पुद्गल, धर्म, काल और आकाश द्रव्य स्पर्श है । ५९ । जीव, पुद्गल, अधर्म, काल और आकाश द्रव्यका स्पर्श है । ६० । जीव, धर्म, अधर्म, काल और आकाश द्रव्यका स्पर्श है । ६१ । पुद्गल, धर्म, अधर्म, काल और आकाश द्रव्यका स्पर्श है । ६२ । जीव, पुद्गल, धर्म, अधर्म, काल और आका द्रव्यका स्पर्श है । ६३ । इस प्रकार द्रव्यस्पर्शके त्रेसठ विकल्प सकारण कहने चाहिये। यहां उपयोगी पड़नेवाली गाथा—

सत्ता सव्वपयत्था सविस्सरूवा अणंतपज्जाया ।
भंगुप्पायधुवत्ता सप्पडिवक्खा हवइ एक्का[1] ॥ ४ ॥

एवं दव्वफासपरूवणा गदा ।

जो सो एयक्खेत्तफासो णाम ॥ १३ ॥

तस्स अत्थपरूवणा कीरदि त्ति भणिदं होदि ।

जं दव्वमेयक्खेत्तेण पुसदि सो दव्वो एयक्खेत्तफासो णाम ॥ १४ ॥

एक्कम्हि आगासपदेसे ट्ठिदअणंताणंतपोग्गलक्खंधाणं समवाएण संजोएण वा जो फासो सो एयक्खेत्तफासो णाम । बहुआणं दव्वाणं अक्कमेण एयक्खेत्तपुसणदुवारेण वा एयक्खेत्तफासो वत्तव्वो ।

सत्ता सब पदार्थोंमें स्थित है, सविश्वरूप है, अनन्त पर्यायवाली है; नाश, उत्पाद और ध्रौव्यस्वरूप है; तथा सप्रतिपक्ष होकर भी एक है ॥ ४ ॥

विशेषार्थ—यहां द्रव्योंके स्पर्शके भेद और उनके कारणोंकी विस्तृत चर्चा की गई है । सब द्रव्योंके दो प्रकारका सम्बन्ध दिखलाई देता है— एक अनादि सम्बन्ध और दूसरा सादि सम्बन्ध । धर्म, आदि चार द्रव्योंके साथ जीव और पुद्गलका तथा उनका परस्परमें आनादि सम्बन्ध है । तथा जीव जीवका, जीव पुद्गलका और पुद्गल पुद्गलका दोनों प्रकारका सम्बन्ध देखा जाता है । प्रकृतमें स्पर्श शब्दकी व्याख्या है—जिसके द्वारा स्पर्श किया जाता है या जो स्पर्श करता है । इस व्याख्यानके अनुसार सभी द्रव्योंका परस्परमें स्पर्शभाव बन जाता है । बन्धविशेषकी अपेक्षा जीव जीवके साथ, जीव पुद्गलके साथ और पुद्गल पुद्गलके साथ परस्पर संश्लेषको प्राप्त होते रहते हैं इसलिये इनका तो स्पर्श है ही; किन्तु सत्त्व, प्रमेयत्व आदि धर्मोंकी अपेक्षा इनका अन्य द्रव्योंके साथ और अन्य द्रव्योंका परस्परमें स्पर्श बन जाता है । नयविशेषकी दृष्टिसे यह योजना की गई है जिसका खुलासा मूलमें किया ही है । इस प्रकार छह द्रव्योंके स्वसंयोगी, द्विसंयोगी आदिकी अपेक्षा कुल भंग ६३ होते हैं । स्वसंयोगी ६, द्विसंयोगी १५, त्रिसंयोगी २०, चतुःसंयोगी १५, पंचसंयोगी ६ और षट्संयोगी १; कुल ६३ भंग होते हैं । इनका स्पष्टीकरण मूलमें किया ही है ।

इस प्रकार द्रव्यस्पर्शका कथन समाप्त हुआ ।

अब एकक्षेत्रस्पर्शका अधिकार है ॥ १३ ॥

इसकी अर्थप्ररूपणा करते हैं, यह उक्त कथनका तात्पर्य है ।

जो द्रव्य एक क्षेत्रके साथ स्पर्श करता है वह द्रव्य एकक्षेत्रस्पर्श है ॥ १४ ॥

एक आकाशप्रदेशमें स्थित अनन्तानन्त पुद्गल स्कन्धोंका समवाय सम्बन्ध या संयोग सम्बन्धद्वारा जो स्पर्श होता है वह एकक्षेत्रस्पर्श कहलाता है । अथवा बहुत द्रव्योंका युगपत् एकक्षेत्रके स्पर्शनद्वारा एकक्षेत्रस्पर्श कहना चाहिये ।

---

१ पंचा. ८, प. खं. पु. ९ पृ. १७१.

जो सो अणंतरक्खेत्तफासो णाम ॥ १५ ॥

तस्स पुव्वुद्दिट्ठस्स अत्थो वुच्चदे—

जं दव्वमणंतरक्खेत्तेण पुसदि सो सव्वो अणंतरक्खेत्तफासो णाम ॥ १६ ॥

किमणंतरक्खेत्तं णाम ? एगागासपदेसक्खेत्तं पेक्खिऊण अणेगागासपदेसक्खेत्तमणंतरं होदि, एगाणेगसंखाणमंतरे अण्णसंखाभावादो । दुपदेसट्ठिददव्वाणमण्णेहि दोआगासपदेसट्ठिदव्वेहि जो फासो सो अणंतरक्खेत्तफासो णाम । दुपदेसट्ठियखंधाणं तिपदेसट्ठियखंधाणं च जो फासो सो वि अणंतरक्खेत्तफासो । एवं चदु-पंचादिपदेसट्ठियखंधेहि दुसंजोगपरूवणाए बिदियक्खो संचारेदव्वो जाव देसूणलोयट्ठियमहक्खंधे त्ति । एदेण कमेण सव्वे दुसंजोगभंगे जहासंभवे परूविय तिसंजोगादिभंगा वि परूवेदव्वा । अधवा पुव्विल्लसुत्तट्ठियएगसद्दो संखाए वट्टमाणो त्ति ण वत्तव्वो, किंतु समाणत्थे वट्टदे । एवं संते समाणोगाहणखंधाणं[1] जो फासो सो एयक्खेत्तफासो णाम । असमाणोगाहणखंधाणं जो फासो सो

विशेषार्थ—यहां एकक्षेत्रस्पर्शका विचार किया गया है । एकक्षेत्रस्पर्शमें एक शब्द क्षेत्रका विशेषण है । तदनुसार यह अर्थ फलित होता है कि विवक्षित एक आकाशके प्रदेशके साथ अनन्तानन्त पुद्गल स्कन्धोंका या अनेक द्रव्योंका युगपत् जो स्पर्श होता है वह एकक्षेत्रस्पर्श कहलाता है ।

अब अनन्तरक्षेत्रस्पर्शका अधिकार है ॥ १५ ॥

इस पूर्वोक्त स्पर्शका अर्थ कहते हैं—

जो द्रव्य अनन्तर क्षेत्रके साथ स्पर्श करता है वह सब अनन्तरक्षेत्रस्पर्श है ॥ १६ ॥

शंका—अनन्तर क्षेत्र किसे कहते हैं ?

समाधान—एक आकाशप्रदेशरूप क्षेत्रको देखते हुए अनेक आकाशप्रदेशरूप क्षेत्र अनन्तरक्षेत्र है, क्योंकि, एक और अनेक संख्याके मध्यमें अन्य संख्या नहीं उपलब्ध होती ।

दो प्रदेशोंमें स्थित द्रव्योंका दो आकाशके प्रदेशोंमें स्थित अन्य द्रव्योंके साथ जो स्पर्श होता है वह अनन्तरक्षेत्रस्पर्श है । दो प्रदेशोंमें स्थित स्कन्धोंका और तीन प्रदेशोंमें स्थित स्कन्धोंका जो स्पर्श होता है वह भी अनन्तरक्षेत्रस्पर्श है । इसी प्रकार चार, पांच आदि प्रदेशोंमें स्थित स्कन्धोंके साथ दो संयोगका कथन करते समय कुछ कम लोकमें स्थित महास्कन्धके प्राप्त होने तक द्वितीय अक्षका संचार करना चाहिये । इस क्रमसे सभी द्विसंयोगी भंगोंका यथासम्भव कथन करके तीनसंयोगी आदि भंगोंका भी कथन करना चाहिये ।

अथवा पूर्वोक्त सूत्रमें स्थित जो ' एक ' शब्द है वह संख्यावाची है, ऐसा नहीं कहना चाहिये; किन्तु समानार्थवाची है, ऐसा कहना चाहिये । इस स्थितिमें समान अवगाहनावाले स्कन्धोंका जो स्पर्श होता है वह एकक्षेत्रस्पर्श है और असमान अवगाहनावाले स्कन्धोंका जो स्पर्श होता है वह अनन्तरक्षेत्रस्पर्श है ।

[1] ताप्रतौ ' समाणोगाहणाखंधाणं ' इति पाठः ।

अणंतरखेत्तफासो णाम । कधमणंतरत्तं ? समाणासमाणक्खेताणमंतरे खेत्तंतराभावादो । एवमणंतरखेत्तफासपरूवणा गदा ।

जो सो देसफासो णाम ॥ १७ ॥

तस्स अत्थपरूवणा कीरदे—

जं दव्वदेसं[1] देसेण पुसदि सो सव्वो देसफासो णाम ॥ १८ ॥

एगस्स दव्वस्स देसं अवयवं जदि [देसेण] अण्णदव्वदेसेणं[2] अप्पणो अवयवेण पुसदि तो देसफासो त्ति दट्ठव्वो । एसो देसफासो खंधावयवाणं चेव होदि, ण परमाणुपोग्गलाणं; णिरवयवत्तादो त्ति ण पच्चवट्ठेयं, परमाणूणं णिरवयवत्तासिद्धीदो । 'अपदेसं णेव इंदिए गेज्झं'[3] इदि परमाणूणं णिरवयवत्तं परियम्मे वुत्तमिदि णासंकणिज्जं[4], पदेसो णाम परमाणू, सो जम्हि परमाणुम्हि समवेदभावेण णत्थि सो परमाणू अपदेसओ त्ति परियम्मे वुत्तो । तेण ण णिरवयवत्तं तत्तो गम्मदे । परमाणू सावयवो त्ति कतो णव्वदे ? खंधभावण्णहाणुववत्तीदो । जदि

शंका—इसे अनन्तरपना कैसे प्राप्त होता है ?

समाधान—क्योंकि समान और असमान क्षेत्रोंके मध्यमें अन्य क्षेत्र नहीं उपलब्ध होता, इसलिये इसे अनन्तरपना प्राप्त है ।

विशेषार्थ—अनन्तर शब्द सापेक्ष है । पहले एक क्षेत्रका विवेचन कर आये हैं । उसके सिवा शेष सब क्षेत्र अनन्तर क्षेत्र कहलाता है । और इन क्षेत्रोंमें स्थित स्कन्धका स्पर्श अनन्तरक्षेत्र-स्पर्श कहा जाता है । यदि एकका अर्थ समान किया जाता है तो अनन्तरक्षेत्रस्पर्शका अर्थ असमान अवगाहनावाले स्कन्धोंका स्पर्श फलित होता है ।

इस प्रकार अनन्तरक्षेत्रस्पर्श प्ररूपणा समाप्त हुई ।

अब देशस्पर्शका अधिकार है ॥ १७ ॥

उसके अर्थका विवेचन करते हैं—

जो द्रव्य एक देशरूपसे स्पर्श करता है वह सब देशस्पर्श है ॥ १८ ॥

एक द्रव्यका देश अर्थात् अवयव यदि अन्य द्रव्यके देश अर्थात् उसके अवयवके साथ स्पर्श करता है तो वह देशस्पर्श जानना चाहिये । यह देशस्पर्श स्कन्धोंके अवयवोंका ही होता है, परमाणुरूप पुद्गलोंका नहीं; क्योंकि वे निरवयव होते हैं । यदि कोई ऐसा निश्चय करे तो वह ठीक नहीं है, क्योंकि परमाणु निरवयव होते हैं, यह बात असिद्ध है ।

'परमाणु अप्रदेशी होता है और उसका इन्द्रियों द्वारा ग्रहण नहीं होता ।' इस प्रकार परमाणुओंका निरवयवपना परिकर्ममें कहा है । यदि कोई ऐसी आशंका करे तो वह भी ठीक नहीं है, क्योंकि, प्रदेशका अर्थ परमाणु है । वह जिस परमाणुमें समवेतभावसे नहीं है वह परमाणु अप्रदेशी है, इस प्रकार परिकर्ममें कहा है । इसलिये परमाणु निरवयव होता है, यह बात परिकर्मसे नहीं जानी जाती ।

शंका—परमाणु सावयव होता है, यह किस प्रमाणसे जाना जाता है ?

समाधान—स्कन्धभावको अन्यथा वह प्राप्त नहीं हो सकता, इसीसे जाना जाता है कि परमाणु सावयव होता है ।

१ अप्रतौ 'दव्वं देसं' इति पाठः । २ अप्रतौ 'अण्णदव्वं देसेण' इति पाठः । ३ ति. प. १-९८. ४ ताप्रतौ 'ण संकणिज्जं' इति पाठः ।

परमाणू णिरवयवो होज्ज तो खंधाणमणुप्पत्ती जायदे, अवयवाभावेण देसफासेण विणा सव्वफासमुवगएहिंतो खंधुप्पत्तिविरोहादो। ण च एवं, उप्पण्णखंधुवलंभादो। तम्हा सावयवो परमाणू त्ति घेत्तव्वो।

जो सो तयफासो णाम ॥ १९ ॥

तस्स अत्थो उच्चदे—

जं दव्वं तयं वा णोतयं वा पुसदि सो सव्वो तयफासो णाम ॥ २० ॥

तयो णाम रूक्खाणं गच्छाणं कंधाणं[1] वा वक्कलं। तस्सुवरि पप्पदकलाओ णोतयं। सूरणल्लय-पलंडु-हलिद्दादीणं वा वज्झपप्पदकलाओ णोतयं णाम। जं दव्वं तयं वा णोतयं वा पुसदि सो तयफासो णाम। एसो तयफासो दव्वफासे अंतब्भावं किण्ण गच्छदे ?

यदि परमाणु निरवयव होवे तो स्कन्धोंकी उत्पत्ति नहीं हो सकती, क्योंकि, जब परमाणुओंके अवयव नहीं होंगे तो उनका एकदेशस्पर्श नहीं बनेगा और एकदेशस्पर्शके विना सर्व-स्पर्श मानना पड़ेगा जिससे स्कन्धोंकी उत्पत्ति माननेमे विरोध आता है। परन्तु ऐसा हैं नहीं, क्योंकि, उत्पन्न हुए स्कन्धोंकी उपलब्धि होती है। इसलिये परमाणु सावयव होता है, ऐसा यहां ग्रहण करना चाहिये।

विशेषार्थ—एक द्रव्यका अन्य द्रव्यके साथ जो एकदेश स्पर्श होता है उसे देशस्पर्श कहते हैं। उदाहरणार्थ—एक स्कन्धका अन्य स्कन्धके साथ बन्ध होनेपर जो नया स्कन्ध बनता है वह देशस्पर्शका उदाहरण है। इसी प्रकार एक परमाणुका दूसरे परमाणुके साथ बन्ध होनेपर जो दो प्रदेशावगाही स्कन्ध बनता है वह भी देशस्पर्शका उदाहरण है। प्रकृतमें परमाणुको सावयव सिद्ध करनेके लिये जो युक्ति दी गई है और आगमका अर्थ किया गया है उसका भाव इतना ही है कि परमाणुके छेद करना तो शक्य नहीं है, पर पूर्वभाग व पश्चिमभाग इत्यादि रूपसे उसका भी विभाग होता है। अन्य दर्शनोंमें परमाणुको जैसा सर्वथा निरंश कहा है वैसा निरंश जैन दर्शन नहीं मानता।

अब त्वक्स्पर्शका अधिकार है ॥ १९ ॥

इस सूत्रका अर्थ कहते हैं—

जो द्रव्य त्वचा या नोत्वचाको स्पर्श करता है वह सब त्वक्स्पर्श है ॥ २० ॥

वृक्ष, गच्छ या स्कन्धोंकी छलको त्वचा कहते हैं और उसके ऊपर जो पपड़ीका समूह होता है उसे नोत्वचा कहते हैं। अथवा सूरण, अदरख, प्याज और हल्दी आदिकी जो बाह्य पपड़ीका समूह है उसे नोत्वचा कहते हैं। जो द्रव्य त्वचा या नोत्वचाको स्पर्श करता है वह त्वक्स्पर्श कहलाता है।

शंका—यह त्वक्स्पर्श द्रव्यस्पर्शमें अन्तर्भावको क्यों नहीं प्राप्त होता ?

१ प्रतिषु 'कंदाणं' इति पाठः।

ण, तय-णोतयाणं खंधम्हि समवेदाणं पुधदव्वत्ताभावादो । खंध-तय-णोतयाणं समूहो दव्वं । ण च एक्कम्हि दव्वे दव्वफासो अत्थि, विरोहादो । एत्थ फासभंगे वत्तइस्सामो । तं जहा— खंधो तयं फुसदि । १ । खंधो णोतयं फुसदि । २ । खंधो तए फुसदि । ३ । खंधो णोतए फुसदि । ४ । खंधो तयं णोतयं च फुसदि । ५ । कत्थ वि रुक्खादिविसेसे खंधो तयं णोतये च फुसदि । ६ । कत्थ वि तये णोतयं च फुसदि । ७ । कत्थ वि रुक्खादिखंधो तए णोतए च फुसदि । ८ । एवमट्ठ भंगा ।

अधवा खंधेण विणा तय-णोतयेसु चेव अट्ठफासभंगा उप्पाएयव्वा । तं जहा— तओ तयं फुसदि । १ । णोतओ णोतयं फुसदि । २ । तया तए फुसंति । ३ । णोतया णोतए फुसंति । ४ । तओ णोतयं फुसदि । ५ । तओ णोतए फुसदि । ६ । तया णोतयं फुसंति । ७ । तया णोतए फुसंति । ८ । तयफासो[1] देसफासे किण्ण पविसदि ? ण, णाणादव्वविसए देसफासे एगदव्वविसयस्स तयफासस्स पवेसविरोहादो । एवं तयफासपरूवणा गदा ।

समाधान—नहीं, क्योंकि त्वचा और नोत्वचा स्कन्धमें समवेत हैं, अतः उन्हें पृथक् द्रव्य नहीं माना जा सकता । स्कन्ध, त्वचा और नोत्वचाका समुदाय द्रव्य है । पर एक द्रव्यमें द्रव्यस्पर्श नहीं बनता, क्योंकि ऐसा माननेपर विरोध आता है ।

यहां स्पर्शके भंग बतलाते हैं । यथा—स्कन्ध त्वचाको स्पर्श करता है । १ । स्कन्ध नोत्वचाको स्पर्श करता है । २ । स्कन्ध त्वचाओंको स्पर्श करता है । ३ । स्कन्ध नोत्वचाओंको स्पर्श करता है । ४ । स्कन्ध त्वचा और नोत्वचाको स्पर्श करता है । ५ । कहीं वृक्ष आदि विशेषमें स्कन्ध एक त्वचा और अनेक नोत्वचाओंको स्पर्श करता है । ६ । कहीं स्कन्ध अनेक त्वचाओं और एक नोत्वचाको स्पर्श करता है । ७ । कहीं वृक्षादिका स्कन्ध अनेक त्वचाओं और अनेक नोत्वचाओंको स्पर्श करता है । ८ । इस प्रकार आठ भंग होते हैं ।

अथवा स्कन्धके विना ही त्वचा और नोत्वचाके स्पर्श सम्बन्धी आठ भंग उत्पन्न करने चाहिये । यथा— त्वचा त्वचाको स्पर्श करती है । १ । नोत्वचा नोत्वचाको स्पर्श करती है । २ । त्वचाएं त्वचाओंको स्पर्श करती हैं । ३ । नोत्वचाएं नोत्वचाओंको स्पर्श करती हैं । त्वचा नोत्वचाको स्पर्श करती है । ५ । त्वचा नोत्वचाओंको स्पर्श करती है । ६ । त्वचाएं नोत्वचाको स्पर्श करती हैं । ७ । त्वचाएं नोत्वचाओंको स्पर्श करती हैं । ८ ।

शंका—त्वक्स्पर्श देशस्पर्शमें क्यों नहीं अन्तर्भूत होता है ?

समाधान—नहीं, क्योंकि नाना द्रव्योंको विषय करनेवाले देशस्पर्शमें एक द्रव्यको विषय करनेवाले त्वक्स्पर्शका अन्तर्भाव माननेमें विरोध आता है ।

विशेषार्थ—द्रव्यस्पर्शमें दो द्रव्योंके परस्पर स्पर्शकी और देशस्पर्शमें दो द्रव्योंके एकदेश स्पर्शकी मुख्यता रहती है । यही कारण है कि त्वक्स्पर्शका इन दोनों स्पर्शोंमें अन्तर्भाव नहीं किया है । माना कि त्वचा, नोत्वचा और स्कन्ध अलग अलग अनेक परमाणुओंसे बनते हैं इसलिये इससे अनेक द्रव्योंका ग्रहण होना सम्भव है । पर यहां स्कन्धरूपसे इस सबको एक द्रव्य

---

१ अप्रतौ ' तयाफासो देसफासे ', ताप्रतौ ' तयाफासो देसफासो ' इति पाठः ।

जो सो सव्वफासो णाम ॥ २१ ॥

तस्स अत्थपरूवणं कस्सामो—

जं दव्वं सव्वं सव्वेण फुसदि, जहा परमाणुदव्वमिदि, सो सव्वो सव्वफासो णाम ॥ २२ ॥

जं किंचि दव्वमण्णेण दव्वेण सव्वं सव्वप्पणा पुसिज्जदि सो सव्वफासो णाम । जहा परमाणुदव्वमिदि । एदं दिट्ठंतवयणं । एदस्स अत्थो वुच्चदे—जहा परमाणुदव्वमण्णेण परमाणुणा पुसिज्जमाणं सव्वं सव्वप्पणा पुसिज्जदि तहा अण्णो वि जो एवंविहो फासो सो सव्वफासो त्ति दट्ठव्वो ।

एत्थ चोदओ भणदि— एसो दिट्ठंतो ण घडदे । तं जहा— परमाणू परमाणुम्हि पविस्समाणो[1] किमेगदेसेण पविसदि आहो सव्वप्पणा[2] ? ण पढमपक्खो, परमाणुदव्वं[3] सव्वं सव्वप्पणा अण्णेण परमाणुणा पुसिज्जदि त्ति वयणेण सह विरोहादो । ण बिदियपक्खो वि, दव्वे दव्वम्हि गंधे गंधम्मि रूवे रूवम्हि रसे रसम्मि फासे फासम्मि पविट्ठे परमाणुदव्वस्स अभावप्पसंगादो । ण चाभावो, दव्वस्स अभावत्तविरोहादो । ण सरूवमच्छंडिय[4] पविसदि,

मान कर त्वक्स्पर्शका पृथक्‌से विवेचन किया गया है । शेष कथन सुगम है ।

इस प्रकार त्वक्स्पर्शप्ररूपणा समाप्त हुई ।

अब सर्वस्पर्शका अधिकार है ॥ २१ ॥

उसके अर्थका कथन करते हैं—

जो द्रव्य सबका सब सर्वात्मना स्पर्श करता है, यथा परमाणु द्रव्य, वह सब सर्वस्पर्श है ॥ २२ ॥

जो कोई द्रव्य अन्य द्रव्यके साथ सबका सब सर्वात्मना स्पर्श करता है वह सर्वस्पर्श है । यथा परमाणु द्रव्य । यह दृष्टान्त वचन है । आगे इसका अर्थ कहते हैं—जिस प्रकार परमाणु द्रव्य अन्य परमाणुके साथ स्पर्श करता हुआ सबका सब सर्वात्मना स्पर्श करता है उसी प्रकार अन्य भी जो इस प्रकारका स्पर्श है वह सर्वस्पर्श है, ऐसा जानना चाहिये ।

शंका—यहां शंकाकारका कहना है कि यह दृष्टान्त घटित नहीं होता है । वह इस प्रकारसे— एक परमाणु अन्य परमाणुमें प्रवेश करता हुआ क्या एकदेशेन प्रवेश करता है या सर्वात्मना प्रवेश करता है ? प्रथम पक्ष तो ठीक नहीं है, क्योंकि ' परमाणु द्रव्य सबका सब अन्य परमाणुके साथ सर्वात्मना स्पर्श करता है ' इस वचनके साथ विरोध आता है । दूसरा पक्ष भी ठीक नहीं है, क्योंकि द्रव्यका द्रव्यमें, गन्धका गन्धमें, रूपका रूपमें, रसका रसमें और स्पर्शका स्पर्शमें प्रवेश हो जानेपर परमाणु द्रव्यका अभाव प्राप्त होता है । परन्तु अभाव हो नहीं सकता, क्योंकि, द्रव्यका अभाव माननेमें विरोध आता है । एक पुद्गलका अपने स्वरूपको छोड़कर अन्य पुद्गलमें प्रवेश

१ ताप्रतौ ' पविसमाणो ' इति पाठः । २ अप्रतौ ' सव्वप्पणेण ' इति पाठः । ३ ताप्रतौ '-दव्वं सव्वप्पणा ' इति पाठः । ४ अप्रतौ ' मच्छड्डिय ' इति पाठः ।

पोग्गलम्मि ओगाहणधम्माभावादो । भावे वा आगासदव्वस्स अभावो होज्ज, तेण कीरमाण-कज्जस्स पोग्गलेणेव कदत्तादो । सुवण्णम्हि पारयस्स पवेसो सरूवपरिच्चागमंतरेण उवलब्भदि त्ति चे— होदु खंधेसु खंधाणं पवेसो, सरूवपरिच्चागेण विणा छारच्छाणिमट्टियासु जलादीणं पवेसुवलंभादो । ण च परमाणूणमेस कमो, सयलथूलकज्जाणमभावप्पसंगादो । केसिं पि परमाणूणं एगदेसेण फासो, केसिं पि सव्वप्पणा, तेण परमाणूहिंतो थूलकज्जुप्पत्ती ण विरुज्झदि त्ति चे— ण, कम्हि वि कालम्हि सव्वेसु पोग्गलेसु एगपरमाणुम्हि पविट्ठेसु परमाणुमेत्तस्स अवट्ठाणप्पंसगादो । होदु चे— ण, तिहुवणजणतणुविणासेण सव्वजीवाणं णिव्वुइप्पसंगादो । एक्कम्हि परमाणुम्हि सव्वो पोग्गलरासी ण पविसदि, किंतु थोवा चेव परमाणू पविसंति त्ति चे— ण, थोवपवेसस्स कारणाभावादो । ओगाहणसत्ती बहुआ णत्थि त्ति थोवा चेव पविसंति त्ति चे— ण, आयासं मोत्तूण अण्णत्थ ओगाहणधम्माभावादो । जदि परमाणुम्हि परमाणूणं पवेसो णत्थि तो असंखेज्जपदेसिए लोगागासे कधमणंताणं पोग्गलाणं अवट्ठाणं चे—

नहीं होता, क्योंकि पुद्गलमें अवगाहन धर्मका अभाव है । और यदि उसमें अवगाहन धर्मका सद्भाव माना भी जाय तो आकाश द्रव्यका अभाव प्राप्त होता है, क्योंकि, उसके द्वारा किये जानेवाले कार्यको पुद्गलने ही कर दिया । यदि कहा जाय कि सुवर्णमें पारदका अपने स्वरूपका त्याग किये बिना ही प्रवेश देखा जाता है, तो इसपर यह कहना है कि स्कन्धोंमें स्कन्धोंका प्रवेश भले ही हो जाय, क्योंकि स्वरूपका परित्याग किये विना ही क्षार, छाणि, और मिट्टीमें जल आदिकका प्रवेश देखा जाता है । परन्तु परमाणुओंमें यह क्रम नहीं पाया जाता, क्योंकि, ऐसा माननेपर समस्त स्थूल कार्योंके अभावका प्रसंग प्राप्त होता है । यदि कहा जाय कि किन्हीं परमाणुओंका एकदेशेन स्पर्श होता है और किन्हीं परमाणुओंका सर्वात्मना स्पर्श होता है, इसलिये परमाणुओंसे स्थूल कार्यकी उत्पत्ति होनेमें कोई विरोध नहीं आता । सो यह कहना भी ठीक नहीं है, क्योंकि, ऐसा माननेपर स्यात् किसी कालमें सब पुद्गल एक परमाणुमें प्रविष्ट हो जायगे तब परमाणुमात्र अवस्थान प्राप्त होगा । यदि कहा जाय कि ऐसा ही हो जाय, सो यह बात भी नहीं है; क्योंकि तब तीन लोकके जीवोंके शरीरका विनाश हो जानेसे सब जीवोंको मुक्तिका प्रसंग प्राप्त होता है । यदि कहा जाय कि एक परमाणुमें सब पुद्गल राशि प्रवेश नहीं करती, किन्तु स्वल्प परमाणु ही प्रवेश करते हैं । सो ऐसा कहना भी ठीक नहीं है, क्योंकि स्वल्प परमाणु ही प्रवेश करते हैं इसका कोई कारण नहीं पाया जाता । यदि कहा जाय कि अधिक अवगाहन शक्ति नहीं पाई जाती, इसलिये स्वल्प परमाणु ही प्रवेश करते हैं । सो भी कहना ठीक नहीं है, क्योंकि आकाशके सिवाय अन्य द्रव्यमें अवगाहन धर्म नहीं पाया जाता । इसपर कहा जाय कि यदि परमाणुमें परमाणुओंका प्रवेश नहीं होता तो असंख्यप्रदेशी लोकाकाशमें अनन्त पुद्गलोंका अवस्थान कैसे बन सकता है । सो भी कहना

१ अप्रतौ 'सुवण्णम्हि' इति पाठः । २ प्रतिषु 'मट्टियासजलादीणं' इति पाठः । ३ अप्रतौ 'सव्वप्पणासेण तेण' इति पाठः ।

ण, ओगाहणधम्मियआयासमाहप्पेण तेसिमवट्ठाणविरोहाभावादो ?

एत्थ परिहारो वुच्चदे। तं जहा— परमाणू किं सावयवो किमु णिरवयवो ? ण ताव सावयवो, परमाणुसद्दाहिहेयादो पुधभूदअवयवाणुवलंभादो। उवलंभे वा ण सो परमाणू, अपत्तभिज्जमाणभेदपेरंतत्तादो[1]। ण च अवयवी चेव अवयवो होदि, अण्णपदत्थेण[2] विणा बहुव्वीहिसमासाणुववत्तीदो संबंधेण विणा संबंधणिबंधण-इं-[3]पच्चयाणुववत्तीदो वा। ण च परमाणुस्स उद्धाधोमज्झभागाणमवयवत्तमत्थि, तेहिंतो पुधभूदपरमाणुस्स अवयविसण्णिदस्स अभावादो। एदम्हि णए अवलंबिज्जमाणे सिद्धं परमाणुस्स णिरवयवत्तं। संजुत्ताणमसंजुत्ताणं च परमाणुपमाणत्तणेण उवलब्भमाणपोग्गलक्खंधाणमभावप्पसंगादो अवगयावयवपरमाणुदेस-पासो चेव दव्वट्ठियबलेण सव्वफासो त्ति परूविदो, अखंडाणं परमाणूणमवयवाभावेण सव्व-फासस्सेव संभवदंसणादो। अधवा दोण्णं परमाणूणं देसफासो होदि, थूलक्खंधुप्पत्तीए अण्णहा अणुववत्तीदो। सव्वफासो वि होदि, परमाणुम्मि परमाणुस्स सव्वप्पणा पवेसाविरोहादो। ण च पविसंतपरमाणुस्स परमाणू पडिबंधदि, सुहुमस्स सुहुमेण बादरक्खंधेण वा

ठीक नहीं है, क्योंकि अवगाहन धर्मवाले आकाशके माहात्म्यसे अनन्त पुद्गलोंका असंख्यप्रदेशी लोकाकाशमें अवस्थान माननेमें कोई विरोध नहीं आता ?

समाधान—यहां उक्त शंकाका परिहार करते हैं। यथा— परमाणु क्या सावयव होता है या निरवयव ? सावयव तो हो नहीं सकता, क्योंकि परमाणु शब्दके वाच्यरूप उससे अवयव पृथक् नहीं पाये जाते। यदि उसके पृथक् अवयव माने जाते हैं तो वह परमाणु नहीं ठहरता, क्योंकि जितने भेद होने चाहिये उनके अन्तको वह अभी नहीं प्राप्त हुआ है। यदि कहा जाय कि अवयवीको ही हम अवयव मान लेंगे। सो भी कहना ठीक नहीं है, क्योंकि एक तो बहुव्रीहि समास अन्यपदार्थप्रधान होता है, कारण कि उसके विना वह बन नहीं सकता। दूसरे, सम्बन्धके विना सम्बन्धका कारणभूत 'णिनि' प्रत्यय भी नहीं बन सकता। यदि कहा जाय कि परमाणुके ऊर्ध्व भाग, अधोभाग और मध्य भाग रूपसे अवयव बन जांयगे। सो भी बात नहीं है, क्योंकि इन भागोंके अतिरिक्त अवयवी संज्ञावाले परमाणुका अभाव है। इस प्रकार इस नयके अवलम्बन करनेपर परमाणु निरवयव है, यह बात सिद्ध होती है। संयुक्त और असंयुक्त परमाणु प्रमाण उपलब्ध होनेवाले पुद्गलस्कन्धोंका अभाव न प्राप्त हो इसलिये अवयव रहित परमाणुओंका देशस्पर्श ही यहां द्रव्यार्थिकनयके बलसे सर्वस्पर्श है ऐसा कहा है, क्योंकि अखण्ड परमाणुओंके अवयव नहीं होनेके कारण उनका सर्वस्पर्श ही सम्भव दिखाई देता है। अथवा दो परमाणुओंका देशस्पर्श होता है, अन्यथा स्थूल स्कन्धोंकी उत्पत्ति नहीं बन सकती। उनका सर्वस्पर्श भी होता है, क्योंकि एक परमाणुका दूसरे परमाणुमें सर्वात्मना प्रवेश होनेमें कोई विरोध नहीं आता। पर इसका यह अर्थ नहीं कि प्रवेश करनेवाले परमाणुको दूसरा परमाणु प्रतिबन्ध करता है, क्योंकि सूक्ष्मका दूसरे

१ अप्रतौ 'भेदे परतत्तादो', ताप्रतौ 'भेदे पेरंतत्तादो' इति पाठः। २ प्रतिषु 'पदत्तेण' इति पाठः। ३ ताप्रतौ 'णिबंधणाइं' इति पाठः।

पडिबंधकरणाणुववत्तीदो ।

सुहुमं णाम सण्णं, ण अपडिहण्णमाणमिदि चे— ण, आयासादीणं महल्लाणं सुहुमत्ता-भावप्पसंगादो । तदो सरूपापरिच्चाएण सव्वप्पणा परमाणुस्स परमाणुम्मि पवेसो सव्वफासो त्ति ण दिट्ठंतो वइधम्मिओ ।

जो सो[1] फासफासो णाम ॥ २३ ॥

एदस्सत्थो वुच्चदे—

सो अट्ठविहो— कक्खडफासो मउवफासो गरुवफासो लहुव-फासो णिद्धफासो रूक्खफासो सीदफासो उण्हफासो । सो सव्वो फासफासो णाम ॥ २४ ॥

स्पृश्यत इति स्पर्शः कर्कशादि[2]ः । स्पृश्यत्यनेनेति स्पर्शस्त्वगिन्द्रियम् । तयोर्द्वयोः स्पर्शयोः स्पर्शः स्पर्शस्पर्शः । स च अष्टविधः— कर्कशस्पर्शः मृदुस्पर्शः गुरुस्पर्शः लघुस्पर्शः स्निग्धस्पर्शः

सूक्ष्म स्कन्धके द्वारा या बादरके द्वारा प्रतिबन्ध करनेका कोई कारण नहीं पाया जाता ।

शंका—सूक्ष्मका अर्थ बारीक है । दूसरेके द्वारा नहीं रोका जाना, यह उसका अर्थ नहीं है ?

समाधान—नहीं, क्योंकि सूक्ष्मका यह अर्थ करनेपर महान् आकाश आदि सूक्ष्म नहीं ठहरेंगे ।

इसलिये अपने स्वरूपको छोड़े विना एक परमाणुका दूसरे परमाणुमें सर्वात्मना प्रवेशका नाम सर्वस्पर्श कहलाता है, अतः सूत्रमें सर्वस्पर्शके लिये परमाणुका दिया गया दृष्टान्त वैधर्म्य नहीं है ।

विशेषार्थ—सर्वस्पर्शमें एक वस्तुका दूसरी वस्तुके साथ पूरा स्पर्श लिया गया है और इसके उदाहरण स्वरूप परमाणु द्रव्य उपस्थित किया गया है । एक परमाणुका दूसरे परमाणुके साथ देश और सर्व दोनों प्रकारका स्पर्श देखा जाता है । परमाणु निरंश होता है या सांश यह प्रश्न पुराना है । परमाणु अखण्ड और एक है, इस नयकी अपेक्षा वह निरंश माना जाता है । किन्तु प्रत्येक परमाणुमें पूर्व पश्चिम आदि भाग देखे जाते हैं, इस नयकी अपेक्षा वह सांश माना जाता है । इसलिये जब एक परमाणुका दूसरे परमाणुके साथ एकप्रदेशावगाही स्पर्श होता है तब वह सर्वस्पर्श कहलाता है और जब दोप्रदेशावगाही स्पर्श होता है तब वह देश-स्पर्श कहलाता है । इसी प्रकार सर्वत्र जानना चाहिये ।

अब स्पर्शस्पर्शका अधिकार है ॥ २३ ॥

अब इस सूत्रका अर्थ कहते हैं—

वह आठ प्रकारका है—कर्कशस्पर्श, मृदुस्पर्श, गुरुस्पर्श, लघुस्पर्श, स्निग्धस्पर्श, रुक्षस्पर्श, शीतस्पर्श और उष्णस्पर्श । वह सब स्पर्शस्पर्श है ॥ २४ ॥

जो स्पर्श किया जाता है वह स्पर्श है, यथा कर्कश आदि । जिसके द्वारा स्पर्श किया जाय वह स्पर्श है, यथा त्वचा इन्द्रिय । इन दोनों स्पर्शोंका स्पर्श स्पर्शस्पर्श कहलाता है । वह आठ प्रकारका है—कर्कशस्पर्श, मृदुस्पर्श, गुरुस्पर्श, लघुस्पर्श, स्निग्धस्पर्श, रूक्षस्पर्श, शीतस्पर्श

---

१ अ-ताप्रत्योः ' जो सो ' इति पाठः । २ अप्रतौ 'कर्कशादीहि', ताप्रतौ 'कर्कशादीहि (नि)' इति पाठः ।

रुक्षस्पर्शः शीतस्पर्शः उष्णस्पर्शश्चेति । स्पर्शभेदात्स्पर्शस्पर्शोऽपि अष्टधा भवतीत्यवगन्तव्यः । एत्थ केवि आइरिया कक्खडादिफासाणं पहाणीकयाणं एगादिसंजोगेहि फासभंगे उप्पायंति, तण्ण घडदे; गुणाणं णिस्सहावाणं गुणेहि फासाभावादो । पहाणभावेण दव्वत्तमुवगयाण फासो जदि इच्छिज्जदि तो रूव-रस-गंधादीणं पि फासेण होदव्वं; पहाणभावेण दव्वभावुवगमणं पडि भेदाभावादो । होदु चे— ण, सुत्ते तहाणुवलंभादो तेरसफासे मोत्तूण बहुफासप्पसंगादो च । तम्हा कक्खडं कक्खडेण फुसिज्जदे[1] इच्चादिभंगा एत्थ ण वत्तव्वा, दव्वफासे देसफासे च तेसिमंतब्भावादो । एसो तत्थ ण पविसदि, विसय-विसइभावप्पणादो । अधवा सुत्तस्स देसामासियत्ते णिक्खेवसंखाणियमो णत्थि त्ति सगंतोक्खित्तासेसविसेसंतराणमट्ठण्णं फासाणं संजोएण दुसद-पंचवंचास भंगा उप्पाएयव्वा ।

और उष्णस्पर्श । इस प्रकार स्पर्शके भेदसे स्पर्शस्पर्श भी आठ प्रकारका होता है, ऐसा यहां जानना चाहिये ।

यहां कितने ही आचार्य प्रधानताको प्राप्त हुए कर्कश आदि स्पर्शोंके एक आदि संयोगों द्वारा स्पर्शभंग उत्पन्न कराते हैं, परन्तु वे बनते नहीं; क्योंकि गुण निस्वभाव होते हैं, इसलिये उनका अन्य गुणोंके साथ स्पर्श नहीं बन सकता । प्रधानरूपसे द्रव्यत्वको प्राप्त हुए इन गुणोंका यदि स्पर्श स्वीकार किया जाता है तो रूप, रस और गन्ध आदिका भी स्पर्श होना चाहिये, क्योंकि प्रधानरूपसे द्रव्यपनेकी प्राप्तिके प्रति इनमें कोई अन्तर नहीं है । यदि कहा जाय कि ऐसा भी हो जावे । सो ऐसा कहना भी ठीक नहीं है, क्योंकि एक तो सूत्रमें ऐसा कहा नहीं है और दूसरे ऐसा माननेपर तेरह स्पर्श न रहकर बहुतसे स्पर्श प्राप्त हो जांयगे । इसलिये कर्कश कर्कशके साथ स्पर्श करता है, इत्यादि भंग यहां नहीं कहने चाहिये; क्योंकि उनका द्रव्यस्पर्श और देशस्पर्शमें अन्तर्भाव हो जाता है । परन्तु इसका वहां अन्तर्भाव नहीं होता, क्योंकि इसमें विषय-विषयिभावकी मुख्यता है ।

अथवा सूत्र देशामर्शक होता है, इसलिये निक्षेपोंकी संख्याका नियम नहीं किया जा सकता । अतएव अपने भीतर जितने विशेष प्राप्त होते हैं उन सबके साथ आठ स्पर्शोंके संयोगसे दो सौ पचवन भंग उत्पन्न कराने चाहिये ।

विशेषार्थ—आगममें कर्कश आदि आठ स्पर्श माने गये हैं । इनका स्पर्शन इन्द्रियके द्वारा जो स्पर्श होता है उसे स्पर्शस्पर्श कहते हैं । यद्यपि स्पर्शस्पर्श शब्दका, स्पर्शोंका जो परस्परमें स्पर्श होता है उसे स्पर्शस्पर्श कहते हैं, एक यह अर्थ भी किया जा सकता है; पर इस अर्थके करनेपर सबसे बड़ी आपत्ति यह आती है कि स्पर्श गुणोंका अन्य गुणोंके साथ होनेवाले स्पर्शको भी स्पर्शस्पर्श मानना पड़ेगा । यद्यपि यह कहा जा सकता है कि गुण निःस्वभाव होते हैं, इसलिये उनका परस्परमें स्पर्श नहीं बनता । परन्तु गुणको कथंचित् द्रव्य मान लेनेपर इस आपत्तिका परिहार हो जाता है । इससे यद्यपि गुणका दूसरे गुणके साथ स्पर्श माननेपर जो आपत्ति प्राप्त होती है उसका परिहार हो जाता है, पर ऐसे स्पर्शको अन्ततः द्रव्यस्पर्शका

---

१ ताप्रतौ 'पुसिज्जदि' इति पाठः ।

जो सो कम्मफासो ॥ २५ ॥

तस्स अत्थो वुच्चदे—

सो अट्ठविहो— णाणावरणीय-दंसणावरणीय-वेयणीय-मोहणीय-आउ-णामा-गोद-अंतराइयकम्मफासो। सो सव्वो कम्मफासो णाम ॥ २६ ॥

अट्ठकम्माणं जीवेण विस्सासोवचएहि य णोकम्मेहि य जो फासो सो दव्वफासे पददि त्ति एत्थ ण वुच्चदे, कम्माणं कम्मेहि जो फासो सो कम्मफासो त्ति एत्थ घेत्तव्वो। संपहि फासभंगपरूवणा कीरदे। तं जहा—णाणावरणीयं णाणावरणीयेण फुसिज्जदि । १ । णाणावरणीयं दंसणावरणीयेण फुसिज्जदि । २ । णाणावरणीयं वेयणीएण फुसिज्जदि । ३ । णाणावरणीयं मोहणीएण फुसिज्जदि । ४ । णाणावरणीयं आउएण फुसिज्जदि । ५ । णाणावरणीयं णामेण फुसिज्जदि । ६ । णाणावरणीयं गोदेण फुसिज्जदि । ७ । णाणावरणीयं अंतराइएण

एक भेद मानना पड़ता है। इसलिये स्पर्शस्पर्श शब्दको ध्यानमें रखकर यहां अन्य गुणोंके साथ कर्कश आदिके होनेवाले स्पर्शको छोड़ कर केवल कर्कश आदि आठ स्पर्शोंके परस्परमें होनेवाले स्पर्शको भी स्पर्शस्पर्शमें गिन लिया है। इस प्रकार स्पर्शस्पर्शके दो अर्थ प्राप्त होते हैं। प्रथम यह कि कर्कश आदि स्पर्शोंका स्पर्शन इन्द्रियके साथ जो स्पर्श होता है वह स्पर्शस्पर्श कहलाता है और दूसरा यह कि आठों स्पर्शोंका परस्पर जो स्पर्श होता है वह भी स्पर्शस्पर्श कहलाता है। इस दूसरे अर्थके अनुसार स्पर्शस्पर्शके एकसंयोगी ८, द्विसंयोगी २८, त्रिसंयगी ५६, चतुःसंयोगी ७०, पंचसंयोगी ५६, षट्संयोगी २८, सप्तसंयोगी ८ और अष्टसंयोगी १; कुल २५५ भंग होते हैं।

अब कर्मस्पर्शका अधिकार है ॥ २५ ॥

इसका अर्थ कहते हैं—

वह आठ प्रकारका है— ज्ञानावरणीयकर्मस्पर्श, दर्शनावरणीयकर्मस्पर्श, वेदनीयकर्मस्पर्श, मोहनीयकर्मस्पर्श, आयुकर्मस्पर्श, नामकर्मस्पर्श, गोत्रकर्मस्पर्श और अन्तरायकर्मस्पर्श। वह सब कर्मस्पर्श है ॥ २६ ॥

आठ कर्मोंका जीवके साथ, विस्रसोपचयोंके साथ और नोकर्मोंके साथ जो स्पर्श होता है वह द्रव्यस्पर्शमें अन्तर्भूत होता है; इसलिये वह यहां नहीं कहा गया है। किन्तु कर्मोंका कर्मोंके साथ जो स्पर्श होता है वह कर्मस्पर्श है, ऐसा यहां ग्रहण करना चाहिये।

अब स्पर्शके भंगोंका कथन करते हैं। यथा— ज्ञानावरणीय ज्ञानावरणीय द्वारा स्पर्श किया जाता है। १। ज्ञानावरणीय दर्शनावरणीय द्वारा स्पर्श किया जाता है। २। ज्ञानावरणीय वेदनीय द्वारा स्पर्श किया जाता है। ३। ज्ञानावरणीय मोहनीय द्वारा स्पर्श किया जाता है। ४। ज्ञानावरणीय आयु द्वारा स्पर्श किया जाता है। ५। ज्ञानावरणीय नाम द्वारा स्पर्श किया जाता है। ६। ज्ञानावरणीय गोत्र द्वारा स्पर्श किया जाता है। ७। ज्ञानावरणीय अन्तराय द्वारा स्पर्श

फुसिज्जदि । ८ । एवं णाणावरणीयस्स अट्ठ भंगा । दंसणावरणीयं दंसणावरणीएण फुसिज्जदि । १ । दंसणावरणीयं णाणावरणीएण फुसिज्जदि । २ । दंसणावरणीयं वेयणीएण फुसिज्जदि । ३ । दंसणावरणीयं मोहणीएण फुसिज्जदि । ४ । दंसणावरणीयं आउएण फुसिज्जदि । ५ । दंसणावरणीयं णामेण फुसिज्जदि । ६ । दंसणावरणीयं गोदेण फुसिज्जदि । ७ । दंसणावरणीयं अंतराइएण फुसिज्जदि । ८ । एवं दंसणावरणीयस्स अट्ठ भंगा । एदेसु पुव्विल्लेसु सह मेलाविदेसु सोलस भंगा होंति । १६ । संपहि वेयणीयं वेयणीएण फुसिज्जदि । १ । वेयणीयं णाणावरणीएण फुसिज्जदि । २ । वेयणीयं दंसणावरणीएण फुसिज्जदि । ३ । वेयणीयं मोहणीएण फुसिज्जदि । ४ । वेयणीयं आउएण फुसिज्जदि । ५ । वेयणीयं णामेण फुसिज्जदि । ६ । वेयणीयं गोदेण फुसिज्जदि । ७ । वेयणीयं अंतराइएण फुसिज्जदि । ८ । एवं वेयणीयस्स अट्ठ भंगा । एदेसु पुव्वभंगेसु मेलाविदेसु चउवीस भंगा होंति । २४ । मोहणीयं मोहणीएण फुसिज्जदि । १ । मोहणीयं णाणावरणीएण फुसिज्जदि । २ । मोहणीयं दंसणावरणीएण फुसिज्जदि । ३ । मोहणीयं वेयणीएण फुसिज्जदि । ४ । मोहणीयं आउएण फुसिज्जदि । ५ । मोहणीयं णामेण फुसिज्जदि । ६ । मोहणीयं गोदेण फुसिज्जदि । ७ । मोहणीयं अंतराइएण फुसिज्जदि । ८ । एवं मोहणीयस्स अट्ठ भंगा । एदेसु पुव्विल्लभंगेसु

किया जाता है । ८ । इस प्रकार ज्ञानावरणीय कर्मके आठ भंग होते हैं ।

दर्शनावरणीय दर्शनावरणीय द्वारा स्पर्श किया जाता है । १ । दर्शनावरणीय ज्ञानावरणीय द्वारा स्पर्श किया जाता है । २ । दर्शनावरणीय वेदनीय द्वारा स्पर्श किया जाता है । ३ । दर्शनावरणीय मोहनीय द्वारा स्पर्श किया जाता है । ४ । दर्शनावरणीय आयु द्वारा स्पर्श किया जाता है । ५ । दर्शनावरणीय नाम द्वारा स्पर्श किया जाता है । ६ । दर्शनावरणीय गोत्र द्वारा स्पर्श किया जाता है । ७ । दर्शनावरणीय अन्तराय द्वारा स्पर्श किया जाता है । ८ । इस प्रकार दर्शनावरणीय कर्मके आठ भंग होते हैं । इन्हें पूर्वोक्त आठ भंगोंमें मिलानेपर १६ भंग होते हैं ।

वेदनीय वेदनीय द्वारा स्पर्श किया जाता है । १ । वेदनीय ज्ञानावरणीय द्वारा स्पर्श किया जाता है । २ । वेदनीय दर्शनावरणीय द्वारा स्पर्श किया जाता है । ३ । वेदनीय मोहनीय द्वारा स्पर्श किया जाता है । ४ । वेदनीय आयु द्वारा स्पर्श किया जाता है । ५ । वेदनीय नाम द्वारा स्पर्श किया जाता है । ६ । वेदनीय गोत्र द्वारा स्पर्श किया जाता है । ७ । वेदनीय अन्तराय द्वारा स्पर्श किया जाता है । ८ । इस प्रकार वेदनीय कर्मके आठ भंग होते हैं । इन्हें पूर्वोक्त १६ भंगोंमें मिलानेपर २४ भंग होते हैं ।

मोहनीय मोहनीय द्वारा स्पर्श किया जाता है । १ । मोहनीय ज्ञानावरणीय द्वारा स्पर्श किया जाता है । २ । मोहनीय दर्शनावरणीय द्वारा स्पर्श किया जाता है । ३ । मोहनीय वेदनीय द्वारा स्पर्श किया जाता है । ४ । मोहनीय आयु द्वारा स्पर्श किया जाता है । ५ । मोहनीय नाम द्वारा स्पर्श किया जाता है । ६ । मोहनीय गोत्र द्वारा स्पर्श दिया जाता है । ७ । मोहनीय अन्तराय द्वारा स्पर्श किया जाता है । ८ । इस प्रकार मोहनीय कर्मके आठ भंग होते हैं । इन्हें पूर्वोक्त २४ भंगोंमें मिलानेपर ३२ भंग होते हैं ।

पक्खित्तेसु बत्तीसभंगा होंति । ३२ । आउअं आउएण फुसिज्जदि । १ । आउअं णाणावरणीएण फुसिज्जदि । २ । आउअं दंसणावरणीएण फुसिज्जदि । ३ । आउअं वेयणीएण फुसिज्जदि । ४ । आउअं मोहणीएण फुसिज्जदि । ५ । आउअं णामेण फुसिज्जदि । ६ । आउअं गोदेण फुसिज्जदि । ७ । आउअं अंतराइएण फुसिज्जदि । ८ । एवमाउअस्स अट्ठ भंगा । एदेसु पुव्विल्लभंगेहि सह मेलाविदेसु चत्तालीस भंगा होंति । ४० । णामं णामेण फुसिज्जदि । १ । णामं णाणावरणीएण फुसिज्जदि । २ । णामं दंसणावरणीएण फुसिज्जदि । ३ । णामं वेयणीएण फुसिज्जदि । ४ । णामं मोहणीएण फुसिज्जदि । ५ । णामं आउएण फुसिज्जदि । ६ । णामं गोदेण फुसिज्जदि । ७ । णामं अंतराइएण फुसिज्जदि । ८ । एवं णामस्स अट्ठ भंगा । एदेसु पुव्विल्लभंगेसु घेत्तूण पक्खित्तेसु अडदाल भंगा होंति । ४८ । गोदं गोदेण फुसिज्जदि । १ । गोदं णाणावरणीएण फुसिज्जदि । २ । गोदं दंसणावरणीएण फुसिज्जदि । ३ । गोदं वेयणीएण फुसिज्जदि । ४ । गोदं मोहणीएण फुसिज्जदि । ५ । गोदं आउएण फुसिज्जदि । ६ । गोदं णामेण फुसिज्जदि । ७ । गोदं अंतराइएण फुसिज्जदि । ८ । एवं गोदस्स अट्ठ भंगा होंति । एदे घेत्तूण पुव्विल्लभंगेसु पक्खित्तेसु छप्पण्णं भंगा होंति । ५६ । अंतराइयं अंतराइएण फुसिज्जदि । १ । अंतराइयं णाणावरणीएण फुसिज्जदि । २ । अंतराइयं

आयु आयु द्वारा स्पर्श किया जाता है । १ । आयु ज्ञानावरणीय द्वारा स्पर्श किया जाता है । २ । आयु दर्शनावरणीय द्वारा स्पर्श किया जाता है । ३ । आयु वेदनीय द्वारा स्पर्श किया जाता है । ४ । आयु मोहनीय द्वारा स्पर्श किया जाता है । ५ । आयु नाम द्वारा स्पर्श किया जाता है । ६ । आयु गोत्र द्वारा स्पर्श किया जाता है । ७ । आयु अन्तराय द्वारा स्पर्श किया जाता है । ८ । इस प्रकार आयु कर्मके आठ भंग होते हैं । इन्हें पूर्वोक्त ३२ भंगोंमें मिलानेपर ४० भंग होते हैं ।

नाम नाम द्वारा स्पर्श किया जाता है । १ । नाम ज्ञानावरणीय द्वारा स्पर्श किया जाता है । २ । नाम दर्शनावरणीय द्वारा स्पर्श किया जाता है । ३ । नाम वेदनीय द्वारा स्पर्श किया जाता है । ४ । नाम मोहनीय द्वारा स्पर्श किया जाता है । ५ । नाम आयु द्वारा स्पर्श किया जाता है । ६ । नाम गोत्र द्वारा स्पर्श किया जाता है । ७ । नाम अन्तराय द्वारा स्पर्श किया जाता है । ८ । इस प्रकार नाम कर्मके आठ भंग होते हैं । इन्हें पूर्वोक्त ४० भंगोंमें मिलानेपर ४८ भंग होते हैं ।

गोत्र गोत्र द्वारा स्पर्श किया जाता है । १ । गोत्र ज्ञानावरणीय द्वारा स्पर्श किया जाता है । २ । गोत्र दर्शनावरणीय द्वारा स्पर्श किया जाता है । ३ । गोत्र वेदनीय द्वारा स्पर्श किया जाता है । ४ । गोत्र मोहनीय द्वारा स्पर्श किया जाता है । ५ । गोत्र आयु द्वारा स्पर्श किया जाता है । ६ । गोत्र नाम द्वारा स्पर्श किया जाता है । ७ । गोत्र अन्तराय द्वारा स्पर्श किया जाता है । ८ । इस प्रकार गोत्र कर्मके आठ भंग होते हैं । इन्हें पूर्वोक्त ४८ भंगोंमें मिलानेपर ५६ भंग होते हैं ।

अन्तराय अन्तरायके द्वारा स्पर्श किया जाता है । १ । अन्तराय ज्ञानावरणीय द्वारा स्पर्श

दंसणावरणीएण फुसिज्जदि । ३ । अंतराइयं वेयणीएण फुसिज्जदि । ४ । अंतराइयं मोहणीएण फुसिज्जदि । ५ । अंतराइयं आउएण फुसिज्जदि । ६ । अंतराइयं णामेण फुसिज्जदि । ७ । अंतराइयं गोदेण फुसिज्जदि । ८ । एवं अंतराइयस्स अट्ठ भंगा । एदेसु पुव्विल्लभंगेसु पक्खित्तेसु चउसट्ठी भंगा होंति । ६४ । संपहि एत्थ एगादिएगुत्तरसत्तगच्छसंकलणमेत्त-पुणरुत्तभंगेसु अवणिदेसु अपुणरुत्तछत्तीसभंगा । ३६ ।

किया जाता है । २ । अन्तराय दर्शनावरणीय द्वारा स्पर्श किया जाता है । ३ । अन्तराय वेदनीय द्वारा स्पर्श किया जाता है । ४ । अन्तराय मोहनीय द्वारा स्पर्श किया जाता है । ५ । अन्तराय आयु द्वारा स्पर्श किया जाता है । ६ । अन्तराय नाम द्वारा स्पर्श किया जाता है । ७ । अन्तराय गोत्र द्वारा स्पर्श किया जाता है । ८ । इस प्रकार अन्तराय कर्मके आठ भंग होते हैं । उन्हें पूर्वोक्त ५६ भंगोंमें मिलानेपर ६४ भंग होते हैं ।

अब यहां एकसे लेकर एकोत्तर सात गच्छके संकलन प्रमाण पुनरुक्त भंगोंके घटा देनेपर अपुनरुक्त छत्तीस भंग होते हैं । ३६ ।

विशेषार्थ—कर्मस्पर्शमें न तो कर्मोंका जीवके साथ होनेवाला स्पर्श लिया गया है, न कर्मोंका उनके विस्रसोपचयोंके साथ होनेवाला स्पर्श लिया गया है, और न कर्मोंका नोकर्मोंके साथ होनेवाला स्पर्श लिया गया है । यहां केवल आठ कर्मोंका परस्परमें जो स्पर्श होता है उसीका ग्रहण किया गया है । कर्मस्पर्शका अर्थ है कर्मोंका परस्परमें होनेवाला स्पर्श । इस अर्थके अनुसार कर्मस्पर्शके कुल भंग ६४ होते हैं । उनमेंसे पुनरुक्त २८ भंग घटा देनेपर अपुनरुक्त भंग कुल ३६ रहते हैं । खुलासा इस प्रकार है—

क्र.सं.	संयोग	पुनरुक्त या अपुनरुक्त	क्र.सं.	संयोग	पुनरुक्त या अपुनरुक्त
१	ज्ञानावरण+ज्ञानावरण	अपुनरुक्त	१३	दर्शनावरण+आयु	अ.
२	ज्ञानावरण+दर्शनावरण	,,	१४	दर्शनावरण+नाम	,,
३	ज्ञानावरण+वेदनीय	,,	१५	दर्शनावरण+गोत्र	,,
४	ज्ञानावरण+मोहनीय	,,	१६	दर्शनावरण+अन्तराय	,,
५	ज्ञानावरण+आयु	,,	१७	वेदनीय+वेदनीय	,,
६	ज्ञानावरण+नाम	,,	१८	वेदनीय+ज्ञानावरण	पु. (३ से)
७	ज्ञानावरण+गोत्र	,,	१९	वेदनीय+दर्शनावरण	,, (११ से)
८	ज्ञानावरण+अन्तराय	,,	२०	वेदनीय+मोहनीय	अ.
९	दर्शनावरण+दर्शनाव०	,,	२१	वेदनीय+आयु	,,
१०	दर्शनावरण+ज्ञानावरण	पु. (२ से)	२२	वेदनीय+नाम	,,
११	दर्शनावरण+वेदनीय	अ.	२३	वेदनीय+गोत्र	,,
१२	दर्शनावरण+मोहनीय	,,	२४	वेदनीय+अन्तराय	,,

जो सो बंधफासो णाम ॥ २७ ॥

तस्स अत्थो वुच्चदे—

सो पंचविहो—ओरालियसरीरबंधफासो एवं वेउव्विय-आहार-तेया-कम्मइयसरीरबंधफासो । सो सव्वो बंधफासो णाम ॥ २८ ॥

क्र.सं.	संयोग	पुनरुक्त या अपुनरुक्त	क्र.सं.	संयोग	पुनरुक्त या अपुनरुक्त
२५	मोहनीय+मोहनीय	अ.	४५	नाम+मोहनीय	पु. (३० से)
२६	मोहनीय+ज्ञानावरण	पु. (४ से)	४६	नाम+आयु	„ (३८ से)
२७	मोहनीय+दर्शनावरण	„ (१२से)	४७	नाम+गोत्र	अ.
२८	मोहनीय+वेदनीय	„ (२०से)	४८	नाम+अन्तराय	„
२९	मोहनीय+आयु	अ.	४९	गोत्र+गोत्र	„
३०	मोहनीय+नाम	„	५०	गोत्र+ज्ञानावरण	पु. (७)
३१	मोहनीय+गोत्र	„	५१	गोत्र+दर्शनावरण	„ (१५)
३२	मोहनीय+अन्तराय	„	५२	गोत्र+वेदनीय	„ (२३)
३३	आयु+आयु	अ.	५३	गोत्र+मोहनीय	„ (३१)
३४	आयु+ज्ञानावरण	पु. (५ से)	५४	गोत्र+आयु	„ (३९)
३५	आयु+दर्शनावरण	„ (१३से)	५५	गोत्र+नाम	„ (४७)
३६	आयु+वेदनीय	„ (२१से)	५६	गोत्र+अन्तराय	अ.
३७	आयु+मोहनीय	„ (२९से)	५७	अन्तराय+अन्तराय	„
३८	आयु+नाम	अ.	५८	अन्तराय+ज्ञानावरण	पु. (८)
३९	आयु+गोत्र	„	५९	अन्तराय+दर्शनावरण	„ (१६)
४०	आयु+अन्तराय	„	६०	अन्तराय+वेदनीय	„ (२४)
४१	नाम+नाम	„	६१	अन्तराय+मोहनीय	„ (३२)
४२	नाम+ज्ञानावरण	पु. (६ से)	६२	अन्तराय+आयु	„ (४०)
४३	नाम+दर्शनावरण	„ (१४ से)	६३	अन्तराय+नाम	„ (४८)
४४	नाम+वेदनीय	„ (२२ से)	६४	अन्तराय+गोत्र	„ (५६)

अब बन्धस्पर्शका अधिकार है ॥ २७ ॥

उसका अर्थ कहते हैं—

वह पांच प्रकारका है—औदारिकशरीरबन्धस्पर्श । इसी प्रकार वैक्रियिक, आहारक, तैजस और कार्मण शरीरबन्धस्पर्श । वह सब बन्धस्पर्श है ॥ २८ ॥

बध्नातीति बन्धः। औदारिकशरीरमेव बन्धः औदारिकशरीरबन्धः। तस्स बंधस्स फासो ओरालियसरीरबंधफासो णाम। एवं सव्वसरीरबंधफासाणं पि वत्तव्वं। कम्म-णोकम्म-फासा दव्वफासे अंतब्भावं गच्छमाणा पुध कादूण किमट्ठं परूविदा? कम्माणं कम्मेहि णोकम्माणं णोकम्मेहि णोकम्माणं कम्मेहि सह फासो अत्थि त्ति जाणावणट्ठं पुध परूवणा कदा। कम्मफासो बंधफासे अंतब्भावं गच्छमाणो किमट्ठं पुध परूविदो? णोकम्मबंधफासस्स कम्मबंधफासो कारणमिदि जाणावणट्ठं पुध परूविदो। संपहि एत्थ बंधफासभंगे वत्तइस्सामो। तं जहा— ओरालियसरीरणोकम्मपदेसा तिरिक्ख-मणुस्सेसु ओरालियसरीर-णोकम्मपदेसेहि फुसिज्जंति। १। ओरालियणोकम्मपदेसा तिरिक्ख-मणुस्सेसु वेउव्विय-णोकम्मपदेसेहि फुसिज्जंति। २। ओरालियसरीरणोकम्मपदेसा पमत्तसंजदट्ठाणे आहार-सरीरणोकम्मपदेसेहि फुसिज्जंति। ३। ओरालियसरीरणोकम्मपदेसा तिरिक्ख-मणुस्सेसु तेजासरीरणोकम्मपदेसेहि फुसिज्जंति। ४। ओरालियसरीरणोकम्मपदेसा तिरिक्ख-मणुस्सेसु कम्मइयसरीरपदेसेहि फुसिज्जंति। ५। एवमोरालियसरीरस्स पंचभंगा।

संपहि वेउव्वियसरीरणोकम्मपदेसा देव-णेरइएसु वेउव्वियसरीरणोकम्मपदेसेहि फुसिज्जंति

जो बांधता है वह बन्ध कहलाता है, औदारिकशरीर ही बन्ध औदारिकशरीरबन्ध है, उस बन्धका स्पर्श औदारिकशरीरबन्धस्पर्श है। इसी प्रकार सब शरीरबन्धस्पर्शोंका भी कथन करना चाहिये।

शंका—कर्मस्पर्श और नोकर्मस्पर्श द्रव्यस्पर्शमें अन्तर्भावको प्राप्त होते हैं। फिर इनका अलगसे कथन क्यों किया है?

समाधान—कर्मोंका कर्मोंके साथ, नोकर्मोंका नोकर्मोंके साथ और नोकर्मोंका कर्मोंके साथ स्पर्श होता है, इस बातका ज्ञान करानेके लिये इनका अलगसे कथन किया गया है।

शंका—कर्मस्पर्श बन्धस्पर्शमें अन्तर्भावको प्राप्त होता है, फिर उसका पृथक्से कथन क्यों किया है?

समाधान—कर्मबन्धस्पर्श नोकर्मबन्धस्पर्शका कारण है, यह जतलानेके लिये उसका अलगसे कथन किया है।

अब यहां बन्धस्पर्शके भंग बतलाते हैं। यथा—औदारिक शरीर नोकर्म प्रदेश तिर्यंच और मनुष्योंमें औदारिक शरीर नोकर्म प्रदेशोंके द्वारा स्पर्श किये जाते हैं। १। औदारिक शरीर नोकर्म प्रदेश तिर्यंच और मनुष्योंमें वैक्रियिक शरीर नोकर्म प्रदेशोंके द्वारा स्पर्श किये जाते हैं। २। औदारिक शरीर नोकर्म प्रदेश प्रमत्तसंयत गुणस्थानमें आहारक शरीर नोकर्म प्रदेशोंके द्वारा स्पर्श किये जाते हैं। ३। औदारिक शरीर नोकर्म प्रदेश तिर्यंच और मनुष्योंमें तैजस शरीर नोकर्म प्रदेशोंके द्वारा स्पर्श किये जाते हैं। ४। औदारिक शरीर नोकर्म प्रदेश तिर्यंच और मनुष्योंमें कार्मण शरीरके प्रदेशों द्वारा स्पर्श किये जाते हैं। ५। इस प्रकार औदारिक शरीरके पांच भंग होते हैं।

वैक्रियिक शरीर नोकर्म प्रदेश देव और नारकियोंमें वैक्रियिक शरीर नोकर्म प्रदेशोंके द्वारा

। १ । वेउव्वियसरीरणोकम्मपदेसा तिरिक्ख-मणुस्सेसु ओरालियसरीरणोकम्मपदेसेहि फुसिज्जंति । २ । वेउव्वियसरीरणोकम्मपदेसाणं पमत्तसंजदट्ठाणे आहारसरीरणोकम्मपदेसेहि सह फासो णत्थि । कुदो ? पमत्तसंजदस्स अणिमादिलद्धिसंपण्णस्स विउव्विदसमए आहारसरीरुट्ठावण-संभवाभावादो । वेउव्वियसरीरणोकम्मपदेसा चदुगदीसु तेयासरीरणोकम्मपदेसेहि फुसिज्जंति । ३ । वेउव्वियसरीरणोकम्मपदेसा चदुगदीसु कम्मइयसरीरपदेसेहि फुसिज्जंति । ४ । एवं वेउ-व्वियसरीरस्स चत्तारि भंगा । पुणो एदेसु पुव्वभंगेसु पक्खित्तेसु णव भंगा होंति । ९ ।

आहारसरीरणोकम्मपदेसा पमत्तसंजदट्ठाणे आहारसरीरणोकम्मपदेसेहि फुसिज्जंति । १ । आहारसरीरणोकम्मपदेसा पमत्तसंजदेसु ओरालियसरीरणोकम्मपदेसेहि फुसिज्जंति । २ । आहार-वेउव्वियसरीराणमण्णोण्णेहि णत्थि फासो, आहारसरीरमुट्ठाविदकाले विउव्वणा-भावादो । आहारसरीरणोकम्मपदेसा पमत्तसंजदट्ठाणे तेयासरीरणोकम्मपदेसेहि फुसिज्जंति, अणिस्सरणप्पयस्स तेजइयसरीरस्स णोकम्माणं सव्वद्धं जीवे सत्तुवलंभादो । ३ । आहारसरीर-णोकम्मपदेसा पमत्तसंजदेसु कम्मइयसरीरकम्मपदेसेहि[1] फुसिज्जंति, अट्ठण्णं कम्माणं पमत्त-संजदेसु सव्वद्धं सत्तुवलंभादो । ४ । एवमाहारसरीरस्स चत्तारि भंगा । एदेसु पुव्वभंगेसु पक्खित्तेसु तेरस भंगा होंति । १३ ।

स्पर्श किये जाते हैं । १ । वैक्रियिक शरीर नोकर्म प्रदेश तिर्यंच और मनुष्योंमें औदारिक शरीर नोकर्म प्रदेशोंके द्वारा स्पर्श किये जाते हैं । २ । वैक्रियिक शरीर नोकर्म प्रदेशोंका प्रमत्तसंयत गुणस्थानमें आहारक शरीर नोकर्म प्रदेशोंके साथ स्पर्श नहीं है, क्योंकि अणिमा आदि लब्धियोंसे सम्पन्न प्रमत्तसंयत जीवके विक्रिया करते समय आहारक शरीरकी उत्पत्ति सम्भव नहीं है । वैक्रियिक शरीर नोकर्म प्रदेश चारों गतियोंमें तैजस शरीर नोकर्म प्रदेशोंके द्वारा स्पर्श किये जाते हैं । ३ । वैक्रियिक शरीर नोकर्म प्रदेश चारों गतियोंमें कार्मण शरीर प्रदेशोंके द्वारा स्पर्श किये जाते हैं । ४ । इस प्रकार वैक्रियिक शरीरके चार भंग होते हैं । फिर इन्हें पूर्वोक्त पांच भंगोंमें मिला देनेपर नौ भंग होते हैं । ९ ।

आहारक शरीर नोकर्म प्रदेश प्रमत्तसंयत गुणस्थानमें आहारक शरीर नोकर्म प्रदेशोंके द्वारा स्पर्श किये जाते हैं । १ । आहारक शरीर नोकर्म प्रदेश प्रमत्तसंयत गुणस्थानमें औदारिक शरीर नोकर्म प्रदेशोंके द्वारा स्पर्श किये जाते हैं । २ । आहारक शरीर और वैक्रियिक शरीरका परस्परमें स्पर्श नहीं होता, क्योंकि, आहारक शरीरके उत्थानकालमें विक्रिया नहीं होती । आहारक शरीर नोकर्म प्रदेश प्रमत्तसंयतगुणस्थानमें तैजस शरीर नोकर्म प्रदेशोंके द्वारा स्पर्श किये जाते हैं, क्योंकि अनिःसरणात्मक तैजस शरीरके नोकर्म प्रदेशोंका जीवके सदाकाल सत्त्व पाया जाता है । ३ । आहारक शरीर नोकर्म प्रदेश प्रमत्तसंयत जीवोंमें कार्मण शरीर नोकर्म प्रदेशोंके द्वारा स्पर्श किये जाते हैं, क्योंकि आठों कर्मोंकी प्रमत्तसंयत जीवोंके सदाकाल सत्ता पाई जाती है । ४ । इस प्रकार आहारक शरीरके चार भंग होते हैं । इन्हें पहलेके नौ भंगोंमें मिलानेपर तेरह भंग होते हैं । १३ ।

---

१ ताप्रतौ '-सरीरणोकम्म' इति पाठः ।

तेयासरीरणोकम्मपदेसा चउग्गईसु तेयासरीरणोकम्मसरीरेहि[1] फुसिज्जंति । १ । तेयासरीरणोकम्मपदेसा तिरिक्ख-मणुस्सेसु ओरालियसरीरणोकम्मपदेसेहि फुसिज्जंति । २ । तेयासरीरणोकम्मपदेसा देव-णेरइएसु वेउव्वियसरीरणोकम्मपदेसेहि फुसिज्जंति । ३ । तेयासरीरणोकम्मपदेसा पमत्तसंजदेसु आहारसरीरणोकम्मपदेसेहि फुसिज्जंति । ४ । तेयासरीरणोकम्मपदेसा चउग्गईसु कम्मइयसरीरकम्मपदेसेहि फुसिज्जंति । ५ । एवं तेयासरीरस्स पंच भंगा होंति । एदेसु पुव्वभंगेसु पक्खित्तेसु अट्ठारस भंगा होंति । १८ ।

कम्मइयसरीरकम्मपदेसा चउग्गईसु कम्मइयसरीरकम्मपदेसेहि फुसिज्जंति । १ । कम्मइयसरीरकम्मपदेसा तिरिक्ख-मणुस्सेसु ओरालियसरीरणोकम्मपदेसेहि फुसिज्जंति । २ । कम्मइयसरीरकम्मपदेसा देव-णेरइएसु वेउव्वियसरीरणोकम्मपदेसेहि फुसिज्जंति । ३ । कम्मइयसरीरकम्मपदेसा पमत्तसंजदट्ठाणे आहारसरीरणोकम्मपदेसेहि फुसिज्जंति । ४ । कम्मइयसरीरकम्मपदेसा चउग्गईसु तेयासरीरणोकम्मपदेसेहि फुसिज्जंति । ५ । एवं कम्मइयसरीरस्स पंच भंगा । एदेसु पुव्वभंगेसु पक्खित्तेसु तेवीसभंगा होंति । २३ ।

एदेसु अपुणरुत्तभंगा चोद्दस हवंति । १४ । अवसेसा णव पुणरूत्तभंगा । ९ । एवं

तैजस शरीर नोकर्म प्रदेश चारों गतियोंमें तैजस शरीर नोकर्म प्रदेशोंके द्वारा स्पर्श किये जाते हैं । १ । तैजस शरीर नोकर्म प्रदेश तिर्यंच और मनुष्योंमें औदारिक शरीर नोकर्म प्रदेशोंके द्वारा स्पर्श किये जाते हैं । २ । तैजस शरीर नोकर्म प्रदेश देव और नारकियोंमें वैक्रियिक शरीर नोकर्म प्रदेशों द्वारा स्पर्श किये जाते हैं । ३ । तैजस शरीर नोकर्म प्रदेश प्रमत्तसंयत जीवोंमें आहारक शरीर नोकर्म प्रदेशों द्वारा स्पर्श किये जाते हैं । ४ । तैजस शरीर नोकर्म प्रदेश चारों गतियोंमें कार्मण शरीर कर्म प्रदेशों द्वारा स्पर्श किये जाते हैं । ५ । इस प्रकार तैजस शरीरके पांच भंग होते हैं । इन्हें पहिलेके १३ भंगोंमें मिलानेपर अठारह भंग होते हैं । १८ ।

कार्मण शरीर कर्म प्रदेश चारों गतियोंमें कार्मण शरीर कर्मप्रदेशों द्वारा स्पर्श किये जाते हैं । १ । कार्मण शरीर कर्मप्रदेश तिर्यंच और मनुष्योंमें औदारिक शरीर नोकर्म प्रदेशों द्वारा स्पर्श किये जाते हैं । २ । कार्मण शरीर कर्म प्रदेश देव और नारकियोंमें वैक्रियिक शरीर नोकर्म प्रदेशों द्वारा स्पर्श किये जाते हैं । ३ । कार्मण शरीर कर्म प्रदेश प्रमत्तसंयत गुणस्थानमें आहारक शरीर नोकर्म प्रदेशों द्वारा स्पर्श किये जाते हैं । ४ । कार्मण शरीर कर्म प्रदेश चारों गतियोंमें तैजस शरीर नोकर्म प्रदेशों द्वारा स्पर्श किये जाते हैं । ५ । इस प्रकार कार्मण शरीरके पांच भंग होते हैं । इन्हें पहलेके १९ भंगोंमें मिलानेपर तेवीस भंग होते हैं । २३ ।

इनमें अपुनरुक्त भंग चौदह होते हैं । १४ । अवशेष नौ भंग पुनरुक्त होते हैं । ९ ।

१ ताप्रतौ ' सरीरे (पदेसे) हि ' इति पाठः । २ ताप्रतौ ' -सरीरणोकम्म ' इति पाठः ।

कम्म-णोकम्मसंणियासो परूविदो । कम्मसंणियासो पुण पुव्वं परूविदो त्ति पुणरुत्तभएण ण परूविदो । एवं वन्धफासो गदो ।

जो सो भवियफासो णाम ॥ २९ ॥

तस्स अत्थो वुच्चदे—

जहा विस-कूड-जंत-पंजर-कंदय-वग्गुरादीणि कत्तारो समोद्दियारो य भवियो फुसणदाए णो य पुण ताव तं फुसदि सो सव्वो भवियफासो णाम ॥ ३० ॥

विसं सुप्पसिद्धं । कागुंदुरादिधरणट्ठमोद्दिदं कूडं णाम । सीह-वग्घधरणट्ठमोद्दिदमब्भंतरकयच्छालियं जंतं णाम । तित्तिर-लावादि[1]धरणट्ठं रइदकलिंजं[2]कलावो पंजरो णाम । हत्थिधरणट्ठमोद्दिदवारिबंधो कंदओ णाम । हरिण-वराहादिमारणट्ठमोद्दिदकंदा वा कंदओ णाम । वग्गुरा सुप्पसिद्धा । इच्चादीणि दव्वाणि इच्छिदवत्थुफुसणट्ठमोद्दिदाणि भवियफासो णाम । एदेसिं जंतादीणं कत्तारो करेंता ओद्दिदारो य एदेसिं जंतादीणमिच्छदपदेसे ट्ठवेंता च भवियफासो णाम, कारणे कज्जुवयारादो । किंणिबंधणो जंतादीणं फासववएसो त्ति

इस प्रकार कर्म और नोकर्म संनिकर्षका कथन किया । कर्मसंनिकर्षका कथन तो पहले ही कर आये हैं, इसलिये पुनरुक्त दोषके भयसे उसका यहां पुनः कथन नहीं किया । इस प्रकार वन्धस्पर्शका कथन समाप्त हुआ ।

अब भव्यस्पर्शका अधिकार है ॥ २९ ॥

उसका अर्थ कहते हैं—

यथा— विष, कूट, यन्त्र, पिंजरा, कन्दक और पशुको फँसानेका जाल आदि तथा इनके करनेवाले और इन्हें इच्छित स्थानमें रखनेवाले स्पर्शनके योग्य होंगे परन्तु अभी उन्हें स्पर्श नहीं करते; वह सब भव्य स्पर्श है ॥ ३० ॥

विष सुप्रसिद्ध है । कौआ और चूहा आदिके धरनेके लिये जो वनाया जाता है उसे कूट कहते हैं । जो सिंह और व्याघ्र आदिके धरनेके लिये वनाया जाता है और जिसके भीतर वकरा रखा जाता है उसे यन्त्र कहते हैं । तीतर और लाव आदिके पकड़नेके लिये जो अनेक छोटी छोटी पंचे लेकर वनाया जाता है उसे पिंजरा कहते हैं । हाथीके पकड़नेके लिये जो वारिवन्ध वनाया जाता है उसे कन्दक कहते हैं । अथवा हरिण और सूअर आदिके मारनेके लिये जो फंदा तैयार किया जाता है उसे कन्दक कहते हैं । वग्गुरा प्रसिद्ध ही है । इच्छित वस्तुके स्पर्शन अर्थात् पकड़नेके लिये इत्यादि द्रव्योंका रखना भव्यस्पर्श कहलाता है । तथा इन यन्त्रादिके करनेवाले, और 'ओदिदारो' अर्थात् इन यन्त्रादिको इच्छित स्थानपर रखनेवाले भी भव्यस्पर्श कहलाते हैं, क्योंकि यहां कारणमें कार्यका उपचार किया गया है ।

यन्त्रादिकको स्पर्श संज्ञा किस निमित्तसे प्राप्त होती है, ऐसा पूछनेपर कारणका कथन

१ अप्रतौ 'लावदि' इति पाठः । २ प्रतिपु 'कलिंच' इति पाठः ।

भणिदे कारणपरूवणट्ठमाह— 'भवियो फुसणदाए णो य पुण ताव तं फुसदि' भवियो जोग्गो फुसणदाए पासस्स णो पुण ताव तं इच्छिददव्वं फुसदि तस्स भवियफासो त्ति सण्णा। एवं भवियफासो गदो।

जो सो भावफासो णाम ॥ ३१ ॥

तस्स अत्थपरूवणं कस्सामो—

उवजुत्तो पाहुडजाणओ सो सव्वो भावफासो णाम ॥ ३२ ॥

फासपाहुडं णादूण जो तत्थ उवजुत्तो सो भावफासो त्ति घेत्तव्वो। एदं सुत्तं देसामासियं, तेण आगमेण विणा पासुवजोगजुत्तो जीव-पोग्गलादिदव्वाणं णाणादिभावेहि फासो य भावफासो त्ति घेत्तव्वो। एवं भावफासो गदो।

करनेके लिये कहा है कि 'भवियो फुसणदाए णो य पुण ताव तं फुसदि'। अर्थात् जो स्पर्शनके योग्य तो है, परन्तु उस इच्छित वस्तुको स्पर्श नहीं करता उसकी 'भव्यस्पर्श' संज्ञा है।

इस प्रकार भव्यस्पर्शका कथन समाप्त हुआ।

विशेषार्थ—जो पर्याय भविष्यमें होनेवाली होती है उसे भव्य या भावी कहते हैं। यहां स्पर्शका प्रकरण है, इसलिये भव्यस्पर्शका यह अर्थ होता है कि जो भविष्यमें स्पर्श पर्यायसे युक्त होगा वह भव्यस्पर्श है। इसके उदाहरण स्वरूप सूत्रमें विष व यन्त्रादिक पदार्थ लिये गये हैं। इन पदार्थोंका निर्माण मुख्यतया अन्य जीवोंको पकड़नेके लिये किया जाता है, इसलिये इनकी भव्यस्पर्श संज्ञा होती है। इसी प्रकार कारणमें कार्यका उपचार करके इन विषादिकके निर्माता और इन्हें इच्छित स्थानपर रखनेवाले भी भव्य स्पर्श कहलाते हैं। द्रव्य निक्षेपमें आगे होनेवाली पर्याय और उसके कारण दोनोंका ग्रहण होता है। उसी प्रकार यहां भी समझना चाहिये।

अब भावस्पर्शका अधिकार है ॥ ३१ ॥

इसका अर्थ कहते हैं—

जो स्पर्शप्राभृतका ज्ञाता उसमें उपयुक्त है वह सब भावस्पर्श है ॥ ३२ ॥

स्पर्शप्राभृतका जानकर जो उसमें उपयुक्त है वह सब भावस्पर्श है, ऐसा यहां ग्रहण करना चाहिये। यह सूत्र देशामर्शक है, इसलिये जो आगमके विना स्पर्शके उपयोगसे युक्त है और जो जीव, पुद्गल आदि द्रव्योंका ज्ञानादि भावों द्वारा स्पर्श होता है वह भावस्पर्श है; ऐसा यहां ग्रहण करना चाहिये।

विशेषार्थ—आगम और नोआगमके भेदसे भावनिक्षेप दो प्रकारका होता है। भावस्पर्शमें ये दोनों भेद विवक्षित हैं। जो स्पर्शप्राभृतका ज्ञाता होकर उसमें उपयुक्त है वह पहला भावस्पर्श है, और जो स्पर्शप्राभृतका ज्ञाता नहीं भी है, किन्तु स्पर्शरूप उपयोगसे युक्त है वह दूसरा भावस्पर्श है। तथा जीव-पुद्गलादि द्रव्योंका जो ज्ञान आदि अपने अपने भावोंके द्वारा स्पर्श होता है वह भी दूसरा भावस्पर्श है। यह उक्त कथनका तात्पर्य है। यद्यपि सूत्रमें प्रथम प्रकारके भावस्पर्शका ही ग्रहण किया है, पर सूत्रको देशामर्शक मानकर यहां भावस्पर्शके अन्य भेदोंका भी विवेचन किया गया है।

इस प्रकार भावस्पर्शका कथन समाप्त हुआ।

एदेसिं फासाणं केण फासेण पयदं? कम्मफासेण पयदं ॥ ३३ ॥

एदं खंडगंथमज्झप्पविसयं पडुच्च कम्मफासे पयदमिदि भणिदं। महाकम्मपयडिपाहुडे पुण दव्वफासेण सव्वफासेण कम्मफासेण पयदं। कधमेदं णव्वदे? दिगंतरसुद्धीए दव्वफास-परूवणाए विणा तत्थ फासाणियोगस्स महत्ताणुववत्तीदो। जदि कम्मफासे पयदं तो कम्म-फासो सेसपण्णारसअणिओगद्दारेहि भूदबलिभयवदा सो एत्थ किण्ण परूविदो? ण एस दोसो, कम्मक्खंधस्स फासण्णिदस्स सेसाणिओगद्दारेहि परूवणाए कीरमाणाए वेयणाए परूविदत्थादो विसेसो णत्थि त्ति कादूण अकयतप्परूवणत्तादो[1]। जदि एवं अपुणरुत्ताणं सव्व-दव्वफासाणं एत्थ परूवणा किण्ण कदा? ण, पयदाए अज्झप्पविज्जाए अपयदअणज्झप्प-विज्जाए बहुणयगहणणिलीणाए परूवणाणुववत्तीदो।

एवं फासणिक्खेवे समत्ते फासे त्ति समत्तमणियोगद्दारं।

इन स्पर्शोंमेंसे प्रकृतमें कौन स्पर्श लिया गया है? प्रकृतमें कर्मस्पर्श लिया गया है ॥ ३३ ॥

अध्यात्मको विषय करनेवाले इस खण्ड ग्रन्थकी अपेक्षा कर्मस्पर्श प्रकरणप्राप्त हैं, ऐसा यहां कहा है। महाकर्मप्रकृतिप्राभृतमें तो द्रव्यस्पर्श, सर्वस्पर्श और कर्मस्पर्श इन तीनोंका प्रकरण है।

शंका—यह किस प्रमाणसे जाना जाता है?

समाधान—दिगन्तर शुद्धिमें द्रव्यस्पर्शका कथन किये विना वहां स्पर्श अनुयोगका महत्व नहीं बन सकता, इससे मालूम पड़ता है कि वहां द्रव्यस्पर्श, सर्वस्पर्श और कर्मस्पर्श इन तीनोंसे प्रयोजन है।

शंका— यदि प्रकृतमें कर्मस्पर्शसे प्रयोजन है तो भूतबलि भगवान्‌ने शेष पन्द्रह अनुयोग-द्वारोंका अवलम्बन लेकर उसका यहां कथन क्यों नहीं किया?

समाधान—यह कोई दोष नहीं है, क्योंकि स्पर्श संज्ञावाले कर्मस्कन्धका शेष अनुयोग-द्वारोंके द्वारा प्रतिपादन करनेवाले वेदना अधिकारमें कथन किया है। उसके सिवाय और कोई विशेष नहीं है, ऐसा समझकर यहां उसका कथन नहीं किया है।

शंका—यदि ऐसा है तो सर्वस्पर्श और द्रव्यस्पर्श तो अपुनरुक्त थे, उनका यहां कथन क्यों नहीं किया?

समाधान—नहीं, क्योंकि यहां अध्यात्म विद्याका प्रकरण है, इसलिये अनेक नयोंकी विषयभूत अनध्यात्म विद्याका प्रकृतमें कथन करना नहीं बन सकता।

विशेषार्थ—यहां स्पर्श निक्षेप तेरह प्रकारका कहा है। उनमेंसे प्रकृतमें कर्मस्पर्श लिया गया है। प्रश्न यह है कि यदि प्रकृतमें कर्मस्पर्श लिया गया है तो इसका नामकर्मके सिवा शेष कर्मनयविभाषणता व कर्मनामविधान आदि पन्द्रह अनुयोगद्वारोंके द्वारा अवश्य कथन करना था। समाधान यह है कि पहले वेदना अनुयोगद्वारमें वेदना शब्दसे कर्मका ही ग्रहण किया है।

१ ताप्रतौ 'अकयत्तरूवणत्तादो' इति पाठः। २ प्रतिपु 'गहणा-' इति पाठः।

कम्माणिओगद्दारं

मुणिसुव्वयजिणवसहं सुव्वयमुणिवसहसंथुअं णमिउं।
कम्माणियोयमिणमो वोच्छमणेयत्थ-गंथगयं ॥ १ ॥

कम्मे त्ति ॥ १ ॥

कम्मे त्ति जं पुव्वुद्दिट्ठमणियोगद्दारं तस्स परूवणं कस्सामो त्ति अहियारसंभालण-मेदेण कदं।

....

इसलिये वहां इसका विवेचन हो चुका है, अतः पुनः इसका विवेचन करना उचित न जानकर यहां उसका कथन नहीं किया है। प्रसंगसे एक प्रश्न यह भी किया गया है कि जब इस अधिकारमें स्पर्शकी मुख्यता है तो सर्वस्पर्श और द्रव्यस्पर्श जो अपुनरुक्त हैं और जिनका अन्यत्र कथन नहीं किया गया है, उनका यहां अवश्य कथन करना था। इसका समाधान करते हुए वीरसेन स्वामीने जो कुछ भी कहा है वह मार्मिक है। उनका कहना है कि यह अध्यात्म शास्त्र है, इसलिये इसमें अन्य विषयोंके कथनको विशेष अवकाश नहीं है। अध्यात्म शास्त्रका अर्थ हैं आत्माकी विविध अवस्थाओं और उनके मुख्य निमित्तोंका प्रतिपादन करनेवाला शास्त्र। यह उसका व्यापक अर्थ है। वैसे जीवकी विविध अवस्थाओंमें मूल वस्तुका ज्ञान करानेवाला शास्त्र ही अध्यात्म शास्त्र कहलाता है, परन्तु कार्य-कारणभावकी दृष्टिसे विचार करनेपर उन विविध अवस्थाओं और उनके मूल निमित्तोंका प्रतिपादन करनेवाले शास्त्रोंका भी इसमें अन्तर्भाव हो जाता है। इस दृष्टिसे विचार करनेपर जो चौदह मार्गणाओंमेंसे प्रारम्भकी चार मार्गणाओंको द्रव्य मार्गणायें कहते हैं वे सिद्धान्त ग्रन्थोंके अभिप्राय और उनकी वर्णनशैलीसे अनभिज्ञ हैं, यही कहना पड़ता है। सिद्धान्त ग्रन्थोंमें भाव मार्गणाओंका ही विवेचन किया गया है, यह बात खुद्दाबंधके चौदह मार्गणाओंका विवेचन करनेवाले सूत्रोंसे भी स्पष्ट जानी जाती है। यही कारण है कि यहां तेरह प्रकारके स्पर्शोंका स्वरूप कह करके उनका विशेष व्याख्यान नहीं किया है।

इस प्रकार स्पर्शनिक्षेपका कथन समाप्त होनेपर स्पर्श अनुयोगद्वारका कथन समाप्त हुआ।

उत्तम व्रतधारी श्रेष्ठ मुनियोंने जिनकी स्तुति की है ऐसे मुनिसुव्रत नामक जिनेन्द्र देवको नमस्कार करके जिसके विविध अर्थ हैं, और जिसका विशद विवेचन अनेक ग्रन्थोंमें किया गया हैं, ऐसे इस कर्म अनुयोगद्वारका मैं (वीरसेन स्वामी) व्याख्यान करता हूं ॥ १ ॥

कर्मका अधिकार है ॥ १ ॥

' कर्म नामका जो अनुयोगद्वार पहले कह आये हैं उसका कथन करते हैं ' इस प्रकार ' कम्मे त्ति ' इस सूत्र द्वारा अधिकारकी सम्हाल की गई है।

तत्थ इमाणि सोलस अणियोगद्दाराणि णादव्वाणि भवंति— कम्मणिक्खेवे कम्मणयविभासणदाए कम्मणामविहाणे कम्मदव्वविहाणे कम्मखेत्तविहाणे कम्मकालविहाणे कम्मभावविहाणे कम्मपच्चयविहाणे कम्मसामित्तविहाणे कम्मकम्मविहाणे कम्मगइविहाणे कम्मअणंतर-विहाणे कम्मसंणियासविहाणे कम्मपरिमाणविहाणे कम्मभागाभाग-विहाणे कम्मअप्पाबहुए त्ति ॥ २ ॥

एदाणि सोलस चेव अणियोगद्दाराणि होंति, अण्णेसिमसंभवादो ।

कम्मणिक्खेवे त्ति ॥ ३ ॥

संशय-विपर्ययानध्यवसायस्थितं जीवं निश्चये क्षिपतीति निक्षेपः, अप्रकृतापोहन-मुखेन प्रकृतप्ररूपणाय अर्पितवाचकस्य वाच्यप्रमाणप्रतिपादनं वा निक्षेपः । तस्स णिक्खेवस्स अत्थो वुच्चदे—

दसविहे कम्मणिक्खेवे— णामकम्मे ठवणकम्मे दव्वकम्मे पओअकम्मे समुदाणकम्मे आधाकम्मे इरियावहकम्मे[1] तवोकम्मे किरियाकम्मे भावकम्मे चेदि ॥ ४ ॥

दसविहो कम्मणिक्खेवो ।

कम्मणयविभासणदाए को णओ के कम्मे इच्छदि ? ॥ ५ ॥

उसमें ये सोलह अनुयोगद्वार ज्ञातव्य हैं— कर्मनिक्षेप, कर्मनयविभाषणता, कर्म-नामविधान, कर्मद्रव्यविधान, कर्मक्षेत्रविधान, कर्मकालविधान, कर्मभावविधान, कर्म-प्रत्ययविधान, कर्मस्वामित्वविधान, कर्मकर्मविधान, कर्मगतिविधान, कर्मअनन्तरविधान, कर्मसंनिकर्षविधान, कर्मपरिमाणविधान, कर्मभागाभागविधान और कर्मअल्पबहुत्व ॥ २ ॥

प्रकृतमें ये सोलह ही अधिकार होते हैं, क्योंकि इनके सिवा अन्य अधिकार यहां सम्भव नहीं हैं ।

अब कर्मनिक्षेपका अधिकार है ॥ ३ ॥

जो संशय, विपर्यय और अनध्यवसायमें स्थित जीवको किसी एक निर्णयपर पहुंचाता है उसे निक्षेप कहते हैं । या अप्रकृत अर्थके निराकरण द्वारा प्रकृत अर्थका कथन करनेके लिये मुख्य वाचकके वाच्यार्थकी प्रमाणताका प्रतिपादन करता है उसे निक्षेप कहते हैं । अब उस निक्षेपका अर्थ कहते हैं—

कर्मनिक्षेप दस प्रकारका है— नामकर्म, स्थापनाकर्म, द्रव्यकर्म, प्रयोगकर्म, समवदान-कर्म, अधःकर्म, ईर्यापथकर्म, तपःकर्म, क्रियाकर्म और भावकर्म ॥ ४ ॥

इस प्रकार कर्मनिक्षेपके ये दस प्रकार हैं ।

अब कर्मनयविभाषणताका अधिकार है— कौन नय किन कर्मोंको स्वीकार करता है ? ॥ ५ ॥

---

१ ताप्रतौ 'इरियावथकम्मे' इति पाठः ।

णिक्खेवत्थमभणिय णयविभासणा किमट्ठं कीरदे ? ण, णयविभासणाए विणा णिक्खेवत्थस्स अवगमोवायाभावादो । उत्तं च—

उच्चारिदम्मि दु पदे णिक्खेवं वा कयं तु दट्ठूण ।
अत्थं[1] णयंति ते तच्चदो[2] तम्हा णया भणिदा ॥ १ ॥ त्ति

तम्हा णिक्खेवत्थपरूवणादो पुव्वमेव णयविभासणा कीरदे ।

णेगम-ववहार-संगहा सव्वाणि ॥ ६ ॥

एत्थ इच्छंति त्ति अज्झाहारो कायव्वो । कधमेदेसु संगह-ववहारणएसु दव्वट्ठिएसु भावणिक्खेवस्स संभवो ? ण, दव्वादो भावस्स पुधाणुवलंभेण दव्वस्सेव भावत्तसिद्धीदो ।

उजुसुदो ट्ठवणकम्मं णेच्छदि ॥ ७ ॥

कुदो ? संकप्पवसेण अण्णस्स अण्णसरूवेण परिणामविरोहादो सव्वदव्वाणं सरिसत्ता-

---

शंका—निक्षेपार्थका कथन न करके पहले नयों द्वारा विशेष व्याख्यान किसलिये किया जाता है ?

समाधान—नहीं, क्योंकि नयों द्वारा विशेष व्याख्यान किये विना निक्षेपार्थका ज्ञान करानेका अन्य कोई उपाय नहीं है । कहा भी है—

उच्चारण किये गये पदमें जो निक्षेप होता है उसे देखकर वे अर्थका तत्त्वतः निर्णय करा देते हैं, इसलिये उन्हें नय कहा है ॥ १ ॥

इसलिये निक्षेपार्थका कथन करनेके पहले ही नयोंका व्याख्यान किया जाता है ।

नैगम, व्यवहार और संग्रहनय सब कर्मोंको स्वीकार करते हैं ॥ ६ ॥

इस सूत्रमें 'इच्छंति' पदका अध्याहार करना चाहिये ।

शंका—संग्रहनय और व्यवहार नय ये दोनों द्रव्यार्थिक नय हैं, इनमें भावनिक्षेप कैसे सम्भव है ?

समाधान—नहीं, क्योंकि द्रव्यसे भाव पृथक् नहीं पाया जाता, इसलिये द्रव्यके ही भावपना सिद्ध होता है ।

विशेषार्थ—वर्तमान पर्याय विशिष्ट द्रव्यको ही भाव कहते हैं । द्रव्यसे स्वतन्त्र भाव नहीं पाया जाता । इसीसे भावनिक्षेपको संग्रहनय और व्यवहारनयका विषय कहा है । अन्यत्र जहां भावनिक्षेप केवल पर्यायार्थिक नयका विषय कहा गया है, वहां द्रव्यकी प्रधानता न हो कर मात्र पर्याय विवक्षित की गई है ।

ऋजुसूत्र नय स्थापना कर्मको स्वीकार नहीं करता ॥ ७ ॥

क्योंकि, स्थापनामें केवल संकल्पके द्वारा एक वस्तुको दूसरे रूप मान लिया जाता है किन्तु अन्यका अन्यरूपसे परिणमन माननेमें विरोध आता है । सादृश्यके आधारसे स्थापन करनेपर भी यथार्थतः समस्त द्रव्योंमें कहीं समानता नहीं पाई जाती ।

---

१ अ-ताप्रत्योः 'अद्धं' इति पाठः । २ प्रतिपु 'तच्चगो' इति पाठः ।

भावादो च। थंभादिसु सरिसत्तमुवलब्भदि त्ति चे— ण, भिण्णदेसट्ठियाणं भिण्णारंभयदव्वाणं सरिसत्तविरोहादो। उजुसुदस्स पज्जवट्ठियस्स कधं दव्वादिणिक्खेवा संभवंति? ण, असुद्धे वंजणपज्जवट्ठियउजुसुदणए तेसिं संभवस्स विरोहाभावादो।

सद्दणओ णामकम्मं भावकम्मं च इच्छदि ॥ ८ ॥

सद्दणए सुद्धपज्जवट्ठिए कधं णामणिक्खेवो? ण, णामेण विणा ववहारो ण घडदि त्ति तस्स अत्थित्तब्भुवगमादो। एवं णयविभासणा गदा।

जं तं णामकम्मं णाम ॥ ९ ॥

तस्स अत्थविवरणं कस्सामो—

तं जीवस्स वा अजीवस्स वा जीवाणं वा अजीवाणं वा जीवस्स च अजीवस्स च जीवस्स च अजीवाणं च जीवाणं च

शंका—स्तम्भ आदिमें समानता देखी जाती है?

समाधान—नहीं, क्योंकि जो पदार्थ भिन्न देशमें स्थित हैं और जिनके निर्माण सम्बन्धी मूल द्रव्य भिन्न हैं उनको सदृश माननेमें विरोध आता हैं।

शंका—जब कि ऋजुसूत्र नय पर्यायार्थिक है, तब उसमें द्रव्यादि निक्षेप कैसे सम्भव हो सकते हैं?

समाधान— नहीं, क्योंकि अशुद्ध व्यञ्जनपर्यायार्थिक ऋजुसूत्र नयमें उनको विषयरूपसे सम्भव माननेमें कोई विरोध नहीं आता।

विशेषार्थ—स्थापना निक्षेपमें 'वह यह है' इस प्रकारके संकल्पकी मुख्यता रहती है। किन्तु ऋतुसूत्र नय न तो दोको ही ग्रहण करता है, और न औपचारिक सादृश्यको ही। यही कारण है कि स्थापना निक्षेप ऋजुसूत्रका विषय नहीं कहा है। द्रव्यनिक्षेप व्यञ्जन पर्यायकी प्रधानतासे अशुद्ध ऋजुसूत्रका विषय कहा गया है।

शब्दनय नामकर्म और भावकर्मको स्वीकार करता है ॥ ८ ॥

शंका—शुद्ध पर्यायार्थिक शब्दनयका नामनिक्षेप विषय कैसे हो सकता है?

समाधान—नहीं, क्योंकि नामके विना किसी प्रकारका व्यवहार घटित नहीं होता, इसलिये शब्दनयके विषयरूपसे नामनिक्षेपका अस्तित्व स्वीकार किया गया है।

इस प्रकार नयविभापणता अधिकार समाप्त हुआ।

अब नामकर्मका अधिकार है ॥ ९ ॥

इसके अर्थका खुलासा करते हैं—

एक जीव, एक अजीव, नाना जीव, नाना अजीव, एक जीव और एक अजीव, एक जीव और नाना अजीव, नाना जीव और एक अजीव तथा नाना जीव और नाना अजीव;

अजीवस्स च जीवाणं च अजीवाणं च जस्स णामं कीरदि कम्मे त्ति तं सव्वं णामकम्मं णाम ॥ १० ॥

एदे जीवादी अट्ठ वि णामस्स आधारभूदा परूविदा । एदेसु अट्ठसु वट्टमाणो कम्मसद्दो णामकम्मे त्ति भणिदे कधं सद्दस्स कम्मववएसो ? ण, कुणइ कीरदि त्ति तस्स कम्मत्तसिद्धीदो ।

जं तं ठवणकम्मं णाम ॥ ११ ॥

तस्स अत्थपरूवणं कस्सामो—

तं कट्ठकम्मेसु वा चित्तकम्मेसु वा पोत्तकम्मेसु वा लेप्पकम्मेसु वा लेणकम्मेसु वा सेलकम्मेसु वा गिहकम्मेसु वा भित्तिकम्मेसु वा दंतकम्मेसु वा भेंडकम्मेसु वा अक्खो वा वराडओ वा जे चामण्णे एवमादिया ठवणाए ठविज्जदि कम्मे त्ति तं सव्वं ठवणकम्मं णाम ॥ १२ ॥

इनमेंसे जिसका कर्म ऐसा नाम रखा जाता है वह सब नामकर्म है ॥ १० ॥

ये जीवादि आठों ही 'नाम'के आधारभूत पदार्थ कहे गये हैं।

शंका—जब कि इन आठोंमें विद्यमान कर्म शब्द नामकर्म कहा जाता है, तब शब्दको कर्म संज्ञा कैसे प्राप्त हो सकती है ?

समाधान—नहीं, क्योंकि 'कुणइ' जो करता है और 'कीरइ' जो किया जाता है, इस दो प्रकार व्युत्पत्तिके अनुसार शब्दमें कर्म संज्ञाकी सिद्धि हो जाती है।

विशेषार्थ— लोकमें मुख्य पदार्थ दो हैं जीव और अजीव। इनके एक और अनेकके विकल्पसे प्रत्येक और संयोगी कुल भंग आठ होते हैं जो नामके आधारभूत पदार्थ कहे गये हैं। प्रश्न यह है कि जब इन पदार्थोंमें कर्मका कर्ता जीव भी है और जीव द्वारा कर्मरूप किया जानेवाला अजीव भी है, तब इन दोनोंके वाचक पृथक् शब्दोंको कर्म कैसे कहा ? इसका उत्तर यह है कि कर्मका अर्थ दोनों प्रकार किया जा सकता है, करनेवालेके अर्थमें भी 'कुणइ' जो करता है और किये जानेवालेके अर्थमें भी 'कीरइ' जो किया जाता है। इस प्रकार दोनों अर्थोंमें कर्मपना सिद्ध हो जाता हैं।

अब स्थापनाकर्मका अधिकार है ॥ ११ ॥

इसके अर्थका कथन करते हैं—

काष्ठकर्म, चित्रकर्म, पोतकर्म, लेप्यकर्म, लयनकर्म, शैलकर्म, गृहकर्म, भित्तिकर्म, दन्तकर्म और भेंडकर्म; इनमें तथा अक्ष और वराटक एवं इनको लेकर और जितने भी कर्मरूपसे एकत्वके संकल्प द्वारा स्थापना अर्थात् बुद्धिमें स्थापित किये जाते हैं वह सब स्थापनाकर्म है ॥ १२ ॥

कट्ठकम्मप्पहुडि जाव भेंडकम्मे[1] त्ति ताव एदेहि सब्भावट्ठवणा परूविदा। उवरिमेहि असब्भावट्ठवणा समुद्दिट्ठा। सब्भावासब्भावट्ठवणाणं को विसेसो? बुद्धीए ठविज्जमाणं वण्णाकारादीहि जमणुहरइ दव्वं तस्स सब्भावसण्णा। दव्व-खेत्त-वेयणावेयणादिभेदेहि भिण्णाणं पडिणिभ-पडिणिभेयाणं[2] कधं सरिसत्तमिदि चे— ण, पाएण सरिसत्तुवलंभादो। जमसरिसं दव्वं[3] तमसब्भावट्ठवणा। सव्वदव्वाणं सत्त-पमेयत्तादीहि सरिसत्तमुवलब्भदि त्ति चे— होदु णाम एदेहि सरिसत्तं, किंतु अप्पिदेहि वण्ण-कर-चरणादीहि सरिसत्ताभावं पेक्खिय असरिसत्तं उच्चदे। जहा फासणिक्खेवे कट्ठकम्मादीणमत्थो उत्तो तहा एत्थ वि वत्तव्वो। एदेसु सब्भावासब्भावदव्वेसु ठवणाए बुद्धीए अमा एयत्तेण[4] जं ठविज्जदि तं ठवणकम्मं णाम। कधमेदस्स कम्मत्तं? ण, छक्कारयप्पयकम्मसद्दाहिहेयाए ठवणाए तदविरोहादो। कधं कम्मस्स अणियदसंठाणस्स सब्भावट्ठवणा जुज्जदे? ण, कम्मसण्णिदे मणुस्से

काष्ठकर्मसे लेकर भेंडकर्म तक जितने कर्म निर्दिष्ट किये हैं उनके द्वारा सद्भावस्थापना कही गई है। और आगे जितने अक्ष-वराटक आदि कहे गये हैं उनके द्वारा असद्भावस्थापना निर्दिष्ट की गई हैं।

शंका—सद्भावस्थापना और असद्भावस्थापनामें क्या भेद है?

समाधान—बुद्धि द्वारा स्थापित किया जानेवाला जो पदार्थ वर्ण और आकार आदिके द्वारा अन्य पदार्थका अनुकरण करता है उसकी सद्भावस्थापना संज्ञा है।

शंका—द्रव्य, क्षेत्र, वेदना और अवेदना आदिके भेदसे भेदको प्राप्त हुए प्रतिनिभ और प्रतिनिभेय अर्थात् सदृश और सादृश्यके मूलभूत पदार्थोंमें सदृशता कैसे सम्भव है?

समाधान—नहीं, क्योंकि प्रायः कुछ बातोंमें इनमें सदृशता देखी जाती है।

जो असदृश द्रव्य है वह असद्भावस्थापना है।

शंका—सब द्रव्योंमें सत्त्व और प्रमेयत्व आदिके द्वारा समानता पाई जाती है?

समाधान—द्रव्योंमें इन धर्मोंकी अपेक्षा समानता भले ही रहे, किन्तु विवक्षित वर्ण, हाथ और पैर आदिकी अपेक्षा समानता न देखकर असमानता कही जाती है।

जिस प्रकार स्पर्शनिक्षेपमें काष्ठकर्म आदिका अर्थ कहा है, उसी प्रकार यहां भी कहना चाहिये। इन तदाकार और अतदाकार द्रव्योंमें स्थापना बुद्धि द्वारा एकत्वके संकल्परूपसे जो स्थापित किया जाता है वह स्थापना कर्म है।

शंका—इसे कर्मपना कैसे प्राप्त है?

समाधान—नहीं, क्योंकि छह कारकरूप कर्म शब्दके वाच्यस्वरूप स्थापनामें कर्मपना माननेमें कोई विरोध नहीं आता।

शंका—अनियत संस्थानवाले कर्मकी सद्भावस्थापना कैसे बन सकती है?

समाधान— नहीं, क्योंकि कर्म संज्ञावाले मनुष्यमें सद्भावस्थापना पाई जाती है।

१ आप्रतौ 'भिंडकम्मे' इति पाठः। २ प्रतिषु 'पडिणिविपडिणिवेयाणं' इति पाठः। ३ ताप्रतौ 'जमसरिसदव्वं' इति पाठः। ४ अप्रतौ 'अमा एत्तेण', आ-ताप्रत्योः 'अमायत्तेण' इति पाठः।

सब्भावट्ठवणाए उवलंभादो। एवं फासादिसु वि सब्भावट्ठवणाए संभवो वत्तव्वो। एवं ठवणकम्मपरूवणा गदा।

जं तं दव्वकम्मं णाम ॥ १३ ॥

तस्स¹ अत्थपरूवणं कस्सामो—

जाणि दव्वाणि सब्भावकिरियाणिप्फण्णाणि तं सव्वं दव्वकम्मं णाम ॥ १४ ॥

जीवदव्वस्स णाण-दंसणेहि परिणामो सब्भावकिरिया, पोग्गलदव्वस्स वण्ण-गंध-रस-फासविसेसेहि परिणामो सब्भावकिरिया, धम्मदव्वस्स जीव-पोग्गलदव्वाणं गमणागमण-हेउभावेण परिणामो सब्भावकिरिया, अधम्मदव्वस्स जीव-पोग्गलाणमवट्ठाणस्स² णिमित्तभावेण परिणामो सब्भावकिरिया, कालदव्वस्स जीवादिदव्वाणं परिणामस्स णिमित्तभावेण परिणामो सब्भावकिरिया, आयासदव्वस्स सेसदव्वाणमोगाहणदाणभावेण परिणामो सब्भावकिरिया। एवमादीहि किरियाहि जाणि णिप्फण्णाणि सहावदो चेव दव्वाणि तं सव्वं दव्वकम्मं णाम।

जं तं पओअकम्मं णाम ॥ १५ ॥

तस्स अत्थपरूवणं कस्सामो—

इसी प्रकार स्पर्शादिकोंमें भी सद्भावस्थापना घटित कर कहनी चाहिये। इस प्रकार स्थापना-कर्मप्ररूपणा समाप्त हुई।

अब द्रव्यकर्मका अधिकार है ॥ १३ ॥

उसके अर्थका कथन करते हैं—

जो द्रव्य सद्भावक्रियानिष्पन्न है वह सब द्रव्यकर्म है ॥ १४ ॥

जीव द्रव्यका ज्ञान-दर्शन आदिरूपसे होनेवाला परिणाम उसकी सद्भावक्रिया है। पुद्गल द्रव्यका वर्ण, गन्ध, रस और स्पर्श विशेष रूपसे होनेवाला परिणाम उसकी सद्भावक्रिया है। धर्मद्रव्यका जीव और पुद्गलोंके गमनागमनके हेतुरूपसे होनेवाला परिणाम उसकी सद्भावक्रिया है। अधर्मद्रव्यका जीव और पुद्गलोंके अवस्थानके निमित्तरूपसे होनेवाला परिणाम उसकी सद्भावक्रिया है। कालद्रव्यका जीवादि द्रव्योंके परिणामके निमित्तरूपसे होनेवाला परिणाम उसकी सद्भावक्रिया है। और आकाशद्रव्यका शेष द्रव्योंको अवगाहनदान देने रूपसे होनेवाला परिणाम उसकी सद्भावक्रिया है। इत्यादि क्रियाओं द्वारा जो द्रव्य स्वभावसे ही निष्पन्न हैं वह सब द्रव्यकर्म है।

विशेषार्थ—मूल द्रव्य छह हैं, और वे स्वभावसे परिणमनशील हैं। अपने अपने स्वभावके अनुरूप उनमें प्रतिसमय परिणमन क्रिया होती रहती है और क्रिया कर्मका पर्यायवाची है। यही कारण है कि यहां द्रव्यकर्म शब्दसे मूलभूत छह द्रव्योंका ग्रहण किया है।

अब प्रयोगकर्मका अधिकार है ॥ १५ ॥

उसके अर्थका कथन करते हैं—

---

१ प्रतिषु 'तत्थ' इति पाठः। २ अप्रतौ 'पोग्गलमव' इति पाठः।

तं तिविहं– मणपओअकम्मं वचिपओअकम्मं कायपओअ-कम्मं ॥ १६ ॥

जीवस्य मनसा सह प्रयोगः, वचसा सह प्रयोगः, कायेन सह प्रयोगश्चेति एवं पओओ तिविहो होदि । सो वि कमेण होदि, ण अक्कमेण[1]; विरोहादो । तत्थ मणपओओ चउव्विहो सच्चासच्च-उहयाणुहयमणपओअभेएण । तहा वचिपओओ वि चउव्विहो सच्चासच्च-उहयाणुहयवचिपओअभेएण । कायपओओ सत्तविहो ओरालियादिकायपओअ-भेएण । एदेसिं पओआणं सामिभूदजीवपरूवणट्ठमुत्तरसुत्तं भणदि—

तं संसारावत्थाणं वा[2] जीवाणं सजोगिकेवलीणं वा ॥ १७ ॥

तं तिविहं पओअकम्मं संसारावत्थाणं जीवाणं होदि त्ति उत्ते मिच्छाइट्ठिप्पहुडि-खीणकसायंताणं सजोगत्तं सिद्धं, उवरिमाणं संसारावत्थत्ताभावादो । कुदो? संसरन्ति अनेन घातिकर्म्मकलापेन चतसृषु गतिष्विति घातिकर्म्मकलापः संसारः । तस्मिन् तिष्ठन्तीति संसारस्थाः छद्मस्थाः भवन्ति । एवं संते सजोगिकेवलीणं जोगाभावे पत्ते सजोगीणं च तिण्णि वि जोगा होंति त्ति जाणावणट्ठं पुध सजोगिग्गहणं कदं ।

तं सव्वं पओअकम्मं णाम ॥ १८ ॥

वह तीन प्रकारका है— मनःप्रयोगकर्म, वचनप्रयोगकर्म और कायप्रयोगकर्म ॥ १६ ॥

जीवका मनके साथ प्रयोग, वचनके साथ प्रयोग और कायके साथ प्रयोग, इस प्रकार प्रयोग तीन प्रकारका है । उसमें भी वह क्रमसे ही होता है, अक्रमसे नहीं; क्योंकि ऐसा माननेपर विरोध आता है । उसमें सत्य, असत्य, उभय और अनुभय मनःप्रयोगके भेदसे मनःप्रयोग चार प्रकारका है । उसी प्रकार सत्य, असत्य, उभय और अनुभयके भेदसे वचनप्रयोग भी चार प्रकारका है । कायप्रयोग औदारिक आदि कायप्रयोगके भेदसे सात प्रकारका है ।

अब इन प्रयोगोंके कौन जीव स्वामी हैं, इस बातका ज्ञान करानेके लिये आगेका सूत्र कहते हैं—

वह संसार अवस्थामें स्थित जीवोंके और सयोगिकेवलियोंके होता है ॥ १७ ॥

तीन प्रकारका प्रयोगकर्म संसार अवस्थामें स्थित जीवोंके होता है, इस कथनसे मिथ्यादृष्टि गुणस्थानसे लेकर क्षीणकषाय गुणस्थान तकके जीव सयोगी सिद्ध होते हैं; क्योंकि आगेके जीवोंके संसार अवस्था नहीं पाई जाती । कारण कि जिस घातिकर्मसमूहके कारण जीव चारों गतियोंमें संसरण करते हैं वह घातिकर्मसमूह संसार है । और इसमें रहनेवाले जीव संसारस्थ अर्थात् छद्मस्थ हैं । ऐसी अवस्थामें सयोगिकेवलियोंके योगोंका अभाव प्राप्त होता है । अतः सयोगियोंके भी तीनों ही योग होते हैं, इस बातका ज्ञान करानेके लिये 'सयोगी' पदका अलगसे ग्रहण किया है ।

वह सब प्रयोग कर्म है ॥ १८ ॥

---

१ ताप्रतौ 'कमेण जो होदूण अक्कमेण' इति पाठः । २ ताप्रतौ 'वा' इत्येतत्पदं नास्ति ।

संसारत्थाणं बहूणं जीवाणं कधं तमिदि एमवयणणिद्देसो ? ण, पओअकम्मसण्णिद-जीवाणं जादिदुवारेण एयत्तं दट्ठूण एयवयणणिद्देसोववत्तीदो। कधं जीवाणं पओअकम्म-ववएसो ? ण, पओअं करेदि त्ति पओअकम्मसद्दणिप्पत्तीए कत्तारकारए कीरमाणाए जीवाणं पि पओअकम्मत्तसिद्धीदो।

जं तं समुदाणकम्मं णाम ॥ १९ ॥

तस्स अत्थविवरणं कस्सामो—

तं अट्ठविहस्स वा सत्तविहस्स वा छव्विहस्स वा कम्मस्स समुदाणदाए गहणं पवत्तदि तं सव्वं समुदाणकम्मं णाम ॥ २० ॥

समयाविरोधेन समवदीयते खंड्यत इति समवदानम्, समवदानमेव समवदानता। कम्मइयपोग्गलाणं मिच्छत्तासंजम-जोग-कसाएहि अट्ठकम्मसरूवेण सत्तकम्मसरूवेण छकम्म-सरूवेण वा भेदो समुदाणद त्ति वुत्तं होदि। अट्ठविहस्स सत्तविहस्स छव्विहस्स वा कम्मस्स

शंका—संसारमें स्थित जीव बहुत हैं। ऐसी अवस्थामें 'तं' इस प्रकार एक वचनका निर्देश कैसे किया है ?

समाधान— नहीं, क्योंकि प्रयोगकर्म संज्ञावाले जितने भी जीव हैं उन सबको जातिकी अपेक्षा एक मान कर एक वचनका निर्देश बन जाता है।

शंका—जीवोंको प्रयोगकर्म संज्ञा कैसे प्राप्त होती है ?

समाधान—नहीं, क्योंकि 'प्रयोगको करता है' इस व्युत्पत्तिके आधारसे प्रयोगकर्म शब्दकी सिद्धि कर्ता कारकमें करनेपर जीवोंके भी प्रयोगकर्म संज्ञा बन जाती है।

विशेषार्थ—संसारी जीवोंके और सयोगिकेवलियोंके मन, वचन और कायके आलम्बनसे प्रति समय आत्मप्रदेशपरिस्पंद होता रहता है। आगममें इस प्रकारके प्रदेशपरिस्पन्दको योग कहा जाता है। प्रकृतमें इसे ही प्रयोगकर्म शब्द द्वारा सम्बोधित किया गया है। किन्तु वीरसेन स्वामीके अभिप्रायानुसार इतनी विशेषता है कि यहां जिन जीवोंके यह योग होता है वे प्रयोगकर्म शब्द द्वारा ग्रहण किये गये हैं।

अब समवदानकर्मका अधिकार है ॥ १९ ॥

उसके अर्थका कथन करते हैं—

यतः सात प्रकारके, आठ प्रकारके और छह प्रकारके कर्मका भेदरूपसे ग्रहण होता है; अतः वह सब समवदानकर्म है ॥ २० ॥

[समवदान शब्दमें सम् और अव उपसर्ग पूर्वक 'दाप् लवने' धातु है जिसका व्युत्पत्ति-लभ्य अर्थ है—] जो यथाविधि विभाजित किया जाता है वह समवदान कहलाता है। और समवदान ही समवदानता कहलाती है। कार्मण पुद्गलोंका मिथ्यात्व, असंयम, योग और कषायके निमित्तसे आठ कर्मरूप, सात कर्मरूप या छह कर्मरूप भेद करना समवदानता है; यह उक्त कथनका तात्पर्य है। आठ प्रकारके, सात प्रकारके और छह प्रकारके कर्मोंका समवदान रूपसे अर्थात्

समुदाणदाए भेदेण गहणं पवत्तदि, ण अण्णहा इदि भणंतेण सुत्तकारेण णवमादिकम्माभावो परूविदो होदि। कम्मइयवग्गणखंधा अकम्मभावेण[1] ट्ठिदा मिच्छत्तादिकारणेहि परिणामंतरेण अणंतरिदा तदणंतरसमए चेव अट्ठकम्मसरूवेण सत्तकम्मसरूवेण छकम्मसरूवेण वा होदूण गहणमागच्छंतीति जाणाविदं ति भावत्थो। एदं सव्वं पि कम्मं बंधोदयसंतभेदभिण्णं समुदाणकम्मं णाम।

जं तमाधाकम्मं णाम ॥ २१ ॥

तस्स अत्थविवरणं कस्सामो—

तं ओद्दावण-विद्दावण-परिदावण[2]-आरंभकदणिप्फण्णं तं सव्वं आधाकम्मं णाम ॥ २२ ॥

कदं णाम कज्जत्तं,[3] कृतशब्दस्य कर्मवाचिनः अंतर्भावितभावस्य ग्रहणात्। कृतशब्दो निमित्तार्थे वा वर्तनीयः। जीवस्य उपद्रवणं ओद्दावणं णाम। अंगच्छेदनादिव्यापारः विद्दावणं णाम। संतापजननं परिदावणं णाम। प्राणि-प्राणवियोजनं आरंभो णाम। ओद्दावण-विद्दावण-परिदावण-आरंभकज्जभावेण णिप्फण्णमोरालियसरीरं तं सव्वमाधाकम्मं णाम। जम्हि सरीरे ट्ठिदाणं ओद्दावण-विद्दावण-परिदावण-आरंभा अण्णेहिंतो होंति तं

भेदरूपसे ग्रहण होता है, अन्य प्रकारसे नहीं; इस प्रकार प्रतिपादन करनेवाले सूत्रकारने नौवां आदि कर्म नहीं है, यह प्ररूपित कर दिया है। जो कार्मण वर्गणास्कन्ध अकर्मरूपसे स्थित हैं वे मिथ्यात्व आदि कारणोंका निमित्त पाकर अन्य परिणामको न प्राप्त होकर अनन्तर समयमें ही आठ कर्मरूपसे, सात कर्मरूपसे या छह कर्मरूपसे परिणत होकर गृहीत होते है; यह यहां उक्त कथनका भावार्थ जताया है। यह सभी वन्ध, उदय और सत्ताके भेदसे अनेक प्रकारका कर्म समवदान कर्म है।

अब अधःकर्मका अधिकार है ॥ २१ ॥

उसके अर्थका खुलासा करते हैं—

वह उपद्रावण, विद्रावण, परितापन और आरम्भ रूप कार्यसे निष्पन्न होता है; वह सब अधःकर्म है ॥ २२ ॥

कृत शव्द कार्यसामान्यका वाची है, क्योंकि यहां भावगर्भ कर्मवाची कृत शब्दका ग्रहण किया है। अथवा कृत शव्द निमित्त रूप अर्थमें विद्यमान है। जीवका उपद्रव करना ओदावण कहलाता है। अंगछेदन आदि व्यापार करना विदावण कहलाता हैं। सन्ताप उत्पन्न करना परिदावण कहलाता है। और प्राणियोंके प्राणोंका वियोग करना आरम्भ कहलाता है। उपद्रावण, विद्रावण, परितापन और आरम्भ आदि कार्यरूपसे जो उत्पन्न हुआ औदारिक शरीर है वह सव अधःकर्म है। जिस शरीरमें स्थित जीवोंके उपद्रावण, विद्रावण, परितापन और आरम्भ अन्यके

---

१ आ-ताप्रत्योः 'अट्ठमभावेण' इति पाठः। २ अ-आप्रत्योः 'परिद्दावण' इति पाठः। ३ आ-ताप्रत्योः 'कज्जं तं' इति पाठः।

सरीरमाधाकम्मं ति भणिदं होदि। एवं घेप्पमाणे भोगभूमिगयमणुस्स-तिरिक्खाणं सरीरमाधाकम्मं ण होज्ज, तत्थ ओद्दावणादीणमभावादो ? ण, ओरालियसरीरजादिदुवारेण सबाहसरीरेण सह एयत्तमावण्णस्स आधाकम्मत्तासिद्धीदो। ओद्दावणादिदंसणादो णेरइयसरीरमाधाकम्मं ति किण्ण भण्णदे ? [ण,] तत्थ ओद्दावण-विद्दावण-परिदावणेहिंतो आरंभाभावादो[1]। जम्हि सरीरे ठिदाणं केसिं चि जीवाणं कम्हि वि काले ओद्दावण-विद्दावण-परिदावणेहि मरणं संभवदि तं सरीरमाधाकम्मं णाम। ण च एदं विसेसणं णेरइयसरीरे अत्थि, तत्तो तेसिमवमिच्चुवज्जियाणं मरणाभावादो। अथवा चउण्णं समूहो जेणेगं विसेसणं, ण तेण पुव्वुत्तदोसो।

जं तमीरियावहकम्मं णाम ॥ २३ ॥

तस्स अत्थपरूवणं कस्सामो— ईर्या योगः, सः पन्था मार्गः हेतुः यस्य कर्म्मणः तदीर्यापथकर्म्म। जोगणिमित्तेणेव जं बज्झइ तमीरियावहकम्मं ति भणिदं होदि।

तं छदुमत्थवीयरायाणं सजोगिकेवलीणं वा तं सव्वमीरियावहकम्मं णाम ॥ २४ ॥

निमित्तसे होते हैं वह शरीर अधःकर्म है, यह उक्त कथनका तात्पर्य है।

शंका—इस तरहसे स्वीकार करनेपर भोगभूमिके मनुष्य और तिर्यंचोंका शरीर अधःकर्म नहीं हो सकेगा, क्योंकि वहां उपद्रावण आदि कार्य नहीं पाये जाते ?

समाधान—नहीं, क्योंकि औदारिक शरीररूप जातिकी अपेक्षा यह बाधासहित शरीर और भोगभूमिजोंका शरीर एक है, अतः उसमें अधःकर्मपनेकी सिद्धि हो जाती है।

शंका—नारकियोंके शरीरमें भी उपद्रावण आदि कार्य देखे जाते हैं, इसलिये उसे अधःकर्म क्यों नहीं कहते ?

समाधान—नहीं, क्योंकि वहांपर उपद्रावण, विद्रावण और परितापसे आरम्भ (प्राणि-प्राणवियोग) नहीं पाया जाता। जिस शरीरमें स्थित किन्हीं जीवोंके किसी भी कालमें उपद्रावण, विद्रावण और परितापनसे मरना सम्भव है वह शरीर अधःकर्म है। परन्तु यह विशेषण नारकियोंके शरीरमें नहीं पाया जाता, क्योंकि इनसे उनकी अपमृत्यु नहीं होती इसलिये उनका मरण नहीं होता। अथवा चूंकि उपद्रावण आदि चारोंका समुदायरूप एक विशेषण है, इसलिये पूर्वोक्त दोष नहीं आता।

अब ईर्यापथकर्मका अधिकार है ॥ २३ ॥

उसका अर्थ कहते हैं— ईर्याका अर्थ योग है। वह जिस कार्मण शरीरका पथ, मार्ग, हेतु है वह ईर्यापथकर्म कहलाता है। योग मात्रके कारण जो कर्म बँधता है वह ईर्यापथकर्म है, यह उक्त कथनका तात्पर्य है।

वह छद्मस्थवीतरागोंके और सयोगिकेवलियोंके होता है। वह सब ईर्यापथकर्म है ॥ २४ ॥

१ आ-ताप्रत्योः 'अंतब्भावादो' इति पाठः। २ अ-आप्रत्योः 'तेसिमघवुच्चु' इति पाठः।

छदुमत्थवीयरायाणं ति भणिदे उवसंत-खीणकसायाणं गहणं, अण्णत्थ छदुमत्थेसु वीयरायत्ताणुवलंभादो। सजोगिकेवलीणं वा त्ति वयणेण छदुमत्थणिद्देसेण वीयरागेहिंतो ओसारिदकेवलीणं गहणं कदं। एत्थ ईरियावहकम्मस्स लक्खणं गाहाहि उच्चदे। तं जहा—

अप्पं बादर मवुअं बहुअं ल्हुक्खं च सुक्किलं चेव।
मंदं महव्वयं[1] पि य सादब्भहियं च तं कम्मं ॥ २ ॥
गहिदमगहिदं च तहा बद्धमबद्धं च पुट्ठऽपुट्ठं च।
उदिदाणुदिदं वेदिदमवेदिदं चेव तं जाणे ॥ ३ ॥
णिज्जरिदाणिज्जरिदं उदीरिदं चेव होदि णायव्वं।
अणुदीरिदं ति य पुणो इरियावहलक्खणं एदं ॥ ४ ॥

एत्थ ताव पढमगाहाए अत्थो वुच्चदे। तं जहा—कसायाभावेण ट्ठिदिबंधाजोग्गस्स[2] कम्मभावेण परिणयबिदियसमए चेव अकम्मभावं गच्छंतस्स जोगेणागदपोग्गलक्खंधस्स ट्ठिदिविरहिदएगसमए वट्टमाणस्स कालणिबंधणअप्पत्तदंसणादो[3] इरियावहकम्ममप्पमिदि भणिदं। कम्मभावेण एगसमयमवट्ठिदस्स[4] कधमवट्ठाणाभावो भण्णदे? ण, उप्पण्णबिदियादि-

'छदुमत्थवीयरायाणं' ऐसा कहनेपर उपशान्तकषाय और क्षीणकषाय जीवोंका ग्रहण होता है, क्योंकि अन्य छद्मस्थ जीवोंमें वीतरागता नहीं पायी जाती। 'सजोगिकेवलीणं' इस वचनसे जो छद्मस्थ निर्देशके साथ वीतराग होते हैं उनसे पृथग्भूत केवलियोंका ग्रहण किया है। अब यहां ईर्यापथकर्मका लक्षण गाथाओं द्वारा कहते हैं। यथा—

वह ईर्यापथकर्म अल्प है, बादर है, मृदु है, बहुत है, रुक्ष है, शुक्ल है, मन्द अर्थात् मधुर है, महान् व्ययवाला है और अत्यधिक सातरूप है ॥ २ ॥

उसे गृहीत होकर भी अगृहीत, बद्ध होकर भी अबद्ध, स्पृष्ट होकर भी अस्पृष्ट, उदित होकर भी अनुदित और वेदित होकर भी अवेदित जानना चाहिये ॥ ३ ॥

वह निर्जरित होकर भी निर्जरित नहीं है और उदीरित होकर भी अनुदीरित है। इस प्रकार यह ईर्यापथकर्मका लक्षण है ॥ ३ ॥

यहां सर्वप्रथम पहली गाथाका अर्थ कहते हैं। यथा— जो कपायका अभाव होनेसे स्थितिबन्धके अयोग्य है, कर्मरूपसे परिणत होनेके दूसरे समयमें ही अकर्मभावको प्राप्त हो जाता है, और स्थितिबन्ध न होनेसे मात्र एक समय तक विद्यमान रहता है; ऐसे योगके निमित्तसे आये हुए पुद्गल स्कन्धमें काल निमित्तक अलपत्व देखा जाता है। इसीलिये ईर्यापथकर्म अल्प है, ऐसा कहा है।

शंका—जब कि ईर्यापथ कर्म कर्मरूपसे एक समय तक अवस्थित रहता है, तब उसके अवस्थानका अभाव क्यों बतलाया?

१ ताप्रतौ 'महवयं' इति पाठः। २ अप्रतौ 'ट्ठिदिबंधापोदस्स', आप्रतौ 'ट्ठिदिबंधापोडस', ताप्रतौ 'ट्ठिदिबंधापोड (द) स्स' इति पाठः। ३ प्रतिषु 'अपत्त' इति पाठः। ४ आ-ताप्रत्योः 'कम्माभावएग-' इति पाठः।

समयाणमवट्ठाणववएसुवलंभादो । ण उप्पत्तिसमओ अवट्ठाणं होदि, उप्पत्तीए अभावप्पसंगादो । ण च अणुप्पण्णस्स अवट्ठाणमत्थि, अण्णत्थ तहाणुवलंभादो । ण च उप्पत्ति-अवट्ठाणाणमेयत्तं, पुव्वुत्तरकालभावियाणमेयत्तविरोहादो ।

अट्ठण्णं कम्माणं समयपबद्धपदेसेहिंतो ईरियावहसमयपबद्धस्स पदेसा संखेज्जगुणा होंति, सादं मोत्तूण अण्णेसिं बंधाभादो । तेण ढुक्कमाणकम्मक्खंधेहि थूलमिदि बादरं भणिदं । अणुभागेण बादरं ति किण्ण घेप्पदे ? ण, कसायाभावेण अणुभागबंधाभावादो[1] । कम्मइयक्खंधाणं कम्मभावेण परिणमणकाले सव्वजीवेहि अणंतगुणेण अणुभागेण होदव्वं, अण्णहा कम्मभावपरिणामाणुववत्तीदो त्ति ? ण एस दोसो, जहण्णाणुभागट्ठाणस्स जहण्णफद्दयादो अणंतगुणहीणाणुभागेण कम्मक्खंधो बंधमागच्छदि त्ति कादूण अणुभागबंधो णत्थि त्ति भण्णदे । तेण बंधो एगसमयट्ठिदिणिवत्तयअणुभागसहियो अत्थि चेवे त्ति घेत्तव्वो । तेणेव कारणेण ट्ठिदि-अणुभागेहि इरियावहकम्ममप्पमिदि भणिदं ।

इरियावहकम्मक्खंधा कक्खडादिगुणेण अबोहा[2] मउअफासगुणेण सहिया चेव बंध-

समाधान—नहीं, क्योंकि उत्पन्न होनेके पश्चात् द्वितीयादि समयोंकी अवस्थान संज्ञा पायी जाती है । उत्पत्तिके समयको ही अवस्थान नहीं कहा जा सकता, क्योंकि ऐसा माननेसे उत्पत्तिके अभावका प्रसंग प्राप्त होता है । यदि कहा जाय कि अनुत्पन्न वस्तुका अवस्थान बन जायगा, सो भी बात नहीं है; क्योंकि अन्यत्र ऐसा देखा नहीं जाता । यदि उत्पत्ति और अवस्थानको एक कहा जाय सो भी बात नहीं है, क्योंकि ये दोनों पूर्वोत्तर कालभावी हैं, इसलिये इन्हें एक माननेमें विरोध आता है । यही कारण है कि यहां ईर्यापथ कर्मके अवस्थानका अभाव कहा है ।

आठों कर्मोंके समयप्रबद्धप्रदेशोंसे ईर्यापथकर्मके समयप्रबद्धप्रदेश संख्यातगुणे होते हैं, क्योंकि यहां सातावेदनीयके सिवाय अन्य कर्मोंका बन्ध नहीं होता । इसलिये ईर्यापथरूपसे जो कर्मस्कन्ध आते हैं वे स्थूल हैं, अतः उन्हें बादर कहा है ।

शंका—ईर्यापथकर्म अनुभागकी अपेक्षा बादर होते हैं, ऐसा क्यों नहीं ग्रहण किया जाता है ?

समाधान—नहीं, क्योंकि यहां कषायका अभाव होनेसे अनुभागबन्ध नहीं पाया जाता ।

शंका—कार्मणस्कन्धोंका कर्मरूपसे परिणमन करनेके समयमें ही सब जीवोंसे अनन्तगुणा अनुभाग होना चाहिये, क्योंकि, अन्यथा उनका कर्मरूपसे परिणमन करना नहीं बन सकता ?

समाधान—यह कोई दोष नहीं है, क्योंकि यहांपर जघन्य अनुभागस्थानके जघन्य स्पर्धकसे अनन्तगुणे हीन अनुभागसे युक्त कर्मस्कन्ध बन्धको प्राप्त होते हैं; ऐसा समझकर अनुभागबन्ध नहीं है, ऐसा कहा है ।

इसलिये एक समयकी स्थितिका निवर्तक ईर्यापथकर्मबन्ध अनुभागसहित है ही, ऐसा यहां ग्रहण करना चाहिये । और इसी कारणसे ईर्यापथ कर्म स्थिति और अनुभागकी अपेक्षा 'अल्प' है ऐसा यहां कहा है ।

ईर्यापथ कर्मस्कन्ध कर्कश आदि गुणोंसे रहित हैं व मृदु स्पर्शगुणसे युक्त होकर ही बन्धको

१ ताप्रतौ '-बंधभावदो' इति पाठः । २ प्रतिषु 'अबोदा' इति पाठः ।

मागच्छंति त्ति इरियावहकम्मं मउअं ति भण्णदे । सकसायजीववेयणीयसमयपबद्धादो पदेसेहि संखेज्जगुणत्तं दट्टूण बहुअमिदि भण्णदे । बादर-बहुआणं को विसेसो ? बादर-सद्दो कम्मक्खंधस्स थूलत्तं भणदि, बहुअ-सद्दो वि पदेसगयसंखाए बहुत्तं भणदि, तेण ण सद्दभेदो चेव; किंतु अत्थभेदो वि । ण च थूलेण बहुसंखेण चेव होदव्वमिदि णियमो अत्थि ? थूलेरंडरुक्खादो सण्हलोहगोलएगरूवत्तण्णहाणुववत्तिबलेण पदेसबहुत्तुवलंभादो । पोग्गलपदेसु चिरकालावट्ठाण-णिबंधणणिद्धगुणपडिवक्खगुणेण पडिग्गहियत्तादो ल्हुक्खं । जइ एवं तो इरियावहकम्मम्मि ण क्खंधो, ल्हुक्खेगगुणाणं[2] परोप्परबंधाभावादो[3] ? ण, तत्थ दुरहियाणं बंधुवलंभादो । च-सद्द-णिद्देसो किंफलो ? इरियावहकम्मस्स कम्मक्खंधा सुअंधा[4] सच्छाया त्ति जाणावणफलो । इरियावहकम्मक्खंधा पंचवण्णा ण होंति, हंसधवला चेव होंति त्ति जाणावणट्ठं सुक्किल-णिद्देसो कदो । एत्थतण-चेव-सद्दो सव्वत्थ जोजेयव्वो पडिवक्खणिराकरणट्ठं । इरियावहकम्म-क्खंधा रसेण सक्करादो अहियमहुरत्तजुत्ता त्ति जाणावणट्ठं मंदणिद्देसो कदो । कुदो एवमुवलब्भदे ?

प्राप्त होते हैं, इसलिये ईर्यापथ कर्मको ' मृदु ' कहा है ।

कषायसहित जीवके वेदनीय कर्मके समयप्रबद्धसे यहां बँधनेवाला समयप्रबद्ध प्रदेशोंकी अपेक्षा संख्यातगुणा होता है, ऐसा देखकर ईर्यापथ कर्मको ' बहुत ' कहा है ।

शंका—बादर और बहुतमें क्या अन्तर है ?

समाधान—'बादर' शब्द कर्मस्कन्धकी स्थूलताको कहता है जब कि 'बहुत' शब्द प्रदेशगत संख्याके बहुत्वका प्रतिपादन करता है, इसलिये इन दोनोंमें केवल शब्दभेद ही नहीं है; किन्तु अर्थभेद भी है । स्थूल बहुत संख्यावाला ही होना चाहिये, ऐसा कोई नियम नहीं हैं; क्योंकि स्थूल एरण्ड वृक्षसे, सूक्ष्म लोहेके गोलेमें एकरूपता अन्यथा बन नहीं सकती, इस युक्तिके बलसे प्रदेशबहुत्व देखा जाता है ।

ईर्यापथ कर्मस्कन्ध रुक्ष है, क्योंकि पुद्गलप्रदेशोंमें चिरकाल तक अवस्थानका कारण स्निग्ध गुणका प्रतिपक्षभूत गुण उसमें स्वीकार किया गया है ।

शंका—यहांपर रुक्ष गुण यदि इस प्रकार है तो ईर्यापथकर्मका स्कन्ध नहीं बन सकता, क्योंकि एकमात्र रुक्ष गुणवालोंका परस्पर बन्ध नहीं होता ।

समाधान—नहीं, क्योंकि वहां भी द्व्यधिक गुणवालोंका बन्ध पाया जाता है ।

शंका—गाथामें जो ' च ' शब्दका निर्देश किया है उसका क्या फल है ?

समाधान—ईर्यापथ कर्मके कर्मस्कन्ध अच्छी गन्धवाले और अच्छी कान्तिवाले होते हैं, यह जताना ' च ' शब्दका फल है ।

ईर्यापथ कर्मस्कन्ध पांच वर्णवाले नहीं होते, किन्तु हंसके समान धवल वर्णवाले ही होते हैं, इस बातका ज्ञान करानेके लिये गाथामें ' शुक्ल ' पदका निर्देश किया है ।

यहां पर गाथामें आया हुआ ' चेव ' शब्दका अन्वय प्रतिपक्ष गुणका निराकरण करनेके लिये सर्वत्र करना चाहिये । ईर्यापथ कर्मस्कन्ध रसकी अपेक्षा सक्करसे भी अधिक माधुर्य युक्त होते हैं, इस बातका ज्ञान करानेके लिये गाथामें ' मन्द ' पदका निर्देश किया है ।

---

१ प्रतिषु ' सण्ण ' इति पाठः । २ आ-ताप्रत्योः ' ल्हुक्खगुणाणं ' इति पाठः । ३ ताप्रतौ ' बंधाभावदो ' इति पाठः । ४ अप्रतौ ' सुअधा ', आ-ताप्रत्योः ' सुअद्धा ' इति पाठः ।

मन्दशब्दस्य मन्द्रशब्दपरिणामत्वेनोपलंभात्। बंधमागयपरमाणू विदियसमए चेव णिस्सेसं णिज्जरंति त्ति महव्वयं[2], असंखेज्जगुणसेडिणिज्जराविणाभावित्तादो वा महव्वयमिदि[3] णिद्दिस्सदे। अवि-सद्दो समुच्चयट्ठे दट्ठव्वो। देव-माणुससुहेहिंतो बहुयरसुहुप्पायणत्तादो इरियावहकम्मं सादब्भहियं। किंलक्खणमेत्थ सुहं ? सयलबाहाविरहलक्खणं। एदेण भुक्खा-तिसादिसयल-आमयाणमभावो खीणकसाएसु जिणेसु परूविदो[4] त्ति घेत्तव्वं। उत्तं च—

जं च कामसुहं लोए जं च दिव्वं महासुहं।
वीयरायसुहस्सेदं णंतभागं ण अग्घदे[5] ॥ ९ ॥

संपहि विदियगाहत्थो[6] उच्चदे। तं जहा— जलमज्झणिवदियतत्तलोहुंडओ व्व इरिया-वहकम्मजलं सगसव्वजीवपदेसेहि गेण्हमाणो केवली कधं परमप्पएण समाणत्तं पडिवज्जदि त्ति भणिदे तण्णिण्णयत्थमिदं वुच्चदे— इरियावहकम्मं गहिदं पि तण्ण गहिदं। कुदो ? सरागकम्म-गहणस्सेव अणंतरसंसारफलणिव्वत्तणसत्तिविरहादो[7]। कोसियारो व्व इरियावहकम्मेण अप्पाणं

शंका—यह किस प्रमाणसे जाना जाता है ?

समाधान—क्योंकि मन्द शब्दकी मन्द्र शब्दके परिणाम रूपसे उपलब्धि होती है।

बन्धको प्राप्त हुए परमाणु दूसरे समयमें ही सामस्त्य भावसे निर्जराको प्राप्त होते हैं, इसलिये ईर्यापथ कर्मस्कन्ध महान् व्ययवाले कहे गये हैं। अथवा, वे असंख्यात गुणश्रेणिनिर्जराके अविनाभावी हैं, इसलिये उन्हें ' महान् व्ययवाला ' कहा है।

यहां पर आया हुआ ' अपि ' शब्द समुच्चयके अर्थमें जानना चाहिये।

देव और मनुष्योंके सुखसे अधिक सुखका उत्पादक है, इसलिये ईर्यापथ कर्मको ' अत्यधिक सातारूप' कहा है।

शंका—यहां सुखका क्या लक्षण है ?

समाधान—सब प्रकारकी बाधाओंका दूर होना, यही प्रकृतमें उसका लक्षण है।

इससे क्षीणकषाय और जिनोंमें भूख-प्यास आदि सब रोगोंका अभाव कहा गया है, ऐसा यहां ग्रहण करना चाहिये। कहा भी है—

लोकमें जो कामसुख है और जो दिव्य महासुख है, वह वीतराग सुखके अनन्तवें भागके योग्य भी नहीं है ॥ ९ ॥

अब दूसरी गाथाका अर्थ कहते हैं। यथा— जलके बीच पड़े हुए तप्त लोहपिण्डके समान ईर्यापथकर्म-जलको अपने सब जीवप्रदेशों द्वारा ग्रहण करते हुए केवली जिन परमात्माके समान कैसे हो सकते हैं ? ऐसा पूछनेपर उसका निर्णय करनेके लिये यह कहा है कि ईर्यापथकर्म गृहीत हो कर भी वह गृहीत नहीं है, क्योंकि वह सरागीके द्वारा ग्रहण किये गये कर्मके समान पुनर्जन्मरूप संसार फलको उत्पन्न करनेवाली शक्तिसे रहित है।

१ अ-आप्रत्योः ' मंदशब्द– ' इति पाठः। २ ताप्रतौ ' महावयं ' इति पाठः। ३ आताप्रत्योः ' महाव्वयमिदि ' इति पाठः। ४ ताप्रतौ ' कसायेसु परूविदो ' इति पाठः। ५ मूला. १२,१०३. ६ ताप्रतौ ' गाहाए अत्थो ' इति पाठः। ७ ताप्रतौ ' अणंत [र] संसार··· विरोहादो ' इति पाठः।

बंधमाणो जिणो ण देवो त्ति ? ण, बद्धं पि तण्ण बद्धं चेव; बिदियसमए चेव णिज्जरुव-लंभादो पुणो[1] पुव्वबद्धकम्माणं पि सगसहकारिकारणघादिकम्माभावेण अण्णसरीरसंठाणसंघड-णादीणं णिव्वत्तणादिसत्तीए अभावादो। कम्मेहि पुट्ठस्स कधं देवत्तमिदि चे— ण, पुट्ठं पि तण्ण पुट्ठं चेव[2]; इरियावहबंधस्स संतसहावेण जिणिंदम्मि अवट्ठाणाभावादो। पुव्वसंतस्स पासो ण प्पासो, पदमाणत्तादो[3]। जदि जिणसंतकम्मं पदमाणं तो अक्कमेण किण्ण णिवददे? ण, दोत्तडीणं व बज्झकम्मक्खंधपदणमवेक्खिय णिवदंताणमक्कमेण पदणविरोहादो। उदिण्ण-पंचिंदिय-तस-बादर-पज्जत्त-गोदाउकम्मो कधं जिणो देवो? ण, उदिण्णमपि तण्ण उदिण्णं दद्धगोहूमरासि[4] व्व पत्तणिब्बीयभावत्तादो। इरियावहकम्मस्स लक्खणे भण्णमाणे सेसकम्माणं वावारो किमिदि परूविज्जदे? ण, इरियावहकम्मसहचारिदसेसकम्माणं पि इरियावहत्त-

---

रेशमके कीड़ेके समान ईर्यापथ कर्मसे अपनेको बांधनेवाले जिन भगवान् देव नहीं हो सकते, ऐसा कहना ठीक नहीं है; क्योंकि बद्ध होकर भी वह बद्ध नहीं ही है, क्योंकि दूसरे समयमें ही उसकी निर्जरा देखी जाती है, और पहलेके बांधे हुए कर्मोंमें भी उनके सहकारी कारण घातिया कर्मोंका अभाव हो जानेसे अन्य शरीर, संस्थान और संहनन आदिको उत्पन्न करनेकी शक्ति नहीं पाई जाती।

जो कर्मोंसे स्पृष्ट है वह देव कैसे हो सकता है, ऐसा कहना भी ठीक नहीं है; क्योंकि स्पृष्ट होकर भी वह स्पृष्ट नहीं ही है, कारण कि ईर्यापथबन्धका सत्त्वरूपसे जिनेन्द्र भगवान्के अवस्थान नहीं पाया जाता और पहलेके सत्कर्मके स्पर्शको स्पर्श मानना ठीक नहीं है, क्योंकि उसका पतन हो रहा है।

शंका—यदि जिन भगवान्के सत्कर्मका पतन हो रहा है, तो उसका युगवत् पतन क्यों नहीं होता?

समाधान— नहीं, क्योंकि पुष्ट नदियोंके समान बँधे हुए कर्मस्कन्धोंके पतनको देखते हुए पतनको प्राप्त होनेवाले उनका अक्रमसे पतन माननेमें विरोध आता है।

जिनेन्द्र देवके पञ्चेन्द्रिय, त्रस, वादर, पर्याप्त, गोत्र और आयु कर्मकी उदय-उदीरणा पाई जाती है, इसलिये वे देव कैसे हो सकते हैं, ऐसा कहना भी ठीक नहीं है, क्योंकि उनका कर्म उदीर्ण होकर भी उदीर्ण नहीं है, क्योंकि वह दग्ध गेहूंके समान निर्बीजभावको प्राप्त हो गया है।

शंका—ईर्यापथ कर्मका लक्षण कहते समय शेष कर्मोंके व्यापारका कथन क्यों किया जा रहा है?

समाधान—नहीं, क्योंकि ईर्यापथके साथ रहनेवाले शेष कर्मोंमें भी ईर्यापथत्व सिद्ध है।

---

१ ताप्रतौ 'पुणो' इत्येतत्पदं नोपलभ्यते। २ ताप्रतौ 'कम्मेहि फुट्टस्स (पुट्ठस्स)···चे ण, घट्टं ति (पुट्ठं ति) तण्ण घट्टं (पुट्ठं) चेव' इति पाठः। ३ ताप्रतौ 'पुव्वसंतस्स पासो पदमाणत्तादो'॥ इति पाठः। ४ आ-ताप्रत्योः 'दद्धणहुम' इति पाठः।

सिद्धीए तल्लक्खणस्स वि इरियावहलक्खणत्तुववत्तीदो। असादवेदणीयं वेदयमाणो जिणो कधं णिरामओ गयतण्हो वा ? ण, वेदिदं पि असादवेदणीयं ण वेदिदं; सगसहकारिकारणघादिकम्माभावेण दुक्खजणणसत्तिरोहादो। णिव्वीयपत्तेयसरीरस्सेव णिव्वीयअसादावेदणीयस्स उदओ किण्ण जायदे ? ण, भिण्णजादियाणं कम्माणं समाणसत्तिणियमाभावादो। जदि असादावेदणीयं णिप्फलं चेव, तो उदओ अत्थि त्ति किमिदि उच्चदे ? ण, भूदपुव्वणयं पडुच्च तदुत्तीदो। किंच ण सहकारिकारणघादिकम्माभावेणेव सेसकम्माणि व्व पत्तणिव्वीयभावमसादावेदणीयं, किंतु सादावेदणीयवंधेण उदयसरूवेण उदयागदउक्कस्साणुभागसादावेदणीयसहकारिकारणेण पडिहयउदयत्तादो वि। ण च वंधे उदयसरूवे संते सादावेदणीयगोवुच्छा थिउक्कसंकमेणं[1] असादावेदणीयं गच्छदि, विरोहादो। थिउक्कसंकमाभावे[2] सादासादाणमजोगिचरिमसमए संतवोच्छेदो पसज्जदि त्ति भणिदे— ण, वोच्छिण्णसादवंधम्मि अजोगिम्हि सादोदयणियमाभावादो। सादावेदणीयस्स उदयकालो अंतोमुहुत्तमेत्तो फिट्टिदूण देसूणपुव्व-

इसलिये उनके लक्षणमें भी ईर्यापथका लक्षण घटित हो जाता हैं।

असातावेदनीयका वेदन करनेवाले जिनदेव आमय और तृष्णासे रहित कैसे हो सकते हैं, यह कहना भी ठीक नहीं है; क्योंकि असातावेदनीय वेदित होकर भी वेदित नहीं है, क्योंकि अपने सहकारी कारणरूप घातिकर्मोंका अभाव हो जानेसे उसमें दुःखको उत्पन्न करनेकी शक्ति माननेमें विरोध आता हैं।

शंका—निर्बीज हुए प्रत्येक शरीरके समान निर्बीज हुए असाता वेदनीयका उदय क्यों नहीं होता है ?

समाधान—नहीं, क्योंकि भिन्नजातीय कर्मोंकी समान शक्ति होनेका कोई नियम नहीं है

शंका—यदि असाता वेदनीय कर्म निष्फल ही है तो वहां उसका उदय है, ऐसा क्यों कहा जाता है ?

समाधान—नहीं, क्योंकि भूतपूर्व नयकी अपेक्षासे वैसा कहा जाता है।

दूसरे सहकारी कारणरूप घाति कर्मोंका अभाव होनेसे ही शेष कर्मोंके समान असातावेदनीय कर्म न केवल निर्बीज भावको प्राप्त हुआ हैं, किन्तु उदयस्वरूप सातावेदनीयका बन्ध होनेसे और उदयागत उत्कृष्ट अनुभागयुक्त सातावेदनीय रूप सहकारी कारण होनेसे उसका उदय भी प्रतिहत हो जाता है। यदि कहा जाय कि बन्धके उदयस्वरूप रहते हुए सातावेदनीय कर्मकी गोपुच्छा स्तिवुक संक्रमणके द्वारा असाता वेदनीयको प्राप्त होती होगी, सो यह भी बात नहीं है; क्योंकि ऐसा माननेमें विरोध आता हैं।

शंका—यदि यहां स्तिवुक संक्रमणका अभाव मानते हैं तो साता और असाताकी सत्त्वव्युच्छित्ति अयोगीके अन्तिम समयमें होनेका प्रसंग आता है ?

समाधान—नहीं, क्योंकि साताके बन्धकी व्युच्छित्ति हो जानेपर अयोगी गुणस्थानमें साताके उदयका कोई नियम नहीं है।

शंका—इस तरह तो सातावेदनीयका उदयकाल अन्तर्मुहूर्त विनष्ट होकर कुछ कम पूर्व-

१ अ-आप्रत्योः 'गोच्छादीउक्कस्संकमेण', ताप्रतौ 'गोपुच्छादी (थी) उक्कस्संकमेण' इति पाठः।
२ प्रतिषु 'त्थीउक्कस्संकमाभावे' इति पाठः।

कोडिमेत्तो होदि चे— ण, सजोगिकेवलिं मोत्तूण अण्णत्थ उदयकालस्स अंतोमुहुत्तणियमब्भुवगमादो।

संपहि तदियगाहाए अत्थो वुच्चदे। तं जहा—णिज्जरिदमपि तण्ण णिज्जरिदं, सकसायकम्मणिज्जरा इव अण्णेसिमणंताणं कम्मक्खंधाणं बंधमकाऊण णिज्जिण्णत्तादो। सादावेदणीयस्स बंधो अत्थि त्ति चे— ण, तस्स ट्ठिदि-अणुभागबंधाभावेण सुक्ककुड्डपक्खित्त-वालुवमुट्ठि व्व जीवसंबंधविदियसमए चेव णिवदंतस्स बंधववएसविरोहादो। उदीरिदं पि ण उदीरिदं, बंधाभावेण जम्मंतरुप्पायणसत्तीए अभावेण च णिज्जराए फलाभावादो। एवमिरियावहलक्खणं तीहि गाहाहि परूविदं।

जं तं तवोकम्मं णाम ॥ २५ ॥

तस्स अत्थपरूवणं कस्सामो—

तं सब्भंतरबाहिरं बारसविहं तं सव्वं तवोकम्मं णाम ॥ २६ ॥

तं तवोकम्मं बाहिरमब्भंतरेण सह बारसविहं। को तवो णाम? तिण्णं रयणाण-

---

कोटि प्रमाण प्राप्त होता है?

समाधान—नहीं, क्योंकि सयोगिकेवली गुणस्थानको छोड़कर अन्यत्र उदयकालका अन्तमुहूर्त प्रमाण नियम ही स्वीकार किया गया है।

अब तीसरी गाथाका अर्थ कहते हैं। यथा—निर्जरित होकर भी वह (ईर्यापथ कर्म) निर्जरित नहीं हैं, क्योंकि कषायके सद्भावमें जैसी कर्मोंकी निर्जरा होती है, वैसी अन्य अनन्त कर्मस्कन्धोंकी बन्धके विना निर्जरा होती है।

शंका—वहां सातावेदनीयका बन्ध है?

समाधान—नहीं, क्योंकि स्थितिबन्ध और अनुभागबन्धके विना शुष्क भींतपर फेंकी गई मुट्ठीपर बालुकाके समान जीवसे सम्बन्ध होनेके दूसरे समयमें ही पतित हुए सातावेदनीय कर्मको बन्ध संज्ञा देनेमें विरोध आता है।

उदीरित होकर भी वह उदीरित नहीं है, क्योंकि बन्धका अभाव होनेसे और जन्मान्तरको उत्पन्न करनेकी शक्तिका अभाव होनेसे उसमें निर्जराका कोई फल नहीं देखा जाता।

इस प्रकार ईर्यापथका लक्षण तीन गाथाओं द्वारा कहा।

अब तपःकर्मका अधिकार है ॥ २५ ॥

उसके अर्थका खुलासा करते हैं—

वह आभ्यन्तर और बाह्यके भेदसे बारह प्रकारका है। वह सब तपःकर्म है ॥ २६ ॥

वह तपःकर्म बाह्य और आभ्यन्तरके भेदसे बारह प्रकारका है।

शंका—तप किसे कहते हैं?

---

१ प्रतिषु 'सुक्ख' इति पाठः। २ अ-ताप्रत्योः 'जंमंत', आप्रतौ 'जं अंत-' इति पाठः।

माविब्भावट्ठमिच्छाणिरोहो[1] । तत्थ चउत्थ-छट्टट्ठम-दसम-दुवालसे[2]-पक्ख-मास-उडु-अयण-संवच्छरेसु एसणपरिच्चाओ अणेसणं णाम तवो[3] । किमेसणं ? असण-पाण-खादिय-सादियं[4] । किमट्ठमेसो कीरदे ? पाणिंदियसंजमट्ठं, भुत्तीए उहयासंजमअविणाभावदंसणादो । ण च चउव्विहआहारपरिच्चागो चेव अणेसणं[5], रागादीहि सह तच्चागस्स अणेसणभावब्भुवगमादो । अत्र श्लोकः—

> अप्रवृत्तस्य दोषेभ्यस्सहवासो गुणैः सह ।
> उपवासस्स विज्ञेयो न शरीरविशोषणम् ॥ ६ ॥

समाधान—तीन रत्नोंको प्रकट करनेके लिये इच्छानिरोधको तप कहते हैं ।

उसमें चौथे, छठे, आठवें, दसवें और बारहवें एषणका त्याग करना तथा एक पक्ष, एक मास, एक ऋतु, एक अयन अथवा एक वर्ष तक एषणका त्याग करना अनेषण नामका तप है ।

शंका—एषण किसे कहते हैं ?

समाधान —अशन, पान, खाद्य और स्वाद्य, इनका नाम एषण है ।

शंका- यह किसलिये किया जाता है ?

समाधान—यह प्राणिसंयम और इन्द्रिय संयमकी सिद्धिके लिये किया जाता है, क्योंकि भोजनके साथ दोनों प्रकारके असंयमका अविनाभाव देखा जाता है ।

पर इसका यह अर्थ नहीं कि चारों प्रकारके आहारका त्याग ही अनेषण कहलाता है, क्योंकि रागादिकोंके त्यागके साथ ही उन चारोंके त्यागको अनेषण रूपसे स्वीकार किया है । इस विषयमें एक श्लोक है—

उपवासमें प्रवृत्ति नहीं करनेवाले जीवको अनेक दोष प्राप्त होते हैं और उपवास करनेवालेको अनेक गुण, ऐसा यहां जानना चाहिये । शरीरके शोषण करनेको उपवास नहीं कहते ॥ ६ ॥

विशेषार्थ—बारह प्रकारके तपोंमें पहला अनशन तप है । यहां इसका नाम अनेषण दिया है । एषणका अर्थ खोज करना है । साधु बुभुक्षाकी बाधा होनेपर चार प्रकारके निर्दोष आहारकी यथाविधि खोज करता है । इसलिये इसका एषण यह नाम सार्थक है । एषणा समितिसे भी यही अभिप्राय लिया गया है । अनशन यह नाम अशन नहीं करना, इस अर्थमें चरितार्थ है । इससे अनेषण इस नाममें मौलिक विशेषता है । एषणकी इच्छा न होनेपर साधु अनशनकी प्रतिज्ञा करता है, इसलिये अनेषण साधन है और अनशन उसका फल है । भोजनरूप क्रियाकी व्यावृत्ति अनशन है और भोजनकी इच्छा न होना अनेषण है । यहां 'अन्' का अर्थ 'ईषत्' भी है । इससे यह अर्थ भी फलित होता है कि जो चार प्रकारके आहारमेंसे एक, दो या तीन प्रकारके आहारका त्याग करते हैं उनके भी अनेषण तप माना जाता है ।

१ रत्नत्रयाविर्भावार्थमिच्छानिरोधस्तपः, अथवा कर्मक्षयार्थं मार्गाविरोधेन तप्यते इति तपः । चारित्रसार पृ. ५९. २ अ-ताप्रत्योः 'दुवादस' इति पाठः । ३ मूला. (पंचाचा.) १५१. ४ असणं खुहप्पसमणं पाणाणमणुग्गहं तहा पाणं । खादंति खादियं पुण सादंति सादियं भणियं ॥ मूला. पडा.) १४७. ५ ताप्रतौ 'अणसणं' इति पाठः ।

अद्धाहारणियमो अवमोदरियतवो। जो जस्स पयडिआहारो तत्तो ऊणाहार-विसयअभिग्गहो अवमोदरियमिदि भणिदं होदि[1]। तत्थ ताव पयडिपुरिसित्थीणमाहार परूवणाए गाहा—

बत्तीसं किर कवला आहारो कुच्छिपूरणो भणिदो[2]।
पुरिसस्स महिलियाए अट्ठावीसं हवे कवला[3] ॥ ७ ॥

किं कवलपमाणं? सालितंदुलसहस्से ट्ठिदे जं[4] कूरपमाणं तं सव्वमेगो कवलो होदि। एसो पयडिपुरिसस्स कवलो परूविदो। एदेहि बत्तीसकवलेहि पयडिपुरिसस्स आहारो होदि, अट्ठावीसकवलेहि महिलियाए। इमं कवलभेदमाहारं च मोत्तूण जो जस्स पयडिकवलो पयडिआहारो सो च[5] घेत्तव्वो। ण च सव्वेसिं कवलो आहारो वा अवट्ठिदो अत्थि, एगकुडवतंडुलकूरभुंजमाणपुरिसाणं एगगलत्थकूराहारपुरिसाणं[6] च उवलंभादो। एवं कवलस्स वि अणवट्ठाणमुवलब्भदे। तम्हा[7] अप्पप्पणो पयडिआहारादो ऊणाहारग्गहणणियमो ओमोदरिय तवो होदि त्ति सिद्धं। एसो तवो केहि कायव्वो? पित्तप्पकोवेण उववास-

आधे आहारका नियम करना अवमौदर्य तप है। जो जिसका प्राकृतिक आहार है उससे न्यून आहार विषयक अभिग्रह (प्रतिज्ञा) करना अवमौदर्य तप है, यह उक्त कथनका तात्पर्य है। उसमें प्रकृतिस्थ पुरुष और स्त्रियोंके आहारका कथन करते समय यह गाथा आती है—

उदरपूर्तिके निमित्त पुरुषका बत्तीस ग्रास और महिलाका अट्ठाईस ग्रास आहार कहा है ॥७॥

शंका—एक ग्रासका क्या प्रमाण है?

समाधान—शाली धान्यके एक हजार चावलोंका जो भात बनता है वह सब एक ग्रास होता है।

यह प्रकृतिस्थ पुरुषका ग्रास कहा है। ऐसे बत्तीस ग्रासों द्वारा प्रकृतिस्थ पुरुषका आहार होता है और अट्ठाईस ग्रासों द्वारा महिलाका आहार होता है। प्रकृतमें इस ग्रास और इस आहारका ग्रहण न कर जो जिसका प्राकृतिक ग्रास और प्राकृतिक आहार है वह लेना चाहिये। कारण कि सबका ग्रास और आहार अवस्थित एक समान नहीं होता, क्योंकि कितने ही पुरुष एक कुडव प्रमाण चावलोंके भातका और कितने ही पुरुष एक गलस्थ प्रमाण चावलोंके भातका आहार करते हुए पाये जाते हैं। इसी प्रकार ग्रास भी अनवस्थित पाया जाता है। इसलिये अपना अपना जो प्राकृतिक आहार है उससे न्यून आहारके ग्रहण करनेका नियम अवमौदर्य तप होता है, यह बात सिद्ध होती है।

शंका—यह तप किन्हें करना चाहिये?

समाधान—जो पित्तके प्रकोपवश उपवास करनेमें असमर्थ हैं, जिन्हें आधे आहारकी

१ बत्तीसा किर कवला पुरिसस्स दु होदि पयडिआहारो। एगकवलादीहिं तत्तो ऊणियगहणं उमोदरियं ॥ मूला. (पंचा.) १५३. आत्मीयप्रकृत्यौदनस्य चतुर्थभागेन अर्धेन ग्रासेन वोनाहारनियमोऽवमोदर्यम्। चारित्रसार पृ. ५९. २ ताप्रतौ 'होदि' इति पाठः। ३ भग. २११. ४ आप्रतौ 'सालितंदुलसहस्से किंत्थे जं', ताप्रतौ 'सलिलतंदुलसहस्से जं' इति पाठः। ५ ताप्रतौ 'चेव' इति पाठः। ६ ताप्रतौ 'कूराहारपरिमाणं च' इति पाठः। ७ आ-ताप्रत्योः 'तहा' इति पाठः।

अक्खमेहि अद्धाहारेण उववासादो अहियपरिस्समेहि सगतवोमाहप्पेण भव्वजीवुवसमणवावदेहिं वा सगकुक्खिकिमिउप्पत्तिणिरोहकंखुएहिं वा अदिमत्ताहारभोयणेण वाहिवेयणाणिमित्तेण सज्झायभंगभीरुएहिं वा[1]।

भोयण-भायण-घर-वाड-दादारा वुत्ती णाम। तिस्से वुत्तीए परिसंखाणं गहणं वुत्तिपरिसंखाणं णाम[2]। एदम्मि वुत्तिपरिसंखाणे पडिबद्धो जो अवग्गहो सो वुत्तिपरिसंखाणं णाम तवो त्ति भणिदं होदि। एसा केहि कायव्वा? सगतवोविसेसेण भव्वजणमुवसमेदूण सगरस[3]-रुहिर-मांससोसणदुवारेण इंदियसंजममिच्छंतेहि साहूहि कायव्वा भायण-भोयणादिविसय-रागादिपरिहरणचित्तेहि वा[4]।

खीर-गुड-सप्पि-लवण-दधिआदओ सरीरिंदियरागादिवुड्ढिणिमित्ता रसा णाम। तेसिं परिच्चाओ रसपरिच्चाओ[5]। किमट्ठमेसो कीरदे? पाणिंदियसंजमट्ठं। कुदो?

अपेक्षा उपवास करनेमें अधिक थकान आती है, जो अपने तपके माहात्म्यसे भव्य जीवोंको उपशान्त करनेमें लगे हैं, जो अपने उदरमें कृमिकी उत्पत्तिका निरोध करना चाहते हैं, और जो व्याधिजन्य वेदनाके निमित्तभूत अतिमात्रामें भोजन कर लेनेसे स्वाध्यायके भंग होनेका भय करते हैं; उन्हें यह अवमौदर्य तप करना चाहिये।

भोजन, भाजन, घर, वाट (मुहल्ला) और दाता, इनकी वृत्ति संज्ञा है। उस वृत्तिका परिसंख्यान अर्थात् ग्रहण करना वृत्तिपरिसंख्यान है। इस वृत्तिपरिसंख्यानमें प्रतिबद्ध जो अवग्रह अर्थात् परिमाण-नियंत्रण होता है वह वृत्तिपरिसंख्यान नामका तप है, यह उक्त कथनका तात्पर्य है।

शंका—यह किनको करना चाहिये?

समाधान—जो अपने तपविशेषके द्वारा भव्यजनोंको शान्त करके अपने रस, रुधिर और मांसके शोषण द्वारा इन्द्रियसंयमकी इच्छा करते हैं उन साधुओंको करना चाहिये। अथवा जो भाजन और भोजनादि विषय रागादिको दूर करना चाहते हैं उन्हें करना चाहिये।

शरीर और इन्द्रियोंमें रागादि वृद्धिके निमित्तभूत दूध, गुड, घी, नमक और दही आदि रस कहलाते हैं। इनका त्याग करना रसपरित्याग तप है।

शंका—यह रस-परित्याग तप किसलिये किया जाता है?

समाधान—प्राणिसंयम और इन्द्रियसंयमकी प्राप्तिके लिये किया जाता है, क्योंकि जिह्वा

१ अवमोदर्यमिति च किमर्थम्? निद्राजयार्थं दोषप्रशमनार्थमतिमात्राहारजातविहितस्वाध्यायभयार्थमुपवासश्रमसमुद्भूतवात-पित्तप्रकोपपरिहीयमानसंयमसंरक्षणार्थं च। आचारसार. पृ. ५९. २ गोयरपमाणदायगभायणणाणाविधाण जं गहणं। तह एसणस्स गहणं विविधस्स य वुत्तिपरिसंखा॥ मूला. (पंचाचा.) १५७. ३ ताप्रतौ 'सगस्स-' इति पाठः। ४ स्वकीयतपोविशेषेण रस-रुधिर-मांसशोषणद्वारेणेन्द्रियसंयमं परिपालयतो भिक्षार्थिनो मुनेरेकागारसप्तवेश्मैकरथ्यार्धग्राम-दातृजनवेष-गृह-भाजन-भोजनादिविषयसंकल्पो वृत्तिपरिसंख्यानमाशानिवृत्त्यर्थमवगन्तव्यम्। चारित्रसार. पृ. ५९. ५ खीर-दहि-सप्पि-तेल-गुड-लवणाणं च जं परिच्चयणं। तित्त-कडु-कसायंबिलमधुररसाणं च जं चयणं॥ मूला. (पंचा.) १५५.

जिब्भिंदिए णिरुद्धे सयलिंदियाणं णिरोहुवलंभादो, सयलिंदिएसु णिरुद्धेसु चत्तपरिग्गहस्स णिरुद्धराग-दोसस्स तिगुत्तिगुत्तस्स पंचसमिदिमंडियस्स[1] वासी-चंदणसमाणस्स पाणासंजम-णिरोहुवलंभादो[2]।

रुक्खमूलब्भोकासादावणजोग-पलियंक-कुक्कुटासण-गोदोहद्धपलियंक-वीरासण-मदय-सयण-मयरमुह-हत्थिसोंडादीहि जं जीवदमणं[3] सो कायकिलेसो[4]। किमट्ठमेसो कीरदे ? सीद-वादादवेहि बहुदोववासेहि तिसा-छुहादिबाहाहि विसंठुलासणेहि य ज्झाणपरिचयट्ठं; अभावियसीदबाधादिउववासादिबाहस्स[5] मारणंतियअसादेण ओत्थअस्स[6] ज्झाणाणुववत्तीदो।

त्थी-पसु-संढयादीहि ज्झाण-ज्झेयविग्घकारणेहि वज्जियगिरिगुहा-कदर-पब्भार-सुसाण-सुण्णहरारामुज्जाणाओ पदेसा विवित्तं णाम। तत्थ सयणासणाभिग्गहो विवित्तसय-णासणं णाम तवो होदि[7]। किमट्ठमेसो कीरदे ? असब्भजणदंसणेण तस्सहवासेण जणिद-

इन्द्रियका निरोध हो जानेपर सब इन्द्रियोंका निरोध देखा जाता है, और सब इन्द्रियोंका निरोध हो जानेपर जो परिग्रहका त्याग कर राग द्वेषका निरोध कर चुका है, जो त्रिगुप्तिगुप्त है, जो पांच समितियोंसे मण्डित है, और जो वसूला और चन्दनमें समान बुद्धि रखता है उसके प्राणोंके असंयमका निरोध देखा जाता है।

वृक्षके मूलमें निवास, निरावरण प्रदेशमें आकाशके नीचे आतापन योग, पल्यंकासन, कुक्कुटासन, गोदोहासन, अर्धपल्यंकासन, वीरासन, मृतकवत् शयन अर्थात् मृतकासन तथा मकर-मुख और हस्तिशुंडादि आसनों द्वारा जो जीवका दमन किया जाता है, वह कायक्लेश तप है।

शंका—यह किसलिये किया जाता है ?

समाधान—शीत, वात और आतपके द्वारा; वहुत उपवासों द्वारा; तृषा, क्षुधा आदि बाधाओं द्वारा और विसंस्थुल आसनों द्वारा ध्यानका अभ्यास करनेके लिये किया जाता है, क्योंकि जिसने शीतबाधा आदि और उपवास आदिकी बाधाका अभ्यास नहीं किया है और जो मारणान्तिक असातासे खिन्न हुआ है उसके ध्यान नहीं बन सकता।

ध्यान और ध्येयमें विघ्नके कारणभूत स्त्री, पशु और नपुंसक आदिसे रहित गिरिकी गुफा, कन्दरा, पब्भार (गिरि-गुफा), स्मशान, शून्य घर, आराम और उद्यान आदि प्रदेश विविक्त कहलाते हैं। वहां शयन और आसनका नियम करना विविक्तशयनासन नामका तप है।

१ अप्रतौ 'समिदिमंदियस्स', आप्रतौ 'समिदिंदियस्स', ताप्रतौ 'समिदियस्स' इति पाठः। २ शरीरेन्द्रियरागादिवृद्धिकरक्षीर-दधि-गुड-तैलादिरसत्यजनं रसपरित्याग इत्युच्यते। तत्किमर्थम् ? दुर्दान्तेन्द्रियतेजोहानिः संयमोपरोधनिवृत्तिरित्येवमाद्यर्थम्। चारित्रसार. पृ. ६०. ३ ताप्रतौ 'सोंडादीहि जीव' इति पाठः। ४ वृक्षमूलाभ्रावकाशातापनयोग–वीरासन–कुक्कुटासन-पर्यंकार्धपर्यंक–गोदोहन–मकरमुख–हस्तिशुण्डा–मृतयशयनैकपार्श्वदंडधनुशय्यादिभिः शरीरपरिखेदः कायक्लेश इत्युच्यते। आचारसार. पृ. ६०. ५ अप्रतौ 'बाधादव्वुव-', ताप्रतौ 'बाधादवुव-' इति पाठः। ६ प्रतिषु 'ओड्डद्दस्स' इति पाठः। ७ ध्यानाध्ययनविघ्नकरस्त्री-पशु-पण्ढकादिपरिवर्जितगिरिगुहा-कन्दर-पितृवन-शून्यागारारामोद्यानादि-प्रदेशेषु विविक्तेषु जन्तुपीडारहितेषु संवृत्तेषु संयतस्य शयनासनं विविक्तशय्यासनं नाम। आचारसार. पृ. ६०.

तिकालविसयराग-दोसपरिहरणट्ठं । अत्र श्लोकः—

> बाह्यं तपः परमदुश्चरमाचरस्त्व-
> माध्यात्मिकस्य तपसः परिबृंहणार्थम् ।
> ध्यानं निरस्य कलुषद्वयमुत्तरस्मिन्
> ध्यानद्वये ववृतिषेऽतिशयोपपन्ने[1] ॥ ८ ॥

एवमेसो छव्विहो बाहिरतवो परूविदो । कथमेदस्स बज्झसण्णा ? अप्पणो पुधभूदेहि मिच्छाइट्ठीहि विणव्वदि त्ति बज्झसण्णा ।

संपहि छव्विहअब्भंतरतवसरूवनिरूवणं कस्सामो[2] । तं जहा— कयावराहेण ससंवेय-णिव्वेएण सगावराहणिरायरणट्ठं जमणुट्ठाणं कीरदि तप्पायच्छित्तं णाम तवोकम्मं । अत्र श्लोकः—

> प्राय इत्युच्यते लोकश्चित्तं तस्य मनो भवेत्[3] ।
> तच्चित्तग्राहकं कर्म्म प्रायश्चित्तमिति स्मृतम्[4] ॥ ९ ॥

अत्र ग्राहके ग्राह्योपचाराच्चित्तग्राहकस्य कर्मणश्चित्तव्यपदेशः ।

शंका—यह विविक्त शयनासन तप किसलिये किया जाता है ?

समाधान—असभ्य जनोंके देखनेसे और उनके सहवाससे उत्पन्न हुए त्रिकाल विषयक दोषोंको दूर करनेके लिये किया जाता है। इस विषयमें श्लोक है—

[हे कुन्थु जिनेन्द्र !] आपने आध्यात्मिक तपको बढ़ानेके लिये अत्यन्त दुश्चर बाह्य तपका आचरण किया और प्रारम्भके दो मलिन ध्यानोंको छोड़कर अतिशयको प्राप्त उत्तरके दो ध्यानोंमें प्रवृत्ति की ॥ ८ ॥

इस प्रकार यह छह प्रकारका बाह्य तप कहा ।

शंका—इसकी ' बाह्य ' संज्ञा किस कारणसे है ?

समाधान—यह अपनेसे पृथग्भूत मिथ्यादृष्टियोंके द्वारा भी जाना जाता है, इसलिये इसकी ' बाह्य ' संज्ञा है ।

अब छह प्रकारके आभ्यन्तर तपके स्वरूपका कथन करते हैं। यथा—संवेग और निर्वेदसे युक्त अपराध करनेवाला साधु अपने अपराधका निराकरण करनेके लिये जो अनुष्ठान करता है वह प्रायश्चित्त नामका तपःकर्म है । इस विषयमें श्लोक है—

प्रायः यह पद लोकवाची है और चित्तसे अभिप्राय उसके मनका है। इसलिये उस चित्तको ग्रहण करनेवाला कर्म प्रायश्चित्त है, ऐसा समझना चाहिये ॥ ९ ॥

यहां ग्राहकमें ग्राह्यका उपचार करके चित्त-ग्राहक कर्मकी ' चित्त ' संज्ञा दी है ।

---

१ बृहत्स्व. ८३. २ यतोऽन्यैस्तीर्थैरनभ्यस्तं ततोऽस्याभ्यन्तरत्वम् । प्रायश्चित्तादितपो हि बाह्यद्रव्यानपेक्षत्वादन्तःकरणव्यापाराच्चाभ्यन्तरम् ।··· आचारसार. पृ. ६१. ३ अ-आप्रत्योः ' भवे ' इति पाठः । ४ भग. (मूलाराधना) ५२९.

कृतानि कर्माण्यतिदारुणानि तनूभवन्त्यात्मविगर्हणेन ।
प्रकाशनात्संवरणाच्च तेषामत्यन्तमूलोद्धरणं[1] वदामि ॥ १० ॥

तं च पायच्छित्तमालोचणा-प्पडिक्कमण—उभय-विवेग-विउसग्ग-तव-च्छेद-मूल-परिहार-स्सद्दहणभेदेण दसविहं । एत्थ गाहा—

आलोयण-पडिकमणे उभय-विवेगे तहा विउसग्गो ।
तवछेदो मूलं पि य परिहारो चेव सद्दहणा[2] ॥ ११ ॥

गुरूणमपरिस्सवाणं सुदरहस्साणं वीयरायाणं तिरयणे मेरु व्व थिराणं सगदोस-णिवेयणमालोयणा णाम पायच्छित्तं । गुरुणमालोचणाए विणा ससंवेग-णिव्वेयस्स पुणो ण करेमि त्ति जमवराहादो णियत्तणं पडिक्कमणं णाम पायच्छित्तं । एदं कत्थ[3] होदि ? अप्पावराहे गुरूहि विणा वट्टमाणम्हि होदि । सगावराहं गुरूणमालोचिय गुरुसक्खिया अवराहादो पडिणियत्ती उभयं णाम पायच्छित्तं । एदं कत्थ होदि ? दुस्सुमिणदंसणादिसु । गण-गच्छ-दव्व-खेत्तादीहिंतो ओसारणं विवेगो णाम पायच्छित्तं । एदं कत्थ होदि ? जम्हि संते

अपनी गर्हा करनेसे, दोषोंका प्रकाशन करनेसे और उनका संवर करनेसे किये गये अतिदारुण कर्म कृश हो जाते हैं । अब उनका समूल नाश कैसे हो जाता है, यह कहते हैं ॥ १० ॥

वह प्रायश्चित्त आलोचना, प्रतिक्रमण, उभय, विवेक, व्युत्सर्ग, तप, छेद, मूल, परिहार और श्रद्धानके भेदसे दस प्रकारका हैं । इस विषयमें गाथा—

आलोचन, प्रतिक्रमण, उभय, विवेक, व्युत्सर्ग, तप, छेद, मूल, परिहार और श्रद्धान; ये प्रायश्चित्तके दस भेद हैं ॥ ११ ॥

अपरिस्रव अर्थात् आस्रवसे रहित, श्रुतके रहस्यको जाननेवाले, वीतराग, और रत्नत्रयमें मेरुके समान स्थिर ऐसे गुरुओंके सामने अपने दोषोंका निवेदन करना आलोचना नामका प्रायश्चित्त है । गुरुओंके सामने आलोचना किये विना संवेग और निर्वेदसे युक्त साधुका 'फिरसे कभी ऐसा न करूंगा' यह कहकर अपराधसे निवृत्त होना प्रतिक्रमण नामका प्रायश्चित्त है ।

शंका—यह प्रतिक्रमण प्रायश्चित कहांपर होता है ?

समाधान—जब अपराध छोटासा हो और गुरु समीप न हों, तब यह प्रायश्चित होता है ।

अपने अपराधकी गुरुके सामने आलोचना करके गुरुकी साक्षिपूर्वक अपराधसे निवृत्त होना उभय नामका प्रायश्चित्त है ।

शंका—यह उभय प्रायश्चित्त कहांपर होता है ?

समाधान— यह दुःस्वप्न देखने आदि अवसरोंपर होता है ?

गण, गच्छ, द्रव्य और क्षेत्र आदिसे अलग करना विवेक नामका प्रायश्चित्त है ।

शंका—यह विवेक प्रायश्चित्त कहांपर होता है ?

१ ताप्रतौ 'मूलाद्धरणं' इति पाठः । २ मूला. (पंचाचा.) १६५., आचारसार. पृ. ६१. ३ ताप्रतौ 'कथं' इति पाठः ।

अणियत्तदोसो सो तम्हि होदि। उववासादीहि[1] सह गच्छादिचागविहाणमेत्थेव[2] णिवददि, उभयसद्दाणुवुत्तीदो। झाणेण सह कायमुज्झिदूण[3] मुहुत्त-दिवस-पक्ख-मासादिकालमच्छणं विउस्सग्गो णाम पायच्छित्तं[4]। एत्थ वि दुसंजोगादीहि भंगुप्पत्ती वत्तव्वा; उभयसद्दस्स देसामासियत्तादो। सो कस्स होदि ? कयावराहस्स णाणेण दिट्ठणवट्ठस्स वज्जसंघडणस्स सीदवादादवसहस्स ओघसूरस्स साहुस्स होदि। खवणायंबिल-णिव्वियडि-पुरिमंडलेयट्ठाणाणि[5] तवो णाम[6]। एत्थ दुसंजोगा जोजेयव्वा। एदं कस्स होदि ? तिव्विंदियस्स जोव्वणभरत्थस्स बलवंतस्स सत्तसहायस्स कयावराहस्स होदि।

दिवस-पक्ख-मास-उदु-अयण-संवच्छरादिपरियायं छेत्तूण इच्छिदपरियायादो हेट्ठिम-भूमीए ठवणं छेदो णाम पायच्छित्तं। एदं कस्स होदि ? उववासादिखमस्स ओघबलस्स

समाधान—जिस दोषके होनेपर उसका निराकरण नहीं किया जा सकता, उस दोषके होनेपर यह प्रायश्चित्त होता है।

उभय शब्दकी अनुवृत्ति होनेसे उपवास आदिकके साथ जो गच्छादिके त्यागका विधान किया जाता है उसका अन्तर्भाव इसी विवेक प्रायश्चित्तमें हो जाता है।

कायका उत्सर्ग करके ध्यानपूर्वक एक मुहूर्त, एक दिन, एक पक्ष और एक महिना आदि काल तक स्थित रहना व्युत्सर्ग नामका प्रायश्चित्त है। यहांपर भी द्विसंयोग आदिकी अपेक्षा भंगोंकी उत्पत्ति कहनी चाहिये, क्योंकि उभय शब्द देशामर्शक है।

शंका—यह व्युत्सर्ग प्रायश्चित्त किसके होता है ?

समाधान—जिसने अपराध किया है, किन्तु जो अपने विमल ज्ञानसे नौ पदार्थोंको समझता है, वज्र संहननवाला है; शीतवात और आतपको सहन करनेमें समर्थ है; तथा सामान्य रूपसे शूर है, ऐसे साधुके होता है।

उपवास, आचाम्ल, निर्विकृति और दिवसके पूर्वार्धमें एकासन तप है। यहां द्विसंयोगी भंगोंकी योजना कर लेनी चाहिये।

शंका—यह तप प्रायश्चित्त किसे दिया जाता है ?

समाधान—जिसकी इन्द्रियां तीव्र हैं, जो जवान है, बलवान् है और सशक्त है, ऐसे अपराधी साधुको दिया जाता है।

एक दिन, एक पक्ष, एक मास, एक ऋतु, एक अयन और एक वर्ष आदि तककी दीक्षा पर्यायका छेद कर इच्छित पर्यायसे नीचेकी भूमिकामें स्थापित करना छेद नामका प्रायश्चित्त है।

शंका—यह छेद प्रायश्चित्त किसे दिया जाता है ?

१ आ-ताप्रत्योः 'उववादीहि' इति पाठः। २ प्रतिषु 'गच्छादि-भागविहाण' इति पाठः। ३ आ-ताप्रत्योः 'सह मुज्झिदूण' इति पाठः। ४ दुःस्वप्न-दुश्चिन्तन-मलोत्सर्जनागमातीचार-नदी-महाटवी-रणादिभिरन्यैश्चाप्यतीचारे सति ध्यानमवलम्ब्य कायमुत्सृज्यान्तर्मुहूर्त-दिवस-पक्ष-मासादिकालावस्थानं व्युत्सर्ग इत्युच्यते। आचारसार. पृ. ६३. ५ अ-आप्रत्योः 'खवणायंबिलणिच्चियदिपुरिमंदेयट्ठाणाणि' ताप्रतौ, 'खवणायंविलणिव्वियडिपुरिमंडेयट्ठाणाणि' इति पाठः। ६ णिव्वियडी पुरिमंडल आयंबिलमेयठाण खमणमिदि। एसो तवो त्ति भणिओ तवोविहाणप्पहाणेहि॥ छेदपिण्ड. २०३.

ओघसूरस्स गव्वियस्स कयावराहस्स साहुस्स होदि ।

सव्वं परियायमवहारिय पुणो दीक्खणं[1] मूलं णाम पायच्छित्तं । एदं कस्स होदि ? अवरिमियअवराहस्स पासत्थोसण्ण-कुसील-सच्छंदादिउव्वट्टट्ठियस्स होदि[2] ।

परिहारो दुविहो अणवट्ठओ परंचिओ[3] चेदि । तत्थ अणवट्ठओ[4] जहण्णेण छम्मास-कालो उक्कस्सेण बारसवासपेरंतो । कायभूमीदो परदो चेव कयविहारो पडिवंदणविहिदो गुरुवदिरित्तासेसजणेसु कयमोणाभिग्गहो खवणायंबिलपुरिमड्ढेयट्ठाणणिव्वियदीहि सोसिय-रस-रुहिर-मांसो होदि[5] । जो सो पारंचिओ सो एवंविहो चेव होदि, किंतु साधम्मिय-

समाधान—जिसने अपराध किया है तथा जो उपवास आदि करनेमें समर्थ है, सब प्रकार बलवान् है, सब प्रकार शूर है और अभिमानी है, ऐसे साधुको दिया जाता है ।

समस्त पर्यायका विच्छेद कर पुनः दीक्षा देना मूल नामका प्रायश्चित्त है ।

शंका—यह मूल प्रायश्चित्त किसे दिया जाता है ?

समाधान—अपरिमित अपराध करनेवाला जो साधु पार्श्वस्थ, अवसन्न, कुशील और स्वच्छन्द आदि होकर कुमार्गमें स्थित है, उसे दिया जाता है ।

परिहार दो प्रकारका है—अनवस्थाप्य और पारञ्चिक । उनमेंसे अनवस्थाप्य परिहार प्रायश्चित्तका जघन्य काल छह महीना और उत्कृष्ट काल बारह वर्ष है । वह कायभूमिसे दूर रह कर ही विहार करता है, प्रतिवन्दनासे रहित होता है, गुरुके सिवाय अन्य सब साधुओंके साथ मौनका नियम रखता है तथा उपवास, आचाम्ल, दिनके पूर्वार्धमें एकासन और निर्विकृति आदि तपों द्वारा शरीरके रस, रुधिर और मांसको शोषित करनेवाला होता है ।

पारञ्चिक तप भी इसी प्रकारका होता है । किन्तु इसे साधर्मी पुरुषोंसे रहित क्षेत्रमें

१ ताप्रतौ 'दिक्खणं' इति पाठः । २ पार्श्वस्थादीनां मूलं प्रायश्चित्तम् । तद्यथा—पार्श्वस्थः कुशीलः संसक्तः अवसन्नः मृगचारित्र इति । तत्र यो वसतिषु प्रतिबद्ध उपकरणोपजीवी च श्रमणानां पार्श्वे तिष्ठतीति पार्श्वस्थः । क्रोधादिकषायकलुषितात्मा व्रत-गुण-शीलैः परिहीनः संघस्यानयकारी कुशीलः । मंत्र-वैद्यक-ज्योतिष्कोपजीवी राजादिसेवकः संसक्तः । जिनवचनानभिज्ञो मुक्तचारित्रभारो ज्ञानाचरणभ्रष्टः करणालसोऽवसन्नः । त्यक्तगुरुकुल एकाकित्वेन स्वच्छन्दविहारी जिनवचनदूषको मृगचारित्रः स्वच्छंद इति वा । एते पंचश्रमणा जिनधर्मबाह्याः । आचारसार. पृ. ६३. ३ अ-आप्रत्योः 'अणुवट्ठवओ पारंभिओ', ताप्रतौ 'अणुवट्ठवओ पारंभि (चि) ओ' इति पाठः । ४ प्रतिषु 'अणुवट्ठओ' इति पाठः । ५ परिहारोऽनुपस्थान-पारंचिकभेदेन द्विविधः । तत्रानुपस्थापनं निज-परगणभेदाद् द्विविधम् । प्रमादादन्यमुनि-संबंधिनमृषिं छात्रं गृहस्थं वा परपाखंडिप्रतिबद्धचेतनाचेतनद्रव्यं वा परस्त्रियं वा स्तेनयतो मुनीन् प्रहरतो वा अन्यदपि एवमादिविरुद्धाचरितमाचरतो नव-दशपूर्वधरस्यादित्रिकसंहननस्य जितपरी-षहस्य दृढधर्मिणो धीरस्य भवभीतस्य निजगुणानुपस्थापनं प्रायश्चित्तं भवति ।··· दर्पादनन्तरोक्तान्दोषानाचरतः परगणोपस्थापनं प्रायश्चित्तं भवतीति । आचारसार. पृ. ६४.

वज्जियक्खेत्ते समाचरेयव्वो[1] । एत्थ उक्कस्सेण छम्मासक्खवणं पि उवइट्ठं । एदाणि दो वि पायच्छित्ताणि णरिंदविरुद्धाचरिदे आइरियाणं णव-दसपुव्वहराणं होदि ।

मिच्छत्तं गंतूण ट्ठियस्स महव्वयाणि घेत्तूण अत्तागम-पयत्थसद्दहणा चेव [सद्दहणं] पायच्छित्तं[2] । णाण-दंसणचरित्त-तवोवयारभेएण विणओ पंचविहो । रत्नत्रयवत्सु नीचैर्वृत्तिर्विनयः । एदेसिं विणयाणं लक्खणं सुगमं ति ण भण्णदे । एदं विणओ णाम तवोकम्मं ।

व्यापदि यत्क्रियते तद्वैयावृत्त्यम् । तं च वेज्जावच्चं दसविहं— आइरिय-उवज्झाय-साहु-तवस्सि-सिक्खुवगिलाण-कुल-गण-संघ-मणुण्णवेज्जावच्चं चेदि[3] । तत्थ कुलं पंचविहं—पंचथूहकुलं गुहावासीकुलं सालमूलकुलं असोगवाडकुलं खंडकेसरकुलं । तिपुरिसओ गणो । तदुवरि गच्छो । आइरियादिगणपेरंताणं महल्लावईएं[4] णिवदिदाणं समूहस्स जं बाहावणयणं तं संघवेज्जावच्चं णाम । आइरियेहि सम्मदाणं गिहत्थाणं दिक्खाभिमुहाणं वा जं कीरदे तं मणुण्णवेज्जावच्चं णाम । एवमेदं सव्वं पि वेज्जावच्चं णामं तवोकम्मं ।

आचरण करना चाहिये । इसमें उत्कृष्ट रूपसे छह मासके उपवासका भी उपदेश दिया गया है । ये दोनों ही प्रकारके प्रायश्चित्त राजाके विरुद्ध आचरण करनेपर नौ और दस पूर्वोंको धारण करनेवाले आचार्य करते हैं ।

मिथ्यात्वको प्राप्त होकर स्थित हुए जीवके महाव्रतोंको स्वीकार कर आप्त, आगम और पदार्थोंका श्रद्धान करनेपर श्रद्धान नामका प्रायश्चित्त होता है ।

ज्ञान, दर्शन, चरित्र, तप और उपचारके भेदसे विनय पांच प्रकारका है । रत्नत्रयको धारण करनेवाले पुरुषोंके प्रति नम्र वृत्ति धारण करना विनय है । इन विनयोंका लक्षण सुगम है, इसलिये यहां नहीं कहते हैं । यह विनय नामक तपःकर्म है ।

आपत्तिके समय उसके निवारणार्थ जो किया जाय वह वैयावृत्य नामका तप है । आचार्य, उपाध्याय, साधु, तपस्वी, शैक्ष, उपग्लान, कुल, गण, संघ और मनोज्ञोंकी वैयावृत्यके भेदसे वह वैयावृत्य तप दस प्रकारका है । उनमें कुल पांच प्रकारका है—पञ्चस्तूप कुल, गुफावासी कुल, शालमूल कुल, अशोकवाट कुल और खण्डकेशर कुल । तीन पुरुषोंके समुदायको गण कहते हैं और इसके आगे गच्छ कहलाता है । महान् आपत्तिमें पड़े हुए आचार्यसे लेकर गण पर्यंत सर्व साधुओंके समूहकी बाधा दूर करना संघवैयावृत्य नामका तप है । जो आचार्यों द्वारा सम्मत हैं और जो दीक्षाभिमुख गृहस्थ हैं उनकी वैयावृत्य करना वह मनोज्ञवैयावृत्य नामका तप है । इस प्रकार यह सब वैयावृत्य नामका तप है ।

---

१ तीर्थंकर-गणधर-गणि-प्रवचन-संघाद्यासादनकारकस्य नरेन्द्रविरुद्धाचरितस्य राजानमभिमतामात्यादीनां दत्तदीक्षस्य नृपकुलवनितासेवितस्यैवमाद्यन्यैर्दोषैश्च धर्मदूषकस्य पारंचिकं प्रायश्चित्तं भवति । आचारसार पृ. ६४. २ मिथ्यात्वं गत्वा स्थितस्य पुनरपि गृहीतमहाव्रतस्य आप्तागम-पदार्थानां श्रद्धानमेव प्रायश्चित्तम् । आचारसार. पृ. ६४. ३ तत्त्वा. ९-२४. ४ ताप्रतौ 'महल्लावए' इति पाठः ।

अंगंगबाहिरआगमवायण-पुच्छणाणुपेहा-परियट्टण-धम्मकहाओ सज्झायो णाम। उत्तम-संहननस्य एकाग्रचिंतानिरोधो ध्यानम्[1] । एत्थ गाहा—

जं थिरमज्झवसाणं तं झाणं जं चलंतयं[2] चित्तं
तं होइ भावणा वा अणुपेहा वा अहव चिंता ॥ १२ ॥

तत्थ झाणे चत्तारि अहियारा होंति— ध्याता ध्येयं ध्यानं ध्यानफलमिति[3] । तत्थ उत्तमसंघडणो ओघबलो ओघसूरो चोद्दसपुव्वहरो वा [दस-] णवपुव्वहरो वा[4], णाणेण विणा अणवगयणवपयत्थस्स झाणाणुववत्तीदो । जदि णवपयत्थविसयणाणेणेव ज्झाणस्स संभवो होइ तो चोद्दस-दस-णवपुव्वधरे मोत्तूण अण्णेसिं पि ज्झाणं किण्ण संपज्जदे, चोद्दस-दस-णवपुव्वेहि विणा थोवेण वि गंथेण णवपयत्थावगमोवलंभादो ? ण, थोवेण गंथेण णिस्सेस-मवगंतुं बीजबुद्धिमुणिणो मोत्तूण अण्णेसिमुवायाभावादो। जीवाजीव-पुण्ण-पाव-आसव-संवर-णिज्जरा-बंध-मोक्खेहि णवहि पयत्थेहि वदिरित्तमण्णं ण[5] किं पि अत्थि, अणुवलंभादो। तम्हा ण थोवेण सुदेण एदे अवगंतुं सक्किज्जंते, विरोहादो । ण च दव्वसुदेण एत्थ अहियारो,

अंग और अंगबाह्य आगमकी वाचना, पृच्छना, अनुप्रेक्षा, परिवर्तना और धर्मकथा करना स्वाध्याय नामका तप है ।

उत्तम संहननवालेका एकाग्र होकर चिन्ताका निरोध करना ध्यान नामका तप है । इस विषयमें गाथा—

जो परिणामोंकी स्थिरता होती है उसका नाम ध्यान है और जो चित्तका एक पदार्थसे दूसरे पदार्थमें चलायमान होना है वह या तो भावना है या अनुप्रेक्षा है या चिन्ता है ॥ १२ ॥

ध्यानके विषयमें चार अधिकार हैं—ध्याता, ध्येय, ध्यान और ध्यानफल । (१) जो उत्तम संहननवाला, निसर्गसे बलशाली, निसर्गसे शूर, चौदह पूर्वोंको धारण करनेवाला या नौ दस पूर्वोंको धारण करनेवाला होता है वह ध्याता है; क्योंकि इतना ज्ञान हुए विना जिसने नौ पदार्थोंको भले प्रकार नहीं जाना है उसके ध्यानकी उत्पत्ति नहीं हो सकती ।

शंका—यदि नौ पदार्थ विषयक ज्ञानसे ही ध्यानकी प्राप्ति सम्भव है तो चौदह, दस और नौ पूर्वधारियोंके सिवा अन्यको भी वह ध्यान क्यों नहीं प्राप्त होता; क्योंकि चौदह, दस और नौ पूर्वोंके विना स्तोक ग्रन्थसे भी नौ पदार्थविषयक ज्ञान देखा जाता है ।

समाधान— नहीं, क्योंकि स्तोक ग्रन्थसे वीजबुद्धि मुनि ही पूरा जान सकते हैं, उनके सिवा दूसरे मुनियोंको जाननेका अन्य कोई साधन नहीं है ।

जीव, अजीव, पुण्य, पाप, आस्रव, संवर, निर्जरा, वन्ध और मोक्ष; इन नौ पदार्थोंके सिवा अन्य कुछ भी नहीं हैं, क्योंकि इनके सिवा अन्य कोई पदार्थ उपलब्ध नहीं होता । इसलिये स्तोक श्रुतसे इनका ज्ञान करना शक्य नहीं हैं, क्योंकि ऐसा माननेमें विरोध आता है । और

१ तत्त्वा. ९-२७. २ आ-ताप्रत्योः 'चलत्तयं' इति पाठः । ३ प्रतिपु 'ध्याताध्येयध्यानध्यान-फलमिति' इति पाठः । ४ आ-ताप्रत्योः 'चोद्दसपुव्वहरो वा' इति पाठः । ५ अ-आप्रत्योः 'मणण्ण' इति पाठः ।

पोग्गलवियारस्स जडस्स णाणोवलिंगभूदस्स सुदत्तविरोहादो। थोवदव्वसुदेण अवगयासेस-णवपयत्थाणं सिवभूदिआदिबीजबुद्धीणं ज्झाणाभावेण मोक्खाभावप्पसंगादो। थोवेण णाणेण जदि ज्झाणं होदि तो खवगसेडि-उवसमसेडीणमप्पाओग्गधम्मज्झाणं चेव होदि। चोद्दस-दस-णवपुव्वहरा पुण धम्म-सुक्कज्झाणाणं दोण्णं पि सामित्तमुवणमंति, अविरोहादो। तेण तेसिं चेव एत्थ णिद्देसो कदो।

सम्माइट्ठी—ण च णवपयत्थविसयरुइ-पच्चय-सद्धाहि विणा झाणं संभवदि, तप्पवुत्ति-कारणसंवेग-णिव्वेयाणं अण्णत्थ असंभवादो। चत्तासेसवज्झंतरंगगंथो— खेत्त-वत्थु-धण-धण्ण-दुवय-चउप्पय-जाण-सयणासण-सिस्स-कुल-गण-संघेहि जणिदमिच्छत्त[2]-कोह-माण-माया-लोह-हस्स-रइ-अरइ-सोग-भय-दुगुंछा-त्थी-पुरिस-णवुंसयवेदादिअंतरंगगंथकंखा[3]परिवेढियस्स सुह-ज्झाणा[4]णुववत्तीदो। एत्थ गाहा—

> ज्झाणिस्स लक्खणं से अज्जव-लहुअत्त-मुद्दवुवएसा[5]।
> उवएसाणासुत्तं णिस्सग्गगदाओ रुचियो से[6] ॥ १३ ॥

द्रव्यश्रुतका यहां अधिकार नहीं है, क्योंकि ज्ञानके उपलिंगभूत पुद्गलके विकार स्वरूप जड वस्तुको श्रुत माननेमें विरोध आता है।

यदि कहा जाय कि स्तोक द्रव्यश्रुतसे नौ पदार्थोंको पूरी तरह जान कर शिवभूति आदि बीजबुद्धि मुनियोंके ध्यान नहीं माननेसे मोक्षका अभाव प्राप्त होता हैं, तो इसपर यह कहना है कि स्तोक ज्ञानसे यदि ध्यान होता है तो वह क्षपकश्रेणि और उपशमश्रेणिके अयोग्य धर्म ध्यान ही होता है। परन्तु चौदह, दस और नौ पूर्वोंके धारी तो धर्म और शुक्ल दोनों ही ध्यानोंके स्वामी होते हैं, क्योंकि ऐसा माननेमें कोई विरोध नहीं आता। इसलिये उन्हींका यहां निर्देश किया है।

(२) वह (ध्याता) सम्यग्दृष्टि होता है। कारण कि नौ पदार्थ विषयक रुचि, प्रतीति और श्रद्धाके विना ध्यानकी प्राप्ति सम्भव नहीं है, क्योंकि उसकी प्रवृत्तिके मुख्य कारण संवेग और निर्वेद अन्यत्र नहीं हो सकते।

(३) वह (ध्याता) समस्त बहिरंग और अन्तरंग परिग्रहका त्यागी होगा है, क्योंकि जो क्षेत्र, वास्तु, धन,धान्य, द्विपद, चतुष्पद, यान, शयन, आसन, शिष्य, कुल, गण और संघके कारण उत्पन्न हुए मिथ्यात्व, क्रोध, मान, माया और लोभ हास्य, रति, अरति, शोक, भय, जुगुप्सा स्त्री वेद, पुरुप वेद और नपुंसक वेद आदि अन्तरंग परिग्रहकी कांक्षासे वेष्टित है उसके शुभ ध्यान नहीं बन सकता। इस विषयमें गाथा—

जिसकी उपदेश, जिनाज्ञा और जिनसूत्रके अनुसार आर्जव, लघुता और मृद्धत्व गुणसे युक्त स्वभावगत रुचि होती है वह ध्यान करनेवालेका लक्षण है ॥ १३ ॥

१ अ-आप्रत्योः 'जलस्स मामोवलिंग', ताप्रतौ 'जलस्स माभोवलिंग' इति पाठः। २ आ-ताप्रत्योः 'मिच्छंति' इति पाठः। ३ अप्रतौ 'गंथकथा-', आप्रतौ 'गत्थविकंक्खा', ताप्रतौ 'गंथाविकंघा' इति पाठः। ४ अ-आप्रत्योः 'सुहज्जाणा-' इति पाठः। ५ आप्रतौ 'वुवएसो' इति पाठः। ६ अप्रतौ '...रुचीयासे', आप्रतौ 'णासुत्तणिस्सग्गं णगदाओ रुच्चियो सेसो' इति पाठः।

विवित्तपासुअगिरि-गुहा-कंदर-पब्भार-सुसाण-आरामुज्जाणादिदेसत्थो—अण्णत्थ मणो-विक्खेवहेदुवत्थुदंसणेण[1] सुहज्झाणविणासप्पसंगादो। जहासुहत्थो—असुहासणे ट्ठियस्स पीडियंगस्स ज्झाणवाघादसंभवादो। एत्थ गाहा—

जच्चिय देहावत्था जया ण ज्झाणावरोहिणी[2] होइ।
ज्झाएज्जो तदवत्थो ट्ठियो णिसण्णो णिवण्णो वा॥ १४॥

अणियदकालो—सव्वकालेसु सुहपरिणामसंभवादो। एत्थ गाहाओ—

सव्वासु वट्टमाणा मुणओ जं देस-काल-चेट्ठासु।
वरकेवलादिलाहं पत्ता बहुसो खवियपावा॥ १५॥

तो जत्थ समाहाणं होज्ज मणो-वयण-कायजोगाणं[3]
भूदोवघायरहिओ सो देसो ज्झायमाणस्स॥ १६॥

णिच्चं विय-जुवई[4]-पसू-णवुंसय-कुसीलवज्जियं जइणो।
ट्ठाणं वियणं भणियं विसेसदो ज्झाणकालम्मि॥ १७॥

---

(४) वह (ध्याता) एकान्त और प्रासुक ऐसे पहाड़, गुफा, कन्दरा, पब्भार (गिरि-गुफा) स्मशान, आराम और उद्यान आदि देशमें स्थित होता है, क्योंकि अन्यत्र मनके विक्षेपके हेतुभूत पदार्थ दिखाई देनेसे शुभ ध्यानके विनाशका प्रसंग आता है।

(५) वह (ध्याता) अपनी सुखासन अर्थात् सहजसाध्य आसनसे बैठता हैं, क्योंकि असुखासनसे बैठनेपर उसके अंग दुखने लगते हैं जिससे ध्यानमें व्याघात होना सम्भव रहता है इस विषयमें गाथा—

जैसी भी देहकी अवस्था जिस समय ध्यानमें बाधक नहीं होती उस अवस्थामें रहते हुए खड़ा होकर या बैठकर कायोत्सर्गपूर्वक ध्यान करे॥ १४॥

(६) उस (ध्याता) के ध्यान करनेका कोई नियत काल नहीं होता, क्योंकि सर्वदा शुभ परिणामोंका होना सम्भव है। इस विषयमें गाथायें हैं—

सब देश, सब काल और सब अवस्थाओंमें विद्यमान मुनि अनेकविध पापोंका क्षय करके उत्तम केवलज्ञान आदिको प्राप्त हुए॥ १५॥

मनोयोग, वचनयोग और काययोगका जहां समाधान हो और जो प्राणियोंके उपघातसे रहित हो वही देश ध्यान करनेवालेके लिये उचित है॥ १६॥

जो स्थान श्वापद, स्त्री, पशु, नपुंसक और कुशील जनोंसे रहित हो और जो निर्जन हो; यति जनोंको विशेषरूपसे ध्यानके समय ऐसा ही स्थान उचित माना हैं॥ १७॥

---

१ ताप्रतौ 'हेडवत्थु' इति पाठः। २ अ-आप्रत्योः 'ज्झाणोवरोहणी' इति पाठः। ३ प्रतिपु 'जोगाणं' इति पाठः। ४ ताप्रतौ 'वि य जुवइ' इति पाठः।

थिरकयजोगाणं[1] पुण मुणीण झाणेसु णिच्चलमणाणं।
गामम्मि जणाइण्णे सुण्णे रण्णे य ण विसेसो ॥ १८ ॥
कालो वि सो च्चिय जहिं जोगसमाहाणमुत्तमं लहइ।
ण उ दिवसणिसावेलादिणियमणं[2] ज्झाइणो समए ॥ १९ ॥
तो देसकालचेट्ठाणियमो ज्झाणस्स णत्थि समयम्मि।
जोगाण समाहाणं जह होइ तहा पयइयव्वं ॥ २० ॥

सालंबणो—ण च आलंबणेण विणा ज्झाण-पासायारोहणं संभवइ, आलंबणभूद-णिस्सेणिआदीहि विणा पासादादिमारोहमाणपुरिसाणमणुवलंभादो। एत्थ गाहा—

आलंबणाणि वायण-पुच्छण-परियट्टणाणुपेहाओ।
सामाइयादियाइं सव्वमावासयाइं चु ॥ २१ ॥
विसमं हि समारोहइ दव्वालंबणो[3] जहा पुरिसो।
सुत्तादिकयालंबो तह ज्झाणवरं समारुहइ ॥ २२ ॥

सुट्ठु त्तिरयणेसु भावियप्पा। ण च भावणाए विणा ज्झाणं संपज्जइ, एगवारेणेव बुद्धीए थिरत्ताणुववत्तीदो। एत्थ गाहा—

परन्तु जिन्होंने अपने योगोंको स्थिर कर लिया है और जिसका मन ध्यानमें निश्चल है ऐसे मुनियोंके लिये मनुष्योंसे व्याप्त ग्राममें और शून्य जंगलमें कोई अन्तर नहीं है ॥ १८ ॥

काल भी वही योग्य है जिसमें उत्तम रीतिसे योगका समाधान प्राप्त होता है। ध्यान करनेवालेके लिए दिन, रात्रि और वेला आदि रूपसे समयमें किसी प्रकारका नियमन नहीं किया जा सकता ॥ १९ ॥

ध्यानके समयमें देश, काल और चेष्टाका भी कोई नियम नहीं है। तत्त्वतः जिस तरह योगोंका समाधान हो उस तरह प्रवृत्ति करनी चाहिये ॥ २० ॥

(७) वह (ध्याता) आलम्बनसहित होता है। आलम्बनके विना ध्यानरूपी प्रासादपर आरोहण करना सम्भव नहीं है, क्योंकि आलम्बनभूत नसैनी आदिके विना पुरुषोंका प्रासाद आदिपर आरोहण करना नहीं देखा जाता। इस विषयमें गाथा है—

वाचना, पृच्छना, परिवर्तना, अनुप्रेक्षा और सामायिक आदि सब आवश्यक कार्य; ये सब ध्यानके आलम्बन हैं ॥ २१ ॥

जिस प्रकार कोई पुरुष नसैनी आदि द्रव्यके आलम्बनसे विषम भूमिपर भी आरोहण करता है उसी प्रकार ध्याता भी सूत्र आदिके आलम्बनसे उत्तम ध्यानको प्राप्त होता है ॥ २२ ॥

(८) वह (ध्याता) भले प्रकार रत्नत्रयकी भावना करनेवाला होता है। भावनाके विना ध्यानकी प्राप्ति नहीं होती, क्योंकि केवल एक वारमें ही बुद्धिमें स्थिरता नहीं आती। इस विषयमें गाथा है—

---

१ प्रतिषु 'जोग्गाणं' इति पाठः। २ ताप्रतौ 'वेलाणियमणं' इति पाठः। ३ ताप्रतौ 'पि समारोपाइददव्वालंबणो' इति पाठः।

पुव्वकयब्भासो भावणाहि ज्झाणस्स जोग्गदमुवेदि ।
ताओ य णाण-दंसण-चरित्त-वेरग्गजणियाओ ॥ २३ ॥
णाणे णिच्चब्भासो[1] कुणइ मणोवारणं विसुद्धिं च ।
णाणगुण[2]मुणियसारो तो ज्झायइ णिच्चलमईओ ॥ २४ ॥
संकाइसल्लरहियो पसमत्थेयादिगुणगणोवईयो ।
होइ असंमूढमणो दंसणसुद्धीए ज्झाणम्मि ॥ २५ ॥
णवकम्माणादाणं पोराणवि णिज्जरा सुहादाणं ।
चारित्तभावणाए ज्झाणमयत्तेण य समेइ ॥ २६ ॥
सुविदियजयस्सहावो णिस्संगो णिब्भवो णिरासो य ।
वेरग्गभावियमणो ज्झाणम्मि सुणिच्चलो होइ ॥ २७ ॥

विसएहिंतो दिट्ठिं णिरंभियूण ज्झेये णिरुद्धचित्तो । कुदो ? विसएसु पसरंतदिट्ठिस्स थिरत्ताणुववत्तीदो । एत्थ गाहाओ—

किंचिदिट्ठिमुपावत्तइत्तु ज्झेये णिरुद्धट्ठीओ ।
अप्पाणम्मि सदिं संधित्तुं[3] संसारमोक्खट्ठं[4] ॥ २८ ॥

जिसने पहले उत्तम प्रकारसे अभ्यास किया है वह पुरुष ही भावनाओं द्वारा ध्यानकी योग्यताको प्राप्त होता है और वे भावनायें ज्ञान, दर्शन, चारित्र और वैराग्यसे उत्पन्न होती हैं ॥२३॥

जिसने ज्ञानका निरन्तर अभ्यास किया है वह पुरुष ही मनोनिग्रह और विशुद्धिको प्राप्त होता है, क्योंकि जिसने ज्ञान गुणके बलसे सारभूत वस्तुको जान लिया है वही निश्चलमति हो ध्यान करता है ॥ २४ ॥

जो शंका आदि शल्योंसे रहित है, और जो प्रशम तथा स्थैर्य आदि गुणगणोंसे उपचित हैं, वही दर्शनविशुद्धिके बलसे ध्यानमें असंमूढ मनवाला होता है ॥ २५ ॥

चारित्र भावनाके बलसे जो ध्यानमें लीन है उसके नूतन कर्मोंका ग्रहण नहीं होता, पुराने कर्मोंकी निर्जरा होती है, और शुभ कर्मोंका आस्रव होता है ॥ २६ ॥

जिसने जगत्के स्वभावको जान लिया है, जो निःसंग है, निर्भय है, सब प्रकारकी आशाओंसे रहित है और वैराग्यकी भावनासे जिसका मन ओतप्रोत है वही ध्यानमें निश्चल होता है ॥ २७ ॥

(९) वह (ध्याता) विषयोंसे दृष्टिको हटाकर ध्येयमें चित्तको लगानेवाला होता है, क्योंकि जिसकी दृष्टि विषयोंमें फैलती है उसके स्थिरता नहीं बन सकती । इस विषयमें गाथायें—

जिसकी दृष्टि ध्येयमें रुकी हुई है वह बाह्य विषयसे अपनी दृष्टिको कुछ क्षणके लिए हटा कर संसारसे मुक्त होनेके लिए अपनी स्मृतिको अपने आत्मामें लगावे ॥ २८ ॥

---

१ ताप्रतौ 'णाणे च णिच्चभासो' इति पाठः । २ ताप्रतौ 'णाणागुण' इति पाठः । ३ प्रतिषु 'सल्लगहियो' इति पाठः । ३ अप्रतौ 'सदिंसंदित्तुं', आप्रतौ 'सदिस्संदित्तु', ताप्रतौ 'सदिस्सदित्तु' इति पाठः । ४ भग. १७०६.

पच्चाहरित्तु[1] विसएहि इंदियाणं मणं च तेहिंतो।
अप्पाणम्मि मणं तं जोगं पणिधाय धारेदि[2] ॥ २९ ॥

एवं ज्झायंतस्स लक्खणं परूविदं।

संपहि ज्झेयपरूवणं कीरदे— को ज्झाइज्जइ ? जिणो वीयरायो केवलणाणेण अवगय-तिकालगोयराणंतपज्जाओवचियछद्दव्वो[3] णवकेवललद्धिप्पहुडिअणंतगुणेहि आरद्धदिव्वदेहधरो अजरो अमरो अजोणिसंभवो[4] अदज्झो अछेज्जो अवत्तो णिरंजणो णिरामओ अणवज्जो सयल-किलेसुम्मुक्को तोसवज्जियो वि सेवयजणकप्परुक्खो, रोसवज्जिओ वि सगसमयपरम्मुहजीवाणं कयंतोवमो, सिद्धसज्झो जियजेयो संसार-सायरुत्तिण्णो सुहामियसायरणिवुड्डासेसंकरचरणो[5] णिच्चओ णिरायुहभावेण[6] जाणावियपडिवक्खाभावो सव्वलक्खणसंपुण्णदप्पणसंकंतमाणुसच्छाया-गारो संतो वि सयलमाणुसपहावुत्तिण्णो[7] अव्वओ अक्खओ[8]।

द्रव्यतः क्षेत्रतश्चैव कालतो भावतस्तथा।
सिद्धाष्टगुणसंयुक्ता गुणाः द्वादशधा स्मृताः ॥ ३० ॥

बारसगुणकलियो[9]। एत्थ गाहा—

इन्द्रियोंको विषयोंसे हटाकर और मनको भी विषयोंसे दूर कर समाधिपूर्वक उस मनको अपने आत्मामें लगावे ॥ २९ ॥

इस प्रकार ध्यान करनेवालेका लक्षण कहा। अब ध्येयका कथन करते हैं—

शंका—ध्यान करने योग्य कौन है ?

समाधान—जो वीतराग है, केवलज्ञानके द्वारा जिसने त्रिकालगोचर अनन्त पर्यायोंसे उपचित छह द्रव्योंको जान लिया है, नौ केवल लब्धि आदि अनन्त गुणोंके साथ जो आरम्भ हुए दिव्य देहको धारण करता है, जो अजर है, अमर है, अयोनिसम्भव है, अदग्ध है, अछेद्य है, अव्यक्त है, निरंजन है, निरामय है, अनवद्य है, समस्त क्लेशोंसे रहित है, तोष गुणसे रहित होकर भी सेवक जनोंके लिये कल्पवृक्षके समान है, रोषसे रहित होकर भी आत्मधर्मसे परान्मुख हुए जीवोंके लिये यमके समान है, जिसने साध्यकी सिद्धि कर ली है, जो जितजेय है, संसार-सागरसे उत्तीर्ण है, जिसके हाथ-पैर सुखामृत-सागरमें पूरी तरहसे बूड़े हुए हैं, नित्य है, निरायुध होनेसे जिसने 'उसका कोई प्रतिपक्षी नहीं है' इस बातको जताया है, समस्त लक्षणोंसे परिपूर्ण है अतएव दर्पणमें संक्रान्त हुई मनुष्यकी छायाके समान होकर भी समस्त मनुष्योंके प्रभावसे परे है, अव्यक्त है, अक्षय है।

सिद्धोंके आठ गुण होते हैं। उनमें द्रव्य, क्षेत्र, काल और भावकी अपेक्षा चार गुण मिलानेपर बारह गुण माने गये हैं ॥ ३० ॥

इस प्रकार जो बारह गुणोंसे विभूषित है। इस विषयमें गाथा—

---

१ ताप्रतौ 'पच्छाहरित्तु' इति पाठः। २ भग. १७०७. ३ ताप्रतौ 'पज्जाओ, उवचियछदव्वो' इति पाठः। ४ आ-ताप्रत्योः 'अजरो अजोणिसंभवो' इति पाठः। ५ अ-आप्रत्योः 'णिव्वुड्डासेस' ताप्रतौ 'णिवुद्धा (ड्डा) सेस' इति पाठः। ६ अप्रतौ 'णिराउहभावेण', आ-ताप्रत्योः 'णिराभावेण' इति पाठः। ७ ताप्रतौ 'माणुससहावुत्तिण्णो' इति पाठः। ८ आ-काप्रत्योः 'अक्खओ' इत्यतः पश्चात् 'बारस' इत्येतदधिकं पदमुपलभ्यते। ९ आप्रतौ 'बारसरसगुणकलियो', ताप्रतौ 'गुणरसकलियो' इति पाठः।

मिच्छत्तासंजम-कसाय-जोगजणिदकम्मसमुप्पण्णजाइ-जरा-मरणवेयणाणुसरणं तेहिंतो अवायचिंतणं च अवायविचयं णाम धम्मज्झाणं । एत्थ गाहाओ—

रागद्दोसकसायासवादिकिरियासु वट्टमाणाणं ।
इहपरलोगावाए ज्झाएज्जो वज्जपरिवज्जी ॥ ३९ ॥
कल्लाणपावए जे उवाए विचिणादि जिणमयमुवेच्च ।
विचिणादि वा अवाए जीवाणं जे सुहा असुहा[1] ॥ ४० ॥

कम्माणं सुहासुहाणं पयडि-ट्ठिदि-अणुभाग-पदेसभेएण चउव्विहाणं विवागाणुसरणं विवागविचयं णाम तदियधम्मज्झाणं । एत्थ गाहाओ—

पयडिट्ठिदिप्पदेसाणुभागभिण्णं सुहासुहविहत्तं ।
जोगाणुभागजणियं कम्मविवागं विचिंतेज्जो ॥ ४१ ॥
एगाणेगमवगयं जीवाणं पुण्णपावकम्मफलं ।
उदओदीरणसंकमबंधे[2] मोक्खं च विचिणादी ॥ ४२ ॥

तिण्णं लोगाणं संठाण-पमाणाउयादिचिंतणं संठाणविचयं णाम चउत्थं धम्मज्झाणं । एत्थ गाहाओ—

मिथ्यात्व, असंयम, कषाय और योगोंके निमित्तसे कर्म उत्पन्न होते हैं और कर्मोंके निमित्तसे जाति, जरा, मरण और वेदना उत्पन्न होते हैं; ऐसा चिन्तवन करना और उनसे अपायका चिन्तन करना अपायविचय नामका धर्मध्यान है । इस विषयमें गाथायें हैं—

पापका त्याग करनेवाला साधु राग, द्वेष, कषाय और आस्रव आदि क्रियाओंमें विद्यमान जीवोंके इहलोक और परलोकसे अपायका चिन्तवन करे ॥ ३९ ॥

अथवा जिनमतको प्राप्त कर कल्याण करनेवाले जो उपाय हैं उनका चिन्तवन करता है । अथवा जीवोंके जो शुभाशुभ भाव होते हैं उनसे अपायका चिन्तवन करता है ॥ ४० ॥

प्रकृति, स्थिति, अनुभाग और प्रदेशके भेदसे चार प्रकारके शुभाशुभ कर्मोंके विपाकका चिन्तवन करना विपाकविचय नामका तीसरा धर्मध्यान है । इस विषयमें गाथायें—

जो प्रकृति, स्थिति, प्रदेश और अनुभाग इन चार भागोंमें विभक्त है, जो शुभ भी होता है और अशुभ भी होता है तथा जो योग और अनुभाग अर्थात् कषायसे उत्पन्न हुआ है ऐसे कर्मके विपाकका चिन्तवन करे ॥ ४१ ॥

जीवोंको जो एक और अनेक भवमें पुण्य और पाप कर्मका फल प्राप्त होता है उसका तथा उदय, उदीरणा, संक्रम, बन्ध और मोक्षका चिन्तवन करता है ॥ ४२ ॥

तीनों लोकोंके संस्थान, प्रमाण और आयु आदिका चिन्तवन करना संस्थानविचय नामका चौथा धर्म्यध्यान है । इस विषयमें गाथायें—

---

१ भग. १७११ मूला. (पंचाचा.) २०३. (तत्र चतुर्थचरणम्— जीवाण सुहे य असुहे य).
२ प्रतिपु 'बंधं' इति पाठः । ३ भग. १७१३., मूला. (पंचाचा.) २०४.

जिणदेसियाइ लक्खणसंठाणासणविहाणमाणाइं ।
उप्पाद-ट्ठिदिभंगादिपज्जया जे य दव्वाणं ॥ ४३ ॥
पंचत्थिकायमइयं लोगमणाइणिहणं जिणक्खादं ।
णामादिभेयविहियं तिविहमहोलोगभागादिं ॥ ४४ ॥
खिदिवलयदीवसायरणयरविमाण[1]भवणादिसंठाणं ।
वोमादिपडिट्ठाणं णिययं[2] लोगट्ठिदिविहाणं ॥ ४५ ॥
उवजोगलक्खणमणाइणिहणमत्थंतरं सरीदादो ।
जीवमरूविं कारिं भोइं च[3] सयस्स कम्मस्स ॥ ४६ ॥
तस्स य सकम्मजणियं जम्माइजलं कसायपायालं ।
वसणसयसावमीणं[4] मोहावत्तं महाभीमं ॥ ४७ ॥
णाणमयकण्णहारं वरचारित्तमयमहापोयं[5] ।
संसारसागरमणोरपारमसुहं विचिंतेज्जो ॥ ४८ ॥
किं बहुसो सव्वं चि य जीवादिपयत्थवित्थरो वेयं ।
सव्वणयसमूहमयं ज्झायज्जो समयसब्भावं ॥ ४९ ॥
ज्झाणोवरमे वि मुणी णिच्चमणिच्चादिचिंतणापरमो ।
होइ सुभावियचित्तो[6] धम्मज्झाणे जिह व पुव्वं ॥ ५० ॥

जिनदेवके द्वारा कहे गये छह द्रव्योंके लक्षण, संस्थान, रहनेका स्थान, भेद, प्रमाण, तथा उनकी उत्पाद, स्थिति और व्यय आदि रूप पर्यायोंका; पांच अस्तिकायमय, अनादिनिधन, नामादि अनेक भेदरूप और अधोलोक आदि भागरूपसे तीन प्रकारके लोकका; तथा पृथिवीवलय, द्वीप सागर, नगर, विमान, भवन आदिके संस्थानका; एवं आकाशमें प्रतिष्ठान, नियत और लोकस्थिति आदि भेदका चिन्तवन करे ॥ ४३-४५ ॥

जीव उपयोग लक्षणवाला है, अनादिनिधन है, शरीरसे भिन्न है, अरूपी है तथा अपने कर्मोंका कर्ता और भोक्ता है। ऐसे उस जीवके कर्मसे उत्पन्न हुआ जन्म मरण आदि यही जल है, कषाय यही पाताल है, सैकड़ों व्यसनरूपी छोटे मत्स्य हैं, मोहरूपी आवर्त है और अत्यन्त भयंकर है, ज्ञानरूपी कर्णधार हैं और उत्कृष्ट चारित्रमय महापोत है। ऐसे इस अशुभ और अनादि अनन्त संसारका चिन्तवन करे ॥ ४६-४८ ॥

बहुत कहनेसे क्या लाभ, यह जितना जीवादि पदार्थोंका विस्तार कहा है उस सबसे युक्त और सर्वनयसमूहमय समयसद्भावका ध्यान करे ॥ ४९ ॥

ऐसा ध्यान करके उसके अन्तमें मुनि निरन्तर अनित्य आदि भावनाओंके चिन्तवनमें तत्पर होता है। जिससे वह पहलेके समान धर्म्यध्यानमें सुभावितचित्त होता है ॥ ५० ॥

१ अप्रतौ 'सायरसुरणरयविमाण' इति पाठः। २ ताप्रतौ 'णियसण' इदि पाठः। ३ प्रतिषु 'भोईच्च' इति पाठः। ४ आ-ताप्रत्योः 'सयसावमीणं' इति पाठः। ५ आप्रतौ 'महादोयं', ताप्रतौ 'महादो (पो) यं' इति पाठः। ६ ताप्रतौ 'हाएसु भवियचित्तो' इति पाठः।

जदि सव्वो समयसब्भावो धम्मज्झाणस्सेव विसओ होदि तो सुक्कज्झाणेण णिव्विसएण होदव्वमिदि ? ण एस दोसो, दोण्णं पि ज्झाणाणं विसयं पडि भेदाभावादो । जदि एवं तो दोण्णं ज्झाणाणमेयत्तं पसज्जदे । कुदो ? दंसमसय-सीह-वय-वग्घ-तरच्छच्छहल्लेहि[1] खज्जंतो वि वासीए तच्छिज्जंतो [वि] करवत्तेहि फाडिज्जंतो वि दावाणलसिहामुहेण[2] कवलिज्जंतो वि सीदवादादवेहि बाहिज्जंतो अच्छरसयकोडीहि लालिज्जंतओ वि जिस्से अवत्थाए[3] ज्झेयादो ण चलदि सा जीवावत्था ज्झाणं णाम । एसो वि थिरभावो उभयत्थ सरिसो, अण्णहा ज्झाणभावाणुववत्तीदो त्ति ? एत्थ परिहारो वुच्चदे– सच्चं, एदेहि दोहि वि सरूवेहि दोण्णं ज्झाणाणं भेदाभावादो । किंतु धम्मज्झाणमेयवत्थुम्हि थोवकालावट्ठाइ । कुदो ? सकसायपरिणामस्स गब्भहरंतट्ठिदपईवस्सेव चिरकालमवट्ठाणाभावादो । धम्मज्झाणं सकसाएसु चेव होदि त्ति कधं णव्वदे ? असंजदसम्मादिट्ठि-संजदासंजद-पमत्तसंजद-अप्पमत्तसंजद-अपुव्वसंजद-अणियट्टिसंजद-सुहुमसांपराइयखवगोवसामएसु धम्मज्झाणस्स पवुत्ती होदि त्ति जिणोवएसादो ।

शंका—यदि समस्त समयसद्भाव धर्म्यध्यानका ही विषय है तो शुक्लध्यानका कोई विषय शेष नहीं रहता ?

समाधान—यह कोई दोष नहीं है, क्योंकि दोनों ही ध्यानोंमें विषयकी अपेक्षा कोई भेद नहीं है ।

शंका—यदि ऐसा है तो दोनों ही ध्यानोंमें एकत्व अर्थात् अभेद प्राप्त होता है, क्योंकि दंशमशक, सिंह, भेड़िया, व्याघ्र, श्वापद और भल्ल (रीछ) द्वारा भक्षण किया गया भी; वसूला द्वारा छीला गया भी, करोंतों द्वारा फाड़ा गया भी, दावानलके शिखा-मुख द्वारा ग्रसा गया भी; शीत वात और आतप द्वारा बाधा गया भी; और सैकड़ों करोड़ अप्सराओं द्वारा लालित किया गया भी जो जिस अवस्थामें ध्येयसे चलायमान नहीं होता वह जीवकी अवस्था ध्यान कहलाती है । इस प्रकारका यह स्थिरभाव दोनों ध्यानोंमें समान है, अन्यथा ध्यानरूप परिणामकी उत्पत्ति नहीं हो सकती ?

समाधान—यहां इस शंकाके समाधानमें कहते हैं कि यह बात सत्य है कि इन दोनों प्रकारके स्वरूपोंकी अपेक्षा दोनों ही ध्यानोंमें कोई भेद नहीं है । किन्तु इतनी विशेषता है कि धर्म्यध्यान एक वस्तुमें स्तोक काल तक रहता है, क्योंकि कषायसहित परिणामका गर्भगृहके भीतर स्थित दीपकके समान चिरकाल तक अवस्थान नहीं बन सकता ।

शंका—धर्म्यध्यान कषायसहित जीवोंके ही होता है, यह किस प्रमाणसे जाना जाता है ?

समाधान—असंयतसम्यग्दृष्टि, संयतासंयत, प्रमत्तसंयत, अप्रमत्तसंयत, क्षपक और उपशामक अपूर्वकरणसंयत, क्षपक और उपशामक अनिवृत्तिकरणसंयत तथा क्षपक और उपशामक सूक्ष्मसाम्परायसंयत जीवोंके धर्म्यध्यानकी प्रवृत्ति होती है; ऐसा जिनदेवका उपदेश है । इससे जाना जाता है कि धर्म्यध्यान कषायसहित जीवोंके होता है ।

१ आप्रतौ 'तरच्छदहल्लेहि', ताप्रतौ 'तरच्छहल्लेहि' इति पाठः । २ आप्रतौ 'दवाणलज्झसहामुहेण' ताप्रतौ 'दवाणलमहामुहेण' इति पाठः । ३ आप्रतौ 'जस्सेयवत्थाए', ताप्रतौ 'जिस्सेयवत्थाए' इति पाठः ।

सुक्कज्झाणस्स पुण एक्कम्हि वत्थुम्हि धम्मज्झाणावट्ठाणकालादो संखेज्जगुणकालमवट्ठाणं होदि, वीयरायपरिणामस्स मणिसिहाए व बहुएण वि कालेण संचालाभावादो[1] । उवसंतकसायज्झाणस्स पुधत्तविदक्कवीयारस्स अंतोमुहुत्तं चेव अवट्ठाणमुवलब्भदि त्ति चे— ण एस दोसो, वीयरायत्ताभावेण तव्विणासुववत्तीदो । अत्थदो अत्थंतरसंचालो उवसंतकसायज्झाणस्स उवलब्भदि त्ति चे— ण, अत्थंतरसंचाले संजादे वि चित्तंतरगमणाभावेण ज्झाणविणासाभावादो । वीयरायत्ते संते वि खीणकसायज्झाणस्स एयत्तवियक्कावीचारस्स विणासो दिस्सदि त्ति[2] चे— ण, आवरणाभावेण असेसदव्वपज्जाएसु उवजुत्तस्स केवलोवजोगस्स एगदव्वम्हि पज्जाए वा अवट्ठाणाभावं दट्ठूण तज्झाणाभावस्स परूवित्तादो । तदो सकसायाकसायसामिभेदेण अचिरकाल-चिरकालावट्ठाणेण य दोण्णं ज्झाणाणं सिद्धो भेओ । सकसायतिण्णिगुणट्ठाणकालादो उवसंतकसायकालो संखेज्जगुणहीणो, तदो वीयरायज्झाणावट्ठाणकालो संखेज्जगुणो त्ति ण घडदे ? ण, एगवत्थुम्हि अवट्ठाणं पडुच्च तदुत्तीए । एत्थ गाहाओ—

परन्तु शुक्ल ध्यानके एक पदार्थमें स्थित रहनेका काल धर्मध्यानके अवस्थानकालसे संख्यातगुणा है, क्योंकि वीतराग परिणाम मणिकी शिखाके समान बहुत कालके द्वारा भी चलायमान नहीं होता ।

शंका—उपशान्तकषाय गुणस्थानमें पृथक्त्ववितर्कवीचार ध्यानका अवस्थान अन्तमुहूर्त काल ही पाया जाता है ?

समाधान—यह कोई दोष नहीं है, क्योंकि वीतरागताका अभाव होनेसे उसका विनाश बन जाता है ।

शंका—उपशान्तकषायके ध्यानका अर्थसे अर्थान्तरमें गमन देखा जाता है ?

समाधान—नहीं, क्योंकि अर्थान्तरमें गमन होनेपर भी एक विचारसे दूसरे विचारमें गमन नहीं होनेसे ध्यानका विनाश नहीं होता ।

शंका—वीतरागताके रहते हुए भी क्षीणकषायमें होनेवाले एकत्ववितर्क अवीचार ध्यानका विनाश देखा जाता है ?

समाधान—नहीं, क्योंकि आवरणका अभाव होनेसे केवली जिनका उपयोग अशेष द्रव्य-पर्यायोंमें उपयुक्त होने लगता है, इसलिये एक द्रव्यमें या एक पर्यायमें अवस्थानका अभाव देखकर उस ध्यानका अभाव कहा है ।

इसलिये सकषाय और अकषाय रूप स्वामीके भेदसे तथा अचिरकाल और चिरकाल तक अवस्थित रहनेके कारण इन दोनों ध्यानोंका भेद सिद्ध है ।

शंका—कषायसहित तीन गुणस्थानोंके कालसे चूंकि उपशान्तकषायका काल संख्यातगुणा हीन है, इसलिये वीतरागध्यानका अवस्थान काल संख्यातगुणा है; यह बात नहीं बनती ?

समाधान—नहीं, क्योंकि एक पदार्थमें कितने काल तक अवस्थान होता है, इस बातको देखकर उक्त बात कही है । इस विषयमें गाथायें—

१ आ-ताप्रत्योः 'संचागाभावादो' इति पाठः । २ आप्रतौ 'विणासो दि त्ति', ताप्रतौ 'विणासो [हो] दि' इति पाठः ।

अंतोमुहुत्तमेत्तं चिंतावत्थाणमेगवत्थुम्हि ।
छदुमत्थाणं ज्झाणं जोगणिरोहो जिणाणं तु ॥ ५१ ॥
अंतोमुहुत्तपरदो चिंता-ज्झाणंतरं व होज्जाहि ।
सुचिरं पि होज्ज बहुवत्थुसंकमे ज्झाणसंताणो[1] ॥ ५२ ॥

एदम्हि धम्मज्झाणे पीय-पउम-सुक्कलेस्साओ तिण्णि चेव होंति, मंद-मंदयर-मंदतमकसाएसु एदस्स ज्झाणस्स[2] संभवुवलंभादो । एत्थ गाहा[3]—

होंति कमविसुद्धाओ लेस्साओ पीय-पउम-सुक्काओ ।
धम्मज्झाणोवगयस्स तिव्व-मंदादिभेयाओ ॥ ५३ ॥

एसो धम्मज्झाणे परिणमदि त्ति कधं णव्वदे ? जिण-साहुगुणपसंसण-बिणय-दाण-संपत्तीए । एत्थ गाहाओ—

आगमउवदेसाणा णिसग्गदो जं जिणप्पणीयाणं[4] ।
भावाणं सद्दहणं धम्मज्झाणस्स तल्लिंगं ॥ ५४ ॥
जिण-साहुगुणुक्कित्तणं[5]-पसंसणा-विणय-दाणसंपण्णा ।
सुद-सील-संजमरदा धम्मज्झाणे मुणेयव्वा ॥ ५५ ॥

एक वस्तुमें अन्तर्मुहूर्त काल तक चिन्ताका अवस्थान होना छद्मस्थोंका ध्यान है और योगनिरोध जिन भगवान्‌का ध्यान है ॥ ५१ ॥

अन्तर्मुहूर्तके बाद चिन्तान्तर या ध्यानान्तर होता है, या चिरकाल तक बहुत पदार्थोंका संक्रम होनेपर भी एक ही ध्यानसन्तान होती है ॥ ५२ ॥

इस धर्मध्यानमें पीत, पद्म और शुक्ल, ये तीन ही लेश्यायें होती हैं, क्योंकि कषायोंके मन्द, मन्दतर और मन्दतम होनेपर धर्मध्यानकी प्राप्ति सम्भव है । इस विषयमें गाथा—

धर्मध्यानको प्राप्त हुए जीवके तीव्र-मन्द आदि भेदोंको लिये हुए क्रमसे विशुद्धिको प्राप्त हुई पीत, पद्म और शुक्ल लेश्यायें होती हैं ॥ ५३ ॥

शंका—यह धर्मध्यानमें परिणमता है, यह किस प्रमाणसे जाना जाता है ?

समाधान—जिन और साधुके गुणोंकी प्रशंसा करना, विनय करना और दानसम्पत्तिसे जाना जाता है । इस विषयमें गाथायें हैं—

आगम, उपदेश और जिनाज्ञाके अनुसार निसर्गसे जो जिन भगवान्‌के द्वारा कहे गये पदार्थोंका श्रद्धान होता है वह धर्मध्यानका लिंग है ॥ ५४ ॥

जिन और साधुके गुणोंका कीर्तन करना, प्रशंसा करना, विनय करना, दानसम्पन्नता, श्रुत, शील और संयममें रत होना, ये सब बातें धर्मध्यानमें होती हैं; ऐसा जानना चाहिये ॥ ५५ ॥

---

१ ताप्रतौ 'संताणे' इति पाठः । २ अ-आप्रत्योः 'धम्मज्झाणस्स' इति पाठः । ३ अ-आप्रत्योः 'गाहाओ' इति पाठः । ४ अ-आप्रत्योः 'जिणप्पणेयाणं' इति पाठः । ५ अप्रतौ 'गुणकिचण' इति पाठः ।

किंफलमेदं धम्मज्झाणं ? अक्खवएसु विउलामरसुहफलं गुणसेडीए कम्मणिज्जराफलं च । खवएसु पुण असंखेज्जगुणसेडीए कम्मपदेसणिज्जरणफलं सुहकम्माणमुक्कस्साणुभागविहाणफलं च । अतएव धर्म्मादनपेतं धर्म्यं ध्यानमिति सिद्धम् । एत्थ गाहाओ—

होंति सुहासव-संवर-णिज्जरामरसुहाइं विउलाइं[1] ।
ज्झाणवरस्स फलाइं सुहाणुबंधीणि धम्मस्स ॥ ५६ ॥
जह वा घणसंघाया खणेण पवणाहया विलिज्जंति ।
ज्झाणप्पवणोवहया[2] तह कम्मघणा विलिज्जंति ॥ ५७ ॥

एवं धम्मज्झाणस्स परूवणा गदा ।

संपहि सुक्कज्झाणस्स परूवणं कस्सामो । तं जहा— कुदो एदस्स सुक्कत्तं ? कसाय-मलाभावादो । तं च चउव्विहं— पुधत्तविदक्कवीचारं एयत्तविदक्कअवीचारं सुहुमकिरियमप्पडि-वादि समुच्छिण्णकिरियमप्पडिवादि चेदि । तत्थ पढमसुक्कज्झाणलक्खणं वुच्चदे— पृथक्त्वं भेदः । वितर्कः श्रुतं द्वादशांगम् । वीचारः संक्रान्तिः अर्थ-व्यंजन-योगेषु । पृथक्त्वेन भेदेन वितर्कस्य श्रुतस्य वीचारः संक्रान्तिः यस्मिन् ध्याने तत्पृथक्त्ववितर्कवीचारम्[3] । एत्थ गाहाओ—

शंका—इस धर्मध्यानका क्या फल है ?

समाधान—अक्षपक जीवोंको देवपर्याय सम्बन्धी विपुल सुख मिलना उसका फल है और गुणश्रेणिमें कर्मोंकी निर्जरा होना भी उसका फल है; तथा क्षपक जीवोंके तो असंख्यात गुणश्रेणि-रूपसे कर्मप्रदेशोंकी निर्जरा होना और शुभ कर्मोंके उत्कृष्ट अनुभागका होना उसका फल है। अतएव जो धर्मसे अनपेत हैं वह धर्मध्यान है, यह बात सिद्ध होती है। इस विषयमें गाथायें—

उत्कृष्ट धर्मध्यानके शुभ आस्रव, संवर, निर्जरा और देवोंका सुख; ये शुभानुबन्धी विपुल फल होते हैं ॥ ५६ ॥

अथवा, जैसे मेघपटल पवनसे ताड़ित होकर क्षण मात्रमें विलीन हो जाते हैं वैसे ही ध्यानरूपी पवनसे उपहत होकर कर्म-मेघ भी विलीन हो जाते हैं ॥ ५७ ॥

इस प्रकार धर्मध्यानका कथन समाप्त हुआ । अब शुक्लध्यानका कथन करते हैं । यथा—

शंका— इसे शुक्लपना किस कारणसे प्राप्त है ?

समाधान— कषाय-मलका अभाव होनेसे ।

वह चार प्रकारका है— पृथक्त्ववितर्क-वीचार, एकत्ववितर्क-अवीचार, सूक्ष्मक्रिया-अप्रतिपाती और समुच्छिन्नक्रिया-अप्रतिपाती । उनमेंसे प्रथम शुक्लध्यानका लक्षण कहते हैं— पृथक्त्वका अर्थ भेद है, वितर्कका अर्थ द्वादशांग श्रुत है; और वीचारसे मतलब अर्थ, व्यंजन और योगकी संक्रान्ति है । पृथक्त्व अर्थात् भेदरूपसे वितर्क अर्थात् श्रुतका वीचार अर्थात् संक्रान्ति जिस ध्यानमें होती हैं वह पृथक्त्ववितर्क-वीचार नामका ध्यान है । इस विषयमें गाथायें—

---

१ अ-आप्रत्योः 'सुहावि उद्धा वि' इति पाठः । २ आ-ताप्रत्योः 'पवणाइया' इति पाठः । ३ अ-आप्रत्योः 'वीचारः' इति पाठ ।

दव्वाइमणेगाइं तीहि वि जोगेहि जेण ज्झायंति ।
उवसंतमोहणिज्जा तेण पुधत्तं ति तं भणिदं[1] ॥ ५८ ॥
जम्हा सुदं विदक्कं जम्हा पुव्वगयअत्थकुसलो य ।
ज्झायदि ज्झाणं एदं सविदक्कं तेण तं ज्झाणं[2] ॥ ५९ ॥
अत्थाण वंजणाण य जोगाण य संकमो हु वीचारो ।
तस्स य भावेण तगं सुत्ते उत्तं सवीचारं[3] ॥ ६० ॥

एदस्स भावत्थो उच्चदे— उवसंतकसायवीयरायछदुमत्थो चोद्दस-दस-णवपुव्वहरो पसत्थतिविहसंघडणो कसाय-कलंकुत्तिण्णो तिसु जोगेसु एगजोगम्हि वट्टमाणो एगदव्वं गुणपज्जायं वा पढमसमए बहुणयगहणणिलीणं सुद-रविकिरणुज्जोयबलेण ज्झाएदि । एवं तं चेव अंतोमुहुत्त-मेत्तकालं ज्झाएदि[4] । तदो परदो अत्थंतरस्स णियमा संकमदि । अधवा तम्हि चेव अत्थे गुणस्स पज्जायस्स वा संकमदि । पुव्विल्लजोगादो जोगंतरं पि सिया संकमदि । एगमत्थ-मत्थंतरं गुणगुणंतरं पज्जायपज्जायंतरं च हेट्ठोवरि ट्ठविय पुणो तिण्णि जोगे एगपंतीए ठविय

द	गु	प	म	व	का
द	गु	प			

दुसंजोग-तिसंजोगेहि एत्थ पुधत्तविदक्कवीचारज्झाण-भंगा बादालीसं[5] । ४२ । उप्पाएदव्वा । एवमंतोमुहुत्तकालमुवसंतकसाओ सुक्कलेस्सिओ पुधत्तविदक्कवीचारज्झाणं[6] छद्दव्व-णवपयत्थविसयमंतोमुहुत्तकालं ज्झायइ । अत्थदो

यतः उपशान्तमोह जीव अनेक द्रव्योंका तीनों ही योगोंके आलम्बनसे ध्यान करते हैं इसलिये उसे पृथक्त्व ऐसा कहा हैं ॥ ५८ ॥

यतः वितर्कका अर्थ श्रुत है, और यतः पूर्वगत अर्थमें कुशल साधु ही इस ध्यानको ध्याते हैं, इसलिये उस ध्यानको सवितर्क कहा है ॥ ५९ ॥

अर्थ, व्यंजन और योगोंका संक्रम वीचार हैं । जो ऐसे संक्रमसे युक्त होता है उसे सूत्रमें सवीचार कहा हैं ॥ ६० ॥

इसका भावार्थ कहते हैं—चौदह, दस और नौ पूर्वोंका धारी, प्रशस्त तीन संहननवाला, कषाय-कलंकसे पारको प्राप्त हुआ और तीन योगोंमेंसे किसी एक योगमें विद्यमान ऐसा उपशान्त-कषायवीतराग-छद्मस्थ जीव बहुत नयरूपी वनमें लीन हुए ऐसे एक द्रव्य या गुण-पर्यायको श्रुतरूपी रविकिरणके प्रकाशके बलसे ध्याता है। इस प्रकार उसी पदार्थको अन्तर्मुहूर्त काल तक ध्याता है। इसके बाद अर्थान्तरपर नियमसे संक्रमित होता है। अथवा उसी अर्थके गुण या पर्यायपर संक्रमित होता है। और पूर्व योगसे स्यात् योगान्तरपर संक्रमित होता हैं। इस तरह एक अर्थ, अर्थान्तर, गुण, गुणान्तर और पर्याय, पर्यायान्तरको नीचे ऊपर स्थापित करके फिर तीन योगोंको एक पंक्तिमें स्थापित करके द्विसंयोग और त्रिसंयोगकी अपेक्षा यहां पृथक्त्ववितर्क-वीचार ध्यानके ४२ भंग उत्पन्न करना चाहिये। इस प्रकार अन्तर्मुहूर्त काल तक शुक्ललेश्यावाला उपशान्तकषाय जीव छह द्रव्य और नौ पदार्थविषयक पृथक्त्ववितर्कवीचार ध्यानको अन्तर्मुहूर्त

१ ताप्रतौ 'भणदि' इति पाठः। २ भग. १८८१. ३ भग. १८८२. ४ आ-ताप्रत्योः 'ज्झ ायदि' इति पाठः। ५ आ-ताप्रत्योः 'बाएदालीस' इति पाठः। ६ प्रतिषु 'वितक्क' इति पाठः।

अत्थंतरसंकमे संते वि ण ज्झाणविणासो, चित्तंतरगमणाभावादो। एवं संवर-णिज्जरामरसुहफलं, एदम्हादो णिव्वुइगमणाणुवलंभादो। एवं पुधत्तविदक्कवीचारज्झाणपरूवणा गदा।

संपहि विदियसुक्कज्झाणपरूवणं कस्सामो—एकस्य भावः एकत्वम्, वितर्को द्वादशांगम्, असंक्रांतिरवीचारः; एकत्वेन वितर्कस्य अर्थ-व्यंजन-योगानामवीचारः असंक्रांतिः यस्मिन् ध्याने तदेकत्ववितर्कावीचारं ध्यानम्। एत्थ गाहाओ—

जेणेगमेव दव्वं जोगेणेक्केण अण्णदरएण।
खीणकसाओ ज्झायइ तेणेयत्तं तगं भणिदं[1]॥ ६१॥
जम्हा सुदं विदक्कं जम्हा पुव्वगयअत्थकुसलो य।
ज्झायदि झाणं एदं सविदक्कं तेण तज्झाणं[2]॥ ६२॥
अत्थाण वंजणाण य जोगाण य संकमो हु वीचारो।
तस्स अभावेण तगं ज्झाणमवीचारमिदि वुत्तं[3]॥ ६३॥

एदस्स भावत्थो—खीणकसाओ सुक्कलेस्सिओ ओघबलो ओघसूरो वज्जरिसहवइरणारायणसरीरसंघडणो अण्णदरसंठाणो चोद्दसपुव्वहरो दसपुव्वहरो णवपुव्वहरो वा खइयसम्माइट्ठी

काल तक ध्याता है। अर्थसे अर्थान्तरका संक्रम होनेपर भी ध्यानका विनाश नहीं होता, क्योंकि इससे चिन्तान्तरमें गमन नहीं होता। इस प्रकार इस ध्यानके फलस्वरूप संवर, निर्जरा और अमरसुख प्राप्त होता हैं. क्योंकि इससे मुक्तिकी प्राप्ति नहीं होती।

इस प्रकार पृथक्त्ववितर्कवीचार ध्यानका कथन समाप्त हुआ।

अब द्वितीय शुक्लध्यानका कथन करते हैं— एकका भाव एकत्व है, वितर्क द्वादशांगको कहते हैं और अवीचारका अर्थ असंक्रान्ति है। अभेदरूपसे वितर्कसम्बन्धी अर्थ, व्यंजन और योगोंका अवीचार अर्थात् असंक्रान्ति जिस ध्यानमें होती है वह एकत्ववितर्क-अवीचार ध्यान है। इस विषयमें गाथायें—

यतः क्षीणकषाय जीव एक ही द्रव्यका किसी एक योगके द्वारा ध्यान करता है, इसलिये उस ध्यानको एकत्व कहा है॥ ६१॥

यतः वितर्कका अर्थ श्रुत है और जिसलिये पूर्वगत अर्थमें कुशल साधु इस ध्यानको ध्याता है, इसलिये इस ध्यानको सवितर्क कहा है॥ ६२॥

अर्थ, व्यंजन और योगोंके संक्रमका नाम वीचार है। यतः उस वीचारके अभावसे यह ध्यान होता है इसलिये इसे अवीचार कहा है॥ ६३॥

इसका यह आशय है— जिसके शुक्ल लेश्या है, जो निसर्गसे बलशाली है, निसर्गसे शूर है, वज्रवृषभवज्रनाराचसंहननका धारी है, किसी एक संस्थानवाला है, चौदह पूर्वधारी है, दस पूर्वधारी है या नौ पूर्वधारी है, क्षायिकसम्यग्दृष्टि है, और जिसने समस्त कषायवर्गका क्षय कर

१ भग. १८८३. २ भग. १८८४. ३ भग. १८८५.

खविदासेसकसायवग्गो णवपयत्थेसु एगपयत्थं दव्व-गुण-पज्जयभेदेण ज्झाएदि, अण्णदरजोगेण अण्णदराभिधाणेण य तत्थ एगम्हि दव्वे गुणे पज्जाए वा मेरुमहियरो व्व णिच्चलभावेण अवट्ठियचित्तस्स असंखेज्जगुणसेडीए कम्मक्खंधे गालयंतस्स अणंतगुणहीणाए सेडीए कम्माणुभागं सोसयंतस्स कम्माणं ट्ठिदीयो एगजोग-एगाभिहाणज्झाणेण घादयंतस्स अंतोमुहुत्तमेत्तकालो गच्छदि। तदो सेसखीणकसायद्धमेत्तट्ठिदीयो मोत्तूण उवरिमसव्वट्ठिदीयो घेत्तूण उदयादिगुणसेडिसरूवेण रचिय पुणो ट्ठिदिखंडएण विणा अधट्ठिदिगलणेण असंखेज्जगुणाए सेडीए कम्मक्खंधे घादंतो गच्छदि जाव खीणकसायचरिमसमओ त्ति। तत्थ खीणकसायचरिमसमए णाणावरणीय-दंसणावरणीय-अंतराइयाणि विणासेदि[2]। एदेसु विणट्ठेसु केवलणाणी केवलदंसणी अणंतवीरियो दाण-लाह-भोगुवभोगेसु[3] विग्घवज्जियो होदि त्ति घेत्तव्वं। दोण्णं सुक्कज्झाणाणं किमालंबणं ? खंति-मद्दवादओ। एत्थ गाहा—

अह खंति-मद्दवज्जव-मुत्तीयो जिणमदप्पहाणाओ।
आलंबणेहि जेहिं सुक्कज्झाणं समारुहइ ॥ ६४ ॥

संपहि दोण्णं सुक्कज्झाणाणं फलपरूवणं कस्सामो—अट्ठावीसभेयभिण्णमोहणीयस्स सव्वुवसमावट्ठाणफलं पुधत्तविदक्कवीचारसुक्कज्झाणं। मोहसव्वुवसमो पुण धम्मज्झाणफलं;

दिया है ऐसा क्षीणकषाय जीव नौ पदार्थोंमेंसे किसी एक पदार्थका द्रव्य, गुण और पर्यायके भेदसे ध्यान करता है। इस प्रकार किसी एक योग और एक शब्दके आलम्बनसे वहां एक द्रव्य, गुण या पर्यायमें मेरुपर्वतके समान निश्चलभावसे अवस्थित चित्तवाले; असंख्यात गुणश्रेणि क्रमसे कर्मस्कन्धोंको गलानेवाले, अनन्तगुणहीन श्रेणिक्रमसे कर्मोंके अनुभागको शोषित करनेवाले और कर्मोंकी स्थितियोंको एक योग तथा एक शब्दके आलम्बनसे प्राप्त हुए ध्यानके बलसे घात करनेवाले उस जीवका अन्तर्मुहूर्त काल जाता है। तदनन्तर शेष रहे क्षीणकषायके काल प्रमाण स्थितियोंको छोड़कर उपरिम सब स्थितियोंकी उदयादि गुणश्रेणिरूपसे रचना करके पुनः स्थितिकाण्डकघातके विना अधःस्थितिगलना द्वारा ही असंख्यातगुण श्रेणिक्रमसे कर्मस्कन्धोंका घात करता हुआ क्षीणकषायके अन्तिम समयके प्राप्त होने तक जाता है। और वहां क्षीणकषायके अन्तिम समयमें ज्ञानावरण, दर्शनावरण और अन्तराय इन तीन कर्मोंका युगपत् नाश करता है। इस प्रकार इनका नाश हो जानेपर यह जीव तदनन्तर समयमें केवलज्ञानी, केवलदर्शनी और अनन्तवीर्यका धारी तथा दान-लाभ-भोग और उपभोगके विघ्नसे रहित होता है, ऐसा यहां समझना चाहिये।

शंका—दोनों ही शुक्लध्यानोंका क्या आलम्बन है।

समाधान— क्षमा और मार्दव आदि आलम्बन हैं।

इस विषयमें गाथा—

क्षमा, मार्दव, आर्जव और मुक्ति, ये जिनमतमें ध्यानके प्रधान आलम्बन कहे गये हैं, जिन आलम्बनोंका सहारा लेकर साधु शुक्लध्यानपर आरोहण करते हैं ॥ ६४ ॥

अब दोनों प्रकारके शुक्ल ध्यानोंके फलका कथन करते हैं— अट्ठाईस प्रकारके मोहनीयकी सर्वोपशमना होनेपर उसमें स्थित रखना पृथक्त्ववितर्कवीचार नामक शुक्लध्यानका फल है।

१ प्रतिषु 'अद्धट्ठिदि' इति पाठः। २ अ-आप्रत्योः 'विणासेडी' इति पाठः। ३ आ-ताप्रत्योः 'दाणलाहभोगेसु' इति पाठः।

सकसायत्तणेण धम्मज्झाणिणो सुहुमसांपराइयस्स चरिमसमए मोहणीयस्स सव्वुवसमुवलंभादो। तिण्णं घादिकम्माणं णिम्मूलविणासफलमेयत्तविदक्कअवीचारज्झाणं। मोहणीयविणासो[1] पुण धम्मज्झाणफलं, सुहुमसांपरायचरिमसमए तस्स विणासुवलंभादो। मोहणीयस्स उवसमो जदि धम्मज्झाणफलो तो ण क्खदी, एयादो दोण्णं कज्जाणमुप्पत्तिविरोहादो? ण, धम्मज्झाणादो अणेयभेयभिण्णादो अणेयकज्जाणमुप्पत्तीए विरोहाभावादो। एयत्तवियक्क-अवीयार[2]ज्झाणस्स अप्पडिवाइविसेसणं किण्ण कदं? ण, उवसंतकसायम्मि भवद्धा[3]खएहि कसाएसु णिवदिदम्मि पडिवादुवलंभादो। उवसंतकसायम्मि एयत्तविदक्कावीचारे संते उवसंतो दु पुधत्तं' इच्चेदेण विरोहो होदि[4] त्ति णासंकणिज्जं, तत्थ पुधत्तमेवे त्ति णियमाभावादो। ण च खीणकसायद्धाए सव्वत्थ एयत्तविदक्कावीचारज्झाणमेव, जोगपरावत्तीए एगसमयपरूवणण्णहाणुववत्तिबलेण[5] तदद्धादीए पुधत्तविदक्कवीचारस्स[6] वि संभवसिद्धीदो। एत्थ गाहाओ—

परन्तु मोहका सर्वोपशम करना धर्मध्यानका फल है, क्योंकि कषायसहित धर्म्मध्यानीके सूक्ष्मसाम्पराय गुणस्थानके अन्तिम समयमें मोहनीय कर्मकी सर्वोपशमना देखी जाती है। तीन घाति कर्मोंका निर्मूल विनाश करना एकत्ववितर्क-अवीचार ध्यानका फल है। परन्तु मोहनीयका विनाश करना धर्म्यध्यानका फल है, क्योंकि सूक्ष्मसाम्पराय गुणस्थानके अन्तिम समयमें उसका विनाश देखा जाता है।

शंका—मोहनीय कर्मका उपशम करना यदि धर्म्यध्यानका फल है तो इसीसे मोहनीयका क्षय नहीं हो सकता, क्योंकि एक कारणसे दो कार्योंकी उत्पत्ति माननेमें विरोध आता है?

समाधान—नहीं, क्योंकि धर्म्यध्यान अनेक प्रकारका है, इसलिये उससे अनेक प्रकारके कार्योंकी उत्पत्ति माननेमें कोई विरोध नहीं आता।

शंका—एकत्ववितर्क-अवीचार ध्यानके लिये 'अप्रतिपाती' विशेषण क्यों नहीं दिया?

समाधान—नहीं, क्योंकि उपशान्तकषाय जीवके भवक्षय और कालक्षयके निमित्तसे पुनः कषायोंको प्राप्त होनेपर एकत्ववितर्क-अवीचार ध्यानका प्रतिपात देखा जाता है।

शंका—यदि उपशान्तकषाय गुणस्थानमें एकत्ववितर्क-अवीचार ध्यान होता है तो 'उवसंतो दु पुधत्तं' इत्यादि गाथावचनके साथ विरोध आता है?

समाधान—ऐसी आशंका नहीं करनी चाहिये, क्योंकि उपशान्तकषाय गुणस्थानमें केवल पृथक्त्ववितर्कवीचार ध्यान ही होता है, ऐसा कोई नियम नहीं है। और क्षीणकषाय गुणस्थानके कालमें सर्वत्र एकत्ववितर्क-अवीचार ध्यान ही होता है, ऐसा भी कोई नियम नहीं है; क्योंकि वहां योगपरावृत्तिका कथन एक समय प्रमाण अन्यथा बन नहीं सकता। इससे क्षीणकषाय कालके प्रारम्भमें पृथक्त्ववितर्कवीचार ध्यानका अस्तित्व भी सिद्ध होता है। इस विषयमें गाथायें—

१ ताप्रतौ 'मोहणीयणासो' इति पाठः। २ अ-आप्रत्योः 'वियक्कोवीयार' इति पाठः। ३ प्रतिषु 'भवत्था' इति पाठः। ४ अ-आप्रत्योः 'विरोहादो होदि' इति पाठः। ५ अ-ताप्रत्योः '-णुववत्तीबलेण', आप्रतौ 'णुववत्तीदोबलेण' इति पाठः। ६ अ-आप्रत्योः 'विदक्कावीचारस्स', ताप्रतौ 'विदक्का (क्क) वीचारस्स' इति पाठः।

जह चिरसंचियमिंधणमणलो पवणुग्गदो धुवं दहइ।
तह कम्मिंधणममियं खणेण झाणाणलो दहइ॥ ६५॥
जह रोगासयसमणं विसोसणविरेयणोसहविहीहि।
तह कम्मासयसमणं ज्झाणाणसणादिजोगेहि॥ ६६॥

संपहि सुक्कज्झाणस्स लिंगपरूवणा कीरदे—असंमोहविवेगविसग्गादओ सुक्कज्झाण-लिंगाणि। एत्थ गाहाओ—

अभयासंमोहविवेगविसग्गा तस्स होंति लिंगाइं।
लिंगिज्जइ जेहि मुणी सुक्कज्झाणोवगयचित्तो॥ ६७॥
चालिज्जइ वीहेइ व धीरो ण परिस्सहोवसग्गेहि।
सुहुमेसु ण सम्मुज्झइ भावेसु ण देवमायासु॥ ६८॥
देहविचित्तं पेच्छइ अप्पाणं तह य सव्वसंजोए।
देहोवहिवोसग्गं णिस्संगो सव्वदो कुणदि॥ ६९॥
ण कसायसमुत्थेहि[2] वि बाहिज्जइ माणसेहि दुक्खेहि।
ईसाविसायसोगादिएहि ज्झाणोवगयचित्तो॥ ७०॥
सीयायवादिएहि मि सारीरेहि बहुप्पयारेहिं।
णो बाहिज्जइ साहू ज्झेयम्मि सुणिच्चलो संतो॥ ७१॥

जिस प्रकार चिरकालसे संचित हुए ईंधनको वायुसे वृद्धिको प्राप्त हुई अग्नि अतिशीघ्र जला देती है, उसी प्रकार अपरिमित कर्मरूपी ईंधनको ध्यानरूपी अग्नि क्षणमात्रमें जला देती है॥६५॥

जिस प्रकार विशोषण, विरेचन और औषधके विधानसे रोगाशयका शमन होता है, उसी प्रकार ध्यान और अनशन आदि निमित्तसे कर्माशयका भी शमन होता है॥ ६६॥

अब शुक्लध्यानकी पहिचानका निर्देश करते हैं—असंमोह, विवेक और विसर्ग अर्थात् त्याग आदि शुक्लध्यानके लिंग हैं। इस विषयमें गाथायें—

अभय, असंमोह, विवेक और विसर्ग ये शुक्लध्यानके लिंग हैं, जिनके द्वारा शुक्लध्यानको प्राप्त हुआ चित्तवाला मुनि पहिचाना जाता है॥ ६७॥

वह धीर परीषह और उपसर्गोंसे न तो चलायमान होता है और न डरता है। तथा वह सूक्ष्म भावोंमें और देवमायामें भी नहीं मुग्ध होता है॥ ६८॥

वह देहको अपनेसे भिन्न अनुभव करता है। इसी प्रकार सब प्रकारके संयोगोंसे अपनी आत्माको भी भिन्न अनुभव करता है। तथा निःसंग हुआ वह सब प्रकारसे देह और उपधिका उत्सर्ग करता है॥ ६९॥

ध्यानमें अपने चित्तको लीन करनेवाला वह कषायोंसे उत्पन्न हुए ईर्ष्या, विषाद और शोक आदि मानसिक दुःखोंसे भी नहीं बाधा जाता है॥ ७०॥

ध्येयमें निश्चल हुआ वह साधु शीत व आतप आदिक बहुत प्रकारकी शारीरिक बाधाओंके द्वारा भी नहीं बाधा जाता है॥ ७१॥

१ ति. प. ९, १८. २ प्रतिषु 'समुत्तेहि' इति पाठः।

एवं विदियसुक्कज्झाणपरूवणा गदा ।

संपहि तदियसुक्कज्झाणपरूवणं कस्सामो । तं जहा—क्रिया नाम योगः । प्रतिपतितुं शीलं यस्य तत्प्रतिपाति । तत्प्रतिपक्षः अप्रतिपाति । सूक्ष्मं क्रिया योगो यस्मिन् तत्सूक्ष्मक्रियम् । सूक्ष्मक्रियं च तदप्रतिपाति च सूक्ष्मक्रियाप्रतिपाति ध्यानम् । केवलज्ञानेनापसारितश्रुतज्ञानत्वात् तदवितर्कम् । अर्थांतरसंक्रांत्यभावात्तदवीचारं व्यञ्जन योगसंक्रांत्यभावाद्वा । कथं तत्संक्रांत्यभावः ? तदवष्टंभवलेन विना अक्रमेण त्रिकालगोचराशेषावगतेः[1] । एत्थ गाहाओ—

अविदक्कमवीचारं सुहुमकिरियबंधणं तदियसुक्कं ।
सुहुमम्मि कायजोगे भणिदं तं सव्वभावगयं[2] ॥ ७२ ॥
सुहुमम्मि कायजोगे वट्टंतो केवली तदियसुक्कं ।
ज्झायदि णिरुंभिदुं जो सुहुमं तं कायजोगं पि[3] ॥ ७३ ॥

एदस्स भावत्थो—उप्पण्णकेवलणाणदंसणेहि सव्वदव्वपज्जाए तिकालविसए जाणंतो पस्संतो करणक्कमवहाणवज्जियअणंतविरियो असंखेज्जगुणाए सेडीए कम्मणिज्जरं कुणमाणो

इस प्रकार दूसरे शुक्लध्यानका कथन समाप्त हुआ ।

अब तीसरे शुक्लध्यानका कथन करते हैं । यथा—क्रियाका अर्थ योग है । वह जिसके पतनशील हो वह प्रतिपाती कहलाता है, और उसका प्रतिपक्ष अप्रतिपाती कहलाता है । जिसमें क्रिया अर्थात् योग सूक्ष्म होता है वह सूक्ष्मक्रिय कहा जाता, और सूक्ष्मक्रिय होकर जो अप्रतिपाती होता है वह सूक्ष्मक्रियाप्रतिपाती ध्यान कहलाता है । यहां केवलज्ञानके द्वारा श्रुतज्ञानका अभाव हो जाता है, इसलिये यह अवितर्क है; और अर्थान्तरकी संक्रान्तिका अभाव होनेसे अवीचार है । अथवा व्यंजन और योगकी संक्रान्तिका अभाव होनेसे अवीचार है ।

शंका—इस ध्यानमें इनकी संक्रान्तिका अभाव कैसे है ?

समाधान—इनके आलम्बनके विना ही युगपत् त्रिकाल गोचर अशेष पदार्थोंका ज्ञान होता है, इसलिये इस ध्यानमें इनकी संक्रान्तिके अभावका ज्ञान होता है । इस विषयमें गाथायें—

तीसरा शुक्लध्यान अवितर्क, अवीचार और सूक्ष्म क्रियासे सम्बन्ध रखनेवाला होता है क्योंकि काययोगके सूक्ष्म होने पर सर्वभावगत यह ध्यान कहा गया है ॥ ७२ ॥

जो केवली जिन सूक्ष्म काययोगमें विद्यमान होते हैं वे तीसरे शुक्लध्यानका ध्यान करते हैं और उस सूक्ष्म काययोगका भी निरोध करनेके लिये उसका ध्यान करते हैं ॥ ७३ ॥

अब इसका भावार्थ कहते हैं—केवलज्ञान और केवल दर्शनके उत्पन्न हो जानेके कारण जो त्रिकालविषयक सब द्रव्य और उनकी सब पर्यायोंको जानते हैं और देखते हैं; करण, क्रम और व्यवधानसे रहित होकर जो अनन्त वीर्यके धारक हैं, तथा जो असंख्यातगुणी श्रेणिरूपसे कर्मोंकी निर्जरा कर रहे हैं, ऐसे सयोगी जिन कुछ कम पूर्वकोटि काल तक विहार कर आयुके अन्तर्मुहूर्त

---

१ आ-ताप्रत्योः 'गोचराक्षावगतेः' इति पाठः । २ भग. १८८६. ३ भग. १८८७.

देसूणपुव्वकोडिं विहरिय सजोगिजिणो अंतोमुहुत्तावसेसे आउए दंडकवाडपदरलोगपूरणाणि करेदि । तत्थ जं पढमसमए देसूणचोद्दसरज्जुउस्सेहं सगविक्खंभपमाणवट्टपरिवेदमप्पाणं कादूण ट्ठिदीए असंखेज्जे भागे अणुभागस्स अणंते भागे घादेदूण चेट्ठदि तं दंडं णाम । विदियसमए पुव्वावरेण वादवलयवज्जियलोगागासं सव्वं पि सगदेहविक्खंभेण वाविय सेसट्ठिदिअणुभागाणं जहाकमेण असंखेज्ज-अणंते भागे घादिदूण जमवट्ठाणं तं कवाडं णाम तदियसमए वादवलयं वज्जिय सव्वलोगागासं सगजीवपदेसेहि विसप्पिदूण सेसट्ठिदिअणुभागाणं कमेण असंखेज्जे भागे अणंते भागे घादेदूण जमवट्ठाणं तं पदरं णाम । चउत्थसमए सव्वलोगागासमावूरिय सेसट्ठिदिअणुभागाणमसंखेज्जे भागे अणंते भागे च घादिय जमवट्ठाणं तं लोगपूरणं णाम । संपहि एत्थ सेसट्ठिदिपमाणमंतोमुहुत्तो संखेज्जगुणमाउआदो । एत्तो प्पहुडि उवरि सव्वट्ठिदिखंडयाणि अणुभागखंडयाणि च अंतोमुहुत्तेण घादेदि । ट्ठिदिखंडयस्स आयामो अंतोमुहुत्तं अणुभागखंडयपमाणं पुण सेसअणुभागस्स अणंता भागा । एदेण कमेण अंतोमुहुत्तं गंतूण जोगणिरोहं करेदि । को जोगणिरोहो ? जोगविणासो । तं जहा—एत्तो अंतोमुहुत्तं गंतूण बादरकायजोगेण बादरमणजोगं णिरुंभदि । तदो अंतोमुहुत्तेण बादरकायजोगेण बादरवचिजोगं णिरुंभदि । तदो अंतोमुहुत्तेण बादरकायजोगेण बादरउस्सासणिस्सासं णिरुंभदि । तदो

काल शेष रहने पर दण्ड, कपाट, प्रतर और लोकपूरण समुद्घात करते हैं। उसमें जो प्रथम समयमें कुछ कम चौदह राजु उत्सेध रूप और अपने विष्कंभप्रमाण गोलपरिवेदरूप आत्म प्रदेश कर स्थितिके असंख्यात बहुभागका और अनुभागके अनन्त बहुभागका घात कर स्थित रहते हैं, उसका नाम दण्ड-समुद्घात हैं। दूसरे समयमें पूर्व और पश्चिमकी ओरसे वातवलयके सिवाय पूरे लोकाकाशको अपने देहके विस्तारद्वारा व्याप्त कर शेष स्थिति और अनुभागका क्रमसे असंख्यात बहुभाग और अनन्त बहुभागका घात कर जो अवस्थान होता है वह कपाट समुद्घात है। तीसरे समयमें वातवलयके सिवाय पूरे लोकाकाशको अपने जीवप्रदेशोंके द्वारा व्याप्त कर शेष स्थिति और अनुभागका क्रमसे असंख्यात बहुभाग और अनन्त बहुभागका घात कर जो अवस्थान होता है वह प्रतर-समुद्घात है। चौथे समयमें सब लोकाकाशको व्याप्त कर शेष स्थिति और अनुभागका क्रमसे असंख्यात बहुभाग और अनन्त बहुभागका घात कर जो अवस्थान होता है यह लोकपूरण समुद्घात है। अब यहां शेष स्थितिका प्रमाण अन्तर्मुहूर्त है जो कि आयुके प्रमाणसे संख्यातगुणा है। यहांसे लेकर आगे सब स्थितिकाण्डक और अनुभागकाण्डकोंको अन्तर्मुहूर्तके द्वारा घातता है। स्थितिकाण्डकका आयाम अन्तर्मुहूर्त है और अनुभागकाण्डकका प्रमाण शेष अनुभागके अनन्त बहुभाग हैं। इस क्रमसे अन्तर्मुहूर्त काल जाने पर योगनिरोध करता है।

शंका—योगनिरोध किसे कहते हैं ?

समाधान—योगोंके विनाशकी योगनिरोध संज्ञा है। यथा—

यहां अन्तर्मुहूर्त काल बिताकर बादर काययोगके द्वारा बादर मनोयोगका निरोध करता है। फिर अन्तर्मुहूर्तमें बादर काययोगके द्वारा बादर वचनयोगका निरोध करता है। फिर अन्तर्मुहूर्तमें बादर काययोगके द्वारा बादर उच्छ्वास निश्वासका निरोध करता है। फिर अन्तर्मुहूर्तमें बादर

अंतोमुहुत्तेण बादरकायजोगेण तमेव बादरकायजोगं णिरुंभदि । तदो अंतोमुहुत्तं गंतूण सुहुमकायजोगेण सुहुममणजोगं णिरुंभदि । तदो अंतोमुहुत्तेण सुहुमकायजोगेण सुहुमवचिजोगं णिरुंभदि । तदो अंतोमुहुत्तेण सुहुमकायजोगेण सुहुमउस्सासणिस्सासं णिरुंभदि । तदो अंतोमुहुत्तं गंतूण सुहुमकायजोगेण सुहुमकायजोगं णिरुंभमाणो इमाणि करणाणि करेदि– पढमसमए अपुव्वफद्दयाणि करेदि पुव्वफद्दयाणं हेट्ठदो । आदिवग्गणाए अविभागपडिच्छेदाणमसंखेज्जदिभागमोकड्डदि जीवपदेसाणं च असंखेज्जदिभागमोकड्डदि । एवमंतोमुहुत्तमपुव्वफद्दयाणि करेदि । असंखेज्जगुणहीणाए सेडीए जीवपदेसाणं च असंखेज्जगुणाए सेडीए । अपुव्वफद्दयाणि सेडीए असंखेज्जदिभागो सेडिवग्गमूलस्स वि असंखेज्जदिभागो पुव्वफद्दयाणं पि असंखेज्जदिभागो अपुव्वफद्दयाणि सव्वाणि । एवमपुव्वफद्दयकरणविहाणं गदं ।

एत्तो अंतोमुहुत्तं किट्टीओ करेदि । अपुव्वफद्दयाणमादिवग्गणाए अविभागपडिच्छेदाणमसंखेज्जदिभागमोकड्डदि । जीवपदेसाणमसंखेज्जदिभागमोकड्डदि । एत्थ अंतोमुहुत्तं किट्टीओ करेदि असंखेज्जगुणहीणाए सेडीए । जीवपदेसाणमसंखेज्जगुणाए सेडीए ओकड्डदि । किट्टिगुणगारो पलिदोवमस्स असंखेज्जदिभागो । किट्टीओ सेडीए असंखेज्जदिभागो ।

काययोगके द्वारा उसी बादर काययोगका निरोध करता है । फिर अन्तर्मुहूर्तमें सूक्ष्म काययोगके द्वारा सूक्ष्म मनोयोगका निरोध करता है । फिर अन्तर्मुहूर्तमें सूक्ष्म काययोगके द्वारा सूक्ष्म वचन योगका निरोध करता है । फिर अन्तर्मुहूर्तमें सूक्ष्म काययोगके द्वारा सूक्ष्म उच्छ्वासनिश्वासका निरोध करता है । फिर अन्तर्मुहूर्त काल जानेपर सूक्ष्म काययोगके द्वारा सूक्ष्म काययोगका निरोध करता हुआ इन करणोंको करता हैं । प्रथम समयमें पूर्व स्पर्धकोंके नीचे अपूर्व स्पर्धक करता है । ऐसा करते हुए प्रथम वर्गणाके अविभाग प्रतिच्छेदोंके असंख्यातवें भागका अपकर्षण करता हैं, और जीव प्रदेशोंके असंख्यातमें भागका अपकर्षण करता है । इस प्रकार अन्तर्मुहूर्त कालतक अपूर्व स्पर्धक करता है । ये अपूर्व स्पर्धक प्रति समय पहले समयमें जितने किये गये उनसे अगले द्वितीयादि समयोंमें असंख्यात गुणे हीन श्रेणिरूपसे किये जाते हैं, और पहले समयमें जितने जीवप्रदेशोंका अपकर्षण कर किये उनसे अगले समयोंमें संख्यातगुणे श्रेणिरूपसे जीवप्रदेशोंका अपकर्षण कर किये जाते हैं । इस प्रकार किये गये सब अपूर्व स्पर्धक जगश्रेणिके असंख्यातवें भागप्रमाण जगश्रेणिके प्रथम वर्गमूलके असंख्यातवे भाग प्रमाण और पूर्व स्पर्धकोंके भी असंख्यातवें भाग प्रमाण होते हैं । इस प्रकार अपूर्व स्पर्धक करनेकी विधिका कथन समाप्त हुआ ।

इसके बाद अन्तर्मुहूर्त कालतक कृष्टियोंको करता है । और ऐसा करते हुए अपूर्व स्पर्धकोंकी प्रथम वर्गणाके अविभाग प्रतिच्छेदोंके असंख्यातवें भागका अपकर्षण करता है और जीवप्रदेशोंके असंख्यातवें भागका अपकर्षण करता हैं । इस प्रकार यहां अन्तर्मुहुर्त काल तक कृष्टियां करता है । ये कृष्टियां प्रति समय पहले समयमें जितनी की गई उनसे आगे द्वितीयादि समयोंमें असंख्यातगुणीहीन श्रेणिरूपसे की जाती हैं, और पहले समयमें जितने जीव प्रदेशोंका अपकर्षण कर की गई उनसे अगले समयोंमें असंख्यातगुणी श्रेणिरूपसे जीव प्रदेशोंका अपकर्षण कर की जाती हैं । कृष्टिगुणकार पल्योपमके असंख्यातवें भाग प्रमाण है । सब कृष्टियां जगश्रेणिके

अपुव्वफद्दयाणं पि असंखेज्जदिभागो । किट्टीकरणे णिट्ठिदे तदो से काले पुव्व-फद्दयाणि अपुव्वफद्दयाणि च णासेइ । अंतोमुहुत्तं किट्टीगदजोगो होदि । सुहुमकिरियं अप्पडिवादि ज्झाणं ज्झायदि । किट्टीणं चरिमसमए असंखेज्जे भागे णासेइ । एदम्हि जोगणिरोहकाले सुहुमकिरियमप्पडिवादि ज्झाणं ज्झायदि त्ति जं भणिदं तण्ण घडदे; केवलिस्स विसईकयासेसदव्वपज्जायस्स सगसव्वद्धाए एगरूवस्स अणिंदियस्स एगवत्थुम्हि मणणिरोहाभावादो । ण च मणणिरोहेण विणा ज्झाणं संभवदि; अण्णत्थ तहाणुवलंभादो त्ति ? ण एस दोसो; एगवत्थुम्हि चिंताणिरोहो ज्झाणमिदि जदि घेप्पदि तो होदि दोसो । ण च एवमेत्थ घेप्पदि । पुणो एत्थ कधं घेप्पदि त्ति भणिदे जोगो उवयारेण चिंता; तिस्से एयग्गेण णिरोहो विणासो जम्मि तं ज्झाणमिदि एत्थ घेतव्वं; तेण ण पुव्वुत्तदोससंभवो त्ति । एत्थ गाहाओ—

> तोयमिव णालियाए तत्तायसभायणोदरत्थं वा ।
> परिहादि कमेण तहा जोगजलं ज्झाणजलणेण ॥ ७४ ॥

असंख्यातवें भाग प्रमाण हैं और अपूर्व स्पर्धकोंके भी असंख्यातवें भाग प्रमाण हैं ।

कृष्टिकरणक्रियाके समाप्त हो जानेपर फिर उसके अनन्तर समयमें पूर्व स्पर्धकोंका और अपूर्व स्पर्धकोंका नाश करता है । अन्तर्मुहूर्त कालतक कृष्टिगत योगवाला होता है, तथा सूक्ष्म क्रियाप्रतिपाति ध्यानको ध्याता है । अन्तिम समयमें कृष्टियोंके असंख्यात बहुभागका नाश करता है ।

शंका—इस योगनिरोधके कालमें केवली जिन सूक्ष्मक्रियाप्रतिपाती ध्यानको ध्याते हैं, यह जो कथन किया है वह नहीं बनता, क्योंकि केवली जिन अशेष द्रव्य पर्यायोंको विषय करते हैं, अपने सब कालमें एकरूप रहते हैं और इन्द्रिय ज्ञानसे रहित हैं; अतएव उनका एक वस्तुमें मनका निरोध करना उपलब्ध नहीं होता । और मनका निरोध किये विना ध्यानका होना सम्भव नहीं हैं, क्योंकि अन्यत्र वैसा देखा नहीं जाता ?

समाधान—यह कोई दोष नहीं है, क्योंकि प्रकृतमें एक वस्तुमें चिन्ताका निरोध करना ध्यान है, यदि ऐसा ग्रहण किया जाता है तो उक्त दोष आता है । परन्तु यहां ऐसा ग्रहण नहीं करते है ।

शंका—तो यहां किस रूपमें ग्रहण करते हैं ?

समाधान—यहां उपचारसे योगका अर्थ चिन्ता है । उसका एकाग्ररूपसे निरोध अर्थात् विनाश जिस ध्यानमें किया जाता है वह ध्यान, ऐसा यहां ग्रहण करना चाहिये, इसलिये यहां पूर्वोक्त दोष सम्भव नहीं है ।

इस विषयमें गाथायें—

जिस प्रकार नाली द्वारा जलका क्रमशः अभाव होता है, या तपे हुए लोहके पात्रमें स्थित जलका क्रमशः अभाव होता है, उसी प्रकार ध्यानरूपी अग्निके द्वारा योगरूपी जलका क्रमशः नाश होता है ॥ ७४ ॥

१ अ-आप्रत्योः 'णासेड़ी एवं हि', ताप्रतौ 'भागणासेडि । एवं हि' इति पाठः ।

जह सव्वसरीरगयं मंतेण विसं णिरुंभए डंके[1] ।
तत्तो पुणोऽवणिज्जदि पहाणज्झरमंतजोएण[2] ॥ ७५ ॥
तह बादरतणुविसयं जोगविसं[3] ज्झाणमंतबलजुत्तो ।
अणुभावम्मि णिरुंभदि अवणेदि तदो वि जिणवेज्जो ॥ ७६ ॥

एवं तदियसुक्कज्झाणपरूवणा गदा ।

संपहि चउत्थसुक्कज्झाणपरूवणं कस्सामो । तं जहा—समुच्छिन्ना क्रिया योगो यस्मिन् तत्समुच्छिन्नक्रियम् । समुच्छिन्नक्रियं च[4] अप्रतिपाति च समुच्छिन्नक्रियाप्रतिपाति ध्यानम् । श्रुतरहितत्वात् अवितर्कम् । जीवप्रदेशपरिस्पंदाभावादवीचारं अर्थव्यंजनयोगसंक्रांत्यभावाद्वा । एत्थ गाहा—

अविदक्कमवीचारं अणियट्टी अकिरियं च सेलेसिं ।
ज्झाणं णिरुद्धजोगं अपच्छिमं उत्तमं सुक्कं ॥ ७७ ॥

एदस्स अत्थो– जोगम्हि णिरुद्धम्हि आउसमाणि कम्माणि होंति अंतोमुहुत्तं । से काले सेलेसियं पडिवज्जदि समुच्छिण्णकिरियमणियट्टि सुक्कज्झाणं ज्झायदि । कधमेत्थ ज्झाणववएसो ? एयग्गेण चिंताए जीवस्स णिरोहो परिप्फंदाभावो ज्झाणं णाम । किं फलमेदं

जिस प्रकार मन्त्रके द्वारा सब शरीरमें भिदे हुए विषका डंकके स्थानमें निरोध करते हैं, और प्रधान क्षरण करनेवाले मन्त्रके बलसे उसे पुनः निकालते हैं ॥ ७५ ॥

उसी प्रकार ध्यानरूपी मन्त्रके बलसे युक्त हुआ यह सयोगिकेवली जिनरूपी वैद्य बादर शरीरविषयक योगविषको पहले रोकता है और इसके बाद उसे निकाल फेंकता है ॥ ७६ ॥

इस प्रकार तीसरे शुक्लध्यानका कथन समाप्त हुआ ।

अब चौथे शुक्लध्यानका कथन करते हैं । यथा—जिसमें क्रिया अर्थात् योग सम्यक् प्रकारसे उच्छिन्न हो गया है वह समुच्छिन्नक्रिय कहलाता है । और समुच्छिन्नक्रिय होकर जो अप्रतिपाती है वह समुच्छिन्नक्रियाप्रतिपाती ध्यान है । यह श्रुतज्ञानसे रहित होनेके कारण अवितर्क है । जीवप्रदेशोंके परिस्पन्दका अभाव होनेसे अवीचार है; या अर्थ, व्यञ्जन और योगकी संक्रान्तिके अभाव होनेसे अवीचार है । इस विषयमें गाथा—

अन्तिम उत्तम शुक्ल ध्यान वितर्करहित है, वीचार रहित है, अनिवृत्ति है, क्रिया रहित है, शैलेशी अवस्थाको प्राप्त है और योगरहित है ॥ ७७ ॥

इसका अर्थ—योगका निरोध होनेपर शेष कर्मोंकी स्थिति आयुकर्मके समान अन्तर्मुहूर्त होती है । तदनन्तर समयमें शैलेशी अवस्थाको प्राप्त होता है, और समुच्छिन्नक्रिय अनिवृत्ति शुक्लध्यानको ध्याता है ।

शंका—यहां ध्यान संज्ञा किस कारणसे दी गई है ?

समाधान—एकाग्ररूपसे जीवके चिन्ताका निरोध अर्थात् परिस्पन्दका अभाव होना ही ध्यान है, इस दृष्टिसे यहां ध्यान संज्ञा दी गई है ।

---

१ प्रतिषु 'दंके' इति पाठः । २ ताप्रतौ 'पहाणयर' इति पाठः । ३ अ-ताप्रत्योः 'तणुवीसयजोगविसं' इति पाठः । ४ अप्रतौ 'यस्मिन् तत्समुच्छिन्नक्रियं च' इति पाठः ।

ज्झाणं ? अघाइचउक्कविणासफलं । तदियसुक्कज्झाणं जोगणिरोहफलं । सेलेसियअद्धाए ज्झीणाए सव्वकम्मविप्पमुक्को एगसमएण सिद्धिं गच्छदि । एवं ज्झाणं णाम तवोकम्मं गदं ।

ट्ठियस्स णिसण्णस्स णिव्वण्णस्स[1] वा साहुस्स कसाएहि सह देहपरिच्चागो काउसग्गो णाम । णेदं ज्झाणस्संतो[2] णिवददि; बारहाणुवेक्खासु वावदचित्तस्स वि काओस्सग्गुववत्तीदो । एवं तवोकम्मं परूविदं ।

जं तं किरियाकम्मं णाम ॥ २७ ॥

तस्स अत्थविवरणं कस्सामो—

तमादाहीणं पदाहिणं[3] तिक्खुत्तं तियोणदं चदुसिरं बारसावत्तं तं सव्वं किरियाकम्मं णाम ॥ २८ ॥

तं किरियाकम्मं छव्विहं आदाहीणादिभेदेण । तत्थ किरियाकम्मे कीरमाणे अप्पायत्तत्तं अपरवसत्तं आदाहीणं णाम । पराहीणभावेण किरियाकम्मं किण्ण कीरदे ? ण; तहा किरियाकम्मं कुणमाणस्स कम्मक्खयाभावादो जिणिंदादिअच्चासणदुवारेण कम्मबंधसंभवादो

शंका—इस ध्यानका क्या फल है ?

समाधान—अघाति चतुष्कका विनाश करना इस ध्यानका फल है ।

योगका निरोध करना तीसरे शुक्लध्यानका फल है ।

शैलेशी अवस्थाके कालके क्षीण होनेपर सब कर्मोंसे मुक्त हुआ यह जीव एक समयमें सिद्धिको प्राप्त होता है । इस प्रकार ध्यान नामक तपः कर्मका कथन समाप्त हुआ ।

स्थित या बैठे हुए कायोत्सर्ग करनेवाले साधुका कषायोंके साथ शरीरका त्याग करना कायोत्सर्ग नामका तपःकर्म है । इसका ध्यानमें अन्तर्भाव नहीं होता, क्योंकि जिसका बारह अनुप्रेक्षाओंके चिन्तवनमें चित्त लगा हुआ है, उसके भी कायोत्सर्गकी उत्पत्ति देखी जाती है ।

इस प्रकार तपःकर्मका कथन समाप्त हुआ ।

अब क्रियाकर्मका अधिकार है ॥ २७ ॥

इसके अर्थका खुलासा करते हैं—

आत्माधीन होना, प्रदक्षिणा करना, तीन बार करना, तीन बार अवनति, चार बार सिर नवाना और बारह आवर्त, यह सब क्रियाकर्म है ॥ २८ ॥

आत्माधीन होना आदिके भेदसे वह क्रियाकर्म छह प्रकारका है । उनमेंसे क्रियाकर्म करते समय आत्माधीन होना अर्थात् परवश न होना आत्माधीन होना कहलाता है ।

शंका—पराधीनभावसे क्रियाकर्म क्यों नहीं किया जाता है ?

समाधान—नहीं, क्योंकि उस प्रकार क्रियाकर्म करनेवालेके कर्मोंका क्षय नहीं होता और जिनेन्द्रदेव आदिकी आसादना होनेसे कर्मोंका वन्ध होता है ।

---

१ ताप्रतौ 'णिव्विण्णस्स' इति पाठः । २ आ-क-ताप्रतिपु 'ज्झाणस्संते' इति पाठः । ३ अ-आप्रत्योः 'पदाहीणं' इति पाठः ।

च । वंदणकाले गुरुजिणजिणहराणं पदक्खिणं काऊण णमंसणं पदाहिणं[1] णाम । पदाहिणणमंसणादिकिरियाणं तिण्णिवारकरणं तिक्खुत्तं णाम । अथवा एक्कम्हि चेव दिवसे जिणगुरुरिसिवंदणाओ तिण्णिवारं किज्जंति त्ति तिक्खुत्तं णाम । तिसंज्झासु चेव वंदणा कीरदे अण्णत्थ किण्ण कीरदे ? ण; अण्णत्थ वि तप्पडिसेहणियमाभावादो । तिसंज्झासु वंदणणियमपरूवणट्ठं तिक्खुत्तमिदि भणिदं । ओणदं अवनमनं भूमावासनमित्यर्थः । तं च तिण्णिवारं कीरदे त्ति तियोणदमिदि भणिदं । तं जहा—सुद्धमणो धोदपादो[2] जिणिंददंसण-जणिदहरिसेण पुलइदंगो संतो जं जिणस्स अग्गे वइसदि तमेगमोणदं । जमुट्ठिऊण जिणिंदा-दीणं विण्णत्तिं कादूण वइसणं तं विदियमोणदं । पुणो उट्ठिय सामाइयदंडएण अप्पसुद्धिं काऊण सकसायदेहुस्सग्गं करिय जिणाणंतगुणे ज्झाइय चउवीसतित्थयराणं वंदणं काऊण पुणो जिणजिणालयगुरवाणं संथवं काऊण जं भूमीए वइसणं तं तदियमोणदं । एवं[3] एक्केक्कम्हि किरियाकम्मे कीरमाणे तिण्णि चेव ओणमणाणि होंति । सव्वकिरियाकम्मं चदुसिरं होदि । तं जहा-सामाइयस्स आदीए जं जिणिंदं पडि सीसणमणं तमेगं सिरं । तस्सेव अवसाणे जं सीसणमणं तं विदियं सीसं । थोस्सामिदंडयस्स आदीए जं सीसणमणं तं तदियं सिरं । तस्सेव अवसाणे जं णमणं तं चउत्थं सिरं । एवमेगं किरियाकम्मं चदुसिरं होदि । ण

वन्दना करते समय गुरु, जिन और जिनगृहकी प्रदक्षिणा करके नमस्कार करना प्रदक्षिणा है। प्रदक्षिणा और नमस्कार आदि क्रियाओंका तीन वार करना त्रिःकृत्वा है। अथवा एक ही दिनमें जिन, गुरु और ऋषियोंकी वन्दना तीन वार की जाती है, इसलिये इसका नाम त्रिःकृत्वा है।

शंका—तीनों ही संध्याकालोंमें वन्दना की जाती है, अन्य समयमें क्यों नहीं की जाती ?

समाधान—नहीं, क्योंकि अन्य समयमें भी वन्दनाके प्रतिषेधका कोई नियम नहीं है।

तीनों सन्ध्या कालोंमें वन्दनाके नियमका कथन करनेके लिये 'त्रिःकृत्वा' ऐसा कहा है।

'ओणद' का अर्थ अवनमन अर्थात् भूमिमें वैठना है। वह तीन वार किया जाता है इस लिये तीन वार अवनमन करना कहा है। यथा—शुद्धमन, धौतपाद और जिनेन्द्रके दर्शनसे उत्पन्न हुए हर्षसे पुलकित वदन होकर जो जिनदेवके आगे वैठना, यह प्रथम अवनति है। तथा जो उठकर जिनेन्द्र आदिके सामने विज्ञप्ति कर वैठना, यह दूसरी अवनति है। फिर उठकर सामायिक दण्डकके द्वारा आत्मशुद्धि करके, कषायसहित देहका उत्सर्ग करके, जिनदेवके अनन्त गुणोंका ध्यान करके, चौवीस तीर्थंकरोंकी वन्दना करके फिर जिन, जिनालय और गुरुकी स्तुति करके जो भूमिमें वैठना, वह तीसरी अवनति है। इस प्रकार एक एक क्रियाकर्म करते समय तीन ही अवनति होती हैं।

सब क्रियाकर्म चतुःशिर होता है। यथा—सामायिकके आदिमें जो जिनेन्द्र देवको सिर नवाना वह एकसिर है। उसीके अन्तमें जो सिर नवाना वह दूसरा सिर है। 'थोस्सामि' दण्डकके आदिमें जो सिर नवाना वह तीसरा सिर है। तथा उसीके अन्तमें जो नमस्कार करना वह चौथा सिर है। इस प्रकार एक क्रियाकर्म चतुःशिर होता है। इससे अन्यत्र नमनका प्रतिषेध

१ अ-आप्रत्योः 'पदाहीणं' इति पाठः २ ताप्रतौ 'धोध (धोद) पादो' इति पाठः। ३ ताप्रतौ 'एवं' इत्येतत्पदं नास्ति।

अण्णत्थ णवणपडिसेहो एदेण कदो, अण्णत्थणवणणियमस्स पडिसेहाकरणादो। अधवा सव्वं पि किरियाकम्मं चदुसिरं चदुप्पहाणं होदि; अरहंतसिद्धसाहुधम्मे चेव पहाणभूदे कादूण सव्वकिरियाकम्माणं पउत्ति-दंसणादो। सामाइयत्थोस्सामिदंडयाणं आदीए अवसाणे च मणवयणकायाणं विसुद्धिपरावत्तणवारा बारस हवंति। तेण एगं किरियाकम्मं बारसावत्तमिदि भणिदं। एदं सव्वं पि किरियाकम्मं णाम।

जं तं भावकम्मं णाम ॥ २९॥

तस्स अत्थपरूवणं कस्सामो--

उवजुत्तो पाहुडजाणगो तं सव्वं भावकम्मं णाम ॥ ३० ॥

कम्मपाहुडजाणओ होदूण जो उवजुत्तो सो भावकम्मं णाम।

एदेसिं कम्माणं केण कम्मेण पयदं? समोदाणकम्मेण पयदं ॥ ३१ ॥

कुदो? कम्माणियोगद्दारम्मि समोदाणकम्मस्सेव वित्थरेण परूविदत्तादो। अधवा संगहं पडुच्च एवं भणिदं। मूलतंते पुण पयोगकम्म-समोदाणकम्म-आधाकम्म-इरियावथकम्म-तवोकम्म-किरियाकम्माणि पहाणं; तत्थ वित्थारेण परूविदत्तादो।

नहीं किया गया है, क्योंकि शास्त्रमें अन्यत्र नमन करनेके नियमका कोई प्रतिषेध नहीं है। अथवा सभी क्रियाकर्म चतुःशिर अर्थात् चतुःप्रधान होता है, क्योंकि अरिहन्त, सिद्ध, साधु और धर्मको प्रधान करके सब क्रियाकर्मोंकी प्रवृत्ति देखी जाती है। सामायिक और त्थोस्सामि दण्डकके आदि और अन्तमें मन, वचन और कायकी विशुद्धिके परावर्तनके वार बारह होते हैं, इस लिये एक क्रियाकर्म बारह आवर्तसे युक्त कहा है। यह सब ही क्रियाकर्म है।

अब भावकर्मका अधिकार है ॥ २९ ॥

इसके अर्थका प्ररूपण करते हैं—

जो उपयुक्त प्राभृतका ज्ञाता है वह सब भावकर्म है ॥ ३० ॥

कर्मप्राभृतका ज्ञाता होकर जो उपयुक्त है वह भावकर्म है।

विशेषार्थ—सूत्रमें आगम भावकर्मका लक्षण कहा है। इसका दूसरा भेद नोआगम भावकर्म है। प्रकृतमें भावकर्मके प्रथम भेद आगम भावकर्मका ही सूत्रमें निर्देश है।

इन कर्मोंका किस कर्मसे प्रयोजन है? समवधान कर्मसे प्रयोजन है ॥ ३१ ॥

क्योंकि कर्म अनुयोगद्वारमें समवधान कर्मका ही विस्तारसे कथन किया है। अथवा संग्रह नयकी अपेक्षा ऐसा कहा है। मूल ग्रन्थमें तो प्रयोगकर्म, समवधानकर्म, अधःकर्म, ईर्यापथकर्म, तपःकर्म और क्रियाकर्म प्रधान हैं, क्योंकि वहां इनका विस्तारसे कथन किया है।

---

१ ष. खं. पु. ९, पृ. १८९

एत्थ एदाणि छ कम्माणि आधारभूदाणि कादूण संतदव्व-खेत्त-फोसण-कालंतर-भावप्पाबहुआणिओगद्दाराणं परूवणं कस्सामो। तं जहा —संतपरूवणदाए दुविहो णिद्देसो-ओघेण आदेसेण य। ओघेण अत्थि पओअकम्म-समोदाणकम्म-आधाकम्म इरियावथकम्म-तवोकम्म-किरियाकम्माणि। आदेसेण गदियाणुवादेण णिरयगईए णेरइएसु अत्थि पओअकम्म-समोदाणकम्मकिरियाकम्माणि। आधाकम्म-इरियावथकम्म-तवोकम्माणि णत्थि; णेरइएसु ओरालियसरीरस्स उदयाभावादो पंचमहव्वयाभावादो। एवं सत्तसु पुढवीसु। देव-वेउव्विय-सरीर-वेउव्वियमिस्सेसु णारगभंगो।

तिरिक्खगदीए तिरिक्खेसु अत्थि पओअकम्म-समोदाणकम्म-आधाकम्म-किरिया-कम्माणि। इरियावथकम्म-तवोकम्माणि णत्थि; तिरिक्खेसु महव्वयाभावादो। एवं पंचिंदिय-तिरिक्ख-पंचिंदियतिरिक्खपज्जत्त-पंचिंदियतिरिक्खजोणिणि—पंचिंदियतिरिक्खअपज्जत्तेसु वि वत्तव्वं। णवरि पंचिंदियतिरिक्खअपज्जत्तेसु किरियाकम्मं णत्थिः तत्थ सम्मादिट्ठीणमभावादो। मणुसअपज्जत्तपंचिंदियअपज्जत्त—तसअपज्जत्त-सव्वएइंदिय-सव्वविगलिंदिय-पंचकाय-मदि-सुद-विभंगणाण-मिच्छाइट्ठि-असण्णीणं पांचिंदियतिरिक्खअपज्जत्तभंगो।

यहां इन छह कर्मोको आधार मान कर सत्, द्रव्य, क्षेत्र, स्पर्शन, काल, अन्तर, भाव और अल्पबहुत्व, इन अनुयोगद्वारोंका कथन करते है। यथा—

सत्प्ररूपणाकी अपेक्षा निर्देश दो प्रकारका है—ओघनिर्देश और आदेशनिर्देश। ओघकी अपेक्षा प्रयोगकर्म, समवधानकर्म, अधःकर्म, ईर्यापथकर्म, तपकर्म और क्रियाकर्म हैं। आदेशकी अपेक्षा गतिमार्गणाके अनुवादसे नरकगतिमें नारकियोंमें प्रयोगकर्म, समवधानकर्म और क्रियाकर्म होते हैं। अधःकर्म, ईर्यापथकर्म और तपःकर्म नहीं होते, क्योंकि नारकियोंके औदारिक शरीरका उदय और पांच महाव्रत नहीं होते। इसी प्रकार सातों पृथिवियोंमें जानना चाहिये। सब प्रकारके देव, वैक्रियिकशरीर काययोगी और वैक्रियिकमिश्र काययोगी मार्गणाओंमें नारकियोंके समान भंग हैं।

तिर्यंचगतिमें तिर्यंचोंमें प्रयोगकर्म, समवधानकर्म, अधःकर्म और क्रियाकर्म होते हैं। ईर्यापथकर्म और तपःकर्म नहीं होते, क्योंकि तिर्यंचोंके महाव्रत नहीं होते। इसी प्रकार पंचेन्द्रिय-तिर्यंच, पंचेन्द्रिय तिर्यंच पर्याप्त, पंचेन्द्रियतिर्यंच योनिनी और पंचेन्द्रिय तिर्यंच अपर्याप्तकोंके भी कहना चाहिये। इतनी विशेषता है कि पंचेन्द्रिय तिर्यंच अपर्याप्तकोंके क्रियाकर्म नहीं होता, क्योंकि उनमें सम्यग्दृष्टि जीव नहीं होते। मनुष्य अपर्याप्त, पंचेन्द्रिय अपर्याप्त, त्रस अपर्याप्त, सब एकेन्द्रिय, सब विकलेन्द्रिय, पांच स्थावर काय, मति अज्ञानी, श्रुताज्ञानी, विभंगज्ञानी, मिथ्यादृष्टि और असंज्ञियोंके पंचेन्द्रिय तिर्यंच अपर्याप्तकोंके समान भंग हैं। अर्थात् इनके प्रयोगकर्म, समवधान कर्म और अधःकर्म होते हैं, शेष कर्म नहीं होते।

१ ताप्रतौ 'णेरइय' इति पाठः। २ आप्रतौ 'तवोकम्माणि आधाए णेरइएसु ओरालिय' ताप्रतौ 'तवोकम्माणि णेरइएसु णत्थि ओरालिय' इति पाठः

मणुसगदीए मणुस्सेसु मणुसपज्जत्तमणुसिणीसु ओघं । एवं पंचिंदिय-पंचिंदियपज्जत्त-तस-तसपज्जत्त-पंचमण-पंचवचिकायजोगि-ओरालिय-ओरालियमिस्सकायजोगि--कम्मइयकाय-जोगि-आभिणि-सुद-ओहि-मणपज्जवणाणि-संजद[1]-चक्खु--अचक्खु-ओहि-दंसणि-सुक्कलेस्सिय-भवसिद्धिय-सम्माइट्ठि-खइयसम्माइट्ठि-उवसमसम्माइट्ठि-सण्णि-आहारीसु वत्तव्वं, विसेसा-भावादो । आहार-आहारमिस्साणमोघं । णवरि इरियावथकम्मं णत्थि; तत्थ खीणुवसंतकसा-याणमभावादो । एवं तिण्णिवेद-चत्तारिकसाय-सामाइय-छेदोवट्ठावण-परिहारसुद्धिसंजदतेउ-पम्मलेस्सिय-वेदगसम्मादिट्ठीणं वत्तव्वं, अविसेसादो । सुहुमसांपराइय-जहाक्खादविहारसु-द्धिसंजदाणमोघं । णवरि किरियाकम्मं णत्थि; ज्झाणेगग्गमणाणं तदसंभवादो । णवरि सुहुमसां-पराइएसु इरियावथकम्मं पि णत्थि, सकसाएसु तदसंभवादो । अवगदवेद-अकसाइ-केवलणाणि-केवलदंसणीणं जहाक्खादविहारसुद्धिसंजदभंगो । संजदासंजदेसु अत्थि पओअकम्म-समो-दाणकम्म-आधाकम्म-किरियाकम्माणि । एवमसंजद-किण्ह-णील-काउलेस्सियाणं पि वत्तव्वं । एवमभवसिद्धिय-सासणसम्माइट्ठि-[सम्मा-] मिच्छाइट्ठीणं वत्तव्वं । णवरि किरियाकम्मं णत्थि । अणाहारेसु ओघं । एवं संतपरूवणा समत्ता ।

मनुष्यगतिमें मनुष्योंमें तथा मनुष्यपर्याप्त और मनुष्यनियोंमें ओघके समान कर्म होते हैं । इसी प्रकार पंचेन्द्रिय, पंचेन्द्रिय पर्याप्त, त्रस, त्रसपर्याप्त, पांचों मनोयोगी, पांचों वचन योगी, काययोगी, औदारिक काययोगी, औदारिक मिश्र काययोगी, कार्मणकाययोगी, आभिनिबोधिक ज्ञानी, श्रुतज्ञानी, अवधिज्ञानी, मनःपर्ययज्ञानी, संयत, चक्षुदर्शनी, अचक्षुदर्शनी, अवधिदर्शनी, शुक्ललेश्यावाले, भव्यसिद्धिक, सम्यग्दृष्टि, क्षायिकसम्यग्दृष्टि, उपशम सम्यग्दृष्टि, संज्ञी और आहारक जीवोंके कथन करना चाहिये, क्योंकि उनसे इनमें कोई भेद नहीं है ।

आहारक काययोग और आहारक मिश्रकाययोगियोंके ओघके समान कर्म होते हैं । किन्तु इतनी विशेषता है कि उनके ईर्यापथकर्म नहीं होता, क्योंकि वहां पर क्षीणकषाय और उपशान्तकषाय अवस्थाओंका अभाव है । इसी प्रकार तीन वेद, चार कषाय, सामायिकसंयत, छेदोपस्थापनासंयत, परिहारविशुद्धिसंयत, पीत लेश्यावाले, पद्मलेश्यावाले और वेदकसम्यग्दृष्टि जीवोंके कहना चाहिये, क्योंकि उनसे इनमें कोई विशेषता नहीं है । सूक्ष्मसाम्परायसंयत और यथाख्यातविहार शुद्धिसंयत जीवोंके ओघके समान कर्म होते हैं । इतनी विशेषता है कि इनके क्रियाकर्म नहीं होता, क्योंकि इनका मन ध्यानमें लगा रहता है, इसलिये वहां क्रियाकर्मका होना असंभव है । साथ ही इतनी और विशेषता है कि सूक्ष्मसाम्परायिक संयत जीवोंके ईर्यापथ कर्म भी नहीं होता, क्योंकि कषायसहित जीवोंका ईर्यापथ कर्म नहीं हो सकता । अपगतवेदी, अकषायी, केवलज्ञानी और केवलदर्शनी जीवोंके यथाख्यातविहारशुद्धिसंयत जीवोंके समान कर्म होते है । संयतासंयतजीवोंके प्रयोगकर्म, समवधानकर्म, अधःकर्म और क्रियाकर्म होते हैं । इसी प्रकार असंयत, कृष्ण लेश्यावाले, नील लेश्यावाले और कापोत लेश्यावाले जीवोंके भी कहना चाहिये । तथा इसी प्रकार अभव्यसिद्धिक, सासादनसम्यग्दृष्टि और सम्यग्मिथ्यादृष्टि जीवोंके भी कहना चाहिये । इतनी विशेषता है कि इनके क्रियाकर्म नहीं होता । अनाहारक जीवोंके ओघके समान कर्म होते हैं । इस प्रकार सत्प्ररूपणा समाप्त हुई ।

१ ताप्रतौ 'संजम' इति पाठः ।

दव्वपमाणाणुगमे भण्णमाणे ताव दव्वट्ठदे-पदेसट्ठदाणं अत्थपरूवणं कस्सामो । तं जहा—पओअकम्म-तवोकम्म-किरियाकम्मेसु जीवाणं दव्वट्ठदा त्ति सण्णा । जीवपदेसाणं पदेसट्ठदा त्ति ववएसो । समोदाणकम्म-इरियावथकम्मेसु जीवाणं दव्वट्ठदा त्ति ववएसो । तेसु चेव जीवेसु ट्ठिदकम्मपरमाणूणं अभवसिद्धिएहि अणंतगुणाणं सिद्धेहिंतो अणंतगुणहीणाणं पदेसट्ठदा त्ति सण्णा । आधाकम्मम्मि अभवसिद्धिएहिंतो अणंतगुणाणं सिद्धेहिंतो अणंतगुणहीणाणं ओरालियसरीरणोकम्मक्खंधाणं दव्वट्ठदा त्ति सण्णा । तेसु चेव ओरालियसरीरणोकम्मक्खंधेसु ट्ठिदपरमाणूणमभवसिद्धिएहिंतो अणंतगुणाणं सिद्धेहिंतो अणंतगुणहीणाणं पदेसट्ठदा त्ति सण्णा ।

संपहि एदेण अट्ठपदेण दव्वपमाणाणुगमे भण्णमाणे दुविहो णिद्देसो—ओघेण आदेसेण य । तत्थ ओघेण पओगकम्म-समोदाणकम्म-आधाकम्माणं दव्वट्ठपदेसट्ठदाओ इरियावथकम्म-पदेसट्ठदा च केवडिया ? अणंता । तं जहा—पओगकम्म-समोदाणकम्माणमणंतिमभागूण-सव्वजीवरासिस्स दव्वट्ठदाए गहणादो । एदेसिं पदेसट्ठदा वि अणंता; एदेसु जीवेसु घणलोगेण गुणिदेसु पओगकम्मपदेसट्ठदाए पमाणुप्पत्तीदो । तेसु चेव जीवेसु कम्मपदेसेहि गुणिदेसु समोदाणकम्मपदेसट्ठदापमाणुप्पत्तीदो । इरियावथकम्मपदेसट्ठदा वि अणंता चेव; सयलवीयरायकम्मपदेसग्गहणादो । आधाकम्मदव्वट्ठदा अणंता । कुदो ? ओरालियसरीरणो-

द्रव्यप्रमाणानुगमका कथन करते समय सर्व प्रथम द्रव्यार्थता और प्रदेशार्थताके अर्थका कथन करते हैं । यथा—प्रयोगकर्म, तपःकर्म और क्रियाकर्ममें जीवोंकी द्रव्यार्थता संज्ञा है, और जीवप्रदेशोंकी प्रदेशार्थता संज्ञा है । समवधानकर्म और ईर्यापथकर्ममें जीवोंकी द्रव्यार्थता संज्ञा है और उन्हीं जीवोंमें स्थित अभव्योंसे अनन्तगुणे और सिद्धोंसे अनन्तगुणे हीन कर्म-परमाणुओंकी प्रदेशार्थता संज्ञा है । अधःकर्ममें अभव्योंसे अनन्तगुणे और सिद्धोंसे अनन्तगुणे हीन औदारिक शरीरके नोकर्म स्कन्धोंकी द्रव्यार्थता संज्ञा है और उन्हीं औदारिकशरीर नोकर्मस्कन्धोंमें स्थित अभव्योंसे अनन्तगुणे और सिद्धोंसे अनन्तगुणे हीन परमाणुओंकी प्रदेशार्थता संज्ञा है ।

अब इसी अर्थपदके अनुसार द्रव्यप्रमाणानुगमका कथन करने पर निर्देश दो प्रकारका है—ओघनिर्देश और आदेशनिर्देश । ओघकी अपेक्षा प्रयोगकर्म, समवधानकर्म और अधःकर्मोंकी द्रव्यार्थता और प्रदेशार्थता, तथा ईर्यापथकर्मकी प्रदेशार्थता कितनी है ? अनन्त है । यथा—प्रयोगकर्म और समवधानकर्मकी द्रव्यार्थतारूपसे अनन्तवें भाग कम सब जीवराशि ग्रहण की गई है । इनकी प्रदेशार्थता भी अनन्त है, क्योंकि इन जीवोंको घनलोकसे गुणित करने पर प्रयोगकर्मकी प्रदेशार्थताका प्रमाण उत्पन्न होता है, और इन्हीं जीवोंको उनके कर्मप्रदेशोंसे गुणित करने पर समवधान कर्मकी प्रदेशार्थताका प्रमाण उत्पन्न होता है । ईर्यापथकर्मकी प्रदेशार्थता भी अनन्त ही है, क्योंकि इसके द्वारा सकल वीतराग जीवोंके कर्मप्रदेशोंका ग्रहण किया गया है । अधःकर्मकी द्रव्यार्थता अनन्त है, क्योंकि इसके द्वारा औदारिक शरीरके अनन्त नोकर्मस्कन्धोंका ग्रहण किया गया है । और इसकी प्रदेशार्थता भी अनन्त है, क्योंकि एक एक

१ ताप्रतौ 'दव्वट्ठिद-' इति पाठः । २ अ-आप्रत्योः 'पदेसट्ठदाए अणंता' इति पाठः ।

कम्मक्खंधाणमणंताणं गहणादो। तस्स पदेसट्ठदा वि अणंता; एक्केक्कम्हि णोकम्मक्खंधे अणंताणं परमाणूणमुवलंभादो। इरियावथ-तवोकम्मदव्वट्ठदा केवडिया ? संखेज्जा। कुदो ? महव्वय-धारीणं जीवाणं मणुस्सपज्जत्ते मोत्तूण अण्णत्थ[1] अणुवलंभादो। तवोकम्मपदेसट्ठदा असंखेज्जा[2]; घणलोगेण संखेज्जमहव्वइजीवेसु गुणिदेसु संखेज्जघणलोगुवलंभादो। किरियाकम्मदव्वट्ठदा असंखेज्जा। कुदो ? पलिदोवमस्स असंखेज्जदिभागमेत्तसम्माइट्ठीसु चेव किरियाकम्मुवलंभादो। तस्स पदेसट्ठदा वि असंखेज्जा। कुदो ? पलिदोवमस्स असंखेज्जदिभागसम्माइट्ठिरासिणा घणलोगे गुणिदे असंखेज्जलोगपमाणुप्पत्तीदो। एवं कायजोगि-ओरालियकायजोगि-ओरालिय-मिस्स[3]कायजोगि-कम्मइयकायजोगि-अचक्खुदंसणिभवसिद्धिय-आहारअणाहारयाणं वत्तव्वं। णवरि ओरालियमिस्सकायजोगीसु किरियाकम्मदव्वट्ठदा संखेज्जा[4]।

णिरयगदीए णेरइएसु पओअकम्म-समोदाणकम्म-किरियाकम्माणं दव्वट्ठदा पदेसट्ठदा च केवडिया ? असंखेज्जा। णवरि समोदाणकम्मपदेसट्ठदा अणंता; पदरस्स असंखेज्जदि-भागमेत्तरासिणा अभवसिद्धिएहिंतो अणंतगुणे सिद्धाणमणंतिमभागे कम्मपदेसे गुणिदे अणंतरासिसमुप्पत्तीदो। एवं पढमाए पुढवीए वत्तव्वं। विदियादि जाव सत्तमि त्ति एवं चेव। णवरि सेडीए असंखेज्जदिभागेण घणलोगे गुणिदे पओअकम्मपदेसट्ठदा होदि; तत्थ

नोकर्मस्कन्धमें अनन्त परमाणु पाये जाते हैं।

ईर्यापथकर्म और तप:कर्म की द्रव्यार्थता कितनी है ? संख्यात है, क्योंकि महाव्रतधारी जीव मनुष्यपर्याप्तकोंको छोड़कर अन्यत्र नहीं पाये जाते। तप:कर्मकी प्रदेशार्थता असंख्यात है, क्योंकि संख्यात महाव्रतधारियोंको घनलोकके द्वारा गुणित करनेपर संख्यात घनलोक उपलब्ध होते हैं।

क्रियाकर्मकी द्रव्यार्थता असंख्यात हैं क्योंकि पल्योपमके असंख्यातवें भागमात्र सम्यग्दृष्टि-योंमें ही क्रियाकर्म पाया जाता है। और इसकी प्रदेशार्थता भी असंख्यात है, क्योंकि पल्योपमके असंख्यातवें भागमात्र सम्यग्दृष्टि राशिद्वारा घनलोकके गुणित करने पर असंख्यात लोकोंकी उत्पत्ति होती है। इसी प्रकार काययोगी, औदारिककाययोगी, औदारिकमिश्रकाययोगी, कार्मणकाययोगी, अचक्षुदर्शनी, भव्यसिद्धिक, आहारक और अनाहारक जीवोंका कथन करना चाहिये। इतनी विशेषता है कि औदारिकमिश्रकाययोगियोंमें क्रियाकर्मकी द्रव्यार्थता संख्यात है।

नरकगतिमें नारकियोंमें प्रयोगकर्म, समवधानकर्म और क्रियाकर्मकी द्रव्यार्थता और प्रदेशार्थता कितनी है ? असंख्यात हैं। इतनी विशेषता है कि समवधान कर्मकी प्रदेशार्थता अनन्त हैं, क्योंकि जगप्रतरके असंख्यातवें भागप्रमाण राशिद्वारा अभव्योंसे अनन्तगुणे और सिद्धोंके अनन्तवेंभागप्रमाण कर्मप्रदेशोंको गुणित करने पर अनन्तराशिकी उत्पत्ति होती है। इसी प्रकार प्रथम पृथिवीमें कथन करना चाहिये। दूसरीसे लेकर सातवीं पृथिवीतक इसी प्रकार कथन करना चाहिये। इतनी विशेषता है कि इन पृथिवियोंमें जगश्रेणिके असंख्यातवें भागसे घनलोकके

---

१ ताप्रतौ 'अण्णस्स' इति पाठः। २ ताप्रतौ 'संखेज्जा' आ-प्रतौ 'पदेसट्ठदाए संखेज्जा' ताप्रतौ 'पदेसट्ठदा संखेज्जा' इति पाठः। ३ ताप्रतौ 'कायजोगिओरालियमिस्स' इति पाठः। ४ अ-ताप्रत्योः 'असंखेज्जा' इति पाठः।

पओअकम्म दव्वट्ठदाए सेडीए असंखेज्जदिभागत्तुवलंभादो । पलिदोवमस्स असंखेज्जदिभागेण घणलोगे गुणिदे किरियाकम्मपदेसट्ठदा होदि; पलिदोवमअसंखेज्जदिभागमेत्तदव्वट्ठदाए तत्थुवलंभादो । सेडीए असंखेज्जदिभागेण एगजीवकम्मपदेसेसु कयमज्झिमपमाणेसु गुणिदेसु समोदाणपदेसट्ठदा होदि, सेडीए असंखेज्जदिभागमेत्तदव्वट्ठदाए तत्थुवलंभादो । 'प्रक्षेपकः संक्षेपेण' एदेण सुत्तेण एत्थ समकरणं कायव्वं ।

तिरिक्खगदीए तिरिक्खेसु ओघं । णवरि इरियावथ-तवोकम्माणि णत्थि; तत्थ महव्वयाणमसंभवादो । पंचिंदियतिरिक्खतिगेसु पओअकम्म-समोदाणकम्माणि दव्वट्ठदाए पदरस्स असंखेज्जदि भागो । पओअकम्मपदेसट्ठदा पदरस्स असंखेज्जदिभागमेत्ता घणलोगा । समोदाणकम्मपदेसट्ठदा अणंता; पदरस्स असंखेज्जदि भागेण एगजीवसमकरणुप्पण्णकम्मपदेसेसु गुणिदेसु अणंतरासिसमुप्पत्तीदो । आधाकम्मदव्वट्ठदा[1] अणंता; एगजीवस्स एगसमयणिज्जिण्णतप्पाओग्गाणंतओरालियणोकम्मवग्गणाणं गहणादो । पदेसट्ठदा[2] वि अणंता; आधाकम्मदव्वट्ठदाए[3] अभवसिद्धिएहि अणंतगुणेहि सिद्धाणमणंतिमभागेहि णोकम्मपदेसेहि गुणिदाए अणंतरासिसमुप्पत्तीदो । किरियाकम्मदव्वट्ठदा पलिदोवमस्स असंखेज्जदि भागो । पदेसट्ठदा असंखेज्जा लोगा; पलिदोवमस्स असंखेज्जदि भागेण

गुणित करनेपर प्रयोगकर्मकी प्रदेशार्थता होती है, क्योंकि वहां पर प्रयोग कर्मकी द्रव्यार्थता जगश्रेणिके असंख्यातवें भागमात्र पाई जाती है । और पल्योपमके असंख्यातवें भागसे घनलोकके गुणित करनेपर क्रियाकर्मकी प्रदेशार्थता होती है, क्योंकि वहां पर क्रियाकर्मकी द्रव्यार्थता पल्योपमके असंख्यातवें भागमात्र पाई जाती है । और जगश्रेणिके असंख्यातवें भागसे मध्यम प्रमाणरूपसे ग्रहण किये गये एक जीवके कर्मप्रदेशोंके गुणित करने पर समवधानकर्मकी प्रदेशार्थता होती है, क्योंकि वहां पर समवधान कर्मकी द्रव्यार्थता जगश्रेणिके असंख्यातवें भागमात्र पाई जाती है । 'प्रक्षेपकः संक्षेपेण' इस सूत्रद्वारा यहां पर समीकरण कर लेना चाहिये ।

तिर्यंचगतिमें तिर्यंचोंमें ओघके समान द्रव्यार्थता और प्रदेशार्थता होती है । इतनी विशेषता है कि यहां पर ईर्यापथकर्म और तपकर्म नहीं होते, क्योंकि इन जीवोंके महाव्रतका पाया जाना सम्भव नहीं है । पंचेन्द्रिय तिर्यंचत्रिकमें प्रयोगकर्म और समवधानकर्म द्रव्यार्थताकी अपेक्षा जगप्रतरके असंख्यातवें भागप्रमाण हैं । प्रयोगकर्मकी प्रदेशार्थता जगप्रतरके असंख्यातवें भागमात्र घनलोक है । समवधानकर्मकी प्रदेशार्थता अनन्त है, क्योंकि जगप्रतरके असंख्यातवें भागसे एक जीवके समीकरणद्वारा उत्पन्न हुए कर्मप्रदेशोंके गुणित करने पर अनन्त राशिकी उत्पत्ति होती है । अधःकर्मकी द्रव्यार्थता अनन्त है, क्योंकि एक जीवके एक समयमें निर्जीर्ण होनेवाले और निर्जराके योग्य अनन्त औदारिक नोकर्मवर्गणाओंका इसके द्वारा ग्रहण किया गया है । इसकी प्रदेशार्थता भी अनन्त होती है, क्योंकि अधःकर्मकी द्रव्यार्थता द्वारा अभव्योंसे अनन्तगुणे और सिद्धोंके अनन्तवें भागमात्र नोकर्मप्रदेशोंके गुणित करनेपर अनन्त राशिकी उत्पत्ति होती है । इनके क्रियाकर्मकी द्रव्यार्थता पल्योपमके असंख्यातवें भागमात्र है, और प्रदेशार्थता असंख्यात

१ ताप्रतौ 'दव्वठ्ठदाए' इति पाठः । २ अ-आप्रत्योः 'पदेसट्ठदाए' इति पाठः ।
३ ताप्रतौ 'दव्वट्ठदा' इति पाठः ।

घणलोगे गुणिदे पदेसट्ठदुप्पत्तीदो। एवं पंचिंदियतिरिक्खअपज्जत्ताणं पि वत्तव्वं। णवरि किरियाकम्मं णत्थि। एवं बीइंदिय-तीइंदिय-चउरिंदियाणं तेसिं पज्जत्तापज्जत्ताणं पंचिंदिय अपज्जत्त-तसअपज्जत्त-पुढवी-आउ-तेउ-वाउ-सासणसम्माइट्ठि-सम्मामिच्छाइट्ठीणं पि वत्तव्वं। णवरि अप्पप्पणो पदेसट्ठदागुणगारो जाणिदव्वो।

मणुसगदीए मणुस्सेसु पओअकम्म-समोदाणकम्माणं दव्वट्ठदा सेडीए असंखेज्जदि-भागो। पओअकम्मपदेसट्ठदा असंखेज्जा लोगा। कुदो? घणलोगेण सेडीए असंखेज्जदि-भागेण गुणिदे पओअकम्मपदेसट्ठदापमाणुप्पत्तीदो। समोदाणकम्मपदेसट्ठदा अणंता; सेडीए असंखेज्जदिभागेण समयाविरोहिकम्मपदेसेसु गुणिदेसु समोदाणकम्मपदेसट्ठदुप्पत्तीदो। सेसचत्तारि पदा ओघं। णवरि किरियाकम्मदव्वट्ठदा संखेज्जा[1]। पदेसट्ठदा असंखेज्जा; संखेज्जजीवेहि घणलोगे गुणिदे तप्पदेसट्ठदुप्पत्तीदो। एवं मणुसपज्जत्त-मणुसिणीसु। णवरि पओअकम्मसमोदाणकम्मदव्वट्ठदा संखेज्जा। पओअकम्मपदेसट्ठदा संखेज्जा लोगा। समोदाणकम्मपदेसट्ठदा[2] अणंता; संखेज्जपरूवेहि एगपक्खेवकम्मपदेसेसु गुणिदेसु समोदाणकम्मपदेसट्ठदुप्पत्तीदो। मणुसअपज्जत्ताणं पंचिंदियतिरिक्खअपज्जत्तभंगो। पंचिंदियदुगस्स मणुस्सोघं। णवरि किरियाकम्म-

---

लोकप्रमाण हैं, क्योंकि पल्योपमके असंख्यातवें भागसे घनलोकके गुणित करनेपर यहां क्रियाकर्मकी प्रदेशार्थता उत्पन्न होती है। इसी प्रकार पंचेन्द्रियतिर्यंच अपर्याप्तकोंके भी कथन करना चाहिये। इतनी विशेषता है कि इनके क्रियाकर्म नहीं होता। इसी प्रकार द्वीन्द्रिय, त्रीन्द्रिय, चतुरिन्द्रिय, इनके पर्याप्त और अपर्याप्त, पंचेन्द्रिय अपर्याप्त, त्रसअपर्याप्त, पृथिवीकायिक, जलकायिक, अग्निकायिक, वायुकायिक, सासादन सम्यग्दृष्टि और सम्यग्मिथ्यादृष्टि जीवोंका भी कथन करना चाहिये। इतनी विशेषता है कि अपनी अपनी प्रदेशार्थताका गुणकार जानना चाहिये।

मनुष्यगतिमें मनुष्योंमें प्रयोगकर्म और समवधानकर्मकी द्रव्यार्थता जगश्रेणिके असंख्यातवें भाग प्रमाण है। प्रयोगकर्मकी प्रदेशार्थता असंख्यात लोकप्रमाण हैं, क्योंकि घनलोकसे जगश्रेणिके असंख्यातवें भागको गुणित करने पर प्रयोगकर्मकी प्रदेशार्थताका प्रमाण उत्पन्न होता है। समवधानकर्मकी प्रदेशार्थता अनन्त है, क्योंकि जगश्रेणिके असंख्यातवें भागसे यथाशास्त्र कर्मप्रदेशोंके गुणित करने पर समवधान कर्मकी प्रदेशार्थता उत्पन्न होती है। शेष चार पद ओघके समान हैं। इतनी विशेषता है कि क्रियाकर्मकी द्रव्यार्थता संख्यात हैं और प्रदेशार्थता असंख्यात है, क्योंकि संख्यात जीवोंसे घनलोकके गुणित करने पर क्रियाकर्मकी प्रदेशार्थता उत्पन्न होती है। इसी प्रकार मनुष्यपर्याप्त और मनुष्यनियोंमें जानना चाहिये। इतनी विशेषता है कि प्रयोगकर्म और समवधानकर्मकी द्रव्यार्थता संख्यात है। तथा प्रयोगकर्मकी प्रदेशार्थता संख्यात लोकप्रमाण है, और समवधान कर्मकी प्रदेशार्थता अनन्त है, क्योंकि संख्यात अंकोंसे एक जीवके प्रति प्राप्त कर्मप्रदेशोंके गुणित करने पर समवधानकर्मकी प्रदेशार्थता उत्पन्न होती है। मनुष्य अपर्याप्तकोंका भंग पंचेन्द्रिय तिर्यंच अपर्याप्तकोंके समान है।

---

१ अ-प्रतौ 'असंखेज्जा' इति पाठः। २ आ-ताप्रत्योः 'समोदाणपदेसट्ठदा' इति पाठः।

दव्व-पदेसट्ठदाणमोघभंगो। पओअकम्मादिपदाणं पदेसट्ठदाए गुणगारो जाणिदूण भाणिदव्वो। एवं तसदोण्णि-पंचमण-पंचवचिजोगि-इत्थि-पुरिसवेद-आभिणि-सुद-ओहिणाण-चक्खुदंसण-ओहिदंसण-तेउ-पम्म-सुक्कलेस्सिय-सम्माइट्ठि-खइयसम्माइट्ठि- वेदगसम्माइट्ठिउवसमसम्माइट्ठि-सण्णि त्ति। णवरि अप्पप्पणो पदाणि पदेसट्ठदागुणगारं च जाणिदूण वत्तव्वं। देवगदीए देवेसु भवणवासिय-वाणवेंतर-जोदिसियप्पहुडि जाव सोधम्मीसाणे त्ति ताव णारगभंगो। सणक्कुमारप्पहुडि जाव अवराइदे त्ति ताव विदियपुढविभंगो। वेउव्विय-वेउव्वियमिस्स-कायजोगीणं देवभंगो। सव्वट्ठे सव्वपदाणं मणुस्सपज्जत्तभंगो।

इंदियाणुवादेण एइंदिएसु सव्वपदा अणंता। एवं सव्वएइंदिय-सव्ववणप्फकाइय-मदि-सुदअण्णाणि-अभवसिद्धि-मिच्छाइट्ठि-असण्णीणं वत्तव्वं। बादरवणप्फदिपत्तेयसरीराणं बादर-पुढविकायभंगो। विभंगणाणीणं देवभंगो। णवरि किरियाकम्मं णत्थि। आहार-आहार-मिस्सकायजोगीसु पओअकम्म-तवोकम्म-किरियाकम्माणं दव्वट्ठदा संखेज्जा। पदेसट्ठदा संखेज्जा लोगा। समोदाणकम्मदव्वट्ठदा संखेज्जा। तस्सेव पदेसट्ठदा अणंता, संखेज्जरूवेहि[2] एगजीवकम्मपदेसु गुणिदेसु तस्स पदेसट्ठदुप्पत्तीदो। आधाकम्मदव्वट्ठ-पदेसट्ठदा अणंता। एवं

पंचेन्द्रियद्विकका कथन सामान्य मनुष्योंके समान है। इतनी विशेषता है कि इनमें क्रियाकर्मकी द्रव्यार्थता और प्रदेशार्थताका कथन ओघके समान है। यहां प्रयोगकर्म आदि पदोंकी प्रदेशार्थताका गुणकार जानकर कहना चाहिये। इसी प्रकार त्रसद्विक, पांच मनोयोगी, पांच वचनयोगी, स्त्रीवेदी, पुरुषवेदी, आभिनिबोधिकज्ञानी, श्रुतज्ञानी, अवधिज्ञानी, चक्षुदर्शनी, अवधिदर्शनी, पीतलेश्यावाले, पद्मलेश्यावाले, शुक्लेश्यावाले, सम्यग्दृष्टि, क्षायिकसम्यग्दृष्टि, वेदक-सम्यग्दृष्टि, उपशमसम्यग्दृष्टि और संज्ञी जीवोंके जानना चाहिये। इतनी विशेपता है कि अपने अपने पदों और प्रदेशार्थताके गुणकारका जानकर कथन करना चाहिये।

देवगतिमें देवोंमें भवनवासी, वानव्यन्तर और ज्योतिपियोंसे लेकर सौधर्म और ऐशान कल्प तकके देवोंमें वहां सम्भव पदोंकी द्रव्यार्थता और प्रदेशार्थताका कथन नारकियोंके समान हैं। सनत्कुमारसे लेकर अपराजित तकके देवोंमें वहां सम्भव पदोंकी द्रव्यार्थता और प्रदेशार्थताका कथन दूसरी पृथिवीके समान है। वैक्रियिककाययोगी और वैक्रियिकमिश्रकाययोगियोंका कथन देवोंके समान हैं। सर्वार्थसिद्धिमें सब पदोंका कथन मनुष्य पर्याप्तकोंके समान है।

इन्द्रियमार्गणाके अनुवादसे एकेन्द्रियोंमें सब पद अनन्त हैं। इसी प्रकार सब एकेन्द्रिय, सब वनस्पतिकायिक, मतिअज्ञानी, श्रुताज्ञानी, अभव्यसिद्धिक, मिथ्यादृष्टि और असंज्ञियोंके कहना चाहिये। बादर वनस्पतिकायिक प्रत्येकशरीर जीवोंका भंग बादर पृथिवीकायिक जीवोंके समान है।

विभंगज्ञानियोंका कथन देवोंके समान है। इतनी विशेपता है कि इनके क्रियाकर्म नहीं होता। आहारककाययोगी और आहारकमिश्रकाययोगी जीवोंके प्रयोगकर्म, तपःकर्म और क्रियाकर्मकी द्रव्यार्थता संख्यात है, और प्रदेशार्थता संख्यात लोक प्रमाण है। समवधानकर्मकी द्रव्यार्थता संख्यात है और उसीकी प्रदेशार्थता अनन्त है, क्योंकि संख्यात रूपोंसे एक जीवके प्रदेशोंके गुणित करनेपर उसकी प्रदेशार्थता उत्पन्न होती है। तथा अधःकर्मकी द्रव्यार्थता और प्रदेशार्थता अनन्त

१ ताप्रतौ 'किरियाकम्मपदेस-' इति पाठः। २ अप्रतौ 'संखेज्जारूवेहि' इति पाठः।

संजद-सामाइय-छेदोवट्ठावण-परिहारविसुद्धि-सुहुमसांपराइय-संजदासंजदेसु वत्तव्वं । णवरि अप्पप्पणो पदाणं पमाणं जाणिदूण वत्तव्वं । अवगदवेदेसु पओअ-समोदाण-इरियावह-तवोकम्माणं दव्वट्ठदा संखेज्जा । पओअ-तवोकम्माणं पदेसट्ठदा संखेज्जा लोगा । समोदाण-इरियावहकम्माणं पदेसट्ठदा अणंता । आधाकम्मस्स दव्वट्ठ-पदेसट्ठदा अणंता । एवमकसाइ-केवलणाणि-केवलदंसणीणं पि वत्तव्वं । णवुंसयवेदाणमचक्खु० भंगो । णवरि इरियावहकम्मं णत्थि । एवं कोधादिचत्तारिकसायाणं पि वत्तव्वं । मणपज्जवणाणीणं संजदभंगो । एवं दव्वपमाणं समत्तं ।

खेत्ताणुगमेण दुविहो णिद्देसो ओघेण आदेसेण य । ओघेण पओअकम्म-समोदाणकम्म-आधाकम्मदव्वट्ठ-पदेसट्ठदाओ केवडि खेत्ते ? सव्वलोगे । इरियावह-तवोकम्माणं दव्वट्ठ-पदेसट्ठदाओ केवडि खेत्ते ? लोगस्स असंखेज्जदिभागे असंखेज्जेसु वा भागेसु सव्वलोगे वा । किरियाकम्मदव्वट्ठ [-पदेसट्ठ-] दा केवडि खेत्ते ? लोगस्स असंखेज्जदिभागे । एवं कायजोगि-भवसिद्धियाणं पि वत्तव्वं । एवमोरालियकायजोगि-ओरालियमिस्सकायजोगि-णवुंसयवेद-चत्तारिकसाय-अचक्खुदंसणि-आहारीणं पि वत्तव्वं । णवरि केवलिभंगो णत्थि ।

है । इसी प्रकार संयत, सामायिकसंयत, छेदोपस्थापनासंयत, परिहारविशुद्धिसंयत, सूक्ष्मसांपरायिकसंयत और संयतासंयत जीवोंका कथन करना चाहिये । इतनी विशेषता है कि अपने अपने पदोंका प्रमाण जानकर कहना चाहिये ।

अपगतवेदियोंमें प्रयोगकर्म, समवधानकर्म, ईर्यापथकर्म और तपःकर्मकी द्रव्यार्थता संख्यात है । प्रयोगकर्म और तपःकर्मकी प्रदेशार्थता संख्यात लोक प्रमाण है । समवधानकर्म और ईर्यापथकर्मकी प्रदेशार्थता अनन्त है । तथा अधःकर्मकी द्रव्यार्थता और प्रदेशार्थता अनन्त है । इसी प्रकार अकषायी, केवलज्ञानी और केवलदर्शनियोंका भी कथन करना चाहिये । नपुंसकवेदियोंका कथन अचक्षुदर्शनवालोंके समान है । इतनी विशेषता है कि यहां ईर्यापथकर्म नहीं होता । इसी प्रकार क्रोधादि चार कषायवालोंका कथन करना चाहिये । मनःपर्ययज्ञानियोंका कथन संयतोंके समान है । इस प्रकार द्रव्यप्रमाणानुगमका कथन समाप्त हुआ ।

क्षेत्रानुगमकी अपेक्षा निर्देश दो प्रकारका है—ओघनिर्देश और आदेशनिर्देश । ओघसे प्रयोगकर्म, समवधानकर्म और अधःकर्मकी द्रव्यार्थता और प्रदेशार्थताका कितना क्षेत्र है ? सब लोक क्षेत्र है । ईर्यापथकर्म और तपःकर्मकी द्रव्यार्थता और प्रदेशार्थताका कितना क्षेत्र है ? लोकका असंख्यातवां भाग, असंख्यात बहुभाग और सब लोक क्षेत्र है । क्रियाकर्मकी द्रव्यार्थता और प्रदेशार्थताका कितना क्षेत्र है ? लोकका असंख्यातवां भाग क्षेत्र है । इसी प्रकार काययोगी और भव्योंके भी कथन करना चाहिये । इसी प्रकार औदारिककाययोगी, औदारिकमिश्रकाययोगी, नपुंसकवेदवाले, चारों कषायवाले, अचक्षुदर्शनवाले और आहारकोंके भी कथन करना चाहिये । इतनी विशेषता है कि इन मार्गणाओंमें केवलिजिनोंका भंग नहीं पाया जाता । कार्मण-

१ ताप्रतौ 'एवं सामाइय' इति पाठः । २ अप्रतौ 'तवकम्माणं पदेसट्ठदा' इति पाठः ।

कम्मइयकायजोगीसु एवं चेव । णवरि इरियावह-तवोकम्माणं दव्वट्ठ-पदेसट्ठदाओ केवडि खेत्ते ? लोगस्स असंखेज्जेसु वा भागेसु सव्वलोगे वा । एवमणाहारीणं । णवरि इरियावह-तवोकम्माणं दव्वट्ठ-पदेसट्ठदाओ केवडि खेत्ते ? लोगस्स असंखेज्जेसु वा भागेसु सव्वलोगे वा । णवरि तवोकम्मस्स लोगस्स असंखेज्जदिभागे [वि] । कुदो ? अजोगिजिणं पडुच्च तदुवलंभादो[1] ।

आदेसेण णिरयगदीए णेरइएसु सव्वपदाणं दव्वट्ठ-पदेसट्ठदाओ केवडि खेत्ते ? लोगस्स असंखेज्जदिभागे । एवं सव्वणिरय-पंचिंदियतिरिक्खतिग-पंचिंदियतिरिक्खअपज्जत्त-मणुसअपज्जत्त-सव्वदेव-सव्वविगलिंदिय-पंचिंदियअपज्जत्त-तसअपज्जत्त-बादरपुढविपज्जत्त-बादरआउपज्जत्त-बादर-तेउपज्जत्त- [बादरवाउपज्जत्त-] बादरवणप्फदिपत्तेयसरीरपज्जत्त-बादरणिगोदपदिट्ठिदपज्जत्त-पंचमणजोगि-पंचवचिजोगि-वेउव्विय-वेउव्वियमिस्स-आहार-आहारमिस्स-- इत्थि-- पुरिसवेद-विभंगणाणि-आभिणिबोहिय-सुद-ओहि-मणपज्जवणाणि-सामाइय-छेदोवट्ठावणसुद्धिसंजद-परि-हारविसुद्धिसंजद-सुहुमसांपराइयसंजद-संजदासंजद-चक्खुदंसणि-ओहिदंसणि-तेउ-पम्मलेस्सा-वेदगसम्माइट्ठि-उवसमसम्माइट्ठि-सासणसम्माइट्ठि-सम्मामिच्छाइट्ठि-सण्णीणं वत्तव्वं । णवरि बादरवाउपज्जत्त० लोगस्स संखेज्जदिभागे[2] । आधाकम्मं सव्वमग्गणासु सव्वलोगे त्ति वत्तव्वं ।

कामयोगवालोंके इसी प्रकार कथन करना चाहिये । इतनी विशेपता है कि इनमें ईर्यापथकर्म और तपःकर्मकी द्रव्यार्थता और प्रदेशार्थताका कितना क्षेत्र है ? लोकका असंख्यात बहुभाग और सब लोक क्षेत्र है । इसी प्रकार अनाहारकोंके भी कथन करना चाहिये । इतनी विशेपता है कि ईर्यापथकर्म और तपःकर्मकी द्रव्यार्थता और प्रदेशार्थताका कितना क्षेत्र है ? लोकका असंख्यात बहुभाग और सब लोक क्षेत्र है । उसमें भी इतनी विशेपता है कि इनके तपःकर्मका लोकके असंख्यातवें भाग प्रमाण भी क्षेत्र है, क्योंकि अयोगी जिनकी अपेक्षा इतना क्षेत्र उपलब्ध होता है ।

आदेशकी अपेक्षा नरकगतिमें नारकियोंमें सब पदोंकी द्रव्यार्थता और प्रदेशार्थताका कितना क्षेत्र है ? लोकका असंख्यातवां भाग क्षेत्र है । इसी प्रकार सब नारकी, पंचेन्द्रिय तिर्यंच-त्रिक, पंचेन्द्रिय तिर्यंच अपर्याप्त, मनुष्य अपर्याप्त, सब देव, सब विकलेन्द्रिय, पंचेन्द्रिय अपर्याप्त, त्रस अपर्याप्त, बादर पृथिवीकायिक पर्याप्त, बादर जलकायिक पर्याप्त, बादर अग्निकायिक पर्याप्त, बादर वायुकायिक पर्याप्त, बादर वनस्पतिकायिक प्रत्येकशरीर पर्याप्त, बादर निगोदप्रतिष्ठित पर्याप्त, पांचों मनोयोगी, पांचों वचनयोगी, वैक्रियिककाययोगी, वैक्रियिकमिश्रकाययोगी, आहारक-काययोगी, आहारकमिश्रकाययोगी, स्त्रीवेदी, पुरुपवेदी, विभंगज्ञानी, आभिनिबोधिकज्ञानी, श्रुतज्ञानी, अवधिज्ञानी, मनःपर्ययज्ञानी, सामायिकसंयत, छेदोपस्थापनाशुद्धिसंयत, परिहारविशुद्धिसंयत, सूक्ष्मसाम्परायिकसंयत, संयतासंयत, चक्षुदर्शनी, अवधिदर्शनी, पीतलेश्यक, पद्मलेश्यक, वेदक-सम्यग्दृष्टि, उपशमसम्यग्दृष्टि, सासादनसम्यग्दृष्टि, सम्यग्मिथ्यादृष्टि और संज्ञी मार्गणावाले जीवोंके कहना चाहिये । इतनी विशेपता है कि बादर वायुकायिक पर्याप्तकोंमें सब पदोंकी द्रव्यार्थता और प्रदेशार्थताका क्षेत्र लोकका संख्यातवां भाग है । तथा अधःकर्मका क्षेत्र सब मार्गणाओंमें सब

[1] ताप्रतौ 'तदुवलंभादो' इति पाठः । [2] ताप्रतौ 'असंखेज्जदिभागे' इति पाठः ।

तिरिक्खगदीए तिरिक्खेसु अप्पप्पणो पदाणमोघभंगो। एवमसंजद-किण्ण-णील-काउ-लेस्सियाणं पि वत्तव्वं। मणुसगदीए मणुस-मणुसपज्जत्त-मणुसिणीसु पओअकम्म-समोदाणकम्म-इरियावहकम्म-तवोकम्माणं दव्वट्ठ-पदेसट्ठदा लोगस्स असंखेज्जदिभागे असंखेज्जेसु वा भागेसु सव्वलोगे वा। आधाकम्मदव्वट्ठ-पदेसट्ठदा सव्वलोगे। किरियाकम्मदव्वट्ठ-पदेसट्ठदा लोगस्स असंखेज्जदिभागे। एवं पंचिंदियदोण्णि-सव्वतसदोण्णि। एइंदिएसु सव्वपदा[1] सव्वलोगे। एवं बादरपुढविअपज्जत्त-बादरआउअपज्जत्त-बादरतेउअपज्जत्त-बादरवाउअपज्जत्त-बादरवणप्फदिपत्तेय-सरीरअपज्जत्त-बादरणिगोदपज्जत्तापज्जत्ताणं। तेसिं चेव पंचण्णं कायाणं सुहुमपज्जत्तापज्जत्ताणं दोण्णिअण्णाणि-अभवसिद्धि-मिच्छाइट्ठि-असण्णीणं च वत्तव्वं। अवगदवेदाणं सव्वपदा लोगस्स असंखेज्जदिभागे असंखेज्जेसु वा भागेसु सव्वलोगे वा। एवं केवलणाणि-केवलदंसणि-जहाक्खादसंजदाणं[2] वत्तव्वं। एवं संजदाणं। णवरि किरियाकम्मं लोगस्स असंखेज्जदिभागे। एवं सम्माइट्ठि-खइयसम्माइट्ठीणं वत्तव्वं। एवं खेत्तं समत्तं।

पोसणाणुगमेण दुविहो णिद्देसो—ओघेण आदेसेण य। तत्थ ओघेण सव्वपदाणमदीद-

लोकप्रमाण है, ऐसा कहना चाहिये।

तिर्यंचगतिमें तिर्यंचोंमें अपने अपने पदोंका क्षेत्र ओघके समान हैं। इसी प्रकार असंयत, कृष्णलेश्यावाले, नील लेश्यावाले और कपोत लेश्यावाले जीवोंके भी कहना चाहिये।

मनुष्य गतिमें मनुष्य, मनुष्य पर्याप्त और मनुष्यनियोंमें प्रयोगकर्म, समवधानकर्म, ईर्यापथकर्म और तपःकर्मकी द्रव्यार्थता और प्रदेशार्थताका क्षेत्र लोकका असंख्यातवां भाग, लोकका असंख्यात बहुभाग और सब लोक है। अधःकर्मकी द्रव्यार्थता और प्रदेशार्थताका क्षेत्र सब लोक है। तथा क्रियाकर्मकी द्रव्यार्थता और प्रदेशार्थताका क्षेत्र लोकका असंख्यातवां भाग है। इसी प्रकार पंचेन्द्रियद्विक और त्रसद्विकके सब पदोंकी द्रव्यार्थता और प्रदेशार्थताका क्षेत्र जानना चाहिये।

एकेन्द्रियोंमें सब पदोंका क्षेत्र सब लोक है। इसी प्रकार बादर पृथिवीकायिक अपर्याप्त, बादर जलकायिक अपर्याप्त, बादर अग्निकायिक अपर्याप्त, बादर वायुकायिक अपर्याप्त, बादर वनस्पतिकायिक प्रत्येकशरीर अपर्याप्त, बादर निगोद पर्याप्त, बादर निगोद अपर्याप्त, वे ही पांचों स्थावर कायिक तथा उनके सूक्ष्म, पर्याप्त और अपर्याप्त, दोनों अज्ञानी, अभव्यसिद्धिक, मिथ्यादृष्टि और असंज्ञियोंके कहना चाहिये।

अपगतवेदवालोंमें सब पदोंका लोकका असंख्यातवां भाग, लोकका असंख्यात बहुभाग, और सब लोक क्षेत्र है। इसी प्रकार केवलज्ञानी, केवलदर्शनी और यथाख्यातविशुद्धिसंयत जीवोंके कहना चाहिये। तथा इसी प्रकार संयतोंके कहना चाहिये। किन्तु इतनी विशेषता है कि इनके क्रियाकर्मका क्षेत्र लोकका असंख्यातवां भाग है। इसी प्रकार सम्यग्दृष्टि और क्षायिक-सम्यग्दृष्टियोंके कहना चाहिये। इस प्रकार क्षेत्र अनुयोगद्वारका कथन समाप्त हुआ।

स्पर्शनानुगमकी अपेक्षा निर्देश दो प्रकारका है—ओघनिर्देश और आदेशनिर्देश। ओघसे सब पदोंका अतीत और वर्तमानकी अपेक्षा स्पर्शन क्षेत्रके समान है। इतनी विशेषता है

१ ताप्रतौ 'दोण्णि-एइंदिं सव्वपदा' इति पाठः। २ अ-काप्रत्योः 'जहाक्खादसंजदासंजदाणं' इति पाठः।

वट्टमाणेण खेत्तभंगो । णवरि किरियाकम्मस्स अदीदेण अट्ठ चोद्दसभागा देसूणा पोसणं[1] । णिरयगदीए णेरइएसु पओअकम्म-समोदाणकम्माणं वट्टमाणेण खेत्तभंगो । अदीदेण मारणंतिय-उववादेण छ चोद्दसभागा वा देसूणा । किरियाकम्मस्स वट्टमाणेण खेत्तभंगो । अदीदेण वि खेत्तभंगो चेव । एवं सत्तमाए पुढवीए । णवरि किरियाकम्मस्स मारणंतिय-उववादं णत्थि । पढमाए पुढवीए अदीद-वट्टमाणेण खेत्तभंगो । विदियादि जाव छट्टि त्ति वट्टमाणेण सव्वदाणं खेत्तभंगो । अदीदेण पओगकम्म-समोदाणकम्माणं मारणंतिय-उववादेहि एक्क-बे-तिण्णि-चत्तारि-पंचचोद्दसभागा[2] देसूणा । किरियाकम्मस्स अदीद-वट्टमाणेण खेत्तभंगो ।

तिरिक्खगदीए तिरिक्खेसु पओअकम्म-समोदाणकम्म-आधाकम्माणमदीद-वट्टमाणेण सव्वलोगो । किरियाकम्मस्स वट्टमाणेण खेत्तभंगो । अदीदेण मारणंतियपदस्स छ चोद्दसभागा देसूणा । पंचिंदियतिरिक्खतिगस्स सव्वपदाणं वट्टमाणेण लोगस्स असंखेज्जदिभागो । अदीदेण सव्वलोगो । णवरि आधाकम्मस्स अदीद-वट्टमाणेण सव्वलोगो । किरियाकम्मस्स अदीदेण तिरिक्खोघो । पंचिंदियतिरिक्खअपज्जत्त० पओगकम्म-समोदाणकम्माणं वट्टमाणेण लोगस्स असंखेज्जदिभागो । अदीदेण सव्वलोगो । आधाकम्मस्स अदीद-वट्टमाणेण सव्वलोगो ।

कि क्रियाकर्मका स्पर्शन अतीतकी अपेक्षा कुछ कम आठ बटे चौदह भाग प्रमाण है ।

नरकगतिमें नारकियोंमें प्रयोगकर्म और समवधानकर्मका स्पर्शन वर्तमानकी अपेक्षा क्षेत्रके समान है । अतीत कालका आश्रय कर मारणान्तिक और उपपाद पदकी अपेक्षा कुछ कम छह बटे चौदह भागप्रमाण है । क्रियाकर्मका वर्तमान स्पर्शन क्षेत्रके समान है । अतीत स्पर्शन भी क्षेत्रके समान ही है । इसी प्रकार सातवी पृथिवीमें जानना चाहिये । इतनी विशेषता है कि यहां क्रियाकर्मका मारणान्तिक और उपपाद पद नहीं होता ।

पहली पृथिवीमें अतीत और वर्तमानकी अपेक्षा क्षेत्रके समान स्पर्शन है । दूसरीसे लेकर छठवीं पृथिवी तक वर्तमानकी अपेक्षा सब पदोंका क्षेत्रके समान स्पर्शन है । तथा अतीतकी अपेक्षा प्रयोगकर्म और समवधानकर्मका मारणान्तिक समुद्घात और उपपाद पदकी दृष्टिसे क्रमशः कुछ कम एक बटे चौदह भाग, कुछ कम दो बटे चौदह भाग, कुछ कम तीन बटे चौदह भाग, कुछ कम चार बटे चौदह भाग और कुछ कम पांच बटे चौदह भाग प्रमाण स्पर्शन है । क्रियाकर्मका अतीत और वर्तमानकी अपेक्षा स्पर्शन क्षेत्रके समान है ।

तिर्यंच गतिमें तिर्यंचोंमें प्रयोगकर्म, समवधानकर्म और अधःकर्मका अतीत और वर्तमान स्पर्शन सब लोक है । क्रियाकर्मका वर्तमान स्पर्शन क्षेत्रके समान है । मारणान्तिक पदकी अपेक्षा अतीत स्पर्शन कुछ कम छह बटे चौदह भाग प्रमाण है । पंचेन्द्रिय तिर्यञ्चत्रिकके सब पदोंका वर्तमान स्पर्शन लोकके असंख्यातवें भाग प्रमाण है । अतीत स्पर्शन सब लोक है । इतनी विशेषता है कि अधःकर्मका अतीत और वर्तमान स्पर्शन सब लोक है । क्रियाकर्मका अतीत स्पर्शन सामान्य तिर्यंचोंके समान है । पंचेन्द्रिय तिर्यंच अपर्याप्तके प्रयोगकर्म और समवधान कर्मका वर्तमान स्पर्शन लोकके असंख्यातवें भाग प्रमाण है । अतीत स्पर्शन सब लोक है । अधःकर्मका अतीत और वर्तमान स्पर्शन सब लोक है ।

१ आप्रतौ 'पोसणं ३२' इति पाठः । २ ताप्रतौ 'पंचछचोद्दस' इति पाठः ।

मणुसगदीए मणुस-मणुसपज्जत्त-मणुसिणीसु सव्वपदाणमदीद-वट्टमाणेण खेत्तभंगो। णवरि पओअकम्म-समोदाणकम्माणमदीदेण सव्वलोगो। मणुस्सअपज्जत्ताणं पंचिंदियतिरिक्ख-अपज्जत्तभंगो।

देवगदीए देवेसु पओअकम्म-समोदाणकम्म-किरियाकम्माणं वट्टमाणेण लोगस्स असंखेज्जदिभागो। अदीदेण अट्ठ-णव चोद्दसभागा वा देसूणा। णवरि किरियाकम्मस्स अदीदेण अट्ठ चोद्दसभागा वा देसूणा। एवं भवणवासिय-वाणवेंतर-जोदिसिय-सोहम्मीसाणाणं वत्तव्वं। सणक्कुमारप्पहुडि जाव सहस्सारे त्ति सव्वपदाणमेसेव भंगो। णवरि णव चोद्दस भागा णत्थि। आणद-पाणद-आरण-अच्चुददेवाणं सव्वपदाणं पि छच्चोद्दसभागा देसूणा। अट्ठ चोद्दस भागा णत्थि। हेट्ठिम-हेट्ठिमगेवज्जप्पहुडि जाव सव्वट्ठसिद्धि त्ति ताव तिण्णं पि पदाणमदीद-वट्टमाणेण लोगस्स असंखेज्जदिभागो।

इंदियाणुवादेण एइंदियाणं पओअकम्म-समोदाणकम्म-आधाकम्माणमदीद-वट्टमाणेण सव्वलोगो। विगलिंदियाणं पंचिंदियतिरिक्खअपज्जत्तभंगो। पंचिंदिय-पंचिंदियपज्जत्त० पओअकम्म-समोदाणकम्माणं वट्टमाणेण लोगस्स असंखेज्जदिभागो। अदीदेण अट्ठ चोद्दस-भागा वा देसूणा सव्वलोगो वा। केवलिणो पडुच्च लोगस्स असंखेज्जदिभागो असंखेज्जा वा भागा सव्वलोगो वा। आधाकम्मस्स अदीद-वट्टमाणेण सव्वलोगो। इरियावह-तवोकम्माण-

---

मनुष्य गतिमें मनुष्य, मनुष्य पर्याप्त और मनुष्यिनियोंमें सब पदोंका अतीत और वर्तमान स्पर्शन क्षेत्रके समान है। इतनी विशेषता है कि प्रयोगकर्म और समवधानकर्मका अतीत स्पर्शन सब लोक है। तथा मनुष्य अपर्याप्तकोंका पचेन्द्रिय तिर्यंच अपर्याप्तकोंके समान स्पर्शन है।

देवगतिमें देवोंमें प्रयोगकर्म, समवधानकर्म और क्रियाकर्मका वर्तमान स्पर्शन लोकके असंख्यातवें भाग प्रमाण है। अतीत स्पर्शन कुछ कम आठ बटे चौदह भागप्रमाण व कुछ कम नौ बटे चौदह भाग प्रमाण है। किन्तु इतनी विशेषता है कि क्रियाकर्मका अतीत स्पर्शन कुछ कम आठ बटे चौदह भाग प्रमाण है। इसी प्रकार भवनवासी, व्यन्तर, ज्योतिषी और सौधर्म ऐशान स्वर्गके देवोंके कहना चाहिये। सानत्कुमारसे लेकर सहस्रार तकके देवोंमें सब पदोंका यही स्पर्शन है। किन्तु इतनी विशेषता है कि यहां नौ बटे चौदह भाग प्रमाण स्पर्शन नहीं है। आनत, प्राणत, आरण और अच्युत कल्पके देवोंके सभी पदोंका स्पर्शन कुछ कम छह बटे चौदह भाग प्रमाण है। यहां आठ बटे चौदह भाग प्रमाण स्पर्शन नहीं है। अधस्तन अधस्तन ग्रैवेयकसे लेकर सर्वार्थसिद्धि तकके देवोंके तीनों ही पदोंका अतीत और वर्तमान स्पर्शन लोकके असंख्यातवें भाग प्रमाण है।

इन्द्रियमार्गणाके अनुवादसे एकेन्द्रियोंके प्रयोगकर्म, समवधानकर्म और अधःकर्मका अतीत और वर्तमान स्पर्शन सब लोक है। विकलेन्द्रियोंके उक्त सब पदोंका स्पर्शन पंचेन्द्रिय तिर्यंच अपर्याप्तकोंके समान है। पंचेन्द्रिय और पंचेन्द्रिय पर्याप्तकोंके प्रयोगकर्म और समवधान कर्मका वर्तमान स्पर्शन लोकके असंख्यातवें भाग प्रमाण है। अतीत स्पर्शन कुछ कम आठ बटे चौदह भाग प्रमाण और सब लोक प्रमाण है। केवलज्ञानियोंकी अपेक्षा लोकके असंख्यातवें भाग प्रमाण, लोकके असंख्यात बहुभाग प्रमाण और सब लोक प्रमाण स्पर्शन है। अधःकर्मका अतीत और

मदीद-वट्टमाणेण लोगस्स असंखेज्जदिभागो असंखेज्जा वा भागा सव्वलोगो वा। किरिया-कम्मस्स वट्टमाणेण लोगस्स असंखेज्जदिभागो। अदीदेण अट्ट चोद्दस भागा वा देसूणा। पंचिंदियअपज्जत्ताणं पंचिंदियतिरिक्खअपज्जत्तभंगो।

कायाणुवादेण पुढवि-आउ-तेउ-वाउ-वणप्फदीणं एदेसिं बादराणं बादरअपज्जत्ताणं बादरणिगोदपज्जत्तापज्जत्ताणं पंचण्णं कायाणं सुहुमपज्जत्तापज्जत्ताणं च पओअकम्म-समोदाण-कम्म-आधाकम्माणमदीद-वट्टमाणेण सव्वलोगो। बादरपुढवि-बादरआउ-बादरतेउ-बादरवण-प्फदिपत्तेयसरीरपज्जत्ताणं तसअपज्जत्ताणं च पंचिंदियअपज्जत्तभंगो[1]। णवरि बादरवाउपज्ज-त्ताणं वट्टमाणेण लोगस्स संखेज्जदिभागो। तसदोण्णि पंचिंदियदुगभंगो।

जोगाणुवादेण पंचमणजोगि-पंचवचिजोगीणं पंचिंदियपज्जत्तभंगो। णवरि केवलि-समुग्घादो णत्थि। कायजोगीणमोघं। ओरालियकायजोगीणं खेत्तभंगो। णवरि किरिया-कम्मस्स अदीदेण छ चोद्दस भागा देसूणा। ओरालियमिस्सकायजोगीणं खेत्तभंगो। वेउव्विय-कायजोगीसु सव्वपदाणं वट्टमाणेण खेत्तभंगो। अदीदेण अट्ट तेरह चोद्दसभागा वा देसूणा।

वर्तमान स्पर्शन सब लोकप्रमाण है। ईर्यापथकर्म और तपःकर्मका अतीत और वर्तमान स्पर्शन लोकके असंख्यातवें भाग प्रमाण, लोकके असंख्यात बहुभागप्रमाण और सब लोकप्रमाण है। क्रियाकर्मकी अपेक्षा वर्तमान स्पर्शन लोकके असंख्यातवें भागप्रमाण है। अतीत स्पर्शन कुछ कम आठ बटे चौदह भागप्रमाण है। पंचेन्द्रिय अपर्याप्तकोंके वहां सम्भव पदोंका स्पर्शन पंचेन्द्रिय तिर्यंच अपर्याप्तकोंके समान है।

कायमार्गणाके अनुवादसे पृथिवीकायिक, जलकायिक, अग्निकायिक, वायुकायिक और वनस्पतिकायिक जीवोंके तथा इनके बादर और बादर अपर्याप्त जीवोंके तथा बादर निगोद और उनके पर्याप्त अपर्याप्त जीवोंके तथा पांचों स्थावरकायिक सूक्ष्म और उनके पर्याप्त और अपर्याप्त जीवोंके प्रयोगकर्म, समवधानकर्म और अधःकर्मका अतीत और वर्तमानकालीन स्पर्शन सब लोकप्रमाण है। बादर पृथिवीकायिक पर्याप्त, बादर जलकायिक पर्याप्त, बादर अग्निकायिक पर्याप्त और बादर वनस्पतिकायिक प्रत्येकशरीर पर्याप्त तथा त्रस अपर्याप्त जीवोंके यहां सम्भव पदोंका स्पर्शन पंचेन्द्रिय अपर्याप्तकोंके समान है। इतनी विशेपता है कि बादर वायुकायिक पर्याप्तकोंके वर्तमान स्पर्शन लोकके संख्यातवें भागप्रमाण है। त्रसद्विकके सब पदोंका स्पर्शन पंचेन्द्रिय-द्विकके समान है।

योगमार्गणाके अनुवादसे पांचों मनोयोगी और पांचों वचनयोगी जीवोंके सब पदोंका स्पर्शन पंचेन्द्रिय पर्याप्तकोंके समान है। इतनी विशेपता है कि इन योगोंके रहते हुए केवलिसमुद्घात नहीं होता। काययोगी जीवोंके सब पदोंका स्पर्शन ओघके समान है। औदारिक-काययोगियोंके सब पदोंका स्पर्शन क्षेत्रके समान है। इतनी विशेपता है कि इनके क्रियाकर्मका अतीत स्पर्शन कुछ कम छह बटे चौदह भाग प्रमाण है। औदारिकमिश्रकाययोगी जीवोंके वहां सम्भव सब पदोंका स्पर्शन क्षेत्रके समान है। वैक्रियिककाययोगी जीवोंमें सब पदोंका वर्तमानकालीन

१ ताप्रतौ 'तसअपज्जत्ताणं च पंचिंदियअपज्जत्ताणं च पंचिंदिय' इति पाठः।

णवरि किरियाकम्मस्स तेरह चोद्दसभागा णत्थि। वेउव्वियमिस्सकायजोगीणं खेत्तभंगो। आहारदुगकायजोगीणं खेत्तभंगो। कम्मइयकायजोगीसु खेत्तभंगो। णवरि किरियाकम्मस्स अदीदेण छ चोद्दसभागा देसूणा।

वेदाणुवादेण इत्थि-पुरिसवेदाणं पओअकम्म-समोदाणकम्माणं वट्टमाणेण लोगस्स असंखेज्जदिभागो। अदीदेण अट्ठ चोद्दसभागा वा सव्वलोगो वा। आधाकम्मस्स अदीद-वट्टमाणेण सव्वलोगो। तवोकम्माणं खेत्तभंगो। एवं किरियाकम्मस्स वि। णवरि अदीदेण अट्ठ चोद्दसभागा देसूणा। णवुंसयवेदाणं खेत्तभंगो। णवरि अदीदेण किरियाकम्म० मारणंतियपदस्स छ चोद्दसभागा देसूणा। अवगदवेदाणं खेत्तभंगो।

कसायाणुवादेण चदुण्णं कसायाणं खेत्तभंगो। णवरि अदीदेण किरियाकम्मस्स अट्ठ चोद्दसभागा देसूणा। अकसाईणं खेत्तभंगो।

णाणाणुवादेण मदि-सुदअण्णाणीसु सव्वपदाणमदीद-वट्टमाणाणं खेत्तभंगो। विभंगणाणीसु पओअकम्म-समोदाणकम्माणं वट्टमाणेण लोयस्स असंखेज्जदिभागो। अदीदेण अट्ठ तेरह चोद्दसभागा देसूणा सव्वलोगो वा। आधाकम्मस्स ओघो। आभिणि-सुद-ओहिणाणीसु

स्पर्शन क्षेत्रके समान है। अतीत स्पर्शन कुछ कम आठ बटे चौदह भागप्रमाण और कुछ कम तेरह बटे चौदह भागप्रमाण है। इतनी विशेषता है कि क्रियाकर्मका स्पर्शन तेरह बटे चौदह भागप्रमाण नहीं है। वैक्रियिकमिश्रकाययोगी जीवोंका स्पर्शन क्षेत्रके समान है। आहारद्विक काययोगी जीवोंका स्पर्शन क्षेत्रके समान है। कार्मणकाययोगी जीवोंमें स्पर्शन क्षेत्रके समान है। इतनी विशेषता है कि क्रियाकर्मका अतीतकालीन स्पर्शन कुछ कम छह बटे चौदह भागप्रमाण है।

वेदमार्गणाके अनुवादसे स्त्रीवेदी और पुरुषवेदी जीवोंके प्रयोगकर्म और समवधानकर्मका वर्तमान स्पर्शन लोकके असंख्यातवें भागप्रमाण है। अतीत स्पर्शन आठ बटे चौदह भागप्रमाण और सब लोक है। अधःकर्मका अतीत और वर्तमान स्पर्शन सब लोक है। तपःकर्मका स्पर्शन क्षेत्रके समान है। इसी प्रकार क्रियाकर्मका स्पर्शन भी जानना चाहिये। किन्तु इतनी विशेषता है कि इसका अतीत स्पर्शन कुछ कम आठ बटे चौदह भागप्रमाण है। नपुंसक वेदवाले जीवोंके वहां सम्भव पदोंका स्पर्शन क्षेत्रके समान है। इतनी विशेषता है कि क्रियाकर्मका अतीत स्पर्शन मारणान्तिक समुद्घातकी अपेक्षा कुछ कम छह बटे चौदह भागप्रमाण है। अपगतवेदवाले जीवोंके वहां सम्भव पदोंका स्पर्शन क्षेत्रके समान है।

कषायमार्गणाके अनुवादसे चारों कषायवाले जीवोंके सब पदोंका स्पर्शन क्षेत्रके समान है। इतनी विशेषता है कि क्रियाकर्मका अतीत स्पर्शन कुछ कम आठ बटे चौदह भागप्रमाण है। कषायरहित जीवोंके यथासम्भव पदोंका स्पर्शन क्षेत्रके समान है।

ज्ञान मार्गणाके अनुवादसे मतिअज्ञानी और श्रुताज्ञानी जीवोंमें सब पदोंका अतीत और वर्तमानकालीन स्पर्शन क्षेत्रके समान है। विभंगज्ञानियोंमें प्रयोगकर्म और समवधान कर्मका वर्तमान स्पर्शन लोकके असंख्यातवें भागप्रमाण है। अतीत स्पर्शन कुछ कम आठ बटे चौदह भागप्रमाण, कुछ कम तेरह बटे चौदह भागप्रमाण और सब लोकप्रमाण है। अधःकर्मका स्पर्शन

सव्वपदाणं वट्टमाणेण लोयस्स असंखेज्जदिभागो । अदीदेण अट्ठ चोद्दसभागा देसूणा । इरियावह-तवोकम्माणं खेत्तभंगो । आधाकम्मस्स ओघो । मणपज्जव-केवलणाणीणं खेत्तभंगो ।

संजमाणुवादेण संजद-सामाइय-छेदोवट्ठावण-परिहारविसुद्धि-सुहुमसांपराइय-जहाक्खाद-संजदाणमप्पप्पणो पदाणं खेत्तभंगो । संजदासंजद० सव्वपदाणं वट्टमाणेण लोयस्स असंखेज्जदिभागो । अदीदेण छ चोद्दसभागा देसूणा । णवरि आधाकम्मस्स ओघभंगो । असंजदाणं खेत्तभंगो । णवरि किरियाकम्मस्स अदीदेण अट्ठ चोद्दसभागा देसूणा ।

दंसणाणुवादेण चक्खुदंसणीणं तसपज्जत्तभंगो । णवरि केवलिभंगो णत्थि । अचक्खुदंसणीसु सव्वपदाणं खेत्तभंगो । णवरि किरियाकम्मस्स अदीदेण अट्ठ चोद्दसभागा देसूणा । ओहिदंसणीणमोहिणाणिभंगो । केवलदंसणीणं केवलणाणिभंगो ।

लेस्साणुवादेण किण्ण-णील-काउलेस्सियाणं सव्वपदाणं अदीद-वट्टमाणेण सव्वलोगो । णवरि किरियाकम्मस्स अदीद-वट्टमाणेण लोगस्स असंखेज्जदिभागो । तेउलेस्साए पओअकम्म-समोदाणकम्माणं वट्टमाणेण लोयस्स असंखेज्जदिभागो । अदीदेण अट्ठ णव चोद्दसभागा

ओघकेसमान है । आभिनिबोधिकज्ञानी, श्रुतज्ञानी और अवधिज्ञानी जीवोंमें सब पदोंका वर्तमान स्पर्शन लोकके असंख्यातवें भागप्रमाण है । अतीत स्पर्शन कुछ कम आठ बटे चौदह भागप्रमाण है । ईर्यापथकर्म और तपःकर्मका स्पर्शन क्षेत्रके समान है । अधःकर्मका स्पर्शन ओघके समान है । मनःपर्ययज्ञानी और केवलज्ञानी जीवोंमें सम्भव पदोंका स्पर्शन क्षेत्रके समान है ।

संयममार्गणाके अनुवादसे संयत, सामायिकसंयत, छेदोपस्थापनासंयत, परिहारविशुद्धि-संयत, सूक्ष्मसाम्परायिकसंयत और यथाख्यातसंयत जीवोंके अपने अपने पदोंका स्पर्शन क्षेत्रके समान है । संयतासंयत जीवोंके सब पदोंका वर्तमान स्पर्शन लोकके असंख्यातवें भागप्रमाण है । अतीत स्पर्शन कुछ कम छह बटे चौदह भाग प्रमाण है । किन्तु इतनी विशेषता है कि अधः-कर्मका स्पर्शन ओघके समान है । असंयत जीवोंके सम्भव पदोंका स्पर्शन क्षेत्रके समान है । इतनी विशेषता है कि क्रियाकर्मका अतीत स्पर्शन कुछ कम आठ बटे चौदह भागप्रमाण है ।

दर्शनमार्गणाके अनुवादसे चक्षुदर्शनवाले जीवोंके सम्भव सब पदोंका स्पर्शन त्रस पर्याप्तकोंके समान है । इतनी विशेषता है कि यहां केवलिसमुद्घातसे प्राप्त होनेवाला स्पर्शन नहीं होता । अचक्षुदर्शनवाले जीवोंके सब पदोंका स्पर्शन क्षेत्रके समान है । इतनी विशेषता है कि क्रियाकर्मका अतीत स्पर्शन कुछ कम आठ बटे चौदह भागप्रमाण होता है । अवधिदर्शनवाले जीवोंका स्पर्शन अवधिज्ञानियोंके समान है । केवलदर्शनवाले जीवोंका स्पर्शन केवलज्ञानियोंके समान है ।

लेश्यामार्गणाके अनुवादसे कृष्ण, नील और कापोत लेश्यावाले जीवोंके सब पदोंका अतीत और वर्तमानकालीन स्पर्शन सब लोकप्रमाण है । इतनी विशेषता है कि इनके क्रियाकर्मका अतीत और वर्तमानकालीन स्पर्शन लोकके असंख्यातवें भागप्रमाण है । पीत लेश्यामें प्रयोगकर्म और समवधान कर्मका वर्तमान स्पर्शन लोकके असंख्यातवें भागप्रमाण है । अतीत स्पर्शन कुछ कम आठ बटे चौदह भागप्रमाण और कुछ कम नौ बटे चौदह भागप्रमाण है । अधःकर्मका स्पर्शन

देसूणा । आधाकम्मस्स ओघभंगो । तवोकम्मस्स खेत्तभंगो । किरियाकम्मस्स अदीदेण अट्ठ चोद्दसभागा देसूणा । पम्मलेस्साए पओअकम्म-समोदाणकम्म-किरियाकम्माणं वट्टमाणेण तेउभंगो । अदीदेण अट्ठ चोद्दसभागा देसूणा । तवकम्मस्स खेत्तभंगो । आधाकम्मस्स ओघो । सुक्कलेस्साए पओअकम्म-समोदाणकम्माणमदीद–वट्टमाणेण लोयस्स असंखेज्जदि-भागो छ चोद्दसभागा देसूणा असंखेज्जा वा भागा सव्वलोगो वा । आधाकम्मस्स ओघभंगो । इरियावह-तवोकम्माणं खेत्तभंगो । किरियाकम्मस्स छ चोद्दसभागा देसूणा ।

भवियाणुवादेण भवसिद्धियाणमोघभंगो । अभवसिद्धिय० सव्वपदाणं खेत्तभंगो । सम्मत्ताणुवादेण सम्माइट्ठि-खइयसम्माइट्ठीसु पओअकम्म-समोदाणकम्माणं वट्टमाणेण लोगस्स असंखेज्जदिभागो । अदीदेण अट्ठ चोद्दसभागा देसूणा असंखेज्जा वा भागा सव्वलोगो वा । आधाकम्मस्स अदीद-वट्टमाणेण सव्वलोगो । कुदो ? सरीरादो ओसरिदूण ओदइयभावमछंडिय एगसमएण सव्वलोगमावूरिय ट्ठिदाणं णोकम्मखंधाणमाधाकम्मभावब्भुव-गमादो । इरियावथ-तवोकम्माणं खेत्तभंगो । किरिया० अदीदेण अट्ठ चोद्दसभागा देसूणा । वेदगसम्माइट्ठी० सव्वपदाणं वट्टमाणेण लोयस्स असंखेज्जदिभागो । अदीदेण अट्ठ चोद्दसभागा देसूणा । आधाकम्मस्स ओघभंगो । तवोकम्मस्स खेत्तभंगो । उवसमसम्माइट्ठी०

ओघके समान है । तपःकर्मका स्पर्शन क्षेत्रके समान है । क्रियाकर्मका अतीत स्पर्शन कुछ कम आठ बटे चौदह भाग प्रमाण है । पद्म लेश्यामें प्रयोगकर्म, समवधानकर्म और क्रियाकर्मका वर्तमान स्पर्शन पीत लेश्याके समान है । अतीत स्पर्शन कुछ कम आठ बटे चौदह भागप्रमाण है । तपः-कर्मका स्पर्शन क्षेत्रके समान है । अधःकर्मका स्पर्शन ओघके समान है । शुक्ल लेश्यामें प्रयोगकर्म और समवधानकर्मका अतीत और वर्तमानकालीन स्पर्शन लोकके असंख्यातवें भागप्रमाण, कुछ कम छह बटे चौदह भागप्रमाण, लोकके असंख्यात बहुभागप्रमाण, और सब लोकप्रमाण है । अधःकर्मका स्पर्शन ओघके समान है । ईर्यापथ और तपःकर्मका स्पर्शन क्षेत्रके समान है । तथा क्रियाकर्मका स्पर्शन कुछ कम छह बटे चौदह भागप्रमाण है ।

भव्यमार्गणाके अनुवादसे भव्योंके सब पदोंका स्पर्शन ओघके समान है । अभव्योंके सब पदोंका स्पर्शन क्षेत्रके समान है । सम्यक्त्वमार्गणाके अनुवादसे सम्यग्दृष्टि और क्षायिकसम्यग्दृष्टि जीवोंमें प्रयोगकर्म और समवधानकर्मका वर्तमान स्पर्शन लोकके असंख्यातवें भाग प्रमाण हैं । अतीत स्पर्शन कुछ कम आठ बटे चौदह भागप्रमाण, लोकके असंख्यात बहुभागप्रमाण और सब लोकप्रमाण है । अधःकर्मका अतीत और वर्तमान स्पर्शन सब लोकप्रमाण है, क्योंकि शरीरसे पृथक् होकर और औदयिक भावको न छोड़कर एक समय द्वारा सब लोकको व्याप्त कर स्थित हुए नोकर्म-स्कन्धोंके अधःकर्मभाव स्वीकार किया गया है । ईर्यापथकर्म और तपःकर्मका स्पर्शन क्षेत्रके समान है । तथा क्रियाकर्मका अतीत स्पर्शन कुछ कम आठ बटे चौदह भाग प्रमाण है । वेदकसम्यग्दृष्टियोंके सब पदोंका वर्तमान स्पर्शन लोकके असंख्यातवें भाग प्रमाण है । अतीत स्पर्शन कुछ कम आठ बटे चौदह भागप्रमाण है । अधःकर्मका स्पर्शन ओघके समान है । तथा तपःकर्मका स्पर्शन क्षेत्रके समान है । उपशमसम्यग्दृष्टियोंके सब पदोंका वर्तमान स्पर्शन क्षेत्रके समान है । अतीत

सव्वपदाणं वट्टमाणेण खेत्तभंगो। अदीदेण अट्ठ चोद्दसभागा देसूणा। आधाकम्मस्स ओघो। तवोइरियावथकम्माणं खेत्तभंगो। सासणसम्माइट्ठी० सव्वपदाणं वट्टमाणेण लोगस्स असंखेज्जदिभागो। अदीदेण बारह चोद्दसभागा देसूणा। आधाकम्मस्स खेत्तभंगो। सम्मामिच्छाइट्ठी० दोण्णं पदाणं वट्टमाणेण लोयस्स असंखेज्जदिभागो। अदीदेण अट्ठ चोद्दसभागा देसूणा। आधाकम्मस्स ओघभंगो। मिच्छाइट्ठी० सव्वपदाणमोघभंगो।

सण्णियाणुवादेण सण्णीणं चक्खुदंसणीणं भंगो। असण्णीणं खेत्तभंगो। आहाराणुवादेण आहारएसु सव्वपदाणमोघभंगो। णवरि केवलिभंगो णत्थि। अणाहाराणं कम्मइयभंगो। णवरि तवोकम्मं लोगस्स असंखेज्जदिभागो असंखेज्जा वा भागा सव्वलोगो वा। एवं पोसणं समत्तं।

कालाणुगमेण दुविहो णिद्देसो ओघेण आदेसेण य। ओघेण पओअकम्म-समोदाणकम्माणि केवचिरं कालादो होंति? णाणाजीवं पडुच्च सव्वद्धा। एगजीवं पडुच्च अणादिओ अपज्जवसिदो, अभवसिद्धिएसु कम्माणं पज्जवसाणाभावादो। अणादिओ सपज्जवसिदो, भवसिद्धिएसु सिज्झमाणएसु[1] कम्माणं पज्जवसाणुवलंभादो। आधाकम्मं केवचिरं कालादो

स्पर्शन कुछ कम आठ बटे चौदह भाग प्रमाण हैं। अधःकर्मका स्पर्शन ओघके समान है। तथा तपःकर्म और ईर्यापथकर्मका स्पर्शन क्षेत्रके समान है। सासादनसम्यग्दृष्टियोंके सब पदोंका वर्तमान स्पर्शन लोकके असंख्यातवें भागप्रमाण है। अतीत स्पर्शन कुछ कम बारह बटे चौदह भागप्रमाण हैं। अधःकर्मका स्पर्शन क्षेत्रके समान है। सम्यग्मिथ्यादृष्टियोंके दो पदोंका वर्तमान स्पर्शन लोकके असंख्यातवें भागप्रमाण है। अतीत स्पर्शन कुछ कम आठ बटे चौदह भागप्रमाण है। तथा अधःकर्मका स्पर्शन ओघके समान है। मिथ्यादृष्टियोंके सब पदोंका स्पर्शन ओघके समान है।

विशेषार्थ—यहां सासादनसम्यग्दृष्टियोंके कुछ कम बारह बटे चौदह भाग प्रमाण स्पर्शन मारणान्तिक समुद्धातकी अपेक्षा कहा है, क्योंकि इनका मेरुमूलसे नीचे पांच राजु और ऊपर सात राजु स्पर्श देखा जाता है। शेष कथन सुगम है।

संज्ञिमार्गणाके अनुवादसे संज्ञियोंके सम्भव सब पदोंका स्पर्शन चक्षुदर्शनी जीवोंके समान है, तथा असंज्ञी जीवोंके सम्भव सब पदोंका स्पर्शन क्षेत्रके समान है।

आहारमार्गणाके अनुवादसे आहारकोंमें सब पदोंका स्पर्शन ओघके समान है। इतनी विशेषता है कि यहां केवलिसमुद्घात सम्बन्धी स्पर्शन नहीं होता। अनाहारकोंके सम्भव पदोंका स्पर्शन कार्मणकाययोगी जीवोंके समान है। इतनी विशेषता है कि तपःकर्मका स्पर्शन लोकके असंख्यातवें भागप्रमाण, असंख्यात बहुभागप्रमाण और सब लोक प्रमाण है। इस प्रकार स्पर्शनानुगम समाप्त हुआ।

कालानुगमकी अपेक्षा निर्देश दो प्रकारका है—ओघनिर्देश और आदेशनिर्देश। ओघसे प्रयोगकर्म और समवधानकर्मका कितना काल है? नाना जीवोंकी अपेक्षा सब काल है। एक जीवकी अपेक्षा अनादि-अनन्त काल है, क्योंकि अभव्योंके इन कर्मोंका अन्त नहीं होता। अनादि-सान्त काल है, क्योंकि सिद्धिको प्राप्त होनेवाले भव्योंमें इन कर्मोंका अन्त देखा जाता

१ अ-आ-काप्रतिषु 'सिज्झमाणासु' इति पाठः।

देसूणा। आधाकम्मस्स ओघभंगो। तवोकम्मस्स खेत्तभंगो। किरियाकम्मस्स अदीदेण अट्ठ चोद्दसभागा देसूणा। पम्मलेस्साए पओअकम्म-समोदाणकम्म-किरियाकम्माणं वट्टमाणेण तेउभंगो। अदीदेण अट्ठ चोद्दसभागा देसूणा। तवकम्मस्स खेत्तभंगो। आधाकम्मस्स ओघो। सुक्कलेस्साए पओअकम्म-समोदाणकम्माणमदीद–वट्टमाणेण लोयस्स असंखेज्जदि-भागो छ चोद्दसभागा देसूणा असंखेज्जा वा भागा सव्वलोगो वा। आधाकम्मस्स ओघभंगो। इरियावह-तवोकम्माणं खेत्तभंगो। किरियाकम्मस्स छ चोद्दसभागा देसूणा।

भवियाणुवादेण भवसिद्धियाणमोघभंगो। अभवसिद्धिय० सव्वपदाणं खेत्तभंगो। सम्मत्ताणुवादेण सम्माइट्ठि-खइयसम्माइट्ठीसु पओअकम्म-समोदाणकम्माणं वट्टमाणेण लोगस्स असंखेज्जदिभागो। अदीदेण अट्ठ चोद्दसभागा देसूणा असंखेज्जा वा भागा सव्वलोगो वा। आधाकम्मस्स अदीद-वट्टमाणेण सव्वलोगो। कुदो? सरीरादो ओसरिदूण ओदइयभावमछंडिय एगसमएण सव्वलोगमावूरिय ट्ठिदाणं णोकम्मखंधाणमाधाकम्मभावब्भुव-गमादो। इरियावथ-तवोकम्माणं खेत्तभंगो। किरिया० अदीदेण अट्ठ चोद्दसभागा देसूणा। वेदगसम्माइट्ठी० सव्वपदाणं वट्टमाणेण लोयस्स असंखेज्जदिभागो। अदीदेण अट्ठ चोद्दसभागा देसूणा। आधाकम्मस्स ओघभंगो। तवोकम्मस्स खेत्तभंगो। उवसमसम्माइट्ठी०

ओघके समान है। तपःकर्मका स्पर्शन क्षेत्रके समान है। क्रियाकर्मका अतीत स्पर्शन कुछ कम आठ बटे चौदह भाग प्रमाण है। पद्म लेश्यामें प्रयोगकर्म, समवधानकर्म और क्रियाकर्मका वर्तमान स्पर्शन पीत लेश्याके समान है। अतीत स्पर्शन कुछ कम आठ बटे चौदह भागप्रमाण है। तपः-कर्मका स्पर्शन क्षेत्रके समान है। अधःकर्मका स्पर्शन ओघके समान है। शुक्ल लेश्यामें प्रयोगकर्म और समवधानकर्मका अतीत और वर्तमानकालीन स्पर्शन लोकके असंख्यातवें भागप्रमाण, कुछ कम छह बटे चौदह भागप्रमाण, लोकके असंख्यात बहुभागप्रमाण, और सब लोकप्रमाण है। अधःकर्मका स्पर्शन ओघके समान है। ईर्यापथ और तपःकर्मका स्पर्शन क्षेत्रके समान है। तथा क्रियाकर्मका स्पर्शन कुछ कम छह बटे चौदह भागप्रमाण है।

भव्यमार्गणाके अनुवादसे भव्योंके सब पदोंका स्पर्शन ओघके समान है। अभव्योंके सब पदोंका स्पर्शन क्षेत्रके समान है। सम्यक्त्वमार्गणाके अनुवादसे सम्यग्दृष्टि और क्षायिकसम्यग्दृष्टि जीवोंमें प्रयोगकर्म और समवधानकर्मका वर्तमान स्पर्शन लोकके असंख्यातवें भाग प्रमाण है। अतीत स्पर्शन कुछ कम आठ बटे चौदह भागप्रमाण, लोकके असंख्यात बहुभागप्रमाण और सब लोकप्रमाण है। अधःकर्मका अतीत और वर्तमान स्पर्शन सब लोकप्रमाण है, क्योंकि शरीरसे पृथक् होकर और औदयिक भावको न छोड़कर एक समय द्वारा सब लोकको व्याप्त कर स्थित हुए नोकर्म-स्कन्धोंके अधःकर्मभाव स्वीकार किया गया है। ईर्यापथकर्म और तपःकर्मका स्पर्शन क्षेत्रके समान है। तथा क्रियाकर्मका अतीत स्पर्शन कुछ कम आठ बटे चौदह भाग प्रमाण है। वेदकसम्यग्दृष्टियोंके सब पदोंका वर्तमान स्पर्शन लोकके असंख्यातवें भाग प्रमाण है। अतीत स्पर्शन कुछ कम आठ बटे चौदह भागप्रमाण है। अधःकर्मका स्पर्शन ओघके समान है। तथा तपःकर्मका स्पर्शन क्षेत्रके समान है। उपशमसम्यग्दृष्टियोंके सब पदोंका वर्तमान स्पर्शन क्षेत्रके समान है। अतीत

सव्वपदाणं वट्टमाणेण खेत्तभंगो। अदीदेण अट्ठ चोद्दसभागा देसूणा। आधाकम्मस्स ओघो। तवोइरियावथकम्माणं खेत्तभंगो। सासणसम्माइट्ठी० सव्वपदाणं वट्टमाणेण लोगस्स असंखेज्जदि-भागो। अदीदेण बारह चोद्दसभागा देसूणा। आधाकम्मस्स खेत्तभंगो। सम्मामिच्छाइट्ठी० दोण्णं पदाणं वट्टमाणेण लोयस्स असंखेज्जदिभागो। अदीदेण अट्ठ चोद्दसभागा देसूणा। आधाकम्मस्स ओघभंगो। मिच्छाइट्ठी० सव्वपदाणमोघभंगो।

सण्णियाणुवादेण सण्णीणं चक्खुदंसणीणं भंगो। असण्णीणं खेत्तभंगो। आहाराणु-वादेण आहारएसु सव्वपदाणमोघभंगो। णवरि केवलिभंगो णत्थि। अणाहाराणं कम्मइय-भंगो। णवरि तवोकम्मं लोगस्स असंखेज्जदिभागो असंखेज्जा वा भागा सव्वलोगो वा। एवं पोसणं समत्तं।

कालाणुगमेण दुविहो णिद्देसो ओघेण आदेसेण य। ओघेण पओअकम्म-समोदाण-कम्माणि केवचिरं कालादो होंति? णाणाजीवं पडुच्च सव्वद्धा। एगजीवं पडुच्च अणादिओ अपज्जवसिदो, अभवसिद्धिएसु कम्माणं पज्जवसाणाभावादो। अणादिओ सपज्जवसिदो, भवसिद्धिएसु सिज्झमाणएसु[1] कम्माणं पज्जवसाणुवलंभादो। आधाकम्मं केवचिरं कालादो

स्पर्शन कुछ कम आठ बटे चौदह भाग प्रमाण है। अधःकर्मका स्पर्शन ओघके समान है। तथा तपःकर्म और ईर्यापथकर्मका स्पर्शन क्षेत्रके समान है। सासादनसम्यग्दृष्टियोंके सब पदोंका वर्तमान स्पर्शन लोकके असंख्यातवें भागप्रमाण है। अतीत स्पर्शन कुछ कम बारह बटे चौदह भागप्रमाण है। अधःकर्मका स्पर्शन क्षेत्रके समान है। सम्यग्मिथ्यादृष्टियोंके दो पदोंका वर्तमान स्पर्शन लोकके असंख्यातवें भागप्रमाण है। अतीत स्पर्शन कुछ कम आठ बटे चौदह भागप्रमाण है। तथा अधःकर्मका स्पर्शन ओघके समान है। मिथ्यादृष्टियोंके सब पदोंका स्पर्शन ओघके समान है।

विशेषार्थ—यहां सासादनसम्यग्दृष्टियोंके कुछ कम बारह बटे चौदह भाग प्रमाण स्पर्शन मारणान्तिक समुद्घातकी अपेक्षा कहा है, क्योंकि इनका मेरुमूलसे नीचे पांच राजु और ऊपर सात राजु स्पर्श देखा जाता है। शेष कथन सुगम है।

संज्ञिमार्गणाके अनुवादसे संज्ञियोंके सम्भव सब पदोंका स्पर्शन चक्षुदर्शनी जीवोंके समान है, तथा असंज्ञी जीवोंके सम्भव सब पदोंका स्पर्शन क्षेत्रके समान है।

आहारमार्गणाके अनुवादसे आहारकोंमें सब पदोंका स्पर्शन ओघके समान है। इतनी विशेषता है कि यहां केवलिसमुद्घात सम्बन्धी स्पर्शन नहीं होता। अनाहारकोंके सम्भव पदोंका स्पर्शन कार्मणकाययोगी जीवोंके समान है। इतनी विशेषता है कि तपःकर्मका स्पर्शन लोकके असंख्यातवें भागप्रमाण, असंख्यात बहुभागप्रमाण और सब लोक प्रमाण है। इस प्रकार स्पर्शना-नुगम समाप्त हुआ।

कालानुगमकी अपेक्षा निर्देश दो प्रकारका है—ओघनिर्देश और आदेशनिर्देश। ओघसे प्रयोगकर्म और समवधानकर्मका कितना काल है? नाना जीवोंकी अपेक्षा सब काल है। एक जीवकी अपेक्षा अनादि-अनन्त काल है, क्योंकि अभव्योंके इन कर्मोंका अन्त नहीं होता। अनादि-सान्त काल है, क्योंकि सिद्धिको प्राप्त होनेवाले भव्योंमें इन कर्मोंका अन्त देखा जाता

१ अ-आ-काप्रतिषु 'सिज्झमाणाणु' इति पाठः।

होदि ? णाणाजीवं पडुच्च सव्वद्धा । एगजीवं पडुच्च जहण्णेण एगसमओ । कुदो ? जीवादो णिज्जिण्णपढमसमए ओरालियभावेणाच्छिय विदियसमए छंडिदओरालियणोकम्मभावेसु खंधेसु एगसमयकालुवलंभादो । उक्कस्सेण असंखेज्जा लोगा । कुदो ? जीवादो णिज्जिण्णणोकम्मक्खंधाणमुक्कस्सेण ओदइयभावमछंडिय असंखेज्जलोगमेत्तकालमवट्ठाणुवलंभादो । इरियावथतवोकम्माणि केवचिरं कालादो होंति ? णाणाजीवं पडुच्च सव्वद्धा । एगजीवं पडुच्च जहण्णेण एगसमओ अंतोमुहुत्तं । कुदो[1] ? उवसंतकसायस्स इरियावथकम्मेण एगसमयमच्छिदूण विदियसमए देवेसु उववण्णस्स एगसमयकालुवलंभादो । तवोकम्मजहण्णकालो अंतोमुहुत्तं । कुदो ? दिट्ठमग्गम्मि अट्ठावीससंतकम्मियमिच्छाइट्ठिम्मि[2] संजमं घेत्तूण सव्वजहण्णेण कालेण असंजमं गदम्मि तदुवलंभादो । असंजदसम्मादिट्ठी संजदासंजदो[3] वा संजमस्स णेयव्वो । उक्कस्सेण दोण्णं पि कालो देसूणपुव्वकोडी । कुदो ? देव-णेरइयखइयसम्माइट्ठिस्स पुव्वकोडाउएसु मणुस्सेसु उववज्जिय गब्भादिअट्ठवस्साणं अंतोमुहुत्तब्भहियाणं उवरि संजमं घेत्तूण तवोकम्मस्स आदिं करिय पुणो अंतोमुहुत्तेण खीणकसायगुणट्ठाणं पडिवज्जिय इरियावथकम्मस्स आदिं करिय सजोगी होदूण अंतोमुहुत्तब्भहियअट्ठवस्सेहि ऊणियं[4] पुव्वकोडिं सव्वमिरियावहं तवोकम्मं च अणुपालिदूण णिव्वुअस्स तदुवलंभादो । किरियाकम्मं

हैं । अधःकर्मका कितना काल है ? नाना जीवोंकी अपेक्षा सब काल है । एक जीवकी अपेक्षा जघन्य काल एक समय है, क्योंकि जो स्कन्ध जीवसे निर्जीर्ण होनेके प्रथम समयमें औदारिक रूपसे रहते हैं और दूसरे समयमें औदारिक नोकर्मभावका त्याग कर देते हैं उन स्कन्धोंमें अधःकर्मका एक समय काल उपलब्ध होता है । उत्कृष्ट काल असंख्यात लोक प्रमाण है, क्योंकि जो नोकर्मस्कन्ध जीवसे निर्जीर्ण हो जाते हैं उनका औदयिक भावको न छोड़कर उत्कृष्ट अवस्थान असंख्यात लोकप्रमाण काल तक पाया जाता है । ईर्यापथकर्म और तपःकर्मका कितना काल है ? नाना जीवोंकी अपेक्षा सब काल है । एक जीवकी अपेक्षा जघन्य काल ईर्यापथकर्मका एक समय और तपःकर्मका अन्तर्मुहूर्त है, क्योंकि जो उपशान्तकषाय जीव ईर्यापथकर्मके साथ एक समय रहकर दूसरे समयमें देवोंमें उत्पन्न हुआ है उसके ईर्यापथकर्मका एक समय काल उपलब्ध होता है । तपःकर्मका जघन्य काल अन्तर्मुहूर्त है, क्योंकि दृष्टमार्ग अट्ठाईस प्रकृतियोंके सत्कर्मवाला जो मिथ्यादृष्टि जीव संयमको ग्रहण कर सबसे जघन्य काल द्वारा असंयमको प्राप्त होता है उसके तपःकर्मका जघन्य काल अन्तर्मुहूर्त उपलब्ध होता है । असंयतसम्यग्दृष्टि और संयतासंयत जीवको संयममें ले जाकर यह काल ले आना चाहिये । तथा दोनोंका उत्कृष्ट काल कुछ कम पूर्वकोटि प्रमाण है, क्योंकि जो क्षायिकसम्यग्दृष्टि देव और नारकी जीव मरकर पूर्वकोटिप्रमाण आयुवाले मनुष्योंमें उत्पन्न होकर गर्भसे लेकर आठ वर्ष और अन्तर्मुहूर्तके बाद संयमको ग्रहण कर तपःकर्मको प्रारम्भ करके पुनः अन्तर्मुहूर्तके द्वारा क्षीणकषाय गुणस्थानको प्राप्त होकर ईर्यापथकर्मको प्रारम्भ करके सयोगी होते हैं और वहांपर अन्तर्मुहूर्त और आठ वर्ष कम एक पूर्वकोटि काल तक पूरी तरहसे ईर्यापथकर्म और तपःकर्मका पालन कर निर्वाणको प्राप्त होते हैं उन जीवोंके उक्त दोनों कर्मोंका यह उत्कृष्ट काल उपलब्ध होता है । क्रियाकर्मका

१ अ-आ-काप्रतिषु 'एगसमओ कुदो' इति पाठः । २ अ-आ-काप्रतिषु 'मिच्छाइट्ठि' इति पाठः । ३ प्रतिषु 'संजदासंजदा' इति पाठः । ४ अप्रतौ 'ओणियं' इति पाठः ।

केवचिरं कालादो होदि ? णाणाजीवं पडुच्च सव्वद्धा । एगजीवं पडुच्च जहण्णेण अंतोमुहुत्तं । कुदो ? मिच्छाइट्ठि-सम्मामिच्छाइट्ठीहिंतो सम्मत्तं पडिवज्जिय सव्वजहण्णमंतोमुहुत्तकालमच्छिय मिच्छत्तं सम्मामिच्छत्तं वा पडिवण्णस्स जहण्णकालसंभवुवलंभादो । उक्कस्सेण छावट्ठिसागरोवमाणि सादिरेयाणि । कुदो ? तिरिक्खमिच्छाइट्ठीहिंतो वा मणुसमिच्छाइट्ठीहिंतो वा पुव्वकोडिऊणचोद्दससागरोवमाउट्ठिदिलांतव[1]-काविट्ठदेवेसुववज्जिय तत्थ पढमसागरोवमे अंतोमुहुत्तावसेसे तिण्णि वि कारणाणि कादूण पढमसम्मत्तं पडिवज्जिय सव्वुक्कस्समुवसमसम्मत्तकालमच्छिय विदियसागरोवमस्स आदिसमए वेदगसम्मत्तं घेत्तूण देसूणतेरससागरोवमाणि सम्मत्तमणुपालेदूण मणुसेसु उववज्जिय संजमं घेत्तूण पुणो आगामिमणुस्साउएणूणबावीससागरोवमट्ठिदिएसु आरणच्चुददेवेसु उववज्जिय पुणो पुव्वकोडाउअं बंधिय मणुस्सेसुववज्जिय तत्थ संजमं पडिवज्जिय पुणो आगामिमणुस्साउएणूणएक्कत्तीससागरोवमाउट्ठिदिएसु[2] [उवरिम-] उवरिमगेवज्जदेवेसु उववण्णो। [पुणो] पुव्वकोडाउएसु मणुस्सेसु उववज्जिय तत्थ संजममणुपालेमाणो अंतोमुहुत्तावसेसे आउए खइयं[3]-सम्माइट्ठी होदूण तेत्तीससागरोवमाउट्ठिदिएसु सव्वट्ठसिद्धिविमाणवासियदेवेसु उववज्जिय पुणो पुव्वकोडाउएसु मणुस्सेसु उववण्णो सव्वजहण्णंतोमुहुत्तेण सिज्झिदव्वमिदि अपुव्वखवगो

कितना काल है ? नाना जीवोंकी अपेक्षा सब काल है। एक जीवकी अपेक्षा जघन्य काल अन्तर्मुहूर्त है, क्योंकि जो मिथ्यादृष्टि या सम्यग्मिथ्यादृष्टि जीव सम्यक्त्वको प्राप्त होकर और सबसे जघन्य अन्तर्मुहूर्त काल तक वहां रहकर पुनः मिथ्यात्व या सम्यग्मिथ्यात्वको प्राप्त होता है उसके इस जघन्य कालकी सम्भावना देखी जाती है। उत्कृष्ट काल साधिक छ्यासठ सागर है, क्योंकि कोई एक तिर्यंच मिथ्यादृष्टि या मनुष्य मिथ्यादृष्टि जीव एक पूर्वकोटि कम चौदह सागरोपम आयुवाले लांतव-कापिष्ठ देवोंमें उत्पन्न हुआ। फिर वहां प्रथम सागरोपममें अन्तर्मुहूर्त काल शेष रहनेपर तीनों ही करणोंको करके प्रथम सम्यक्त्वको प्राप्त हुआ । फिर उपशमसम्यक्त्वके सर्वोत्कृष्ट अन्तर्मुहूर्त काल तक उसके साथ रहकर दूसरे सागरोपमके प्रथम समयमें वेदकसम्यक्त्वको प्राप्त हुआ। फिर कुछ कम तेरह सागरोपम काल तक सम्यक्त्वका पालन करते हुए मनुष्योंमें उत्पन्न हुआ और वहां संयमको ग्रहण कर पुनः आगामी मनुष्यायुके प्रमाणसे कम बाईस सागरोपमकी आयुवाले आरण-अच्युत देवोंमें उत्पन्न हुआ। फिर पूर्वकोटिप्रमाण आयुको बांधकर मनुष्योंमें उत्पन्न हुआ और वहां संयमको प्राप्त होकर पुनः आगामी मनुष्यायुके प्रमाणसे न्यून इकतीस सागरोपम आयुवाले उपरिम-उपरिम ग्रैवेयकके देवोंमें उत्पन्न हुआ। फिर पूर्वकोटिप्रमाण आयुवाले मनुष्योंमें उत्पन्न हुआ और वहां संयमका पालन करते हुए आयुमें अन्तर्मुहूर्त काल शेष रहनेपर क्षायिकसम्यग्दृष्टि हुआ। फिर मरकर तेतीस सागरोपम आयुवाले सर्वार्थसिद्धि विमानवासी देवोंमें उत्पन्न हुआ। फिर पूर्वकोटिप्रमाण आयुवाले मनुष्योंमें उत्पन्न हुआ और वहां जब सबसे जघन्य अन्तर्मुहूर्त काल द्वारा सिद्ध होगा तब अपूर्वकरण क्षपक हुआ। यहां इसका क्रियाकर्म नष्ट हो जाता है।

१ अ-आ-काप्रतिषु 'लंतय' इति पाठः । २ ताप्रतौ 'सागरोवमट्ठिदिएसु' इति पाठः । ३ आ-का-ताप्रतिषु 'खविय' इति पाठः ।

ज़ादो, णट्ठं किरियाकम्मं। पुणो आदिल्लउवसमसम्मत्तसव्वदीहकालमाणेदूण सव्वरहस्सअपुव्व-अणियट्टि-सुहुम-खीण-सजोगिकालेणूणपुव्वकोडीए उवरि ट्ठविदे सादिरेयपुव्वकोडी होदि। एवं सादिरेयपुव्वकोडीए तेत्तीससागरोवमेहि य अहियछावट्ठिसागरोवममेत्तकिरियाकम्मुक्कस्स-कालुवलंभादो।

आदेसेण गदियाणुवादेण णिरयगदीए णेरइएसु पओअकम्म-समोदाणकम्माणि केवचिरं कालादो होंति? णाणाजीवं पडुच्च सव्वद्धा। एगजीवं पडुच्च जहण्णेण दसवाससहस्साणि, उक्कस्सेण तेत्तीस सागरोवमाणि। किरियाकम्मं केवचिरं कालादो होदि? णाणाजीवं पडुच्च सव्वद्धा। एगजीवं पडुच्च जहण्णेण अंतोमुहुत्तं। कुदो? दिट्ठमग्गमिच्छाइट्ठि-सम्मामिच्छा-इट्ठीहिंतो आगंतूण सम्मत्तं घेत्तूण सव्वजहण्णमंतोमुहुत्तं तत्थ अच्छिय गुणंतरं गयस्स सव्व-जहण्णकिरियाकम्मकालुवलंभादो। उक्कस्सेण तेत्तीसं सागरोवमाणि देसूणाणि। कुदो? अट्ठावीससंतकम्मियतिरिक्ख-मणुस्सेहिंतो अधोसत्तमाए पुढवीए उववज्जिय छहि पज्जत्तीहि पज्जत्तयदो होदूण विस्समिय विसोहिं गंतूण वेदगसम्मत्तं पडिवज्जिय किरियाकम्मस्स आदिं करिय तदो किरियाकम्मेण सह तेत्तीससागरोवमाणि विहरमाणो सव्वजहण्णअंतोमुहु-त्तावसेसे आउए मिच्छत्तं गदो। णट्ठं किरियाकम्मं। तदो आउअं बंधिदूण विस्संतो होदूण णिस्सरिंदो। आदिल्ला तिण्णि, अंतिल्ला वि तिण्णि, एवमेदेहि छहि अंतोमुहुत्तेहि ऊणतेत्तीस-

---

फिर प्रारम्भमें हुए उपशमसम्यक्त्वके सबसे बड़े कालको लाकर उसे; अपूर्वकरण, अनिवृत्तिकरण, सूक्ष्मसाम्पराय, क्षीणकषाय और सयोगी गुणस्थानके सबसे जघन्य कालसे न्यून एक पूर्वकोटि-प्रमाण कालमें मिलानेपर साधिक एक पूर्वकोटिप्रमाण काल होता है। इस प्रकार क्रियाकर्मका साधिक पूर्वकोढि और तेतीस सागरोपम अधिक छ्यासठ सागरोपम प्रमाण काल उपलब्ध होता है।

आदेशसे गतिमार्गणाके अनुवादसे नरकगतिमें नारकियोंमें प्रयोगकर्म और समवधान कर्मका कितना काल है? नाना जीवोंकी अपेक्षा सब काल है। एक जीवकी अपेक्षा जघन्य काल दस हजार वर्ष है और उत्कष्ट काल तेतीस सागर है। क्रियाकर्मका कितना काल है? नाना जीवोंकी अपेक्षा सब काल है। एक जीवकी अपेक्षा जघन्य काल अन्तर्मुहूर्त है, क्योंकि जो दृष्टमार्ग जीव मिथ्यादृष्टि या सम्यग्मिथ्यादृष्टि गुणस्थानसे आकर और सम्यक्त्वको ग्रहण कर सबसे जघन्य अन्तर्मुहूर्त काल तक वहां रहकर पुनः अन्य गुणस्थानको प्राप्त होता है उसके क्रियाकर्मका सबसे जघन्य काल उपलब्ध होता है। उत्कृष्ट काल कुछ कम तेतीस सागर है, क्योंकि अट्ठाईस कर्मोंकी सत्तावाला जो तिर्यंच या मनुष्य पर्यायसे आकर और नीचे सातवीं पृथिवीमें उत्पन्न होकर पुनः छह पर्याप्तियोंसे पर्याप्त होकर और विश्राम करके विशुद्धिको प्राप्त होनेके बाद वेदकसम्यक्त्वको प्राप्त करके क्रियाकर्मको प्रारम्भ करता है। तदनन्तर क्रियाकर्मके साथ तेतीस सागर काल तक रहकर जब आयुमें सबसे जघन्य अन्तर्मुहूर्त काल शेष रहता है तब मिथ्यात्वको प्राप्त होता है। उसके यहां क्रियाकर्म नष्ट हो जाता है। तदनन्तर आगामी आयुका बन्ध करके और विश्राम करके नरकसे निकलता है। इस प्रकार आदिके तीन और अन्तके भी तीन, इस प्रकार इन छह अन्तर्मुहूर्तोंसे न्यून तेतीस सागर क्रियाकर्मका उत्कृष्ट

सागरोवममेत्तकिरियाकम्मुक्कस्सकालुवलंभादो । एवं सत्तमाए पुढवीए पओअकम्म-समोदाणकम्म-किरियाकम्माणं जहण्णुक्कस्सकालपरूवणा कायव्वा । णवरि पओअकम्म-समोदाणकम्माणं जहण्णकालो समयाहियवावीससागरोवमाणि । पढमादि जाव छट्टि त्ति पओअकम्म-समोदाणकम्माणं जहण्णकालो जहाकमेण दसवस्ससहस्साणि एग-तिण्णि-सत्त-दस-सत्तारस-सागरोवमाणि समयाहियाणि । उक्कस्सकालो एग-तिण्णि-सत्त-दस-सत्तारस-वावीससागरोवमाणि संपुण्णाणि । किरियाकम्मं केवचिरं कालादो होदि ? णाणाजीवं पडुच्च सव्वद्धा, सत्तसु पुढवीसु सव्वकालं सम्माइट्ठिविरहाभावादो । एगजीवं पडुच्च जहण्णेण अंतोमुहुत्तं । कुदो ? मिच्छाइट्ठि-सम्मामिच्छादिट्ठीहिंतो आगंतूण सम्मत्तं पडिवज्जिय तत्थ सव्वजहण्णं कालमच्छिय गुणंतरं गयम्मि जीवे तदुवलंभादो । उक्कस्सेण सग-सगुक्कस्सट्ठिदीयो तीहि अंतोमुहुत्तेहि ऊणाओ । के ते तिण्णिअंतोमुहुत्ता ? छहि पज्जत्तीहि पज्जत्तयदम्मि एक्को, विस्समणे विदियो, विसोहिआवूरणे तदियो मुहुत्तो । किमट्ठमेदे अवणिज्जंते ? ण, एदेसु सम्मत्तग्गहणाभावादो । सत्तमीए च छण्णमंतोमुहुत्ताणं पि परिहाणी एग-तिण्णि-सत्त-दस-सत्तारस-वावीससागरोवमेसु किण्ण कदा ? ण एस दोसो, एदाहिंतो सम्मत्तेण सह

काल उपलब्ध होता है । इसी प्रकार सातवीं पृथिवीमें प्रयोगकर्म, समवधानकर्म और क्रियाकर्मके जघन्य और उत्कृष्ट कालका कथन करना चाहिये । इतनी विशेषता है कि यहां प्रयोगकर्म और समवधानकर्मका जघन्य काल एक समय अधिक बाईस सागर है । पहली पृथिवीसे लेकर छठवीं पृथिवी तक प्रयोगकर्म और समवधानकर्मका जघन्य काल क्रमसे दस हजार वर्ष, एक समय अधिक एक सागर, एक समय अधिक तीन सागर, एक समय अधिक सात सागर, एक समय अधिक दस सागर और एक समय अधिक सत्रह सागर है । उत्कृष्ट काल क्रमसे सम्पूर्ण एक सागर, तीन सागर, सात सागर, दस सागर, सत्रह सागर और बाईस सागर है । क्रियाकर्मका कितना काल है ? नाना जीवोंकी अपेक्षा सब काल है, क्योंकि सातों पृथिवियोंमें सदा सम्यग्दृष्टि जीव पाये जाते हैं, उनका विरह नहीं होता । एक जीवकी अपेक्षा जघन्य काल अन्तर्मुहूर्त है, क्योंकि जो जीव मिथ्यादृष्टि या सम्यग्मिथ्यादृष्टि गुणस्थानसे आकर और सम्यक्त्वको प्राप्त होकर वहां सबसे जघन्य अन्तर्मुहूर्त काल तक रहकर अन्य गुणस्थानको प्राप्त होते हैं उनके यह काल उपलब्ध होता है । उत्कृष्ट काल तीन अन्तर्मुहूर्त कम अपनी अपनी उत्कृष्ट स्थितिप्रमाण है ।

शंका—वे तीन अन्तर्मुहूर्त कौनसे हैं ?

समाधान—छह पर्याप्तियोंसे पर्याप्त होनेका प्रथम अन्तर्मुहूर्त है, विश्राम करनेका दूसरा अन्तर्मुहूर्त है, और विशुद्धिको पूरा करनेका तीसरा अन्तर्मुहूर्त है ।

शंका—ये अपनी अपनी उत्कृष्ट स्थितिमेंसे क्यों घटाये जाते हैं ?

समाधान—नहीं, क्योंकि इन अन्तर्मुहूर्तोंके भीतर सम्यक्त्वका ग्रहण नहीं होता ।

शंका—सातवीं पृथिवीमें छह अन्तर्मुहूर्तोंकी हानि होती है । वह हानि एक सागर, तीन सागर, सात सागर, दस सागर, सत्रह सागर और बाईस सागरमेंसे क्यों नहीं की ?

णिग्गमसंभवादो । सत्तमीए जादिविसेसेण[1] तदभावादो ।

तिरिक्खगदीए तिरिक्खेसु पओअकम्म-समोदाणकम्माणि केवचिरं कालादो होंति ? णाणाजीवं पडुच्च सव्वद्धा । एगजीवं पडुच्च जहण्णेण खुद्दाभवग्गहणं । उक्कस्सेण अणंतकालमसंखेज्जा पोग्गलपरियट्टा । आधाकम्मं केवचिरं कालादो होदि ? णाणाजीवं पडुच्च सव्वद्धा । एगजीवं पडुच्च जहण्णेण एगसमओ, उक्कस्सेण असंखेज्जा लोगा । एवं सव्वमग्गणासु आधाकम्मं णेयव्वं । किरियाकम्मं केवचिरं कालादो होदि ? णाणाजीवं पडुच्च सव्वद्धा । एगजीवं पडुच्च जहण्णेण अंतोमुहुत्तं, उक्कस्सेण तिण्णि पलिदोवमाणि संपुण्णाणि । कुदो ? मणुसम्मि दाणेण वा दाणाणुमोदेण वा तिरिक्खाउअं बंधिय पुणो खइयसम्माइट्ठी होदूण देवकुरु-उत्तरकुरवेसु उप्पज्जिय तत्थ तिण्णि पलिदोवमाणि किरियाकम्ममणुपालेदूण देवेसु उववण्णम्मि संपुण्णतिण्णिपलिदोवमेमत्तकिरियाकम्मकालुवलंभादो ।

पंचिंदियतिरिक्ख[2]-पंचिंदियतिरिक्खपज्जत्त-पंचिंदियतिरिक्खजोणिणीसु पओअकम्म-समोदाणकम्माणि केवचिरं कालादो होंति ? णाणाजीवं पडुच्च सव्वद्धा । एगजीवं पडुच्च जहण्णेण खुद्दाभवग्गहणमंतोमुहुत्तं, उक्कस्सेण तिण्णि पलिदोवमाणि पुव्वकोडिपुधत्तेणब्भहियाणि ।

समाधान—यह कोई दोष नहीं है, क्योंकि इन प्रथमादि छह पृथिवियोंमेंसे सम्यक्त्वके साथ निर्गमन सम्भव है; किन्तु सातवीं पृथिवीमें जातिविशेषके कारण वहांसे सम्यक्त्वके साथ निर्गमन सम्भव नहीं है। यही कारण है कि एक आदि सागरमेंसे छह अन्तर्मुहूर्तोंकी हानि नहीं की।

तिर्यंचगतिमें तिर्यंचोंमें प्रयोगकर्म और समवधानकर्मका कितना काल है ? नाना जीवोंकी अपेक्षा सब काल है। एक जीवकी अपेक्षा जघन्य काल क्षुद्रक भवग्रहणप्रमाण है और उत्कृष्ट काल अनन्त काल है जो असंख्यात पुद्गलपरिवर्तनप्रमाण है। अधःकर्मका कितना काल है ? नाना जीवोंकी अपेक्षा सब काल है। एक जीवकी अपेक्षा जघन्य काल एक समय है और उत्कृष्ट काल असंख्यात लोकप्रमाण है। इसी प्रकार सब मार्गणाओंमें अधःकर्मका काल जानना चाहिये। क्रियाकर्मका कितना काल है ? नाना जीवोंकी अपेक्षा सब काल है। एक जीवकी अपेक्षा जघन्य काल अन्तर्मुहूर्त है और उत्कृष्ट काल पूरा तीन पल्य प्रमाण है, क्योंकि मनुष्य पर्यायमें रहते हुए दान देनेसे या दानकी अनुमोदना करनेसे तिर्यंचायुका बन्ध करके और इसके बाद क्षायिकसम्यग्दृष्टि होकर जो देवकुरु या उत्तरकुरुमें उत्पन्न होकर और वहां तीन पल्य काल तक क्रियाकर्मका पालन कर देवोंमें उत्पन्न होता है उस तिर्यंचके क्रियाकर्मका पूरा तीन पल्य काल उपलब्ध होता है।

पंचेन्द्रिय तिर्यंच, पंचेन्द्रिय तिर्यंच पर्याप्त और पंचेन्द्रिय तिर्यंच योनिनी जीवोंमें प्रयोगकर्म और समवधानकर्मका कितना काल है ? नाना जीवोंकी अपेक्षा सब काल है। एक जीवकी अपेक्षा जघन्य काल क्षुद्रक भवग्रहणप्रमाण और अन्तर्मुहूर्त है तथा उत्कृष्ट काल पूर्वकोटिपृथक्त्व

---

१ ताप्रतौ 'सत्तमीए च छण्णमंतोमुहुत्ताणं पि, जादिविसेसेण' इति पाठः। २ अ-का-ताप्रतिषु 'पंचिंदियतिरिक्ख-' इत्येतत्पदं नोपलभ्यते।

किरियाकम्मस्स तिरिक्खभंगो। णवरि जोणिणीसु वेहि मासेहि मुहुत्तपुधत्तेण य ऊणाणि तिण्णि पलिदोवमाणि[1] किरियाकम्मुक्कस्सकालो होदि। कुदो? सम्माइट्ठीणं जोणिणीसु उप्पत्तीए अभावादो। तत्थुप्पण्णमिच्छाइट्ठीणं पि मुहुत्तपुधत्ताहियवेमासेसु अणदिक्कंतेसु सम्मत्तगहणाभावादो। पंचिंदियतिरिक्खअपज्जत्तएसु पओअकम्म-समोदाणकम्माणि केवचिरं कालादो होंति? णाणाजीवं पडुच्च सव्वद्धा। एगजीवं पडुच्च जहण्णेण खुद्दाभवग्गहणं, उक्कस्सेण अंतोमुहुत्तं।

मणुस्सगदीए मणुस्सतिगस्स पंचिंदियतिरिक्खतिगभंगो। णवरि किरियाकम्मस्स एगजीवं पडुच्च जहण्णेण एगसमओ। कुदो? ओदरमाणअपुव्वकरणउवसामगस्स अप्पमत्तगुणं पडिवज्जिय किरियाकम्मेण परिणमिय विदियसमए चेव मरणुवलंभादो। उक्कस्सेण तिण्णि पलिदोवमाणि पुव्वकोडितिभागेणब्भहियाणि। कुदो? मणुस्सम्मि अट्ठावीससंतकम्मियम्मि[2] पुव्वकोडितिभागावसेसे भोगभूमिएसु मणुस्साउअं बंधिय अंतोमुहुत्तेण सम्मत्तं घेत्तूण खइयं पट्ठविय अंतोमुहुत्तूणपुव्वकोडितिभागं किरियाकम्ममणुपालेदूण देवकुरु-उत्तरकुरवेसु उप्पज्जिय तत्थ तिण्णि पलिदोवमाणि जीविदूण देवेसु उववण्णम्मि अंतोमुहुत्तूणपुव्वकोडितिभागाहियतिण्णिपलिदोवममेत्तस्स किरियाकम्मुक्कस्सकालस्स उवलंभादो[3]। एवं मणुसपज्जत्ताणं

अधिक तीन पल्य है। क्रियाकर्मका काल सामान्य तिर्यंचोंके समान है। इतनी विशेषता है कि योनिनियोंमें क्रियाकर्मका उत्कृष्ट काल दो माह और मुहूर्तपृथक्त्व कम तीन पल्य है, क्योंकि सम्यग्दृष्टियोंकी योनिनियोंमें उत्पत्ति नहीं होती। और जो मिथ्यादृष्टि जीव उनमें उत्पन्न होते हैं उनके भी जब तक मुहूर्तपृथक्त्व अधिक दो माह काल नहीं निकल जाता तब तक सम्यक्त्वका ग्रहण नहीं होता। पंचेन्द्रिय तिर्यंच अपर्याप्तकोंके प्रयोगकर्म और समवधानकर्मका कितना काल है? नाना जीवोंकी अपेक्षा सब काल है। एक जीवकी अपेक्षा जघन्य काल क्षुद्रक भवग्रहण-प्रमाण है और उत्कृष्ट काल अन्तर्मुहूर्त है।

मनुष्यगतिमें मनुष्यत्रिकका भंग पंचेन्द्रियतिर्यंचत्रिकके समान है। इतनी विशेषता है कि क्रियाकर्मका एक जीवकी अपेक्षा जघन्य काल एक समय है, क्योंकि उतरनेवाले किसी अपूर्वकरण उपशामक जीवका अप्रमत्त गुणस्थानको प्राप्त होकर क्रियाकर्मरूपसे परिणमन करके दूसरे समयमें ही मरण देखा जाता है। उत्कृष्ट काल पूर्वकोटिका त्रिभाग अधिक तीन पल्य है, क्योंकि अट्ठाईस कर्मकी सत्तावाला जो मनुष्य आयुमें पूर्वकोटिका त्रिभाग शेष रहनेपर भोगभूमि सम्बन्धी मनुष्यायुका बन्ध करनेके बाद अन्तर्मुहूर्त काल द्वारा सम्यक्त्वको ग्रहण कर और तदनन्तर क्षायिक सम्यक्त्वको प्रारम्भ कर अन्तर्मुहूर्त कम पूर्वकोटिके त्रिभाग काल तक क्रियाकर्मका पालन करता है, पश्चात् मरकर देवकुरु या उत्तरकुरुमें उत्पन्न होकर और वहां तीन पल्यप्रमाण काल तक जीवित रहकर देवोंमें उत्पन्न होता है, उसके क्रियाकर्मका उत्कृष्ट काल अन्तर्मुहूर्त न्यून पूर्वकोटिका त्रिभाग अधिक तीन पल्यप्रमाण उपलब्ध होता है। इसी प्रकार

१ अ-आ-काप्रतिषु 'ऊणाणि पलिदो-' इति पाठः। २ अ-आप्रत्योः 'संतकम्मयम्मि', काप्रतौ 'संतकम्मम्मि' इति पाठः। ३ अ-आप्रत्योः 'कालुवलंभादो' इति पाठः।

पि वत्तव्वं । मणुस्सिणीसु किरियाकम्ममेवं चेवं[1] । णवरि णवहि मासेहि एगूणवण्णअहोरत्तेहि य ऊणाणि तिण्णि पलिदोवमाणि किरियाकम्मुक्कस्सकालो होदि । इरियावथकम्म-तवोकम्माणं णाणेगजीवं पडुच्च ओघभंगो । मणुस्सअपज्जत्तेसु पओअकम्म-समोदाणकम्माणि केवचिरं कालादो होंति ? णाणाजीवं पडुच्च जहण्णेण खुद्दाभवग्गहणं । उक्कस्सेण पलिदोवमस्स असंखेज्जदिभागो । एगजीवं पडुच्च जहण्णेण खुद्दाभवग्गहणं । उक्कस्सेण अंतोमुहुत्तं ।

देवगदीए देवेसु पओअकम्म-समोदाणकम्माणि केवचिरं कालादो होंति ? णाणाजीवं पडुच्च सव्वद्धा । एकजीवं पडुच्च जहण्णेण दसवस्ससहस्साणि । उक्कस्सेण तेत्तीसं सागरोवमाणि । एवं किरियाकम्मं पि । णवरि जहण्णेण अंतोमुहुत्तं । भवणवासिय-वाणवेंतर-जोदिसियप्पहुडि जाव सव्वट्ठसिद्धि त्ति ताव पओअकम्म-समोदाणकम्माणि केवचिरं कालादो होंति ? णाणाजीवं पडुच्च सव्वद्धा । एगजीवं पडुच्च जहण्णेण जहाकमेण दसवस्स-सहस्साणि[2] [दसवस्ससहस्साणि] पलिदोवमस्स अट्ठमभागो पलिदोवमं सादिरेयं पलिदो-वमस्स असंखेज्जदिभागेण बे सत्त दस चोद्दस सोलस अट्ठारस वीस बावीस तेवीस चउवीस पंचवीस छव्वीस सत्तावीस अट्ठावीस एगूणतीस तीस एक्कतीस बत्तीस सागरोवमाणि[3]

मनुष्य पर्याप्तकोंके भी क्रियाकर्मका काल कहना चाहिये । मनुष्यिनियोंमें क्रियाकर्मका काल इसी प्रकार ही है । इतनी विशेषता है कि इनमें क्रियाकर्मका उत्कृष्ट काल नौ माह और उनंचास दिन कम तीन पल्य है । ईर्यापथकर्म और तपःकर्मका काल नाना जीव और एक जीवकी अपेक्षा ओघके समान है । मनुष्य अपर्याप्तकोंमें प्रयोगकर्म और समवधानकर्मका कितना काल है ? नाना जीवोंकी अपेक्षा जघन्य काल क्षुद्रक भवग्रहणप्रमाण है और उत्कृष्ट काल पल्यके असंख्यातवें भागप्रमाण है । एक जीवकी अपेक्षा जघन्य काल क्षुद्रक भवग्रहणप्रमाण है और उत्कृष्ट काल अन्तर्मुहूर्त है ।

देवगतिमें देवोंमें प्रयोगकर्म और समवधानकर्मका कितना काल है ? नाना जीवोंकी अपेक्षा सब काल है । एक जीवकी अपेक्षा जघन्य काल दस हजार वर्ष है और उत्कृष्ट काल तेतीस सागर है । इसी प्रकार क्रियाकर्मका भी काल है । इतनी विशेषता है कि इसका जघन्य काल अन्तर्मुहूर्त है । भवनवासी, वानव्यन्तर और ज्योतिषी देवोंसे लेकर सर्वार्थसिद्धि तकके देवोंमें प्रयोगकर्म और समवधान कर्मका कितना काल है ? नाना जीवोंकी अपेक्षा सब काल है । एक जीवकी अपेक्षा जघन्य काल क्रमसे दस हजार वर्ष, दस हजार वर्ष, पल्योपमका आठवां भाग, पल्यका असंख्यातवां भाग अधिक एक पल्य, एक समय अधिक दो सागर, एक समय अधिक सात सागर, एक समय अधिक दस सागर, एक समय अधिक चौदह सागर, एक समय अधिक सोलह सागर, एक समय अधिक अठारह सागर, एक समय अधिक वीस सागर, एक समय अधिक बाईस सागर, एक समय अधिक तेईस सागर, एक समय अधिक चौबीस सागर, एक समय अधिक पच्चीस सागर, एक समय अधिक छब्बीस सागर, एक समय अधिक सत्ताईस सागर, एक समय अधिक अट्ठाईस सागर, एक समय अधिक उनतीस सागर, एक समय अधिक तीस

१ ताप्रतौ 'कम्ममेत्तं चेव' इति पाठः । २ ताप्रतौ 'दसवस्ससहस्साणि (२)' इति पाठः । ३ आ-ताप्रत्योः 'एक्कत्तीस सागरोवमाणि' इति पाठः ।

समयाहियाणि। उक्कस्सेण दिवड्डसागरोवमं पलिदोवमं सादिरेयं [पलिदोवमं सादिरेयं] बे सत्त दस चोद्दस सोलस अट्ठारस सागरोवमाणि अंतोमुहुत्तद्धसागरोवमेण सादिरेयाणि[1]। पुणो वीस वावीस तेवीस चउवीस पंचवीस छव्वीस सत्तावीस अट्ठावीस एगूणतीस तीस एक्कतीस बत्तीस तेत्तीस सागरोवमाणि[2] संपुण्णाणि। भवणवासियप्पहुडि जाव उवरिमगेवज्जे त्ति किरियाकम्मं केवचिरं कालादो होदि ? णाणाजीवं पडुच्च सव्वद्धा। एगजीवं पडुच्च जहण्णेण अंतोमुहुत्तं। उक्कस्सेण दिवड्डसागरोवमं, पलिदोवमं सादिरेयं, [पलिदोवमं सादिरेयं]। एदे तिण्णि वि काला छपज्जत्तिसमाणण-विस्समण-विसोहिआवूरणअंतोमुहुत्तेहि तीहि ऊणा। उवरिमेसु[3] किरियाकम्मुक्कस्सकालस्स पओगकम्मभंगो। अच्चि-अच्चिमालिणि-वइर-वइरोयण-सोम-सोमरुइ-अंक-फलीहि-आइच्चेसु किरियाकम्मं केवचिरं कालादो होदि ? णाणाजीवं पडुच्च सव्वद्धा। एगजीवं पडुच्च जहण्णेण एक्कत्तीससागरोवमाणि समयाहियाणि। उक्कस्सेण वत्तीस सागरोवमाणि। विजय-वैजयंत-जयंत-अवराइदेसु किरियाकम्मं केवचिरं कालादो होदि ? णाणाजीवं पडुच्च सव्वद्धा। एगजीवं पडुच्च जहण्णेण वत्तीस सागरोवमाणि समयाहियाणि। उक्कस्सेण तेत्तीसं सागरोवमाणि। सव्वट्ठसिद्धिविमाण-

सागर, एक समय अधिक इकतीस सागर, और एक समय अधिक बत्तीस सागर है। उत्कृष्ट काल डेढ़ सागर, साधिक एक पल्य, साधिक एक पल्य, अन्तर्मुहूर्त अधिक अढ़ाई सागर, अन्तर्मुहूर्त अधिक साढ़े सात सागर, अन्तर्मुहूर्त अधिक साढ़े दस सागर, अन्तर्मुहूर्त अधिक साढ़े चौदह सागर, अन्तर्मुहूर्त अधिक साढ़े सोलह सागर, अन्तर्मुहूर्त अधिक साढ़े अठारह सागर, फिर सम्पूर्ण बीस सागर, बाईस सागर, तेईस सागर, चौवीस सागर, पच्चीस सागर, छब्बीस सागर, सत्ताईस सागर, अट्ठाईस सागर, उनतीस सागर, तीस सागर, इकतीस सागर, बत्तीस सागर और तेतीस सागर है। भवनवासियोंसे लेकर उपरिम ग्रैवेयक तकके देवोंमें क्रियाकर्मका कितना काल है ? नाना जीवोंकी अपेक्षा सब काल है। एक जीवकी अपेक्षा जघन्य काल अन्तर्मुहूर्त है। और उत्कृष्ट काल भवनत्रिकमें क्रमसे डेढ़ सागर, साधिक एक पल्य और साधिक एक पल्य हैं। ये तीनों ही काल छह पर्याप्तियोंकी समाप्तिका एक अन्तर्मुहूर्त, विश्रामका दूसरा अन्तर्मुहूर्त और विशुद्धिकी पूर्तिका तीसरा अन्तर्मुहूर्त, इन तीन अन्तर्मुहूर्तोंसे हीन हैं। अर्थात् ये तीन अन्तर्मुहूर्त घटा देनेपर अपना अपना उत्कृष्ट काल होता है। इसके आगे नौ ग्रैवेयक तक क्रियाकर्मका उत्कृष्ट काल प्रयोगकर्मके उत्कृष्ट कालके समान हैं। अर्चि, अर्चिमालिनी, वज्र, वैरोचन, सोम, सोमरुचि, अङ्क, स्फटिक और आदित्य, इन नौ अनुदिशोंमें क्रियाकर्मका कितना काल है ? नाना जीवोंकी अपेक्षा सब काल है। एक जीवकी अपेक्षा जघन्य काल एक समय अधिक इकतीस सागर है और उत्कृष्ट काल बत्तीस सागर है। विजय, वैजयन्त, जयन्त और अपराजित इन चार अनुत्तरोंमें क्रियाकर्मका कितना काल है ? नाना जीवोंकी अपेक्षा सब काल है। एक जीवकी अपेक्षा जघन्य काल एक समय अधिक बत्तीस सागर है और उत्कृष्ट काल तेतीस सागर है। सर्वार्थसिद्धिविमानवासी देवोंके क्रियाकर्मका कितना काल है ? नाना

१ अप्रतौ 'सागरोवमसादिरेयाणि', आप्रतौ 'सागरोवमाणि सादिरेयाणि' इति पाठः।
२ आप्रतौ 'एक्कतीस तेत्तीस सागरोवमाणि' इति पाठः। ३ का-ताप्रत्योः 'उवरिमे' इति पाठः।

वासियदेवाणं किरियाकम्मं केवचिरं कालादो होदि ? णाणाजीवं पडुच्च सव्वद्धा । एगजीवं पडुच्च जहण्णुक्कस्सेण तेत्तीसं सागरोवमाणि ।

इंदियाणुवादेण एइंदियाणं पओअकम्म-समोदाणकम्माणि केवचिरं कालादो होंति ? णाणाजीवं पडुच्च सव्वद्धा । एगजीवं पडुच्च जहण्णेण खुद्दाभवग्गहणं । उक्कस्सेण अणंतकालं आवलियाए असंखेज्जदिभागमेत्ता पोग्गलपरियट्टा । बादरेइंदियाणं पओअकम्म-समोदाण-कम्माणि केवचिरं कालादो होंति ? णाणाजीवं पडुच्च सव्वद्धा । एगजीवं पडुच्च जहण्णेण खुद्दाभवग्गहणं । उक्कस्सेण अंगुलस्स असंखेज्जदिभागो असंखेज्जाओ ओसप्पिणि-उस्सप्पिणीओ । बादरेइंदियपज्जत्ताणं पओअकम्म-समोदाणकम्माणि केवचिरं कालादो होंति ? णाणाजीवं पडुच्च सव्वद्धा । एगजीवं पडुच्च जहण्णेण अंतोमुहुत्तं । उक्कस्सेण संखेज्जाणि वस्ससहस्साणि । बादरेइंदियअपज्जत्ताणं पओअकम्म-समोदाणकम्माणि केवचिरं कालादो होंति ? णाणाजीवं पडुच्च सव्वद्धा । एगजीवं पडुच्च जहण्णेण खुद्दाभवग्गहणं । उक्कस्सेण अंतोमुहुत्तं । सुहुमे-इंदियाणं पओअकम्म-समोदाणकम्माणि केवचिरं कालादो होंति ? णाणाजीवं पडुच्च सव्वद्धा । एगजीवं पडुच्च जहण्णेण खुद्दाभवग्गहणं । उक्कस्सेण असंखेज्जा लोगा । सुहुमे-इंदियपज्जत्ताणं पओअकम्म-समोदाणकम्माणि केवचिरं कालादो होंति ? णाणाजीवं पडुच्च सव्वद्धा । एगजीवं पडुच्च जहण्णेण अंतोमुहुत्तं । उक्कस्सेण वि अंतोमुहुत्तं चेव । सुहुमेइंदिय-अपज्जत्ताणं पओअकम्म-समोदाणकम्माणि केवचिरं कालादो होंति । णाणाजीवं पडुच्च

जीवोंकी अपेक्षा सब काल है । एक जीवकी अपेक्षा जघन्य और उत्कृष्ट काल तेतीस सागर है ।

इन्द्रियमार्गणाके अनुवादसे एकेन्द्रियोंके प्रयोगकर्म और समवधान कर्मका कितना काल है ? नाना जीवोंकी अपेक्षा सब काल है । एक जीवकी अपेक्षा जघन्य काल क्षुद्रक भवग्रहण-प्रमाण है और उत्कृष्ट काल अनन्त काल है जो आवलिके असंख्यातवें भागमात्र पुद्गलपरिवर्तन-प्रमाण है । बादर एकेन्द्रियोंके प्रयोगकर्म और समवधानकर्मका कितना काल है ? नाना जीवोंकी अपेक्षा सब काल है । एक जीवकी अपेक्षा जघन्य काल क्षुद्रक भवग्रहणप्रमाण है और उत्कृष्ट काल अंगुलके असंख्यातवें भाग प्रमाण है जो असंख्यात अवसर्पिणी और उत्सर्पिणि-योंके बराबर है । बादर एकेन्द्रिय पर्याप्तकोंके प्रयोगकर्म और समवधानकर्मका कितना काल है ? नाना जीवोंकी अपेक्षा सब काल है । एक जीवकी अपेक्षा जघन्य काल अन्तर्मुहूर्त है और उत्कृष्ट काल संख्यात हजार वर्ष है । बादर एकेन्द्रिय अपर्याप्तकोंके प्रयोगकर्म और समवधान-कर्मका कितना काल है ? नाना जीवोंकी अपेक्षा सब काल है । एक जीवकी अपेक्षा जघन्य काल क्षुद्रक भवग्रहणप्रमाण है । और उत्कृष्ट काल अन्तर्मुहूर्त है । सूक्ष्म एकेन्द्रियोंके प्रयोगकर्म और समवधान कर्मका कितना काल है ? नाना जीवोंकी अपेक्षा सब काल है । एक जीवकी अपेक्षा जघन्य काल क्षुद्रक भवग्रहणप्रमाण है और उत्कृष्ट काल असंख्यात लोकप्रमाण है । सूक्ष्म एकेन्द्रिय पर्याप्तकोंके प्रयोगकर्म और समवधानकर्मका कितना काल है ? नाना जीवोंकी अपेक्षा सब काल है । एक जीवकी अपेक्षा जघन्य काल अन्तर्मुहूर्त है और उत्कृष्ट काल भी अन्तर्मुहूर्त ही है । सूक्ष्म एकेन्द्रिय अपर्याप्तकोंके प्रयोगकर्म और समवधान कर्मका कितना काल है ? नाना जीवोंकी अपेक्षा सब काल है । एक

सव्वद्धा । एगजीवं पडुच्च जहण्णेण खुद्दाभवग्गहणं । उक्कस्सेण अंतोमुहुत्तं ।

वेइंदिय-तेइंदिय-चउरिंदियाणं तेसिं चेव पज्जत्ताणं च पओअकम्म-समोदाणकम्माणि केवचिरं कालादो होंति ? णाणाजीवं पडुच्च सव्वद्धा । एगजीवं पडुच्च जहण्णेण खुद्दाभवग्गहणं अंतोमुहुत्तं । उक्कस्सेण संखेज्जाणि वाससहस्साणि । वेइंदिय-तेइंदिय-चउरिंदिय-अपज्जत्ताणं पओअकम्म-समोदाणकम्माणि केवचिरं कालादो होंति ? णाणाजीवं पडुच्च सव्वद्धा । एगजीवं पडुच्च जहण्णेण खुद्दाभवग्गहणं । उक्कस्सेण असीदि-सट्ठि-ताल अंतोमुहुत्तं[1] । पंचिंदिय-पंचिंदियपज्जत्ताणं पओअकम्म-समोदाणकम्माणि केवचिरं कालादो होंति ? णाणा-जीवं पडुच्च सव्वद्धा । एगजीवं पडुच्च जहण्णेण[2] खुद्दाभवग्गहणं अंतोमुहुत्तं । उक्कस्सेण सागरोवमसहस्सं पुव्वकोडिपुधत्तेणब्भहियं सागरोवमसदपुधत्तं । आधाकम्म-इरियावहकम्म-तवोकम्म-किरियाकम्माणमोघभंगो । पंचिंदियअपज्जत्ताणं पओअकम्म-समोदाणकम्माणि केवचिरं कालादो होंति ? णाणाजीवं पडुच्च सव्वद्धा । एगजीवं पडुच्च जहण्णेण खुद्दाभवग्गहणं । उक्कस्सेण चउवीस अंतोमुहुत्तं[3] ।

कायाणुवादेण पुढविकाइय-आउकाइय-तेउकाइय-वाउकाइय[4]-सुहुमपुढविकाइय-सुहुम-आउकाइय-सुहुमतेउकाइय-सुहुमवाउकाइय-सुहुमवणप्फदिकाइय-सुहुमणिगोदाणं पओअकम्म-

जीवकी अपेक्षा जघन्य काल क्षुद्रक भवग्रहणप्रमाण है और उत्कृष्ट काल अन्तर्मुहूर्त है ।

द्वीन्द्रिय, त्रीन्द्रिय और चतुरिन्द्रिय जीवोंके तथा उन्हींके पर्याप्त जीवोंके प्रयोगकर्म और समवधानकर्मका कितना काल है ? नाना जीवोंकी अपेक्षा सब काल है । एक जीवकी अपेक्षा जघन्य काल क्षुद्रक भवग्रहणप्रमाण और अन्तर्मुहूर्त है । उत्कृष्ट काल संख्यात हजार वर्ष है । द्वीन्द्रिय, त्रीन्द्रिय और चतुरिन्द्रिय अपर्याप्त जीवोंके प्रयोगकर्म और समवधानकर्मका कितना काल है ? नाना जीवोंकी अपेक्षा सब काल है । एक जीवकी अपेक्षा जघन्य काल क्षुद्रक भवग्रहणप्रमाण है और उत्कृष्ट काल अस्सी, साठ और चालीस अन्तर्मुहूर्तप्रमाण है । पंचेन्द्रिय और पंचेन्द्रिय पर्याप्तकोंके प्रयोगकर्म और समवधानकर्मका कितना काल है ? नाना जीवोंकी अपेक्षा सब काल है । एक जीवकी अपेक्षा जघन्य काल क्षुद्रक भवग्रहणप्रमाण और अन्तर्मुहूर्त है । तथा उत्कृष्ट काल पूर्वकोटिपृथक्त्व अधिक हजार सागर और सौ सागर पृथक्त्व प्रमाण है । अधःकर्म, ईर्यापथकर्म, तपःकर्म और क्रियाकर्मका काल ओघके समान है । पंचेन्द्रिय अपर्याप्तकोंके प्रयोगकर्म और समवधानकर्मका कितना काल है ? नाना जीवोंकी अपेक्षा सब काल है । एक जीवकी अपेक्षा जघन्य काल क्षुद्रक भवग्रहणप्रमाण है । और उत्कृष्ट काल चौवीस अन्तर्मुहूर्त है ।

कायमार्गणाके अनुवादसे पृथिवीकायिक, जलकायिक, अग्निकायिक, वायुकायिक, सूक्ष्म पृथिवीकायिक, सूक्ष्म जलकायिक, सूक्ष्म अग्निकायिक, सूक्ष्म वायुकायिक, सूक्ष्म वनस्पतिकायिक और सूक्ष्म निगोदजीवोंके प्रयोगकर्म और समवधानकर्मका कितना काल है ? नाना जीवोंकी

१ ताप्रतौ ' अंतोमुहुत्ता ' इति पाठः । २ आ-का-ताप्रतिषु ' णाणाजीवं पडुच्च जहण्णेण ' इति पाठः । ३ अ-आप्रत्योः 'अंतोमुहुत्तो', काप्रतौ 'अंतोमुहुत्तं' इति पाठः । ४ ताप्रतौ 'वाउकाइय-तेउकाइय-' इति पाठः ।

समोदाणकम्माणि केवचिरं कालादो होंति ? णाणाजीवं पडुच्च सव्वद्धा । एगजीवं पडुच्च जहण्णेण खुद्दाभवग्गहणं । उक्कस्सेण असंखेज्जा लोगा । बादरपुढवि०-बादरआउ०-बादरतेउ०-बादरवाउ०-बादरवणप्फदिपत्तेयसरीर-बादरणिगोदपदिट्ठिदाणं पओअकम्म-समोदाणकम्माणि केवचिरं कालादो होंति ? णाणाजीवं पडुच्च सव्वद्धा । एगजीवं पडुच्च जहण्णेण खुद्दाभवग्गहणं । उक्कस्सेण कम्मट्ठिदी । तेसिं चेव पज्जत्ताणं पओअकम्म-समोदाणकम्माणि केवचिरं कालादो होंति ? णाणाजीवं पडुच्च सव्वद्धा । एगजीवं पडुच्च जहण्णेण अंतोमुहुत्तं । उक्कस्सेण संखेज्जाणि वस्ससहस्साणि । तेसिं चेव अपज्जत्ताणं पओअकम्म-समोदाणकम्माणि केवचिरं कालादो होंति? णाणाजीवं पडुच्च सव्वद्धा। एगजीवं पडुच्च जहण्णेण खुद्दाभवग्गहणं। उक्कस्सेण अंतोमुहुत्तं । एवं सुहुमअपज्जत्ताणं । सुहुमपज्जत्ताणं पि एवं चेव । णवरि एगजीवं पडुच्च जहण्णेण वि अंतोमुहुत्तं । वणप्फदिकाइयाणं पओअकम्म-समोदाणकम्माणि केवचिरं कालादो होंति ? णाणाजीवं पडुच्च सव्वद्धा । एगजीवं पडुच्च जहण्णेण खुद्दाभवग्गहणं । उक्कस्सेण अणंतकालमसंखेज्जा पोग्गलपरियट्टा । णिगोदाणं पओअकम्म-समोदाणकम्माणि केवचिरं कालादो होंति ? णाणाजीवं पडुच्च सव्वद्धा । एगजीवं पडुच्च जहण्णेण खुद्दाभवग्गहणं । उक्कस्सेण अड्ढाइज्जपोग्गलपरियट्टा । बादरणिगोदाणं पओअकम्म-समोदाणकम्माणि केवचिरं कालादो होंति ? णाणाजीवं पडुच्च सव्वद्धा । एगजीवं पडुच्च जहण्णेण खुद्दा-

---

अपेक्षा सब काल है । एक जीवकी अपेक्षा जघन्य काल क्षुद्रक भवग्रहणप्रमाण है और उत्कृष्ट काल असंख्यात लोकप्रमाण है । बादर पृथिवीकायिक, बादर जलकायिक, बादर अग्निकायिक, बादर वायुकायिक, बादर वनस्पतिकायिक प्रत्येकशरीर और बादर निगोदप्रतिष्ठित जीवोंके प्रयोगकर्म और समवधानकर्मका कितना काल है ? नाना जीवोंकी अपेक्षा सब काल है । एक जीवकी अपेक्षा जघन्य काल क्षुद्रक भवग्रहण प्रमाण है और उत्कृष्ट काल कर्मस्थितिप्रमाण है । उन्हीं पर्याप्त जीवोंके प्रयोगकर्म और समवधानकर्मका कितना काल है ? नाना जीवोंकी अपेक्षा सब काल है । एक जीवकी अपेक्षा जघन्य काल अन्तर्मुहूर्त है । उत्कृष्ट काल संख्यात हजार वर्ष है । उन्हीं अपर्याप्त जीवोंके प्रयोगकर्म और समवधानकर्मका कितना काल है ? नाना जीवोंकी अपेक्षा सब काल है । एक जीवकी अपेक्षा जघन्य काल क्षुद्रक भवग्रहणप्रमाण है और उत्कृष्ट काल अन्तर्मुहूर्त है । इसी प्रकार सूक्ष्म अपर्याप्तकोंके जानना चाहिए । सूक्ष्म पर्याप्तकोंके भी इसी प्रकार ही जानना चाहिए । इतनी विशेषता है कि इनके एक जीवकी अपेक्षा जघन्य काल भी अन्तर्मुहूर्त है । वनस्पतिकायिक जीवोंके प्रयोगकर्म और समवधानकर्मका कितना काल है ? नाना जीवोंकी अपेक्षा सब काल है । एक जीवकी अपेक्षा जघन्य काल क्षुद्रक भवग्रहणप्रमाण है और उत्कृष्ट अनन्त काल है जो असंख्यात पुद्गलपरिवर्तन प्रमाण है । निगोदजीवोंके प्रयोगकर्म और समवधानकर्मका कितना काल है ? नाना जीवोंकी अपेक्षा सब काल है । एक जीवकी अपेक्षा जघन्य काल क्षुद्रक भवग्रहणप्रमाण है और उत्कृष्ट काल अढ़ाई पुद्गलपरिवर्तन प्रमाण है । बादर निगोदजीवोंके प्रयोगकर्म और समवधानकर्मका कितना काल है ? नाना जीवोंकी अपेक्षा सब काल है । एक जीवकी अपेक्षा जघन्य काल क्षुद्रक भवग्रहण-

भवग्गहणं । उक्कस्सेण कम्मट्ठिदी[1] । तेसिं चेव पज्जत्ताणं पओअकम्म-समोदाणकम्माणि केवचिरं कालादो होंति ? णाणाजीवं पडुच्च सव्वद्धा । एगजीवं पडुच्च जहण्णेण[2] अंतोमुहुत्तं । उक्कस्सेण वि अंतोमुहुत्तं[3] । तेसिं चेव अपज्जत्ताणं पओअकम्म-समोदाणकम्माणि केवचिरं कालादो होंति ? णाणाजीवं पडुच्च सव्वद्धा । एगजीवं पडुच्च जहण्णेण खुद्दाभवग्गहणं । उक्कस्सेण अंतोमुहुत्तं ।

[तसकाइय-] तसकाइयपज्जत्ताणं पओअकम्म-समोदाणकम्माणि केवचिरं कालादो होंति ? णाणाजीवं पडुच्च सव्वद्धा । एगजीवं पडुच्च जहण्णेण खुद्दाभवग्गहणं अंतोमुहुत्तं । उक्कस्सेण बेसागरोवमसहस्साणि पुव्वकोडिपुधत्तेणब्भहियाणि बेसागरोवमसहस्साणि । सेसपदाणमोघभंगो । तसकाइयअपज्जत्ताणं पओअकम्म-समोदाणकम्माणि केवचिरं कालादो होंति ? णाणाजीवं पडुच्च सव्वद्धा । एगजीवं पडुच्च जहण्णेण खुद्दाभवग्गहणं । उक्कस्सेण असीदि-सट्ठि-दाल-चदुवीसअंतोमुहुत्ताणं संखेज्जाणं समासमेत्तो[4] ।

जोगाणुवादेण पंचमणजोगि-पंचवचिजोगीणं पओअकम्म-समोदाणकम्माणि केवचिरं कालादो होंति ? णाणाजीवं पडुच्च सव्वद्धा । एगजीवं पडुच्च जहण्णेण एगसमओ[5] । उक्कस्सेण अंतोमुहुत्तं । इरियावथ-तवो-किरियाकम्माणं पि एवं चेव वत्तव्वं ।

प्रमाण है और उत्कृष्ट काल कर्मस्थितिप्रमाण है । उन्हींके पर्याप्त जीवोंके प्रयोगकर्म और समवधानकर्मका कितना काल है ? नाना जीवोंकी अपेक्षा सब काल है । एक जीवकी अपेक्षा जघन्य काल अन्तर्मुहूर्त है और उत्कृष्ट काल भी अन्तर्मुहूर्त है । उन्हींके अपर्याप्त जीवोंके प्रयोगकर्म और समवधानकर्मका कितना काल है ? नाना जीवोंकी अपेक्षा सब काल है । एक जीवकी अपेक्षा जघन्य काल क्षुद्रक भवग्रहणप्रमाण है और उत्कृष्ट काल अन्तर्मुहूर्त है ।

त्रसकायिक और त्रसकायिक पर्याप्त जीवोंके प्रयोगकर्म और समवधानकर्मका कितना काल है ? नाना जीवोंकी अपेक्षा सब काल है । एक जीवकी अपेक्षा जघन्य काल क्षुद्रक भवग्रहणप्रमाण और अन्तर्मुहूर्त है । तथा उत्कृष्ट काल पूर्वकोटिपृथक्त्व अधिक दो हजार सागर और पूरा दो हजार सागर है । शेष पदोंका काल ओघके समान है । त्रसकायिक अपर्याप्तकोंके प्रयोगकर्म और समवधानकर्मका कितना काल है ? नाना जीवोंकी अपेक्षा सब काल है । एक जीवकी अपेक्षा जघन्य काल क्षुद्रक भवग्रहणप्रमाण है और उत्कृष्ट काल अस्सी, साठ, चालीस और चौवीस संख्यात अन्तर्मुहूर्तोंका जितना जोड़ हो उतना है ।

योगमार्गणाके अनुवादसे पांचों मनोयोगी और पांचों वचनयोगी जीवोंके प्रयोगकर्म और समवधानकर्मका कितना काल है ? नाना जीवोंकी अपेक्षा सब काल है । एक जीवकी अपेक्षा जघन्य काल एक समय है और उत्कृष्ट काल अन्तर्मुहूर्त है । ईर्यापथकर्म, तपःकर्म और क्रियाकर्मका

१ प्रतिषु ' कम्मट्ठिदी ' इत्येतस्य स्थाने ' अंगुलस्स असंखेज्जदिभागो असंखेज्जाओ ओसप्पिणि-उस्सप्पिणीओ ' इति पाठः । २ आप्रतौ ' अंतोमुहुत्तं ' इत्यत आरभ्य ' जहण्णेण ' पदपर्यन्तः पाठस्त्रुटितोऽस्ति । ३ प्रतिषु ' वि अंतोमुहुत्तं ' इत्येतस्य स्थाने ' संखेज्जाणि वस्ससहस्साणि ' इति पाठः । ४ ताप्रतौ ' छमासमेत्ता ' इति पाठः । ५ ताप्रतौ ' णाणजीवं० एगजीवं० एगसमओ ' इति पाठः । अस्मिन् प्रकरणेऽन्यत्रापि च ताप्रतौ ' णाणाजीवं पडुच्च सव्वद्धा ' इत्येतस्य स्थाने ' णाणाजीवं० ' इति पाठः ।

आधाकम्मस्स ओघभंगो । वेउव्वियकायजोगीसु पओअकम्म-समोदाणकम्म-किरियाकम्माणि केवचिरं कालादो होंति ? णाणाजीवं पडुच्च सव्वद्धा । एगजीवं पडुच्च जहण्णेण एगसमओ । उक्कस्सेण अंतोमुहुत्तं । कायजोगीसु पओअकम्म-समोदाणकम्माणि केवचिरं कालादो होंति ? णाणाजीवं पडुच्च सव्वद्धा । एगजीवं पडुच्च जहण्णेण अंतोमुहुत्तं । उक्कस्सेण अणंतकालमसंखेज्जा पोग्गलपरियट्टा । सेसपदाणमोघभंगो । णवरि किरिया-कम्मं जहण्णमंतोमुहुत्तं । एवमोरालियकायजोगीणं । णवरि जम्हि अणंतकालं तम्हि बावीस-वस्ससहस्साणि अंतोमुहुत्तूणाणि ।

ओरालियमिस्सकायजोगीसु पओअकम्म-समोदाणकम्माणि केवचिरं कालादो होंति ? णाणाजीवं पडुच्च सव्वद्धा । एगजीवं पडुच्च जहण्णेण एगसमओ । कुदो ? कवाडगद-केवलिम्हि तदुवलंभादो । उक्कस्सेण अंतोमुहुत्तं । तं कत्थुवलब्भदे[1] ? सव्वट्ठसिद्धीदो आगंतूण मणुस्सेसु उप्पण्णम्मि । इरियावह-तवोकम्माणि केवचिरं कालादो होंति ? णाणा-जीवं० जहण्णेणं[2] एगसमओ । कुदो ? कवाडगदकेवलिम्हि तदुवलंभादो । उक्कस्सेण संखेज्जा समया । कुदो ? ओदरण-चडणवावाराणं कवाडं पडिवण्णेसु सजोगिजिणेसु संखेज्जसमयाणं-

भी काल इसी प्रकार कहना चाहिये । अधःकर्मका काल ओघके समान है । वैक्रियिक-काययोगियोंमें प्रयोगकर्म, समवधानकर्म और क्रियाकर्मका कितना काल है ? नाना जीवोंकी अपेक्षा सब काल है । एक जीवकी अपेक्षा जघन्य काल एक समय है । और उत्कृष्ट काल अन्तर्मुहूर्त है । काययोगियोंमें प्रयोगकर्म और समवधानकर्मका कितना काल है ? नाना जीवोंकी अपेक्षा सब काल है । एक जीवकी अपेक्षा जघन्य काल अन्तर्मुहूर्त है और उत्कृष्ट काल अनन्त काल है जो असंख्यात पुद्गलपरिवर्तनोंके बराबर है । शेष पदोंका काल ओघके समान है । इतनी विशेषता है कि क्रियाकर्मका जघन्य काल अन्तर्मुहूर्त है । इसी प्रकार औदारिक-काययोगी जीवोंके सब पदोंका काल कहना चाहिये । इतनी विशेपता है कि जहां अनन्त काल है वहां अन्तर्मुहूर्त कम बाईस हजार वर्ष कहना चाहिये ।

औदारिकमिश्रकाययोगियोंमें प्रयोगकर्म और समवधानकर्मका कितना काल है ? नाना जीवोंकी अपेक्षा सब काल है । एक जीवकी अपेक्षा जघन्य काल एक समय है, क्योंकि कपाट-समुद्धातको प्राप्त केवली जिनके वह पाया जाता है । उत्कृष्ट काल अन्तर्मुहूर्त है ।

शंका—यह कहां पाया जाता है ?

समाधान—सर्वार्थसिद्धिसे आकर मनुष्योंमें उत्पन्न हुए जीवके वह पाया जाता है ।

ईर्यापथकर्म और तपःकर्मका कितना काल है ? नाना जीवोंकी अपेक्षा जघन्य काल एक समय है, क्योंकि कपाटसमुद्धातको प्राप्त केवली जिनके वह पाया जाता है । उत्कृष्ट काल संख्यात समय है, क्योंकि जो सयोगी जिन निरन्तर उतरने और चढ़नेके व्यापार द्वारा कपाट-

१ अ-आप्रत्योः ' तं कुदो लब्भदे ' इति पाठः । २ ताप्रतौ ' णाणाजीवं० एगजीवं० जहण्णेण ', अ-आ-काप्रतिषु ' णाणाजीवं पडुच्च सव्वद्धा एगजीवं पडुच्च जहण्णेण ' इति पाठः ।

मुवलंभादो। एगजीवं पडुच्च जहण्णुक्कस्सेण एगसमओ। किरियाकम्मं केवचिरं कालादो होदि? णाणाजीवं पडुच्च जहण्णेण अंतोमुहुत्तं। उक्कस्सेण वि अंतोमुहुत्तं चेव। णवरि जहण्णादो उक्कस्सं संखेज्जगुणं, भूओकालुवलंभादो। एगजीवं पडुच्च जहण्णेण अंतोमुहुत्तं। एदं कत्थुवलब्भदे[1]? छट्ठीदो पुढवीदो आगंतूण मणुस्सेसु उववण्णम्मि। उक्कस्सेण वि अंतोमुहुत्तं चेव। सव्वट्ठसिद्धीदो आगंतूण मणुस्सेसु उववण्णम्मि एसो उक्कस्सकालो घेत्तव्वो।

वेउव्वियमिस्सकायजोगीसु पओअकम्म-समोदाणकम्म-किरियाकम्माणि केवचिरं कालादो होंति? णाणाजीवं पडुच्च जहण्णेण अंतोमुहुत्तं। उक्कस्सेण पलिदोवमस्स असंखेज्जदिभागो। एगजीवं पडुच्च जहण्णेण अंतोमुहुत्तं। कत्थुवलब्भदे? सव्वट्ठसिद्धिम्हि उववण्णछम्मासखवणगिलाणसाहुम्मि। उक्कस्सकालो वि अंतोमुहुत्तं चेव। एसो कालो सत्तमाए पुढवीए उप्पण्णम्हि सव्वचिरेण कालेण पज्जत्तिं गदचक्कहरम्मि उवलब्भदे। णवरि किरियाकम्मस्स पढमाए पुढवीए उप्पण्णसम्माइट्ठिम्हि उक्कस्सकालो वत्तव्वो।

आहारकायजोगीसु पओअकम्म-समोदाणकम्म-तवोकम्म-किरियाकम्माणि केवचिरं

समुद्घातको प्राप्त हो रहे हैं उनके संख्यात समय पाये जाते हैं। एक जीवकी अपेक्षा जघन्य और उत्कृष्ट काल एक समय है। क्रियाकर्मका कितना काल है? नाना जीवोंकी अपेक्षा जघन्य काल अन्तर्मुहूर्त है। उत्कृष्ट काल भी अन्तर्मुहूर्त ही है। इतनी विशेषता है कि जघन्यसे उत्कृष्ट काल संख्यातगुणा है, क्योंकि यह बहुत काल पाया जाता है। एक जीवकी अपेक्षा जघन्य काल अन्तर्मुहूर्त है।

शंका—यह कहां पाया जाता है?

समाधान—वह छठी पृथिवीसे आकर मनुष्योंमें उत्पन्न हुए जीवके पाया जाता है।

उत्कृष्ट काल भी अन्तर्मुहूर्त ही है। सर्वार्थसिद्धिसे आकर मनुष्योंमें उत्पन्न हुए जीवके यह उत्कृष्ट काल ग्रहण करना चाहिए।

वैक्रियिकमिश्रकाययोगियोंमें प्रयोगकर्म, समवधानकर्म और क्रियाकर्मका कितना काल है? नाना जीवोंकी अपेक्षा जघन्य काल अन्तर्मुहूर्त है और उत्कृष्ट काल पल्यके असंख्यातवें भागप्रमाण है। एक जीवकी अपेक्षा जघन्य काल अन्तर्मुहूर्त है।

शंका—यह काल कहांपर उपलब्ध होता है?

समाधान—छह मास तक क्षपणा करनेवाला जो गिलान साधु सर्वार्थसिद्धिके देवोंमें उत्पन्न होता है उसके यह काल उपलब्ध होता है।

उत्कृष्ट काल भी अन्तर्मुहूर्त ही है। जो चक्रधर मरकर सातवीं पृथिवीमें उत्पन्न होकर अति दीर्घ काल द्वारा पर्याप्तियोंको समाप्त करता है उस नारकी जीवके यह काल उपलब्ध होता है। इतनी विशेपता है कि क्रियाकर्मका उत्कृष्ट काल मरकर प्रथम पृथिवीमें उत्पन्न हुए सम्यग्दृष्टि जीवके कहना चाहिये।

आहारककाययोगियोंमें प्रयोगकर्म, समवधानकर्म, तपःकर्म और क्रियाकर्मका कितना काल

१ काप्रतौ 'कत्थुवलंभादो' इति पाठः। २ प्रतिपु 'सव्वट्ठसिद्धीदो' इति पाठः।

कालादो होंति ? णाणेगजीवं पडुच्च जहण्णेण एगसमओ । उक्कस्सेण अंतोमुहुत्तं । आहार-मिस्सकायजोगीणमेवं चेव वत्तव्वं । णवरि जहण्णुक्कस्सेण अंतोमुहुत्तं, तत्थ मरण-जोगपरावत्तीणमभावादो । आहारदुगम्मि आधाकम्मस्स ओघभंगो । कम्मइयकायजोगीसु पओअ-कम्म-समोदाणकम्माणि केवचिरं कालादो होंति ? णाणाजीवं पडुच्च सव्वद्धा । एगजीवं पडुच्च जहण्णेण एगसमओ । उक्कस्सेण तिण्णि समया । इरियावह-तवोकम्माणि केवचिरं कालादो होंति ? णाणाजीवं पडुच्च जहण्णेण तिण्णि समया । उक्कस्सेण संखेज्जा समया । एगजीवं पडुच्च जहण्णुक्कस्सेण तिण्णि समया । किरियाकम्मं केवचिरं कालादो होदि ? णाणाजीवं पडुच्च जहण्णेण एगसमओ । उक्कस्सेण आवलियाए असंखेज्जदिभागो । एगजीवं पडुच्च जहण्णेण एगसमओ । उक्कस्सेण बे समया ।

वेदाणुवादेण इत्थिवेद-पुरिसवेदाणं पओअकम्म-समोदाणकम्माणि केवचिरं कालादो होंति ? णाणाजीवं पडुच्च सव्वद्धा । एगजीवं पडुच्च जहण्णेण[1] एगसमओ अंतोमुहुत्तं[2] । उक्कस्सेण पलिदोवमसदपुधत्तं सागरोवमसदपुधत्तं । तवोकम्मं केवचिरं कालादो होदि ? णाणाजीवं पडुच्च [सव्वद्धा ।] एगजीवं पडुच्च जहण्णेण[3] एगसमओ । उक्कस्सेण पुव्वकोडी देसूणा । किरियाकम्मं केवचिरं कालादो होदि ? णाणाजीवं [पडुच्च सव्वद्धा ।]

है ? नाना जीवों और एक जीवकी अपेक्षा जघन्य काल एक समय है और उत्कृष्ट काल अन्तर्मुहूर्त है । आहारमिश्रकाययोगी जीवोंके उक्त सब पदोंका काल इसी प्रकार कहना चाहिये । इतनी विशेषता है कि यहांपर जघन्य और उत्कृष्ट दोनों प्रकारका काल अन्तर्मुहूर्त है, क्योंकि इस योगके रहते हुए न तो मरण होता है और न योगका परिवर्तन भी होता है । आहारद्विकमें अधःकर्मका काल ओघके समान है ।

कार्मणकाययोगवाले जीवोंमें प्रयोगकर्म और समवधानकर्मका कितना काल है ? नाना जीवोंकी अपेक्षा सब काल है । एक जीवकी अपेक्षा जघन्य काल एक समय है और उत्कृष्ट काल तीन समय है । ईर्यापथकर्म और तपःकर्मका कितना काल है ? नाना जीवोंकी अपेक्षा जघन्य काल तीन समय है और उत्कृष्ट काल संख्यात समय है । एक जीवकी अपेक्षा जघन्य और उत्कृष्ट काल तीन समय है । क्रियाकर्मका कितना काल है ? नाना जीवोंकी अपेक्षा जघन्य काल एक समय है और उत्कृष्ट काल आवलिके असंख्यातवें भागप्रमाण है । एक जीवकी अपेक्षा जघन्य काल एक समय है और उत्कृष्ट काल दो समय है ।

वेदमार्गणाके अनुवादसे स्त्रीवेदी और पुरुषवेदी जीवोंके प्रयोगकर्म और समवधानकर्मका कितना काल है ? नाना जीवोंकी अपेक्षा सब काल है । एक जीवकी अपेक्षा जघन्य काल एक समय और अन्तर्मुहूर्त है और उत्कृष्ट काल सौ पल्योपमपृथक्त्व प्रमाण और सौ सागरोपमपृथक्त्व-प्रमाण है । तपःकर्मका कितना काल है ? नाना जीवोंकी अपेक्षा सब काल है । एक जीवकी अपेक्षा जघन्य काल एक समय है और उत्कृष्ट काल कुछ कम पूर्वकोटिप्रमाण है । क्रियाकर्मका

१ काप्रतौ 'णाणाजीवं पडुच्च जह०', ताप्रतौ 'णाणाजीवं प० जह०' इति पाठः । २ ताप्रतावतोऽग्रे 'वा' इत्यधिकः पाठोऽस्ति । ३ काप्रतौ 'एगजीवेण जह०', इति पाठः ।

एगजीवं पडुच्च जहण्णेण एगसमओ[1] अंतोमुहुत्तं । उक्कस्सेण आदिल्लेहि तीहि अंतोमुहुत्तेहि ऊणाणि पणवण्णपलिदोवमाणि बेपुव्वकोडीहि तेत्तीससागरोवमेहि य सादिरेयाणि छावट्ठि-सागरोवमाणि । णवुंसयवेदाणं पओअकम्म-समोदाणकम्माणि केवचिरं कालादो होंति ? णाणाजीवं [पडुच्च सव्वद्धा ।] एगजीवं पडुच्च जहण्णेण एगसमओ । उक्कस्सेण अणंत-कालमसंखेज्जा पोग्गलपरियट्टा । तवोकम्मस्स इत्थिवेदभंगो । किरियाकम्मं केवचिरं कालादो होदि ? णाणाजीवं [पडुच्च सव्वद्धा ।] एगजीवं पडुच्च जहण्णेण एगसमओ । उक्कस्सेण तेत्तीसं सागरोवमाणि देसूणाणि । अवगदवेदाणं पओअकम्म-समोदाणकम्माणि इरियावह-कम्म-तवोकम्माणि केवचिरं कालादो होंति ? णाणाजीवं [पडुच्च सव्वद्धा ।] एगजीवं पडुच्च जहण्णेण एगसमओ । उक्कस्सेण पुव्वकोडी देसूणा ।

कितना काल है ? नाना जीवोंकी अपेक्षा सब काल है । एक जीवकी अपेक्षा जघन्य काल एक समय और अन्तर्मुहूर्त है । उत्कृष्ट काल आदिके तीन अन्तर्मुहूर्त कम पचवन पल्य तथा दो पूर्वकोटि और तेतीस सागर अधिक छ्यासठ सागर है । नपुंसकवेदवाले जीवोंके प्रयोगकर्म और समवधान कर्मका कितना काल है ? नाना जीवोंकी अपेक्षा सब काल है । एक जीवकी अपेक्षा जघन्य काल एक समय है और उत्कृष्ट काल अनन्त काल है जो असंख्यात पुद्गलपरिवर्तनप्रमाण है । तपःकर्मका भंग स्त्रीवेदी जीवोंके समान है । क्रियाकर्मका कितना काल है ? नाना जीवोंकी अपेक्षा सब काल है । एक जीवकी अपेक्षा जघन्य काल एक समय है और उत्कृष्ट काल कुछ कम तेतीस सागर है । अपगतवेदवाले जीवोंके प्रयोगकर्म, समवधानकर्म, ईर्यापथकर्म और तपःकर्मका कितना काल है ? नाना जीवोंकी अपेक्षा सब काल है । एक जीवकी अपेक्षा जघन्य काल एक समय है और उत्कृष्ट काल कुछ कम पूर्वकोटि प्रमाण है ।

विशेषार्थ—यहां वेदमार्गणाकी अपेक्षा सब कर्मोंके कालका निर्देश किया गया है । स्त्रीवेदी जीवोंके प्रयोगकर्म और समवधानकर्मका एक जीवकी अपेक्षा जघन्य काल एक समय बतलानेका कारण यह है कि जो स्त्रीवेदी जीव उपशमश्रेणिपर आरोहण करनेके बाद उतरते समय एक समयके लिये स्त्रीवेदी होकर मरणकर देव हो जाता है उसके यह जघन्य काल एक समय पाया जाता है । पुरुषवेदीके यह काल घटित नहीं होता, क्योंकि, पुरुषवेदी मरकर देवोंमें उत्पन्न होनेपर पुरुषवेदी ही रहता है, इसलिये पुरुषवेदी जीवके उक्त दोनों पदोंका जघन्य काल अन्तर्मुहूर्त कहते समय उपशमश्रेणिसे उतारकर पुरुषवेदके उदयसे सम्पन्न करे और अन्तर्मुहूर्त कालके भीतर द्वितीय वार उपशमश्रेणिपर आरोहण कराके अपगतवेद अवस्थामें ले जाय । इस प्रकार पुरुषवेदी जीवके एक जीवकी अपेक्षा उक्त दोनों पदोंका जघन्य काल अन्तर्मुहूर्त प्राप्त हो जाता है । एक जीवकी अपेक्षा तपःकर्मका जघन्य काल एक समय दोनों वेदवाले जीवोंको उपशमश्रेणिसे उतारकर और एक समयके लिये सवेदी बनाकर बादमें मरण कराके घटित करना चाहिये । जो स्त्रीवेदी जीव उपशमश्रेणिसे उतरकर और एक समयके लिये अप्रमत्त होकर मरणकर देव होता है उसके एक जीवकी अपेक्षा क्रियाकर्मका जघन्य काल एक समय प्राप्त होता है । इसी प्रकार जो पुरुषवेदी जीव उपशमश्रेणिसे उतरकर और अन्तर्मुहूर्त कालके

१ काप्रतौ ' णाणाजीवं० एगजीवं जह० एगजीवं० एगसमओ ' इति पाठः ।

कसायाणुवादेण चदुण्णं कसायाणं मणजोगीणं भंगो। अकसाईणमवगदवेदभंगो। णाणाणुवादेण मदिअण्णाणि-सुदअण्णाणीणं पओअकम्म-समोदाणकम्माणि केवचिरं कालादो होंति? णाणाजीवं [पडुच्च सव्वद्धा।] एगजीवं पडुच्च तिण्णिभंगा। तत्थ जो सो सादिओ सपज्जवसिदो तस्स जहण्णेण अंतोमुहुत्तं। उक्कस्सेण अद्धपोग्गलपरियट्टा देसूणा। विभंगणाणीसु पओअकम्म-समोदाणकम्माणि केवचिरं कालादो होंति? णाणाजीवं [पडुच्च सव्वद्धा।] एगजीवं पडुच्च जहण्णेण एगसमओ। एसो कत्थुवलब्भदे? देव-णेरइएसु सासणं गंतूण बिदियसमए मुदजीवम्मि। उक्कस्सेण तेत्तीसं सागरोवमाणि सत्तमाए[1] पुढवीए आदिल्लअंतोमुहुत्तेण ऊणाणि। आभिणिबोहिय०-सुद०-ओहिणाणाणं पओअकम्म-समोदाणकम्म-किरियाकम्माणि केवचिरं कालादो होंति? णाणाजीवं पडुच्च सव्वद्धा। एगजीवं पडुच्च जहण्णेण अंतोमुहुत्तं। उक्कस्सेण छावट्ठिसागरोवमाणि सादिरेयाणि। तवोकम्मं

लिये अप्रमत्त होकर पुनः उपशमश्रेणिपर आरोहण करता है उसके क्रियाकर्मका जघन्य काल अन्तर्मुहूर्त प्राप्त होता है। तथा नपुंसकवेदवाले जीवोंके जघन्य काल एक समय यथासम्भव स्त्रीवेदवाले जीवोंके समान घटित कर लेना चाहिये। अपगतवेदवाले जीवोंके सम्भव सब पदोंका एक जीवकी अपेक्षा एक समयप्रमाण जघन्य काल एक समय तक अपगतवेदी रखकर बादमें मरण करानेसे प्राप्त होता है। इस प्रकार एक जीवकी अपेक्षा सब पदोंका जघन्य काल एक समय कहां किस प्रकार घटित होता है, इसका विचार किया। शेष कथन सुगम है।

कषायमार्गणाके अनुवादसे चारों कषायवाले जीवोंके सब पदोंका काल मनोयोगी जीवोंके सब पदोंके कालके समान है। और कषायरहित जीवोंके सब पदोंका काल अपगतवेदवाले जीवोंके सब पदोंके कालके समान हैं।

ज्ञानमार्गणाके अनुवादसे मत्यज्ञानी और श्रुताज्ञानी जीवोंके प्रयोगकर्म और समवधान-कर्मका कितना काल है? नाना जीवोंकी अपेक्षा सब काल है। एक जीवकी अपेक्षा तीन भंग होते हैं। उनमें जो सादि-सान्त भंग है उसका जघन्य काल अन्तर्मुहूर्त है और उत्कृष्ट काल कुछ कम अर्ध पुद्गलपरिवर्तनप्रमाण है। विभंगज्ञानी जीवोंमें प्रयोगकर्म और समवधान कर्मका कितना काल है? नाना जीवोंकी अपेक्षा सब काल है। एक जीवकी अपेक्षा जघन्य काल एक समय है।

शंका—यह जघन्य काल कहांपर प्राप्त होता है?

समाधान—देव और नारकियोंमेंसे जो जीव सासादन गुणस्थानको प्राप्त होकर दूसरे समयमें मरकर अन्य गतिमें चला जाता है उसके यह जघन्य काल प्राप्त होता है।

उत्कृष्ट काल प्रारम्भके अन्तर्मुहूर्तसे न्यून तेतीस सागर है जो सातवीं पृथिवीमें प्राप्त होता है। आभिनिबोधिकज्ञानी, श्रुतज्ञानी और अवधिज्ञानी जीवोंके प्रयोगकर्म, समवधानकर्म और क्रियाकर्मका कितना काल है? नाना जीवोंकी अपेक्षा सब काल है। एक जीवकी अपेक्षा जघन्य काल अन्तर्मुहूर्त हैं। उत्कृष्ट काल साधिक छ्यासठ सागर है। तपःकर्मका कितना काल है?

---

१ ताप्रतौ 'सागरोवमाणि। सत्तमाए' इति पाठः।

केवचिरं कालादो होदि ? णाणाजीवं पडुच्च सव्वद्धा । एगजीवं पडुच्च जहण्णेण अंतोमुहुत्तं । उक्कस्सेण पुव्वकोडी देसूणा । इरियावहकम्मं केवचिरं कालादो होदि ? णाणेगजीवं[1] पडुच्च जहण्णेण एगसमओ । कुदो ? उवसंतकसायपढमसमए इरियावथकम्मेणं परिणमिय विदियसमए कालं कादूण देवेसु उववण्णम्हि एगसमयकालुवलंभादो । उक्कस्सेण अंतोमुहुत्तं । कुदो ? उवसंत-खीणकसाएसु अंतोमुहुत्तमेत्तकालुवलंभादो । एवं मणपज्जवणाणीणं । णवरि जत्थ छावट्ठिसागरोवमाणि भणिदाणि तत्थ देसूणपुव्वकोडी वत्तव्वा । किरियाकम्मस्स जहण्णेण एगसमओ च[3] वत्तव्वो । केवलणाणीणं पओअकम्म-समोदाणकम्म-इरियावथकम्म-तवोकम्माणि केवचिरं कालादो होंति ? णाणाजीवं पडुच्च सव्वद्धा । एगजीवं पडुच्च जहण्णेण अंतोमुहुत्तं । उक्कस्सेण पुव्वकोडी देसूणा । एवं केवलदंसणीणं पि वत्तव्वं ।

संजमाणुवादेण संजदसव्वपदाणं मणपज्जवभंगो । णवरि इरियावथकम्मकालो उक्कस्सेण पुव्वकोडी देसूणा । सामाइय-छेदोवट्ठावण०-जहाक्खाद-परिहार०संजदाणं पओअकम्म-समोदाणकम्म-इरियावथकम्म-तवोकम्म-किरियाकम्माणि केवचिरं कालादो होंति ? णाणा-

नाना जीवोंकी अपेक्षा सब काल है । एक जीवकी अपेक्षा जघन्य काल अन्तर्मुहूर्त है । उत्कृष्ट काल कुछ कम एक पूर्वकोटि है । ईर्यापथकर्मका कितना काल है ? नाना जीवों और एक जीवकी अपेक्षा जघन्य काल एक समय है, क्योंकि जो जीव उपशान्तकषाय गुणस्थानके प्रथम समयमें ईर्यापथकर्मको प्राप्त होकर दूसरे समयमें मरकर देव हो जाता है उसके एक समय काल प्राप्त होता है । उत्कृष्ट काल अन्तर्मुहूर्त है, क्योंकि उपशान्तकषाय और क्षीणकषाय गुणस्थानोंमें अन्तर्मुहूर्त मात्र काल प्राप्त होता है । इसी प्रकार मनःपर्ययज्ञानी जीवोंके सब पदोंका काल कहना चाहिये । इतनी विशेषता है कि जहां छ्यासठ सागरोपम काल कहा है वहां कुछ कम एक पूर्वकोटि काल कहना चाहिये और क्रियाकर्मका जघन्य काल एक समय कहना चाहिये । केवलज्ञानी जीवोंके प्रयोगकर्म, समवधानकर्म, ईर्यापथकर्म और तपःकर्मका कितना काल है ? नाना जीवोंकी अपेक्षा सब काल है । एक जीवकी अपेक्षा जघन्य काल अन्तर्मुहूर्त है । उत्कृष्ट काल कुछ कम एक पूर्वकोटि है । इसी प्रकार केवलदर्शनी जीवोंके भी कहना चाहिये ।

विशेषार्थ—मनःपर्ययज्ञानी जीवके क्रियाकर्मका जघन्य काल एक समय उपमश्रेणिसे उतार कर और अप्रमत्त अवस्थामें एक समय तक क्रियाकर्मरूपसे परिणमा कर बादमें मरण कराकर देव पर्यायमें ले जानेसे प्राप्त होता है ।

संयममार्गणाके अनुवादसे संयत जीवोंके सब पदोंका काल मनःपर्ययज्ञानके सब पदोंके कालके समान है । इतनी विशेपता है कि यहां ईर्यापथकर्मका उत्कृष्ट काल कुछ कम एक पूर्वकोटि है । सामायिकसंयत, छेदोपस्थापनासंयत, यथाख्यातसंयत और परिहारविशुद्धिसंयत जीवोंके प्रयोगकर्म, समवधानकर्म, ईर्यापथकर्म, तपःकर्म और क्रियाकर्मका कितना काल है ?

१ अ-आ-काप्रतिषु 'णाणाजीवं' इति पाठः । २ आ-ताप्रत्योः 'कम्माणि', काप्रतौ त्रुटितोऽत्र पाठः । ३ ताप्रतौ 'च' इति नास्ति ।

जीवं [पडुच्च सव्वद्धा ।] एगजीवं पडुच्च जहण्णेण एगसमओ अंतोमुहुत्तं । उक्कस्सेण पुव्वकोडी देसूणा । णवरि जहाक्खादसंजदेसु[1] किरियाकम्मं णत्थि । सामाइय-छेदोवट्ठावण-परिहार०संजदाणमिरियावथकम्मं णत्थि । सुहुमसांपराइयसुद्धिसंजदाणं पओअकम्म-समोदाणकम्म-तवोकम्माणि केवचिरं कालादो होंति ? णाणेगजीवं पडुच्च जहण्णेण एगसमओ, उक्कस्सेण अंतोमुहुत्तं । संजदासंजदाणं मणपज्जवभंगो । णवरि किरियाकम्मस्स एगजीवं पडुच्च जहण्णेण अंतोमुहुत्तं । इरियावथकम्मं तवोकम्मं णत्थि । असंजदाणं मदिअण्णाणिभंगो । णवरि किरियाकम्मं एगजीवं पडुच्च जहण्णेण अंतोमुहुत्तं । उक्कसेण तेत्तीसं सागरोवमाणि अंतोमुहुत्तूणपुव्वकोडिसादिरेयाणि ।

दंसणाणुवादेण चक्खुदंसणीणं तसपज्जत्तभंगो । णवरि इरियावथकम्मस्स मणपज्जवभंगो । अचक्खुदंसणीणमोघो । णवरि इरियावथकम्मस्स जहण्णेण एगसमओ । उक्कस्सेण अंतोमुहुत्तं । ओधिदंसणीणमोहिणाणिभंगो ।

लेस्साणुवादेण किण्ह-णील-काउलेस्सियाणं पओअकम्म-समोदाणकम्माणि केवचिरं कालादो होंति ? णाणाजीवं पडुच्च सव्वद्धा । एगजीवं पडुच्च जहण्णेण अंतोमुहुत्तं । उक्कस्सेण तेत्तीसं सत्तारस सत्त सागरोवमाणि दोहि अंतोमुहुत्तेहि सादिरेयाणि । किरिया-

नाना जीवोंकी अपेक्षा सब काल है । एक जीवकी अपेक्षा जघन्य काल एक समय और अन्तर्मुहूर्त है । उत्कृष्ट काल कुछ कम एक पूर्वकोटि है । इतनी विशेषता है कि यथाख्यातसंयत जीवोंके क्रियाकर्म नहीं होता । तथा सामायिकसंयत, छेदोपस्थापनासंयत और परिहारविशुद्धिसंयत जीवोंके ईर्यापथकर्म नहीं होता । सूक्ष्मसाम्परायिकशुद्धिसंयत जीवोंके प्रयोगकर्म, समवधानकर्म और तपःकर्मका कितना काल है ? नाना जीवों और एक जीवकी अपेक्षा जघन्य काल एक समय है और उत्कृष्ट काल अन्तर्मुहूर्त है । संयतासंयत जीवोंके सम्भव पदोंका काल मनःपर्ययज्ञानके समान है । इतनी विशेषता है कि यहां क्रियाकर्मका एक जीवकी अपेक्षा जघन्य काल अन्तर्मुहूर्त है । यहां ईर्यापथकर्म और तपःकर्म नहीं होते । असंयत जीवोंके मत्यज्ञानी जीवोंके समान भंग है । इतनी विशेषता है कि इनके क्रियाकर्मका एक जीवकी अपेक्षा जघन्य काल अन्तर्मुहूर्त है और उत्कृष्ट काल अन्तर्मुहूर्त न्यून एक पूर्वकोटि अधिक तेतीस सागर है ।

दर्शनमार्गणाके अनुवादसे चक्षुदर्शनवाले जीवोंके सब पदोंका काल त्रस पर्याप्त जीवोंके समान है । इतनी विशेषता है कि इनके ईर्यापथकर्मका काल मनःपर्ययज्ञानवाले जीवोंके ईर्यापथकर्मके कालके समान है । अचक्षुदर्शनवाले जीवोंके सब पदोंका काल ओघके समान है । इतनी विशेषता है कि ईर्यापथकर्मका जघन्य काल एक समय है और उत्कृष्ट काल अन्तर्मुहूर्त है । अवधिदर्शनवाले जीवोंके सब पदोंका काल अवधिज्ञानवाले जीवोंके सब पदोंके कालके समान हैं ।

लेश्यामार्गणाके अनुवादसे कृष्ण, नील और कापोत लेश्यावाले जीवोंके प्रयोगकर्म और समवधान कर्मका कितना काल है ? नाना जीवोंकी अपेक्षा सब काल है । एक जीवकी अपेक्षा जघन्य काल अन्तर्मुहूर्त है । उत्कृष्ट काल दो अन्तर्मुहूर्त अधिक तेतीस सागर, दो अन्तर्मुहूर्त

१ का-ताप्रत्योः ' जहाक्खा द०सु ' इति पाठः ।

कम्मं केवचिरं कालादो होदि ? णाणाजीवं पडुच्च सव्वद्धा । एगजीवं पडुच्च जहण्णेण अंतोमुहुत्तं । उक्कस्सेण छहि अंतोमुहुत्तेहि ऊणाणि तेत्तीसं सागरोवमाणि, तीहि अंतोमुहुत्तेहि ऊणाणि सत्तारस सत्त सागरोवमाणि । तेउ-पम्मलेस्साणं पओअकम्म-समोदाणकम्म-किरियाकम्माणि केवचिरं कालादो होंति ? णाणाजीवं पडुच्च सव्वद्धा । एगजीवं पडुच्च जहण्णेण पओअकम्म-समोदाणकम्माणमंतोमुहुत्तं । किरियाकम्मस्स एगसमओ । उक्कस्सेणादिल्लंतिमबेअंतोमुहुत्तेहि अंतोमुहुत्तूणद्धसागरोवमेण च सादिरेयाणि बे-अट्ठारससागरोवमाणि । तवोकम्मं केवचिरं कालादो होदि ? णाणाजीवं पडुच्च सव्वद्धा । एगजीवं पडुच्च जहण्णेण एगसमओ । उक्कस्सेण अंतोमुहुत्तं । एवं सुक्कलेस्साए । णवरि किरियाकम्मस्स एगजीवं पडुच्च जहण्णेण अंतोमुहुत्तं । उक्कस्सेणादिल्लंतिमदोहि अंतोमुहुत्तेहि सादिरेयाणि तेत्तीसं सागरोवमाणि । इरियावथ-तवोकम्माणि केवचिरं कालादो होंति ? णाणाजीवं पडुच्च सव्वद्धा । एगजीवं पडुच्च जहण्णेण एगसमओ अंतोमुहुत्तं । उक्कस्सेण पुव्वकोडी देसूणा । कुदो ? इरियावथकम्मस्स एक्को देवो वा णेरइओ वा खइयसम्माइट्ठी पुव्वकोडाउएसु मणुस्सेसु उववण्णो । गब्भादिअट्ठवस्साणमुवरि अप्पमत्त-भावेण संजमं पडिवण्णो । तदो पमत्तो अप्पमत्तो अपुव्वखवगो अणियट्टिखवगो सुहुम-खवगो होदूण खीणकसाओ जादो । इरियावथकम्मस्स आदी दिट्ठा । तदो सजोगिजिणो होदूण जाव पुव्वकोडिं विहरदि ताव इरियावथकम्मं लब्भदि । एवं गब्भादिअट्ठवस्सेहि

अधिक सत्रह सागर और दो अन्तर्मुहूर्त अधिक सात सागर है । क्रियाकर्मका कितना काल है ? नाना जीवोंकी अपेक्षा सब काल है । एक जीवकी अपेक्षा जघन्य काल अन्तर्मुहूर्त है । उत्कृष्ट काल छह अन्तर्मुहूर्त कम तेतीस सागर, तीन अन्तर्मुहूर्त कम सत्रह सागर और तीन अन्तर्मुहूर्त कम सात सागर है । पीत लेश्या और पद्म लेश्यावाले जीवोंके प्रयोगकर्म, समवधानकर्म और क्रियाकर्मका कितना काल है ? नाना जीवोंकी अपेक्षा सब काल है । एक जीवकी अपेक्षा प्रयोगकर्म और समवधानकर्मका जघन्य काल अन्तर्मुहूर्त है और क्रियाकर्मका जघन्य काल एक समय है । उत्कृष्ट काल आदि और अन्तके दो अन्तर्मुहूर्त अधिक तथा अन्तर्मुहूर्त न्यून आधा सागर अधिक दो सागर और अठारह सागर है । तप.कर्मका कितना काल है ? नाना जीवोंकी अपेक्षा सब काल है । एक जीवकी अपेक्षा जघन्य काल एक समय है और उत्कृष्ट काल अन्तर्मुहूर्त है । इसी प्रकार शुक्ल लेश्यामें जानना चाहिये । इतनी विशेषता है कि क्रियाकर्मका एक जीवकी अपेक्षा जघन्य काल अन्तर्मुहूर्त है और उत्कृष्ट काल आदि और अन्तके दो अन्तर्मुहूर्त अधिक तेतीस सागर है । ईर्यापथकर्म और तपःकर्मका कितना काल है ? नाना जीवोंकी अपेक्षा सब काल है । एक जीवकी अपेक्षा जघन्य काल एक समय और अन्तर्मुहूर्त है । तथा उत्कृष्ट काल कुछ कम एक पूर्वकोटि है, क्योंकि कोई एक देव या नारकी क्षायिकसम्यग्दृष्टि जीव पूर्वकोटिप्रमाण आयुवाले मनुष्योंमें उत्पन्न हुआ । वहां गर्भसे लेकर आठ वर्षके बाद अप्रमत्तभावसे संयमको प्राप्त हुआ । तदनन्तर प्रमत्त, अप्रमत्त, अपूर्वक्षपक, अनिवृत्तिक्षपक और सूक्ष्मसाम्परायिकक्षपक होकर क्षीणकषाय हुआ । यहांसे ईर्यापथ कर्मका प्रारम्भ दिखाई देता है । तदनन्तर सयोगकेवली होकर जब तक पूर्वकोटि काल है तब तक ईर्यापथकर्म उपलब्ध होता है ।

अंतोमुहुत्तेहि य ऊणपुव्वकोडिमेत्तइरियावथकम्मउक्कस्सकालुवलंभादो। तवोकम्मस्स वि एवं चेव। णवरि गब्भादिअट्ठवस्सेहि ऊणिया पुव्वकोडी उक्कस्सकालो त्ति भाणिदव्वं।

भवियाणुवादेण भवसिद्धियाणमोघभंगो। णवरि अणादि-अपज्जवसिदभंगो णत्थि। अभवसिद्धियाणं पओअकम्म-समोदाणकम्माणि णाणेगजीवं पडुच्च अणादि-अपज्जवसिदाणि। सम्मत्ताणुवादेण सम्माइट्ठीणमोहिणाणिभंगो। णवरि इरियावथकम्मस्स णाणाजीवं पडुच्च सव्वद्धा। एगजीवं पडुच्च जहण्णेण एगसमओ। उक्कस्सेण पुव्वकोडी देसूणा। एवं खइयसम्माइट्ठीणं पि वत्तव्वं। णवरि किरियाकम्मस्स एगजीवं पडुच्च जहण्णेण अंतोमुहुत्तं। कुदो? अणंताणुबंधिं विसंजोइय अप्पमत्तट्ठाणे दंसणमोहणीयं खविय सव्वलहुअंतोमुहुत्तं[1] किरियाकम्मेणच्छियं[2] अपुव्वखवगपज्जाएण परिणयपढमसमए चेव णट्ठकिरियाकम्मम्मि जीवे जहण्णकालुवलंभादो। उक्कस्सेण देसूणदोपुव्वकोडीहि सादिरेयाणि तेत्तीसं सागरोवमाणि। कुदो? एक्को देवो वा णेरइओ वा वेदगसम्माइट्ठी पुव्वकोडाउएसु मणुस्सेसु उववण्णो। गब्भादिअट्ठवस्साणमुवरि अधापवत्तकरणं अपुव्वकरणं अणियट्टिकरणं च करिय कदकरणिज्जो होदूण खइयसम्माइट्ठी जादो। तदो पुव्वकोडिं जीविदूण तेत्तीससागरोवमट्ठिदिएसु देवेसु-

इस प्रकार गर्भसे लेकर आठ वर्ष और अन्तर्मुहूर्त न्यून एक पूर्वकोटि प्रमाण ईर्यापथकर्मका उत्कृष्ट काल उपलब्ध होता है। तपःकर्मका काल भी इसी प्रकार हैं। इतनी विशेषता है कि इसका गर्भसे लेकर आठ वर्ष कम पूर्वकोटिप्रमाण उत्कृष्ट काल होता है, ऐसा कहना चाहिये।

भव्यमार्गणाके अनुवादसे भव्यसिद्धिक जीवोंके सब पदोंका काल ओघके समान है। इतनी विशेषता है कि इनके कालका अनादि-अनन्त भंग नहीं होता। अभव्यसिद्धिक जीवोंके प्रयोगकर्म और समवधान कर्मका काल नाना जीवों और एक जीवकी अपेक्षा अनादि-अनन्त है।

सम्यक्त्वमार्गणाके अनुवादसे सम्यग्दृष्टियोंके सब पदोंका काल अवधिज्ञानियोंके समान है। इतनी विशेषता है कि इनके ईर्यापथकर्मका नाना जीवोंकी अपेक्षा सब काल है। एक जीवकी अपेक्षा जघन्य काल एक समय है और उत्कृष्ट काल कुछ कम एक पूर्वकोटि है। इसी प्रकार क्षायिकसम्यग्दृष्टियोंके भी कहना चाहिये। इतनी विशेपता है कि क्रियाकर्मका एक जीवकी अपेक्षा जघन्य काल अन्तर्मुहूर्त हैं, क्योंकि, अनन्तानुबन्धिचतुष्ककी विसंयोजना करके और अप्रमत्त गुणस्थानमें दर्शनमोहनीयकी क्षपणा करके सबसे लघु अन्तर्मुहूर्त काल तक क्रियाकर्मके साथ रह कर जिस जीवने अपूर्वकरण क्षपक पर्यायको प्राप्त होकर उसके प्रथम समयमें ही क्रियाकर्मका अभाव कर दिया है उसके क्रियाकर्मका जघन्य काल उपलब्ध होता है। उत्कृष्ट काल कुछ कम दो पूर्वकोटि अधिक तेतीस सागर है, क्योंकि कोई एक देव या नारकी वेदक-सम्यग्दृष्टि जीव पूर्वकोटिप्रमाण आयुवाले मनुष्योंमें उत्पन्न हुआ। पुनः गर्भसे लेकर आठ वर्षके बाद अधःकरण, अपूर्वकरण और अनिवृत्तिकरण इन तीन करणोंको करके कृतकृत्य वेदकसम्यग्दृष्टि होकर क्षायिकसम्यग्दृष्टि हुआ। तदनन्तर एक पूर्वकोटि काल तक जीवित रह कर तेतीस

१ ताप्रतौ 'सव्वलहुं अंतोमुहुत्तं' इति पाठः। २ प्रतिपु 'किरियाकम्मेणट्ठिय' इति पाठः।

उववण्णो । तदो पुव्वकोडाउएसु मणुस्सेसु उववण्णो । तदो पुव्वकोडिं विहरिदूण सिद्धो जादो । एवं पढमपुव्वकोडीए अधापवत्तकरण-अपुव्वकरण-अणियट्टिकरण-कदकरणिज्जद्धाहिय-गब्भादिअट्ठवस्सेहि बिदियपुव्वकोडीए अपुव्वखवग-अणियट्टिखवग-सुहुमखवग-खीणकसाय-सजोगि-अजोगिअद्धाहि य ऊणवेपुव्वकोडीहि[1] अब्भहियतेत्तीससागरोवममेत्तकिरिया-कम्मुक्कस्सकालुवलंभादो । एवं पओअकम्म-समोदाणकम्माणं पि वत्तव्वं ।

वेदगसम्माइट्ठीसु पओअकम्म-समोदाणकम्म-किरियाकम्माणि केवचिरं कालादो होंति ? णाणाजीवं पडुच्च सव्वद्धा । एगजीवं पडुच्च जहण्णेण अंतोमुहुत्तं । उक्कस्सेण छावट्ठिसागरोवमाणि देसूणाणि । देसूणाणि त्ति[2] भणिदे सव्वजहण्णखइयसम्माइट्ठिकाले-णूणाणि[3] त्ति घेत्तव्वं । णवरि चारित्तमोहक्खवणकालो छावट्ठीदो बाहिरो त्ति घेत्तव्वो । तवोकम्मं केवचिरं कालादो होदि ? णाणाजीवं पडुच्च सव्वद्धा । एगजीवं पडुच्च जहण्णेण अंतोमुहुत्तं । कुदो ? वेदगसम्माइट्ठिअसंजदम्मि परिणामपच्चएण पडिवण्णसंजमम्मि[4] संजमे सव्वलहुअं कालमच्छिय असंजममुवगयम्मि तवोकम्मस्स जहण्णकालुवलंभादो । उक्कस्सेण पुव्वकोडी देसूणा । कुदो ? एक्को वेदगसम्माइट्ठी देवो वा णेरइयो वा पुव्वकोडाउएसु मणुस्सेसु उववण्णो । गब्भादिअट्ठवस्साणमुवरि संजमं पडिवण्णो । देसूणपुव्वकोडिं तवोकम्मं

सागरप्रमाण स्थितिवाले देवोंमें उत्पन्न हुआ । तदनन्तर पूर्वकोटि आयुवाले मनुष्योंमें उत्पन्न हुआ । तदनन्तर पूर्वकोटि काल तक विहार करके सिद्ध हो गया । इस प्रकार प्रथम पूर्वकोटिके अधःप्रवृत्तकरण, अपूर्वकरण, अनिवृत्तिकरण और कृतकरणीय सम्बन्धी कालसे अधिक गर्भसे लेकर आठ वर्षप्रमाण कालसे न्यून तथा दूसरी पूर्वकोटिके अपूर्वक्षपक, अनिवृत्तिक्षपक, सूक्ष्मसाम्पराय-क्षपक, क्षीणकषाय, सयोगी और अयोगी सम्बन्धी कालसे न्यून दो पूर्वकोटि अधिक तेतीस सागर प्रमाण क्रियाकर्मका उत्कृष्ट काल पाया जाता है । इसी प्रकार प्रयोगकर्म और समवधानकर्मका भी कथन करना चाहिये ।

वेदकसम्यग्दृष्टि जीवोंके प्रयोगकर्म, समवधानकर्म और क्रियाकर्मका कितना काल है ? नाना जीवोंकी अपेक्षा सब काल है । एक जीवकी अपेक्षा जघन्य काल अन्तर्मुहूर्त है और उत्कृष्ट काल कुछ कम छ्यासठ सागर है । यहां देशोन कहनेसे सबसे जघन्य क्षायिकसम्यग्दृष्टि सम्बन्धी कालसे न्यून काल लेना चाहिये । इतनी विशेषता है कि चारित्रमोहनीयकी क्षपणाका काल छ्यासठ सागरसे बाहर है, ऐसा जानना चाहिये । तपःकर्मका कितना काल है ? नाना जीवोंकी अपेक्षा सब काल है । एक जीवकी अपेक्षा जघन्य काल अन्तर्मुहूर्त है, क्योंकि जो असंयत वेदकसम्यग्दृष्टि जीव परिणामोंके निमित्तसे संयमको प्राप्त हो जाता है और संयममें सबसे थोड़े काल रहकर असंयमको प्राप्त हो जाता है उसके तपःकर्मका जघन्य काल उपलब्ध होता है । उत्कृष्ट काल कुछ कम एक पूर्वकोटि है, क्योंकि कोई एक वेदकसम्यग्दृष्टि देव या नारकी जीव पूर्वकोटिप्रमाण आयुवाले मनुष्योंमें उत्पन्न हुआ । फिर गर्भसे लेकर आठ वर्षका होनेपर संयमको

१ का-ताप्रत्योः 'ऊणपुव्वकोडीहि' इति पाठः । २ ताप्रतौ 'देसूणा त्ति' इति पाठः । ३ ताप्रतौ 'कालेणूणा' इति पाठः । ४ प्रतिषु 'पडिवण्णसंजदम्मि' इति पाठः ।

काढूण देवो जादो। एवं गब्भादिअट्ठवस्सेहि ऊणपुव्वकोडिमेत्ततवोकम्मुक्कस्सकालुवलंभादो।

उवसमसम्माइट्ठीसु पओअकम्म-समोदाणकम्म-किरियाकम्माणि केवचिरं कालादो होंति? णाणाजीवं पडुच्च जहण्णेण अंतोमुहुत्तं। उक्कस्सेण पलिदोवमस्स असंखेज्जदिभागो। एगजीवं पडुच्च जहण्णेण अंतोमुहुत्तं। कुदो? एक्को चदुगदियो तिण्णि वि करणाणि काढूण उवसमसम्माइट्ठी जादो। सव्वजहण्णियाए उवसमसम्मत्तद्धाए अब्भंतरे छ आवलियाओ अत्थि त्ति सासणं गदो। एवं सव्वजहण्णंतोमुहुत्तमेत्तकालुवलंभादो। उक्कस्सेण अंतोमुहुत्तं सव्वुक्कस्सउवसमसम्माइट्ठिकालो घेत्तव्वो। किरियाकम्मस्स जहण्णकालो एगसमओ त्ति किण्ण परूविदो? ण, उवसमसेडीदो ओदिण्णस्स उवसमसम्माइट्ठिस्स मरणे संते वि उवसमसम्मत्तेण अंतोमुहुत्तमच्छिदूण चेव वेदगसम्मत्तस्स गमणुवलंभादो। तवोकम्मं केवचिरं कालादो होदि? णाणाजीवं पडुच्च जहण्णेण अंतोमुहुत्तं। कुदो? मणुस्सेसु उवसमसम्मत्तं संजमं च जुगवं पडिवज्जिय सव्वलहुमंतोमुहुत्तमच्छिय छआवलियावसेसे आसाणं गदेसु तदुवलंभादो। उक्कस्सेण अंतोमुहुत्तं। कुदो? अण्णोण्णाणुसंधिदउवसमसम्मत्तद्धासु संखेज्जासु गहिदासु उक्कस्सकालुवलंभादो। एगजीवं पडुच्च जहण्णुक्कस्सेण अंतोमुहुत्तं। इरिया-

---

प्राप्त हुआ। यहां कुछ कम पूर्वकोटिप्रमाण काल तक तपःकर्म करके देव हुआ। इस प्रकार गर्भसे लेकर आठ वर्ष कम पूर्वकोटिप्रमाण तपःकर्मका उत्कृष्ट काल उपलब्ध होता है।

उपशमसम्यग्दृष्टि जीवोंके प्रयोगकर्म, समवधानकर्म और क्रियाकर्मका कितना काल है? नाना जीवोंकी अपेक्षा जघन्य काल अन्तर्मुहूर्त है। उत्कृष्ट काल पल्यके असंख्यातवें भागप्रमाण है। एक जीवकी अपेक्षा जघन्य काल अन्तमुहूर्त है, क्योंकि, एक चारों गतिका जीव तीनों करणोंको करके उपशमसम्यग्दृष्टि हुआ। पुनः सबसे जघन्य उपशमसम्यक्त्वके कालके भीतर छह आवलि काल शेष रहनेपर सासादनसम्यक्त्वको प्राप्त हुआ। इस प्रकार सबसे जघन्य अन्तर्मुहूर्त मात्र काल उपलब्ध होता है। उत्कृष्ट काल अन्तमुहूर्त है। यहां उपशमसम्यग्दृष्टिका सबसे उत्कृष्ट काल लेना चाहिये।

शंका—क्रियाकर्मका जघन्य काल एक समय है, ऐसा क्यों नहीं कहा?

समाधान—नहीं, क्योंकि उपशमश्रेणिसे उतरे हुए उपशमसम्यग्दृष्टिका यद्यपि मरण होता है तो भी यह जीव उपशमसम्यक्त्वके साथ अन्तर्मुहूर्त काल तक रहकर ही वेदकसम्यक्त्वको प्राप्त होता है। यही कारण है कि उपशमसम्यग्दृष्टिके क्रियाकर्मका जघन्य काल एक समय नहीं कहा।

तपःकर्मका कितना काल है? नाना जीवोंकी अपेक्षा जघन्य काल अन्तर्मुहूर्त है, क्योंकि, जो मनुष्य उपशमसम्यक्त्व और संयमको युगपत् प्राप्त होकर और अतिलघु अन्तर्मुहूर्त काल तक वहां रह कर छह आवलि कालके शेष रहनेपर सासादन गुणस्थानको प्राप्त होते हैं उनके यह काल पाया जाता है। उत्कृष्ट काल अन्तर्मुहूर्त है, क्योंकि, परस्पर जुड़े हुए उपशमसम्यक्त्वके संख्यात कालोंके ग्रहण करनेपर उत्कृष्ट काल उपलब्ध होता है। एक जीवकी अपेक्षा जघन्य

वथकम्मं केवचिरं कालादो होदि ? णाणेगजीवं पडुच्च जहण्णेण एगसमयं । उक्कस्सेण अंतोमुहुत्तं ।

सासणसम्माइट्ठि-सम्मामिच्छाइट्ठीसु पओअकम्म-समोदाणकम्माणि केवचिरं कालादो होंति ? णाणाजीवं पडुच्च जहण्णेण एगसमओ अंतोमुहुत्तं । उक्कस्सेण दोण्णं पि पलिदोवमस्स असंखेज्जदिभागो । एगजीवं पडुच्च जहण्णेण एगसमओ अंतोमुहुत्तं । उक्कस्सेण सासणस्स छ आवलियाओ । सम्मामिच्छाइट्ठिस्स अंतोमुहुत्तं । मिच्छाइट्ठिस्स[1] मदिअण्णाणिभंगो ।

सण्णियाणुवादेण सण्णीणं पंचिंदियभंगो । णवरि इरियावथकम्मं णाणेगजीवं पडुच्च जहण्णेण एगसमयं । उक्कस्सेण अंतोमुहुत्तं । असण्णीणमेइंदियभंगो ।

आहाराणुवादेण आहारीणमोघभंगो । णवरि सगट्ठिदी वत्तव्वा । अणाहारएसु पओअकम्मं केवचिरं कालादो होदि ? णाणाजीवं पडुच्च सव्वद्धा । एगजीवं पडुच्च जहण्णेण एगसमओ । उक्कस्सेण तिण्णि समया । समोदाणकम्मं केवचिरं कालादो होदि ? णाणाजीवं पडुच्च सव्वद्धा । एगजीवं पडुच्च जहण्णेण एगसमओ । उक्कस्सेण अंतोमुहुत्तं । तं पुण कत्थ लब्भदि ? अजोगिकेवलिम्हि । इरियावथकम्मं केवचिरं कालादो

और उत्कृष्ट काल अन्तर्मुहूर्त है । ईर्यापथकर्मका कितना काल है ? नाना जीवों और एक जीवकी अपेक्षा जघन्य काल एक समय है । उत्कृष्ट काल अन्तर्मुहूर्त है ।

सासादनसम्यग्दृष्टि और सम्यग्मिथ्यादृष्टि जीवोंके प्रयोगकर्म और समवधानकर्मका कितना काल है ? नाना जीवोंकी अपेक्षा जघन्य काल क्रमसे एक समय और अन्तर्मुहूर्त है तथा उत्कृष्ट काल दोनोंका ही पल्यके असंख्यातवें भागप्रमाण है । एक जीवकी अपेक्षा जघन्य काल क्रमसे एक समय और अन्तर्मुहूर्त है तथा उत्कृष्ट काल सासादनका छह आवलि और सम्यग्मिथ्यादृष्टिका अन्तर्मुहूर्त है । मिथ्यादृष्टिके सम्भव पदोंका काल मत्यज्ञानियोंके समान है ।

संज्ञिमार्गणाके अनुवादसे संज्ञी जीवोंके सब पदोंका काल पंचेन्द्रियोंके समान है । इतनी विशेषता है कि इनके ईर्यापथकर्मका नाना जीवों और एक जीवकी अपेक्षा जघन्य काल एक समय है और उत्कृष्ट काल अन्तर्मुहूर्त है । असंज्ञी जीवोंके एकेन्द्रियोंके समान भंग है ।

आहारमार्गणाके अनुवादसे आहारक जीवोंके सब पदोंका काल ओघके समान है । इतनी विशेषता है कि यहां अपनी स्थिति कहनी चाहिये । अनाहारक जीवोंके प्रयोगकर्मका कितना काल है ? नाना जीवोंकी अपेक्षा सब काल है । एक जीवकी अपेक्षा जघन्य काल एक समय है और उत्कृष्ट काल तीन समय है । समवधानकर्मका कितना काल है ? नाना जीवोंकी अपेक्षा सब काल है । एक जीवकी अपेक्षा जघन्य काल एक समय है और उत्कृष्ट काल अन्तर्मुहूर्त है ।

शंका—वह काल कहां प्राप्त होता है ?

समाधान—वह अयोगिकेवली गुणस्थानमें प्राप्त होता है ।

---

१ ताप्रतौ ' अंतोमुहुत्तं । मिच्छाइट्ठिस्स ' इत्येतावानयं पाठो नास्ति ।

होदि ? णाणाजीवं पडुच्च जहण्णेण तिण्णि समया। उक्कस्सेण संखेज्जा समया। एगजीवं पडुच्च जहण्णुक्कस्सेण तिण्णि समया। तवोकम्मं केवचिरं कालादो होदि ? णाणाजीवं[1] पडुच्च जहण्णेण तिण्णि समया। उक्कस्सेण पंचहरस्सक्खरद्धाओ संखेज्जगुणाओ। एगजीवं[2] पडुच्च जहण्णेण तिण्णि समया। उक्कस्सेण पंचहरस्सक्खरद्धाओ। किरियाकम्मं केवचिरं कालादो होदि ? णाणाजीवं पडुच्च जहण्णेण एगसमओ। उक्कस्सेण आवलियाए असंखेज्जदिभागो। एगजीवं पडुच्च जहण्णेण एगसमओ। उक्कस्सेण बे समया। आधाकम्मं केवचिरं कालादो होदि ? णाणाजीवं पडुच्च सव्वद्धा। एगजीवं पडुच्च जहण्णेण एगसमओ। उक्कस्सेण असंखेज्जा लोगा। अणाहारिअजोगीहिंतो जे[3] णिज्जिण्णा ओरालियपरमाणू तेसिमेसो जहण्णुक्कस्सकालो वत्तव्वो। एवं कालाणिओगद्दारं समत्तं।

अंतराणुगमेण दुविहो णिद्देसो ओघेण आदेसेण य। ओघेण पओअकम्म-समोदाणकम्माणमंतरं केवचिरं कालादो होदि ? णाणेगजीवं पडुच्च णत्थि अंतरं णिरंतरं। आधाकम्मस्स अंतरं केवचिरं कालादो होदि ? णाणाजीवं पडुच्च णत्थि अंतरं णिरंतरं। एगजीवं पडुच्च जहण्णेण एगसमओ। कुदो ? ओरालियसरीरादो णिज्जिण्णणोकम्म-

ईर्यापथकर्मका कितना काल है ? नाना जीवोंकी अपेक्षा जघन्य काल तीन समय है और उत्कृष्ट काल संख्यात समय है। एक जीवकी अपेक्षा जघन्य और उत्कृष्ट काल तीन समय है। तपःकर्मका कितना काल है ? नाना जीवोंकी अपेक्षा जघन्य काल तीन समय है और उत्कृष्ट काल पांच ह्रस्व अक्षरोंके उच्चारणमें जितना काल लगता है उससे संख्यातगुणा है। एक जीवकी अपेक्षा जघन्य काल तीन समय है और उत्कृष्ट काल पांच ह्रस्व अक्षरोंके उच्चारणमें जितना काल लगता है उतना है। क्रियाकर्मका कितना काल है ? नाना जीवोंकी अपेक्षा जघन्य काल एक समय है और उत्कृष्ट काल आवलिके असंख्यातवें भागप्रमाण है। एक जीवकी अपेक्षा जघन्य काल एक समय है और उत्कृष्ट काल दो समय है। अधःकर्मका कितना काल है ? नाना जीवोंकी अपेक्षा सब काल है। एक जीवकी अपेक्षा जघन्य काल एक समय है और उत्कृष्ट काल असंख्यात लोकप्रमाण है। अनाहारक अयोगी जीवोंके शरीरसे जो औदारिक परमाणु निर्जीर्ण होते हैं उनका यह जघन्य और उत्कृष्ट काल कहना चाहिये। इस प्रकार कालानुयोगद्वार समाप्त हुआ।

अन्तरानुगमकी अपेक्षा निर्देश दो प्रकारका है—ओघनिर्देश और आदेशनिर्देश। ओघकी अपेक्षा प्रयोगकर्म और समवधानकर्मका कितना अन्तरकाल है ? नाना जीवोंकी और एक जीवकी अपेक्षा अन्तरकाल नहीं है, निरन्तर है। अधःकर्मका अन्तरकाल कितना है ? नाना जीवोंकी अपेक्षा अन्तरकाल नहीं है, निरन्तर है। एक जीवकी अपेक्षा जघन्य अन्तरकाल एक समय है, क्योंकि जो औदारिक नोकर्मस्कन्ध औदारिकशरीरसे निर्जीर्ण होकर औदारिक भावके विना एक

१ अ-आप्रत्योः 'एगजीवं', काप्रतौ 'णाणेगजीवं' इति पाठः। २ काप्रतावित्यत आरभ्य '-पंचहरस्सक्खरद्धाओ' पर्यन्तः पाठस्त्रुटितोऽस्ति। ३ अ-काप्रत्योः 'जा' इति पाठः।

क्खंधाणं ओरालियभावेण[1] विणा एगसमयमच्छिय विदियसमए ओरालियसरीरसरूवेण परिणदाणमेगसमयअंतरुवलंभादो । उक्कस्सेण अणंतकालमसंखेज्जा पोग्गलपरियट्टा । कुदो ? देवेण णेरइएण वा तिरिक्खेसु उववण्णेण तत्थ उववादजोगेण गहिदोरालियसरीरपरमाणूणं विदियसमए णिज्जिण्णाणमाधाकम्मस्स आदी होदि । पुणो तदियसमयप्पहुडि अंतरं होदि जाउक्कस्सेण आवलियाए असंखेज्जदिभागमेत्ताणं पोग्गलपरियट्टाणं चरिमसमओ त्ति । तदुवरिमसमए पुव्वणिज्जिण्णओरालियणोकम्मक्खंधेसु बंधमागदेसु लद्धमंतरं होदि । एवमाधाकम्मस्स आवलियाए असंखेज्जदिभागमेत्तपोग्गलपरियट्टाणमंतरुवलंभादो[2] । णवरि तिण्णि समया ऊणाणि त्ति वत्तव्वं । किरियाकम्मस्स अंतरं केवचिरं कालादो होदि ? णाणाजीवं पडुच्च णत्थि अंतरं णिरंतरं । एगजीवं पडुच्च जहण्णेण अंतोमुहुत्तं । उक्कस्सेण अद्धपोग्गलपरियट्टं देसूणं । एवमिरियावथ-तवोकम्माणं पि वत्तव्वं ।

समय रहकर दूसरे समयमें पुनः औदारिकरूपसे परिणत हो जाते हैं उनका एक समय अन्तरकाल उपलब्ध होता है । उत्कृष्ट अन्तरकाल अनन्त काल है जो असंख्यात पुद्गलपरिवर्तनमें लगनेवाले कालके बराबर है, क्योंकि, जिस देव और नारकी जीवने तिर्यंचोंमें उत्पन्न होकर और वहां उपपादयोग द्वारा औदारिकशरीरके परमाणुओंको ग्रहण करके दूसरे समयमें उनकी निर्जरा की हैं उसके उन परमाणुओंके अधःकर्मका प्रारम्भ होता है । पश्चात् तीसरे समयसे उसका अन्तर होता है जो कि उत्कृष्टरूपसे आवलिके असंख्यातवें भागप्रमाण पुद्गलपरिवर्तनोंके अन्तिम समय तक जाता है । इसके बाद अगले समयमें पहले निर्जीर्ण हुए उन औदारिक नोकर्मस्कन्धोंके बन्धको प्राप्त होनेपर अधःकर्मका उत्कृष्ट अन्तरकाल प्राप्त हो जाता है । इस प्रकार अधःकर्मका आवलिके असंख्यातवें भागप्रमाण पुद्गलपरिवर्तनोंके जितने समय होते हैं उतना उत्कृष्ट अन्तरकाल उपलब्ध होता है । इतनी विशेषता है कि इस अन्तरकालमेंसे तीन समय न्यून करके उसका कथन करना चाहिये । क्रियाकर्मका अन्तरकाल कितना है ? नाना जीवोंकी अपेक्षा अन्तरकाल नहीं है, निरन्तर है । एक जीवकी अपेक्षा जघन्य अन्तरकाल अन्तर्मुहूर्त है और उत्कृष्ट अन्तरकाल कुछ कम अर्ध पुद्गलपरिवर्तनप्रमाण है । इसी प्रकार ईर्यापथकर्म और तपःकर्मका भी अन्तरकाल कहना चाहिये ।

विशेषार्थ—यहां ओघसे छहों कर्मोंके अन्तरकालका विचार किया गया है । प्रयोगकर्म और समवधानकर्मका नाना जीव और एक जीव दोनोंकी अपेक्षा अन्तरकाल नहीं होता, यह स्पष्ट ही है; क्योंकि संसारस्थ जीवके कोई न कोई योग और किसी न किसी कर्मका बन्ध उदय और सत्त्व निरन्तर पाया जाता है । यद्यपि अयोगिकेवली गुणस्थानमें योगका अभाव हो जाता हैं पर यह जीव पुनः सयोगी नहीं होता, इसलिये अन्तरकालके प्रकरणमें इसका ग्रहण नहीं होता हैं । अधःकर्मका नाना जीवोंकी अपेक्षा अन्तरकाल नहीं होता, क्योंकि अनन्त एकेन्द्रिय जीव तथा असंख्यात व संख्यात दूसरे जीव औदारिकशरीर नोकर्मस्कन्धोंको निरन्तर ग्रहण कर उन्हें औदारिकशरीररूपसे परिणमाते रहते हैं । इस कर्मका एक जीवकी अपेक्षा जघन्य और

१ आप्रतौ 'ओदरियभावेण', का-ताप्रत्योः 'ओदइयभावेण' इति पाठः । २ का-ताप्रत्योः 'मंतरसुवलंभादो' इति पाठः ।

णिरयगदीए णेरइएसु पओअकम्म-समोदाणकम्माणमंतरं केवचिरं कालादो होदि ? णाणेगजीवं[1] पडुच्च णत्थि अंतरं णिरंतरं। किरियाकम्मस्स अंतरं केवचिरं कालादो होदि ? णाणाजीवं पडुच्च णत्थि अंतरं णिरंतरं। एगजीवं पडुच्च जहण्णेण अंतोमुहुत्तं। उक्कस्सेण तेत्तीसं सागरोवमाणि देसूणाणि। कुदो ? तिरिक्खो वा मणुस्सो वा अट्ठावीससंतकम्मिओ अधो सत्तमाए पुढवीए णेरइएसु उववण्णो। छहि पज्जत्तीहि पज्जत्तयदो। विस्संतो विसुद्धो सम्मत्तं पडिवण्णो। किरियाकम्मस्स आदी दिट्ठा। पुणो मिच्छत्तं गंतूण अंतरिदो। तदो[2] मिच्छत्तेणेव आउअं बंधिदूण उवसमसम्मत्तं पडिवण्णो। लद्धमंतरं किरियाकम्मस्स। तदो मिच्छत्तं गंतूण मदो तिरिक्खो जादो। एवं छहि अंतोमुहुत्तेहि ऊणतेत्तीससागरोवममेत्त-किरियाकम्मुक्कस्संतरुवलंभादो। एवं सत्तमाए पुढवीए। एवं छसु पुढवीसु। णवरि एक्क-

उत्कृष्ट अन्तरकाल कितना होता है, इसका सयुक्तिक मूलमें ही विचार किया है। उत्कृष्ट अन्तरकाल बतलाते समय वह असंख्यात पुद्गलपरिवर्तन प्रमाण बतलाया है। मात्र इस कालमेंसे तीन समय कम किये हैं। ये तीन समय प्रारम्भके दो समय और अन्तका एक समय लेना चाहिये। अब रहे शेष तीन कर्म सो नाना जीवोंकी अपेक्षा उनका भी अन्तरकाल नहीं प्राप्त होता, क्योंकि इन कर्मोंके धारक जीव निरन्तर पाये जाते हैं। इनका एक जीवकी अपेक्षा जघन्य अन्तरकाल अन्तर्मुहूर्त है, क्योंकि सम्यक्त्व, संयम और उपशान्तकषाय गुणस्थानका एक जीवकी अपेक्षा जघन्य अन्तरकाल अन्तमुहूर्त ही पाया जाता है। इनका उत्कृष्ट अन्तरकाल कुछ कम अर्ध पुद्गलपरिवर्तन प्रमाण है, क्योंकि किसी जीवके सम्यक्त्व, संयम और उपशान्तकषाय गुणस्थानको प्राप्त होनेके बाद वह इन्हें यदि अधिकसे अधिक काल तक न प्राप्त हो तो कुछ कम अर्ध पुद्गलपरिवर्तन काल तक नहीं प्राप्त होता। इसके बाद वह सम्यक्त्व और संयमको अवश्य ही प्राप्त होता है और यदि अनुकूलता हो तो उपशमश्रेणिपर भी तब आरोहण करता है। इस प्रकार यह सामान्यसे छह कर्मोंका अन्तरकाल होता है।

नरकगतिमें नारकियोंमें प्रयोगकर्म और समवधानकर्मका अन्तरकाल कितना है ? नाना जीवों और एक जीवकी अपेक्षा अन्तरकाल नहीं है, निरन्तर है। क्रियाकर्मका अन्तरकाल कितना है ? नाना जीवोंकी अपेक्षा अन्तरकाल नहीं है, वह निरन्तर है। एक जीवकी अपेक्षा जघन्य अन्तरकाल अन्तर्मुहूर्त है और उत्कृष्ट अन्तरकाल कुछ कम तेतीस सागर है, क्योंकि, अट्ठाईस कर्मोंकी सत्तावाला कोई एक तिर्यंच या मनुष्य नीचे सातवीं पृथिवीके नारकियोंमें उत्पन्न हुआ। वहां छह पर्याप्तियोंसे पर्याप्त हुआ। पश्चात् विश्राम करके और विशुद्ध होकर सम्यक्त्वको प्राप्त हुआ। क्रियाकर्मकी आदी दिखाई दी। पश्चात् मिथ्यात्वको प्राप्त होकर उसने क्रियाकर्मका अन्तर किया। और अन्तमें मिथ्यात्वके साथ ही आयुका वन्धकर उपशमसम्यक्त्वको प्राप्त हुआ। इस प्रकार क्रियाकर्मका अन्तरकाल प्राप्त होता है। तदनन्तर मिथ्यात्वको प्राप्त होकर मरकर तिर्यंच हो गया। इस प्रकार क्रियाकर्मका उत्कृष्ट अन्तरकाल छह अन्तर्मुहूर्त कम तेतीस सागर उपलब्ध होता है। इसी प्रकार सातवीं पृथिवीमें उक्त तीन पदोंका अन्तरकाल होता है। तथा इसी प्रकार प्रारम्भकी छह पृथिवियोंमें जानना चाहिये। इतनी विशेषता है कि इनमें

१ ताप्रतौ 'णाणाजीवं' इति पाठः। २ का-ताप्रत्योः 'तदो' इत्येतत् पदं नास्ति।

तिण्णि-सत्त-दस-सत्तारस-बावीससागरोवमाणि पंचहि अंतोमुहुत्तेहि ऊणाणि।

तिरिक्खगदीए तिरिक्खेसु पओअकम्म-समोदाणकम्माणं णाणेगजीवं पडुच्च णत्थि अंतरं णिरंतरं। आधाकम्म-किरियाकम्माणं ओघभंगो। पंचिंदियतिरिक्खेसु पओअकम्म-समोदाणकम्माणं णाणेगजीवं पडुच्च णत्थि अंतरं [णिरंतरं][1]। आधाकम्मस्स अंतरं केवचिरं कालादो होदि? णाणाजीवं पडुच्च णत्थि अंतरं णिरंतरं। एगजीवं पडुच्च जहण्णेण एगसमओ। उक्कस्सेण तिसमऊणपंचाणउदिपुव्वकोडीहि सादिरेयाणि तिण्णि पलिदोवमाणि। कुदो? एक्को देवो वा णेरइयो वा मणुस्सो वा सण्णिपंचिंदियपज्जत्तएसु पुव्वकोडाउअतिरिक्खेसु उववण्णो। तत्थ उववादजोगेण पुव्वकोडिपढमसमए जे ओरालियसरीरणिमित्तं गहिदा परमाणू तेसिं विदियसमए णिज्जिण्णाणं तदियसमए मुक्कोरालियभावाणमंतरस्स[2] आदी जादा। तदो प्पहुडि पंचाणउदिपुव्वकोडीओ तिसमऊणतिण्णिपलिदोवमाणि[3] च अंतरिदूण पुणो चरिमसमए तेसु चेव पुव्वणिज्जिण्णपरमाणूसु ओरालियसरीरणिमित्तमागदेसु आधाकम्मस्स लद्धमंतरं। एवं तीहि समएहि ऊणसगट्ठिदिमेत्तउक्कस्संतरुवलंभादो। किरियाकम्मस्स अंतरं केवचिरं कालादो होदि? णाणाजीवं पडुच्च णत्थि अंतरं णिरंतरं। एगजीवं पडुच्च जहण्णेण अंतोमुहुत्तं। उक्कस्सेण तिण्णि पलिदोवमाणि पुव्वकोडिपुधत्तेण सादिरेयाणि। कुदो? एक्को

एक जीवकी अपेक्षा क्रियाकर्मका उत्कृष्ट अन्तरकाल क्रमसे पांच अन्तर्मुहूर्त कम एक सागर, पांच अन्तर्मुहूर्त कम तीन सागर, पांच अन्तर्मुहूर्त कम सात सागर, पांच अन्तर्मुहूर्त कम दस सागर, पांच अन्तर्मुहूर्त कम सत्रह सागर और पांच अन्तर्मुहूर्त कम बाईस सागर है।

तिर्यंचगतिमें तिर्यंचोंमें प्रयोगकर्म और समवधानकर्मका नाना जीवों और एक जीवकी अपेक्षा अन्तरकाल नहीं है, निरन्तर है। अधःकर्म और क्रियाकर्मका अन्तरकाल ओघके समान है। पंचेन्द्रिय तिर्यंचोंमें प्रयोगकर्म और समवधानकर्मका नाना जीवों और एक जीवकी अपेक्षा अन्तरकाल नहीं है, निरन्तर है। अधःकर्मका अन्तरकाल कितना है? नाना जीवोंकी अपेक्षा अन्तरकाल नहीं है, वह निरन्तर है। एक जीवकी अपेक्षा जघन्य अन्तरकाल एक समय है और उत्कृष्ट अन्तरकाल तीन समय कम और पंचानवै पूर्वकोटि अधिक तीन पल्यप्रमाण है, क्योंकि कोई एक देव, नारकी या मनुष्य पूर्वकोटिप्रमाण आयुवाले संज्ञी पंचेन्द्रिय पर्याप्त तिर्यंचोंमें उत्पन्न हुआ। वहां उसने उपपाद योगके द्वारा पूर्वकोटिप्रमाण आयुके प्रथम समयमें औदारिकशरीरके निमित्त जो पुद्गलपरमाणु ग्रहण किये उनकी दूसरे समयमें निर्जरा होकर तीसरे समयमें वे औदयिक भावसे रहित हो गये। इसलिये इनके अन्तरकी आदि हुई। फिर वहांसे लेकर पंचानवै पूर्वकोटिप्रमाण कालका और तीन समय कम तीन पल्यप्रमाण कालका अन्तर देकर अन्तिम समयमें पूर्वनिर्जीर्ण उन्हीं पुद्गलपरमाणुओंके औदारिकशरीरके निमित्त प्राप्त होनेपर अधःकर्मका अन्तरकाल निकल आता है। इस प्रकार तीन समय कम अपनी स्थिति-प्रमाण उत्कृष्ट अन्तर प्राप्त होता है। क्रियाकर्मका अन्तरकाल कितना है? नाना जीवोंकी अपेक्षा अन्तर नहीं है, वह निरन्तर है। एक जीवकी अपेक्षा जघन्य अन्तरकाल अन्तर्मुहूर्त है और उत्कृष्ट अन्तरकाल पूर्वकोटिपृथक्त्व अधिक तीन पल्य है, क्योंकि, अट्ठाईस प्रकृतियोंकी

---

१ ताप्रतौ [अंतरं णिरंतरं] इति पाठः। २ प्रतिषु 'मुक्कोदइयभावाण' इति पाठः। ३ ताप्रतौ 'विसमऊण-' इति पाठः।

मणुस्सो अट्ठावीससंतकम्मिओ सण्णिपंचिदियसम्मुच्छिमपज्जत्तएसुववण्णो। छहि पज्जत्तीहि पज्जत्तयदो। विस्संतो विसुद्धो वेदगसम्मत्तं पडिवण्णो। किरियाकम्मस्स आदी दिट्ठा। सव्वलहुमंतोमुहुत्तमच्छिय मिच्छत्तं गंतूणंतरिदो। तत्थ सण्णिपंचिंदियपज्जत्तइत्थि-पुरिस-णवुंसयवेदेसु अट्ठट्ठपुव्वकोडीओ जीविदूण पुणो असण्णिपंचिंदियपज्जत्तइत्थि-पुरिस-णवुंसय-वेदेसु अट्ठट्ठपुव्वकोडीओ जीविदूण पुणो सण्णि-असण्णिपंचिंदियतिरिक्खअपज्जत्तएसु अट्ठट्ठअंतोमुहुत्ताणि जीविदूणं पुणो असण्णिपंचिंदियपज्जत्तएसु इत्थि-पुरिस-णवुंसयवेदेहि सह अट्ठट्ठपुव्वकोडीओ जीविदूण पुणो सण्णिपंचिंदियपज्जत्तएसु पुरिस-णवुंसय-इत्थिवेदेहि सह अट्ठट्ठ-सत्तपुव्वकोडीओ जीविदूण पुणो देवकुरु-उत्तरकुरवेसु उववण्णो। तत्थ तिसु पलिदोव-मेसु सव्वजहण्णे अंतोमुहुत्ते अवसेसे उवसमसम्मत्तं पडिवण्णो। लद्धमंतरं किरियाकम्मस्स। तदो सासणं गंतूण मदो देवो जादो। एवं पंचहि अंतोमुहुत्तेहि ऊणपंचाणउदिपुव्वकोडीहि सादिरेयाणि तिण्णिपलिदोवममेत्तकिरियाकम्मुक्कस्संतरुवलंभादो। एवं पंचिंदियतिरिक्खपज्जत्त-पंचिंदियतिरिक्खजोणिणीसु। णवरि तिसमऊणसगदाल-पण्णारसपुव्वकोडीहि सादिरेयाणि तिण्णि पलिदोवमाणि आधाकम्मस्स उक्कस्संतरं होदि। पंचहि अंतोमुहुत्तेहि मुहुत्तपुधत्ता-

---

सत्तावाला कोई एक मनुष्य संज्ञी पंचेन्द्रिय सम्मूर्च्छन पर्याप्तकोंमें उत्पन्न होकर छह पर्याप्तियोंसे पर्याप्त हुआ। फिर विश्राम करके और विशुद्ध होकर वेदकसम्यक्त्वको प्राप्त हुआ। इस प्रकार क्रियाकर्मका आदि दिखाई दिया। फिर सबसे अल्प अन्तर्मुहूर्त काल तक रहकर मिथ्यात्वको प्राप्त हुआ और क्रियाकर्मका अन्तर किया। फिर वहां संज्ञी पंचेन्द्रिय पर्याप्त स्त्रीवेदी, संज्ञी पंचेन्द्रिय पर्याप्त पुरुषवेदी और संज्ञी पंचेन्द्रिय पर्याप्त नपुंसकवेदी अवस्थामें आठ आठ पूर्वकोटि काल तक जीवित रहा। पुनः असंज्ञी पंचेन्द्रिय पर्याप्त स्त्रीवेदी, पुरुषवेदी और नपुंसकवेदी जीवोंमें आठ आठ पूर्वकोटि काल तक जीवित रहा। फिर संज्ञी और असंज्ञी पंचेन्द्रिय तिर्यंच अपर्याप्तकोंमें आठ आठ अन्तर्मुहूर्त काल तक जीवित रहा। फिर असंज्ञी पंचेन्द्रिय पर्याप्तकोंमें स्त्रीवेद, पुरुपवेद और नपुंसकवेदके साथ आठ आठ पूर्वकोटिप्रमाण काल तक जीवित रहा। फिर संज्ञी पंचेन्द्रिय पर्याप्तकोंमें पुरुषवेद, नपुंसवेद और स्त्रीवेदके साथ क्रमसे आठ, आठ और सात पूर्वकोटि काल तक जीवित रहा। फिर देवकुरु और उत्तरकुरुके तिर्यंचोंमें उत्पन्न हुआ। वहां तीन पल्यमें सबसे जघन्य अन्तर्मुहूर्तकाल शेष रहनेपर उपशमसम्यक्त्वको प्राप्त हुआ। इस तरह क्रियाकर्मका उत्कृष्ट अन्तरकाल प्राप्त होता है। फिर सासादन गुणस्थानको प्राप्त होकर मरा और देव हो गया। इस प्रकार क्रियाकर्मका पांच अन्तर्मुहूर्त कम पंचानवै पूर्वकोटि अधिक तीन पल्यप्रमाण उत्कृष्ट अन्तरकाल प्राप्त होता है। पंचेन्द्रिय तिर्यंच पर्याप्त और पंचेन्द्रिय तिर्यंच योनिनी जीवोंमें भी अन्तरकाल इसी प्रकार कहना चाहिये। इतनी विशेपता है कि इनमें अधःकर्मका उत्कृष्ट अन्तरकाल क्रमसे तीन समय कम सेंतालीस पूर्वकोटि अधिक तीन पल्य प्रमाण और तीन समय कम पन्द्रह पूर्वकोटि अधिक तीन पल्यप्रमाण होता है। तथा क्रियाकर्मका उत्कृष्ट

---

१ का-ताप्रत्योः 'अंतोमुहुत्तं णिज्जरिदूण' इति पाठः।

हियचेमासेहि ऊणसगदाल-पण्णारसपुव्वकोडीहि सादिरेयाणि तिण्णि पलिदोवमाणि किरिया-कम्मुक्कस्संतरं होदि ।

पंचिंदियतिरिक्खअपज्जत्ताणं पओअकम्म-समोदाणकम्माणमंतरं केवचिरं कालादो होदि ? णाणेगजीवं[1] पडुच्च णत्थि अंतरं णिरंतरं । आधाकम्मस्संतरं केवचिरं कालादो होदि ? णाणाजीवं पडुच्च णत्थि अंतरं णिरंतरं । एगजीवं पडुच्च जहण्णेण एगसमओ । उक्कस्सेण तिसमऊणाणि अट्ठट्ठंतोमुहुत्ताणि । कुदो ? एक्को तिरिक्खो वा मणुस्सो वा पंचिंदियपज्जत्ते-[2] पंचिंदियतिरिक्खअपज्जत्तएसु उववण्णो । तत्थुप्पण्णपढमसमए उववादजोगेण जे गहिदा परमाणू तेसिं विदियसमए णिज्जिण्णाणमाधाकम्मस्स आदी होदि । तदियसमयप्पहुडि अंतरं होदि, विणट्ठोदइयभावत्तादो । सोलसण्णमंतोमुहुत्ताणं चरिमसमए आधाकम्मस्स लद्धमंतरं । एवं पंचिंदियतिरिक्खअपज्जत्तएसु आधाकम्मस्स तिसमऊणसोलसंतोमुहुत्तमेत्तउक्कस्संतरुव-लंभादो ।

मणुसगदीए मणुस्सेसु पओअकम्म-समोदाणकम्माणमंतरं केवचिरं कालादो होदि ? णाणेगजीवं पडुच्च णत्थि अंतरं णिरंतरं[3] । आधाकम्मस्स अंतरं केवचिरं कालादो होदि ? णाणाजीवं पडुच्च णत्थि अंतरं णिरंतरं । एगजीवं पडुच्च जहण्णेण एगसमओ । उक्कस्सेण

अन्तरकाल क्रमसे पांच अन्तर्मुहूर्त कम सेंतालीस पूर्वकोटि अधिक तीन पल्य और मुहूर्तपृथक्त्व अधिक दो माह कम पन्द्रह पूर्वकोटि अधिक तीन पल्य होता है ।

पंचेन्द्रिय तिर्यंच अपर्याप्तकोंमें प्रयोगकर्म और समवधानकर्मका अन्तरकाल कितना होता है ? नाना जीवों और एक जीवकी अपेक्षा अन्तरकाल नहीं है, वह निरन्तर है । अधःकर्मका अन्तरकाल कितना है ? नाना जीवोंकी अपेक्षा अन्तरकाल नहीं है, वह निरन्तर है । एक जीवकी अपेक्षा जघन्य अन्तरकाल एक समय है और उत्कृष्ट अन्तरकाल तीन समय कम आठ आठ अन्तर्मुहूर्त है, क्योंकि, एक तिर्यञ्च या मनुष्य पंचेन्द्रिय पर्याप्त व पंचेन्द्रिय तिर्यंच अपर्याप्तकोंमें उत्पन्न हुआ । वहां उत्पन्न होकर उसने प्रथम समयमें उपपादयोगके द्वारा जिन परमाणुओंको ग्रहण किया उनके दूसरे समयमें निर्जीर्ण हो जानेपर अधःकर्मका प्रारम्भ होता है और तीसरे समयसे अन्तर होता है, क्योंकि, तीसरे समयमें उनके औदयिकभावका नाश हो जाता है । फिर सोलह अन्तर्मुहूर्तोंके अन्तिम समयमें उन निर्जीर्ण परमाणुओंके ग्रहण होनेपर अधःकर्मका अन्तर प्राप्त होता है । इस प्रकार पंचेन्द्रिय तिर्यंच अपर्याप्तकोंमें अधःकर्मका उत्कृष्ट अन्तरकाल तीन समय कम सोलह अन्तर्मुहूर्त प्रमाण प्राप्त होता है ।

मनुष्यगतिमें मनुष्योंमें प्रयोगकर्म और समवधानकर्मका अन्तरकाल कितना है ? नाना जीवों और एक जीवकी अपेक्षा अन्तरकाल नहीं है, वह निरन्तर है । अधःकर्मका अन्तरकाल कितना है ? नाना जीवोंकी अपेक्षा अन्तरकाल नहीं है, वह निरन्तर है । एक जीवकी अपेक्षा जघन्य अन्तरकाल एक समय है और उत्कृष्ट अन्तरकाल तीन समय कम सेंतालीस पूर्वकोटि

---

१ प्रतिषु 'णाणाजीवं' इति पाठः । २ अप्रतौ 'पंचिंदियपज्जत्तो', काप्रतौ 'पंचिंदियपज्जत्ता' इति पाठः । ३ काप्रतौ नोपलभ्यते पदमेतत् ।

तिसमऊणसगदालीसपुव्वकोडीहि सादिरेयाणि तिण्णि पलिदोवमाणि आधाकम्मस्स उक्कस्संतरं होदि । किरियाकम्मस्स वि एवं चेव । णवरि तीहि अंतोमुहुत्तेहि अट्ठवस्सेहि य[1] ऊणसगदालीसपुव्वकोडीहि सादिरेयाणि तिण्णि पलिदोवमाणि । इरियावथकम्मस्संतरं केवचिरं कालादो होदि ? णाणाजीवं पडुच्च णत्थि अंतरं णिरंतरं । एगजीवं पडुच्च जहण्णेण अंतोमुहुत्तं । उक्कस्सेण पुव्वकोडिपुधत्तं । कुदो ? एक्को देवो वा णेरइओ वा चउवीस-संतकम्मियसम्माइट्ठी पुव्वकोडाउएसु मणुस्सेसु उववण्णो । तदो अट्ठवस्साणमुवरि विसोहिं पूरेदूण संजमं पडिवण्णो । तदो दंसणमोहणीयमुवसामेदूण पमत्तो[2] जादो । पुणो पमत्तापमत्त-परावत्तसहस्सं कादूण अपुव्वउवसामगो अणियट्टिउवसामगो सुहुमउवसामगो होदूण उवसंतकसायवीयरायछदुमत्थो जादो । इरियावहकम्मस्स आदी दिट्ठा । पुणो सुहुमो अणि-यट्टी अपुव्वो होदूण अंतरिय इत्थि-पुरिस-णवुंसयवेदेसु अट्ठट्ठपुव्वकोडीओ जीविदूण पुणो अपज्जत्तएसु अट्ठ अंतोमुहुत्ताणि गमिय पुणो इत्थि-पुरिस-णवुंसयवेदेसु अट्ठट्ठपुव्वकोडीओ जीविदूण सव्वजहण्णंतोमुहुत्तावसेसे जीविदव्वए त्ति अपुव्वउवसामगो अणियट्टिउवसामगो सुहुमउवसामगो होदूण उवसंतकसाओ जादो । तस्स पढमसमए लद्धमंतरं । विदियसमए मदो देवो जादो । एवं समयाहियसत्तअंतोमुहुत्तब्भहियअट्ठवस्सेहि ऊणाओ अडदालीस-

---

अधिक तीन पल्यप्रमाण है । यह अधःकर्मका उत्कृष्ट अन्तरकाल है । क्रियाकर्मका अन्तरकाल भी इसी प्रकार है । इतनी विशेषता है कि इसका उत्कृष्ट अन्तरकाल तीन अन्तर्मुहूर्त और आठ वर्ष कम सेंतालीस पूर्वकोटि अधिक तीन पल्यप्रमाण है। ईर्यापथकर्मका अन्तरकाल कितना है ? नाना जीवोंकी अपेक्षा अन्तरकाल नहीं है, वह निरन्तर है। एक जीवकी अपेक्षा जघन्य अन्तरकाल अन्तर्मुहूर्त है और उत्कृष्ट अन्तरकाल पूर्वकोटिपृथक्त्वप्रमाण है, क्योंकि, चौबीस कर्मकी सत्तावाला एक देव या नारकी सम्यग्दृष्टि जीव पूर्वकोटिकी आयुवाले मनुष्योंमें उत्पन्न हुआ। फिर आठ वर्षके बाद विशुद्धिको प्राप्त होकर संयमको प्राप्त हुआ । फिर दर्शनमोहनीयका उपशम करके प्रमत्तसंयत हुआ । फिर प्रमत्त और अप्रमत्त गुणस्थानमें हजारों परिवर्तन करके अपूर्वउपशामक, अनिवृत्तिउपशामक और सूक्ष्मउपशामक होकर उपशान्तकषाय वीतराग छद्मस्थ हुआ । इस प्रकार ईर्यापथ-कर्मका प्रारम्भ दिखाई दिया । फिर सूक्ष्मसाम्पराय, अनिवृत्तिबादरसाम्पराय और अपूर्व-करण होकर तथा ईर्यापथकर्मका अन्तर करके स्त्रीवेदी, पुरुषवेदी और नपुंसकवेदियोंमें आठ आठ पूर्वकोटि काल तक जीवित रहकर फिर अपर्याप्तकोंमें आठ अन्तर्मुहूर्त बिताकर स्त्रीवेदी, पुरुषवेदी और नपुंसकवेदियोंमें आठ आठ पूर्वकोटि काल तक जीवित रहकर जब जीवितमें सबसे जघन्य अन्तर्मुहूर्त काल शेष रहा तब अपूर्वउमशामक, अनिवृत्तिउपशामक और सूक्ष्मउपशामक होकर उपशान्तकषाय हो गया। तो उसके प्रथम समयमें ईर्यापथकर्मका उत्कृष्ट अन्तर प्राप्त हो जाता है। फिर दूसरे समयमें मरा और देव हो गया। इस प्रकार समयाधिक

---

१ ताप्रतौ 'य' इत्येतत्पदं नास्ति । २ अ-आ-काप्रतिषु 'पयत्तो' इति पाठः ।

पुव्वकोडीओ इरियावहकम्मस्स उक्कस्संतरं होदि । तवोकम्मस्स वि एवं चेव । णवरि दोहि अंतोमुहुत्तेहि ऊणियाओ अडदालीस पुव्वकोडीओ उक्कस्समंतरं होदि । एवं मणुस्सपज्जत्त-मणुस्सिणीसु । णवरि आधाकम्मस्स तिसमऊणतेवीस-सत्तपुव्वकोडीहि सादिरेयाणि तिण्णि पलिदोवमाणि उक्कस्समंतरं होदि । इरियावथकम्मस्स समयाहियसत्तअंतोमुहुत्तब्भहिय-अट्ठवस्सेहि ऊणियाओ चउवीस-अट्ठपुव्वकोडीओ उक्कस्समंतरं होदि । तवोकम्मस्स दोअंतोमुहुत्तेहि अब्भहिया अट्ठवस्सेहि ऊणिया चउवीस-अट्ठपुव्वकोडीओ उक्कस्समंतरं होदि । किरियाकम्मस्स वेहि अंतोमुहुत्तेहि अब्भहियअट्ठवस्सेहि ऊणियाओ तेवीस-सत्त-पुव्वकोडीओ तिण्णि पलिदोवमाणि च उक्कस्संतरं होदि ।

मणुसअपज्जत्तएसु पओअकम्म-समोदाणकम्माणमंतरं केवचिरं कालादो होदि ? णाणाजीवं पडुच्च जहण्णेण एगसमओ । उक्कस्सेण पलिदोवमस्स असंखेज्जदिभागो । एगजीवं पडुच्च जहण्णुक्कस्सेण णत्थि अंतरं णिरंतरं । आधाकम्मस्स अंतरं केवचिरं कालादो होदि ? णाणाजीवं पडुच्च णत्थि अंतरं । एगजीवं पडुच्च जहण्णेण एगसमओ । उक्कस्सेण तिसमऊणअट्ठअंतोमुहुत्ताणि[1] ।

देवगदीए देवेसु पओअकम्म-समोदाणकम्माणमंतरं केवचिरं कालादो होदि ? णाणेग-

सात अन्तर्मुहूर्त अधिक आठ वर्ष कम अड़तालीस पूर्वकोटि कालप्रमाण ईर्यापथकर्मका उत्कृष्ट अन्तरकाल प्राप्त होता है । तपःकर्मका अन्तरकाल भी इसी प्रकार है । इतनी विशेषता है कि इसका उत्कृष्ट अन्तरकाल दो अन्तर्मुहूर्त कम अड़तालीस पूर्वकोटि कालप्रमाण है । इसी प्रकार मनुष्य पर्याप्त और मनुष्यनियोंमें जानना चाहिये । इतनी विशेपता है कि इनमें क्रमसे अधः-कर्मका उत्कृष्ट अन्तरकाल तीन समय कम तेईस पूर्वकोटि अधिक तीन पल्यप्रमाण और तीन समय कम सात पूर्वकोटि अधिक तीन पल्यप्रमाण है । तथा इनमें ईर्यापथकर्मका उत्कृष्ट अन्तर-काल क्रमसे समयाधिक सात अन्तर्मुहूर्त अधिक आठ वर्ष कम चौबीस पूर्वकोटिप्रमाण और समयाधिक सात अन्तर्मुहूर्त अधिक आठ वर्ष कम आठ पूर्वकोटिप्रमाण है । तथा तपःकर्मका उत्कृष्ट अन्तरकाल क्रमसे दो अन्तर्मुहूर्त अधिक आठ वर्ष न्यून चौबीस पूर्वकोटिप्रमाण और दो अन्तर्मुहूर्त अधिक आठ वर्ष कम आठ पूर्वकोटिप्रमाण है । तथा क्रियाकर्मका उत्कृष्ट अन्तरकाल क्रमसे दो अन्तर्मुहूर्त अधिक आठ वर्ष न्यून तेईस पूर्वकोटि अधिक तीन पल्य और दो अन्तर्मुहूर्त अधिक आठ वर्ष न्यून सात पूर्वकोटि अधिक तीन पल्य है ।

मनुष्य अपर्याप्तकोंमें प्रयोगकर्म और समवधानकर्मका अन्तरकाल कितना है ? नाना जीवोंकी अपेक्षा जघन्य अन्तरकाल एक समय है और उत्कृष्ट अन्तरकाल पल्यके असंख्यातवें भाग-प्रमाण है । एक जीवकी अपेक्षा जघन्य और उत्कृष्ट अन्तरकाल नहीं है, वह निरन्तर है । अधः-कर्मका अन्तरकाल कितना है ? नाना जीवोंकी अपेक्षा अन्तरकाल नहीं है । एक जीवकी अपेक्षा जघन्य अन्तरकाल एक समय है और उत्कृष्ट अन्तरकाल तीन समय कम आठ अन्तर्मुहूर्त है ।

देवगतिमें देवोंमें प्रयोगकर्म और समवधानकर्मका अन्तरकाल कितना है ? नाना जीवों

१ आप्रतौ ' उक्कस्सेण समऊणअंतोमुहुत्ताणि ' इति पाठः ।

जीवं पडुच्च णत्थि अंतरं णिरंतरं । किरियाकम्मस्स अंतरं केवचिरं कालादो होदि ? णाणा-जीवं पडुच्च णत्थि अंतरं णिरंतरं । एगजीवं पडुच्च जहण्णेण अंतोमुहुत्तं । उक्कस्सेण एक्कत्तीस सागरोवमाणि देसूणाणि । कुदो ? एक्को संजदो उवसमसेडिं चडिदूण णियत्तो[1] असंजद-सम्मादिट्ठिट्ठाणे दव्वसंजमेण दीहमुवसमसम्मत्तद्धमणुपालेदूण कालं गदो । उवरिमउवरिम-गेवज्जे उववण्णो । किरियाकम्मस्स आदी दिट्ठा । उवसमसम्मत्तद्धाए छआवलियाओ अत्थि त्ति सासणं गदो । अंतरिदो । तदो एक्कत्तीसण्हं सागरोवमाणं सव्वजहण्णंतोमुहुत्तावसेसे उवसम-सम्मत्तं पडिवण्णो । लद्धमंतरं । सासणं गंतूण मदो मणुस्सो जादो । एवं बेहि अंतोमुहुत्तेहि ऊणएक्कत्तीससागरोवममेत्तउक्कस्संतरुवलंभादो ।

भवणवासिय-वाणवेंतर-जोदिसियदेवेसु पओअकम्म-समोदाणकम्माणं णाणेगजीवं पडुच्च णत्थि अंतरं णिरंतरं । एवं सव्वदेवाणं वत्तव्वं । किरियाकम्मस्संतरं केवचिरं कालादो होदि ? णाणाजीवं पडुच्च णत्थि अंतरं णिरंतरं । एगजीवं पडुच्च जहण्णेण अंतोमुहुत्तं । उक्कस्सेण पंचहि अंतोमुहुत्तेहि ऊणियं दिवड्ढसागरोवमं पलिदोवमं सादिरेयं पलिदोवमं सादिरेयं । सोहम्मप्पहुडि जाव सदर-सहस्सारदेवे त्ति ताव किरियाकम्मस्स अंतरं केवचिरं कालादो होदि ? णाणाजीवं पडुच्च देवभंगो । एगजीवं पडुच्च जहण्णेण अंतोमुहुत्तं । कुदो ?

और एक जीवकी अपेक्षा अन्तरकाल नहीं है, वह निरन्तर है । क्रियाकर्मका अन्तरकाल कितना है ? नाना जीवोंकी अपेक्षा अन्तरकाल नहीं है, वह निरन्तर है । एक जीवकी अपेक्षा जघन्य अन्तरकाल अन्तर्मुहूर्त है और उत्कृष्ट अन्तरकाल कुछ कम इकतीस सागर है, क्योंकि, एक संयत जीव उपशमश्रेणिपर चढ़कर उतरते हुए असंयतसम्यग्दृष्टि गुणस्थानमें द्रव्य संयमके साथ उपशमसम्यक्त्वके दीर्घ काल तक उसका पालन कर मरा और उपरिमउपरिम ग्रैवेयकमें उत्पन्न होकर क्रियाकर्मका प्रारम्भ किया । फिर उपशमसम्यक्त्वके कालमें छह आवलि काल शेष रहनेपर सासादन गुणस्थानको प्राप्त होकर उसका अन्तर किया । तदनन्तर इकतीस सागरमें सबसे जघन्य अन्तर्मुहूर्त काल शेष रहनेपर उपशमसम्यक्त्वको प्राप्त हुआ । इस प्रकार क्रियाकर्मका उत्कृष्ट अन्तरकाल प्राप्त हो जाता है । फिर सासादन गुणस्थानको प्राप्त होकर मरा और मनुष्य हो गया । इस प्रकार क्रियाकर्मका दो अन्तर्मुहूर्त कम इकतीस सागर प्रमाण उत्कृष्ट अन्तरकाल पाया जाता है ।

भवनवासी, वानव्यन्तर और ज्योतिषी देवोंमें प्रयोगकर्म और समवधानकर्मका नाना जीवों और एक जीवकी अपेक्षा अन्तरकाल नहीं है, वह निरन्तर है । इसी प्रकार सब देवोंके कहना चाहिये । क्रियाकर्मका अन्तरकाल कितना है ? नाना जीवोंकी अपेक्षा अन्तरकाल नहीं है, वह निरन्तर है । एक जीवकी अपेक्षा जघन्य अन्तरकाल अन्तर्मुहूर्त है और उत्कृष्ट अन्तरकाल क्रमसे पांच अन्तर्मुहूर्त कम डेढ़ सागर, पांच अन्तर्मुहूर्त कम साधिक एक पल्य और पांच अन्तर्मुहूर्तो कम साधिक एक पल्य है । सौधर्म कल्पसे लेकर शतार-सहस्रार कल्प तकके देवोंमें क्रियाकर्मका अन्तरकाल कितना है ? नाना जीवोंकी अपेक्षा अन्तरकालका विचार सामान्य देवोंके समान है ।

१ अ-आ-काप्रतिषु ' णेयंतो ' इति पाठः ।

सम्माइट्ठिस्स सव्वलहुं मिच्छत्तं सम्मामिच्छत्तं वा गंतूण सम्मत्तं पडिवण्णस्स तदुवलंभादो। उक्कसेण आदिल्ल-अंतिल्लअंतोमुहुत्तेहि ऊणाणि अंतोमुहुत्तूणद्धसागरोवमसहिदाणि[1] वे सत्त दस चोद्दस सोलस अट्ठारस सागरोवमाणि किरियाकम्मस्स उक्कस्संतरं होदि। आणद-पाणद-प्पहुडि जावुवरिम-उवरिमगेवज्जदेवे[2] त्ति ताव किरियाकम्मस्स अंतरं केवचिरं कालादो होदि? णाणाजीवं पडुच्च णत्थि अंतरं णिरंतरं। एगजीवं पडुच्च जहण्णेण अंतोमुहुत्तं उक्कस्सेण आदिल्लंतिल्लअंतोमुहुत्तेहि ऊणाणि वीसं बावीसं तेवीसं चदुवीसं पंचवीसं छव्वीसं सत्तावीसं अट्ठावीसं एगूणतीसं तीसं एक्कत्तीसं सागरोवमाणि उक्कस्संतरं होदि। णवरि उवसमसेडिं चडिय पुणो ओदरिदूण असंजदसम्मादिट्ठिट्ठाणे दव्वसंजदो होदूण कालं करिय अप्पप्पणो इच्छिदविमाणेसुप्पण्णस्स किरियाकम्मस्स आदी[3] होदि। तदो उवसमसम्मत्तकाले छआव-लियावसेसे आसादणं गंतूण अंतरिदो। अप्पप्पणो आउअम्मि सव्वजहण्णअंतोमुहुत्तावसेसे उवसमसम्मत्तं पडिवण्णे लद्धमंतरं। पुणो सासणं गंतूण मरिय मणुस्सेसु उप्पण्णो त्ति वत्तव्वं। एदेहि वेहि अंतोमुहुत्तेहि ऊणाणि अप्पप्पणो उत्तसागरोवमाणि अंतरं होदि। अच्चि-अच्चि-मालिणि-वइर-वइरोयण-सोम-सोमरुइ-अंक-फलीह-आइच्च-विजय-वइजयंत-जयंत-अवराइदे[4]-

एक जीवकी अपेक्षा जघन्य अन्तरकाल अन्तर्मुहूर्त है, क्योंकि, जो सम्यग्दृष्टि जीव मिथ्यात्व या सम्यग्मिथ्यात्वको प्राप्त होकर अतिशीघ्र सम्यक्त्वको प्राप्त होता है उसके यह अन्तरकाल पाया जाता है। क्रियाकर्मका उत्कृष्ट अन्तरकाल सर्वत्र आदि और अन्तके दो अन्तर्मुहूर्त कम तथा अन्तर्मुहूर्त कम आधा सागर अधिक क्रमसे दो, सात, दस, चौदह, सोलह और अठारह सागरप्रमाण है। आनत-प्राणत कल्पसे लेकर उपरिमउपरिम ग्रैवेयक तकके देवोंमें क्रियाकर्मका अन्तरकाल कितना है? नाना जीवोंकी अपेक्षा अन्तरकाल नहीं है, वह निरन्तर है। एक जीवकी अपेक्षा जघन्य अन्तरकाल अन्तर्मुहूर्त है और उत्कृष्ट अन्तरकाल सर्वत्र आदि और अन्तके दो अन्तर्मुहूर्त कम क्रमसे वीस, बाईस, तेईस, चौबीस, पच्चीस, छब्बीस, सत्ताईस, अट्ठाईस, उनतीस, तीस और इकतीस सागरप्रमाण है। यहां इतना विशेष कहना चाहिये कि उपशमश्रेणिपर चढ़कर फिर उतरकर असं-यतसम्यग्दृष्टि गुणस्थानमें द्रव्य संयत होकर और मरकर जो अपने अपने इच्छित विमानमें उत्पन्न हुआ है उसके क्रियाकर्मकी आदि होती है। फिर उपशमसम्यक्त्वके कालमें छह आवलि कालके शेष रहनेपर सासादान गुणस्थानको प्राप्त होकर उसका अन्तर करता है। और अपनी अपनी आयुमें सबसे जघन्य अन्तर्मुहूर्त कालके शेष रहनेपर उपशमसम्यक्त्वको प्राप्त होता है और इस तरह अन्तरकाल निकल आता है। फिर सासादन गुणस्थानको प्राप्त होकर और मरकर मनुष्योंमें उत्पन्न हुआ, ऐसा कहना चाहिए। इस प्रकार ये दो अन्तर्मुहूर्त कम अपनी अपनी कही गई सागरोंप्रमाण उत्कृष्ट आयु उत्कृष्ट अन्तरकाल होता है। अर्चि, अर्चिमालिनी, वज्र, वैरोचन, सोम, सोमरुचि, अंक, स्फटिक, आदित्य, विजय, वैजयन्त, जयन्त, अपराजित और

१ आ-का-ताप्रतिषु 'अंतोमुहुत्तद्ध' इति पाठः। २ आ-का-ताप्रतिषु 'जावुवरिमगेवज्ज-' इति पाठः। ३ ताप्रतौ '-विमाणेसुप्पण्णस्स आदी' इति पाठः। ४ काप्रतौ 'वइजयंतअवराइद' इति पाठः।

सव्वट्ट-सिद्धिविमाणवासियदेवेसु पओअकम्म-समोदाणकम्म-किरियाकम्माणमंतरं केवचिरं कालादो होदि ? णाणेगजीवं पडुच्च णत्थि अंतरं णिरंतरं ।

इंदियाणुवादेण एइंदियाणं पओअकम्म-समोदाणकम्माणं अंतरं केवचिरं कालादो होदि ? णाणेगजीवं पडुच्च णत्थि अंतरं णिरंतरं । आधाकम्मस्स अंतरं केवचिरं कालादो होदि ? णाणाजीवं पडुच्च णत्थि अंतरं । एगजीवं पडुच्च जहण्णेण एगसमओ । उक्कस्सेण तिसमऊणमणंतकालमसंखेज्जपोग्गलपरियट्टा । बादरेइंदियाणं पओअकम्म-समोदाणकम्माण-मंतरं केवचिरं कालादो होदि ? णाणेगजीवं पडुच्च णत्थि अंतरं । आधाकम्मस्स अंतरं केवचिरं कालादो होदि ? णाणाजीवं पडुच्च णत्थि अंतरं णिरंतरं । एगजीवं पडुच्च जहण्णेण एगसमओ । उक्कस्सेण तिसमऊणो अंगुलस्स असंखेज्जदिभागो असंखेज्जाओ ओसप्पिणि-उस्सप्पिणीओ । बादरेइंदियपज्जत्ताणं पओअकम्म-समोदाणकम्माणमंतरं केवचिरं कालादो होदि ? णाणेगजीवं पडुच्च णत्थि अंतरं । आधाकम्मस्स अंतरं केवचिरं कालादो होदि ? णाणाजीवं पडुच्च णत्थि अंतरं । एगजीवं पडुच्च जहण्णेण एगसमओ । उक्कस्सेण ति-समऊणाणि संखेज्जाणि वस्ससहस्साणि । बादरेइंदियअपज्जत्ताणं पओअकम्म-समोदाणकम्माणं णाणेगजीवं पडुच्च णत्थि अंतरं । आधाकम्मस्स अंतरं केवचिरं कालादो होदि ? णाणाजीवं पडुच्च णत्थि अंतरं । एगजीवं पडुच्च जहण्णेण एगसमओ । उक्कस्सेण अंतोमुहुत्तं तिसमऊणं ।

सर्वार्थसिद्धि विमानवासी देवोंमें प्रयोगकर्म, समवधानकर्म और क्रियाकर्मका अन्तरकाल कितना है ? नाना जीवों और एक जीवकी अपेक्षा अन्तरकाल नहीं है, वह निरन्तर है ।

इन्द्रियमार्गणाके अनुवादसे एकेन्द्रियोंमें प्रयोगकर्म और समवधानकर्मका अन्तरकाल कितना है ? नाना जीवों और एक जीवकी अपेक्षा अन्तरकाल नहीं है, वह निरन्तर है । अधः-कर्मका अन्तरकाल कितना है ? नाना जीवोंकी अपेक्षा अन्तरकाल नहीं है । एक जीवकी अपेक्षा जघन्य अन्तरकाल एक समय है । उत्कृष्ट अन्तरकाल तीन समय कम अनन्त काल है जो असंख्यात पुद्गलपरिवर्तन प्रमाण है । बादर एकेन्द्रियोंमें प्रयोगकर्म और समवधानकर्मका अन्तरकाल कितना है ? नाना जीवों और एक जीवकी अपेक्षा अन्तरकाल नहीं है । अधःकर्मका अन्तरकाल कितना है ? नाना जीवोंकी अपेक्षा अन्तरकाल नहीं है, निरन्तर है । एक जीवकी अपेक्षा जघन्य अन्तरकाल एक समय और उत्कृष्ट अन्तरकाल तीन समय कम अंगुलके असंख्यातवें भागप्रमाण है जो असंख्यात उत्सर्पिणी और अवसर्पिणीके समयोंके बराबर है । बादर एकेन्द्रिय पर्याप्तकोंके प्रयोगकर्म और समवधान कर्मका अन्तरकाल कितना है ? नाना जीवों और एक जीवकी अपेक्षा अन्तरकाल नहीं है । अधःकर्मका अन्तरकाल कितना है ? नाना जीवोंकी अपेक्षा अन्तरकाल नहीं है । एक जीवकी अपेक्षा जघन्य अन्तरकाल एक समय है और उत्कृष्ट अन्तरकाल तीन समय कम संख्यात हजार वर्ष है । बादर एकेन्द्रिय अपर्याप्तकोंके प्रयोगकर्म और समवधानकर्मका नाना जीवों और एक जीवकी अपेक्षा अन्तरकाल नहीं है । अधःकर्मका अन्तरकाल कितना है ? नाना जीवोंकी अपेक्षा अन्तरकाल नहीं है । एक जीवकी अपेक्षा जघन्य अन्तरकाल एक समय है और उत्कृष्ट अन्तरकाल तीन समय कम अन्तर्मुहूर्त है । सूक्ष्म एकेन्द्रियोंके प्रयोगकर्म और

सुहुमेइंदियाणं पओअकम्म-समोदाणकम्माणं णाणेगजीवं पडुच्च णत्थि अंतरं । आधाकम्मस्स अंतरं केवचिरं कालादो होदि ? णाणाजीवं पडुच्च णत्थि अंतरं । एगजीवं पडुच्च जहण्णेण एगसमओ । उक्कस्सेण तिसमऊणा असंखेज्जा लोगा । सुहुमेइंदियपज्जत्ताणं पओअकम्म-समोदाणकम्माणं णाणेगजीवं पडुच्च णत्थि अंतरं । आधाकम्मस्स अंतरं केवचिरं कालादो होदि ? णाणाजीवं पडुच्च णत्थि अंतरं । एगजीवं पडुच्च जहण्णेण एगसमओ । उक्कस्सेण अंतोमुहुत्तं तिसमऊणं । एवं सुहुमेइंदियअपज्जत्ताणं पि ।

बेइंदिय-तेइंदिय-चउरिंदियाणं तेसिं चेव पज्जत्ताणं च पओअकम्म-समोदाणकम्माण-मंतरं केवचिरं कालादो होदि ? णाणेगजीवं पडुच्च णत्थि अंतरं[1] । आधाकम्मस्स अंतरं केवचिरं कालादो होदि ? णाणाजीवं पडुच्च णत्थि अंतरं । एगजीवं पडुच्च जहण्णेण एगसमओ । उक्कस्सेण तिसमऊणाणि संखेज्जाणि वस्ससहस्साणि । बेइंदिय-तेइंदिय-चउरिंदिय-पंचिंदिय-अपज्जत्ताणं पओअकम्म-समोदाणकम्माणमंतरं केवचिरं कालादो होदि ? णाणेगजीवं पडुच्च णत्थि अंतरं । आधाकम्मस्स अंतरं केवचिरं कालादो होदि ? णाणाजीवं पडुच्च णत्थि अंतरं । एगजीवं पडुच्च जहण्णेण एगसमओ । उक्कस्सेण तिसमऊणाणि असीदि-सट्ठि-दाल-चदुवीसअंतोमुहुत्ताणि । पंचिंदियाणं पओअकम्म-समोदाणकम्माणमंतरं केवचिरं कालादो होदि ? णाणेगजीवं पडुच्च णत्थि अंतरं । आधाकम्मस्स अंतरं केवचिरं

समवधान कर्मका नाना जीवों और एक जीवकी अपेक्षा अन्तरकाल नहीं है । अधःकर्मका अन्तरकाल कितना है ? नाना जीवोंकी अपेक्षा अन्तरकाल नहीं है । एक जीवकी अपेक्षा जघन्य अन्तरकाल एक समय है और उत्कृष्ट अन्तरकाल तीन समय कम असंख्यात लोकप्रमाण है । सूक्ष्म एकेन्द्रिय पर्याप्तकोंके प्रयोगकर्म और समवधानकर्मका नाना जीवों और एक जीवकी अपेक्षा अन्तरकाल नहीं है । अधःकर्मका अन्तरकाल कितना है ? नाना जीवोंकी अपेक्षा अन्तरकाल नहीं है । एक जीवकी अपेक्षा जघन्य अन्तरकाल एक समय है और उत्कृष्ट अन्तरकाल तीन समय कम अन्तर्मुहूर्त है । इसी प्रकार सूक्ष्म एकेन्द्रिय अपर्याप्तकोंके भी जानना चाहिये ।

द्वीन्द्रिय, त्रीन्द्रिय और चतुरिन्द्रिय जीवोंके तथा उन्हींके पर्याप्त जीवोंके प्रयोगकर्म और समवधानकर्मका अन्तरकाल कितना है ? नाना जीवों और एक जीवकी अपेक्षा अन्तरकाल नहीं है । अधःकर्मका अन्तरकाल कितना है ? नाना जीवोंकी अपेक्षा अन्तरकाल नहीं है । एक जीवकी अपेक्षा जघन्य अन्तरकाल एक समय है और उत्कृष्ट अन्तरकाल तीन समय कम संख्यात हजार वर्ष है । द्वीन्द्रिय अपर्याप्त, त्रीन्द्रिय अपर्याप्त, चतुरिन्द्रिय अपर्याप्त और पंचेन्द्रिय अपर्याप्त जीवोंके प्रयोगकर्म और समवधानकर्मका अन्तरकाल कितना है ? नाना जीवों और एक जीवकी अपेक्षा अन्तरकाल नहीं है । अधःकर्मका अन्तरकाल कितना है ? नाना जीवोंकी अपेक्षा अन्तरकाल नहीं है । एक जीवकी अपेक्षा जघन्य अन्तरकाल एक समय है और उत्कृष्ट अन्तरकाल तीन समय कम क्रमसे अस्सी, साठ, चालीस और चौबीस अन्तर्मुहूर्त है । पंचेन्द्रियोंके प्रयोगकर्म और समवधानकर्मका अन्तरकाल कितना है ? नाना जीवों और एक जीवकी अपेक्षा अन्तरकाल नहीं है । अधःकर्मका अन्तरकाल कितना है ? नाना जीवोंकी

१ ताप्रतौ ' अंतर...' इति पाठः ।

कालादो होदि ? णाणाजीवं पडुच्च णत्थि अंतरं । एगजीवं पडुच्च जहण्णेण एगसमओ । उक्कस्सेण तिसमऊणं सागरोवमसहस्सं पुव्वकोडिपुधत्तेणब्भहियं । इरियावहकम्मस्स अंतरं केवचिरं कालादो होदि ? णाणाजीवं पडुच्च णत्थि अंतरं । एगजीवं पडुच्च जहण्णेण अंतोमुहुत्तं । उक्कस्सेण सागरोवमसहस्सं पुव्वकोडिपुधत्तेणब्भहियं । कुदो ? एक्को अट्ठावीससंतकम्मिओ एइंदियो पुव्वकोडाउएसु मणुस्सेसु उववण्णो । गब्भादि-अट्ठवस्साण-मुवरि वेदगसम्मत्तं संजमं च जुगवं पडिवण्णो । तदो अणंताणुबंधिं विसंजोइय[1] दंसणमोहणीय-मुवसामेदूण[2] पुणो पमत्तापमत्तपरावत्तसहस्सं[3] कादूण अपुव्व० अणियट्टि० सुहुम० उवसंतो जादो । तदो इरियावथकम्मस्स आदी दिट्ठा । पुणो सुहुमो होदूण अंतरिदो । सागरोवमसहस्सं पुव्वकोडिपुधत्तेणब्भहियमंतरिदूण अपच्छिमाए पुव्वकोडीए अंतोमुहुत्तावसेसे खीणकसाओ जादो । इरियावहकम्मस्स लद्धमंतरं । एवमेदेहि गब्भादिअट्ठवस्सेहि णवहि अंतोमुहुहि य ऊणसगुक्कस्सट्ठिदिमेत्तअंतरुवलंभादो । तवोकम्मस्स वि एवं चेव । णवरि अट्ठहि वस्सेहि बेहि अंतोमुहुत्तेहि य ऊणयं सागरोवमसहस्सं पुव्वकोडिपुधत्तेणब्भहिय-मुक्कस्संतरं होदि । किरियाकम्मस्स अंतरं केवचिरं कालादो होदि ? णाणाजीवं पडुच्च णत्थि अंतरं । एगजीवं पडुच्च जहण्णेण अंतोमुहुत्तं । कुदो ? एक्को अप्पमत्तो होदूण अपुव्वो

अपेक्षा अन्तरकाल नहीं है । एक जीवकी अपेक्षा जघन्य अन्तरकाल एक समय है और उत्कृष्ट अन्तरकाल तीन समय कम पूर्वकोटिपृथक्त्व अधिक एक हजार सागर है । ईर्यापथकर्मका अन्तरकाल कितना है ? नाना जीवोंकी अपेक्षा अन्तरकाल नहीं है । एक जीवकी अपेक्षा जघन्य अन्तरकाल अन्तर्मुहूर्त है और उत्कृष्ट अन्तरकाल पूर्वकोटिपृथक्त्व अधिक एक हजार सागर है, क्योंकि, अट्ठाईस प्रकृतियोंकी सत्तावाला एक एकेन्द्रिय जीव पूर्वकोटिकी आयुवाले मनुष्योंमें उत्पन्न हुआ । गर्भसे लेकर आठ वर्षका होनेपर वेदकसम्यक्त्व और संयमको एक साथ प्राप्त हुआ । अनन्तर अनन्तानुबन्धीकी विसंयोजना करके तथा दर्शनमोहनीयको उपशमा कर फिर प्रमत्त और अप्रमत्त गुणस्थानके हजारों परावर्तन करके अपूर्वउपशमक, अनिवृत्तिउपशमक, सूक्ष्मउपशमक और उपशान्तकषाय हुआ । यहां ईर्यापथकर्मका प्रारम्भ दिखाई दिया । फिर सूक्ष्मसाम्पराय होकर उसका अन्तर किया । और पूर्वकोटिपृथक्त्व अधिक एक हजार सागर प्रमाण काल तक उसका अन्तर करके अन्तिम पूर्वकोटिके कालमें अन्तर्मुहूर्त शेष रहनेपर क्षीणकषाय हुआ । इस प्रकार ईर्यापथकर्मका अन्तर प्राप्त हो जाता है । इस प्रकार गर्भसे लेकर आठ वर्ष और नौ अन्तर्मुहूर्त कम अपनी उत्कृष्ट स्थितिप्रमाण अन्तरकाल प्राप्त होता है । तपःकर्मका अन्तरकाल भी इसी प्रकार है । इतनी विशेषता है कि इसका उत्कृष्ट अन्तरकाल आठ वर्ष और दो अन्तर्मुहूर्त कम पूर्वकोटिपृथक्त्व अधिक एक हजार सागरप्रमाण है । क्रियाकर्मका अन्तरकाल कितना है ? नाना जीवोंकी अपेक्षा अन्तरकाल नहीं है । एक जीवकी अपेक्षा जघन्य अन्तरकाल अन्तर्मुहूर्त है, क्योंकि, कोई एक मनुष्य अप्रमत्त होकर अपूर्वसंयत हुआ और क्रियाकर्मका अन्तर

---

१ का-ताप्रत्योः ' विसंजोएदूण ' इति पाठः । २ का-ताप्रत्योः ' -मुवसामिय ' इति पाठः । ३ ताप्रतौ ' पमत्तापमत्तसहस्सं ' इति पाठः ।

जादो। अंतरिदो। तदो णिद्दा-पयलाणं बंधवोच्छेदं कादूण मदो देवो जादो। लद्धमंतरं। एवं किरियाकम्मस्स जहण्णंतरुवलंभादो। उक्कस्सेण सागरोवमसहस्सं पुव्वकोडिपुधत्तेणब्भहियं। कुदो? एक्को अट्ठावीससंतकम्मिओ विगलिंदियो सम्मुच्छिमसण्णिपंचिंदियपज्जत्तएसु उववण्णो। छहि पज्जत्तीहि पज्जत्तयदो विस्संतो विसुद्धो वेदगसम्मत्तं पडिवण्णो। किरियाकम्मस्स आदी दिट्ठा। तदो सव्वलहुमंतोमुहुत्तं किरियाकम्मेण अच्छिदूण मिच्छत्तं गदो अंतरिदो। तदो सागरोवमसहस्सं पुव्वकोडिपुधत्तेणब्भहियं हिंडिदूण तदो अपच्छिमे भवग्गहणे पुव्वकोडाउएसु मणुस्सेसु उववण्णो। पुणो अंतोमुहुत्तावसेसे उवसमसम्मत्तं संजमं च जुगवं पडिवण्णो। किरियाकम्मस्स लद्धमंतरं। तदो सासणं गंतूण मदो एइंदियो जादो। एवं पंचहि अंतोमुहुत्तेहि ऊणिया सगुक्कस्सट्ठिदी किरियाकम्मस्स उक्कस्संतरं होदि त्ति। एवं पंचिंदियपज्जत्तस्स वि वत्तव्वं। णवरि जम्हि सागरोवमसहस्सं पुव्वकोडिपुधत्तेणब्भहियमुक्कस्संतरं भणिदं तम्हि सागरोवमसदपुधत्तं वत्तव्वं।

कायाणुवादेण पुढविकाइय-आउकाइय-तेउकाइय-वाउकाइयाणं पओअकम्म-समोदाणकम्माणमंतरं केवचिरं कालादो होदि? णाणेगजीवं पडुच्च णत्थि अंतरं। आधाकम्मस्स अंतरं केवचिरं कालादो होदि? णाणाजीवं पडुच्च णत्थि अंतरं। एगजीवं पडुच्च जहण्णेण एगसमओ। उक्कस्सेण तिसमऊणा असंखेज्जा लोगा। बादरपुढवि-बादरआउ-बादर-

---

किया। फिर निद्रा और प्रचलाकी बन्धव्युच्छित्ति करके मरा और देव हो गया। अन्तरकाल प्राप्त हो गया। इस प्रकार क्रियाकर्मका जघन्य अन्तरकाल प्राप्त हो जाता है। उत्कृष्ट अन्तरकाल पूर्वकोटिपृथक्त्व अधिक एक हजार सागर प्रमाण है, क्योंकि, अट्ठाईस प्रकृतियोंकी सत्तावाला एक विकलेन्द्रिय जीव सम्मूर्च्छिम संज्ञी पंचेन्द्रिय पर्याप्तकोंमें उत्पन्न हुआ। छह पर्याप्तियोंसे पर्याप्त हो, विश्राम करके और विशुद्ध होकर वेदकसम्यक्त्वको प्राप्त हुआ। यहां क्रियाकर्मकी आदि दिखाई दी। फिर सबसे अल्प अन्तर्मुहूर्त काल तक क्रियाकर्मके साथ रहकर मिथ्यात्वको प्राप्त हो उसका अन्तर किया। अनन्तर पूर्वकोटिपृथक्त्व अधिक एक हजार सागरप्रमाण काल तक भ्रमण करके अन्तिम भवको ग्रहण करते समय पूर्वकोटिकी आयुवाले मनुष्योंमें उत्पन्न हुआ। अनन्तर अन्तर्मुहूर्त काल शेष रहनेपर उपशमसम्यक्त्व और संयमको एक साथ प्राप्त हुआ। इस प्रकार क्रियाकर्मका अन्तरकाल लब्ध होता है। अन्तर सासादन गुणस्थानको प्राप्त होकर मरा और एकेन्द्रिय हो गया। इस प्रकार पांच अन्तर्मुहूर्त कम अपनी उत्कृष्ट स्थिति प्रमाण क्रियाकर्मका उत्कृष्ट अन्तरकाल होता है। इसी प्रकार पंचेन्द्रिय पर्याप्तकके भी कहना चाहिये। इतनी विशेषता है कि जहां पूर्वकोटिपृथक्त्व अधिक एक हजार सागरप्रमाण उत्कृष्ट अन्तरकाल कहा है वहां सौ सागरपृथक्त्व कहना चाहिये।

कायमार्गणाके अनुवादसे पृथिवीकायिक, जलकायिक, अग्निकायिक और वायुकायिक जीवोंके प्रयोगकर्म और समवधानकर्मका अन्तरकाल कितना है? नाना जीवों और एक जीवकी अपेक्षा अन्तरकाल नहीं है। अधःकर्मका अन्तरकाल कितना है? नाना जीवोंकी अपेक्षा अन्तरकाल नहीं है। एक जीवकी अपेक्षा जघन्य अन्तरकाल एक समय है और उत्कृष्ट अन्तरकाल

तेउ-बादरवाऊणं पओअकम्म-समोदाणकम्माणमंतरं केवचिरं कालादो होदि ? णाणेगजीवं पडुच्च णत्थि अंतरं । आधाकम्मस्स अंतरं केवचिरं कालादो होदि ? णाणाजीवं पडुच्च णत्थि अंतरं । एगजीवं पडुच्च जहण्णेण एगसमओ । उक्कस्सेण तिसमऊणो अंगुलस्स असंखेज्जदिभागो असंखेज्जाओ ओसप्पिणि-उस्सप्पिणीओ । तेसिं चेव बादरपज्जत्ताणं पओअकम्म-समोदाणकम्माणमंतरं केवचिरं कालादो होदि ? णाणेगजीवं पडुच्च णत्थि अंतरं । आधाकम्मस्स अंतरं केवचिरं कालादो होदि ? णाणाजीवं पडुच्च णत्थि अंतरं । एगजीवं पडुच्च जहण्णेण एगसमओ । उक्कस्सेण तिसमऊणाणि संखेज्जवस्ससहस्साणि । तेसिं चेव बादरेइंदियअपज्जत्ताणं पओअकम्म-समोदाणकम्माणं णाणेगजीवं पडुच्च णत्थि अंतरं । आधाकम्मस्स अंतरं केवचिरं कालादो होदि ? णाणाजीवं पडुच्च णत्थि अंतरं । एगजीवं पडुच्च जहण्णेण एगसमओ । उक्कस्सेण तिसमऊणमंतोमुहुत्तं । सुहुमपुढवि-सुहुमआउ-सुहुमतेउ-सुहुमवाऊणं पुढविभंगो । तेसिं चेव सुहुमपज्जत्तापज्जत्ताणं पओअकम्म-समोदाणकम्माणं णाणेगजीवं पडुच्च णत्थि अंतरं । आधाकम्मस्स अंतरं केवचिरं कालादो होदि ? णाणाजीवं पडुच्च णत्थि अंतरं । एगजीवं पडुच्च जहण्णेण एगसमओ । उक्कस्सेण तिसमऊणअंतोमुहुत्तं ।

वणप्फदिकाइयाणं पओअकम्म-समोदाणकम्माणमंतरं केवचिरं कालादो होदि ?

तीन समय कम असंख्यात लोकप्रमाण है । बादर पृथिवीकायिक, बादर जलकायिक, बादर अग्निकायिक और बादर वायुकायिक जीवोंके प्रयोगकर्म और समवधान कर्मका अन्तरकाल कितना है ? नाना जीवों और एक जीवकी अपेक्षा अन्तरकाल नहीं है । अध:कर्मका अन्तरकाल कितना है ? नाना जीवोंकी अपेक्षा अन्तरकाल नहीं है । एक जीवकी अपेक्षा जघन्य अन्तरकाल एक समय है और उत्कृष्ट अन्तरकाल तीन समय कम अंगुलके असंख्यातवें भागप्रमाण है जो असंख्यात उत्सर्पिणी और अवसर्पिणियोंके बराबर है । उन्हीं बादर पर्याप्तकोंके प्रयोगकर्म और समवधानकर्मका अन्तरकाल कितना है ? नाना जीवों और एक जीवकी अपेक्षा अन्तरकाल नहीं है । अध:कर्मका अन्तरकाल कितना है ? नाना जीवोंकी अपेक्षा अन्तरकाल नहीं है । एक जीवकी अपेक्षा जघन्य अन्तरकाल एक समय है और उत्कृष्ट अन्तरकाल तीन समय कम संख्यात हजार वर्ष है । उन्हीं बादर एकेन्द्रिय अपर्याप्तकोंके प्रयोगकर्म और समवधानकर्मका नाना जीवों और एक जीवकी अपेक्षा अन्तरकाल नहीं है । अध:कर्मका अन्तरकाल कितना है ? नाना जीवोंकी अपेक्षा अन्तरकाल नहीं है । एक जीवकी अपेक्षा जघन्य अन्तरकाल एक समय है और उत्कृष्ट अन्तरकाल तीन समय कम अन्तर्मुहूर्त है । सूक्ष्म पृथिवीकायिक, सूक्ष्म जलकायिक, सूक्ष्म अग्निकायिक और सूक्ष्म वायुकायिक जीवोंके अन्तरकाल पृथिवीकायिक जीवोंके समान है । उन्हीं सूक्ष्म पर्याप्त और अपर्याप्त जीवोंके प्रयोगकर्म और समवधानकर्मका नाना जीवों और एक जीवकी अपेक्षा अन्तरकाल नहीं है । अध:कर्मका अन्तरकाल कितना है ? नाना जीवोंकी अपेक्षा अन्तरकाल नहीं है । एक जीवकी अपेक्षा जघन्य अन्तरकाल एक समय है और उत्कृष्ट अन्तरकाल तीन समय कम अन्तर्मुहूर्त है ।

वनस्पतिकायिक जीवोंके प्रयोगकर्म और समवधानकर्मका अन्तरकाल कितना है ? नाना

णाणेगजीवं पडुच्च णत्थि अंतरं। आधाकम्मस्स अंतरं केवचिरं कालादो होदि? णाणाजीवं पडुच्च णत्थि अंतरं। एगजीवं पडुच्च जहण्णेण एगसमओ। उक्कस्सेण अणंतो कालो तिसमऊणा असंखेज्जा पोग्गलपरियट्टा। बादरवणप्फदिकाइयाणं बादरपुढविभंगो। बादरवणप्फदिकाइयपज्जत्तापज्जत्ताणं बादरपुढविपज्जत्तापज्जत्तभंगो। सुहुमवणप्फदि[1]-सुहुमवणप्फदिपज्जत्तापज्जत्ताणं सुहुमपुढवि[2]-सुहुमपुढविपज्जत्तापज्जत्ताणं भंगो।

तसकाइयाणं पओअकम्म-समोदाणकम्माणं अंतरं केवचिरं कालादो होदि? णाणेगजीवं पडुच्च णत्थि अंतरं। आधाकम्मस्स अंतरं केवचिरं कालादो होदि? णाणाजीवं पडुच्च णत्थि अंतरं। एगजीवं पडुच्च जहण्णेण एगसमओ। उक्कस्सेण तिसमऊणाणि बेसागरोवमसहस्साणि पुव्वकोडिपुधत्तेणब्भहियाणि[3]। इरियावहकम्मस्स अंतरं केवचिरं कालादो होदि? णाणाजीवं पडुच्च णत्थि अंतरं। एगजीवं पडुच्च जहण्णेण अंतोमुहुत्तं। कुदो? इरियावहकम्मेणच्छिदउवसंतकसायादो हेट्ठा[4] ओदरिय अंतरिदूण सव्वजहण्णमंतोमुहुत्तमच्छिय पुणो उवसंतकसाए जादे संते इरियावहकम्मस्स जहण्णअंतरुवलंभादो। उक्कस्सेण बेसागरोवमसहस्साणि किंचूणपुव्वकोडिपुधत्तेणब्भहियाणि।

जीवों और एक जीवकी अपेक्षा अन्तरकाल नहीं है। अधःकर्मका अन्तरकाल कितना है? नाना जीवोंकी अपेक्षा अन्तरकाल नहीं है। एक जीवकी अपेक्षा जघन्य अन्तरकाल एक समय है और उत्कृष्ट अन्तरकाल अनन्त काल है जो तीन समय कम असंख्यात पुद्गलपरिवर्तनके बराबर है। बादर वनस्पतिकायिक जीवोंके अन्तरकाल बादर पृथिवीकायिक जीवोंके समान है। बादर वनस्पतिकायिक पर्याप्त और अपर्याप्त जीवोंके अन्तरकाल बादर पृथिवीकायिक पर्याप्त और अपर्याप्त जीवोंके समान है। सूक्ष्म वनस्पतिकायिक, सूक्ष्म वनस्पतिकायिक पर्याप्त और उन्हींके अपर्याप्त जीवोंके अन्तरकाल सूक्ष्म पृथिवीकायिक, सूक्ष्म पृथिवीकायिक पर्याप्त और उन्हींके अपर्याप्त जीवोंके समान है।

त्रसकायिक जीवोंके प्रयोगकर्म और समवधानकर्मका अन्तरकाल कितना है? नाना जीवों और एक जीवकी अपेक्षा अन्तरकाल नहीं है। अधःकर्मका अन्तरकाल कितना है? नाना जीवोंकी अपेक्षा अन्तरकाल नहीं है। एक जीवकी अपेक्षा जघन्य अन्तरकाल एक समय है और उत्कृष्ट अन्तरकाल तीन समय कम पूर्वकोटिपृथक्त्व अधिक दो हजार सागर है। ईर्यापथकर्मका अन्तरकाल कितना है? नाना जीवोंकी अपेक्षा अन्तरकाल नहीं है। एक जीवकी अपेक्षा जघन्य अन्तरकाल अन्तर्मुहूर्त है, क्योंकि, जो उपशान्तकषाय जीव ईर्यापथकर्मके साथ रहकर और नीचे उतरकर अन्तर करके सबसे जघन्य अन्तर्मुहूर्त काल तक ठहर कर पुनः उपशान्तकषाय हो जाता है उसके ईर्यापथकर्मका जघन्य अन्तरकाल उपलब्ध होता है। उत्कृष्ट अन्तरकाल कुछ कम पूर्वकोटिपृथक्त्व अधिक दो हजार सागर है, क्योंकि, अट्ठाईस कर्मोंकी सत्तावाला कोई एक

१ आ-का-ताप्रतिषु 'सुहुमवणप्फदि–' इत्येतत्पदं नोपलभ्यते। २ आ-का-ताप्रतिषु 'सुहुमपुढवि' इत्येतत्पदं नोपलभ्यते। ३ अतोऽग्रे ताप्रतौ [इरियावहकम्मस्स अंतरं केवचिरं० ? णाणाजीवं पडुच्च णत्थि अंतरं। एगजीवं पडुच्च जहण्णेण एगसमओ। उक्क० तिसमऊणाणि बेसागरोवमसहस्साणि पुव्वकोडिपुधत्तेणब्भहियाणि] इत्यधिकः पाठः कोष्ठकस्थोऽस्ति। ४ आ-का-ताप्रतिषु '–कसाए हेट्ठा' इति पाठः।

कुदो ? एक्को अट्ठावीससंतकम्मियएइंदियो मणुस्सेसु उववण्णो, गब्भादिअट्ठवस्साणमुवरि वेदगसम्मत्तं संजमं च जुगवं पडिवण्णो, अणंताणुबंधिं विसंजोइय दंसणमोहणीयमुवसामिय पुणो पमत्तापमत्तपरावत्तसहस्सं कादूण अपुव्व-अणियट्टि[1]-सुहुम-उवसंतो जादो, इरियावहकम्मस्स आदी दिट्ठा । पुणो सुहुमो होदूणंतरिदो । तदो बेसागरोवमसहस्साणि पुव्वकोडिपुधत्तेणब्भहियाणि अंतरिय सव्वजहण्णंतोमुहुत्तावसेसे सिज्झिदव्वए त्ति खीणकसाओ जादो । लद्धमंतरं इरियावहकम्मस्स । तदो जोगी अजोगी होदूण सिद्धो जादो । एवं गब्भादिअट्ठवस्सेहि एक्कारसअंतोमुहुत्तब्भहिएहि ऊणउक्कस्सतसट्ठिदिमेत्तअंतरुवलंभादो । तवोकम्मस्स अंतरं केवचिरं कालादो होदि ? णाणाजीवं पडुच्च णत्थि अंतरं । एगजीवं पडुच्च जहण्णेण अंतोमुहुत्तं । उक्कस्सेण बेसागरोवमसहस्साणि किंचूणपुव्वकोडिपुधत्तेणब्भहियाणि । तं जहा—एक्को अट्ठावीससंतकम्मियएइंदियो मणुस्सेसु उववण्णो । गब्भादिअट्ठवस्साणमंतोमुहुत्तब्भहियाणमुवरि विसोहिं[2] पूरेदूण वेदगसम्मत्तं संजमं च जुगवं पडिवण्णो । तवोकम्मस्स आदी दिट्ठा । तदो सव्वलहुमंतोमुहुत्तमच्छिय मिच्छत्तं गंतूणंतरिदो । तदो बेसागरोवमसहस्साणं पुव्वकोडिपुधत्तेणब्भहियाणं सव्वजहण्णमंतोमुहुत्तावसेसे उवसमसम्मत्तं संजमं च जुगवं पडिवण्णो । लद्धमंतरं तवोकम्मस्स । पुणो उवसमसम्मत्तद्धाए अब्भंतरे आसाणं गंतूण मदो एइंदियो जादो । एवं गब्भादिअट्ठवस्सेहि

एकेन्द्रिय जीव मनुष्योंमें उत्पन्न हुआ और गर्भसे लेकर आठ वर्षका होनेपर वेदकसम्यक्त्व और संयमको एक साथ प्राप्त हुआ । अनन्तर अनन्तानुबन्धीकी विसंयोजना कर और दर्शनमोहनीयको उपशमा कर अनन्तर प्रमत्त और अप्रमत्त गुणस्थानके हजारों परावर्तन करके अपूर्वउपशामक, अनिवृत्तिउपशामक, सूक्ष्मउपशामक और उपशान्तकषाय हुआ । इसके ईर्यापथकर्मकी आदि दिखाई दी । फिर सूक्ष्मसाम्पराय होकर इसका अन्तर किया । अनन्तर पूर्वकोटिपृथक्त्व अधिक दो हजार सागर कालका अन्तर देकर सबसे जघन्य अन्तर्मुहूर्त कालके शेष रहनेपर सिद्ध होगा, इसलिये क्षीणकषाय हुआ । इस प्रकार ईर्यापथकर्मका अन्तरकाल लब्ध होता है । अनन्तर योगी और अयोगी होकर सिद्ध हुआ । इस प्रकार गर्भसे लेकर आठ वर्ष और ग्यारह अन्तर्मुहूर्त कम उत्कृष्ट त्रसस्थितिप्रमाण उत्कृष्ट अन्तरकाल उपलब्ध होता है । तपःकर्मका अन्तरकाल कितना है ? नाना जीवोंकी अपेक्षा अन्तरकाल नहीं है । एक जीवकी अपेक्षा जघन्य अन्तरकाल अन्तर्मुहूर्त है और उत्कृष्ट अन्तरकाल कुछ कम पूर्वकोटिपृथक्त्व अधिक दो हजार सागर है । यथा— अट्ठाईस कर्मोंकी सत्तावाला कोई एक एकेन्द्रिय जीव मनुष्योंमें उत्पन्न हुआ । गर्भसे लेकर आठ वर्ष और अन्तर्मुहूर्तका होनेपर विशुद्धिको प्राप्त होकर वेदकसम्यक्त्व और संयमको एक साथ प्राप्त हुआ । इसके तपःकर्मका आरम्भ दिखाई दिया । अनन्तर सबसे लघु अन्तर्मुहूर्त काल तक उसके साथ रहकर मिथ्यात्वको प्राप्त हो उसका अन्तर किया । अनन्तर पूर्वकोटिपृथक्त्व अधिक दो हजार सागरप्रमाण कालमें सबसे जघन्य अन्तर्मुहूर्त काल शेष रहनेपर उपशमसम्यक्त्व और संयमको एक साथ प्राप्त हुआ । इस प्रकार तपःकर्मका अन्तरकाल लब्ध होता है । पुनः उपशमसम्यक्त्वके कालके भीतर सासादन गुणस्थानको प्राप्त होकर

१ प्रतिषु ' अणियट्टी ' इति पाठः । २ अ-आ-काप्रतिषु ' विसेसोहिं ' इति पाठः ।

दोअंतोमुहुत्तब्भहिएहि ऊणिया सगट्ठिदी तवोकम्मुक्कस्संतरं। किरियाकम्मस्संतरं केवचिरं कालादो होदि? णाणाजीवं पडुच्च णत्थि अंतरं। एगजीवं पडुच्च जहण्णेण अंतोमुहुत्तं। उक्कस्सेण बेसागरोवमसहस्साणि किंचूणपुव्वकोडिपुधत्तेणब्भहियाणि। कुदो? एक्को अट्ठावीससंतकम्मियएइंदियो सण्णिपंचिंदियसम्मुच्छिमपज्जत्तएसु उववण्णो। छहि पज्जत्तीहि पज्जत्तयदो विस्संतो विसुद्धो वेदगसम्मत्तं पडिवण्णो। किरियाकम्मस्स आदी दिट्ठा। सव्वजहण्णंतोमुहुत्तं किरियाकम्मेणच्छिय मिच्छत्तं गदो अंतरिदो। बेसागरोवम-सहस्साणं पुव्वकोडिपुधत्तेणब्भहियाणं सव्वजहण्णंतोमुहुत्तावसेसे उवसमसम्मत्तं पडिवण्णो। किरियाकम्मस्स लद्धमंतरं। पुणो सासणं गंतूण मदो एइंदियो जादो। एवं पंचहि अंतो-मुहुत्तेहि ऊणसगद्धत्तंतरुवलंभादो। एवं तसपज्जत्तयस्स वि। णवरि जम्हि बेसागरोवम-सहस्साणि पुव्वकोडिपुधत्तेणब्भहियाणि भणिदाणि तम्हि बेसागरोवमसहस्साणि त्ति वत्तव्वं।

तसअपज्जत्ताणं पओअकम्म-समोदाणकम्माणं णाणेगजीवं पडुच्च णत्थि अंतरं। आधाकम्मस्संतरं केवचिरं कालादो होदि? णाणाजीवं पडुच्च णत्थि अंतरं। एगजीवं पडुच्च जहण्णेण एगसमओ। उक्कस्सेण असीदि-सट्ठि-ताल-चदुवीसभवमेत्तअंतोमुहुत्ताणं संखेज्जाणं

मरा और एकेन्द्रिय हुआ। इस प्रकार गर्भसे लेकर आठ वर्ष और दो अन्तर्मुहूर्त कम अपनी स्थिति तपःकर्मका उत्कृष्ट अन्तरकाल होता है। क्रियाकर्मका अन्तरकाल कितना है? नाना जीवोंकी अपेक्षा अन्तकाल नहीं है। एक जीवकी अपेक्षा जघन्य अन्तरकाल अन्तर्मुहूर्त है और उत्कृष्ट अन्तरकाल कुछ कम पूर्वकोटिपृथक्त्व अधिक दो हजार सागर है, क्योंकि, अट्ठाईस कर्मोंकी सत्तावाला कोई एक एकेन्द्रिय संज्ञी पंचेन्द्रिय जीव सम्मूर्च्छन पर्याप्तकोंमें उत्पन्न हुआ। छह पर्याप्तियोंसे पर्याप्त हो, विश्राम करके और विशुद्ध होकर वेदकसम्यक्त्वको प्राप्त हुआ। इसके क्रियाकर्मका प्रारम्भ दिखाई दिया। अनन्तर सबसे जघन्य अन्तर्मुहूर्त काल तक क्रियाकर्मके साथ रहकर मिथ्यात्वको प्राप्त हो उसका अन्तर किया। अनन्तर पूर्वकोटिपृथक्त्व अधिक दो हजार सागरमें सबसे जघन्य अन्तर्मुहूर्त काल शेष रहनेपर उपशमसम्यक्त्वको प्राप्त हुआ। इस प्रकार क्रियाकर्मका अन्तरकाल लब्ध होता है। पुनः सासादन गुणस्थानको प्राप्त होकर मरा और एकेन्द्रिय हो गया। इस प्रकार पांच अन्तर्मुहूर्त कम अपनी उत्कृष्ट स्थिति क्रियाकर्मका उत्कृष्ट अन्तरकाल उपलब्ध हुआ।

इसी प्रकार त्रस पर्याप्तकोंके भी जानना चाहिए। किन्तु इतनी विशेषता है कि जहां पूर्वकोटिपृथक्त्व अधिक दो हजार सागर अन्तरकाल कहा है वहांपर दो हजार सागरप्रमाण अन्तरकाल कहना चाहिए।

त्रस अपर्याप्तक जीवोंके प्रयोगकर्म और समवधानकर्मका नाना जीवों और एक जीवकी अपेक्षा अन्तरकाल नहीं है। अधःकर्मका अन्तरकाल कितना है? नाना जीवोंकी अपेक्षा अन्तर-काल नहीं है। एक जीवकी अपेक्षा जघन्य अन्तरकाल एक समय है और उत्कृष्ट अन्तरकाल अस्सी, साठ, चालीस और चौबीस भवप्रमाण संख्यात अन्तर्मुहूर्तोंके समूहमेंसे तीन समय कम

समूहो तिसमऊणो[1]। तं जहा— एक्को एइंदियो तसअपज्जत्तएसु उववण्णो। तत्थ उप्पण्णपढमसमए उववादजोगेण ओरालियसरीरणिमित्तं जे गहिदा परमाणू तेसिं बिदियसमए णिज्जिण्णाणं आधाकम्मस्स आदी होदि। पुणो तदियसमयप्पहुडि ताव[2] अंतरं होदूण गच्छदि जाव संखेज्जअसीदि-सट्ठि-दाल-चदुवीसअपज्जत्तभवाणमंतोमुहुत्त-कालाणं[3] दुचरिमसमओ त्ति। पुणो चरिमसमए तेसु चेव पुणो णिज्जिण्णणोकम्म[4]क्खंधेसु बंधमागदेसु आधाकम्मस्स लद्धमंतरं होदि।

जोगाणुवादेण पंचमणजोगि-पंचवचिजोगीणं सव्वपदाणं णाणेगजीवं पडुच्च णत्थि अंतरं। णवरि आधाकम्मस्स एगजीवं पडुच्च जहण्णेण एगसमओ। उक्कस्सेण अंतोमुहुत्तं तिसमऊणं। एवं कायजोगिस्स। णवरि आधाकम्मस्स अंतरं एगजीवं पडुच्च जहण्णेण एगसमओ। उक्कस्सेण अणंतो कालो तिसमऊणो असंखेज्जा पोग्गलपरियट्टा। ओरालिय-कायजोगीसु एवं चेव। णवरि आधाकम्मस्स अंतरं एगजीवं पडुच्च जहण्णेण एगसमओ। उक्कस्सेण बावीसवस्ससहस्साणि तिसमयाहियअंतोमुहुत्तूणाणि। तं जहा— एक्को तिरिक्खो वा मणुस्सो वा बादरपुढविकाइयपज्जत्तएसु उववण्णो। चदुहि पज्जत्तीहि पज्जत्तयदपढमसमए जे गहिदा परमाणू तेसिं बिदियसमए णिज्जिण्णाणमाधाकम्मस्स आदी होदि। तदियसमयं-

है। यथा— एक एकेन्द्रिय जीव त्रस अपर्याप्तकोंमें उत्पन्न हुआ। वहां उत्पन्न होनेके पहले समयमें उपपाद योगके द्वारा औदारिकशरीरके निमित्त जो पुद्गलपरमाणु ग्रहण किये उनके दूसरे समयमें निर्जीर्ण हो जानेपर अधःकर्मका प्रारम्भ होता है। पुनः तीसरे समयसे लेकर अस्सी, साठ, चालीस और चौबीस अपर्याप्त भवप्रमाण संख्यात अन्तर्मुहूर्तोंके द्विचरम समय तक उसका अन्तर रहता है। पुनः अन्तिम समयमें उन्हीं निर्जीर्ण हुए कर्मस्कन्धोंके पुनः बन्धको प्राप्त होने-पर अधःकर्मका अन्तरकाल लब्ध होता है।

योगमार्गणाके अनुवादसे पांच मनोयोगी और पांच वचनयोगी जीवोंके सब पदोंका नाना जीवों और एक जीवकी अपेक्षा अन्तरकाल नहीं है। इतनी विशेषता है कि अधःकर्मका एक जीवकी अपेक्षा जघन्य अन्तरकाल एक समय है और उत्कृष्ट अन्तरकाल तीन समय कम अन्तर्मुहूर्त है। इसी प्रकार काययोगीके जानना चाहिये। इतनी विशेषता है कि इसके अधःकर्मका एक जीवकी अपेक्षा जघन्य अन्तरकाल एक समय है और उत्कृष्ट अन्तरकाल तीन समय कम अनन्त काल है जो असंख्यात पुद्गलपरिवर्तनके बराबर है। औदारिककाय-योगियोंमें इसी प्रकार जानना चाहिये। इतनी विशेषता है कि इनके अधःकर्मका एक जीवकी अपेक्षा जघन्य अन्तरकाल एक समय है और उत्कृष्ट अन्तरकाल तीन समय और अन्तर्मुहूर्त कम बाईस हजार वर्ष है। यथा— कोई एक तिर्यंच या मनुष्य बादर पृथिवीकायिक पर्याप्तकोंमें उत्पन्न हुआ। चार पर्याप्तियोंसे पर्याप्त होनेपर अनन्तर प्रथम समयमें जो परमाणु ग्रहण किये उनके दूसरे समयमें निर्जीर्ण होनेपर अधःकर्मकी आदि होती है। पुनः तीसरे समयसे लेकर

१ ताप्रतौ 'समूहो त्ति समऊणो' इति पाठः। २ प्रतिषु 'प्पहुडि जाव ताव' इति पाठः। ३ अ-आ-काप्रतिषु '-मंतोमुहुत्तो कालाणं', ताप्रतौ 'मंतोमुहुत्तो (त्त) कालाणं' इति पाठः। ४ अ-आ-काप्रतिषु 'णिज्जिण्णोकम्म' इति पाठः।

प्पहुडि अंतरं होदूण ताव गच्छदि जाव बावीसवस्ससहस्साणं[1] दुचरिमसमओ त्ति। पुणो चरिमसमए पुव्विल्लक्खंधेसु बंधमागदेसु लद्धमंतरं होदि। एवं तिसमयाहियअंतोमुहुत्तेण ऊणाणि बावीसवस्ससहस्साणि आधाकम्मस्स उक्कस्संतरं होदि।

ओरालियमिस्सकायजोगिस्स पओअकम्म-समोदाणकम्माणं णाणेगजीवं पडुच्च णत्थि अंतरं। आधाकम्मस्स अंतरं केवचिरं कालादो होदि? णाणाजीवं पडुच्च णत्थि अंतरं। एगजीवं पडुच्च जहण्णेण एगसमओ। उक्कस्सेण तिसमऊणमंतोमुहुत्तं। तं जहा—एक्को सव्वट्ठसिद्धिविमाणवासियदेवो उजुगदीए आगंतूण मणुस्सेसु उववण्णो। तत्थ उववादजोगेण जे पढमसमए गहिदा णोकम्मक्खंधा तेसिं विदियसमए णिज्जिण्णाणमादी होदि। तदो तदियसमयप्पहुडि अंतरं होदूण पुणो दीहेण अंतोमुहुत्तेण पज्जत्तयदो होहदि त्ति तस्स चरिमसमए लद्धमंतरं। एवं तिसमऊणंतोमुहुत्तं आधाकम्मुक्कस्संतरं होदि। इरियावह-तवोकम्माणं अंतरं केवचिरं कालादो होदि? णाणाजीवं पडुच्च जहण्णेण एगसमओ। उक्कस्सेण वासपुधत्तं। जहा—णिव्वुइमुमंगवताणं[2] छम्मासमुक्कस्संतरं होदि तहा केवलि-समुग्घादं करेंताणं पि छम्मासमेत्तमुक्कस्समंतरं किण्ण जायदे? ण एस दोसो, सव्वेसिं णिव्वुइमुवगमंताणं[3] केवलिसमुग्घादाभावादो। जदि अत्थि तोछम्मासमंतरं पि होज्ज।

बाईस हजार वर्षके द्विचरम समय तक उनका अन्तर रहता है। पुनः अन्तिम समयमें पूर्वोक्त कर्मस्कन्धोंके बन्धको प्राप्त होनेपर अन्तरकाल लब्ध होता है। इस प्रकार अधःकर्मका उत्कृष्ट अन्तरकाल तीन समय और अन्तर्मुहूर्त कम बाईस हजार वर्ष होता है।

औदारिकमिश्रकाययोगीके प्रयोगकर्म और समवधानकर्मका नाना जीवों और एक जीवकी अपेक्षा अन्तरकाल नहीं है। अधःकर्मका अन्तरकाल कितना है? नाना जीवोंकी अपेक्षा अन्तर-काल नहीं है। एक जीवकी अपेक्षा जघन्य अन्तरकाल एक समय है और उत्कृष्ट अन्तरकाल तीन समय कम अन्तर्मुहूर्त है। यथा—एक सर्वार्थसिद्धिविमानवासी देव ऋजुगतिसे आकर मनुष्योंमें उत्पन्न हुआ। वहां उपपाद योगसे प्रथम समयमें जो नोकर्मस्कन्ध ग्रहण किये उनके दूसरे समयमें निर्जीर्ण होनेपर अधःकर्मकी आदि होती है। अनन्तर तीसरे समयसे लेकर अन्तर होकर पुनः दीर्घ अन्तर्मुहूर्तके द्वारा पर्याप्त होगा, इस प्रकार उसके अन्तिम समयमें अन्तर प्राप्त होता है। इस प्रकार अधःकर्मका उत्कृष्ट अन्तरकाल तीन समय कम अन्तर्मुहूर्त होता है। ईर्यापथकर्म और तपःकर्मका अन्तरकाल कितना है? नाना जीवोंकी अपेक्षा जघन्य अन्तरकाल एक समय है और उत्कृष्ट अन्तरकाल वर्षपृथक्त्व है।

शंका—जिस प्रकार मोक्षको जानेवाले जीवोंका छह महीना उत्कृष्ट अन्तर होता है उसी प्रकार केवलिसमुद्घात करनेवालोंका भी छह महीनाप्रमाण उत्कृष्ट अन्तर क्यों नहीं होता?

समाधान—यह कोई दोष नहीं है, क्योंकि, मोक्ष जानेवाले सभी जीवोंके केवलि-समुद्घात नहीं होता। यदि मोक्ष जानेवाले सभी जीवोंके केवलिसमुद्घात होता तो छह मासप्रमाण

---

१ प्रतिषु '-सहस्साणि' इति पाठः। २ अ-आ-काप्रतिषु '-मुवणमंताणं', ताप्रतौ '-मुवगमणंताणं' इति पाठः। ३ अ-आ-ताप्रतिषु 'णिव्वुइगमणुवमंताणं', काप्रतौ 'णिव्वइगमणुवगंताणं' इति पाठः।

केवलिसमुग्घादेण विणा कधं पलिदोवमस्स असंखेज्जदिभागमेत्तट्ठिदीए घादो जायदे ? ण, ट्ठिदिखंडयघादेण तग्घादुववत्तीदो । एगजीवं पडुच्च णत्थि अंतरं । किरियाकम्मस्स अंतरं केवचिरं कालादो होदि ? णाणाजीवं पडुच्च जहण्णेण एगसमओ । उक्कस्सेण वासपुधत्तं । एगजीवं पडुच्च णत्थि अंतरं ।

एवं कम्मइयकायजोगिस्स । णवरि आधाकम्मस्स णाणाजीवं पडुच्च जहण्णेण एगसमओ । उक्कस्सेण वासपुधत्तं । एगजीवं पडुच्च णत्थि अंतरं । वेउव्वियकायजोगीसु सव्वपदाणं णत्थि अंतरं । वेउव्वियमिस्सकायजोगीसु पओअकम्म-समोदाणकम्माणमंतरं केवचिरं कालादो होदि ? णाणाजीवं पडुच्च जहण्णेण एगसमओ । उक्कस्सेण बारसमुहुत्ताणि । एगजीवं पडुच्च णत्थि अंतरं । किरियाकम्मस्स अंतरं केवचिरं कालादो होदि ? णाणाजीवं पडुच्च जहण्णेण एगसमओ । उक्कस्सेण मासपुधत्तं । एगजीवं पडुच्च णत्थि अंतरं । आहार-आहारमिस्सकायजोगीणं सव्वपदाणं णाणाजीवं पडुच्च जहण्णेण एगसमओ । उक्कस्सेण वासपुधत्तं । एगजीवं पडुच्च णत्थि अंतरं ।

वेदाणुवादेण इत्थिवेदाणं पओअकम्म-समोदाणकम्माणं णाणेगजीवं पडुच्च णत्थि अंतरं । आधाकम्मस्स अंतरं केवचिरं कालादो होदि ? णाणाजीवं पडुच्च णत्थि अंतरं । एगजीवं

अन्तरकाल भी प्राप्त होता ।

शंका—जिन जीवोंके केवलिसमुद्घात नहीं होता उनके केवलिसमुद्घात हुए विना पल्यके असंख्यातवें भागप्रमाण स्थितिका घात कैसे होता है ?

समाधान—नहीं, क्योंकि स्थितिकाण्डकघातके द्वारा उक्त स्थितिका घात बन जाता है ।

उक्त दोनों कर्मोंका एक जीवकी अपेक्षा अन्तरकाल नहीं है । क्रियाकर्मका अन्तरकाल कितना है ? नाना जीवोंकी अपेक्षा जघन्य अन्तरकाल एक समय है और उत्कृष्ट अन्तरकाल वर्षपृथक्त्व है । एक जीवकी अपेक्षा अन्तरकाल नहीं है ।

इसी प्रकार कार्मणकाययोगियोंके जानना चाहिये । इतनी विशेषता है कि अधःकर्मका नाना जीवोंकी अपेक्षा जघन्य अन्तरकाल एक समय है और उत्कृष्ट अन्तरकाल वर्षपृथक्त्व है । एक जीवकी अपेक्षा अन्तरकाल नहीं है । वैक्रियिककाययोगियोंके सब पदोंका अन्तरकाल नहीं है । वैक्रियिकमिश्रकाययोगियोंके प्रयोगकर्म और समवधानकर्मका अन्तरकाल कितना है ? नाना जीवोंकी अपेक्षा जघन्य अन्तरकाल एक समय है और उत्कृष्ट अन्तरकाल बारह मुहूर्त है । एक जीवकी अपेक्षा अन्तरकाल नहीं है । क्रियाकर्मका अन्तरकाल कितना है ? नाना जीवोंकी अपेक्षा जघन्य अन्तरकाल एक समय है और उत्कृष्ट अन्तरकाल मासपृथक्त्व है । एक जीवकी अपेक्षा अन्तरकाल नहीं है । आहारककाययोगी और आहारकमिश्रकाययोगी जीवोंके सब पदोंका नाना जीवोंकी अपेक्षा जघन्य अन्तरकाल एक समय है और उत्कृष्ट अन्तरकाल वर्षपृथक्त्व है । एक जीवकी अपेक्षा अन्तरकाल नहीं है ।

वेदमार्गणाके अनुवादसे स्त्रीवेदवालोंके प्रयोगकर्म और समवधानकर्मका नाना जीवों और एक जीवकी अपेक्षा अन्तरकाल नहीं है । अधःकर्मका अन्तरकाल कितना है ? नाना

पडुच्च जहण्णेण एगसमओ। उक्कस्सेण तिसमऊणपलिदोवमसदपुधत्तं। तवोकम्मस्स अंतरं केवचिरं कालादो होदि? णाणाजीवं पडुच्च णत्थि अंतरं। एगजीवं पडुच्च जहण्णेण अंतोमुहुत्तं। उक्कस्सेण पलिदोवमसदपुधत्तं देसूणं। तं जहा– एक्को पुरिसवेदो णवुंसयवेदो वा अट्ठावीससंतकम्मिओ इत्थिवेदमणुस्सेसु उववण्णो। गब्भादिअट्ठवस्साणमंतोमुहुत्तब्भहियाणमुवरि वेदगसम्मत्तं संजमं च जुगवं पडिवण्णो। तवोकम्मस्स आदी दिट्ठा। सव्वलहुं तवोकम्मेण अच्छिदूण मिच्छत्तं गदो अंतरिदो। पलिदोवमसदपुधत्तस्स सव्वजहण्णंतोमुहुत्तावसेसे उवसमसम्मत्तं संजमं च जुगवं पडिवण्णो। तवोकम्मस्स लद्धमंतरं। पुणो उवसमसम्मत्तद्धाए एगसमयावसेसाए आसाणं गंतूण मदो पुरिसवेदो देवो जादो। एवं गब्भादिअट्ठवस्सेहि बेअंतोमुहुत्तब्भहिएहि ऊणिया सगट्ठिदी तवोकम्मस्स उक्कस्संतरं होदि। किरियाकम्मस्स अंतरं केवचिरं कालादो होदि? णाणाजीवं पडुच्च णत्थि अंतरं। एगजीवं पडुच्च जहण्णेण अंतोमुहुत्तं। उक्कस्सेण अंतोमुहुत्तूणं पलिदोवमसदपुधत्तं। तं जहा– एक्को तिरिक्खो वा मणुस्सो वा अट्ठावीससंतकम्मिओ पुरिस-णवुंसयवेदो देवेसु उववण्णो। छहि पज्जत्तीहि पज्जत्तयदो। विस्संतो विसुद्धो वेदगसम्मत्तं पडिवण्णो। किरियाकम्मस्स आदी दिट्ठा। तदो मिच्छत्तं गंतूण अंतरिदो। पुणो पलिदोवमसदपुधत्ते सव्वजहण्णअंतोमुहुत्तावसेसे उवसमसम्मत्तं पडिवण्णो। किरियाकम्मस्स लद्धमंतरं। तदो सासणं गंतूण मदो

जीवोंकी अपेक्षा अन्तरकाल नहीं है। एक जीवकी अपेक्षा जघन्य अन्तरकाल एक समय है और उत्कृष्ट अन्तरकाल तीन समय कम सौ पल्यपृथक्त्व है। तपःकर्मका अन्तरकाल कितना है? नाना जीवोंकी अपेक्षा अन्तरकाल नहीं है। एक जीवकी अपेक्षा जघन्य अन्तरकाल अन्तर्मुहूर्त है और उत्कृष्ट अन्तरकाल कुछ कम सौ पल्यपृथक्त्व है। यथा— अट्ठाईस कर्मोंकी सत्तावाला एक पुरुषवेदी या नपुंसकवेदी जीव स्त्रीवेदवाले मनुष्योंमें उत्पन्न हुआ। गर्भसे लेकर अन्तर्मुहूर्त अधिक आठ वर्षका होनेपर वेदकसम्यक्त्व और संयमको एक साथ प्राप्त हुआ। इसके तपःकर्मकी आदि दिखाई दी। अनन्तर सबसे लघु [अन्तर्मुहूर्त] काल तक तपःकर्मके साथ रहकर मिथ्यात्वको प्राप्त हुआ और उसका अन्तर किया। अनन्तर सौ पल्यपृथक्त्वमें सबसे जघन्य अन्तर्मुहूर्त काल शेष रहनेपर उपशमसम्यक्त्व और संयमको एक साथ प्राप्त हुआ। इसके तपःकर्मका अन्तरकाल लब्ध हो गया। पुनः उपशमसम्यक्त्वके कालमें एक समय शेष रहनेपर सासादन गुणस्थानको प्राप्त होकर मरा और पुरुषवेदवाला देव हुआ। इस प्रकार गर्भसे लेकर दो अन्तर्मुहूर्त अधिक आठ वर्ष कम अपनी स्थिति तपःकर्मका उत्कृष्ट अन्तरकाल होता है। क्रियाकर्मका अन्तरकाल कितना है? नाना जीवोंकी अपेक्षा अन्तरकाल नहीं है। एक जीवकी अपेक्षा जघन्य अन्तरकाल अन्तर्मुहूर्त है और उत्कृष्ट अन्तरकाल अन्तर्मुहूर्त कम सौ पल्यपृथक्त्व है। यथा— अट्ठाईस कर्मोंकी सत्तावाला पुरुषवेदी या नपुंसकवेदी एक तिर्यंच या मनुष्य देवोंमें उत्पन्न हुआ। छह पर्याप्तियोंसे पर्याप्त हुआ। विश्राम किया, विशुद्ध हुआ और वेदकसम्यक्त्वको प्राप्त हुआ। इसके क्रियाकर्मकी आदि दिखाई दी। अनन्तर मिथ्यात्वको प्राप्त होकर उसका अन्तर किया। अनन्तर सौ पल्यपृथक्त्वमें सबसे जघन्य अन्तर्मुहूर्त काल शेष रहनेपर उपशमसम्यक्त्वको प्राप्त हुआ। क्रियाकर्मका अन्तर लब्ध हो गया। अनन्तर सासादन गुणस्थानको प्राप्त होकर मरा और

पुरिस-णवुंसयवेदो जादो। एवं पंचहि अंतोमुहुत्तेहि ऊणिया सगट्ठिदी किरियाकम्मस्स उक्कस्संतरं होदि।

पुरिसवेदाणं पओअकम्म-समोदाणकम्माणं णाणेगजीवं पडुच्च णत्थि अंतरं। आधाकम्मस्स अंतरं केवचिरं कालादो होदि ? णाणाजीवं पडुच्च णत्थि अंतरं। एगजीवं पडुच्च जहण्णेण एगसमओ। उक्कस्सेण तिसमऊणं सागरोवमसदपुधत्तं। तवोकम्मस्स अंतरं केवचिरं कालादो होदि ? णाणाजीवं पडुच्च णत्थि अंतरं। एगजीवं पडुच्च जहण्णेण अंतोमुहुत्तं। उक्कस्सेण सागरोवमसदपुधत्तं। तं जहा– एक्को इत्थि-णवुंसयवेदो अट्ठावीस-संतकम्मिओ पुरिसवेदेण मणुस्सेसु उववण्णो। गब्भादिअट्ठवस्साणमुवरि वेदगसम्मत्तं संजमं च समयं पडिवण्णो। तवोकम्मस्स आदी दिट्ठा। सव्वलहुं तवोकम्मेण अच्छिदूण मिच्छत्तं गदो अंतरिदो। तदो सागरोवमसदपुधत्तेण सव्वजहण्णमंतोमुहुत्तावसेसे उवसमसम्मत्तं संजमं च पडिवण्णो। तवोकम्मस्स लद्धमंतरं। पुणो सासणं गंतूण मदो इत्थिवेदो णवुंसयवेदो वा जादो। एवं गब्भादिअट्ठवस्सेहि अंतोमुहुत्तब्भहिएहि ऊणिया सगट्ठिदी तवोकम्मस्स उक्कस्संतरं होदि। किरियाकम्मस्संतरं केवचिरं कालादो होदि ? णाणाजीवं पडुच्च णत्थि अंतरं। एगजीवं पडुच्च जहण्णेण अंतोमुहुत्तं। उक्कस्सेण सागरोवमसदपुधत्तं देसूणं। तं जहा– एक्को अट्ठावीससंतकम्मिओ इत्थिवेदो णवुंसयवेदो वा कालं कादूण देवेसु पुरिस-

पुरुषवेदी या नपुंसकवेदी हो गया। इस प्रकार पांच अन्तर्मुहूर्त कम अपनी स्थिति क्रियाकर्मका उत्कृष्ट अन्तरकाल होता है।

पुरुषवेदवाले जीवोंके प्रयोगकर्म और समवधानकर्मका नाना जीवों और एक जीवकी अपेक्षा अन्तरकाल नहीं है। अधःकर्मका अन्तरकाल कितना है ? नाना जीवोंकी अपेक्षा अन्तरकाल नहीं है। एक जीवकी अपेक्षा जघन्य अन्तरकाल एक समय है और उत्कृष्ट अन्तरकाल तीन समय कम सौ सागरपृथक्त्व है। तपःकर्मका अन्तरकाल कितना है ? नाना जीवोंकी अपेक्षा अन्तरकाल नहीं है। एक जीवकी अपेक्षा जघन्य अन्तरकाल अन्तर्मुहूर्त है और उत्कृष्ट अन्तरकाल सौ सागरपृथक्त्व है। यथा—अट्ठाईस प्रकृतियोंकी सत्तावाला एक स्त्रीवेदी या नपुंसकवेदी जीव पुरुषवेदके साथ मनुष्योंमें उत्पन्न हुआ। वहां गर्भसे लेकर आठ वर्षका होनेपर वेदकसम्यक्त्व और संयमको एक साथ प्राप्त हुआ। इसके तपःकर्मकी आदि दिखाई दी। अनन्तर सबसे थोड़े काल तक तपःकर्मके साथ रहकर मिथ्यात्वको प्राप्त हुआ। तपःकर्मका अन्तर किया। तदनन्तर सौ सागरपृथक्त्वमें सबसे जघन्य अन्तर्मुहूर्त काल शेष रहनेपर उपशम-सम्यक्त्व और संयमको [एक साथ] प्राप्त हुआ। तपःकर्मका अन्तर प्राप्त हो गया। अनन्तर सासादन गुणस्थानको प्राप्त होकर मरा और स्त्रीवेदी या नपुंसकवेदी हो गया। इस प्रकार गर्भसे लेकर अन्तर्मुहूर्त अधिक आठ वर्ष कालसे न्यून अपनी स्थिति तपःकर्मका उत्कृष्ट अन्तर होता है। क्रियाकर्मका अन्तरकाल कितना है ? नाना जीवोंकी अपेक्षा अन्तरकाल नहीं है। एक जीवकी अपेक्षा जघन्य अन्तरकाल अन्तर्मुहूर्त है और उत्कृष्ट अन्तरकाल कुछ कम सौ सागर-पृथक्त्व है। यथा—अट्ठाईस प्रकृतियोंकी सत्तावाला स्त्रीवेदी या नपुंसकवेदी एक जीव मरकर

वेदेण उववण्णो। छहि पज्जत्तीहि पज्जत्तयदो विस्संतो विसुद्धो वेदगसम्मत्तं पडिवण्णो। किरियाकम्मस्स आदी दिट्ठा। सव्वलहुं किरियाकम्मेण अच्छिदूण मिच्छत्तं गदो अंतरिदो। तदो सागरोवमसदपुधत्ते सव्वजहण्णअंतोमुहुत्तावसेसे उवसमसम्मत्तं पडिवण्णो। किरियाकम्मस्स लद्धमंतरं। पुणो आसाणं गंतूण मदो इत्थिवेदो णवुंसयवेदो वा जादो। एवं पंचहि अंतोमुहुत्तेहि ऊणिया सगट्ठिदी किरियाकम्मस्स उक्कस्संतरं होदि।

णवुंसयवेदाणं पओअकम्म-समोदाणकम्माणं णाणेगजीवं पडुच्च णत्थि अंतरं। आधाकम्मस्स अंतरं केवचिरं कालादो होदि? णाणाजीवं पडुच्च णत्थि अंतरं। एगजीवं पडुच्च जहण्णेण एगसमओ। उक्कस्सेण अणंतो कालो तिसमऊणो असंखेज्जा पोग्गलपरियट्टा। एक्केण पोग्गलपरियट्टेण चेव होदव्वं, पोग्गलपरियट्टादो उवरि अच्छणं पडि संभवाभावादो? ण एस दोसो, अप्पिदजीवं मोत्तूण अण्णजीवेहि[1] सह आधाकम्मेण परिणदाणं[2] पि णोकम्मक्खंधाणं अंतराभावो ण होदि त्ति कादूण असंखेज्जाणं पोग्गलपरियट्टाणं संभवं पडि विरोहाभावादो। तवोकम्म-किरियाकम्माणमंतरं केवचिरं कालादो होदि? णाणाजीवं पडुच्च णत्थि अंतरं। एगजीवं पडुच्च जहण्णेण अंतोमुहुत्तं। उक्कस्सेण उवड्ढपोग्गलपरियट्टं। तं जहा— एक्को अणादियमिच्छाइट्ठी णवुंसयवेदेण मणुस्सेसु उववण्णो। तदो अद्धपोग्गलपरियट्टस्स

पुरुषवेदके साथ देवोंमें उत्पन्न हुआ। छह पर्याप्तियोंसे पर्याप्त हुआ, विश्राम किया और विशुद्ध होकर वेदकसम्यक्त्वको प्राप्त हुआ। क्रियाकर्मकी आदि दिखाई दी। पुनः अति स्वल्प काल तक क्रियाकर्मके साथ रहकर मिथ्यात्वको प्राप्त हुआ। क्रियाकर्मका अन्तर किया। अनन्तर सौ सागरपृथक्त्वमें सबसे जघन्य अन्तर्मुहूर्त काल शेष रहनेपर उपशमसम्यक्त्वको प्राप्त हुआ। क्रियाकर्मका अन्तर प्राप्त हो गया। अनन्तर सासादन गुणस्थानको प्राप्त होकर मरा और स्त्रीवेदी या नपुंसकवेदी हो गया। इस प्रकार पांच अन्तर्मुहूर्त कम अपनी स्थिति क्रियाकर्मका उत्कृष्ट अन्तरकाल होता है।

नपुंसकवेदवाले जीवोंके प्रयोगकर्म और समवधानकर्मका नाना जीवों और एक जीवकी अपेक्षा अन्तरकाल नहीं है। अधःकर्मका अन्तरकाल कितना है? नाना जीवोंकी अपेक्षा अन्तरकाल नहीं है। एक जीवकी अपेक्षा जघन्य अन्तरकाल एक समय है और उत्कृष्ट अन्तरकाल तीन समय कम अनन्त काल है जो असंख्यात पुद्गलपरिवर्तनके बराबर है।

शंका—एक पुद्गलपरिवर्तन ही उत्कृष्ट अन्तरकाल होना चाहिये, क्योंकि, एक पुद्गलपरिवर्तनके बाद उस जीवका वहां रहना सम्भव नहीं है?

समाधान—यह कोई दोष नहीं है, क्योंकि विवक्षित जीवको छोड़कर अन्य जीवोंके साथ अधःकर्मरूपसे परिणत हुए नोकर्मस्कन्धोंका भी अन्तराभाव नहीं होता है, ऐसा समझकर असंख्यात पुद्गलपरिवर्तनप्रमाण अन्तरकाल माननेमें कोई विरोध नहीं आता है।

तपःकर्म और क्रियाकर्मका अन्तरकाल कितना है? नाना जीवोंकी अपेक्षा अन्तरकाल नहीं है। एक जीवकी अपेक्षा जघन्य अन्तरकाल अन्तर्मुहूर्त है और उत्कृष्ट अन्तरकाल उपार्ध पुद्गलपरिवर्तनप्रमाण है। यथा—एक अनादि मिथ्यादृष्टि जीव नपुंसकवेदके साथ मनुष्योंमें

१ ताप्रतौ 'अण्णजीवेण' इति पाठः। २ प्रतिषु 'परिदाणं' इति पाठः।

बाहिं अट्ठवस्साणि अंतोमुहुत्तब्भहियाणि गमेदूण अद्धपोग्गलपरियट्टस्स पढमसमए उवसमसम्मत्तं संजमं च समयं पडिवण्णो । तवोकम्म-किरियाकम्माणमादी दिट्ठा । पुणो उवसमसम्मत्तद्धाए छ आवलिया अत्थि त्ति आसाणं गंतूणंतरिदो । पुणो अद्धपोग्गलपरियट्टस्स सव्वजहण्णअंतोमुहुत्तावसेसे[1] तिण्णि वि करणाणि कादूण उवसमसम्मत्तं संजमं च पडिवण्णो । तवोकम्म-किरियाकम्माणं लद्धमंतरं । तदो अणंताणुबंधिं विसंजोएदूण वेदगसम्मत्तं पडिवण्णो । तदो अंतोमुहुत्तेण खइयसम्माइट्ठी जादो । तदो पमत्तापमत्तपरावत्तसहस्सं कादूण अपुव्व० अणियट्टि० सुहुमसांपराइय० खीणकसाय० सजोगी अजोगी होदूण सिद्धो जादो । एवं णवुंसयवेदस्स तवोकम्म-किरियाकम्माणं बारसेहि अंतोमुहुत्तेहि ऊणयमद्धपोग्गलपरियट्टमुक्कस्संतरं होदि ।

अवगदवेदाणं पओअकम्म-समोदाणकम्म-इरियावहकम्म-तवोकम्माणं णाणेगजीवं पडुच्च णत्थि अंतरं । आधाकम्मस्स अंतरं केवचिरं कालादो होदि ? णाणाजीवं पडुच्च णत्थि अंतरं । एगजीवं पडुच्च जहण्णेण एगसमओ । उक्कस्सेण पुव्वकोडी देसूणा । तं जहा— एक्को देवो वा णेरइओ वा खइयसम्माइट्ठी पुव्वकोडाउएसु मणुस्सेसु उववण्णो । तदो गब्भादिअट्ठवस्साणमंतोमुहुत्तब्भहियाणमुवरि अप्पमत्तभावेण संजमं पडिवण्णो । पुणो पमत्तो जादो । तदो पमत्तापमत्तपरावत्तसहस्सं कादूण अपुव्व-अणियट्टिगुणट्ठाणम्मि संखेज्जे भागे

उत्पन्न हुआ । अनन्तर अर्ध पुद्गलपरिवर्तनके बाहर अन्तर्मुहूर्त अधिक आठ वर्ष बिताकर अर्ध पुद्गलपरिवर्तनके प्रथम समयमें उपशमसम्यक्त्व और संयमको एक साथ प्राप्त हुआ । इसके तपःकर्म और क्रियाकर्मकी आदि दिखाई दी । पुनः उपशमसम्यक्त्वके कालमें छह आवलि काल शेष रहनेपर सासादन गुणस्थानको प्राप्त होकर इन दोनोंका अन्तर किया । अनन्तर अर्ध पुद्गलपरिवर्तन कालमें सबसे जघन्य अन्तर्मुहूर्त काल शेष रहनेपर तीनों ही करणोंको करके उपशमसम्यक्त्व और संयमको प्राप्त हुआ । तपःकर्म और क्रियाकर्मका अन्तर प्राप्त हो गया । अनन्तर अनन्तानुबन्धीकी विसंयोजना करके वेदकसम्यक्त्वको प्राप्त हुआ । अनन्तर अन्तर्मुहूर्तमें क्षायिकसम्यग्दृष्टि हो गया । अनन्तर प्रमत्त और अप्रमत्त गुणस्थानोंके हजारों परावर्तन करके अपूर्वक्षपक, अनिवृत्तिक्षपक, सूक्ष्मसाम्परायक्षपक, क्षीणमोह, सयोगी और अयोगी होता हुआ सिद्ध हो गया । इस प्रकार नपुंसकवेदवालेके तपःकर्म और क्रियाकर्मका बारह अन्तर्मुहूर्त कम अर्ध पुद्गलपरिवर्तनप्रमाण उत्कृष्ट अन्तरकाल होता है ।

अपगतवेदवाले जीवोंके प्रयोगकर्म, समवधानकर्म, ईर्यापथकर्म और तपःकर्मका नाना जीवों और एक जीवकी अपेक्षा अन्तरकाल नहीं है । अधःकर्मका अन्तरकाल कितना है ? नाना जीवोंकी अपेक्षा अन्तरकाल नहीं है । एक जीवकी अपेक्षा जघन्य अन्तरकाल एक समय है और उत्कृष्ट अन्तरकाल कुछ कम पूर्वकोटिप्रमाण हैं । यथा—एक देव या नारकी क्षायिकसम्यग्दृष्टि जीव पूर्वकोटिकी आयुवाले मनुष्योंमें उत्पन्न हुआ । अनन्तर गर्भसे लेकर आठ वर्ष और अन्तर्मुहूर्तके बाद अप्रमत्तभावसे संयमको प्राप्त हुआ । अनन्तर प्रमत्त हुआ । अनन्तर प्रमत्त और अप्रमत्त गुणस्थानोंके हजारों परावर्तन करके अपूर्वकरण और अनिवृत्तिकरण गुणस्थानके संख्यात

१ ताप्रतौ '-सेस' इति पाठः ।

गंतूण अस्सकण्णकरणकारयस्स पढमसमए जे णिज्जिण्णा ओरालियसरीरपरमाणू तेसिं विदिय-समए आधाकम्मस्स आदी होदि । तदो तदियसमयप्पहुडि अकम्मभावेण गदाणं परमा-णूणमंतरं होदूण गच्छदि जाव पुव्वकोडिम्मि अजोगिमेत्तद्धा सेसा त्ति । तदो सजोगिचरिम-समए तेसु चेव णोकम्मक्खंधेसु बंधमागदेसु आधाकम्मस्स लद्धमंतरं होदि । एवं गब्भादि-अट्ठवस्सेहि छअंतोमुहुत्तब्भहिएहि ऊणिया पुव्वकोडी आधाकम्मस्स उक्कस्संतरं होदि ।

कसायाणुवादेण चदुण्णं कसायाणं मणजोगिभंगो । अकसाईणमवगदवेदभंगो । णवरि खीणकसायपढमसमए जे णिज्जिण्णा ओरालियपरमाणू तेसिं विदियसमए आधाकम्मस्स आदी कायव्वा । एवं केवलणाण-केवलदंसणाणं पि वत्तव्वं । णवरि सजोगिपढमसमए णिज्जिण्णाणमोरालियपरमाणूणं विदियसमए आधाकम्मस्स आदी कायव्वा ।

णाणाणुवादेण मदि-सुदअण्णाणीणं तिरिक्खोघभंगो । णवरि किरियाकम्मं णत्थि । एवमभवसिद्धिय-मिच्छाइट्ठिअसण्णीणं पि वत्तव्वं । एवं विभंगणाणीणं पि[1] । णवरि आधा-कम्मस्स एगजीवं पडुच्च जहण्णेण एगसमओ । उक्कस्सेण अंतोमुहुत्तं तिसमऊणं । तं जहा— एक्को तिरिक्खो वा मणुस्सो वा उवसमसम्माइट्ठी उवसमसम्मत्तद्धा छआवलियाओ अत्थि त्ति आसाणं विभंगणाणं च समयं पडिवण्णो । तत्थ विभंगणाणुप्पण्णपढमसमए जे

भाग जानेपर अश्वकर्ण करणका कर्ता होकर उसके प्रथम समयमें जो औदारिकशरीरके परमाणु निर्जीर्ण हुए उनके दूसरे समयमें अधःकर्मकी आदि होती है । अनन्तर तीसरे समयसे लेकर अकर्मभावको प्राप्त हुए उन परमाणुओंका अन्तरकाल होता है जो पूर्वकोटिमें अयोगीमात्र काल शेष रहने तक रहता है । अनन्तर सयोगीके अन्तिम समयमें उन्हीं नोकर्मस्कन्धोंके बन्धको प्राप्त होनेपर अधःकर्मका अन्तरकाल प्राप्त होता है । इस प्रकार गर्भसे लेकर आठ वर्ष और छह अन्तर्मुहूर्त कम एक पूर्वकोटि अधःकर्मका उत्कृष्ट अन्तरकाल होता है ।

कषायमार्गणाके अनुवादसे चारों कषायोंका कथन मनोयोगियोंके समान है । अकषाय-वालोंका कथन अपगतवेदवालोंके समान है । इतनी विशेषता है कि क्षीणकषायके प्रथम समयमें जो औदारिकशरीरके नोकर्मपरमाणु निर्जीर्ण हुए उनके दूसरे समयमें अधःकर्मकी आदि करना चाहिये । इसी प्रकार केवलज्ञान और केवलदर्शनवालोंके भी कहना चाहिये । इतनी विशेषता है कि सयोगीके प्रथम समयमें निर्जीर्ण हुए औदारिकशरीरके परमाणुओंके दूसरे समयमें अधःकर्मकी आदि करना चाहिये ।

ज्ञानमार्गणाके अनुवादसे मत्यज्ञानी और श्रुताज्ञानी जीवोंका कथन सामान्य तिर्यंचोंके समान है । इतनी विशेषता है कि इनके क्रियाकर्म नहीं होता । इसी प्रकार अभव्यसिद्ध, मिथ्यादृष्टि और असंज्ञियोंके भी कहना चाहिये । इसी प्रकार विभंगज्ञानियोंके भी जानना चाहिये । इतनी विशेषता है कि अधःकर्मका एक जीवकी अपेक्षा जघन्य अन्तरकाल एक समय है और उत्कृष्ट अन्तरकाल तीन समय कम अन्तर्मुहूर्त है । यथा—एक तिर्यंच या मनुष्य उपशमसम्यग्दृष्टि जीव उपशमसम्यक्त्वके कालमें छह आवलि काल शेष रहनेपर सासादन और विभंगज्ञानको एक

---

१ का-ताप्रत्योः 'पि' इत्येतत्पदं नास्ति ।

णिज्जिण्णा ओरालियसरीरपरमाणू तेसिं बिदियसमए आधाकम्मस्स आदी होदि । तदिय-समयप्पहुडि ताव अंतरं जाव सासणकालो सव्वो मिच्छाइट्ठिम्हि[1] विभंगणाणसव्वुक्कस्स-कालस्स दुचरिमसमओ त्ति । तदो विभंगणाणकालचरिमसमए तेसु चेव पुव्वणिज्जिण्णओरा-लियसरीरणोकम्मक्खंधेसु बंधमागदेसु आधाकम्मस्स उक्कस्संतरं होदि । एवं तिसमऊणछ-आवलियाओ मिच्छाइट्ठिसव्वुक्कस्सविभंगणाणद्धा च आधाकम्मस्स उक्कस्संतरं होदि ।

आभिणिबोहिय-सुद-ओहिणाणीसु पओअकम्म-समोदाणकम्माणमंतरं केवचिरं कालादो होदि ? णाणेगजीवं पडुच्च णत्थि अंतरं । आधाकम्मस्स अंतरं केवचिरं कालादो होदि ? णाणाजीवं पडुच्च णत्थि अंतरं । एगजीवं पडुच्च जहण्णेण एगसमओ । उक्कस्सेण णवणउदिसागरोवमाणि सादिरेयाणि । तं जहा— एक्को मिच्छाइट्ठी पुव्वकोडाउएसु कुक्कुड-मक्कडेसु[2] सण्णिपंचिंदियपज्जत्तएसु उववण्णो । तत्थ बेमासाणं दिवसपुधत्तेणब्भहि-याणमुवरि तिण्णि वि करणाणि कादूणुवसमसम्मत्तमोहिणाणं मदि-सुदणाणाविणाभाविणं पडिवण्णो । तत्थ तिण्णाणपढमसमए जे णिज्जिण्णा ओरालियपरमाणू तेसिं बिदियसमए आधाकम्मस्स आदी होदि । तदो तदियसमयप्पहुडि देसूणपुव्वकोडी अंतरं होदूण पुणो ओहिणाणेण सह तिरिक्खाउएणूणचोद्दससागरोवमाउट्ठिदिएसु देवेसु उववण्णो । पुणो

साथ प्राप्त हुआ । वहां विभंगज्ञानके उत्पन्न होनेके प्रथम समयमें जो औदारिकशरीरके परमाणु निर्जीर्ण हुए उनके दूसरे समयमें अधःकर्मकी आदि होती है। और तीसरे समयसे लेकर सासादनका सब काल बिताकर मिथ्यादृष्टिके विभंगज्ञानके सर्वोत्कृष्ट कालके द्विचरम समयके प्राप्त होने तक अन्तर होता है। अनन्तर विभंगज्ञानके कालके अन्तिम समयमें उन्हीं पूर्वनिर्जीर्ण औदारिकशरीर नोकर्मस्कन्धोंके बन्धको प्राप्त होनेपर अधःकर्मका उत्कृष्ट अन्तर होता है। इस प्रकार तीन समय कम छह आवलि काल और मिथ्यादृष्टिके सर्वोत्कृष्ट विभंगज्ञानका काल, ये दोनों मिलकर अधःकर्मका उत्कृष्ट अन्तरकाल होता है।

आभिनिबोधिकज्ञानी, श्रुतज्ञानी और अवधिज्ञानी जीवोंमें प्रयोगकर्म और समवधानकर्मका अन्तरकाल कितना है ? नाना जीवों और एक जीवकी अपेक्षा अन्तरकाल नहीं है। अधःकर्मका अन्तरकाल कितना है ? नाना जीवोंकी अपेक्षा अन्तरकाल नहीं है। एक जीवकी अपेक्षा जघन्य अन्तरकाल एक समय है और उत्कृष्ट अन्तरकाल साधिक निन्यानबे सागर है। यथा— एक मिथ्यादृष्टि जीव पूर्वकोटिकी आयुवाले संज्ञी पंचेन्द्रिय पर्याप्त कुक्कुड पक्षी और मर्कटोंमें उत्पन्न हुआ। वहां दिवसपृथक्त्व अधिक दो माह होनेपर तीनों ही करणोंको करके उपशमसम्यक्त्वको और आभिनिबोधिकज्ञान एवं श्रुतज्ञानके साथ अवधिज्ञानका प्राप्त हुआ। वहां तीन ज्ञानके प्रथम समयमें जो औदारिकशरीरके परमाणु निर्जीर्ण हुए उनके दूसरे समयमें अधःकर्मकी आदि होती है। अनन्तर तीसरे समयसे लेकर कुछ कम पूर्वकोटिप्रमाण अन्तर होकर पुनः अवधिज्ञानके साथ तिर्यंचायुसे न्यून चौदह सागरकी स्थितिवाले देवोंमें उत्पन्न हुआ। पुनः अवधिज्ञानके साथ

१ अ-आ-काप्रतिषु 'मिच्छाइट्ठीहि', ताप्रतौ 'मिच्छाइट्ठी (ट्ठि) [हि]' इति पाठः ।
२ प्रतिषु 'मक्कुडेसु' इति पाठः ।

ओहिणाणेण सहिदपुव्वकोडाउएसु मणुस्सेसु उववण्णो । पुणो मणुस्साउएणूणवावीससागरो-वमाउट्ठिदिएसु देवेसु उववण्णो । तत्तो चुदो समाणो पुव्वकोडाउएसु मणुस्सेसु उववण्णो । पुणो मणुस्साउएण अण्णेहि अंतोमुहुत्तब्भहियगब्भादिअट्ठवस्सेहि य ऊणतीससागरोवमट्ठिदिएसु देवेसु उववण्णो । तत्तो चुदो संतो पुव्वकोडाउएसु मणुस्सेसु उववण्णो । तत्थ गब्भादि-अट्ठवस्साणमुवरि तिण्णि वि करणाणि काढ्रण खइयसम्माइट्ठी जादो । पुणो देसूणपुव्वकोडी ओहिणाणेण सह संजममणुपालेदूण तेत्तीससागरोवमट्ठिदियो देवो जादो । तत्तो चुदो समाणो पुव्वकोडाउएसु मणुस्सेसु उववण्णो । तत्थ एदिस्से पुव्वकोडीए सव्वजहण्णंतोमुहु-त्तावसेसे खीणकसाओ जादो । तस्स खीणकसायस्स चरिमसमए पुव्वं णिज्जिण्णपरमाणूसु वंधमागदेसु आधाकम्मस्स लद्धमंतरं होदि । एवमाभिणि-सुद-ओहिणाणाणं णवणउदिसागरो-वमाणि देसूणदोहि पुव्वकोडीहि सादिरेयाणि आधाकम्मस्स उक्कस्संतरं । एवमिरियावथ-कम्मस्स । णवरि णाणाजीवं पडुच्च जहण्णेण एगसमओ । उक्कस्सेण छम्मासा । ओहिणाणस्स वासपुधत्तं । एगजीवं पडुच्च जहण्णेण अंतोमुहुत्तं । तवोकम्मस्स वि एवं चेव । णवरि तवोकम्मस्स अंतरं एगजीवं पडुच्च जहण्णेण अंतोमुहुत्तं । उक्कस्सेण तेत्तीससागरोवमाणि अंतोमुहुत्तूणपुव्वकोडीए सादिरेयाणि । अधवा, तवोकम्मस्स चोदालीसं सागरोवमाणि देसूणतीहि पुव्वकोडीहि सादिरेयाणि उक्कस्समंतरं । तं जहा— एक्को देवो वा णेरइओ वा

पूर्वकोटिके आयुवाले मनुष्योंमें उत्पन्न हुआ । पुनः मनुष्यायुसे न्यून बाईस सागरकी आयुवाले देवोंमें उत्पन्न हुआ । वहांसे च्युत होकर पूर्वकोटिकी आयुवाले मनुष्योंमें उत्पन्न हुआ । पुनः मनुष्यायुसे न्यून तथा अन्य गर्भसे लेकर अन्तर्मुहूर्त अधिक आठ वर्षकी आयुसे न्यून तीस सागरकी आयुवाले देवोंमें उत्पन्न हुआ । अनन्तर वहांसे च्युत होकर पूर्वकोटिकी आयुवाले मनुष्योंमें उत्पन्न हुआ । वहां गर्भसे लेकर आठ वर्ष होनेपर तीनों करणोंको करके क्षायिकसम्यग्दृष्टि हो गया । पुनः कुछ कम पूर्वकोटि काल तक अवधिज्ञानके साथ संयमका पालनकर तेतीस सागरकी स्थितिवाला देव हो गया । पुनः वहांसे च्युत होकर पूर्वकोटिकी आयुवाले मनुष्योंमें उत्पन्न हुआ । वहां इस पूर्वकोटिमें सबसे जघन्य अन्तर्मुहूर्त काल शेष रहनेपर क्षीणकषाय हो गया । उस क्षीणकषायके अन्तिम समयमें पहले निर्जीर्ण हुए परमाणुओंके बन्धको प्राप्त होनेपर अधःकर्मका अन्तर प्राप्त होता है । इस प्रकार आभिनिबोधिकज्ञानी, श्रुतज्ञानी और अवधिज्ञानी जीवोंके कुछ कम दो पूर्वकोटि अधिक निन्यानवै सागर अधःकर्मका उत्कृष्ट अन्तर होता है । इसी प्रकार ईर्यापथकर्मका अन्तरकाल है । इतनी विशेषता है कि इसका नाना जीवोंकी अपेक्षा जघन्य अन्तरकाल एक समय है और उत्कृष्ट अन्तरकाल छह महीना है । किन्तु अवधिज्ञानीके उत्कृष्ट अन्तरकाल वर्षपृथक्त्व है । एक जीवकी अपेक्षा जघन्य अन्तरकाल अन्तर्मुहूर्त है । तपःकर्मका अन्तरकाल भी इसी प्रकार है । इतनी विशेषता है कि तपःकर्मका एक जीवकी अपेक्षा जघन्य अन्तरकाल अन्तर्मुहूर्त है और उत्कृष्ट अन्तरकाल अन्तर्मुहूर्त कम पूर्वकोटि अधिक तेतीस सागर है । अथवा तपःकर्मका उत्कृष्ट अन्तरकाल कुछ कम तीन पूर्वकोटि अधिक चवालीस सागर है । यथा—एक देव या नारकी वेदकसम्यग्दृष्टि जीव पूर्वकोटि आयुवाले मनुष्योंमें उत्पन्न

वेदगसम्माइट्टी पुव्वकोडाउएसु मणुस्सेसु उववण्णो । गब्भादिअट्ठवस्साणमुवरि अधापवत्त-करणं अपुव्वकरणं च कादूण संजमं पडिवण्णो । तवोकम्मस्स आदी दिट्ठा । सव्वलहुमंतो-मुहुत्तं संजमेण अच्छिदूण संजमासंजमं पडिवज्जिय अंतरिदो । देसूणपुव्वकोडिं संजमासंजमेण गमिय कालं कादूण बावीससागरोवमट्ठिदिएसु देवेसु उववण्णो । तत्तो चुदो समाणो पुव्वकोडाउएसु मणुस्सेसु उववण्णो । तत्थ देसूणपुव्वकोडिं संजमासंजममणुपालेदूण पुणो वि बावीससागरोवमट्ठिदियो देवो जादो । तत्थ कालं कादूण पुव्वकोडाउअमणुस्सो जादो । सव्वजहण्णंतोमुहुत्तावसेसे आउए संजमं पडिवण्णो । तवोकम्मस्स लद्धमंतरं । तदो कालं कादूण देवो जादो । एवं बेअंतोमुहुत्तब्भहियगब्भादिअट्ठवस्सेहि उणियाहि तीहि पुव्वकोडीहि सादिरेयाणि चोदालीसं सागरोवमाणि तवोकम्मस्संतरं । किरियाकम्मस्संतरं केवचिरं कालादो होदि ? णाणाजीवं पडुच्च णत्थि अंतरं । एगजीवं पडुच्च जहण्णेण अंतोमुहुत्तं । तं जहा— एक्को अप्पमत्तो किरियाकम्मेण अच्छिदो । पुणो अपुव्वो होदूण अंतरिदो । तदो णिद्दा-पयलाणं बंधवोच्छेदअणंतरसमए[1] चेव मदो देवो जादो[2] । किरियाकम्मस्स अंतोमुहुत्त-मेत्तं जहण्णेण लद्धमंतरं होदि । उक्कस्सं पि अंतरमंतोमुहुत्तमेत्तं चेव । तं जहा— एक्को अप्पमत्तो किरियाकम्मेण अच्छिदो । अपुव्वो होदूण अंतरिदो । तदो सव्वदीहेहि कालेहि अपुव्व-अणियट्टि-सुहुम-उवसंतगुणट्ठाणाणि गमिय पुणो ओदरमाणो सुहुमो अणियट्टी

हुआ । गर्भसे लेकर आठ वर्षका होनेपर अधःप्रवृत्तकरण और अपूर्वकरण करके संयमको प्राप्त हुआ । तपःकर्मकी आदि दिखाई दी । अनन्तर सबसे लघु अन्तर्मुहूर्त काल तक संयमके साथ रहकर संयमासंयमको प्राप्त हो उसका अन्तर किया । फिर कुछ कम पूर्वकोटि काल संयमासंयमके साथ विताकर और मरकर बाईस सागरकी आयुवाले देवोंमें उत्पन्न हुआ । फिर वहांसे मरकर पूर्वकोटिकी आयुवाले मनुष्योंमें उत्पन्न हुआ । वहां कुछ कम पूर्वकोटि काल तक संयमासंयमका पालनकर फिर भी बाईस सागरकी आयुवाला देव हुआ । वहांसे मरकर पूर्वकोटिकी आयुवाला मनुष्य हुआ और आयुमें सबसे जघन्य अन्तर्मुहूर्त काल शेष रहनेपर संयमको प्राप्त हुआ । इस प्रकार तपःकर्मका अन्तर प्राप्त हो गया । अनन्तर मरकर देव हो गया । इस प्रकार गर्भसे लेकर आठ वर्षमें दो अन्तर्मुहूर्त मिलानेपर जो काल हो उससे न्यून तीन पूर्वकोटि अधिक चवालीस सागर तपःकर्मका उत्कृष्ट अन्तरकाल होता है । क्रियाकर्मका अन्तरकाल कितना है ? नाना जीवोंकी अपेक्षा अन्तरकाल नहीं है । एक जीवकी अपेक्षा जघन्य अन्तरकाल अन्तर्मुहूर्त है । यथा—एक अप्रमत्त जीव क्रियाकर्मके साथ स्थित है । पुनः अपूर्वकरण होकर उसने उसका अन्तर किया । फिर निद्रा और प्रचलाकी बन्धव्युच्छित्ति होनेके अनन्तर समयमें ही वह मरा और देव हो गया । इस तरह क्रियाकर्मका अन्तर्मुहूर्तमात्र जघन्य अन्तरकाल उपलब्ध होता है । उत्कृष्ट अन्तरकाल भी अन्तर्मुहूर्तमात्र ही होता है । यथा—एक अप्रमत्त जीव क्रियाकर्मके साथ स्थित है । पुनः अपूर्वकरण होकर उसने उसका अन्तर किया । अनन्तर सबसे दीर्घकालके द्वारा अपूर्वकरण, अनिवृत्तिकरण, सूक्ष्मसाम्पराय और उपशान्तमोह गुणस्थानोंको विताकर पुनः उतरते हुए

१ काप्रतौ 'अणंतर-' इति पाठः । २ अ-आ-काप्रतिषु 'मदो जादो' इति पाठः ।

अपुव्वो होदूण अप्पमत्तो जादो । लद्धं किरियाकम्मस्स उक्कस्संतरं । णवरि जहण्णंतरादो एदमुक्कस्समंतरं संखेज्जगुणं ।

मणपज्जवणाणीसु पओअकम्म-समोदाणकम्म-तवोकम्माणं णाणेगजीवं पडुच्च णत्थि अंतरं । आधाकम्मस्स अंतरं केवचिरं कालादो होदि ? णाणाजीवं पडुच्च णत्थि अंतरं । एगजीवं पडुच्च जहण्णेण एगसमओ । उक्कस्सेण पुव्वकोडी देसूणा[1] । तं जहा– एक्को देवो वा[2] णेरइयो वा वेदगसम्माइट्ठी पुव्वकोडाउएसु मणुस्सेसु उववण्णो । गब्भादिअट्ठवस्साण-मुवरि संजमं पडिवज्जिय मणपज्जवणाणी जादो । तस्स मणपज्जवणाणिस्स पढमसमए जे णिज्जिण्णा ओरालियखंधा तेसिं बिदियसमए आदी होदि । तदियसमयप्पहुडि अंतरं होदूण पुव्वकोडिचरिमसमए पुव्वणिज्जिण्ण[3]ओरालियखंधेसु बंधमागदेसु आधाकम्मस्स लद्धमुक्कस्सं-तरं । एवं तीहि समएहि अंतोमुहुत्तब्भहियअट्ठवासेहि य ऊणा पुव्वकोडी आधाकम्मस्स उक्कस्संतरं । इरियावथकम्मस्स वि एवं चेव । णवरि कोइ वि विसेसो जाणिय वत्तव्वो । किरियाकम्मस्स अंतरं केवचिरं कालादो होदि ? णाणाजीवं पडुच्च णत्थि अंतरं । एगजीवं पडुच्च जहण्णुक्कस्सेण अंतोमुहुत्तं ।

संजमाणुवादेण संजदाणं मणपज्जवणाणिभंगो । सामाइय-छेदोवट्ठावणसुद्धिसंजदाणं

सूक्ष्मसाम्पराय, अनिवृत्तिकरण और अपूर्वकरण होकर अप्रमत्तसंयत हो गया। इस तरह क्रियाकर्मका उत्कृष्ट अन्तरकाल प्राप्त हो गया । इतनी विशेषता है कि जघन्य अन्तरकालसे यह उत्कृष्ट अन्तरकाल संख्यातगुणा है ।

मनःपर्ययज्ञानियोंमें प्रयोगकर्म, समवधानकर्म और तपःकर्मका नाना जीवों और एक जीवकी अपेक्षा अन्तरकाल नहीं है। अधःकर्मका अन्तरकाल कितना है ? नाना जीवोंकी अपेक्षा अन्तरकाल नहीं है । एक जीवकी अपेक्षा जघन्य अन्तरकाल एक समय है और उत्कृष्ट अन्तरकाल कुछ कम पूर्वकोटि है । यथा—एक देव या नारकी वेदकसम्यग्दृष्टि जीव पूर्वकोटिकी आयुवाले मनुष्योंमें उत्पन्न हुआ और गर्भसे लेकर आठ वर्षका होनेपर संयमको प्राप्त कर मनःपर्ययज्ञानी हो गया । उस मनःपर्ययज्ञानीके प्रथम समयमें जो औदारिक स्कन्ध निर्जीर्ण हुए उनकी अपेक्षा दूसरे समयमें अधःकर्मकी आदि होती है और तीसरे समयसे अन्तर होकर पूर्वकोटिके अन्तिम समयमें पूर्व निर्जीर्ण औदारिक स्कन्धोंके बन्धको प्राप्त होनेपर अधःकर्मका उत्कृष्ट अन्तरकाल उपलब्ध होता है । इस तरह तीन समय और अन्तर्मुहूर्त अधिक आठ वर्ष कम पूर्वकोटि अधःकर्मका उत्कृष्ट अन्तरकाल होता है । ईर्यापथकर्मका भी इसी प्रकार अन्तरकाल होता है । इतना विशेष है कि जो कुछ विशेषता है वह जानकर कहनी चाहिये । क्रियाकर्मका अन्तरकाल कितना है ? नाना जीवोंकी अपेक्षा अन्तरकाल नहीं है । एक जीवकी अपेक्षा जघन्य और उत्कृष्ट अन्तरकाल अन्तर्मुहूर्त है ।

संयममार्गणाके अनुवादसे संयतोंका कथन मनःपर्ययज्ञानियोंके समान है । सामायिक और

---

१ का-ताप्रत्योः ' देसूणा पुव्वकोडी ' इति पाठः । २ अ-आ-काप्रतिषु ' देवो जादो वा ' इति पाठः । ३ अ-आ-काप्रतिषु ' पुव्वकोडीणिज्जिण्ण– ' इति पाठः ।

अप्पप्पणो पदाणमेवं चेव । णवरि इरियावथकम्मं णत्थि । किरियाकम्मस्स वि णत्थि अंतरं । एवं परिहार० । णवरि आधाकम्मस्स एगजीवं पडुच्च जहण्णेण एगसमओ । उक्कस्सेण वासपुधत्तब्भहियतीसवस्सेहि ऊणा पुव्वकोडी । तं जहा— एक्को देवो वा णेरइयो वा वेदगसम्माइट्ठी पुव्वकोडाउएसु मणुस्सेसु उववण्णो । तदो सव्वसोक्खसंजुत्तेण तीसवस्साणि पुरे[1] गमेदूण तदो सामाइय-छेदोवट्ठावणसुद्धिसंजमाणमेगदरं पडिवण्णो । पुणो वासपुधत्तेण पच्चक्खाणणामधेयपुव्वं पढिदूण[2] केवलिपादमूले परिहारसुद्धिसंजमं पडिवण्णो । तस्स परिहार-सुद्धिसंजदस्स पढमसमए जे णिज्जिण्णा ओरालियखंधा तेसिं बिदियसमए आधाकम्मस्स आदी होदि । तदियसमयप्पहुडि ताव अंतरं जाव[3] परिहारसुद्धिसंजददुचरिमसमओ त्ति । तदो परिहारसुद्धिसंजदचरिमसमए पुव्वणिज्जिण्णोरालियखंधेसु बंधमागदेसु आधाकम्मस्स लद्धमंतरं । एवं वासपुधत्तब्भहियतीसवस्सेहि ऊणिया पुव्वकोडी आधाकम्मस्स उक्कस्समंतरं ।

सुहुमसांपराइयसुद्धिसंजदाणं पओअकम्म-समोदाणकम्म-तवोकम्माणं अंतरं केवचिरं कालादो होदि ? णाणाजीवं पडुच्च जहण्णेण एगसमओ । उक्कस्सेण छम्मासा । एगजीवं पडुच्च जहण्णुक्कस्सेण णत्थि अंतरं । आधाकम्मस्स अंतरं केवचिरं कालादो होदि ? णाणा-जीवं पडुच्च णत्थि अंतरं । एगजीवं पडुच्च जहण्णेण एगसमओ । उक्कस्सेण अंतोमुहुत्तं ।

छेदोपस्थापनाशुद्धि संयतोंका अपने अपने पदोंका कथन इसी प्रकार है । इतनी विशेषता है कि इनके ईर्यापथकर्म नहीं हैं तथा क्रियाकर्मका भी अन्तरकाल नहीं हैं । इसी प्रकार परिहारविशुद्धि-संयतोंके कहना चाहिए । इतनी विशेषता है कि इनके अधःकर्मका एक जीवकी अपेक्षा जघन्य अन्तरकाल एक समय है और उत्कृष्ट अन्तरकाल वर्षपृथक्त्व अधिक तीस वर्ष न्यून पूर्वकोटि है । यथा—एक देव या नारकी वेदकसम्यग्दृष्टि जीव मरकर पूर्वकोटिकी आयुवाले मनुष्योंमें उत्पन्न हुआ । अनन्तर सब प्रकारके सुखसे संयुक्त होकर तीस वर्ष पहले बिताकर अनन्तर सामायिक और छेदोपस्थापनाशुद्धि संयमोंमेंसे किसी एकको प्राप्त हुआ । पुनः वर्षपृथक्त्व काल द्वारा प्रत्याख्यान नामक पूर्वको पढ़कर केवली जिनके पादमूलमें परिहारशुद्धिसंयमको प्राप्त हुआ । उस परिहारशुद्धिसंयतके प्रथम समयमें जो औदारिक स्कन्ध निर्जीर्ण हुए उनकी अपेक्षा दूसरे समयमें अधःकर्मकी आदि होती है और तीसरे समयसे अन्तर चालू होकर वह परिहारशुद्धि-संयतके द्विचरम समय तक होता है । अनन्तर परिहारशुद्धिसंयतके अन्तिम समयमें पूर्व निर्जीर्ण औदारिक स्कन्धोंके बन्धको प्राप्त होनेपर अधःकर्मका अन्तरकाल उपलब्ध होता है । इस प्रकार वर्षपृथक्त्व अधिक तीस वर्ष न्यून पूर्वकोटि अधःकर्मका उत्कृष्ट अन्तरकाल होता है ।

सूक्ष्मसाम्परायशुद्धिसंयतोंके प्रयोगकर्म, समवधानकर्म और तपःकर्मका अन्तरकाल कितना है । नाना जीवोंकी अपेक्षा जघन्य अन्तरकाल एक समय है और उत्कृष्ट अन्तरकाल छह महीना है । एक जीवकी अपेक्षा जघन्य और उत्कृष्ट अन्तरकाल नहीं है । अधःकर्मका अन्तरकाल कितना है ? नाना जीवोंकी अपेक्षा अन्तरकाल नहीं है । एक जीवकी अपेक्षा जघन्य अन्तरकाल एक समय है और उत्कृष्ट अन्तरकाल अन्तर्मुहूर्त है ।

---

१ आ-काप्रत्योः 'पुव्वे', ताप्रतौ 'पुव्वं' इति पाठः । २ अ-आ-काप्रतिषु 'पडिदूण' इति पाठः । ३ अप्रतौ 'जाव अंतरं ताव' इति पाठः ।

जहाक्खादसुद्धिसंजदाणं पओअकम्म-समोदाणकम्म-इरियावहकम्म-तवोकम्माणं णाणेगजीवं पडुच्च णत्थि अंतरं। आधाकम्मस्स अंतरं केवचिरं कालादो होदि? णाणाजीवं पडुच्च णत्थि अंतरं। एगजीवं पडुच्च जहण्णेण एगसमओ। उक्कस्सेण अंतोमुहुत्तब्भहियअट्ठवस्सेहि ऊणा पुव्वकोडी। तं जहा— एक्को खइयसम्माइट्ठी पुव्वकोडाउएसु मणुस्सेसु उववण्णो। गब्भादिअट्ठवस्साणमुवरि अधापवत्तकरणमपुव्वकरणं च कादूण अप्पमत्तभावेण सामाइय-छेदोवट्ठावणसंजमाणमेगदरं पडिवण्णो। तदो पमत्तो जादो। पुणो पमत्तापमत्तपरावत्तसहस्सं कादूण अपुव्वो अणियट्टी सुहुमो होदूण खीणकसाओ जहाक्खादसुद्धिसंजदो जादो। तस्स खीणकसायस्स पढमसमए जे णिज्जिण्णा ओरालियक्खंधा तेसिं विदियसमए आधाकम्मस्स आदी होदि। तदियसमयप्पहुडि अंतरं होदूण तदो सजोगिचरिमसमए ओरालियखंधेसु बंधमागदेसु आधाकम्मस्स लद्धमंतरं। एवं तिसमयाहियअंतोमुहुत्तब्भहियगब्भादिअट्ठवस्सेहि ऊणिया पुव्वकोडी आधाकम्मस्स उक्कस्संतरं।

संजदासंजदाणं पओअकम्म-समोदाणकम्म-किरियाकम्माणं णाणेगजीवं पडुच्च णत्थि अंतरं। आधाकम्मस्स अंतरं केवचिरं कालादो होदि? णाणाजीवं पडुच्च णत्थि अंतरं। एगजीवं पडुच्च जहण्णेण एगसमओ। उक्कस्सेण देसूणपुव्वकोडी। तं जहा—एक्को मिच्छाइट्ठी अट्ठावीससंतकम्मिओ पुव्वकोडाउएसु सम्मुच्छिमसण्णिपंचिंदियतिरिक्खपज्जत्तएसु उववण्णो।

यथाख्यातशुद्धिसंयत जीवोंके प्रयोगकर्म, समवधानकर्म, ईर्यापथकर्म और तपःकर्मका नाना जीवों और एक जीवकी अपेक्षा अन्तरकाल नहीं है। अधःकर्मका अन्तरकाल कितना है? नाना जीवोंकी अपेक्षा अन्तरकाल नहीं है। एक जीवकी अपेक्षा जघन्य अन्तरकाल एक समय है और उत्कृष्ट अन्तरकाल अन्तर्मुहूर्त और आठ वर्ष कम एक पूर्वकोटि है। यथा—एक क्षायिकसम्यग्दृष्टि जीव पूर्वकोटिकी आयुवाले मनुष्योंमें उत्पन्न हुआ। गर्भसे लेकर आठ वर्षका होनेपर अधःप्रवृत्तकरण और अपूर्वकरणको करके अप्रमत्तभावके साथ सामायिक और छेदोपस्थापना संयमोंमेंसे किसी एकको प्राप्त हुआ। अनन्तर प्रमत्त हो गया। पुनः प्रमत्त और अप्रमत्त गुणस्थानके हजारों परावर्तन करके अपूर्वकरण, अनिवृत्तिकरण और सूक्ष्मसाम्पराय होकर क्षीणकषाय यथाख्यातशुद्धिसंयत हो गया। उस क्षीणकषाय जीवके प्रथम समयमें जो औदारिक स्कन्ध निर्जीर्ण हुए उनकी अपेक्षा दूसरे समयमें अधःकर्मकी आदि होती है और तीसरे समयसे अन्तर होकर फिर सयोगीके अन्तिम समयमें औदारिक स्कन्धोंके बन्धको प्राप्त होनेपर अधःकर्मका अन्तरकाल उपलब्ध होता है। इस प्रकार तीन समय और अन्तर्मुहूर्त अधिक गर्भसे लेकर आठ वर्ष न्यून पूर्वकोटि अधःकर्मका उत्कृष्ट अन्तरकाल होता है।

संयतासंयत जीवोंके प्रयोगकर्म, समवधानकर्म और क्रियाकर्मका नाना जीवों और एक जीवकी अपेक्षा अन्तरकाल नहीं है। अधःकर्मका अन्तरकाल कितना है? नाना जीवोंकी अपेक्षा अन्तरकाल नहीं है। एक जीवकी अपेक्षा जघन्य अन्तरकाल एक समय है और उत्कृष्ट अन्तरकाल कुछ कम एक पूर्वकोटि है। यथा—अट्ठाईस प्रकृतियोंकी सत्तावाला एक मिथ्यादृष्टि जीव पूर्वकोटिकी आयुवाले सम्मूर्च्छिम संज्ञी पंचेन्द्रिय तिर्यंच पर्याप्तकोंमें उत्पन्न हुआ। छह

छहि पज्जत्तीहि पज्जत्तयदो विस्संतो विसुद्धो अधापवत्तकरणं अपुव्वकरणं च कादूण सम्मत्तं संजमासंजमं च समयं पडिवण्णो। तत्थ संजदासंजदपढमसमए जे णिज्जिण्णा ओरालियखंधा तेसिं विदियसमए आधाकम्मस्स आदी होदि। तदियसमयप्पहुडि अंतरं होदि। तदो संजदासंजदचरिमसमए पुव्वणिज्जिण्णओरालियसरीरखंधेसु बंधमागदेसु लद्धमाधाकम्मस्स उक्कस्समंतरं। एवं तिसमयाहिएहि तीहि अंतोमुहुत्तेहि ऊणिया पुव्वकोडी आधाकम्मस्स उक्कस्संतरं। असंजदाणं तिरिक्खोघो।

दंसणाणुवादेण चक्खुदंसणीणं तसपज्जत्तभंगो। णवरि इरियावथकम्मस्स णाणाजीवं पडुच्च जहण्णेण [एगसमओ, उक्कस्सेण छम्मासा। एगजीवं पडुच्च जहण्णेण] अंतोमुहुत्तं। उक्कस्सेण चक्खुदंसणिट्ठिदी देसूणा। एवमचक्खुदंसणीणं। णवरि सगट्ठिदी भाणिदव्वं। ओहिदंसणीणमोहिणाणिभंगो।

लेस्साणुवादेण किण्णलेस्साए पओअकम्म-समोदाणकम्माणमंतरं केवचिरं कालादो होदि? णाणेगजीवं पडुच्च णत्थि अंतरं। आधाकम्मस्स अंतरं केवचिरं कालादो होदि? णाणाजीवं पडुच्च णत्थि अंतरं। एगजीवं पडुच्च जहण्णेण एगसमओ। उक्कस्सेण तेत्तीसं सागरोवमाणि सादिरेयाणि। तं जहा— एक्को तिरिक्खो वा मणुस्सो वा अधो सत्तमाए

पर्याप्तियोंसे पर्याप्त हुआ। विश्राम किया। विशुद्ध हुआ। फिर अधःप्रवृत्तकरण और अपूर्वकरणको करके सम्यक्त्व और संयमासंयमको एक साथ प्राप्त हुआ। वहां संयतासंयत होनेके प्रथम समयमें जो औदारिक स्कन्ध निर्जीर्ण हुए उनकी अपेक्षा दूसरे समयमें अधःकर्मकी आदि होती है और तीसरे समयसे लेकर अन्तर होता है। अनन्तर संयतासंयतके अन्तिम समयमें पहले निर्जीर्ण हुए औदारिकशरीर स्कन्धोंके बन्धको प्राप्त होनेपर अधःकर्मका उत्कृष्ट अन्तरकाल उपलब्ध होता है। इस प्रकार तीन समय अधिक तीन अन्तर्मुहूर्त कम एक पूर्वकोटि अधःकर्मका उत्कृष्ट अन्तरकाल होता है। असंयतोंका कथन सामान्य तिर्यंचोंके समान है।

दर्शनमार्गणाके अनुवादसे चक्षुदर्शनवालोंका कथन त्रस पर्याप्तकोंके समान है। इतनी विशेषता है कि ईर्यापथकर्मका नाना जीवोंकी अपेक्षा जघन्य अन्तरकाल एक समय है और उत्कृष्ट अन्तरकाल छह महीना है। तथा एक जीवकी अपेक्षा जघन्य अन्तरकाल अन्तर्मुहूर्त है और उत्कृष्ट अन्तरकाल कुछ कम चक्षुदर्शनकी स्थितिप्रमाण है। इसी प्रकार अचक्षुदर्शनवालोंके कहना चाहिये। इतनी विशेषता है कि अपनी स्थिति कहनी चाहिये। अवधिदर्शनवालोंका भंग अवधिज्ञानियोंके समान है।

लेश्यामार्गणाके अनुवादसे कृष्णलेश्यामें प्रयोगकर्म और समवधानकर्मका अन्तरकाल कितना है? नाना जीवों और एक जीवकी अपेक्षा अन्तरकाल नहीं है। अधःकर्मका अन्तरकाल कितना है? नाना जीवोंकी अपेक्षा अन्तरकाल नहीं है। एक जीवकी अपेक्षा जघन्य अन्तरकाल एक समय है और उत्कृष्ट अन्तरकाल साधिक तेतीस सागर है। यथा—एक तिर्यंच या मनुष्य

---

१ अ-आ-का-ताप्रतिषु त्रुटितोऽयं कोष्ठकस्थः पाठो मप्रतितोऽत्र योजितः।

पुढवीए णिरयाउअं बंधिय पुणो सव्वदीहमंतोमुहुत्तं किण्णलेस्साए परिणमिय तिस्से किण्ण-लेस्साए परिणदपढमसमए णिज्जिण्णओरालियपरमाणूणं विदियसमए आधाकम्मस्स आदिं करिय तदियसमयप्पहुडि अंतराविय एत्थेव किण्णलेस्साए अंतोमुहुत्तमच्छिय अधो सत्तमाए पुढवीए उप्पज्जिय पुणो तत्थ तेत्तीससागरोवमाणि जीविदूण णिक्खंतो। तदो णिक्खंतस्स वि अंतोमुहुत्तकालं सा चेव किण्णलेस्सा उवलब्भदे। पुणो तिस्से किण्णलेस्साए चरिमसमए पुव्वं णिज्जिण्णपरमाणूसु बंधमागदेसु आधाकम्मस्स[1] लद्धमंतरं। एवं तिसमऊणबेअंतोमुहुत्त-ब्भहियतेत्तीससागरोवमाणि आधाकम्मस्स उक्कस्संतरं होदि। किरियाकम्मस्स अंतरं केव-चिरं कालादो होदि? णाणाजीवं पडुच्च णत्थि अंतरं। एगजीवं पडुच्च जहण्णेण अंतो-मुहुत्तं। उक्कस्सेण छहि अंतोमुहुत्तेहि ऊणाणि तेत्तीससागरोवमाणि। तं जहा—एक्को तिरिक्खो वा मणुस्सो वा अट्ठावीससंतकम्मिओ अधो सत्तमाए पुढवीए उववण्णो। छहि पज्जत्तीहि पज्जत्तयदो विस्संतो विसुद्धो वेदगसम्मत्तं पडिवण्णो। किरियाकम्मस्स आदी दिट्ठा। तदो सव्वजहण्णमंतोमुहुत्तं किरियाकम्मेण अच्छिदूण मिच्छत्तं गदो अंतरिदो। सव्वजहण्णंतोमुहुत्तावसेसे जीवियव्वे तिण्णि वि करणाणि काऊणुवसमसम्मत्तं पडिवण्णो। लद्धमंतरं किरियाकम्मस्स। तदो मिच्छत्तं गंतूण णिक्खंतो तिरिक्खो जादो। एवं छहि अंतोमुहुत्तेहि ऊणाणि तेत्तीससागरोवमाणि किरियाकम्मस्स उक्कस्संतरं। एवं णीलाए वि

नीचे सातवीं पृथिवीकी नारकायुका बन्ध करके पुनः सबसे दीर्घ अन्तर्मुहूर्त काल तक कृष्णलेश्या-रूपसे परिणम कर उस कृष्णलेश्यारूपसे परिणत होनेके प्रथम समयमें निर्जीर्ण हुए औदारिक-शरीरके परमाणुओंकी अपेक्षा दूसरे समयमें अधःकर्मकी आदि कर और तीसरे समयसे अन्तर कराकर तथा कृष्णलेश्याके साथ अन्तर्मुहूर्त काल तक यहीं रहकर नीचे सातवीं पृथिवीमें उत्पन्न हुआ। पुनः वहां तेतीस सागर जीवित रहकर निकला। वहांसे निकलनेके बाद भी अन्तर्मुहूर्त काल तक वही कृष्णलेश्या होती है। पुनः उस कृष्णलेश्याके अन्तिम समयमें पहले निर्जीर्ण हुए औदारिक परमाणुओंके बन्धको प्राप्त होनेपर अधःकर्मका अन्तरकाल उपलब्ध होता है। इस प्रकार अधःकर्मका उत्कृष्ट अन्तरकाल तीन समय कम दो अन्तर्मुहूर्त अधिक तेतीस सागर होता है। क्रियाकर्मका अन्तरकाल कितना है? नाना जीवोंकी अपेक्षा अन्तरकाल नहीं है। एक जीवकी अपेक्षा जघन्य अन्तरकाल अन्तर्मुहूर्त है और उत्कृष्ट अन्तरकाल छह अन्तर्मुहूर्त कम तेतीस सागर है। यथा—अट्ठाईस प्रकृतियोंकी सत्तावाला एक तिर्यंच या मनुष्य नीचे सातवीं पृथिवीमें उत्पन्न हुआ। छह पर्याप्तियोंसे पर्याप्त हुआ। विश्राम किया। विशुद्ध हुआ और वेदकसम्यक्त्वको प्राप्त हुआ। इसके क्रियाकर्मकी आदि दिखाई दी। अनन्तर सबसे जघन्य अन्तर्मुहूर्त काल तक क्रियाकर्मके साथ रहकर मिथ्यात्वको प्राप्त होकर उसका अन्तर किया। पुनः जीवितमें सबसे जघन्य अन्तर्मुहूर्त काल शेष रहनेपर तीनों ही करणोंको करके उपशमसम्यक्त्वको प्राप्त हुआ। क्रियाकर्मका अन्तरकाल उपलब्ध हो गया। अनन्तर मिथ्यात्वको प्राप्त होकर निकला और तिर्यंच हो गया। इस प्रकार क्रियाकर्मका उत्कृष्ट अन्तरकाल छह अन्तर्मुहूर्त कम तेतीस सागर

१ प्रतिषु 'आधाकम्मेसु' इति पाठः।

लेस्साए वत्तव्वं । णवरि तिसमऊणबेअंतोमुहुत्तब्भहियाणि सत्तारस सागरोवमाणि आधाकम्मस्स उक्कस्संतरं । पंचहि अंतोमुहुत्तेहि ऊणाणि सत्तारस सागरोवमाणि किरियाकम्मस्स उक्कस्संतरं । एवं काउए वि लेस्साए । णवरि तिसमऊणबेअंतोमुहुत्तब्भहियाणि सत्त सागरोवमाणि आधाकम्मस्स उक्कस्संतरं । पंचहि अंतोमुहुत्तेहि ऊणाणि सत्त सागरोवमाणि किरियाकम्मस्स उक्कस्संतरं ।

तेउलेस्साए पओअकम्म-समोदाणकम्म-तओकम्माणं अंतरं केवचिरं कालादो होदि ? णाणेगजीवं पडुच्च णत्थि अंतरं । आधाकम्मस्स अंतरं केवचिरं कालादो होदि ? णाणाजीवं पडुच्च णत्थि अंतरं । एगजीवं पडुच्च जहण्णेण एगसमओ । उक्कस्सेण बेअंतोमुहुत्तब्भहियदेसूणअड्ढाइज्जसागरोवमाणि । तं जहा—एक्को तिरिक्खो वा मणुस्सो वा सम्माइट्ठी सोधम्मीसाणे अंतोमुहुत्तूणअड्ढाइज्जसागरोवमाणि देवाउअं बंधिदूण पुणो भुंजमाणाउए सव्वदीहअंतोमुहुत्तावसेसे तेउलेस्सिओ जादो । तिस्से तेउलेस्साए परिणदपढमसमए जे णिज्जिण्णा ओरालियसरीरक्खंधा तेसिं बिदियसमए आधाकम्मस्स आदी होदि । तदियसमयप्पहुडि अंतरं होदि । एत्थेव अंतोमुहुत्तमंतरिदूण पुणो सोधम्मीसाणे उप्पज्जिय कालं कादूण तेउलेस्साए सह मणुस्सो जादो । तत्थ वि सव्वुक्कस्समंतोमुहुत्तं तेउलेस्साए अच्छिदस्स तेउलेस्सद्धाए चरिमसमए पुव्वणिज्जिण्णोरालियक्खंधेसु बंधमागदेसु आधाकम्मस्स लद्ध-

होता है । इसी प्रकार नीललेश्यामें भी कहना चाहिये । इतनी विशेषता है कि अधःकर्मका उत्कृष्ट अन्तरकाल तीन समय कम दो अन्तर्मुहूर्त अधिक सत्रह सागर है और क्रियाकर्मका उत्कृष्ट अन्तरकाल पांच अन्तर्मुहूर्त कम सत्रह सागर है । इसी प्रकार कापोतलेश्यामें भी कहना चाहिये । इतनी विशेषता है कि इसमें अधःकर्मका उत्कृष्ट अन्तरकाल तीन समय कम दो अन्तर्मुहूर्त अधिक सात सागर है । तथा क्रियाकर्मका उत्कृष्ट अन्तरकाल पांच अन्तर्मुहूर्त कम सात सागर है ।

पीतलेश्यामें प्रयोगकर्म, समवधानकर्म और तपःकर्मका अन्तरकाल कितना है ? नाना जीवों और एक जीवकी अपेक्षा अन्तरकाल नहीं है । अधःकर्मका अन्तरकाल कितना है ? नाना जीवोंकी अपेक्षा अन्तरकाल नहीं है । एक जीवकी अपेक्षा जघन्य अन्तरकाल एक समय है और उत्कृष्ट अन्तरकाल दो अन्तर्मुहूर्त अधिक कुछ कम अढ़ाई सागर है । यथा—एक तिर्यंच या मनुष्य सम्यग्दृष्टि जीव सौधर्म और ऐशान स्वर्ग सम्बन्धी अन्तर्मुहूर्त कम अढ़ाई सागरप्रमाण देवायुका बन्ध करके पुनः भुज्यमान आयुमें सबसे दीर्घ अन्तर्मुहूर्त काल शेष रहनेपर पीतलेश्यावाला हो गया । उस पीतलेश्याके परिणत होनेके प्रथम समयमें जो औदारिकशरीर स्कन्ध निर्जीर्ण हुए उनकी अपेक्षा दूसरे समयमें अधःकर्मकी आदि होती है और तीसरे समयसे अन्तर होता है । इस प्रकार यहां ही अन्तर्मुहूर्त काल तक अन्तर करके पुनः सौधर्म व ऐशान कल्पमें उत्पन्न होकर मरा और पीतलेश्याके साथ मनुष्य हुआ । यहां भी सबसे उत्कृष्ट अन्तर्मुहूर्त काल तक पीतलेश्याके साथ रहनेवाले उस जीवके पीतलेश्याके कालके अन्तिम समयमें पूर्व निर्जीर्ण औदारिकशरीर स्कन्धोंके बन्धको प्राप्त होनेपर अधःकर्मका अन्तरकाल उपलब्ध होता है । इस प्रकार

मंतरं । एवं तिसमऊणवेअंतोमुहुत्तब्भहियाणि देसूणअड्ढाइज्जसागरोवमाणि आधाकम्मस्स उक्कस्संतरं होदि । एवं किरियाकम्मस्स वि वत्तव्वं । णवरि पंचहि अंतोमुहुत्तेहि ऊणाणि अड्ढाइज्जसागरोवमाणि उक्कस्संतरं ।

पम्माए लेस्साए एवं चेव वत्तव्वं । णवरि तिसमऊणवेअंतोमुहुत्तब्भहियदेसूणद्ध-सागरोवमसहिदाणि अट्ठारस सागरोवमाणि आधाकम्मस्स उक्कस्संतरं । एवं किरिया-कम्मस्स वि वत्तव्वं । णवरि पंचहि अंतोमुहुत्तेहि ऊणाणि [देसूण-] अद्धसागरोवम-सहिदअट्ठारससागरोवमाणि उक्कस्संतरं ।

सुक्कलेस्साए पओअकम्म-समोदाणकम्म-इरियावथकम्म-तवोकम्माणं णाणेगजीवं पडुच्च णत्थि अंतरं । आधाकम्मस्स अंतरं केवचिरं कालादो होदि? णाणाजीवं पडुच्च णत्थि अंतरं । एगजीवं पडुच्च जहण्णेण एगसमओ । उक्कस्सेण तेत्तीससागरोवमाणि वेहि अंतो-मुहुत्तेहि सादिरेयाणि । तं जहा—एक्को विसुज्झमाणो पमत्तसंजदो पम्मलेस्साए अच्छिदो । तदो उवसमसेडिपाओग्गविसोहिं पूरेमाणो सुक्कलेस्सिओ जादो । तदो सुक्कलेस्सियपढम-समए जे णिज्जिण्णा ओरालियणोकम्मक्खंधा तेसिं विदियसमए आधाकम्मस्स आदी होदि । तदियसमयप्पहुडि अंतरं होदि । पुणो पमत्तापमत्तपरावत्तसहस्सं कादूण अपुव्वो अणियट्टी सुहुमो उवसंतकसाओ पुणो सुहुमो अणियट्टी अपुव्वो अप्पमत्तो होदूण पमत्तसंजदट्ठाणे सव्वुक्कस्सलेस्सकालमच्छिदूण मदो तेत्तीससागरोवमट्ठिदियो देवो जादो । तत्तो चुदो

अधःकर्मका उत्कृष्ट अन्तरकाल तीन समय कम दो अन्तर्मुहूर्त अधिक कुछ कम अढ़ाई सागर होता है। इसी प्रकार क्रियाकर्मका भी उत्कृष्ट अन्तरकाल कहना चाहिये। इतनी विशेषता है कि इसका उत्कृष्ट अन्तरकाल पांच अन्तर्मुहूर्त कम अढ़ाई सागर है।

पद्मलेश्यामें भी इसी प्रकार कहना चाहिये। इतनी विशेषता है कि इसके अधःकर्मका उत्कृष्ट अन्तरकाल तीन समय कम दो अन्तर्मुहूर्त अधिक कुछ कम साढ़े अठारह सागर है। इसी प्रकार क्रियाकर्मका भी उत्कृष्ट अन्तरकाल कहना चाहिये। इतनी विशेषता है कि इसके क्रियाकर्मका उत्कृष्ट अन्तरकाल पांच अन्तर्मुहूर्त कम कुछ कम साढ़े अठारह सागर है।

शुक्ललेश्यामें प्रयोगकर्म, समवधानकर्म, ईर्यापथकर्म और तपःकर्मका नाना जीवों और एक जीवकी अपेक्षा अन्तरकाल नहीं है। अधःकर्मका अन्तरकाल कितना है? नाना जीवोंकी अपेक्षा अन्तरकाल नहीं है। एक जीवकी अपेक्षा जघन्य अन्तरकाल एक समय है और उत्कृष्ट अन्तरकाल दो अन्तर्मुहूर्त अधिक तेतीस सागर है। यथा—विशुद्धिको प्राप्त होता हुआ एक प्रमत्तसंयत जीव पद्मलेश्याके साथ रहा। अनन्तर उपशमश्रेणिके योग्य विशुद्धिको बढ़ाता हुआ शुक्ललेश्यावाला हो गया। अनन्तर शुक्ललेश्यावाला होनेके प्रथम समयमें जो औदारिकशरीर स्कन्ध निर्जीर्ण हुए उनकी अपेक्षा दूसरे समयमें अधःकर्मकी आदि होती है और तीसरे समयसे अन्तर होता है। पुनः प्रमत्त और अप्रमत्त गुणस्थानके हजारों परावर्तन करके अपूर्वकरण, अनिवृत्तिकरण, सूक्ष्मसाम्पराय, उपशान्तमोह, पुनः सूक्ष्मसाम्पराय, अनिवृत्तिकरण, अपूर्वकरण और अप्रमत्तसंयत होकर प्रमत्तसंयत गुणस्थानमें सर्वोत्कृष्ट उक्त लेश्याके काल तक रहकर मरा और तेतीस सागरकी स्थितिवाला देव हो गया। पुनः वहांसे च्युत होकर मनुष्योंमें उत्पन्न हुआ।

समाणो मणुस्सेसु उववण्णो । तदो सव्वदीहंतोमुहुत्तसुक्कलेस्साकालचरिमसमए पुव्वणिज्जिण्ण-णोकम्मक्खंधेसु बंधमागदेसु आधाकम्मस्स लद्धमंतरं । एवं तिसमऊणबेअंतोमुहुत्तब्भहिय-तेत्तीससागरोवमाणि आधाकम्मस्स उक्कस्संतरं । किरियाकम्मस्स अंतरं केवचिरं कालादो होदि ? णाणाजीवं पडुच्च णत्थि अंतरं । एगजीवं पडुच्च जहण्णेण अंतोमुहुत्तं । उक्कस्सेण एक्कत्तीसंसागरोवमाणि पंचहि अंतोमुहुत्तेहि ऊणाणि । तं जहा— एक्को अट्ठावीससंतकम्मियो दव्वलिंगी उवरिम-उवरिमगेवज्जदेवेसु उववण्णो । छहि पज्जत्तीहि पज्जत्तयदो विस्संतो विसुद्धो वेदगसम्मत्तं पडिवण्णो । किरियाकम्मस्स आदी दिट्ठा । तदो सव्वत्थोवकालं किरिया-कम्मेण अच्छिदूण मिच्छत्तं गदो अंतरिदो । तदो सव्वत्थोवावसेसे जीविदव्वए[२] उवसमसम्मत्तं पडिवण्णो । किरियाकम्मस्स लद्धमंतरं । एवं पंचहि अंतोमुहुत्तेहि ऊणाणि एक्कत्तीसं सागरोवमाणि किरियाकम्मस्स उक्कस्सं अंतरं । अलेस्सियाणं तवोकम्मस्स अंतरं केवचिरं कालादो होदि ? णाणाजीवं पडुच्च जहण्णेण एगसमओ । उक्कस्सेण छम्मासा । एगजीवं पडुच्च णत्थि अंतरं ।

भवियाणुवादेण भवसिद्धियाणमोघभंगो । सम्मत्ताणुवादेण सम्माइट्ठीण ओहिणाणिभंगो । णवरि इरियावहकम्मस्स णाणाजीवं पडुच्च णत्थि अंतरं । खइयसम्माइट्ठीणं पओअकम्म-समो-दाणकम्म-इरियावहकम्माणं णाणेगजीवं पडुच्च णत्थि अंतरं । णवरि इरियावहकम्मस्स एगजीवं

अनन्तर शुक्ललेश्याके सबसे उत्कृष्ट अन्तर्मुहूर्त कालके अन्तिम समयमें पूर्वमें निर्जीर्ण हुए नोकर्मस्कन्धोंके बन्धको प्राप्त होनेपर अधःकर्मका अन्तरकाल उपलब्ध होता है । इस प्रकार अधःकर्मका उत्कृष्ट अन्तरकाल तीन समय कम दो अन्तर्मुहूर्त अधिक तेतीस सागर होता है । क्रियाकर्मका अन्तरकाल कितना होता है ? नाना जीवोंकी अपेक्षा अन्तरकाल नहीं है । एक जीवकी अपेक्षा जघन्य अन्तरकाल अन्तर्मुहूर्त है और उत्कृष्ट अन्तरकाल पांच अन्तर्मुहूर्त कम इकतीस सागर है । यथा—अट्ठाईस प्रकृतियोंकी सत्तावाला एक द्रव्यलिंगी जीव उपरिम-उपरिम ग्रैवेयकके देवोंमें उत्पन्न हुआ । छह पर्याप्तियोंसे पर्याप्त हुआ । विश्राम किया और विशुद्ध होकर वेदकसम्यक्त्वको प्राप्त हुआ । क्रियाकर्मकी आदि दिखाई दी । अनन्तर सबसे स्तोक काल तक क्रियाकर्मके साथ रहकर मिथ्यात्वको प्राप्त हो अन्तर किया । अनन्तर सबसे स्तोक जीवितके शेष रहनेपर उपशमसम्यक्त्वको प्राप्त हुआ । क्रियाकर्मका अन्तरकाल उपलब्ध हो गया । इस प्रकार क्रियाकर्मका उत्कृष्ट अन्तरकाल पांच अन्तर्मुहूर्त कम इकतीस सागर होता है । लेश्यारहित जीवोंके तपःकर्मका अन्तरकाल कितना है ? नाना जीवोंकी अपेक्षा जघन्य अन्तरकाल एक समय है और उत्कृष्ट अन्तरकाल छह महीना है । एक जीवकी अपेक्षा अन्तरकाल नहीं है ।

भव्यमार्गणाके अनुवादसे भव्य जीवोंका भंग ओघके समान है । सम्यक्त्वमार्गणाके अनुवादसे सम्यग्दृष्टियोंका भंग अवधिज्ञानियोंके समान है । इतनी विशेषता है कि ईर्यापथकर्मका नाना जीवोंकी अपेक्षा अन्तरकाल नहीं है । क्षायिकसम्यग्दृष्टियोंके प्रयोगकर्म, समवधानकर्म और ईर्यापथकर्मका नाना जीवों और एक जीवकी अपेक्षा अन्तरकाल नहीं है । इतनी विशेषता है

१ प्रतिषु 'तेत्तीस' इति पाठः । २ प्रतिषु 'जीविदव्वे' इति पाठः ।

पडुच्च जहण्णेण अंतोमुहुत्तं । उक्कस्सेण तेत्तीससागरोवमाणि देसूणबेपुव्वकोडीहि सादिरेयाणि । तं जहा—एक्को देवो वा णेरइओ वा चउवीससंतकम्मियो सम्माइट्ठीसु पुव्वकोडाउएसु उववण्णो । गब्भादिअट्ठवस्साणमुवरि दंसणमोहणीयं खविय अप्पमत्तभावेण संजमं पडिवण्णो । पुणो पमत्तो जादो । तदो पमत्तापमत्तपरावत्तसहस्सं कादूण अपुव्वो अणियट्टी सुहुमो होदूण उवसंतकसाओ जादो । इरियावहकम्मस्स आदी दिट्ठा । तदो सुहुमो होदूण अंतरिय तेत्तीसाउट्ठिदिएसु देवेसुववज्जिय पुव्वकोडाउएसु मणुस्सेसुववण्णो । पुणो पुव्वकोडीए सव्वत्थोवअंतोमुहुत्तावसेसे खीणकसाओ जादो । लद्धमंतरं । एवमेक्कारसअंतोमुहुत्तब्भहियअट्ठवस्सेहि ऊणबेपुव्वकोडीहिं सादिरेयाणि तेत्तीससागरोवमाणि इरियावहकम्मस्स उक्कस्संतरं । आधाकम्मस्स उक्कस्संतरं[1] केवचिरं कालादो होदि ? णाणाजीवं पडुच्च णत्थि अंतरं । एगजीवं पडुच्च जहण्णेण एगसमओ । उक्कस्सेण तेत्तीससागरोवमाणि देसूण [दो] पुव्वकोडीहिं सादिरेयाणि । तं जहा— एक्को देवो [वा] णेरइयो वा चउवीससंतकम्मियो पुव्वकोडाउएसु मणुस्सेसु उववण्णो । गब्भादिअट्ठवस्साणमुवरि तिण्णि वि करणाणि कादूण खइयसम्माइट्ठी जादो । तस्स खइयसम्माइट्ठिस्स पढमसमसए [जे] णिज्जिण्णा ओरालियपरमाणू तेसिं बिदियसमए आदी होदि । तदियसमयप्पहुडि देसूणपुव्वकोडिमेत्तंतरं काऊण तेत्तीससागरोवमाउट्ठिदिएसु देवेसु उववण्णो । तत्तो चुदो समाणा

कि ईर्यापथकर्मका एक जीवकी अपेक्षा जघन्य अन्तरकाल अन्तर्मुहूर्त है और उत्कृष्ट अन्तरकाल कुछ कम दो पूर्वकोटि अधिक तेतीस सागर है। यथा—चौबीस प्रकृतियोंकी सत्तावाला एक देव या नारकी जीव पूर्वकोटिकी आयुवाले सम्यग्दृष्टि मनुष्योंमें उत्पन्न हुआ। गर्भसे लेकर आठ वर्षका होनेपर दर्शनमोहनीयका क्षय करके अप्रमत्तभावके साथ संयमको प्राप्त हुआ। अनन्तर प्रमत्त हुआ। अनन्तर प्रमत्त और अप्रमत्त गुणस्थानके हजारों परावर्तन करके अपूर्वकरण अनिवृत्तिकरण और सूक्ष्मसाम्पराय होकर उपशान्तकषाय हो गया। इसके ईर्यापथकर्मकी आदि दिखाई दी। अनन्तर सूक्ष्मसाम्पराय होकर और अन्तर करके तेतीस सागरकी आयुवाले देवोंमें उत्पन्न हुआ और वहांसे च्युत होकर पूर्वकोटि आयुवाले मनुष्योंमें उत्पन्न हुआ। पुनः पूर्वकोटिमें सबसे स्तोक अन्तर्मुहूर्त काल शेष रहनेपर क्षीणकषाय हो गया। अन्तरकाल उपलब्ध हो गया। इस प्रकार ग्यारह अन्तर्मुहूर्त अधिक आठ वर्ष न्यून दो पूर्वकोटि अधिक तेतीस सागर ईर्यापथकर्मका उत्कृष्ट अन्तरकाल होता है। अधःकर्मका उत्कृष्ट अन्तरकाल कितना है ? नाना जीवोंकी अपेक्षा अन्तरकाल नहीं है। एक जीवकी अपेक्षा जघन्य अन्तरकाल एक समय है और उत्कृष्ट अन्तरकाल कुछ कम दो पूर्वकोटि अधिक तेतीस सागर है। यथा—चौबीस प्रकृतियोंकी सत्तावाला एक देव या नारकी जीव पूर्वकोटिकी आयुवाले मनुष्योंमें उत्पन्न हुआ। गर्भसे लेकर आठ वर्षका होनेपर तीनों ही करणोंको करके क्षायिकसम्यग्दृष्टि हो गया। उस क्षायिकसम्यग्दृष्टिके प्रथम समयमें जो औदारिक परमाणु निर्जीर्ण हुए उनकी अपेक्षा दूसरे समयमें अधःकर्मकी आदि होती है और तीसरे समयसे लेकर कुछ कम पूर्वकोटि काल मात्र अन्तर करके तेतीस सागरकी

१ ताप्रतौ 'उक्कस्संतरं (अंतरं)' इति पाठः।

पुणरवि पुव्वकोडाउएसु मणुस्सेसु उववण्णो । तदो सव्वजहण्णंतोमुहुत्तावसेसे खीण-कसाओ जादो । तदो सजोगिचरिमसमए पुव्वणिज्जिण्णओरालियकम्मेसु[1] बंधमागदेसु आधाकम्मस्स लद्धमंतरं । एवं गब्भादिअट्ठवस्सेहि बेअंतोमुहुत्तब्भहिएहि उणियाहि दोपुव्व-कोडीहि सादिरेयाणि तेत्तीससागरोवमाणि आधाकम्मस्सुक्कस्संतरं । तवोकम्मस्स अंतरं केवचिरं कालादो होदि ? णाणाजीवं पडुच्च णत्थि अंतरं । एगजीवं पडुच्च जहण्णेण अंतोमुहुत्तं । उक्कस्सेण तेत्तीसं सागरोवमाणि अंतोमुहुत्तूणपुव्वकोडीए सादिरेयाणि । किरिया-कम्मस्स उक्कस्संतरं[2] केवचिरं कालादो होदि ? णाणाजीवं पडुच्च णत्थि अंतरं । एगजीवं पडुच्च जहण्णुक्कस्सेण अंतोमुहुत्तं ।

वेदगसम्माइट्ठीणं पओअकम्म-समोदाणकम्म-किरियाकम्माणं णाणेगजीवं पडुच्च णत्थि अंतरं । आधाकम्मस्स अंतरं केवचिरं कालादो होदि ? णाणाजीवं पडुच्च णत्थि अंतरं । एगजीवं पडुच्च जहण्णेण एगसमओ । उक्कस्सेण छावट्ठिसागरोवमाणि देसूणाणि । तवो-कम्मस्स सम्माइट्ठिभंगो । उवसमसम्माइट्ठीणं पओअकम्म-समोदाणकम्माणमंतरं केवचिरं कालादो होदि ? णाणाजीवं पडुच्च जहण्णेण एगसमओ । उक्कस्सेण सत्तरादिंदियाणि । एगजीवं पडुच्च णत्थि अंतरं । एवं किरियाकम्मस्स । णवरि एगजीवं पडुच्च जहण्णुक्कस्सेण अंतोमुहुत्तं । आधाकम्मस्स अंतरं केवचिरं कालादो होदि ? णाणाजीवं पडुच्च णत्थि

आयुवाले देवोंमें उत्पन्न हुआ और वहांसे च्युत होकर फिर भी पूर्वकोटिकी आयुवाले मनुष्योंमें उत्पन्न हुआ। और वहां सबसे जघन्य अन्तर्मुहूर्त काल शेष रहनेपर क्षीणकषाय हो गया। अनन्तर सयोगीके अन्तिम समयमें पूर्व निर्जीर्ण औदारिक कर्मस्कन्धोंके बन्धको प्राप्त होनेपर अधःकर्मका अन्तरकाल उपलब्ध होता है। इस प्रकार अधःकर्मका उत्कृष्ट अन्तरकाल गर्भसे लेकर आठ वर्ष दो अन्तर्मुहूर्त न्यून दो पूर्वकोटि अधिक तेतीस सागर है। तपःकर्मका अन्तरकाल कितना है ? नाना जीवोंकी अपेक्षा अन्तरकाल नहीं है। एक जीवकी अपेक्षा जघन्य अन्तरकाल अन्तर्मुहूर्त है और उत्कृष्ट अन्तरकाल अन्तर्मुहूर्त कम पूर्वकोटि अधिक तेतीस सागर है। क्रियाकर्मका उत्कृष्ट अन्तरकाल कितना है ? नाना जीवोंकी अपेक्षा अन्तरकाल नहीं है। एक जीवकी अपेक्षा जघन्य और उत्कृष्ट अन्तरकाल अन्तर्मुहूर्त है।

वेदकसम्यग्दृष्टियोंके प्रयोगकर्म, समवधानकर्म और क्रियाकर्मका नाना जीवों और एक जीवकी अपेक्षा अन्तरकाल नहीं है। अधःकर्मका अन्तरकाल कितना है ? नाना जीवोंकी अपेक्षा अन्तरकाल नहीं है। एक जीवकी अपेक्षा जघन्य अन्तरकाल एक समय है और उत्कृष्ट अन्तरकाल कुछ कम छ्यासठ सागर है। तपःकर्मके अन्तरकालका विचार सम्यग्दृष्टियोंके समान है।

उपशमसम्यग्दृष्टियोंके प्रयोगकर्म और समवधानकर्मका अन्तरकाल कितना है ? नाना जीवोंकी अपेक्षा जघन्य अन्तरकाल एक समय है और उत्कृष्ट अन्तरकाल सात रात्रि-दिन है। एक जीवकी अपेक्षा अन्तरकाल नहीं है। इसी प्रकार क्रियाकर्मका अन्तरकाल है। इतनी विशेषता है कि एक जीवकी अपेक्षा जघन्य और उत्कृष्ट अन्तरकाल अन्तर्मुहूर्त है। अधःकर्मका अन्तरकाल कितना है ? नाना जीवोंकी अपेक्षा अन्तरकाल नहीं है। एक जीवकी अपेक्षा जघन्य

१ अ-आ-काप्रतिषु 'णिज्जिण्णा' इति पाठः। २ ताप्रतौ 'उक्कस्संतरं (अंतरं)' इति पाठः।

अंतरं। एगजीवं पडुच्च जहण्णेण एगसमओ। उक्कस्सेण अंतोमुहुत्तं तिसमऊणं। तवो-कम्मस्स अंतरं केवचिरं कालादो होदि? णाणाजीवं पडुच्च जहण्णेण एगसमओ। उक्कस्सेण पण्णरस रादिंदियाणि। एगजीवं पडुच्च जहण्णुक्कस्सेण अंतोमुहुत्तं। इरियावथकम्मस्स अंतरं केवचिरं कालादो होदि? णाणाजीवं पडुच्च जहण्णेण एगसमओ। उक्कस्सेण वासपुधत्तं। एगजीवं पडुच्च णत्थि अंतरं।

सम्मामिच्छाइट्ठीणं पओअकम्म-समोदाणकम्माणमंतरं केवचिरं कालादो होदि? णाणाजीवं पडुच्च जहण्णेण एगसमओ। उक्कस्सेण पलिदोवमस्स असंखेज्जदिभागो। एगजीवं पडुच्च णत्थि अंतरं। आधाकम्मस्स अंतरं केवचिरं कालादो होदि? णाणाजीवं पडुच्च णत्थि अंतरं। एगजीवं पडुच्च जहण्णेण एगसमओ। उक्कस्सेण अंतोमुहुत्तं तिसमऊणं। सासणसम्माइट्ठीणं एवं चेव। णवरि आधाकम्मस्स अंतरमेगजीवं पडुच्च जहण्णेण एगसमओ। उक्कस्सेण तिसमऊणाओ छआवलियाओ।

सण्णियाणुवादेण सण्णीणं चक्खुदंसणी० भंगो। असण्णीणं मिच्छाइट्ठी० भंगो। णेव सण्णी णेव असण्णीणं सव्वपदाणं णाणेगजीवं पडुच्च णत्थि अंतरं। णवरि आधाकम्मस्स अंतरमेगजीवं पडुच्च जहण्णेण एगसमओ। उक्कस्सेण पुव्वकोडी देसूणा। तं जहा— एक्को देवो वा णेरइयो वा खइयसम्माइट्ठी पुव्वकोडाउएसु मणुस्सेसु उववण्णो। गब्भादिअट्ठवस्साण-

---

अन्तरकाल एक समय है और उत्कृष्ट अन्तरकाल तीन समय कम अन्तर्मुहूर्त है। तपःकर्मका अन्तरकाल कितना है? नाना जीवोंकी अपेक्षा जघन्य अन्तरकाल एक समय है और उत्कृष्ट अन्तरकाल पन्द्रह रात्रि-दिन है। एक जीवकी अपेक्षा जघन्य और उत्कृष्ट अन्तरकाल अन्तर्मुहूर्त हैं। ईर्यापथकर्मका अन्तरकाल कितना है? नाना जीवोंकी अपेक्षा जघन्य अन्तरकाल एक समय है और उत्कृष्ट अन्तरकाल वर्षपृथक्त्व है। एक जीवकी अपेक्षा अन्तरकाल नहीं है।

सम्यग्मिथ्यादृष्टि जीवोंके प्रयोगकर्म और समवधानकर्मका अन्तरकाल कितना है? नाना जीवोंकी अपेक्षा जघन्य अन्तरकाल एक समय है और उत्कृष्ट अन्तरकाल पल्यके असंख्यातवें भागप्रमाण है। एक जीवकी अपेक्षा अन्तरकाल नहीं है। अधःकर्मका अन्तरकाल कितना है? नाना जीवोंकी अपेक्षा अन्तरकाल नहीं है। एक जीवकी अपेक्षा जघन्य अन्तरकाल एक समय है और उत्कृष्ट अन्तरकाल तीन समय कम अन्तर्मुहूर्त है। सासादनसम्यग्दृष्टियोंके इसी प्रकार कहना चाहिये। इतनी विशेषता है कि अधःकर्मका एक जीवकी अपेक्षा जघन्य अन्तर-काल एक समय है और उत्कृष्ट अन्तरकाल तीन समय कम छह आवलि हैं।

संज्ञीमार्गणाके अनुवादसे संज्ञियोंका भंग चक्षुदर्शनवालोंके समान हैं। असंज्ञियोंका भंग मिथ्यादृष्टियोंके समान है। न संज्ञी न असंज्ञी जीवोंके सब पदोंका नाना जीवों और एक जीवकी अपेक्षा अन्तरकाल नहीं है। इतनी विशेषता है कि अधःकर्मका एक जीवकी अपेक्षा जघन्य अन्तरकाल एक समय है और उत्कृष्ट अन्तरकाल कुछ कम पूर्वकोटि है। यथा—एक देव या नारकी क्षायिकसम्यग्दृष्टि जीव पूर्वकोटिकी आयुवाले मनुष्योंमें उत्पन्न हुआ। गर्भसे लेकर आठ

मुवरि अधापवत्तकरणं अपुव्वकरणं च कादूण अप्पमत्तभावेण संजमं पडिवण्णो । पुणो पमत्तो जादो । तदो पमत्तापमत्तपरावत्तसहस्सं कादूण अपुव्वो अणियट्टी सुहुमो खीण-कसाओ च होदूण सजोगी जादो । तदो सजोगिपढमसमए जे णिज्जिण्णा ओरालियसरीर-णोकम्मक्खंधा तेसिं बिदियसमए आधाकम्मस्स आदी होदि । तदियसमयप्पहुडि अंतरं होदूण तदो सजोगिचरिमसमए पुव्वणिज्जिण्णक्खंधेसु बंधमागदेसु आधाकम्मस्स लद्धमंतरं । एवं गब्भादिअट्ठवस्सेहि [ति] समयाहियअट्ठअंतोमुहुत्तब्भहिएहि[1] ऊणियपुव्वकोडीहि आधा-कम्मस्स उक्कस्संतरं । आहाराणुवादेण आहारीणमोघभंगो । अणाहाराणं कम्मइयभंगो । एवमंतरं समत्तं ।

भावाणुवादेण दुविहो णिद्देसो ओघेण आदेसेण य । तत्थ ओघेण पओअकम्मस्स को भावो ? खओवसमियो भावो । समोदाणकम्म-आधाकम्माणं को भावो ? ओदइयो भावो । इरियावथकम्मस्स को भावो ? उवसमियो वा खइयो वा भावो । तवोकम्म-किरियाकम्माणं को भावो ? उवसमिओ वा खइओ वा खओवसमियो वा भावो । एवं मणुसतिण्णि-पंचिंदिय-पंचिंदियपज्जत्त-तस-तसपज्जत्त-पंचमण-पंचवचिजोगि-ओरालियकायजोगि-आभिणि-सुद-ओहि-मणपज्जवणाणि-संजद-चक्खु-अचक्खु-ओहिदंसणि-सुक्कलेस्सिय-भवसिद्धि-सण्णि-आहारीणं वत्तव्वं ।

वर्षका होनेपर अधःप्रवृत्तकरण और अपूर्वकरण करके अप्रमत्तभावके साथ संयमको प्राप्त हुआ, पुनः प्रमत्त हो गया । अनन्तर प्रमत्त और अप्रमत्त गुणस्थानके हजारों परावर्तन करके अपूर्वकरण, अनिवृत्तिकरण, सूक्ष्मसाम्पराय और क्षीणकषाय होकर सयोगी हो गया । तदनन्तर सयोगीके प्रथम समयमें जो औदारिकशरीरके नोकर्मस्कन्ध निर्जीर्ण हुए उनकी अपेक्षा दूसरे समयमें अधःकर्मकी आदि होती है । और तीसरे समयसे अन्तर होकर सयोगीके अन्तिम समयमें पूर्व निजीर्ण स्कन्धोंके बन्धको प्राप्त होनेपर अधःकर्मका अन्तरकाल उपलब्ध होता है । इस प्रकार अधःकर्मका उत्कृष्ट अन्तरकाल गर्भसे लेकर आठ वर्ष और तीन समय आठ अन्तर्मुहूर्त कम एक पूर्वकोटि होता है । आहारमार्गणाके अनुवादसे आहारकोंका भंग ओघके समान है । अनाहारकोंका भंग कार्मणकाययोगियोंके समान है । इस प्रकार अन्तरानुयोगद्वार समाप्त हुआ ।

भावानुयोगकी अपेक्षा निर्देश दो प्रकारका है—ओघ और आदेश । ओघसे प्रयोगकर्मका कौन भाव है ? क्षायोपशमिक भाव है । समवधानकर्म और अधःकर्मका कौन भाव है ? औदयिक भाव है । ईर्यापथकर्मका कौन भाव है ? औपशमिक भाव है या क्षायिक भाव है । तपःकर्म और क्रियाकर्मका कौन भाव है । औपशमिक भाव है, क्षायिकभाव है या क्षायोपशमिक भाव है । इसी प्रकार मनुष्यत्रिक, पंचेन्द्रिय, पंचेन्द्रिय पर्याप्त, त्रस, त्रसपर्याप्त, पांच मनोयोगी, पांच वचनयोगी । औदारिककाययोगी, आभिनिवोधिकज्ञानी, श्रुतज्ञानी, अवधिज्ञानी, मनःपर्ययज्ञानी, संयत, चक्षुदर्शनी, अचक्षुदर्शनी, अवधिदर्शनी, शुक्ललेश्यावाले, भव्यसिद्ध, संज्ञी और आहारक जीवोंके कहना चाहिये ।

१ काप्रतौ ' अंतोमुहुत्तव्वहियोहि ' इति पाठः ।

णिरयगईए णेरइएसु अप्पप्पणो पदाणमोघभंगो। एवं पढमाए पुढवीए । बिदियादि जाव सत्तमि त्ति एवं चेव। णवरि किरियाकम्मस्स खइओ[1] भावो णत्थि। तिरिक्खगदीए तिरिक्खेसु तिरिक्खाणं पंचिंदियतिरिक्खतिगस्स य अप्पप्पणो पदाणमोघभंगो । णवरि जोणिणीसु किरियाकम्मस्स खइयो भावो णत्थि। पंचिंदियतिरिक्खअपज्जत्ताणं पओअकम्म-समोदाणकम्म-आधाकम्माणमोघभंगो। एवं तसअपज्जत्त-सव्वएइंदिय-सव्वविगलिंदिय-पंचिंदिय-अपज्जत्त-पंचकाय- तिण्णिअण्णाण- मणुसअपज्जत्त-अभवसिद्धिय- सासणसम्माइट्ठि- मिच्छाइट्ठि[2]-असण्णि त्ति वत्तव्वं। देवगदीए देवेसु अप्पप्पणो पदाणमोघभंगो । सोधम्मीसाणप्पहुडि-जाव सव्वट्ठसिद्धिविमाणवासियदेवे त्ति ताव पढमपुढविभंगो। भवणवासिय-वाणवेंतर-जोदि-सियदेवाणं बिदियपुढविभंगो।

विशेषार्थ—प्रयोगकर्ममें तीनों योग लिये गये हैं जो क्षायोपशमिक होते हैं। इससे यहां प्रयोगकर्मका क्षायोपशमिक भाव कहा है। यद्यपि सयोगकेवलीके ज्ञानावरणादि कर्मोंका क्षयोपशम नहीं होता, परन्तु पूर्वप्रज्ञापन नयकी अपेक्षा योगको क्षायोपशमिक मानकर उसका एक क्षायोपशमिक भाव ही लिया गया है। समवधान कर्ममें ज्ञानावरणादि कर्मोंके बन्ध, उदय और सत्त्वके भेद विवक्षित हैं। यतः इनमें उदयकी प्रधानता है, इसलिये समवधानकर्मका औदयिक भाव कहा है। अधःकर्म औदारिक नामकर्मके उदयमें होता है, अतः इसका औदयिकपना स्पष्ट ही है। ईर्यापथकर्मका उपशमश्रेणिकी अपेक्षा औपशमिक भाव और क्षपकश्रेणिकी अपेक्षा क्षायिक भाव कहा है। तपःकर्ममें क्षायोपशमिक, औपशमिक और क्षायिक तीनों प्रकारका चारित्र सम्भव होनेसे तथा क्रियाकर्ममें तीनों प्रकारका सम्यक्त्व सम्भव होनेसे इन दोनोंका औपशमिक, क्षायिक और क्षायोपशमिक यह तीनों प्रकारका भाव कहा है। यहां और जितनी मार्गणायें गिनाई हैं उनमें सब कर्मोंके उक्त भाव संभव होनेसे इनका कथन ओघके समान कहा है।

नरकगतिमें नारकियोंमें अपने अपने पदोंका भंग ओघके समान है। इसी प्रकार पहली पृथिवीमें जानना चाहिये। दूसरीसे लेकर सातवीं पृथिवी तक इसी प्रकार जानना चाहिये। इतनी विशेषता है कि इनके क्रियाकर्मका क्षायिक भाव नहीं होता। तिर्यंचगतिमें तिर्यंचोंमें तिर्यंच और पंचेन्द्रिय तिर्यंचत्रिकके अपने अपने पदोंका भंग ओघके समान है। इतनी विशेषता है कि योनिनी तिर्यंचोंमें क्रियाकर्मका क्षायिक भाव नहीं होता। पंचेन्द्रिय तिर्यंच अपर्याप्तकोंके प्रयोगकर्म, समवधानकर्म और अधःकर्मका भंग ओघके समान है। इसी प्रकार त्रस अपर्याप्त, सब एकेन्द्रिय, सब विकलेन्द्रिय, पंचेन्द्रिय अपर्याप्त, पांच स्थावरकाय, तीन अज्ञानी, मनुष्य अपर्याप्त, अभव्य, सासादनसम्यग्दृष्टि, सब मिथ्यादृष्टि और असंज्ञी जीवोंके कहना चाहिये। देवगतिमें देवोंमें अपने अपने पदोंका भंग ओघके समान है। सौधर्म-ऐशान स्वर्गसे लेकर सर्वार्थ-सिद्धि विमान तक रहनेवाले देवोंमें पहली पृथिवीके समान कथन है। भवनवासी, वानव्यन्तर और ज्योतिषी देवोंके दूसरी पृथिवीके समान भंग है।

१ अ-आ-काप्रतिषु 'खओ' इति पाठः। २ प्रतिषु 'सव्वमिच्छाइट्ठि' इति पाठः।

जोगाणुवादेण ओरालियमिस्सकायजोगीसु पओअकम्म-समोदाणकम्म-आधाकम्माण-मोघभंगो। इरियावथकम्म-तवोकम्माणं खइयो भावो। किरियाकम्मस्स खइयो वा खओवसमियो वा भावो। वेउव्विय-वेउव्वियमिस्साणं सहस्सारभंगो। आहार-आहारमिस्सकायजोगीणं पओअकम्म-तवोकम्माणं खओवसमियो भावो। समोदाणकम्म-आधाकम्माणं ओदइओ भावो। किरियाकम्मस्स खइओ वा खओवसमिओ वा भावो। कम्मइयकायजोगीण-मोघभंगो। णवरि इरियावथ-तवोकम्माणं खइयो चेव भावो।

वेदाणुवादेण तिण्णिवेद-चत्तारिकसाय-सामाइय-छेदोवट्ठावणसुद्धिसंजमाणमोघभंगो। णवरि इरियावथकम्मं णत्थि। अवगदवेदाणं पओअकम्म-समोदाणकम्म-आधाकम्माणमोघ-भंगो। इरियावथ-तवोकम्माणं उवसमिओ वा खइयो वा भावो। एवमकसाय-जहाक्खाद-

योगमार्गणाके अनुवादसे औदारिकमिश्रकाययोगी जीवोंमें प्रयोगकर्म, समवधानकर्म और अधःकर्मका विचार ओघके समान है। ईर्यापथकर्म और तपःकर्मका क्षायिक भाव है। क्रियाकर्मका क्षायिक और क्षायोपशमिक भाव है। वैक्रियिककाययोगी और वैक्रियिकमिश्रकाययोगी जीवोंका विचार सहस्रारकल्पके समान है। आहारककाययोगी और आहारकमिश्रकाययोगी जीवोंके प्रयोगकर्म और तपःकर्मका क्षायोपशमिक भाव है। समवधानकर्म और अधःकर्मका औदयिक भाव है। क्रियाकर्मका क्षायिक और क्षायोपशमिक भाव है। कार्मणकाययोगी जीवोंका विचार ओघके समान हैं। इतनी विशेषता है कि इनके ईर्यापथकर्म और तपःकर्मका एक मात्र क्षायिक भाव है।

विशेषार्थ—औदारिकमिश्रकाययोगमें ईर्यापथकर्म और तपःकर्म केवलिसमुद्घातकी अपेक्षा घटित होता है, इसलिये इस योगमें इन दोनों कर्मोंका क्षायिक भाव कहा है। क्रियाकर्म चतुर्थ गुणस्थानसे होता है, इसलिये इस योगमें इस कर्मके क्षायिक और क्षायोपशमिक दोनों भाव बन जाते हैं। मात्र औपशमिक भाव नहीं घटित होता, क्योंकि, द्वितीयोपशम सम्यक्त्वके साथ मरा हुआ जीव मनुष्यों और तिर्यंचोंमें नहीं उत्पन्न होता। वैक्रियिककाययोग और वैक्रियिकमिश्रकाय-योगमें क्रियाकर्मके औपशमिक, क्षायिक और क्षायोपशमिक तीनों भाव बन जाते हैं। कारण यह है कि देवोंमें क्षायिक और क्षायोपशमिक सम्यग्दृष्टि जीव तो उत्पन्न होते ही हैं, साथ ही इनमें द्वितीयोपशमसम्यग्दृष्टि जीव भी मरकर उत्पन्न होते हैं। आहारककाययोग और आहारक-मिश्रकाययोग छठे गुणस्थानमें होता है। इसीसे यहां तपःकर्मका एक मात्र क्षायोपशमिक भाव कहा है। उपशमसम्यक्त्व और आहारककाययोग एक साथ नहीं होते। इसीसे इनके क्रियाकर्मके क्षायिक और क्षायोपशमिक दो भाव कहे हैं। कार्मण काययोगमें ईर्यापथकर्म और तपःकर्म केवलिसमुद्घातकी अपेक्षा घटित होता है। इसीसे इस योगमें उक्त दोनों कर्मोंका एक मात्र क्षायिक भाव कहा है। शेष कथन सुगम हैं।

वेदमार्गणाके अनुवादसे तीन वेदवालोंका तथा चार कषाय, सामायिक और छेदोपस्थापना-शुद्धिसंयमका कथन ओघके समान है। इतनी विशेषता है कि इन मार्गणाओंमें ईर्यापथकर्म नहीं है। अपगतवेदवालोंके प्रयोगकर्म, समवधानकर्म और अधःकर्मका कथन ओघके समान है। ईर्यापथकर्म और तपःकर्मका औपशमिक और क्षायिक भाव है। इसी प्रकार अकषायवाले

केवलणाणि-केवलदंसणि त्ति वत्तव्वं । णवरि केवलणाणि-केवलदंसणीसु इरियावथकम्म-तवोकम्माणं उवसमियो भावो णत्थि । परिहारसुद्धिसंजदाणं सामाइयभंगो । णवरि किरियाकम्मस्स उवसमियो भावो णत्थि । तवोकम्मस्स खओवसमियो भावो । सुहुमसांपराइयसुद्धिसंजदाणं अकसाइभंगो । णवरि इरियावथकम्मं णत्थि । संजदासंजद-असंजद-तिण्णिलेस्साणं तिरिक्खोघभंगो । तेउ-पम्मलेस्साणं परिहारसुद्धिसंजदभंगो । णवरि किरियाकम्मस्स उवसमिओ भावो अत्थि । खइयसम्माइट्ठीणमोघभंगो । णवरि किरियाकम्मस्स खइओ चेव भावो वत्तव्वो । वेदगसम्माइट्ठीसु पओअकम्म-तवोकम्माणं को भावो ? खओवसमिओ भावो । समोदाणकम्म-आधाकम्माणं ओदइओ भावो । उवसमसम्माइट्ठीसु पओअकम्म-समोदाणकम्म-आधाकम्माणमोघभंगो । इरियावथकम्मस्स उवसमिओ भावो । तवोकम्म-किरियाकम्माणं उवसमिओ भावो ? णवरि तवोकम्मस्स खओवसमियो वि । अणाहाराणं कम्मइयभंगो । एवं भावो समत्तो ।

अप्पाबहुअं तिविहं— दव्वट्ठदा पदेसट्ठदा दव्व-पदेसट्ठदा चेदि । दव्वट्ठदाए दुविहो णिद्देसो ओघेण आदेसेण य । तत्थ ओघेण सव्वत्थोवा इरियावथकम्मदव्वट्ठदा । तवोकम्मदव्वट्ठदा संखेज्जगुणा । को गुणगारो ? संखेज्जा समया । किरियाकम्मदव्वट्ठदा असंखेज्ज-

---

यथाख्यातसंयमवाले, केवलज्ञानी और केवलदर्शनी जीवोंके कहना चाहिये । इतनी विशेषता है कि केवलज्ञानी और केवलदर्शनी जीवोंके ईर्यापथकर्म और तपःकर्मका औपशमिक भाव नहीं है । परिहारविशुद्धिसंयत जीवोंके सामायिकसंयत जीवोंके समान भंग है । इतनी विशेषता है कि इनके क्रियाकर्मका औपशमिक भाव नहीं है । तपःकर्मका क्षायोपशमिक भाव है । सूक्ष्मसाम्परायिक-शुद्धिसंयत जीवोंके अकषायी जीवोंके समान भंग है । इतनी विशेषता है कि इनके ईर्यापथकर्म नहीं है । संयतासंयत, असंयत और तीन लेश्यावालोंके सामान्य तिर्यंचोंके समान भंग है । पीत और पद्म लेश्यावालोंके परिहारविशुद्धिसंयत जीवोंके समान भंग है । इतनी विशेषता है कि इनके क्रियाकर्मका औपशमिक भाव है । क्षायिकसम्यग्दृष्टियोंके ओघके समान भंग है । इतनी विशेषता है कि इनके क्रियाकर्मका एक मात्र क्षायिक भाव कहना चाहिये । वेदकसम्यग्दृष्टियोंके प्रयोगकर्म और तपःकर्मका कौन भाव है ? क्षायोपशमिक भाव है । समवधानकर्म और अधःकर्मका औदयिक भाव है । उपशमसम्यग्दृष्टियोंके प्रयोगकर्म, समवधानकर्म और अधःकर्मका कथन ओघके समान है । ईर्यापथकर्मका औपशमिक भाव है । तपःकर्म और क्रियाकर्मका औपशमिक भाव है । इतनी विशेषता है कि इनके तपःकर्मका क्षायोपशमिक भाव भी है । अनाहारककोंका कथन कार्मणकाययोगियोंके समान है । इस प्रकार भावानुगम समाप्त हुआ ।

अल्पबहुत्व तीन प्रकारका है—द्रव्यार्थता, प्रदेशार्थता और द्रव्य-प्रदेशार्थता । द्रव्यार्थताकी अपेक्षा निर्देश दो प्रकारका है—ओघ और आदेश । उनमेंसे ओघकी अपेक्षा ईर्यापथकर्मकी द्रव्यार्थता सबसे स्तोक है । इससे तपःकर्मकी द्रव्यार्थता संख्यातगुणी है । गुणकार क्या है ? संख्यात समय गुणकार है । क्रियाकर्मकी द्रव्यार्थता असंख्यातगुणी है । गुणकार क्या है ?

गुणा। को गुणगारो? पलिदोवमस्स असंखेज्जदिभागस्स संखेज्जदिभागो। आधाकम्मदव्व-ट्ठदा अणंतगुणा। को गुणगारो? अभवसिद्धिएहि अणंतगुणं[१]सिद्धाणमणंतभागमेत्तवग्गणाणम-संखेज्जदिभागो। पओअकम्मदव्वट्ठदा अणंतगुणा। को गुणगारो? संसारत्थसव्वजीवरासीए अणंतिमभागो। समोदाणकम्मदव्वट्ठदा विसेसाहिया। केत्तियमेत्तेण? अजोगिजीवमेत्तेण। एवं भवसिद्धियाणं वत्तव्वं। कायजोगि-ओरालियकायजोगि-अचक्खुदंसणीणमेवं चेव वत्तव्वं। णवरि आधाकम्मस्सुवरि पओअकम्म-समोदाणकम्माणि दो वि सरिसाणि अणंतगुणाणि।

आदेसेण गदियाणुवादेण णिरयगदीए णेरइएसु सव्वत्थोवा किरियाकम्मदव्वट्ठदा। पओअकम्म-समोदाणकम्माणं दव्वट्ठदाओ दो वि सरिसाओ असंखेज्जगुणाओ। एवं सत्तसु पुढवीसु। पंचिंदियतिरिक्खतिगस्स एवं चेव। णवरि पओअकम्म-समोदाणकम्माण दव्वट्ठ-दाए उवरि आधाकम्मस्स दव्वट्ठदा अणंतगुणा।

तिरिक्खगदीए तिरिक्खेसु सव्वत्थोवा किरियाकम्मदव्वट्ठदा। आधाकम्मदव्वट्ठदा अणंतगुणा। पओअकम्म-समोदाणकम्माणं दव्वट्ठदाओ अणंतगुणाओ। एवमसंजद-तिण्णि-लेस्साणं वत्तव्वं। पंचिंदियतिरिक्खअपज्जत्तएसु सव्वत्थोवाओ पओअकम्म-समोदाणकम्म-दव्वट्ठदाओ। आधाकम्मदव्वट्ठदा अणंतगुणा। एवं मणुसअपज्जत्त-सव्वविगलिंदिय-पंचिं-

---

पल्योपमके असंख्यातवें भागका संख्यातवां भाग गुणकार है। अधःकर्मकी द्रव्यार्थता अनन्तगुणी है। गुणकार क्या है? अभव्योंसे अनन्तगुणी और सिद्धोंके अनन्तवें भागप्रमाण वर्गणाओंके असंख्यातवें भागप्रमाण गुणकार है। प्रयोगकर्मकी द्रव्यार्थता अनन्तगुणी है। गुणकार क्या है? संसारमें स्थित सब जीवराशिके अनन्तवें भागप्रमाण गुणकार है। समवधानकर्मकी द्रव्यार्थता विशेष अधिक है। कितनी अधिक है? अयोगी जीवोंका जितना प्रमाण है उतनी अधिक है। इसी प्रकार भव्य जीवोंके कहना चाहिये। काययोगी, औदारिककाययोगी और अचक्षुदर्शनवाले जीवोंके भी इसी प्रकार कहना चाहिये। इतनी विशेषता है कि इनके अधःकर्मकी द्रव्यार्थतासे प्रयोगकर्म और समवधानकर्म दोनों ही समान होकर अनन्तगुणे हैं।

आदेशसे गतिमार्गणाके अनुवादसे नरकगतिमें नारकियोंमें क्रियाकर्मकी द्रव्यार्थता सबसे स्तोक हैं। इससे प्रयोगकर्म और समवधानकर्मकी द्रव्यार्थता दोनों ही समान होकर असंख्यातगुणी हैं। इसी प्रकार सातों पृथिवियोंमें जानना चाहिये। पंचेन्द्रिय तिर्यंचत्रिकके भी इसी प्रकार जानना चाहिये। इतनी विशेषता है कि इनके प्रयोकर्म और समवधानकर्मकी द्रव्यार्थतासे अधःकर्मकी द्रव्यार्थता अनन्तगुणी है।

तिर्यंचगतिमें तिर्यंचोंमें क्रियाकर्मकी द्रव्यार्थता सबसे स्तोक है। इससे अधःकर्मकी द्रव्यार्थता अनन्तगुणी है। इससे प्रयोगकर्म और समवधानकर्मकी द्रव्यार्थतायें अनन्तगुणी हैं। इसी प्रकार असंयत और तीन अशुभ लेश्यावाले जीवोंके कहना चाहिये।

पंचेन्द्रिय तिर्यंच अपर्याप्तकोंमें प्रयोगकर्म और समवधानकर्मकी द्रव्यार्थतायें सबसे स्तोक हैं। इससे अधःकर्मकी द्रव्यार्थता अनन्तगुणी है। इसी प्रकार मनुष्य अपर्याप्त, सब विकलेन्द्रिय,

---

१ अ-आ-काप्रतिषु 'अणंतगुणा', ताप्रतौ 'अणंतगुणो' इति पाठः।

दियअपज्जत्त-तसअपज्जत्त-पुढविकाइय- आउकाइय-तेउकाइय-वाउकाइय-बादरणिगोदपदिट्ठिद-बादरवणप्फदिपत्तेयसरीराणं तेसिं पज्जत्तापज्जत्ताणं सासणसम्माइट्ठि-सम्मामिच्छाइट्ठीणं च वत्तव्वं । मणुसगदीए मणुस्सेसु सव्वत्थोवा इरियावथकम्मदव्वट्टदा । तवोकम्मदव्वट्टदा संखेज्ज-गुणा । किरियाकम्मदव्वट्टदा संखेज्जगुणा । पओअकम्मदव्वट्टदा असंखेज्जगुणा । को गुण-गारो ? सेढीए[1] असंखेज्जदिभागस्स संखेज्जदिभागो । समोदाणकम्मदव्वट्टदा विसेसाहिया । केत्तियमेत्तेण ? अजोगिरासिमेत्तेण । आधाकम्मदव्वट्टदा अणंतगुणा । एवं पंचिंदिय-पंचिं-दियपज्जत्ताणं वत्तव्वं । णवरि तवोकम्मदव्वट्टदाए उवरि किरियाकम्मदव्वट्टदा असंखेज्जगुणा । एवं पंचमण-पंचवचिजोगीणं पि वत्तव्वं । णवरि किरियाकम्मदव्वट्टदाए उवरि पओअकम्म-समोदाणकम्मदव्वट्टदाओ दो वि सरिसाओ असंखेज्जगुणाओ । मणुसपज्जत्त-मणुसिणीसु मणुस्सोघो । णवरि किरियाकम्मदव्वट्टदाए उवरि पओअकम्म-समोदाणकम्मदव्वट्टदाओ दो वि सरिसाओ संखेज्जगुणाओ[2] ।

देवगदीए देवेसु सव्वपदाणं णारगभंगो । एवं भवणवासियप्पहुडि जाव सहस्सारे त्ति वत्तव्वं । आणदप्पहुडि जाव उवरिम-उवरिमगेवज्जे त्ति ताव सव्वत्थोवा किरियाकम्मदव्व-

पंचेन्द्रिय अपर्याप्त, त्रस अपर्याप्त जीवोंके तथा पृथिवीकायिक, जलकायिक, अग्निकायिक, वायु-कायिक, बादर निगोदप्रतिष्ठित और बादर वनस्पति प्रत्येकशरीर जीवोंके, इनके पर्याप्त और अपर्याप्त जीवोंके तथा सासादनसम्यग्दृष्टि और सम्यग्मिथ्यादृष्टि जीवोंके भी कहना चाहिये ।

मनुष्यगतिमें मनुष्योंमें ईर्यापथकर्मकी द्रव्यार्थता सबसे स्तोक है। इससे तपःकर्मकी द्रव्यार्थता संख्यातगुणी है । इससे क्रियाकर्मकी द्रव्यार्थता संख्यातगुणी है । इससे प्रयोगकर्मकी द्रव्यार्थता असंख्यातगुणी हैं। गुणकार क्या है ? जगश्रेणिके असंख्यातवें भागका संख्यातवां भाग गुणकार है । इससे समवधानकर्मकी द्रव्यार्थता विशेष अधिक है। कितनी अधिक है ? अयोगी जीवोंकी राशिमात्रसे अधिक है ? इससे अधःकर्मकी द्रव्यार्थता अनन्तगुणी है । इसी प्रकार पंचेन्द्रिय और पंचेन्द्रिय पर्याप्त जीवोंके कहना चाहिये । इतनी विशेषता है कि इनके तपःकर्मकी द्रव्यार्थतासे क्रियाकर्मकी द्रव्यार्थता असंख्यातगुणी है । इसी प्रकार पांच मनोयोगी और पांच वचनयोगी जीवोंके भी कहना चाहिये । इतनी विशेषता है कि इनके क्रियाकर्मकी द्रव्यार्थतासे प्रयोगकर्म और समवधानकर्मकी द्रव्यार्थतायें दोनों ही समान होकर असंख्यातगुणी हैं । मनुष्य पर्याप्त और मनुष्यिनी जीवोंके सामान्य मनुष्योंके समान जानना चाहिये । इतनी विशेषता है कि इनके क्रियाकर्मकी द्रव्यार्थतासे प्रयोगकर्म और समवधानकर्मकी द्रव्यार्थतायें दोनों ही समान होकर संख्यातगुणी हैं ।

देवगतिमें देवोंमें सब पदोंका कथन नारकियोंके समान है । इसी प्रकार भवनवासियोंसे लेकर सहस्रार कल्प तकके देवोंके कहना चाहिये । आनत कल्पसे लेकर उपरिम-उपरिम ग्रैवेयक तकके देवोंमें क्रियाकर्मकी द्रव्यार्थता सबसे स्तोक है। इससे प्रयोगकर्म और समवधानकर्मकी

१ ताप्रतौ 'सेढीए' इत्येतत्पदं नास्ति। २ आप्रतौ 'पओअकम्मसमोदाणदव्वट्ठदा संखे०', का-ताप्रत्योः 'पओअकम्मदव्वट्ठदा संखेज्जगुणा' इति पाठः ।

ट्ठदा। पओअकम्म-समोदाणकम्मदव्वट्ठदाओ दो वि सरिसाओ विसेसाहियाओ। केत्तिय-मेत्तो विसेसो? मिच्छाइट्ठि-सासणसम्माइट्ठि-सम्मामिच्छाइट्ठिमेत्तो विसेसो। उवरि णत्थि अप्पाबहुगं। कुदो? तिण्णं पि पदाणं तत्थ सरिसत्तुवलंभादो।

इंदियाणुवादेण एइंदिएसु सव्वत्थोवा आधाकम्मदव्वट्ठदा। पओअकम्म-समोदाण-कम्मदव्वट्ठदाओ दो वि सरिसाओ अणंतगुणाओ। एवं सव्वएइंदिय-सव्ववणप्फदि-दोअण्णाणि-मिच्छाइट्ठि-असण्णि त्ति वत्तव्वं। ओरालियमिस्सकायजोगीसु सव्वत्थोवा इरियावथकम्म-तवोकम्माणं दव्वट्ठदाओ। किरियाकम्मदव्वट्ठदा संखेज्जगुणा। सेसं काय-जोगिभंगो। वेउव्वियकायजोगीसु सव्वत्थोवा किरियाकम्मदव्वट्ठदा। पओअकम्म-समो-दाणकम्मदव्वट्ठदाओ दो वि सरिसाओ असंखेज्जगुणाओ। एवं वेउव्वियमिस्सकायजोगीसु। कम्मइयकायजोगीणमोरालियमिस्सभंगो। णवरि इरियावथ-तवोकम्मदव्वट्ठदाए उवरि किरिया-कम्मदव्वट्ठदा असंखेज्जगुणा। एवं अणाहारीणं पि वत्तव्वं। णवरि पओअकम्मदव्वट्ठदाए उवरि समोदाणकम्मदव्वट्ठदा विसेसाहिया अजोगिरासिमेत्तेण।

द्रव्यार्थतायें दोनों ही समान होकर विशेषाधिक हैं। कितनी अधिक हैं। यहां मिथ्यादृष्टि, सासादन-सम्यग्दृष्टि और सम्यग्मिथ्यादृष्टि जीवोंका जितना प्रमाण है उतनी अधिक हैं। इससे आगे वहां अल्पबहुत्व नहीं है, क्योंकि तीनों ही पदोंकी संख्या वहां समान पाई जाती है।

इन्द्रियमार्गणाके अनुवादसे एकेन्द्रियोंमें अधःकर्मकी द्रव्यार्थता सबसे स्तोक है। इससे प्रयोगकर्म और समवधानकर्मकी द्रव्यार्थतायें दोनों ही समान होकर अनन्तगुणी हैं। इसी प्रकार सब एकेन्द्रिय, सब वनस्पतिकायिक, दो अज्ञानी, मिथ्यादृष्टि और असंज्ञी जीवोंकेक हना चाहिये।

औदारिकमिश्रकाययोगियोंमें ईर्यापथकर्म और तपःकर्मकी द्रव्यार्थतायें सबसे स्तोक हैं। इनसे क्रियाकर्मकी द्रव्यार्थता संख्यातगुणी है। शेष कथन काययोगियोंके समान है।

विशेषार्थ— जब सयोगकेवली केवलिसमुद्घात करते समय औदारिकमिश्रकाययोगको प्राप्त होते हैं तभी औदारिकमिश्रकायमें ईर्यापथकर्म और तपःकर्म सम्भव हैं, किन्तु क्रियाकर्म अविरतसम्यग्दृष्टियोंके औदारिकमिश्रकाययोगके रहते हुए भी होता है। यही कारण है कि यहां ईर्यापथकर्म और तपःकर्मकी द्रव्यार्थतासे क्रियाकर्मकी द्रव्यार्थता संख्यातगुणी कही है।

वैक्रियिककाययोगियोंमें क्रियाकर्मकी द्रव्यार्थता सबसे स्तोक है। इससे प्रयोगकर्म और समवधानकर्मकी द्रव्यार्थतायें दोनों ही समान होकर असंख्यातगुणी हैं। इसी प्रकार वैक्रियिक-मिश्रकाययोगियोंके कहना चाहिये। कार्मणकाययोगियोंके औदारिकमिश्रकाययोगियोंके समान भंग है। इतनी विशेषता है कि इनके ईर्यापथकर्म और तपःकर्मकी द्रव्यार्थतासे क्रियाकर्मकी द्रव्यार्थता असंख्यातगुणी है। इसी प्रकार अनाहारक जीवोंके भी कहना चाहिये। इतनी विशेषता है कि इनके प्रयोगकर्मकी द्रव्यार्थतासे समवधानकर्मकी द्रव्यार्थता अयोगी जीवोंकी जितनी संख्या है उतनी अधिक है।

विशेषार्थ— कार्मणकाययोग चौदहवें गुणस्थानमें नहीं होता, किन्तु अनाहारक अवस्था होती है। इसीसे अनाहारकोंके प्रयोगकर्मवालोंकी संख्यासे समवधानकर्मवालोंकी संख्या विशेष

१ अ-काप्रत्योः 'परिसमत्तुव-', ताप्रतौ 'परिसत्तुव-', इति पाठः।

वेदाणुवादेण इत्थि-पुरिसवेदेसु सव्वत्थोवा तवोकम्मदव्वट्ठदा । किरियाकम्मदव्वट्ठदा असंखेज्जगुणा । पओअकम्म-समोदाणकम्मदव्वट्ठदाओ दो वि सरिसाओ असंखेज्जगुणाओ । आधाकम्मदव्वट्ठदा अणंतगुणा । एवं णवुंसयवेदेसु वि वत्तव्वं । णवरि आधाकम्मस्सुवरि पओअकम्म-समोदाणकम्माणं दव्वट्ठदाओ दो वि सरिसाओ अणंतगुणाओ । अवगदवेदेसु सव्वत्थोवा इरियावथकम्मदव्वट्ठदा । पओअकम्मदव्वट्ठदा विसेसाहिया । समोदाणकम्म[1]-तवोकम्मदव्वट्ठदाओ दो वि सरिसरिसाओ विसेसाहियाओ । केत्तियमेत्तेण ? अजोगिरासिमेत्तेण । आधाकम्मदव्वट्ठदा अणंतगुणा ।

कसायाणुवादेण चदुण्णं कसायाणं[2] सव्वपदाणं णवुंसयवेदभंगो । अकसाएसु सव्वत्थोवा इरियावहकम्म-पओअकम्मदव्वट्ठदाओ । समोदाणकम्म-तवोकम्माणं दव्वट्ठदाओ दो वि सरिसाओ विसेसाहियाओ । आधाकम्मदव्वट्ठदा अणंतगुणा । एवं केवलणाणि-केवलदंसणि-जहाक्खादविहारसुद्धिसंजदे त्ति वत्तव्वं । णाणाणुवादेण विभंगणाणीणं पंचिंदियतिरिक्खअपज्जत्तभंगो । आभिणि-सुद-ओहिणाणीसु सव्वत्थोवा इरियावहकम्मदव्वट्ठदा ।

अधिक कही हैं । शेष कथन सुगम है ।

वेदमार्गणाके अनुवादसे स्त्रीवेदवाले और पुरुषवेदवाले जीवोंमें तपःकर्मकी द्रव्यार्थता सबसे स्तोक हैं । इससे क्रियाकर्मकी द्रव्यार्थता असंख्यातगुणी है । इससे प्रयोगकर्म और समवधान कर्मकी द्रव्यार्थतायें दोनों ही समान होकर असंख्यातगुणी हैं । इनसे अधःकर्मकी द्रव्यार्थता अनन्तगुणी हैं । इसी प्रकार नपुंसकवेदवालोंके भी कहना चाहिये । इतनी विशेषता है कि इनके अधःकर्मकी द्रव्यार्थतासे प्रयोगकर्म और समवधानकर्मकी द्रव्यार्थतायें दोनों ही समान होकर अनन्तगुणी हैं । अपगतवेदवालोंमें ईर्यापथकर्मकी द्रव्यार्थता सबसे स्तोक है । इससे प्रयोगकर्मकी द्रव्यार्थता विशेष अधिक हैं । [कितनी अधिक है ? अपगतवेदी अनिवृत्तिकरण और सूक्ष्मसाम्पराय जीवोंकी जितनी संख्या है उतनी अधिक है ।] इससे समवधानकर्म और तपःकर्मकी द्रव्यार्थतायें दोनों ही समान होकर विशेष अधिक हैं ? कितनी अधिक हैं ? अयोगकेवलियोंकी जितनी संख्या है उतनी अधिक है । इससे अधःकर्मकी द्रव्यार्थता अनन्तगुणी है ।

कषायमार्गणाके अनुवादसे चारों कषायवालोंके सब पदोंका कथन नपुंसकवेदवालोंके समान है । कषायरहित जीवोंमें ईर्यापथकर्म और प्रयोगकर्मकी द्रव्यार्थता सबसे स्तोक है । इससे समवधानकर्म और तपःकर्मकी द्रव्यार्थतायें दोनों ही समान होकर विशेष अधिक हैं । इनसे अधःकर्मकी द्रव्यार्थता अनन्तगुणी हैं । इसी प्रकार केवलज्ञानी, केवलदर्शनी और यथाख्यातविहारशुद्धिसंयतोंके कहना चाहिये । ज्ञानमार्गणाके अनुवादसे विभंगज्ञानियोंके पंचेन्द्रिय तिर्यंच अपर्याप्तकोंके समान भंग है । आभिनिबोधिकज्ञानी, श्रुतज्ञानी और अवधिज्ञानी जीवोंमें ईर्यापथकर्मकी द्रव्यार्थता

१ अ-आ-का-प्रतिषु ' अवगदवेदेसु सव्वत्थोवा इरियावथकम्मदव्वट्ठदा विसेसाहिया समोदाणकम्म-' ताप्रतौ ' अवगदवेदेसु सव्वत्थोवा इरियावथकम्म- [पओअकम्म-] दव्वट्ठदाओ । [दो वि सरिसाओ अणंतगुणाओ । अवगदवेदेसु सव्वत्थोवा इरियावथकम्मदव्वट्ठदा विसेसाहिया] । समोदाणकम्म-' इति पाठः ।
२ अ-आ-काप्रतिषु ' कम्माणं ', ताप्रतौ ' कम्माणं (कसायाणं)' इति पाठः ।

तवोकम्मदव्वट्ठदा संखेज्जगुणा। किरियाकम्मदव्वट्ठदा असंखेज्जगुणा। पओअकम्म-समोदाण-कम्मदव्वट्ठदाओ दो वि सरिसाओ विसेसाहियाओ। केत्तियमेत्तेण? इरियावथकम्म-दव्वट्ठदामेत्तेण अपुव्व-अणियट्टि-सुहुमजीवमेत्तेण च। आधाकम्मदव्वट्ठदा अणंतगुणा। एवमोहिदंसणीणं पि वत्तव्वं। सम्माइट्ठि-खइयसम्माइट्ठीणं च एवं चेव वत्तव्वं[1]। णवरि पओअकम्मदव्वट्ठदाए उवरि समोदाणकम्मदव्वट्ठदा विसेसाहिया। मणपज्जवणाणीसु सव्वत्थोवा इरियावथकम्मदव्वट्ठदा। किरियाकम्मदव्वट्ठदा संखेज्जगुणा। पओअकम्म-समोदाणकम्म-तवोकम्मदव्वट्ठदाओ तिण्णि वि सरिसाओ विसेसाहियाओ। आधाकम्म-दव्वट्ठदा अणंतगुणा।

संजमाणुवादेण संजदेसु सव्वत्थोवा इरियावथकम्मदव्वट्ठदा। किरियाकम्मदव्वट्ठदा संखेज्जगुणा। पओअकम्मदव्वट्ठदा विसेसाहिया। केत्तियमेत्तेण। इरियावहकम्मदव्वट्ठदामेत्तेण -अपुव्व-अणियट्टि-सुहुमेहि य। समोदाणकम्म-तवोकम्मदव्वट्ठदाओ दो वि सरिसाओ विसेसाहियाओ। केत्तियमेत्तेण? अजोगिजीवमेत्तेण। आधाकम्मदव्वट्ठदा अणंतगुणा। सामाइय-छेदोवट्ठाणवणसुद्धिसंजदेसु सव्वत्थोवा किरियाकम्मदव्वट्ठदा। पओअकम्म-समोदाणकम्म-तवोकम्मदव्वट्ठदाओ तिण्णि वि सरिसाओ विसेसाहियाओ। केत्तियमेत्तेण?

सबसे स्तोक हैं। इससे तपःकर्मकी द्रव्यार्थता संख्यातगुणी है। इससे क्रियाकर्मकी द्रव्यार्थता असंख्यातगुणी है। इससे प्रयोगकर्म और समवधानकर्मकी द्रव्यार्थतायें दोनों ही समान होकर विशेष अधिक हैं। कितनी अधिक हैं? जितनी ईर्यापथकर्मकी द्रव्यार्थता है और जितनी अपूर्वकरण, अनिवृत्तिकरण और सूक्ष्मसाम्पराय जीवोंकी संख्या हैं उतनी अधिक हैं। इनसे अधःकर्मकी द्रव्यार्थता अनन्तगुणी है। इसी प्रकार अवधिदर्शनवाले जीवोंके भी कहना चाहिये। सम्यग्दृष्टि और क्षायिकसम्यग्दृष्टि जीवोंके भी इसी प्रकार कहना चाहिये। इतनी विशेषता है कि इनके प्रयोगकर्मकी द्रव्यार्थतासे समाधानकर्मकी द्रव्यार्थता विशेष अधिक है। मनःपर्ययज्ञानियोंमें ईर्यापथकर्मकी द्रव्यार्थता सबसे स्तोक है। इससे क्रियाकर्मकी द्रव्यार्थता संख्यातगुणी है। इससे प्रयोगकर्म, समवधानकर्म और तपःकर्मकी द्रव्यार्थतायें तीनों ही समान होकर विशेष अधिक हैं। इनसे अधःकर्मकी द्रव्यार्थता अनन्तगुणी है।

संयममार्गणाके अनुवादसे संयतोंमें ईर्यापथकर्मकी द्रव्यार्थता सबसे स्तोक है। इससे क्रियाकर्मकी द्रव्यार्थता संख्यातगुणी है। इससे प्रयोगकर्मकी द्रव्यार्थता विशेष अधिक है। कितनी अधिक है? जितनी ईर्यापथकर्मकी द्रव्यार्थता है और जितनी अपूर्वकरण, अनिवृत्तिकरण और सूक्ष्मसाम्परायकी संख्या हैं उतनी अधिक है। इससे समवधानकर्म और तपःकर्मकी द्रव्यार्थतायें दोनों ही समान होकर विशेष अधिक हैं। कितनी अधिक हैं? अयोगिकेवलियोंकी जितनी संख्या है उतनी अधिक हैं। इनसे अधःकर्मकी द्रव्यार्थता अनन्तगुणी है। सामायिकसंयत और छेदोपस्थापनाशुद्धिसंयत जीवोंमें क्रियाकर्मकी द्रव्यार्थता सबसे स्तोक है। इससे प्रयोगकर्म, समवधानकर्म और तपःकर्मकी द्रव्यार्थतायें तीनों ही समान होकर विशेष अधिक हैं। कितनी

---

१ अप्रतौ 'घेत्तव्वं' इति पाठः।

अपुव्व-अणियट्टिमेत्तेण। आधाकम्मदव्वट्ठदा अणंतगुणा। सुहुमसांपरायसुद्धिसंजदेसु पओअ-कम्म-समोदाणकम्म-तवोकम्मदव्वट्ठदाओ तिण्णि वि सरिसाओ थोवाओ। आधाकम्मदव्वट्ठदा अणंतगुणा। एवं परिहारसुद्धिसंजदाणं। णवरि किरियाकम्मं पि अत्थि। संजदासंजदेसु सव्वत्थोवाओ पओअकम्म-समोदाणकम्म-किरियाकम्मदव्वट्ठदाओ। आधाकम्मदव्वट्ठदा अणंतगुणा।

दंसणाणुवादेण चक्खुदंसणीसु सव्वत्थोवा इरियावथकम्मदव्वट्ठदा। तवोकम्मदव्वट्ठदा संखेज्जगुणा। किरियाकम्मदव्वट्ठदा असंखेज्जगुणा। पओअकम्म-समोदाणकम्मदव्वट्ठदाओ असंखेज्जगुणाओ। आधाकम्मदव्वट्ठदा अणंतगुणा। लेस्साणुवादेण तेउ-पम्मलेस्सिएसु सव्वत्थोवा तवोकम्मदव्वट्ठदा। किरियाकम्मदव्वट्ठदा असंखेज्जगुणा। पओअकम्म-समोदाणकम्मदव्वट्ठदाओ दो वि सारिसाओ असंखेज्जगुणाओ। आधाकम्मदव्वट्ठदा अणंतगुणा। सुक्कलेस्साए सव्वत्थोवा इरियावथकम्मदव्वट्ठदा। तवोकम्मदव्वट्ठदा संखेज्जगुणा। किरियाकम्मदव्वट्ठदा असंखेज्जगुणा। पओअकम्म-समोदाणकम्मदव्वट्ठदाओ दो वि सरिसाओ विसेसाहियाओ। आधाकम्मदव्वट्ठदा अणंतगुणा। भवियाणुवादेण अभवसिद्धिएसु सव्वत्थोवा पओअकम्म-समोदाणकम्मदव्वट्ठदाओ। आधाकम्मदव्वट्ठदा अणंतगुणा।

सम्मत्ताणुवादेण वेदगसम्माइट्ठीसु सव्वत्थोवा तवोकम्मदव्वट्ठदा। पओअकम्म-

---

अधिक हैं ? जितनी अपूर्वकरण और अनिवृत्तिकरणकी संख्या हैं उतनी अधिक हैं। इनसे अधःकर्मकी द्रव्यार्थता अनन्तगुणी है। सूक्ष्मसाम्परायिकशुद्धिसंयत जीवोंमें प्रयोगकर्म, समवधानकर्म और तपःकर्मकी द्रव्यार्थतायें तीनों ही समान होकर सबसे स्तोक हैं। इनसे अधःकर्मकी द्रव्यार्थता अनन्तगुणी है। इसी प्रकार परिहारशुद्धिसंयतोंके जानना चाहिये। इतनी विशेषता है कि इनके क्रियाकर्म भी है। संयतासंयतोंमें प्रयोगकर्म, समवधानकर्म और क्रियाकर्मकी द्रव्यार्थतायें सबसे स्तोक हैं। इनसे अधःकर्मकी द्रव्यार्थता अनन्तगुणी है।

दर्शनमार्गणाके अनुवादसे चक्षुदर्शनवालोंके ईर्यापथकर्मकी द्रव्यार्थता सबसे स्तोक है। इससे तपःकर्मकी द्रव्यार्थता संख्यातगुणी है। इससे क्रियाकर्मकी द्रव्यार्थता असंख्यातगुणी है। इससे प्रयोगकर्म और समवधानकर्मकी द्रव्यार्थता असंख्यातगुणी है। इससे अधःकर्मकी द्रव्यार्थता अनन्तगुणी है। लेश्यामार्गणाके अनुवादसे पीत और पद्म लेश्यावाले जीवोंमें तपःकर्मकी द्रव्यार्थता सबसे स्तोक है। इससे क्रियाकर्मकी द्रव्यार्थता असंख्यातगुणी है। इससे प्रयोगकर्म और समवधानकर्मकी द्रव्यार्थतायें दोनों ही समान होकर असंख्यातगुणी हैं। इनसे अधःकर्मकी द्रव्यार्थता अनन्तगुणी है। शुक्ललेश्यामें ईर्यापथकर्मकी द्रव्यार्थता सबसे स्तोक है। इससे तपःकर्मकी द्रव्यार्थता संख्यातगुणी है। इससे क्रियाकर्मकी द्रव्यार्थता असंख्यातगुणी है। इससे प्रयोगकर्म और समवधानकर्मकी द्रव्यार्थतायें दोनों ही समान होकर विशेष अधिक हैं। इनसे अधःकर्मकी द्रव्यार्थता अनन्तगुणी है। भव्यमार्गणाके अनुवादसे अभव्यसिद्धिक जीवोंमें प्रयोगकर्म और समवधानकर्मकी द्रव्यार्थतायें सबसे स्तोक हैं। इनसे अधःकर्मकी द्रव्यार्थता अनन्तगुणी है।

सम्यक्त्वमार्गणाके अनुवादसे वेदकसम्यग्दृष्टि जीवोंमें तपःकर्मकी द्रव्यार्थता सबसे स्तोक

समोदाणकम्म-किरियाकम्मदव्वट्ठदाओ तिण्णि वि सरिसाओ असंखेज्जगुणाओ । आधाकम्मदव्वट्ठदा अणंतगुणा । उवसमसम्माइट्ठीसु सव्वत्थोवा इरियावहकम्मदव्वट्ठदा । तवोकम्मदव्वट्ठदा संखेज्जगुणा । किरियाकम्मदव्वट्ठदा असंखेज्जगुणा[1] । पओअकम्म-समोदाणकम्मदव्वट्ठदाओ दो वि सरिसाओ विसेसाहियाओ । आधाकम्मदव्वट्ठदा अणंतगुणा । सण्णियाणुवादेण सण्णीणं मणजोगिभंगो[2] । णेव सण्णी णेव असण्णीसु सव्वत्थोवा पओअकम्म-इरियावहकम्मदव्वट्ठदाओ । तवोकम्म[3]-समोदाणकम्मदव्वट्ठदाओ विसेसाहियाओ । आधाकम्मदव्वट्ठदा अणंतगुणा । आहाराणुवादेण आहारएसु सव्वत्थोवा इरियावहकम्मदव्वट्ठदा । तवोकम्मदव्वट्ठदा संखेज्जगुणा । किरियाकम्मदव्वट्ठदा असंखेज्जगुणा । आधाकम्मदव्वट्ठदा अणंतगुणा । पओअकम्म-समोदाणकम्मदव्वट्ठदाओ दो वि सरिसाओ अणंतगुणाओ । एवं दव्वट्ठदप्पाबहुअं समत्तं ।

पदेसट्ठदप्पाबहुगाणुगमेण दुविहो णिद्देसो ओघेण आदेसेण य । ओघेण सव्वत्थोवा तवोकम्मपदेसट्ठदा । किरियाकम्मपदेसट्ठदा असंखेज्जगुणा । को गुणगारो ? पलिदोवमस्स-असंखेज्जदिभागस्स संखेज्जदिभागो । आधाकम्मपदेसट्ठदा अणंतगुणा । को गुणगारो ? अभवसिद्धिएहि अणंतगुणो सिद्धाणमणंतिमभागो । इरियावहकम्मपदेसट्ठदा अणंतगुणा । पओअ-

है । इससे प्रयोगकर्म, समवधानकर्म और क्रियाकर्मकी द्रव्यार्थतायें तीनों ही समान होकर असंख्यातगुणी हैं । इनसे अधःकर्मकी द्रव्यर्थता अनन्तगुणी है । उपशमसम्यग्दृष्टियोंमें ईर्यापथकर्मकी द्रव्यार्थता सबसे स्तोक है । इससे तपःकर्मकी द्रव्यार्थता संख्यातगुणी है । इससे क्रियाकर्मकी द्रव्यार्थता असंख्यातगुणी है । इससे प्रयोगकर्म और समवधानकर्मकी द्रव्यार्थतायें दोनों ही समान होकर विशेष अधिक हैं । इनसे अधःकर्मकी द्रव्यार्थता अनन्तगुणी है । संज्ञीमार्गणाके अनुवादसे संज्ञी जीवोंका कथन मनोयोगियोंके समान है । नैव संज्ञी नैव असंज्ञी जीवोंमें प्रयोगकर्म और ईर्यापथकर्मकी द्रव्यार्थता सबसे स्तोक है । इससे तपःकर्म और समवधानकर्मकी द्रव्यार्थतायें विशेष अधिक हैं । इनसे अधःकर्मकी द्रव्यार्थता अनन्तगुणी है । आहारमार्गणाके अनुवादसे आहारकोंमें ईर्यापथकर्मकी द्रव्यार्थता सबसे स्तोक है । इससे तपःकर्मकी द्रव्यार्थता संख्यातगुणी है । इससे क्रियाकर्मकी द्रव्यार्थता असंख्यातगुणी है । इससे अधःकर्मकी द्रव्यार्थता अनन्तगुणी है । इससे प्रयोगकर्म और समवधानकर्मकी द्रव्यार्थतायें दोनों ही समान होकर अनन्तगुणी हैं । इस प्रकार द्रव्यार्थताअल्पबहुत्व समाप्त हुआ ।

प्रदेशार्थताअल्पबहुत्वानुगमकी अपेक्षा निर्देश दो प्रकारका है— ओघ और आदेश । ओघसे तपःकर्मकी प्रदेशार्थता सबसे स्तोक है । इससे क्रियाकर्मकी प्रदेशार्थता असंख्यातगुणी है । गुणकार क्या है ? पल्योपमके असंख्यातवें भागका संख्यातवां भाग गुणकार है । इससे अधःकर्मकी प्रदेशार्थता अनन्तगुणी है । गुणकार क्या है ? अभव्योंसे अनन्तगुणा और सिद्धोंका अनन्तवां भाग गुणकार है । इससे ईर्यापथकर्मकी प्रदेशार्थता अनन्तगुणी है । इससे प्रयोगकर्मकी

१ आ-का-ताप्रतिषु 'संखेज्जगुणा' इति पाठः । २ आ-का-ताप्रतिषु 'सण्णीणमजोगिभंगो' इति पाठः । ३ काप्रतौ '-इरियावहकम्मदव्वट्ठदा संखेज्जगुणा तवोकम्म-' इति पाठः ।

कम्मपदेसट्ठदा अणंतगुणा । समोदाणकम्मपदेसट्ठदा अणंतगुणा । एवं कायजोगि-ओरालिय-कायजोगि-ओरालियमिस्सकायजोगि-कम्मइयकायजोगि-अचक्खुदंसणि-भवसिद्धिय-आहारि-अणाहारीसु वत्तव्वं । णवरि ओरालियमिस्सकायजोगीसु किरियाकम्मपदेसट्ठदा संखेज्जगुणा ।

आदेसेण गदियाणुवादेण णिरयगदीए णेरइएसु सव्वत्थोवा किरियाकम्मपदेसट्ठदा । पओअकम्मपदेसट्ठदा असंखेज्जगुणा । को गुणगारो ? पदरस्स असंखेज्जदिभागो । समोदाण-कम्मपदेसट्ठदा अणंतगुणा । को गुणगारो ? अभवसिद्धिएहि अणंतगुणो सिद्धाणमणंतिम-भागो । एवं सत्तसु पुढवीसु वत्तव्वं । देवा जाव सहस्सारे त्ति, वेउव्विय-वेउव्वियमिस्स-कायजोगीसु एवं चेव वत्तव्वं । आणदादि जाव उवरिमगेवज्जे त्ति ताव सव्वत्थोवा किरिया-कम्मपदेसट्ठदा । पओअकम्मपदेसट्ठदा विसेसाहिया । केत्तियमेत्तेण ? मिच्छाइट्ठि-सासण-सम्माइट्ठि-सम्मामिच्छाइट्ठिजीवपदेसमेत्तेण । समोदाणकम्मपदेसट्ठदा अणंतगुणा । को गुण-गारो ? अभवसिद्धिएहि अणंतगुणो सिद्धाणमणंतिमभागो । अणुद्दिसादि जाव सव्वट्ठसिद्धि त्ति सव्वत्थोवा किरियाकम्म-पओअकम्मपदेसट्ठदाओ । समोदाणकम्मपदेसट्ठदा अणंतगुणा ।

तिरिक्खगदीए तिरिक्खेसु सव्वत्थोवा किरियाकम्मपदेसट्ठदा । आधाकम्मपदेसट्ठदा

प्रदेशार्थता अनन्तगुणी है। इससे समवधानकर्मकी प्रदेशार्थता अनन्तगुणी है। इसी प्रकार काययोगी, औदारिककाययोगी, औदारिकमिश्रकाययोगी, कार्मणकाययोगी, अचक्षुदर्शनी, भव्य, आहारी और अनाहारी जीवोंके कहना चाहिये। इतनी विशेषता है कि औदारिकमिश्रकाययोगियों-में क्रियाकर्मकी प्रदेशार्थता संख्यातगुणी है।

विशेषार्थ—यहां प्रदेशार्थताअल्पबहुत्वमें तपःकर्म, क्रियाकर्म और प्रयोगकर्ममें जीवोंके प्रदेश परिगणित किये गये हैं; अधःकर्ममें औदारिक वर्गणाओंके प्रदेश परिगणित किये गये हैं, और ईर्यापथकर्म तथा समवधानकर्ममें कर्मपरमाणु परिगणित किये गये हैं।

आदेशसे गतिमार्गणाके अनुवादसे नरकगतिमें नारकियोंमें क्रियाकर्मकी प्रदेशार्थता सबसे स्तोक है। इससे प्रयोगकर्मकी प्रदेशार्थता असंख्यातगुणी है। गुणकार क्या है ? जगप्रतरका असंख्यातवां भाग गुणकार है। इससे समवधानकर्मकी प्रदेशार्थता अनन्तगुणी है। गुणकार क्या है ? अभव्योंसे अनन्तगुणा और सिद्धोंके अनन्तवें भागप्रमाण गुणकार है। इसी प्रकार सातों पृथिवियोंमें कहना चाहिये। सहस्रार कल्प तकके देवोंमें तथा वैक्रियिककाययोगी और वैक्रियिक-मिश्रकाययोगी जीवोंमें इसी प्रकार कहना चाहिये। आनत कल्पसे लेकर उपरिम-उपरिम ग्रैवेयक तकके देवोंमें क्रियाकर्मकी प्रदेशार्थता सबसे स्तोक है। इससे प्रयोगकर्मकी प्रदेशार्थता विशेष अधिक है। कितनी अधिक है ? मिथ्यादृष्टि, सासादनसम्यग्दृष्टि और सम्यग्मिथ्यादृष्टि जीवोंकी जितनी प्रदेशसंख्या है उतनी अधिक है। इससे समवधानकर्मकी प्रदेशार्थता अनन्तगुणी है। गुणकार क्या है ? अभव्योंसे अनन्तगुणा और सिद्धोंके अनन्तवें भागप्रमाण गुणकार है। अनुदिशसे लेकर सर्वार्थसिद्धि तकके देवोंमें क्रियाकर्म और प्रयोगकर्मकी प्रदेशार्थता सबसे स्तोक है। इससे समवधानकर्मकी प्रदेशार्थता अनन्तगुणी है।

तिर्यंचगतिमें तिर्यंचोंमें क्रियाकर्मकी प्रदेशार्थता सबसे स्तोक है। इससे अधःकर्मकी

अणंतगुणा । पओअकम्मपदेसट्ठदा अणंतगुणा । समोदाणकम्मपदेसट्ठदा अणंतगुणा । असंजद-तिण्णिलेस्सा त्ति एवं चेव वत्तव्वं । पंचिंदियतिरिक्खतिगम्मि सव्वत्थोवा किरियाकम्मपदे-सट्ठदा । पओअकम्मपदेसट्ठदा असंखेज्जगुणा । आधाकम्मपदेसट्ठदा अणंतगुणा । समोदाण-कम्मपदेसट्ठदा अणंतगुणा । पंचिंदियतिरिक्खअपज्जत्तएसु सव्वत्थोवा पओअकम्मपदेसट्ठदा । आधाकम्मपदेसट्ठदा अणंतगुणा । समोदाणकम्मपदेसट्ठदा अणंतगुणा । एवं मणुसअपज्जत्त-सव्वविगलिंदिय-पंचिंदियअपज्जत्त-तसअपज्जत्त-पुढविकाइय-आउकाइय-तेउकाइय-वाउकाइय-बादरणिगोदपदिट्ठिद-बादरवणप्फदिकाइयपत्तेयसरीर-विभंगणाण-सासणसम्माइट्ठि-सम्मा-मिच्छाइट्ठि त्ति वत्तव्वं ।

मणुसगदीए मणुस्सेसु सव्वत्थोवा तवोकम्मपदेसट्ठदा । किरियाकम्मपदेसट्ठदा संखेज्ज-गुणा । पओअकम्मपदेसट्ठदा असंखेज्जगुणा । आधाकम्मपदेसट्ठदा अणंतगुणा । इरियावथ-कम्मपदेसट्ठदा अणंतगुणा । समोदाणकम्मपदेसट्ठदा असंखेज्जगुणा । एवं मणुसपज्जत्त-मणु-सणीसु । णवरि जम्हि असंखेज्जगुणं तम्हि संखेज्जगुणं कायव्वं ।

इंदियाणुवादेण एइंदिएसु सव्वत्थोवा आधाकम्मपदेसट्ठदा । पओअकम्मपदेसट्ठदा अणंतगुणा । समोदाणकम्मपदेसट्ठदा अणंतगुणा । एवं सव्वएइंदिय-सव्ववणप्फदि-दोअण्णाणि-मिच्छाइट्ठि-असण्णि त्ति वत्तव्वं । पंचिंदियदुअस्स मणुस्सोघो । णवरि किरियाकम्मपदेसट्ठदा

प्रदेशार्थता अनन्तगुणी है । इससे प्रयोगकर्मकी प्रदेशार्थता अनन्तगुणी है । इससे समवधान-कर्मकी प्रदेशार्थता अनन्तगुणी है । असंयत और तीन अशुभलेश्यावाले जीवोंके इसी प्रकार कहना चाहिये । पंचेन्द्रिय तिर्यंचत्रिकमें क्रियाकर्मकी प्रदेशार्थता सबसे स्तोक है । इससे प्रयोगकर्मकी प्रदेशार्थता असंख्यातगुणी है । इससे अधःकर्मकी प्रदेशार्थता अनन्तगुणी है । इससे समवधान कर्मकी प्रदेशार्थता अनन्तगुणी है । पंचेन्द्रिय तिर्यंच अपर्याप्तकोंमें प्रयोगकर्मकी प्रदेशार्थता सबसे स्तोक है । इससे अधःकर्मकी प्रदेशार्थता अनन्तगुणी है । इससे समवधानकर्मकी प्रदेशार्थता अनन्तगुणी है । इसी प्रकार मनुष्य अपर्याप्त, सब विकलेन्द्रिय, पंचेन्द्रिय अपर्याप्त, त्रस अपर्याप्त, पृथिवीकायिक, जलकायिक, अग्निकायिक, वायुकायिक, बादर निगोद प्रतिष्ठित, बादर वनस्पति-कायिक प्रत्येकशरीर, विभंगज्ञानी, सासादनसम्यग्दृष्टि और सम्यग्मिथ्यादृष्टि जीवोंके कहना चाहिये ।

मनुष्यगतिमें मनुष्योंमें तपःकर्मकी प्रदेशार्थता सबसे स्तोक है । इससे क्रियाकर्मकी प्रदेशार्थता संख्यातगुणी है । इससे प्रयोगकर्मकी प्रदेशार्थता असंख्यातगुणी है । इससे अधःकर्मकी प्रदेशार्थता अनन्तगुणी है । इससे ईर्यापथकर्मकी प्रदेशार्थता अनन्तगुणी है । इससे समवधान-कर्मकी प्रदेशार्थता असंख्यातगुणी है । इसी प्रकार मनुष्य पर्याप्त और मनुष्यिनियोंके जानना चाहिये । इतनी विशेषता है कि जहां असंख्यातगुणा कहा है वहां संख्यातगुणा करना चाहिये ।

इन्द्रियमार्गणाके अनुवादसे एकेन्द्रियोंमें अधःकर्मकी प्रदेशार्थता सबसे स्तोक है । इससे प्रयोगकर्मकी प्रदेशार्थता अनन्तगुणी है । इससे समवधानकर्मकी प्रदेशार्थता अनन्तगुणी है । इसी प्रकार सब एकेन्द्रिय, सब वनस्पतिकायिक, दो अज्ञानी, मिथ्यादृष्टि और असंज्ञी जीवोंके कहना चाहिये । पंचेन्द्रियद्विकके सामान्य मनुष्योंके समान जानना चाहिये । इतनी विशेषता है कि क्रियाकर्मकी प्रदेशार्थता असंख्यातगुणी है । इसी प्रकार त्रसद्विक, पांच मनोयोगी, पांच

असंखेज्जगुणा । एवं तसदोण्णि-पंचमणजोगि-पंचवचिजोगि-चक्खुदंसणि-सण्णि त्ति वत्तव्वं । आहार-आहारमिस्सकायजोगीसु सव्वत्थोवा पओअकम्म-तवोकम्म-किरियाकम्मपदेसट्टदाओ । आधाकम्मपदेसट्टदा अणंतगुणा । समोदाणकम्मपदेसट्टदा अणंतगुणा ।

वेदाणुवादेण इत्थि-पुरिसवेदेसु सव्वत्थोवा तवोकम्मपदेसट्टदा । किरियाकम्मपदेस-ट्टदा असंखेज्जगुणा । पओअकम्मपदेसट्टदा असंखेज्जगुणा । आधाकम्मपदेसट्टदा अणंतगुणा । समोदाणकम्मपदेसट्टदा अणंतगुणा । णवुंसयवेदे मूलोघो । णवरि इरियावहकम्मपदेसट्टदा णत्थि । अवगदवेदेसु सव्वत्थोवा पओअकम्मपदेसट्टदा । तवोकम्मपदेसट्टदा विसेसाहिया । केत्तियमेत्तेण ? अजोगिपदेसट्टदामेत्तेण । आधाकम्मपदेसट्टदा अणंतगुणा । इरियावथकम्म-पदेसट्टदा अणंतगुणा । समोदाणकम्मपदेसट्टदा विसेसाहिया ।

कसायाणुवादेण चदुण्णं कसायाणं णवुंसयवेदभंगो । अकसाईणमवगदवेदभंगो । एवं केवलणाणि-जहाक्खाद-केवलदंसणि[1] त्ति वत्तव्वं । णाणाणुवादेण आभिणि-सुद-ओहिणाणीसु सव्वत्थोवा तवोकम्मपदेसट्टदा । किरियाकम्मपदेसट्टदा असंखेज्जगुणा । पओअकम्मपदेसट्टदा विसेसाहिया । केत्तियमेत्तेण ? अपुव्व-अणियट्टि-सुहुम-उवसंत-खीणकसायाणं जीवपदेस-मेत्तेण । आधाकम्मपदेसट्टदा अणंतगुणा । इरियावथकम्मपदेसट्टदा अणंतगुणा । समोदाण-

---

वचनयोगी, चक्षुदर्शनी और संज्ञी जीवोंके कहना चाहिये । आहारककाययोगी और आहारकमिश्र-काययोगी जीवोंमें प्रयोगकर्म, तपःकर्म और क्रियाकर्मकी प्रदेशार्थता सबसे स्तोक है । इससे अधःकर्मकी प्रदेशार्थता अनन्तगुणी है । इससे समवधानकर्मकी प्रदेशार्थता अनन्तगुणी है ।

वेदमार्गणाके अनुवादसे स्त्रीवेदी और पुरुषवेदी जीवोंमें तपःकर्मकी प्रदेशार्थता सबसे स्तोक है । इससे क्रियाकर्मकी प्रदेशार्थता असंख्यातगुणी है । इससे प्रयोगकर्मकी प्रदेशार्थता असंख्यात-गुणी है । इससे अधःकर्मकी प्रदेशार्थता अनन्तगुणी है । इससे समवधानकर्मकी प्रदेशार्थता अनन्तगुणी है । नपुंसकवेदमें मूलोघके समान है । इतनी विशेषता है कि यहां ईर्यापथकर्मकी प्रदेशार्थता नहीं है । अपगतवेदवालोंमें प्रयोगकर्मकी प्रदेशार्थता सबसे स्तोक है । इससे तपःकर्मकी प्रदेशार्थता विशेष अधिक है । कितनी अधिक है ? अयोगी जीवोंके जितने प्रदेश हैं उतनी अधिक है । इससे अधःकर्मकी प्रदेशार्थता अनन्तगुणी है । इससे ईर्यापथकर्मकी प्रदेशार्थता अनन्त-गुणी है । इससे समवधानकर्मकी प्रदेशार्थता विशेष अधिक है ।

कषायमार्गणाके अनुवादसे चारों कषायवालोंका कथन नपुंसकवेदके समान है । अकषाय-वालोंका कथन अपगतवेदवालोंके समान हैं । इसी प्रकार केवलज्ञानी, यथाख्यातसंयत और केवलदर्शनी जीवोंके कहना चाहिये । ज्ञानमार्गणाके अनुवादसे आभिनिबोधिकज्ञानी, श्रुतज्ञानी और अवधिज्ञानी जीवोंमें तपःकर्मकी प्रदेशार्थता सबसे स्तोक है । इससे क्रियाकर्मकी प्रदेशार्थता असंख्यातगुणी है । इससे प्रयोगकर्मकी प्रदेशार्थता विशेष अधिक है । कितनी अधिक है ? अपूर्वकरण, अनिवृत्तिकरण, सूक्ष्मसाम्पराय, उपशान्तकषाय और क्षीणकषाय जीवोंके प्रदेशोंकी जितनी संख्या है उतनी अधिक है । इससे अधःकर्मकी प्रदेशार्थता अनन्तगुणी है । इससे ईर्यापथकर्मकी प्रदेशार्थता अनन्तगुणी है । इससे समवधानकर्मकी प्रदेशार्थता असंख्यातगुणी है ।

---

१ अ-आ-काप्रतिषु ' जहाक्खाद० एवं केवलदंसणि ' इति पाठः ।

कम्मपदेसट्ठदा असंखेज्जगुणा । एवमोहिदंसणि-सम्माइट्ठि-खइयसम्माइट्ठि-उवसमसम्माइट्ठि-सुक्कलेस्सिएसु वि वत्तव्वं । मणपज्जवणाणीसु सव्वत्थोवा किरियाकम्मपदेसट्ठदा । पओअकम्म-तवोकम्मपदेसट्ठदा विसेसाहिया । आधाकम्मपदेसट्ठदा अणंतगुणा । इरियावथकम्मपदेसट्ठदा अणंतगुणा । समोदाणकम्मपदेसट्ठदा संखेज्जगुणा ।

संजमाणुवादेण संजदाणं मणपज्जवभंगो । सामाइय-छेदोवट्ठावणसुद्धिसंजदाणमेवं चेव । णवरि इरियावथकम्मपदेसट्ठदा णत्थि । सुहुमसांपराइयसुद्धिसंजदेसु सव्वत्थोवाओ पओअकम्म-तवोकम्मपदेसट्ठदाओ । आधाकम्मपदेसट्ठदा अणंतगुणा । समोदाणकम्मपदे-सट्ठदा अणंतगुणा । एवं परिहारसुद्धिसंजदेसु वि वत्तव्वं । णवरि किरियाकम्मपदेसट्ठदा अत्थि । संजदासंजदेसु सव्वत्थोवा किरियाकम्म-पओअकम्मपदेसट्ठदाओ । आधाकम्मपदे-सट्ठदा अणंतगुणा । समोदाणकम्मपदेसट्ठदा अणंतगुणा ।

लेस्साणुवादेण तेउ-पम्मलेस्सिएसु पुरिसवेदभंगो । अलेस्सिएसु सव्वत्थोवा तवोकम्म-पदेसट्ठदा । आधाकम्मपदेसट्ठदा अणंतगुणा । समोदाणकम्मपदेसट्ठदा अणंतगुणा । भवि-याणुवादेण अभवसिद्धिएसु सव्वत्थोवा पओअकम्मपदेसट्ठदा । आधाकम्मपदेट्ठदा अणंत-गुणा । समोदाणकम्मपदेसट्ठदा अणंतगुणा । सम्मत्ताणुवादेण वेदगसम्माइट्ठीसु सव्वत्थोवा

इसी प्रकार अवधिदर्शनी, सम्यग्दृष्टि, क्षायिकसम्यग्दृष्टि, उपशमसम्यग्दृष्टि और शुक्ललेश्यावाले जीवोंके भी कहना चाहिये। मनःपर्ययज्ञानी जीवोंमें क्रियाकर्मकी प्रदेशार्थता सबसे स्तोक है। इससे प्रयोगकर्म और तपःकर्मकी प्रदेशार्थता विशेष अधिक है। इससे अधःकर्मकी प्रदेशार्थता अनन्तगुणी है। इससे ईर्यापथकर्मकी प्रदेशार्थता अनन्तगुणी है। इससे समवधानकर्मकी प्रदेशार्थता संख्यातगुणी है।

संयममार्गणाके अनुवादसे संयतोंके मनःपर्ययज्ञानियोंके समान जानना चाहिये। सामायिक और छेदोपस्थापनाशुद्धिसंयत जीवोंके इसी प्रकार जानना चाहिये। इतनी विशेषता है कि इनके ईर्यापथकर्मकी प्रदेशार्थता नहीं है। सूक्ष्मसाम्परायिकशुद्धिसंयतोंमें प्रयोगकर्म और तपःकर्मकी प्रदेशार्थता सबसे स्तोक है। इससे अधःकर्मकी प्रदेशार्थता अनन्तगुणी है। इससे समवधानकर्मकी प्रदेशार्थता अनन्तगुणी है। इसी प्रकार परिहारविशुद्धिसंयतोंके भी कहना चाहिये। इतनी विशेषता है कि यहां क्रियाकर्मकी प्रदेशार्थता होती है। संयतासंयतोंमें क्रियाकर्म और प्रयोगकर्मकी प्रदेशार्थता सबसे स्तोक है। इससे अधःकर्मकी प्रदेशार्थता अनन्तगुणी है। इससे समवधानकर्मकी प्रदेशार्थता अनन्तगुणी है।

लेश्यामार्गणाके अनुवादसे पीत और पद्मलेश्यावालोंके पुरुषवेदके समान जानना चाहिये। लेश्यारहित जीवोंमें तपःकर्मकी प्रदेशार्थता सबसे स्तोक है। इससे अधःकर्मकी प्रदेशार्थता अनन्त-गुणी है। इससे समवधानकर्मकी प्रदेशार्थता अनन्तगुणी है। भव्यमार्गणाके अनुवादसे अभव्य जीवोंके प्रयोगकर्मकी प्रदेशार्थता सबसे स्तोक है। इससे अधःकर्मकी प्रदेशार्थता अनन्तगुणी है। इससे समवधानकर्मकी प्रदेशार्थता अनन्तगुणी है। सम्यक्त्वमार्गणाके अनुवादसे वेदकसम्यग्दृष्टि-योंमें तपःकर्मकी प्रदेशार्थता सबसे स्तोक है। इससे क्रियाकर्मकी प्रदेशार्थता और प्रयोगकर्मकी

तवोकम्मपदेसट्ठदा । किरियाकम्मपदेसट्ठदा पओअकम्मपदेसट्ठदा[1] असंखेज्जगुणा । आधाकम्म-पदेसट्ठदा अणंतगुणा । समोदाणकम्मपदेसट्ठदा अणंतगुणा । एवं पदेसट्ठदप्पाबहुअं समत्तं ।

दव्वट्ठ-पदेसट्ठदप्पाबहुगाणुगमेण[2] दुविहो णिद्देसो ओघेण आदेसेण य । ओघेण सव्व-त्थोवा इरियावहकम्मदव्वट्ठदा । तवोकम्मदव्वट्ठदा संखेज्जगुणा । किरियाकम्मदव्वट्ठदा असंखेज्जगुणा । तवोकम्मपदेसट्ठदा असंखेज्जगुणा । को गुणगारो ? लोगस्स असंखेज्जदिभागो[3] । किरियाकम्मपदेट्ठदा[4] असंखेज्जगुणा । को गुणगारो ? पलिदोवमस्स असंखेज्जदिभागस्स संखेज्जदिभागो । आधाकम्मदव्वट्ठदा अणंतगुणा । को गुणगारो ? अभवसिद्धिएहि अणंत-गुणं[5]-सिद्धाणमणंतिमभागमेत्तवग्गणाणमसंखेज्जदिभागो । तस्सेव पदेसट्ठदा अणंतगुणा । को गुणगारो ? अभवसिद्धिएहि अणंतगुणो सिद्धाणमणंतिमभागो । कुदो ? एक्केक्किस्से वग्गणाए अणंतेहि परमाणूहि विणा उप्पत्तीए अभावादो । इरियावथकम्मपदेसट्ठदा अणंत-गुणा । कुदो ? 'अनन्तगुणे परे' इति तत्त्वार्थसूत्रनिर्देशात् । पओअकम्मदव्वट्ठदा अणंत-गुणा । को गुणगारो । संसारिजीवाणमणंतिमभागो । समोदाणकम्मदव्वट्ठदा विसेसाहिया । केत्तियमेत्तेण ? अजोगिमेत्तेण । पओअकम्मपदेसट्ठदा असंखेज्जगुणा । को गुणगारो ? किंचूणो घणलोगो । कुदो ? एक्केक्कस्स जीवस्स घणलोगमेत्तजीवपदेसाणमुवलंभादो । समोदाण-

---

प्रदेशार्थता असंख्यातगुणी है । इससे अधःकर्मकी प्रदेशार्थता अनन्तगुणी है । इससे समवधान-कर्मकी प्रदेशार्थता अनन्तगुणी है । इस प्रकार प्रदेशार्थताअल्पबहुत्व समाप्त हुआ ।

द्रव्य-प्रदेशार्थता-अल्पबहुत्व अनुगमकी अपेक्षा निर्देश दो प्रकारका है—ओघ और आदेश । ओघसे ईर्यापथकर्मकी द्रव्यार्थता सबसे स्तोक है । इससे तपःकर्मकी द्रव्यार्थता संख्यातगुणी है । इससे क्रियाकर्मकी द्रव्यार्थता असंख्यातगुणी है । इससे तपःकर्मकी प्रदेशार्थता असंख्यातगुणी है । गुणकार क्या है ? लोकका असंख्यातवां भाग गुणकार है । इससे क्रियाकर्मकी प्रदेशार्थता असंख्यातगुणी है । गुणकार क्या है ? पल्योपमके असंख्यातवें भागका संख्यातवां भाग गुणकार है । इससे अधःकर्मकी द्रव्यार्थता अनन्तगुणी है । गुणकार क्या है ? अभव्योंसे अनन्तगुणी और सिद्धोंके अनन्तवें भागप्रमाण वर्गणाओंका असंख्यातवां भाग गुणकार है । इससे इसीकी प्रदेशार्थता अनन्तगुणी है । गुणकार क्या है ? अभव्योंसे अनन्तगुणा और सिद्धोंके अनन्तवें भागप्रमाण गुणकार है, क्योंकि, एक एक वर्गणाकी अनन्त परमाणुओंके विना उत्पत्ति नहीं हो सकती । इससे ईर्यापथकर्मकी प्रदेशार्थता अनन्तगुणी है, क्योंकि 'तैजस और कार्मण शरीर उत्तरोत्तर अनन्तगुणे होते हैं' ऐसा तत्त्वार्थसूत्रमें निर्देश किया है । इससे प्रयोगकर्मकी द्रव्यार्थता अनन्तगुणी है । गुणकार क्या है ? संसारी जीवोंका अनन्तवां भागप्रमाण गुणकार है । इससे समवधानकर्मकी द्रव्यार्थता विशेष अधिक है । कितनी अधिक है ? अयोगियोंकी जितनी संख्या है उतनी अधिक है । इससे प्रयोगकर्मकी प्रदेशार्थता असंख्यातगुणी है । गुणकार क्या है ? कुछ कम घनलोकप्रमाण गुणकार है, क्योंकि, एक एक जीवके घनलोक प्रमाण जीवप्रदेश पाये जाते

---

१ का-ताप्रत्योः 'किरियाकम्मप० पओअकम्मप०' इति पाठः । २ ताप्रतौ 'दव्वपदेसट्ठद–' इति पाठः ३ काप्रतौ 'असंखे०गुणा' इति पाठः । ४ काप्रतौ '–कम्मदव्वट्ठदा', ताप्रतौ 'कम्मदव्व० (पदे०)' इति पाठः ५ प्रतिषु 'अणंतगुणो' इति पाठः ।

कम्मपदेसट्ठदा अणंतगुणा । को गुणगारो ? अभवसिद्धिएहि अणंतगुणो सिद्धाणमणंतभागो । कुदो ? एक्केक्कम्हि जीवे अभवसिद्धिएहि अणंतगुण-सिद्धाणमणंतभागमेत्तकम्मपरमाणूणमुवलंभादो । एवं भवसिद्धियाणं वत्तव्वं । एवं कायजोगि-ओरालियकायजोगि-अचक्खुदंसणि-आहारीणं पि वत्तव्वं । णवरि पओअकम्म-समोदाणकम्मदव्वट्ठदाओ दो वि सरिसाओ अणंतगुणाओ ।

णिरयगदीए णेरइएसु सव्वत्थोवा किरियाकम्मदव्वट्ठदा । पओअकम्म-समोदाण-कम्मदव्वट्ठदाओ दो वि सरिसाओ असंखेज्जगुणाओ । को गुणगारो ? जगपदरासंखेज्जदि-भागस्स असंखेज्जदिभागो । किरियाकम्मपदेसट्ठदा असंखेज्जगुणा । को गुणगारो ? संखेज्जाओ सेडीओ । पओअकम्मपदेसट्ठदा असंखेज्जगुणा । को गुणगारो ? णेरइयाणमसंखेज्जदिभागो । समोदाणकम्मपदेसट्ठदा अणंतगुणा । एवं सत्तसु पुढवीसु, देवा जाव सहस्सारया, वेउव्विय-कायजोगि-वेउव्वियमिस्सकायजोगि त्ति वत्तव्वं ।

आणदादि जाव णवगेवज्जा त्ति देवेसु सव्वत्थोवा किरियाकम्मदव्वट्ठदा । पओअकम्म-समोदाणकम्मदव्वट्ठदाओ दो वि सरिसाओ विसेसाहियाओ । किरियाकम्मपदेसट्ठदा असंखेज्जगुणा । को गुणगारो ? लोगो किंचूणो । पओअकम्मपदेसट्ठदा विसेसाहिया । केत्तियमेत्तेण ? पलिदोवमस्स असंखेज्जदिभागमेत्तघणलोगेहि । समोदाणकम्मपदेसट्ठदा अणंत-

---

हैं । इससे समवधानकर्मकी प्रदेशार्थता अनन्तगुणी है । गुणकार क्या है ? अभव्योंसे अनन्तगुणा और सिद्धोंके अनन्तवें भागप्रमाण गुणकार है, क्योंकि, एक एक जीवमें अभव्योंसे अनन्तगुणे और सिद्धोंके अनन्तवें भागप्रमाण कर्मपरमाणु उपलब्ध होते हैं । इसी प्रकार भव्य जीवोंके कहना चाहिये । काययोगी, औदारिककाययोगी, अचक्षुदर्शनी और आहारक जीवोंके भी इसी प्रकार कहना चाहिये । इतनी विशेषता है कि इनके प्रयोगकर्म और समवधानकर्मकी द्रव्यार्थतायें दोनों ही समान होकर अनन्तगुणी हैं ।

नरकगतिमें नारकियोंमें क्रियाकर्मकी द्रव्यार्थता सबसे स्तोक है । इससे प्रयोगकर्म और समवधानकर्म दोनोंकी द्रव्यार्थता समान होकर असंख्यातगुणी है । गुणकार क्या है ? जगप्रतरके असंख्यातवें भागका असंख्यातवां भाग गुणकार है । इससे क्रियाकर्मकी प्रदेशार्थता असंख्यातगुणी है । गुणकार क्या है ? संख्यात जगश्रेणियां गुणकार है । इससे प्रयोगकर्मकी प्रदेशार्थता असंख्यातगुणी है । गुणकार क्या है ? नारकियोंका असंख्यातवां भाग गुणकार है । इससे समवधानकर्मकी प्रदेशार्थता अनन्तगुणी है । इसी प्रकार सातों पृथिवियोंमें तथा सहस्रार कल्प तकके देवोंमें, वैक्रियिककाययोगी और वैक्रियिकमिश्रकाययोगी जीवोंमें कहना चाहिये ।

आनत कल्पसे लेकर नौ ग्रैवेयक तकके देवोंमें क्रियाकर्मकी द्रव्यार्थता सबसे स्तोक है । इससे प्रयोगकर्म और समवधानकर्म दोनोंकी द्रव्यार्थता समान होकर विशेष अधिक है । इससे क्रियाकर्मकी प्रदेशार्थता असंख्यातगुणी है । गुणकार क्या है ? कुछ कम लोक गुणकार है । प्रयोगकर्मकी प्रदेशार्थता विशेष अधिक है । कितनी अधिक है ? पल्योपमके असंख्यातवें भागप्रमाण घनलोकोंकी जितनी प्रदेशसंख्या है उतनी अधिक है । इससे समवधानकर्मकी

गुणा । अणुद्दिसादि जाव सव्वट्ठसिद्धि त्ति सव्वत्थोवाओ किरियाकम्म-पओअकम्म-समोदाणकम्मदव्वट्ठदाओ तिण्णि वि सरिसाओ । किरियाकम्म-पओअकम्मपदेसट्ठदाओ दो वि सरिसाओ असंखेज्जगुणाओ । को गुणगारो ? घणलोगो । समोदाणकम्मपदेसट्ठदा अणंतगुणा ।

तिरिक्खगदीए तिरिक्खेसु सव्वत्थोवा किरियाकम्मदव्वट्ठदा । तस्सेव पदेसट्ठदा असंखेज्जगुणा । आधाकम्मदव्वट्ठदा अणंतगुणा । तस्सेव पदेसट्ठदा अणंतगुणा । पओअकम्म-समोदाणकम्मदव्वट्ठदाओ दो वि सरिसाओ अणंतगुणाओ । पओअकम्मपदेसट्ठदा असंखेज्ज-गुणा । को गुणगारो ? घणलोगो । समोदाणकम्मपदेसट्ठदा अणंतगुणा । को गुणगारो ? अभवसिद्धिएहि अणंतगुणो सिद्धाणमणंतिमभागस्स असंखेज्जदिभागो । एवमसंजद-किण्ण-णील-काउलेस्सियाणं पि वत्तव्वं । पंचिंदियतिरिक्खतियम्मि सव्वत्थोवा किरियाकम्म-दव्वट्ठदा । पओअकम्म-समोदाणकम्मदव्वट्ठदाओ दो वि सरिसाओ असंखेज्जगुणाओ । को गुणगारो ? पदरस्स असंखेज्जदिभागो । किरियाकम्मपदेसट्ठदा असंखेज्जगुणा । को गुणगारो ? पदरस्स असंखेज्जदिभागो । पओअकम्मपदेसट्ठदा असंखेज्जगुणा । को गुणगारो ? पदरस्स असंखेज्जदिभागो । आधाकम्मदव्वट्ठदा अणंतगुणा । को गुणगारो ? अभवसिद्धि-

---

प्रदेशार्थता अनन्तगुणी है । अनुदिशसे लेकर सर्वार्थसिद्धि तकके देवोंमें क्रियाकर्म, प्रयोगकर्म और समवधानकर्म इन तीनोंकी द्रव्यार्थता समान होकर सबसे स्तोक हैं । इससे क्रियाकर्म और प्रयोगकर्म इन दोनोंकी प्रदेशार्थता समान होकर असंख्यातगुणी है । गुणकार क्या है ? घनलोक गुणकार है । इससे समवधानकर्मकी प्रदेशार्थता अनन्तगुणी है ।

तिर्यंचगतिमें तिर्यंचोंमें क्रियाकर्मकी द्रव्यार्थता सबसे स्तोक है । इससे उसीकी प्रदेशार्थता असंख्यातगुणी है । इससे अधःकर्मकी द्रव्यार्थता अनन्तगुणी है । इससे उसीकी प्रदेशार्थता अनन्तगुणी है । इससे प्रयोगकर्म और समवधानकर्म इन दोनोंकी द्रव्यार्थता समान होकर अनन्तगुणी है । इससे प्रयोगकर्मकी प्रदेशार्थता असंख्यातगुणी है । गुणकार क्या है ? घनलोक गुणकार है । इससे समवधानकर्मकी प्रदेशार्थता अनन्तगुणी है । गुणकार क्या है ? अभव्योंसे अनन्तगुणा और सिद्धोंके अनन्तवें भागका असंख्यातवां भाग गुणकार है । इसी प्रकार असंयत, कृष्ण, नील और कापोत लेश्यावालोंके भी कहना चाहिये । पंचेन्द्रिय तिर्यंचत्रिकमें क्रियाकर्मकी द्रव्यार्थता सबसे स्तोक हैं । इससे प्रयोगकर्म और समवधानकर्म इन दोनोंकी द्रव्यार्थता समान होकर असंख्यातगुणी है । गुणकार क्या है ? जगप्रतरका असंख्यातवां भाग गुणकार है । इससे क्रियाकर्मकी प्रदेशार्थता असंख्यातगुणी है ? गुणकार क्या है ? जगप्रतरका असंख्यातवां भाग गुणकार है । इससे प्रयोगकर्मकी प्रदेशार्थता असंख्यातगुणी है । गुणकार क्या है ? जगप्रतरका असंख्यातवां भाग गुणकार है । इससे अधःकर्मकी द्रव्यार्थता अनन्तगुणी है । गुणकार क्या है ?

---

१ काप्रतौ 'किरियाकम्मसमोदाणकम्म-', ताप्रतौ 'किरियाकम्म [पओअकम्म-] समोदाणकम्म-' इति पाठः । २ ताप्रतौ 'सरिसाओ...... । किरिया' इति पाठः ।

एहि अणंतगुणो सिद्धाणमणंतिमभागो। तस्सेव पदेसट्ठदा अणंतगुणा। को गुणगारो? अभवसिद्धिएहि अणंतगुणो सिद्धाणमणंतिमभागो। समोदाणकम्मपदेसट्ठदा अणंतगुणा।

पंचिंदियतिरिक्खअपज्जत्तएसु सव्वत्थोवाओ पओअकम्म-समोदाणकम्मदव्वट्ठदाओ। पओअकम्मपदेसट्ठदा असंखेज्जगुणा। आधाकम्मदव्वट्ठदा अणंतगुणा। तस्सेव पदेसट्ठदा अणंतगुणा। समोदाणकम्मपदेसट्ठदा अणंतगुणा। एवं मणुसअपज्जत्त-सव्वविगलिंदिय-पंचिंदियअपज्जत्त- तसअपज्जत्त- पुढविकाइय- आउकाइय- तेउकाइय- वाउकाइय- बादरणिगोद-पदिट्ठिद-बादरवणप्फदिकाइयपत्तेयसरीरपज्जत्तापज्जत्त- विहंगणाणि- सासणसम्माइट्ठि- सम्मामिच्छाइट्ठि त्ति वत्तव्वं।

मणुसगदीए मणुस्सेसु सव्वत्थोवा इरियावहकम्मदव्वट्ठदा। तवोकम्मदव्वट्ठदा संखेज्जगुणा। किरियाकम्मदव्वट्ठदा संखेज्जगुणा। पओअकम्मदव्वट्ठदा असंखेज्जगुणा। समोदाणकम्मदव्वट्ठदा विसेसाहिया। तवोकम्मपदेसट्ठदा असंखेज्जगुणा। किरियाकम्मपदेसट्ठदा संखेज्जगुणा। पओअकम्मपदेसट्ठदा असंखेज्जगुणा। आधाकम्मदव्वट्ठदा अणंतगुणा। तस्सेव पदेसट्ठदा अणंतगुणा। इरियावथकम्मपदेसट्ठदा अणंतगुणा। समोदाणकम्मपदेसट्ठदा असंखेज्जगुणा। एवं पंचिंदिय-पंचिंदियपज्जत्त-तस-तसपज्जत्ताणं वत्तव्वं। णवरि किरियाकम्मदव्वट्ठ-पदेसट्ठदाओ असंखेज्जगुणाओ कायव्वाओ। एवं मणुसपज्जत्त-मणुसिणीसु वत्तव्वं।

अभव्योंसे अनन्तगुणा और सिद्धोंके अनन्तवें भागप्रमाण गुणकार है। इससे उसीकी प्रदेशार्थता अनन्तगुणी है। गुणकार क्या है? अभव्योंसे अनन्तगुणा और सिद्धोंके अनन्तवें भागप्रमाण गुणकार है। इससे समवधानकर्मकी प्रदेशार्थता अनन्तगुणी है।

पंचेन्द्रिय तिर्यंच अपर्याप्तकोंमें प्रयोगकर्म और समवधानकर्मकी द्रव्यार्थता सबसे स्तोक है। इससे प्रयोगकर्मकी प्रदेशार्थता असंख्यातगुणी। इससे अधःकर्मकी द्रव्यार्थता अनन्तगुणी है। इससे उसीकी प्रदेशार्थता अनन्तगुणी है। इससे समवधानकर्मकी प्रदेशार्थता अनन्तगुणी है। इसी प्रकार मनुष्य अपर्याप्त, सब विकलेन्द्रिय, पंचेन्द्रिय अपर्याप्त, त्रस अपर्याप्त, पृथिवीकायिक, जलकायिक, अग्निकायिक, वायुकायिक, बादर निगोदप्रतिष्ठित और बादर वनस्पतिकायिक प्रत्येकशरीर तथा इनके पर्याप्त और अपर्याप्त, विभंगज्ञानी, सासादनसम्यग्दृष्टि और सम्यग्मिथ्यादृष्टि जीवोंके कहना चाहिये।

मनुष्यगतिमें मनुष्योंमें ईर्यापथकर्मकी द्रव्यार्थता सबसे स्तोक है। तपःकर्मकी द्रव्यार्थता संख्यागुणी है। इससे क्रियाकर्मकी द्रव्यर्थता संख्यातगुणी है। इससे प्रयोगकर्मकी द्रव्यार्थता असंख्यातगुणी है। इससे समवधानकर्मकी द्रव्यार्थता विशेष अधिक है। इससे तपःकर्मकी प्रदेशार्थता असंख्यातगुणी है। इससे क्रियाकर्मकी प्रदेशार्थता संख्यातगुणी है। इससे प्रयोगकर्मकी प्रदेशार्थता असंख्यातगुणी है। इससे अधःकर्मकी द्रव्यार्थता अनन्तगुणी है। इससे उसीकी प्रदेशार्थता अनन्तगुणी है। इससे ईर्यापथकर्मकी प्रदेशार्थता अनन्तगुणी है। इससे समवधानकर्मकी प्रदेशार्थता असंख्यातगुणी है। इसी प्रकार पंचेन्द्रिय, पंचेन्द्रिय पर्याप्त, त्रस और त्रस पर्याप्त जीवोंके कहना चाहिये। इतनी विशेषता है कि इनके क्रियाकर्मकी द्रव्यार्थता और प्रदेशार्थता असंख्यातगुणी करनी चाहिये। इसी प्रकार मनुष्य पर्याप्त और मनुष्यनियोंमें कहना

णवरि जम्हि असंखेज्जगुणं भणिदं तम्हि संखेज्जगुणं भाणिदव्वं । णवरि तवोकम्मपदेसट्ठदा असंखेज्जगुणा चेव ।

जोगाणुवादेण पंचमण-पंचवचिजोगीसु पंचिंदियभंगो । णवरि पओअकम्म-समोदाण-कम्मदव्वट्ठदाओ दो वि सरिसाओ असंखेज्जगुणाओ । ओरालियमिस्सकायजोगीसु सव्वत्थोवाओ इरियावहकम्म-तवोकम्मदव्वट्ठदाओ । किरियाकम्मदव्वट्ठदा संखेज्जगुणा । तवोकम्म-पदेसट्ठदा असंखेज्जगुणा । किरियाकम्मपदेसट्ठदा संखेज्जगुणा । आधाकम्मदव्वट्ठदा अणंतगुणा । तस्सेव पदेसट्ठदा अणंतगुणा । इरियावथकम्मपदेसट्ठदा अणंतगुणा । पओअकम्म-समोदाण-कम्मदव्वट्ठदाओ दो वि सरिसाओ अणंतगुणाओ । पओअकम्मपदेसट्ठदा असंखेज्जगुणा । समोदाणकम्मपदेसट्ठदा अणंतगुणा । एवं कम्मइयकायजोगीसु । णवरि किरियाकम्मदव्वट्ठ-पदेसट्ठदाओ असंखेज्जगुणाओ । एवमणाहारीसु । णवरि समोदाणकम्मदव्वट्ठदा विसेसाहिया । आहार-आहारमिस्सकायजोगीसु सव्वत्थोवाओ पओअकम्म-समोदाणकम्म-तवोकम्म-किरिया-कम्मदव्वट्ठदाओ । पओअकम्म-तवोकम्म-किरयाकम्मपदेसट्ठदाओ असंखेज्जगुणाओ । आधा-कम्मदव्वट्ठदा अणंतगुणा । तस्सेव पदेसट्ठदा अणंतगुणा । समोदाणकम्मपदेसट्ठदा अणंतगुणा । एवं परिहारसुद्धिसंजदेसु वत्तव्वं । सुहुमसांपराइयसुद्धिसंजदेसु एवं चेव होदि[1] । णवरि किरिया-

चाहिये । इतनी विशेषता है कि जहां असंख्यातगुणा कहा है वहां संख्यातगुणा कहना चाहिये । इतनी विशेषता है कि तपःकर्मकी प्रदेशार्थता असंख्यातगुणी ही है ।

योगमार्गणाके अनुवादसे पांचों मनोयोगी और पांचों वचनयोगी जीवोंमें पंचेन्द्रियोंके समान भंग है । इतनी विशेषता है कि इनमें प्रयोगकर्म और समवधानकर्म इन दोनोंकी द्रव्यार्थता समान होकर असंख्यातगुणी है । औदारिकमिश्रकाययोगियोंमें ईर्यापथकर्म और तपःकर्मकी द्रव्यार्थता सबसे स्तोक है । इससे क्रियाकर्मकी द्रव्यार्थता संख्यातगुणी है । इससे तपःकर्मकी प्रदेशार्थता असंख्यातगुणी है । इससे क्रियाकर्मकी प्रदेशार्थता संख्यातगुणी है । इससे अधःकर्मकी द्रव्यार्थता अनन्तगुणी है । इससे उसीकी प्रदेशार्थता अनन्तगुणी है । इससे ईर्यापथकर्मकी प्रदेशार्थता अनन्तगुणी है । इससे प्रयोगकर्म और समवधानकर्म इन दोनोंकी द्रव्यार्थता समान होकर अनन्तगुणी है । इससे प्रयोगकर्मकी प्रदेशार्थता असंख्यातगुणी है । इससे समवधानकर्मकी प्रदेशार्थता अनन्तगुणी है । इसी प्रकार कार्मणकाययोगी जीवोंके जानना चाहिये । इतनी विशेषता है कि इनके क्रियाकर्मकी द्रव्यार्थता और प्रदेशार्थता असंख्यातगुणी होती है । इसी प्रकार अनाहारक जीवोंमें कहना चाहिये । इतनी विशेषता है कि इनके समवधानकर्मकी द्रव्यार्थता विशेष अधिक है । आहारक और आहारकमिश्र काययोगी जीवोंमें प्रयोगकर्म, समवधानकर्म, तपःकर्म और क्रियाकर्मकी द्रव्यार्थता सबसे स्तोक है । इससे प्रयोगकर्म, तपःकर्म और क्रियाकर्मकी प्रदेशार्थता असंख्यातगुणी है । इससे अधःकर्मकी द्रव्यार्थता अनन्तगुणी है । इससे उसीकी प्रदेशार्थता अनन्तगुणी है । इससे समवधानकर्मकी प्रदेशार्थता अनन्तगुणी है । इसी प्रकार परिहारविशुद्धिसंयतोंके कहना चाहिये । सूक्ष्मसाम्परायिक संयतोंके इसी प्रकार अल्पबहुत्व होता है । इतनी विशेषता है कि इनके क्रियाकर्म नहीं है ।

१ आ-का-ताप्रतिषु 'होदूण' इति पाठः ।

कम्मं णत्थि। संजदासंजदेसु आहारकायजोगिभंगो। णवरि तवोकम्मं णत्थि।

वेदाणुवादेण इत्थि-पुरिसवेदेसु सव्वत्थोवा तवोकम्मदव्वट्ठदा। किरियाकम्मदव्वट्ठदा असंखेज्जगुणा। पओअकम्म-समोदाणकम्मदव्वट्ठदाओ दो वि सरिसाओ असंखेज्जगुणाओ। तवोकम्मपदेसट्ठदा असंखेज्जगुणा। किरियाकम्मपदेसट्ठदा असंखेज्जगुणा। पओअकम्मपदेसट्ठदा असंखेज्जगुणा। आधाकम्मदव्वट्ठदा अणंतगुणा। तस्सेव पदेसट्ठदा अणंतगुणा। समोदाणकम्मपदेसट्ठदा अणंतगुणा। णवुंसयवेदेसु मूलोघो। णवरि इरियावथकम्मं णत्थि। पओअकम्म-समोदाणकम्मदव्वट्ठदाओ दो वि सरिसाओ। अवगदवेदेसु सव्वत्थोवा इरियावथकम्मदव्वट्ठदा। पओककम्मदव्वट्ठदा विसेसाहिया। केत्तियमेत्तेण? अवगदवेद-अणियट्टीहि सुहुमसांपराइएहि य। समोदाणकम्म-तवोकम्मदव्वट्ठदाओ विसेसाहिओ। केत्तियमेत्तेण? अजोगिदव्वट्ठदामेत्तेण। पओअकम्मपदेसट्ठदा असंखेज्जगुणा। तवोकम्मपदेसट्ठदा विसेसाहिया। केत्तियमेत्तेण? अजोगिपदेसट्ठदामेत्तेण। आधाकम्मदव्वट्ठदा अणंतगुणा। तस्सेव पदेसट्ठदा अणंतगुणा। इरियावथकम्मपदेसट्ठदा अणंतगुणा। समोदाणकम्मपदेसट्ठदा विसेसाहिया। एवं केवलणाणि-केवलदंसणीणं पि वत्तव्वं। णवरि पओअकम्म-इरियावथकम्मदव्वट्ठदाओ दो वि सरिसाओ।

संयतासंयतोंके आहारककाययोगियोंके समान भंग है। इतनी विशेषता है कि इनके तपःकर्म नहीं है।

वेदमार्गणाके अनुवादसे स्त्रीवेदी और पुरुषवेदी जीवोंमें तपःकर्मकी द्रव्यार्थता सबसे स्तोक है। इससे क्रियाकर्मकी द्रव्यार्थता असंख्यातगुणी है। इससे प्रयोगकर्म और समवधानकर्म इन दोनोंकी द्रव्यार्थता समान होकर असंख्यातगुणी है। इससे तपःकर्मकी प्रदेशार्थता असंख्यातगुणी है। इससे क्रियाकर्मकी प्रदेशार्थता असंख्यातगुणी है। इससे प्रयोगकर्मकी प्रदेशार्थता असंख्यातगुणी है। इससे अधःकर्मकी द्रव्यार्थता अनन्तगुणी है। इससे उसीकी प्रदेशार्थता अनन्तगुणी है। इससे समवधानकर्मकी प्रदेशार्थता अनन्तगुणी है। नपुंसकवेदवालोंमें मूलोघके समान है। इतनी विशेषता है कि इनके ईर्यापथकर्म नहीं है। तथा प्रयोगकर्म और समवधानकर्म इन दोनोंकी द्रव्यार्थता समान है। अपगतवेदवालोंमें ईर्यापथकर्मकी द्रव्यार्थता सबसे स्तोक है। इससे प्रयोगकर्मकी द्रव्यार्थता विशेष अधिक है। कितनी अधिक है? अपगतवेद अनिवृत्तिकरण और सूक्ष्मसाम्पराय जीवोंकी जितनी संख्या है उतनी अधिक है। इससे समवधानकर्म और तपःकर्मकी द्रव्यार्थता विशेष अधिक है। कितनी अधिक है? अयोगी जीवोंकी जितनी संख्या है उतनी अधिक है। इससे प्रयोगकर्मकी प्रदेशार्थता असंख्यातगुणी है। इससे तपःकर्मकी प्रदेशार्थता विशेष अधिक है। कितनी अधिक है? अयोगी जीवोंकी जितनी प्रदेशसंख्या है उतनी अधिक है। इससे अधःकर्मकी द्रव्यार्थता अनन्तगुणी है। इससे उसीकी प्रदेशार्थता अनन्तगुणी है। इससे ईर्यापथकर्मकी प्रदेशार्थता अनन्तगुणी है। इससे समवधानकर्मकी प्रदेशार्थता विशेष अधिक है। इसी प्रकार केवलज्ञानी और केवलदर्शनी जीवोंके भी कहना चाहिये। इतनी विशेषता है कि इनके प्रयोगकर्म और ईर्यापथकर्म इन दोनोंकी द्रव्यार्थता समान है।

कसायाणुवादेण चदुण्णं कसायाणं णवुंसयवेदभंगो । अकसाईणमवगदवेदभंगो । णवरि इरियावथ-पओअकम्मदव्वट्ठदाओ सरिसाओ । णाणाणुवादेण आभिणि-सुद-ओहि-णाणीसु सव्वत्थोवा इरियावहकम्मदव्वट्ठदा । तवोकम्मदव्वट्ठदा संखेज्जगुणा । किरियाकम्म-दव्वट्ठदा असंखेज्जगुणा । पओअकम्म-समोदाणकम्मदव्वट्ठदाओ दो वि सरिसाओ विसेसाहियाओ । तवोकम्मपदेसट्ठदा असंखेज्जगुणा । किरियाकम्मपदेसट्ठदा असंखेज्जगुणा । पओअकम्मपदेसट्ठदा विसेसाहिया । केत्तियमेत्तेण ? असंखेज्जलोगेहि । आधाकम्मदव्वट्ठदा अणंतगुणा । तस्सेव पदेसट्ठदा अणंतगुणा । इरियावथकम्मपदेसट्ठदा अणंतगुणा । समोदाण-कम्मपदेसट्ठदा असंखेज्जगुणा । एवमोहिदंसणि-सुक्कलेस्सिय-सम्माइट्ठि-खइयसम्माइट्ठि-उवसमसम्मादिट्ठीसु । णवरि सम्माइट्ठि-खइयसम्माइट्ठीसु पओअकम्मदव्वट्ठदाए उवरि समोदाणकम्मदव्वट्ठदा विसेसाहिया । मणपज्जवणाणीसु सव्वात्थोवा इरियावहकम्मदव्व-ट्ठदा । किरियाकम्मदव्वट्ठदा संखेज्जगुणा । पओअकम्म-समोदाणकम्म-तवोकम्मदव्वट्ठदाओ विसेसाहियाओ । किरियाकम्मपदेसट्ठदा असंखेज्जगुणा । पओअकम्म-तवोकम्मपदेसट्ठदाओ विसेसाहियाओ । आधाकम्मदव्वट्ठदा अणंतगुणा । तस्सेव पदेसट्ठदा अणंतगुणा । इरिया-

---

कषायमार्गणाके अनुवादसे चारों ही कषायवालोंका कथन नपुंसकवेदके समान है । कषाय रहित जीवोंका कथन अपगतवेदके समान है । इतनी विशेषता है कि इनके ईर्यापथकर्म और प्रयोगकर्मकी द्रव्यार्थता समान है । ज्ञानमार्गणाके अनुवादसे आभिनिबोधिकज्ञानी, श्रुतज्ञानी और अवधिज्ञानी जीवोंमें ईर्यापथकर्मकी द्रव्यार्थता सबसे स्तोक है । इससे तपःकर्मकी द्रव्यार्थता संख्यातगुणी है । इससे क्रियाकर्मकी द्रव्यार्थता असंख्यातगुणी है । इससे प्रयोगकर्म और समवधानकर्म इन दोनोंकी द्रव्यार्थता समान होकर विशेष अधिक है । इससे तपःकर्मकी प्रदेशार्थता असंख्यातगुणी है । इससे क्रियाकर्मकी प्रदेशार्थता असंख्यातगुणी है । इससे प्रयोगकर्मकी प्रदेशार्थता विशेष अधिक है । कितनी अधिक है ? असंख्यात लोककी जितनी प्रदेशसंख्या हो उतनी अधिक है । इससे अधःकर्मकी द्रव्यार्थता अनन्तगुणी है । इससे उसीकी प्रदेशार्थता अनन्तगुणी है । इससे ईर्यापथकर्मकी प्रदेशार्थता अनन्तगुणी है । इससे समवधान-कर्मकी प्रदेशार्थता असंख्यातगुणी है । इसी प्रकार अवधिदर्शनी, शुक्ललेश्यावाले, सम्यग्दृष्टि, क्षायिकसम्यग्दृष्टि और उपशमसम्यग्दृष्टि जीवोंके जानना चाहिये । इतनी विशेषता है कि सम्यग्दृष्टि और क्षायिकसम्यग्दृष्टि जीवोंमें प्रयोगकर्मकी द्रव्यार्थतासे समवधानकर्मकी द्रव्यार्थता विशेष अधिक है ।

मनःपर्ययज्ञानी जीवोंमें ईर्यापथकर्मकी द्रव्यार्थता सबसे स्तोक है । इससे क्रियाकर्मकी द्रव्यार्थता संख्यातगुणी है । इससे प्रयोगकर्म, समवधानकर्म और तपःकर्मकी द्रव्यार्थता विशेष अधिक है । इससे क्रियाकर्मकी प्रदेशार्थता असंख्यातगुणी है । इससे प्रयोगकर्म और तपःकर्मकी प्रदेशार्थता विशेष अधिक है । इससे अधःकर्मकी द्रव्यार्थता अनन्तगुणी है । इससे उसीकी प्रदेशार्थता अनन्तगुणी है । इससे ईर्यापथकर्मकी प्रदेशार्थता अनन्तगुणी है । इससे समवधान-

वथकम्मपदेसट्ठदा अणंतगुणा । समोदाणकम्मपदेसट्ठदा संखेज्जगुणा । एवं संजदेसु । णवरि पओअकम्मदव्वट्ठदाए उवरि समोदाणकम्म-तवोकम्मदव्वट्ठदाओ विसेसाहियाओ ।

सामाइय-छेदोवट्ठावणसुद्धिसंजदेसु सव्वत्थोवा किरियाकम्मदव्वट्ठदा । पओअकम्म-समोदाणकम्म-तवोकम्मदव्वट्ठदाओ विसेसाहियाओ । किरियाकम्मपदेसट्ठदा असंखेज्जगुणा । पओअकम्म-[तवोकम्म-] पदेसट्ठदाओ दो वि सरिसाओ विसेसाहियाओ । आधाकम्म-दव्वट्ठदा अणंतगुणा । तस्सेव पदेसट्ठदा अणंतगुणा । समोदाणकम्मपदेसट्ठदा अणंतगुणा । चक्खुदंसणीणं मणजोगिभंगो । एवं सण्णीणं पि वत्तव्वं ।

लेस्साणुवादेण तेउ-पम्मलेस्सिएसु सव्वत्थोवा तवोकम्मदव्वट्ठदा । किरियाकम्म-दव्वट्ठदा असंखेज्जगुणा । पओअकम्म-समोदाणकम्मदव्वट्ठदाओ असंखेज्जगुणाओ । तवोकम्मपदेसट्ठदा असंखेज्जगुणा । किरियाकम्मपदेसट्ठदा असंखेज्जगुणा । पओअकम्म-पदेसट्ठदा असंखेज्जगुणा । आधाकम्मदव्वट्ठदा अणंतगुणा । तस्सेव पदेसट्ठदा अणंतगुणा । समोदाणकम्मपदेसट्ठदा अणंतगुणा । अलेस्सिएसु सव्वत्थोवाओ तवोकम्म-समोदाणकम्म-दव्वट्ठदाओ । तवोकम्मपदेसट्ठदा असंखेज्जगुणा । आधाकम्मदव्वट्ठदा अणंतगुणा । तस्सेव पदेसट्ठदा अणंतगुणा । समोदाणकम्मपदेसट्ठदा अणंतगुणा ।

कर्मकी प्रदेशार्थता संख्यातगुणी है । इसी प्रकार संयतोंके भी जानना चाहिये । इतनी विशेषता है कि इनके प्रयोगकर्मकी द्रव्यार्थतासे समवधानकर्म और तपःकर्मकी द्रव्यार्थता विशेष अधिक होती है ।

सामायिक और छेदोपस्थापनाशुद्धिसंयत जीवोंके क्रियाकर्मकी द्रव्यार्थता सबसे स्तोक है । इससे प्रयोगकर्म, समवधानकर्म और तपःकर्मकी द्रव्यार्थता विशेष अधिक है । इससे क्रियाकर्मकी प्रदेशार्थता असंख्यातगुणी है । इससे प्रयोगकर्म और तपःकर्म इन दोनोंकी प्रदेशार्थता समान होकर विशेष अधिक हैं । इससे अधःकर्मकी द्रव्यार्थता अनन्तगुणी हैं । इससे उसीकी प्रदेशार्थता अनन्तगुणी है । इससे समवधानकर्मकी प्रदेशार्थता अनन्तगुणी हैं । चक्षुदर्शनवालोंका कथन मनोयोगवालोंके समान है । इसी प्रकार संज्ञी जीवोंके भी कहना चाहिये ।

लेश्यामार्गणाके अनुवादसे पीत और पद्मलेश्यावालोंमें तपःकर्मकी द्रव्यार्थता सबसे स्तोक है । इससे क्रियाकर्मकी द्रव्यार्थता असंख्यातगुणी है । इससे प्रयोगकर्म और समवधान-कर्मकी द्रव्यार्थता असंख्यातगुणी है । इससे तपःकर्मकी प्रदेशार्थता असंख्यातगुणी है । इससे क्रियाकर्मकी प्रदेशार्थता असंख्यातगुणी है । इससे प्रयोगकर्मकी प्रदेशार्थता असंख्यातगुणी है । इससे अधःकर्मकी द्रव्यार्थता अनन्तगुणी है । इससे उसीकी प्रदेशार्थता अनन्तगुणी है । इससे समवधानकर्मकी प्रदेशार्थता अनन्तगुणी है । लेश्या रहित जीवोंके तपःकर्म और समवधान-कर्मकी द्रव्यार्थता सबसे स्तोक है । इससे तपःकर्मकी प्रदेशार्थता असंख्यातगुणी है । इससे अधःकर्मकी द्रव्यार्थता अनन्तगुणी है । इससे उसीकी प्रदेशार्थता अनन्तगुणी हैं । इससे समवधान-कर्मकी प्रदेशार्थता अनन्तगुणी है ।

---

१ अ-आ-ताप्रतिषु 'पओअकम्मप०-आधा-', काप्रतौ 'पओअकम्मपदेसट्ठदा आधा-' इति पाठः ।

भवियाणुवादेण अभवसिद्धिएसु सव्वत्थोवाओ पओअकम्म-समोदाणकम्मदव्वट्ठदाओ। पओअकम्मपदेसट्ठदा असंखेज्जगुणा। आधाकम्मदव्वट्ठदा अणंतगुणा। तस्सेव-पदेसट्ठदा अणंतगुणा। समोदाणकम्मपदेसट्ठदा अणंतगुणा। सम्मत्ताणुवादेण वेदगसम्माइट्ठीसु सव्वत्थोवा तवोकम्मदव्वट्ठदा। पओअकम्म-समोदाणकम्म-किरियाकम्मदव्वट्ठदाओ असंखेज्जगुणाओ। तवोकम्मपदेसट्ठदा असंखेज्जगुणा। पओअकम्म-किरियाकम्मपदेसट्ठदाओ असंखेज्जगुणाओ। आधाकम्मदव्वट्ठदा अणंतगुणा। तस्सेव पदेसट्ठदा अणंतगुणा। समोदाणकम्मपदेसट्ठदा अणंतगुणा।

णेव सण्णी णेव असण्णीसु सव्वत्थोवाओ इरियावथकम्म-पओअकम्मदव्वट्ठदाओ। समोदाणकम्म-तवोकम्मदव्वट्ठदाओ विसेसाहियाओ। पओअकम्मपदेसट्ठदा असंखेज्जगुणा। तवोकम्मपदेसट्ठदा विसेसाहिया। आधाकम्मदव्वट्ठदा अणंतगुणा। तस्सेव पदेसट्ठदा अणंतगुणा। इरियावहकम्मपदेसट्ठदा अणंतगुणा। समोदाणकम्मपदेसट्ठदा विसेसाहिया। एवं दव्वट्ठ-पदेसट्ठदप्पाबहुअं समत्तं।

असंबद्धमिदमप्पाबहुअं, सुत्ताभावादो? ण एस दोसो, देसामासियसुत्तेण पुव्वपरूविदेण सूचिदत्तादो। एवं कम्मणिक्खेवे त्ति समत्तमणियोगद्दारं।

भव्यमार्गणाके अनुवादसे अभव्योंमें प्रयोगकर्म और समवधानकर्मकी द्रव्यार्थता सबसे स्तोक है। इससे प्रयोगकर्मकी प्रदेशार्थता असंख्यातगुणी है। इससे अधःकर्मकी द्रव्यार्थता अनन्तगुणी है। इससे उसीकी प्रदेशार्थता अनन्तगुणी है। इससे समवधानकर्मकी प्रदेशार्थता अनन्तगुणी है। सम्यक्त्वमार्गणाके अनुवादसे वेदकसम्यग्दृष्टियोंमें तपःकर्मकी द्रव्यार्थता सबसे स्तोक है। इससे प्रयोगकर्म, समवधानकर्म और क्रियाकर्मकी द्रव्यार्थता असंख्यातगुणी है। इससे तपःकर्मकी प्रदेशार्थता असंख्यातगुणी है। इससे प्रयोगकर्म और क्रियाकर्मकी प्रदेशार्थता असंख्यातगुणी है। इससे अधःकर्मकी द्रव्यार्थता अनन्तगुणी है। इससे उसीकी प्रदेशार्थता अनन्तगुणी है। इससे समवधानकर्मकी प्रदेशार्थता अनन्तगुणी है।

न संज्ञी न असंज्ञी जीवोंमें ईर्यापथकर्म और प्रयोगकर्मकी द्रव्यार्थता सबसे स्तोक है। इससे समवधानकर्म और तपःकर्मकी द्रव्यार्थता विशेष अधिक है। इससे प्रयोगकर्मकी प्रदेशार्थता असंख्यातगुणी है। इससे तपःकर्मकी प्रदेशार्थता विशेष अधिक है। इससे अधःकर्मकी द्रव्यार्थता अनन्तगुणी है। इससे उसीकी प्रदेशार्थता अनन्तगुणी है। इससे ईर्यापथकर्मकी प्रदेशार्थता अनन्तगुणी है। इससे समवधानकर्मकी प्रदेशार्थता विशेष अधिक है। इस प्रकार द्रव्य-प्रदेशार्थता-अल्पबहुत्व समाप्त हुआ।

शंका—यह अल्पबहुत्व असम्बद्ध है, क्योंकि, इसका प्रतिपादक सूत्र नहीं उपलब्ध होता?

समाधान—यह कोई दोष नहीं है, क्योंकि, पहले कहे गये देशामार्शक सूत्रसे इसकी सूचना मिलती है।

इस प्रकार कर्मनिक्षेप अनुयोगद्वार समाप्त हुआ।

सेसंचोद्दसअणियोगद्दाराणि एत्थ परूवेदव्वाणि । उवसंहारकारएण किमट्ठं तेसिं परूवणा [ण] कदा? ण एस दोसो, कम्मस्स सेसाणियोगद्दारेहि परूवणाए कीरमाणाए पुणरुत्तदोसो पसज्जदि त्ति तदपरूवणादो। महाकम्मपयडिपाहुडे किमट्ठं तेहि अणियोगद्दारेहि तस्स परूवणा कदा? ण, मंदमेहाविजणाणुग्गहट्ठं पयदपरूवणाए पुणरुत्तदोसाभावादो। ण च अपुणरुत्तस्सेव कत्थ वि परूवणा अत्थि, सव्वत्थे पुणरुत्तापुणरुत्तपरूवणाए चेव उवलंभादो।

एवं कम्मे त्ति समत्तमणिओगद्दारं।

शंका—शेष चौदह अनुयोगद्वार यहां कहने चाहिये। उपसंहार करनेवालेने उनका कथन किसलिये नहीं किया है?

समाधान—यह कोई दोष नहीं है, क्योंकि कर्मका शेष अनुयोगद्वारोंके द्वारा कथन करनेपर पुनरुक्त दोष आता है, इसलिये उनका कथन नहीं किया है।

शंका—महाकर्मप्रकृतिप्राभृतमें उन अनुयोगोंके द्वारा उसका कथन किसलिये किया है?

समाधान—नहीं, क्योंकि मन्दबुद्धि जनोंका उपकार करनेके लिये प्रकृत प्ररूपणा करनेपर पुनरुक्त दोष नहीं प्राप्त होता। अपुनरुक्त अर्थकी ही कहींपर प्ररूपणा होती है, ऐसा नहीं है; क्योंकि सर्वत्र पुनरुक्त और अपुनरुक्त प्ररूपणा ही उपलब्ध होती हैं।

इस प्रकार कर्म अनुयोगद्वार समाप्त हुआ।

---

१ काप्रतौ 'सेस' इत्येतत्पदं नोपलभ्यते। २ अप्रतौ 'सव्वत्थ सव्वत्थं', काप्रतौ 'सव्वत्थ सव्वत्थ' ताप्रतौ 'सव्वत्थ [सव्वत्थं-] इति पाठः।

पयडिअणियोगद्दारं

अरविंदगब्भगउरं ससुरहिगंधेण वासियदियंतं ।
पयडिअणियोयमेयं वोच्छं पउमप्पहं णमिउं ॥ १ ॥

पयडि त्ति तत्थ इमाणि पयडीए सोलस अणिओगद्दाराणि णादव्वाणि भवंति ॥ १ ॥

प्रकृतिः स्वभावः शीलमित्यनर्थान्तरम्, तं परूवेदि त्ति अणियोगद्दारं पि पयडी णाम उवयारेण । तत्थ पयडीए सोलस अणियोगद्दाराणि होंति । अणियोगद्दारेहि विणा पयडि-परूवणा किण्ण कीरदे ? ण, अणिओगद्दारेहि विणा सुहेण तदत्थावगमोवायाभावादो । तेसिमणियोगद्दाराणं णामणिद्देसट्ठमुत्तरसुत्तं भणदि—

पयडिणिक्खेवे पयडिणयविभासणदाए पयडिणामविहाणे पयडिदव्वविहाणे पयडिखेत्तविहाणे पयडिकालविहाणे पयडिभाव-विहाणे पयडिपच्चयविहाणे पयडिसामित्तविहाणे पयडि-पयडिविहाणे पयडिगदिविहाणे पयडिअंतर[१]विहाणे पयडिसण्णियासविहाणे पयडि-परिमाणविहाणे पयडिभागाभागविहाणे पयडिअप्पाबहुए त्ति ॥ २ ॥

अरविन्दके गर्भके समान गौर अर्थात् लाल रंगवाले और अपनी सुरभि गन्धसे दसों दिशाओंको वासित करनेवाले पद्मप्रभ जिनको नमस्कार करके इस प्रकृतिअनुयोगद्वारका कथन करते हैं ॥ १ ॥

प्रकृतिका अधिकार है । उसमें ये सोलह अनुयोगद्वार ज्ञातव्य हैं ॥ १ ॥

प्रकृति, स्वभाव और शील ये एकार्थवाची शब्द हैं । चूंकि यह उसका प्ररूपण करता है, इसलिये इस अनुयोगद्वारका भी नाम उपचारसे प्रकृति है । उस प्रकृतिके सोलह अनुयोगद्वार हैं ।

शंका—अनुयोगद्वारोंके विना प्रकृतिका कथन क्यों नहीं करते ?

समाधान—नहीं, क्योंकि अनुयोगद्वारोंके विना सुखपूर्वक उसके ज्ञान होनेका कोई उपाय नहीं है ।

अब उन अनुयोगद्वारोंके नामोंका निर्देश करनेके लिये आगेका सूत्र कहते हैं—

प्रकृतिनिक्षेप, प्रकृतिनयविभाषणता, प्रकृतिनामविधान, प्रकृतिद्रव्यविधान, प्रकृति-क्षेत्रविधान, प्रकृतिकालविधान, प्रकृतिभावविधान, प्रकृतिप्रत्ययविधान, प्रकृतिस्वामित्व-विधान, प्रकृति-प्रकृतिविधान, प्रकृतिगतिविधान, प्रकृतिअन्तरविधान, प्रकृतिसंनिकर्ष-विधान, प्रकृतिपरिमाणविधान, प्रकृतिभागाभागविधान और प्रकृतिअल्पबहुत्व ॥ २ ॥

---

१ ताप्रतौ 'पयडिअं (अणं) तर–' इति पाठः ।

एदेसिं सोलसण्णं पि अणियोगद्दाराणमुत्थाणत्थपरूवणा[1] जाणिदूण कायव्वा ।

पयडिणिक्खेवे त्ति ॥ ३ ॥

तत्थ जो सो पयडिणिक्खेवो तस्स अत्थपरूवणं कस्सामो । को णिक्खेवो णाम ? संशय-विपर्ययानध्यवसायेभ्योऽपसार्य निश्चये क्षिपतीति निक्षेपः बाह्यार्थविकल्पप्ररूपको वा ।

चउव्विहो पयडिणिक्खेवो—णामपयडी ट्ठवणपयडी दव्वपयडी भावपयडी चेदि ॥ ४ ॥

एवं पयडिणिक्खेवो चउव्विहो होदि । ण च णिक्खेवो चउव्विहो चेव होदि त्ति णियमो अत्थि त्ति, चउव्विहवयणस्स देसामासियस्स गहणादो । एत्थ ताव णयविभासणदाए विणा णिक्खेवो ण णव्वदि त्ति कट्टु ताव णयविहासणं कहामो त्ति उत्तरसुत्तमागदं—

पयडिणयविभासणदाए को णओ काओ पयडीओ इच्छदि ? ॥ ५ ॥

एदं पुच्छासुत्तं सुगमं ।

णेगम-ववहार-संगहा सव्वाओ ॥ ६ ॥

इन सोलह ही अनुयोगद्वारोंके उत्थानकी अर्थप्ररूपणा जानकर करनी चाहिये ।

प्रकृतिनिक्षेपका अधिकार है ॥ ३ ॥

उनमें जो प्रकृतिनिक्षेप अनुयोगद्वार है उसके अर्थका कथन करते हैं ।

शंका—निक्षेप किसे कहते हैं ?

समाधान—संशय, विपर्यय और अनध्यवसाय रूप विकल्पसे हटाकर जो निश्चयमें स्थापित करता है उसे निक्षेप कहते हैं । अथवा बाह्य अर्थके सम्बन्धमें जितने विकल्प होते हैं उनका जो कथन करता है उसे निक्षेप कहते हैं ।

प्रकृतिनिक्षेप चार प्रकारका है— नामप्रकृति, स्थापनाप्रकृति, द्रव्यप्रकृति और भावप्रकृति ॥ ४ ॥

इस प्रकार प्रकृतिनिक्षेप चार प्रकारका होता है । निक्षेप चार प्रकारका ही होता है, ऐसा कोई एकान्त नियम नहीं है; क्योंकि ' चार प्रकारका है ' यह वचन देशामर्शक है और इसी रूपसे यहां इसका ग्रहण किया गया है । यहां नयविभाषणताके विना निक्षेपका ज्ञान नहीं हो सकता, ऐसा समझकर पहले नयविभाषणता अधिकारका कथन करते हैं । इसके लिये आगेका सूत्र आया है—

प्रकृतिनयविभाषणताकी अपेक्षा कौन नय किन प्रकृतियोंको स्वीकार करता है ? ॥ ५ ॥

यह पृच्छासूत्र सुगम है ।

नैगम, व्यवहार और संग्रह नय सब प्रकृतियोंको स्वीकार करते हैं ॥ ६ ॥

---

१ अ-आप्रत्योः ' -मुद्दाणत्थपरूवणा ', का-ताप्रत्योः ' -मद्दाणत्थपरूवणा ' इति पाठः ।

नैकगमो नैगमः, द्रव्य-पर्यायद्वयं मिथो विभिन्नमिच्छन् नैगम इति यावत् । लोकव्यवहारनिबन्धनं द्रव्यमिच्छन् पुरुषो व्यवहारनयः । व्यवहारमनपेक्ष्य सत्तादिरूपेण सकलवस्तुसंग्राहकः संग्रहनयः । एदे तिण्णि वि णया सव्वाओ पयडीओ इच्छंति, तिकाल[1]गोयरत्तादो ।

उजुसुदो ट्ठवणपयडिं णेच्छदि ॥ ७ ॥

तस्स विसए सारिच्छलक्खणसामण्णाभावादो । तं पि कुदो ? एयत्तं मोत्तूण सारिच्छाणुवलंभादो । ण च कप्पणाए अण्णदव्वस्स अण्णदव्वेण सह एयत्तं होदि, तहाणुवलंभादो । तम्हा ट्ठवणपयडिं मोत्तूण उजुसुदो णाम-दव्व-भावपयडीओ इच्छदि त्ति सिद्धं । कधं उजुसुदे पज्जवट्ठिए दव्वणिक्खेवसंभवो ? ण, असुद्धपज्जवट्ठिए वंजणपज्जायपरतंते सुहुमपज्जाय-

जो एकको नहीं प्राप्त होता वह नैगम है । जो द्रव्य और पर्याय इन दोनोंको आपसमें अलग अलग स्वीकार करता है वह नैगम है, यह उक्त कथनका तात्पर्य है । लोकव्यवहारके कारणभूत द्रव्यको स्वीकार करनेवाला पुरुष व्यवहारनय है । व्यवहारकी अपेक्षा न करके जो सत्तादिरूपसे सकल पदार्थोंका संग्रह करता है वह संग्रहनय है । ये तीनों ही नय सब प्रकृतियोंको स्वीकार करते हैं, क्योंकि त्रिकालगोचर पदार्थ इनका विषय है ।

विशेषार्थ—इन तीनों नयोंमें पर्यायकी प्रधानता न होनेसे नाम, स्थापना और द्रव्य निक्षेप इनके विषय बन जाते हैं । और पर्यायसे उपलक्षित द्रव्यका नाम भाव है, इसलिये भावनिक्षेप भी इनका विषय बन जाता है । इस प्रकार नामादि चारों प्रकारकी प्रकृतियोंको नैगम, संग्रह और व्यवहार ये तीनों नय विषय करते हैं यह सिद्ध होता है ।

ऋजुसूत्र नय स्थापनाप्रकृतिको नहीं स्वीकार करता ॥ ७ ॥

क्योंकि, सादृश्यलक्षण सामान्य ऋजुसूत्र नयका विषय नहीं है ।

शंका—यह इसका विषय क्यों नहीं है ?

समाधान—क्योंकि, एकत्वके विना सादृश्य नहीं उपलब्ध होता । यदि कहा जाय कि कल्पनाके द्वारा अन्य द्रव्यका अन्य द्रव्यके साथ एकत्व बन जायगा, सो भी बात नहीं है; क्योंकि इस तरहका एकत्व उपलब्ध नहीं होता । इसलिये स्थापनाप्रकृतिके सिवा ऋजुसूत्र नय नाम, द्रव्य और भाव प्रकृतियोंको स्वीकार करता है; यह सिद्ध होता है ।

विशेषार्थ— दोमें सादृश्यलक्षण एकत्वका आरोप किये विना स्थापना बन नहीं सकती, परन्तु ऋजुसूत्रनय सादृश्यलक्षण सामान्यको विषय नहीं करता । यही कारण है कि स्थापनानिक्षेपको ऋजुसूत्र नयका विषय नहीं माना है ।

शंका—ऋजुसूत्र नय पर्यायार्थिक है । उसका विषय द्रव्यनिक्षेप कैसे सम्भव है ?

समाधान—नहीं, क्योंकि जो व्यंजनपर्यायके आधीन है और जो सूक्ष्म पर्यायोंके भेदोंके आलम्बनसे नानात्वको प्राप्त हैं ऐसे अशुद्ध पर्यायार्थिक नयका विषय द्रव्यनिक्षेप है, ऐसा

१ अ-आ-काप्रतिषु 'इच्छंति तिकाल-', ताप्रतौ 'इच्छंति त्ति, काल-' इति पाठः ।

ेहि णाणत्तमुवगए[1] तदविरोहादो ।

सद्दणओ णामपयडिं भावपयडिं च इच्छदि ॥ ८ ॥

दव्वाविणाभाविस्स णामणिक्खेवस्स कधं सद्दणए संभवो ? ण, णामे दव्वाविणा-वे संते वि तत्थ दव्वम्हि तस्स सद्दणयस्स अत्थित्ताभावादो । सद्दुवारेण पज्जायदुवारेण च ःथभेदमिच्छंतए सद्दणए दो चेव णिक्खेवा संभवंति त्ति भणिदं होदि ।

जा सा णामपयडी णाम सा जीवस्स वा, अजीवस्स वा, ीवाणं वा, अजीवाणं वा, जीवस्स च अजीवस्स च, जीवस्स च जीवाणं च, जीवाणं च अजीवस्स च, जीवाणं च अजीवाणं च स्स णामं कीरदि पयडि त्ति सा सव्वा णामपयडी णाम ॥ ९ ॥

जं किंचि णामं तस्स एदे अट्ठ चेव भंगा आधारा होंति, एदेहिंतो पुधभूदस्स णस्स णामाहारस्स अणुवलंभादो । एदेसु अट्ठसु आधारेसु वट्टमाणो पयडिसद्दो णाम-डी णाम । कधमप्पाणम्हि पयडिसद्दो वट्टदे ? न, अर्थाभिधान-प्रत्ययास्तुल्यनामधेया इति ब्दिकजनप्रसिद्धत्वात् । एयस्स पयडिसद्दस्स अणेगेसु अत्थेसु वुत्तिविरोहादो ण दुसंजोगादि-

---

ानेमें कोई विरोध नहीं आता ।

शब्द नय नामप्रकृति और भावप्रकृतिको स्वीकार करता है ॥ ८ ॥

शंका—नामनिक्षेप द्रव्यका अविनाभावी है । वह शब्दनयका विषय कैसे हो सकता है ?

समाधान—नहीं, क्योंकि यद्यपि नाम द्रव्यका अविनाभावी है तो भी द्रव्यमें शब्दनयका त्तत्व अर्थात् व्यवहार नहीं स्वीकार किया गया है । अतः शब्द द्वारा और पर्याय द्वारा अर्थभेदको कार करनेवाले शब्दनयमें दो ही निक्षेप सम्भव हैं, यह उक्त कथनका तात्पर्य है ।

नामप्रकृति यथा—एक जीव, एक अजीव, नाना जीव, नाना अजीव, एक जीव और अजीव, एक जीव और नाना अजीव, नाना जीव और एक अजीव, नाना जीव और ा अजीव; इस प्रकार जिसका 'प्रकृति' ऐसा नाम करते हैं वह सब नामप्रकृति है ॥९॥

जो कुछ भी नाम है उसके ये आठ भंग ही आधार होते हैं, क्योंकि इनसे भिन्न अन्य पदार्थ नामका आधार नहीं उपलब्ध होता । इन आठ आधारोंमें विद्यमान प्रकृति शब्द प्रकृति कहा जाता है ।

शंका—प्रकृति शब्दकी अपनेमें ही प्रवृत्ति कैसे होती है ?

समाधान—नहीं, क्योंकि अर्थ, अभिधान और प्रत्यय ये तुल्य नामवाले होते हैं, ऐसा ब्दिक जनोंमें प्रसिद्ध है ।

शंका—एक प्रकृति-शब्दकी अनेक अर्थोंमें प्रवृत्ति माननेमें चूंकि विरोध आता है, लिये द्विसंयोगी आदि भंग नहीं बन सकते ?

---

१ ताप्रतौ 'णाणत्तमुवगएहि' इति पाठः ।

भंगा संभवंति ? ण एस दोसो, एयस्स गोसद्दस्स सग्गादिअणेगेसु अत्थेसु उत्तिदंसणादो। अत्रोपयोगी श्लोकः— वाग्दिग्भ्यां० ॥ १ ॥

होदु एक्कस्स सद्दस्स बहुसु अत्थेसु कमेण वुत्ती, ण अक्कमेण; वुत्तिविरोहादो। ण एस दोसो, पासादसद्दस्स अक्कमेण अणेगेसु वट्टमाणस्स उवलंभादो।

जा सा ट्ठवणपयडी णाम सा कट्ठकम्मेसु वा चित्तकम्मेसु वा पोत्तकम्मेसु वा लेप्पकम्मेसु वा लेणकम्मेसु वा सेलकम्मेसु वा गिहकम्मेसु वा भित्तिकम्मेसु वा दंतकम्मेसु वा भेंडकम्मेसु वा अक्खो वा वराडओ वा जे चामण्णे ट्ठवणाए ट्ठविज्जंति पगदि त्ति सा सव्वा ट्ठवणपयडी णाम ॥ १० ॥

जा सा ट्ठवणपयडी णाम तिस्से अत्थपरूवणं कस्सामो— का ट्ठवणा णाम ? सोऽयमित्यभेदेन स्थाप्यतेऽन्योऽस्यां स्थापनयेति प्रतिनिधिः स्थापना । सा दुविहा सब्भावासब्भावट्ठवणाभेदेण । तत्थ सब्भावट्ठवणाए आहारपरूवणा कीरदे— कट्ठेसु जाओ घडिदपडि-

---

समाधान— यह कोई दोष नहीं है, क्योंकि, एक गो शब्दकी स्वर्ग आदि अनेक अर्थोंमें प्रवृत्ति देखी जाती है। यहां उपयोगी श्लोक—

वचन, दिशा………ये गोशब्दके एकार्थवाची नाम हैं ॥ १ ॥

शंका— एक शब्दकी क्रमसे अनेक अर्थोंमें वृत्ति भले ही हो, किन्तु वह अक्रमसे नहीं हो सकती; क्योंकि अक्रमसे वृत्ति माननेमें विरोध आता है ?

समाधान— यह कोई दोष नहीं है, क्योंकि, अक्रमसे अनेक अर्थोंमें विद्यमान प्रासाद शब्द उपलब्ध होता है।

स्थापनाप्रकृति यथा— काष्ठकर्मोंमें, चित्रकर्मोंमें, पोत्तकर्मोंमें, लेप्यकर्मोंमें, लयनकर्मोंमें, शैलकर्मोंमें, गृहकर्मोंमें, भित्तिकर्मोंमें, दन्तकर्मोंमें, भेंडकर्मोंमें तथा अक्ष या वराटक और इनको लेकर अन्य जो भी 'प्रकृति' इस प्रकार अभेदरूपसे स्थापना अर्थात् बुद्धिमें स्थापित किये जाते हैं वह सब स्थापनाप्रकृति है ॥ १० ॥

जो स्थापनाप्रकृति है उसके अर्थका विवरण करते हैं।

शंका— स्थापना किसे कहते हैं ?

समाधान— 'वह यह है' इस प्रकार अभेदरूपसे जो अन्य पदार्थ विवक्षित वस्तुमें प्रतिनिधिरूपसे स्थापित किया जाता है वह स्थापना है।

वह दो प्रकारकी है— सद्भावस्थापना और असद्भावस्थापना। उनमेंसे पहले सद्भावस्थापनाके आधारका कथन करते हैं— काष्ठोंमें जो द्विपद, चतुष्पद, पादरहित या बहुत पादवाले

---

१ काप्रतौ 'वाग्दिग्भ्यां' इति पाठः। वाचि वारि पशौ भूमौ दिशि लोम्नि पवौ दिवि। विशिखे दीधितौ दृष्टावेकादशसु गौर्मतः ॥ अने. नाम. २६. गौरुदके दृशि। स्वर्गे दिशि पशौ रश्मौ वज्रे भूमाविषौ गिरि ॥ अनेकार्थसंग्रह १–६. स्वर्गेषु-पशु-वाग्वज्र-दिङ्नेत्र-घृणि-भू-जले । लक्ष्यदृष्टया स्त्रियां पुंसि··· ॥ अमर. (नानार्थवर्ग) ३०. २ षट्खं. पु. ९, पृ. २४८.

माओ दुवय-चदुप्पय-अपाद-पादसंकुलाणं जीवाणं ताओ कट्ठकम्माणि णाम । कुड्ड-कट्ठ-सिला-थंभादिसु विविहवण्णविसेसेहि लिहिदपडिमाओ चित्तकम्माणि णाम । विविहवत्थेसु कयपडिमाओ पोत्तकम्माणि णाम । मट्टिय-छुहादीहि कदपडिमाओ लेप्पकम्माणि णाम । पव्वदेसु सुक्खदजिणादिपडिमाओ लेणकम्माणि णाम । सिलासु पुधभूदासु उक्कच्छिण्णासु वा कदअरहंतादिपंचलोगपालपडिमाओ सेलकम्माणि णाम । जिणहरादीणं चंदसालादिसु अभेदेण घडिदपडिमाओ गिहकम्माणि णाम । कुड्डेसु अभेदेण घडिदपंचलोगपालपडिमाओ भित्तिकम्माणि णाम । दंतिदंतुक्किण्णजिणिंदपडिमाओ दंतकम्माणि णाम । भेंडेसु घडिदपडिमाओ भेंडकम्माणि णाम । एदेहि सुत्तेहि सब्भावट्ठवणा परूविदा । कधं पयडीए सब्भावट्ठवणा जुज्जदे ? ण एस दोसो, अरहंत-सिद्धाइरिय-साहूवज्झायादीणं वण्णागार-गयरागादि-सहावेण घडिदपडिमाणं पयडीए सब्भावट्ठवणत्तदंसणादो । 'अक्खो वा वराडओ वा' एदेहि वयणेहि असब्भावट्ठवणा परूविदा । जे च अण्णे एवमादिया अमा[3] अभेदेण ट्ठवणाए बुद्धीए ट्ठविज्जंति सा सव्वा ट्ठवणपयडी णाम ।

जीवोंकी प्रतिमायें घड़ी जाती हैं वे काष्ठकर्म हैं। भीत, काष्ठ, शिला और स्तम्भ आदिकोंमें जो नाना प्रकारके रंगविशेषोंके द्वारा प्रतिमायें लिखी जातीं हैं वे चित्रकर्म हैं। नाना प्रकारके वस्त्रोंमें जो प्रतिमायें बनाई जातीं हैं वे पोत्तकर्म हैं। मिट्टी और चूना आदिके द्वारा जो प्रतिमायें बनाई जातीं हैं वे लेप्यकर्म हैं। पर्वतोंमें जो अच्छी तरह छीलकर जिन भगवान् आदिकी प्रतिमायें बनाई जाती हैं वे लयनकर्म हैं। अलग रखी हुई शिलाओंमें या उखाड़ कर तोड़ी गई शिलाओंमें जो अरहन्त आदि पांच लोकपालोंकी प्रतिमायें बनाई जाती हैं वे शैलकर्म हैं। जिनगृह आदिकी चन्द्रशाला आदिकोंमें अभिन्नरूपसे घड़ी गई प्रतिमायें गृहकर्म है। भीतोंमें उनसे अभिन्न बनाई गई पांच लोकपालोंकी प्रतिमायें भित्तिकर्म हैं। हाथीके दांतोंमें उकीरी गई जिनेन्द्र भगवान्की प्रतिमायें दन्तकर्म हैं। भेंड अर्थात् कांसे आदिमें बनाई गई प्रतिमायें भेंडकर्म हैं। इन सूत्रोंके द्वारा सद्भावस्थापना कही गई है।

शंका—प्रकृतिमें सद्भावस्थापना कैसे बन सकती है ?

समाधान—यह कोई दोष नहीं है, क्योंकि अरहन्त, सिद्ध, आचार्य, साधु और उपाध्याय आदिकी वर्ण, आकार और वीतराग आदि स्वभावके द्वारा घड़ी गई प्रतिमाओंकी प्रकृतिमें सद्भावस्थापनापना देखी जाती है।

'अक्खो वा वराडओ वा' इन वचनोंके द्वारा असद्भावस्थापना कही गई है। इसी प्रकार इनको लेकर और जो दूसरे अमा अर्थात् अभेदसे स्थापना अर्थात् बुद्धिमें स्थापित किये जाते हैं वह सब स्थापनाप्रकृति है।

---

१ ताप्रतौ 'कुट्टकद' इति पाठः। २ अ-आप्रत्योः 'उदयपडिमाओ', काप्रतौ 'चुदमपडिमाओ', ताप्रतौ 'उदम (कद) पडिमाओ' इति पाठः। ३ ताप्रतौ 'अमी' इति पाठः।

जा सा दव्वपयडी णाम सा दुविहा—आगमदो दव्वपयडी चेव णोआगमदो दव्वपयडी चेव ॥ ११ ॥

आगमो गंथो सुदणाणं दुवालसंगमिदि एयट्ठो । आगमस्स दव्वं जीवो आगमदव्वं, सा चेव पयडी आगमदव्वपयडी । आगमदव्वपयडीदो अण्णा पयडी णोआगमदव्व-पयडी णाम ।

जा सा आगमदो दव्वपयडी णाम तिस्से इमे अत्थाधियारा—ट्ठिदं जिदं परिजिदं वायणोवगदं सुत्तसमं अत्थसमं गंथसमं णामसमं घोससमं[1] ॥ १२ ॥

एवं णवविहो आगमो । एदेसिं णवण्णं पि आगमाणं जहा वेयणाए सरूवपरूवणा कदा तहा एत्थ वि कायव्वा, विसेसाभावादो । एदेसिमागमाणमुवजोगवियप्पपरूवणट्ठ-मुत्तरसुत्तं भणदि—

जा तत्थ वायणा वा पुच्छणा वा पडिच्छणा वा परियट्टणा वा अणुपेहणा वा थय-थुइ-धम्मकहा वा जे चामण्णे एवमादिया[2] ॥ १३ ॥

एदेसिमट्ठण्णं पि उवजोगाणं जहा वेयणाए परूवणा कदा तहा कायव्वा । 'जे च अमी अण्णे एवमादिया' एदेण संखाणियमो पडिसिद्धो त्ति दट्ठव्वो ।

द्रव्यप्रकृति दो प्रकारकी है — आगमद्रव्यप्रकृति और नोआगमद्रव्यप्रकृति ॥ ११ ॥

आगम, ग्रन्थ, श्रुतज्ञान और द्वादशांग ये एकार्थवाची शब्द हैं। आगमका द्रव्य अर्थात् जीव आगमद्रव्य है, वही प्रकृति आगमद्रव्यप्रकृति है। तथा आगमद्रव्यप्रकृतिसे भिन्न प्रकृति नोआगमद्रव्यप्रकृति है।

जो आगमद्रव्यप्रकृति है उसके ये अर्थाधिकार हैं—स्थित, जित, परिजित, वाचनोपगत, सूत्रसम, अर्थसम, ग्रन्थसम, नामसम और घोषसम ॥ १२ ॥

इस तरह नौ प्रकारका आगम है। इन नौ ही आगमोंके स्वरूपकी वेदनाखण्ड (कृति-अनुयोगद्वार सूत्र ५४) में जिस प्रकार प्ररूपणा की है उसी प्रकार यहां भी करनी चाहिये, क्योंकि उससे इसमें कोई विशेषता नहीं है।

अब इन आगमोंके उपयोगरूप विकल्पका कथन करनेके लिये आगेका सूत्र कहते हैं—

उनकी वाचना, पृच्छना, प्रतीच्छना, परिवर्तना, अनुप्रेक्षणा, स्तव, स्तुति और धर्मकथा होती है। तथा इनसे लेकर और भी उपयोग होते हैं ॥ १३ ॥

इन आठों ही उपयोगोंका कथन जिस प्रकार वेदनाखण्ड (कृतिअनुयोगद्वार सूत्र ५५) में किया है उसी प्रकार यहां भी करना चाहिये। 'इनसे लेकर और जितने हैं' इस वचनके द्वारा संख्याके नियमका प्रतिषेध किया है, ऐसा जानना चाहिये।

१ षट्खं. पु. ९, पृ. २५१. २ षट्खं. पु. ९, पृ. २६२.

अणुवजोगा दव्वे त्ति कट्टु जावदिया अणुवजुत्ता दव्वा सा सव्वा आगमदो दव्वपयडी णाम ॥ १४ ॥

जाणिदूण अणुवजोगा उवजोगवज्जिया पुरिसा दव्वमिदि काऊण जावदिया अणुवजुत्ता दव्वा सयला वि आगमदो दव्वपयडी णाम ।

जा सा णोआगमदो दव्वपयडी णाम सा दुविहा—कम्मपयडी चेव णोकम्मपयडी चेव ॥ १५ ॥

एवं दुविहा चेव णोआगमदव्वपयडी होदि, ण तिविहा; कम्म-णोकम्मवदिरित्तस्स णोआगमदव्वस्स अणुवलंभादो ।

जा सा कम्मपयडी णाम सा थप्पा ॥ १६ ॥

स्थाप्या । कुदो ? बहुवण्णणिज्जत्तादो ।

जा सा णोकम्मपयडी णाम सा अणेयविहा ॥ १७ ॥

अणेयाणं णोकम्मपयडीणं उवलंभादो । तं जहा—

घड-पिढर[1]-सरावारंजणोलुंचणादीणं विविहभायणविसेसाणं

अनुपयुक्त द्रव्य ऐसा समझकर जितने अनुपयुक्त द्रव्य हैं वह सब आगमद्रव्यप्रकृति है ॥ १४ ॥

जानकर अनुपयुक्त अर्थात् उपयोगरहित पुरुष द्रव्य हैं, ऐसा समझकर जितने अनुपयुक्त द्रव्य हैं वह सब आगमद्रव्यप्रकृति कहलाती है ।

विशेषार्थ—पहले आगमका अर्थ श्रुतज्ञान और उसका आधारभूत द्रव्य जीव बतला आये हैं । यह विवक्षित विषयको जानकर जब तक उसके उपयोगसे रहित होता है तब तक उस विषयकी अपेक्षा इसकी आगमद्रव्य संज्ञा होती है । द्रव्यमें पर्याय अविवक्षित रहती है, इसलिये इसे प्रकृत विषयके उपयोगसे रहित बतलाया है । यहां आगमद्रव्यप्रकृतिका प्रकरण है । इसलिये प्रकृतिविषयक शास्त्रका जानकार किन्तु उसके उपयोगसे रहित जीव आगमद्रव्यप्रकृति है, यह उक्त कथनका तात्पर्य है ।

नोआगमद्रव्यप्रकृति दो प्रकारकी है—कर्मप्रकृति और नोकर्मप्रकृति ॥ १५ ॥

इस प्रकार नोआगमद्रव्यप्रकृति दो प्रकारकी ही होती है, तीन प्रकारकी नहीं होती; क्योंकि, कर्म और नोकर्मके सिवा अन्य नोआगमद्रव्य नहीं उपलब्ध होता ।

जो नोआगमकर्मद्रव्यप्रकृति है उसे स्थगित करते हैं ॥ १६ ॥

वह स्थाप्य अर्थात् स्थगित करने योग्य है, क्योंकि उसके विषयमें बहुत वर्णन करना है ।

जो नोआगमनोकर्मद्रव्यप्रकृति है वह अनेक प्रकारकी है ॥ १७ ॥

क्योंकि, अनेक नोकर्मप्रकृतियां उपलब्ध होती हैं । यथा—

घट, थाली, सकोरा या पुरवा, अरंजण और उलुंचण आदि विविध भाजनविशेषोंकी

---

१ प्रतिपु 'पिडर' इति पाठः । पिठरः स्थाल्यां ना क्लीबं मुस्ता-मन्थानदण्डयोः । मेदिनी. पिठरं मथि मुस्तके । उखायां च······॥ अनेकार्थसंग्रह ३–६१३.

मट्टिया पयडी, धाण[1]तप्पणादीणं च जव-गोधूमा पयडी, सा सव्वा णोकम्मपयडी णाम ॥ १८ ॥

णोकम्मपयडीए अणेयविधत्तपदुप्पायणट्ठं सुत्तमिदमागयं। घडओ कलसो, पिढरो डेरओ, सरावो मल्लओ, अरंजणो अलिंजरो, उलुंचणो गड्डवओ[2], एवमादीणं विविहभायणविसेसाणं मट्टिया पयडी। कुदो ? मट्टियाए विणा सरावादीणमभावोवलंभादो। धाणा लाया[3], तप्पणो सत्तुओ, एदेसिं पयडी[4] जव-गोधूमा च; जव-गोधूमेहि विणा धाणतप्पणाणुवलंभादो। एदं देसामासियं काऊण अण्णेसिं पि णोकम्मदव्वाणं पयडी परूवेदव्वा।

जा सा थप्पा कम्मपयडी णाम सा अट्ठविहा— णाणावरणीय-

मिट्टी प्रकृति है। धान और तर्पण आदिकी जौ और गेहूं प्रकृति है। यह सब नोकर्म-प्रकृति है ॥ १८ ॥

नोकर्म प्रकृतिके अनेक भेदोंका कथन करनेके लिये यह सूत्र आया है। घट कलशको कहते हैं। पिढरका अर्थ डेरअ अर्थात् थाली है। सरावका दूसरा नाम मल्लक है। अरंजण कहो या अलिंजर एक ही अर्थ है। उलुंचण गड्डवअको कहते हैं। इत्यादि विविध भाजनविशेषोंकी मिट्टी प्रकृति है, क्योंकि मिट्टीके विना सराव आदिका अभाव देखा जाता है। धाणका अर्थ लाव है और तर्पण सत्तुको कहते हैं। इनकी प्रकृति जौ और गेहूं हैं, क्योंकि जौ और गेहूंके विना धाण और तर्पण (सत्तु) का अभाव देख जाता है। इसे देशामर्शक समझकर अन्य भी नोकर्मद्रव्योंकी प्रकृति कहनी चाहिये।

विशेषार्थ—यहां द्रव्यनिक्षेपके आगम और नोआगम ये दो भेद मुख्यतः श्रुतज्ञानकी प्रधानतासे किये गये हैं। इसलिये प्रकृतिआगमद्रव्यनिक्षेपका अर्थ प्रकृतिविषयक शास्त्रको जाननेवाला उपयोगरहित आत्मा होता है और नोआगमका अर्थ आगमद्रव्य अर्थात् पूर्वोक्त आत्मासे भिन्न अन्य पदार्थ होता है। अन्य पदार्थ क्या है और उसका यहां किस दृष्टिसे संग्रह करना इष्ट है, इस प्रश्नका यही उत्तर है कि आगमद्रव्यको भावरूप परिणत होनेमें जो साधनसामग्री लगती है वह सब नोआगमद्रव्य शब्दसे ली गई है। ऐसी साधन-सामग्री क्या हो सकती है, जब इसका विचार करते हैं तो वह कर्म और कर्मसे अतिरिक्त अर्थात् नोकर्म यही दो तरहकी सामग्री प्राप्त होती है। इस तरह इस दृष्टिसे द्रव्यनिक्षेपके ये भेद किये गये हैं। वैसे प्रत्येक द्रव्यकी वर्तमान पर्याय अर्थात् भावकी अपेक्षा यदि द्रव्यनिक्षेपका विचार करते हैं तो विवक्षित पर्यायसे पूर्ववर्ती पर्यायविशिष्ट द्रव्य ही द्रव्यनिक्षेपका विपय ठहरता है। अन्यत्र नोआगमके तीन भेद करके एक भावी भेद भी परिगणित किया जाता है। वह भावी भेद इसी दृष्टिकोणको सूचित करता है और तत्तत् भावकी दृष्टिसे उसका द्रव्य यही ठहरता है। इस तरह द्रव्यनिक्षेप क्या है और उसके यहां किस दृष्टिसे भेद किये गये हैं, इसका खुलासा किया।

पहले जो नोआगमकर्मद्रव्यप्रकृति स्थगित कर आये थे वह आठ प्रकारकी है—

---

१ अ-आ-काप्रतिषु 'दाण' इति पाठः। २ अ-ताप्रत्योः 'गट्टुवओ', आप्रतौ 'गद्दुवओ' इति पाठः। ३ आ-का-ताप्रतिषु 'आया' इति पाठः। ४ ताप्रतौ 'पयडी [णं]' इति पाठः।

कम्मपयडी एवं दंसणावरणी-वेयणीय-मोहणीय-आउअ-णामा-गोद-अंतराइयकम्मपयडी चेदि ॥ १९ ॥

ज्ञानमावृणोतीति ज्ञानावरणीयं। बाह्यार्थपरिच्छेदिका जीवशक्तिर्ज्ञानम्। तच्च जीवस्य यावद्द्रव्यभावी गुणः, तेन विना जीवस्य अभावप्रसंगात्। जाणविरहियाणं पोग्गलागासदव्वाणं व जाणविरहियजीवदव्वस्स अत्थित्तं किण्ण होज्ज? ण, जीवदव्वस्स अजीवदव्वेहिंतो वइसेसियगुणाभावेण पुधत्तविरोहादो। ण ताव ओगाहणलक्खणं जीवदव्वं, तस्सागासेण सह एयत्तप्पसंगादो। ण अण्णदव्वाणं गमणागमणहेउअं, तस्स धम्मदव्वे अंतब्भावादो। णावट्ठाणहेउअं, अधम्मदव्वे तस्स अंतब्भावप्पसंगादो। ण अण्णदव्वाणं परियट्टणकारणं, कालदव्वत्तप्पसंगादो। ण रूव-रस-गंध-फासवंतत्तकओ विसेसो, तस्स पोग्गलदव्वत्तप्पसंगादो। तम्हा जीवेण उवजोगलक्खणेण होदव्वमिदि। उवजोगमंतो जीवो, उवजोगवज्जिओ अजीवो त्ति किण्ण घेप्पदे? ण, उवजोगेण विणा आगादिसु

....

ज्ञानावरणीय कर्मप्रकृति, इसी प्रकार दर्शनावरणीय, वेदनीय, मोहनीय, आयु, नाम, गोत्र और अन्तराय कर्मप्रकृति ॥ १९ ॥

जो ज्ञानको आवृत करता है वह ज्ञानावरणीय कर्म है। बाह्य अर्थका परिच्छेद करनेवाली जीवकी शक्ति ज्ञान है। वह जीवका यावद्द्रव्य भावी गुण है, क्योंकि, उसके विना जीवके अभावका प्रसंग आता है।

शंका—ज्ञानरहित पुद्गल और आकाश द्रव्योंके समान ज्ञानरहित जीवका अस्तित्व क्यों नहीं होता?

समाधान—नहीं, क्योंकि विशेष गुणोंके विना जीव द्रव्यको अजीव द्रव्योंसे पृथक् माननेमें विरोध आता है। जीवका लक्षण अवगाहना मानना तो ठीक नहीं है, क्योंकि ऐसा माननेपर आकाश द्रव्यसे जीव द्रव्यका अभेद प्राप्त होता है। जो अन्य द्रव्योंके गमनागमनमें हेतु है वह जीव द्रव्य है, ऐसा मानना भी ठीक नहीं है; क्योंकि, ऐसा माननेपर उसका धर्म द्रव्यमें समावेश हो जाता है। जो अवस्थानका कारण है वह जीव द्रव्य है, यह कहना भी ठीक नहीं है; क्योंकि, उसका अधर्म द्रव्यमें अन्तर्भाव प्राप्त होता है। जो अन्य द्रव्योंके परिवर्तनमें कारण है वह जीव द्रव्य है, यह वचन भी ठीक नहीं है; क्योंकि, ऐसा माननेपर उसके कालद्रव्यत्वका प्रसंग प्राप्त होता है। रूप, रस, गन्ध और स्पर्शवाला होनेसे इनकी अपेक्षा जीवमें विशेषता आती है, यह कहना भी ठीक नहीं है; क्योंकि, ऐसा माननेपर उसके पुद्गलद्रव्यपनेका प्रसंग आता है। इसलिये जीवको उपयोग लक्षणवाला होना चाहिये।

शंका—उपयोगवाला जीव है और उपयोगसे रहित अजीव है, ऐसा क्यों नहीं ग्रहण करते?

समाधान—नहीं, क्योंकि ऐसा माननेपर उपयोगके विना आकाश आदिमें अन्तर्भावको

अंतब्भूदेण जीवेण सह उवजोगस्स संबंधाणुववत्तीदो । उववत्तीए वा जीवेणेव आगासादीहि वि उवजोगस्स संबंधो होज्ज, विसेसाभावादो । जीवोवजोगाणमत्थि संबंधो, संबंध-णिबंधणमदुपच्चयंत-उवजोगवंत-सद्दाभिधेयत्तण्णहाणुववत्तीदो ? ण, रूविणो पोग्गला इच्चेवमाईसु णिच्चजोगे वि मदुपच्चयस्स उप्पत्तिदंसणादो । सो च उवजोगो सायारो अणायारो त्ति दुविहो । तत्थ सायारो णाणं, तदावारयं कम्मं णाणावरणीयमिदि सिद्धं ।

अणायारुवजोगो दंसणं । को अणागारुवजोगो णाम ? सागारुवजोगादो अण्णो[1] । कम्म-कत्तारभावो आगारो, तेण आगारेण सह वट्टमाणो उवजोगो सागारो त्ति । सागारुवजोगेण सव्वो विसईकओ, तदो विसयाभावादो अणागारुवजोगो णत्थि त्ति सणिच्छयं णाणं सायारो, अणिच्छयमणागारो त्ति ण वोत्तुं सक्किज्जदे, संसय-विवज्जय-अणज्झवसायाणमणायारत्तप्पसंगादो । एदं पि णत्थि, केवलिम्हि दंसणाभावप्पसंगादो ? ण एस दोसो, अंतरंगविसयस्स उवजोगस्स अणायारत्तब्भुवगमादो । ण अंतरंगउवजोगो वि

प्राप्त हुए जीवके साथ उपयोगका सम्बन्ध नहीं बन सकता है। फिर भी यदि सम्बन्ध माना जाता है तो जीवके समान आकाश आदिके साथ भी उपयोगका सम्बन्ध हो जायगा, क्योंकि उससे इसमें कोई विशेषता नहीं है ।

शंका—जीव और उपयोगका सम्बन्ध है, अन्यथा सम्बन्धका कारण मतुप्-प्रत्ययान्त 'उपयोगवान्' शब्दका वह वाच्य नहीं बन सकता ?

समाधान—नहीं, क्योंकि 'रूपिणः पुद्गलाः' इत्यादिमें नित्ययोगके अर्थमें भी मतुप् प्रत्ययकी उत्पत्ति देखी जाती है ।

वह उपयोग दो प्रकारका है—साकारोपयोग और अनाकारोपयोग । उनमेंसे साकार उपयोगका नाम ज्ञान है और उसको आवरण करनेवाला कर्म ज्ञानावरणीय है, यह सिद्ध होता है । तथा अनाकार उपयोगका नाम दर्शन है ।

शंका—अनाकार उपयोग क्या है ?

समाधान—साकार उपयोगसे अन्य अनाकार उपयोग है ।

कर्म-कर्तृभावका नाम आकार है । उस आकारके साथ जो उपयोग रहता है उसका नाम साकार है ।

शंका—साकार उपयोगके द्वारा सब पदार्थ विषय किये जाते हैं, अतः विषयका अभाव होनेके कारण अनाकार उपयोग नहीं बनता, इसलिये निश्चयसहित ज्ञानका नाम साकार उपयोग है और निश्चयरहित ज्ञानका नाम अनाकार उपयोग है । यदि ऐसा कोई कहे तो यह कहना ठीक नहीं है, क्योंकि, ऐसा माननेपर संशय, विपर्यय और अनध्यवसायको अनाकारता प्राप्त होती है । यदि कोई कहे कि ऐसा ही हो जाओ, सो भी बात नहीं है; क्योंकि ऐसा माननेपर केवली जिनके दर्शनका अभाव प्राप्त होता है ?

समाधान—यह कोई दोष नहीं है, क्योंकि अन्तरङ्गको विषय करनेवाले उपयोगको अनाकार उपयोग रूपसे स्वीकार किया है । अन्तरंग उपयोग विषयाकार होता है, यह बात भी

१ ताप्रतौ 'अण्ण-' इति पाठः ।

सायारो, कत्तारादो दव्वादो पुह कम्माणुवलंभादो[1]। ण च दोण्णं पि उवजोगाणमेयत्तं, वहिरंगंतरंगत्थविसयाणमेयत्तविरोहादो। ण च एदम्हि अत्थे अवलंविज्जमाणे सायार-अणायारउवजोगाणमसमाणत्तं, अण्णोण्णभेदेहि पुहाणमसमाणत्तविरोहादो[2]। सामण्णग्गहणं दंसणं, विसेसग्गहणं णाणमिदि किण्ण घेप्पदे ? ण, सव्वत्थ सव्वद्धमुभयणयविसयावट्ठंभेण विणा सव्वोवजोगाणमुप्पत्तिविरोहादो। ण च कमेण तदवट्ठंभणं जुज्जदे, संकराभावप्पसंगादो। किं च– ण च एदं लक्खणं जुज्जदे, केवलिम्हि व छदुमत्थेसु वि णाणा-दंसणाणमक्कमवुत्तिप्पसंगादो। एदस्स दंसणस्स आवारयं कम्मं दंसणावरणीयं। जीवस्स सुह-दुक्खुप्पाययं[3] कम्मं वेयणीयं णाम। किमेत्थ सुहमिदि घेप्पदे ? दुक्खुवसमो सुहं णाम। दुक्खक्खओ सुहमिदि किण्ण घेप्पदे ? ण, तस्स कम्मक्खएणुप्पज्जमाणस्स जीवसहावस्स कम्मजणिदत्तविरोहादो। विमोहसहावं जीवं मोहेदि त्ति मोहणीयं।

नहीं है, क्योंकि इसमें कर्ता द्रव्यसे पृथग्भूत कर्म नहीं पाया जाता। यदि कहा जाय कि दोनों उपयोग एक हैं सो भी बात नहीं है, क्योंकि, एक वहिरंग अर्थको विषय करता है और दूसरा अन्तरंग अर्थको विषय करता है, इसलिये इन दोनोंको एक माननेमें विरोध आता है। यदि कहा जाय कि इस अर्थके स्वीकार करनेपर साकार और अनाकार उपयोगमें समानता नहीं रहेगी, सो भी बात नहीं है; क्योंकि परस्परके भेदसे ये अलग हैं, इसलिये इनमें सर्वथा असमानता माननेमें विरोध आता है।

शंका—यहां सामान्य ग्रहणका नाम दर्शन है और विशेष ग्रहणका नाम ज्ञान है, ऐसा अर्थ क्यों नहीं ग्रहण करते ?

समाधान—नहीं, क्योंकि सब क्षेत्र और सब कालमें उभय नयके विषयके आलम्बनके विना सब उपयोगोंकी उत्पत्ति माननेमें विरोध आता है। यदि कहा जाय कि क्रमसे सामान्य और विशेषका अवलम्बन बन जावगा, सो भी बात नहीं है, क्योंकि ऐसा माननेपर संकरका अभाव प्राप्त होता है।

दूसरे यह लक्षण बनता भी नहीं है, क्योंकि ऐसा माननेपर केवलीके समान छद्मस्थोंके भी ज्ञान और दर्शनकी अक्रम वृत्तिका प्रसंग आता है। इस दर्शनका आवारक कर्म दर्शनावरणीय है।

जीवके सुख और दुःखका उत्पादक कर्म वेदनीय है।

शंका—प्रकृतमें सुख शब्दका क्या अर्थ लिया गया है ?

समाधान—प्रकृतमें दुःखके उपशम रूप सुख लिया गया है।

शंका—दुःखका क्षय सुख है, ऐसा क्यों नहीं ग्रहण करते ?

समाधान—नहीं, क्योंकि वह कर्मके क्षयसे उत्पन्न होता है। तथा वह जीवका स्वभाव है, अतः उसे कर्मजनित माननेमें विरोध आता है।

मोहरहित स्वभाववाले जीवको जो मोहित करता है वह मोहनीय कर्म है। जो भव धारण

---

१ प्रतिपु 'दव्वेण फट्ट कम्माणुव-' इति पाठः। २ प्रतिपु 'फट्टाणमसमाणत्त-' इति पाठः। ३ का-ताप्रत्योः 'दुक्खुप्पाइयं' इति पाठः।

भवधारणमेदि कुणदि त्ति आउअं। णाणा मिणोदि त्ति णामं। गमयत्युच्च-नीचमिति गोत्रम्। अन्तरमेति गच्छतीत्यन्तरायम्। एवमेदाओ कम्मस्स अट्ठेव य पयडीओ[1]। ण अण्णाओ, अणुवलंभादो। णाणावरणीयस्स उत्तरपयडिपमाणपरूवणट्ठमुत्तरसुत्तं भणदि—

णाणावरणीयस्स कम्मस्स केवडियाओ पयडीओ ? ॥ २० ॥

एदं पुच्छासुत्तं सुगमं।

णाणावरणीयस्स कम्मस्स पंच पयडीओ— आभिणिबोहियणाणावरणीयं सुदणाणावरणीयं ओहिणाणावरणीयं मणपज्जवणाणावरणीयं केवलणाणावरणीयं चेदि ॥ २१ ॥

जीवम्मि आभिणिबोहियणाणं सुदणाणं ओहिणाणं मणपज्जवणाणं केवलणाणमिदि पंच णाणाणि। तत्थ अहिमुह-णियमिदत्थस्स बोहणमाभिणिबोहियं णाम णाणं[2]। को अभिमुहत्थो? इंदिय-णोइंदियाणं गहणपाओग्गो। कुदो तस्स णियमो? अण्णत्थ अप्पवुत्तीदो[3]। अत्थिंदियालोगुवजोगेहिंतो चेव माणुसेसु रूवणाणुप्पत्ती[4]। अत्थिंदिय-उवजोगेहिंतो चेव

करता है वह आयु कर्म है। जो नानारूप बनाता है वह नामकर्म है। जो उच्च-नीचका ज्ञान कराता है वह गोत्रकर्म है। जो वीचमें आता है वह अन्तराय कर्म है। इस प्रकार कर्मकी ये आठ ही प्रकृतियां हैं, अन्य नहीं हैं; क्योंकि अन्य प्रकृतियां उपलब्ध नहीं होती। ज्ञानावरणीयकी उत्तर प्रकृतियोंके प्रमाणकी प्ररूवणा करनेके लिये उत्तर सूत्र कहते हैं—

ज्ञानावरणीय कर्मकी कितनी प्रकृतियां हैं ? ॥ २० ॥

यह पृच्छासूत्र सुगम है।

ज्ञानावरणीय कर्मकी पांच प्रकृतियां हैं— आभिनिबोधिकज्ञानावरणीय, श्रुतज्ञानावरणीय, अवधिज्ञानावरणीय, मनःपर्ययज्ञानावरणीय और केवलज्ञानावरणीय ॥ २१ ॥

जीवमें आभिनिबोधिकज्ञान, श्रुतज्ञान, अवधिज्ञान, मनःपर्ययज्ञान और केवलज्ञान ये पांच ज्ञान हैं। उनमें अभिमुख और नियमित अर्थका ज्ञान होना आभिनिबोधिक ज्ञान है।

शंका—अभिमुख अर्थ क्या है ?

समाधान—इन्द्रिय और नोइन्द्रियके द्वारा ग्रहण करने योग्य अर्थका नाम अभिमुख अर्थ है।

शंका—उसका नियम कैसे होता है ?

समाधान— अन्यत्र उनकी प्रवृत्ति न होनेसे। अर्थ, इन्द्रिय, आलोक और उपयोगके द्वारा ही मनुष्योंके रूपज्ञानकी उत्पत्ति होती है। अर्थ, इन्द्रिय और उपयोगके द्वारा ही रस,

---

१ अप्रतौ 'अट्ठव पयडीओ', आप्रतौ 'अट्ठ पयडीओ', काप्रतौ 'अट्ठेय पयडीओ' इति पाठः।
२ अभिमुहणियमियबोहण आभिणिबोहियमणिंदिइंदियजं। बहुयाहि उग्गहाहि य कयछत्तीसा तिसद भेदा॥ जं. प. १३–५६.
३ आ-काप्रत्योः 'अवुप्पत्तीदो', ताप्रतौ 'अवु (णु) प्पत्तीदो' इति पाठः।
४ अप्रतौ 'ज्झावणाणुप्पत्ती', काप्रतौ 'रूवेणाणुप्पत्ती' इति-पाठः।

रस-गंध-सद्द-फासणाणुप्पत्ती । दिट्ठ-सुदाणुभूदट्ठ-मणेहिंतो[1] णोइंदियणाणुप्पत्ती । एसो एत्थ णियमो । एदेण णियमेण अभिमुहत्थेसु जमुप्पज्जदि णाणं तमाभिणिबोहियणाणं णाम । तस्स आवरणमाभिणिबोहियणाणावरणीयं ।

मदिणाणेण गहिदत्थादो जमुप्पज्जदि अण्णेसु अत्थेसु णाणं तं सुदणाणं णाम । धूमादो उप्पज्जमाणअग्गिणाणं, णदीपूरजणिदउवरिविट्ठिविण्णाणं, देसंतरसंपत्तीए जणिद-दिणयरगमणविसयविण्णाणं, सद्दादो सद्दत्थुप्पण्णणाणं च सुदणाणमिदि भणिदं होदि । सुदणाणादो जमुप्पज्जदि णाणं तं पि सुदणाणं चेव । ण च मदिपुव्वं सुदमिच्चेदेण सुत्तेण[2] सह विरोहो अत्थि, तस्स आदिप्पउत्तिं पडुच्च परूविदत्तादो । कधं सद्दस्स सुदववएसो ? कारणे कज्जुवयारादो । एइंदिएसु सोद-णोइंदियवज्जिएसु कधं सुदणाणुप्पत्ती ? ण, तत्थ मणेण विणा वि जादिविसेसेण लिंगिविसयणाणुप्पत्तीए विरोहाभावादो । एदस्स सुदस्स आवारयं कम्मं सुदणाणावरणीयं णाम ।

अवाग्धानादवधिः । अथवा अधो गौरवधर्मत्वात् पुद्गलः अवाङ् नाम, तं दधाति

गन्ध, शब्द और स्पर्श ज्ञानकी उत्पत्ति होती है । दृष्ट, श्रुत और अनुभूत अर्थ तथा मनके द्वारा नोइन्द्रियज्ञानकी उत्पत्ति होती है; यह यहां नियम है । इस नियमके अनुसार अभिमुख अर्थोंका जो ज्ञान होता है वह आभिनिबोधिक ज्ञान है और उसका आवारक कर्म आभिनिबोधिक-ज्ञानावरणीय है ।

मतिज्ञानके द्वारा ग्रहण किये गये अर्थके निमित्तसे जो अन्य अर्थोंका ज्ञान होता है वह श्रुतज्ञान है । धूमके निमित्तसे उत्पन्न हुआ अग्निका ज्ञान, नदीपूरके निमित्तसे उत्पन्न हुआ ऊपरी भागमें वृष्टिका ज्ञान, देशान्तरकी प्राप्तिके निमित्तसे उत्पन्न हुआ सूर्यका गमनविषयक विज्ञान, और शब्दके निमित्तसे उत्पन्न हुआ शब्दार्थका ज्ञान श्रुतज्ञान है; यह उक्त कथनका तात्पर्य है । श्रुतज्ञानके निमित्तसे जो ज्ञान उत्पन्न होता है वह भी श्रुतज्ञान ही है । फिर भी 'मति-ज्ञानपूर्वक श्रुतज्ञान होता है' इस सूत्रके साथ विरोध नहीं आता, क्योंकि उक्त सूत्र श्रुत-ज्ञानकी प्रारम्भिक प्रवृत्तिकी अपेक्षासे कहा गया है ।

शंका—शब्दको श्रुत संज्ञा कैसे मिल सकती है ?

समाधान—कारणमें कार्यके उपचारसे ।

शंका—एकेन्द्रिय जीव श्रोत्र और नोइन्द्रियसे रहित होते हैं, उनके श्रुतज्ञानकी उत्पत्ति कैसे हो सकती है ?

समाधान—नहीं, क्योंकि वहां मनके विना भी जातिविशेषके कारण लिंगीविषयक ज्ञानकी उत्पत्ति माननेमें कोई विरोध नहीं आता ।

इस श्रुतका आवारक कर्म श्रुतज्ञानावरणीय कर्म है ।

नीचेके विषयको धारण करनेवाला होनेसे अवधि कहलाता है । अथवा नीचे गौरवधर्मवाला होनेसे पुद्गलकी अवाग् संज्ञा है, उसे जो धारण करता है अर्थात् जानता है वह अवधि है ।

---

१ ताप्रतौ '-मणहिंतो' इति पाठः । २ त. सू. १-२०.

परिच्छिनत्तीति[1] अवधिः। अवधिरेव ज्ञानमवधिज्ञानम्। अथवा अवधिर्मर्यादा, अवधिना सह वर्तमानं ज्ञानमवधिज्ञानम्। इदमवधिज्ञानं मूर्तस्यैव वस्तुनः परिच्छेदकम्, 'रूपिष्ववधेः'[2] इति वचनात्। अमूर्तत्वादतीतानागत-वर्तमानपुद्गलपर्यायाणां परिच्छेदकं न भवेदिति चेत्– न, मूर्तपुद्गलपर्यायाणामपि मूर्तत्वाविरोधात्। अवध्याभिनिबोधिकज्ञानयोरेकत्वम्, ज्ञानत्वं प्रत्यविशेषादिति चेत्– न, प्रत्यक्षाप्रत्यक्षयोरनिन्द्रियजेन्द्रियजयोरेकत्वविरोधात्। ईहादिमतिज्ञानस्याप्यनिन्द्रियजत्वमुपलभ्यत[3] इति चेत्– न, द्रव्यार्थिकनये अवलम्ब्यमाने ईहाद्यभावतस्तेषामनिन्द्रियजत्वाभावात् नैगमनये अवलम्ब्यमानेऽपि पारम्पर्येणेन्द्रियजत्वोपलम्भाच्च। प्रत्यक्षमाभिनिबोधिक[4]ज्ञानम्, तत्र वैशद्योपलम्भादवधिज्ञानवदिति चेत्– न, ईहादिषु मानसेषु च वैशद्याभावात्। न चेदं प्रत्यक्षलक्षणम्, पंचेन्द्रियविषयावग्रहस्यापि विशदस्यावधिज्ञानस्येव प्रत्यक्षतापत्तेः। अवग्रहे वस्त्वेकदेशो विशदश्चेत्– न, अवधिज्ञानेऽपि

और अवधिरूप ही ज्ञान अवधिज्ञान है। अथवा अवधिका अर्थ मर्यादा है, अवधिके साथ विद्यमान ज्ञान अवधिज्ञान है। यह अवधिज्ञान मूर्त पदार्थको ही जानता है, क्योंकि 'रूपिष्ववधेः' ऐसा सूत्रवचन है।

शंका—अतीत, अनागत और वर्तमान पुद्गलपर्यायें अमूर्त हैं, इसलिये यह उन्हें नहीं जान सकेगा?

समाधान—नहीं, क्योंकि मूर्त पुद्गलोंकी पर्यायोंको भी मूर्त माननेमें कोई विरोध नहीं आता।

शंका—अवधिज्ञान और आभिनिबोधिक ज्ञान ये दोनों एक हैं, क्योंकि ज्ञानसामान्यकी अपेक्षा इनमें कोई भेद नहीं है?

समाधान—नहीं, क्योंकि अवधिज्ञान प्रत्यक्ष है और आभिनिबोधिक ज्ञान परोक्ष है तथा अवधिज्ञान इन्द्रियजन्य नहीं है और आभिनिबोधिक ज्ञान इन्द्रियजन्य है, इसलिये इन्हें एक माननेमें विरोध आता है।

शंका—ईहादि मतिज्ञान भी अनिन्द्रियज उपलब्ध होते हैं?

समाधान—नहीं, क्योंकि द्रव्यार्थिक नयका अवलम्बन लेनेपर ईहादिक स्वतन्त्र ज्ञान नहीं हैं, इसलिये वे अनिन्द्रियज नहीं ठहरते। तथा नैगमनयका अवलम्बन लेनेपर भी वे परम्परासे इन्द्रियजन्य ही उपलब्ध होते हैं।

शंका—आभिनिबोधिक ज्ञान प्रत्यक्ष है, क्योंकि उसमें अवधिज्ञानके समान विशदता उपलब्ध होती है?

समाधान—नहीं, क्योंकि ईहादिकोंमें और मानसिक ज्ञानोंमें विशदताका अभाव है। दूसरे यह विशदता प्रत्यक्षका लक्षण नहीं है, क्योंकि ऐसा माननेपर पंचेन्द्रिय विषयक अवग्रह भी विशद होता है, इसलिये उसे भी अवधिज्ञानकी तरह प्रत्यक्षता प्राप्त हो जायगी।

१ ताप्रतौ 'परिच्छिन्नत्तीति' इति पाठः। २ त. सू. १-२७. ३ ताप्रतौ 'ईहामति-' इति पाठः। ४ ताप्रतौ '-मभिनिबोधिक-' इति पाठः।

तदविशेषात् । ततः पराणीन्द्रियाणि आलोकादिश्च, परेषामायत्तं ज्ञानं परोक्षम् । तदन्यत् प्रत्यक्षमित्यंगीकर्तव्यम् । एदस्स ओहिणाणस्स वियप्पा जहा वेयणाए[1] परूविदा तहा परूवेयव्वा । एदमावारेदि त्ति ओहिणाणावरणीयं ।

परकीयमनोगतोऽर्थो मनः, मनसः पर्यायाः विशेषाः[2] मनःपर्यायाः, तान् जानातीति मनःपर्ययज्ञानम् । सामान्यव्यतिरिक्तविशेषग्रहणं न सम्भवति, निर्विषयत्वात् । तस्मात् सामान्य-विशेषात्मकवस्तुग्राहि मनःपर्ययज्ञानमिति वक्तव्यं चेत्– नैष दोषः, इष्टत्वात् । तर्हि[3] सामान्यग्रहणमपि कर्तव्यम् ? [न,] सामर्थ्यलभ्यत्वात् । एदं वयणं देसामासियं । कुदो ? अचिंतियाणमद्धचिंतियाणं च अत्थाणमवगमादो । अधवा मणपज्जवसण्णा जेण रूढिभवा तेण चिंतिए वि अचिंतिए वि अत्थे वट्टमाणणाणविसया त्ति घेत्तव्वा । ओहिणाणं व एदं पि पच्चक्खं, अणिंदियजत्तादो । महाविसयादो ओहिणाणादो अप्पविसयं मणपज्जवणाणं पच्छा

शंका— अवग्रहमें वस्तुका एकदेश विशद होता है ?

समाधान—नहीं, क्योंकि अवधिज्ञानमें भी उक्त विशदतासे कोई विशेषता नहीं है। अर्थात् इसमें भी वस्तुकी एकदेश विशदता पाई जाती है।

इसलिये परका अर्थ इन्द्रियां और आलोक आदि है, और पर अर्थात् इनके आधीन जो ज्ञान होता है वह परोक्ष ज्ञान है । तथा इससे अन्य ज्ञान प्रत्यक्ष है, ऐसा यहां स्वीकार करना चाहिये । इस अवधिज्ञानके भेद जिस प्रकार वेदनामें (पु. ९ पृ. १२–५३) कहे हैं उसी प्रकार यहां कहने चाहिये । इस अवधिज्ञानको जो आवरण करता है वह अवधिज्ञानावरणीय कर्म है ।

परकीय मनको प्राप्त हुए अर्थका नाम मन है और मनकी पर्यायों अर्थात् विशेषोंका नाम मनःपर्याय है । उन्हें जो जानता है वह मनःपर्ययज्ञान है ।

शंका— सामान्यको छोड़कर केवल विशेषका ग्रहण करना सम्भव नहीं है, क्योंकि ज्ञानका विषय केवल विशेष नहीं होता, इसलिये सामान्य-विशेषात्मक वस्तुको ग्रहण करनेवाला मनःपर्ययज्ञान है, ऐसा कहना चाहिये ?

समाधान— यह कोई दोष नहीं है, क्योंकि यह बातमें इष्ट है ।

शंका—तो मनःपर्ययज्ञानके विषयरूपसे सामान्यका भी ग्रहण करना चाहिये ?

समाधान—नहीं, क्योंकि सामर्थ्यसे उसका ग्रहण हो जाता है ।

यह वचन देशामर्शक है, क्योंकि इससे अचिन्तित और अर्धचिन्तित अर्थोंका भी ज्ञान होता है । अथवा मनःपर्यय यह संज्ञा रूढ़िजन्य है, इसलिये चिन्तित और अचिन्तित दोनों प्रकारके अर्थमें विद्यमान ज्ञानको विषय करनेवाली यह संज्ञा है, ऐसा यहां ग्रहण करना चाहिये । अवधिज्ञानके समान यह ज्ञान भी प्रत्यक्ष है, क्योंकि यह इन्द्रियोंसे नहीं उत्पन्न होता ।

शंका— महाविषयवाले अवधिज्ञानसे अल्पविषयवाला मनःपर्ययज्ञान उसके बाद क्यों कहा ?

---

१ षट्खं. पु. ९, पृ. १२-५३. २ ताप्रतावतोऽग्रे [मनःपर्यायाः, विशेषाः] इत्यधिकः पाठोऽस्ति कोष्ठकान्तर्गतः । ३ अ-आ-काप्रतिषु 'इष्टत्वात्तर्हि', ताप्रतौ 'इष्टत्वात् । तत्तर्हि' इति पाठः ।

किमिदि वुच्चदे ? सच्चं, अप्पमेवेदं मणपज्जवणाणमोहिणाणादो । किंतु संजमणिबंधणं चेव जेण मणपज्जवणाणं तेण कारणदुवारेण ओहिणाणादो मणपज्जवणाणं महल्लमिदि जाणावणट्टं पच्छा णिद्दिस्सदे । एदस्स णाणस्स जमावरणं कम्मं तं मणपज्जवणाणावरणीयं ।

अप्पट्ठसण्णिहाणमेत्तेणुप्पज्जमाणं तिकालगोयरासेसदव्व-पज्जयविसयं करण-क्कम-व्ववहाणादीदं सयलपमेएण अलद्धत्थाहं पच्चक्खं विणासविवज्जियं केवलणाणं णाम । एदस्स आवारयं जं कम्मं तं केवलणाणावरणीयं णाम । जीवो किं पंचणाणसहावो आहो केवलणाणसहाओ त्ति ? ण ताव पंचणाणसहावो सहावट्ठाणलक्खणविरोहा पडिगहियाणं एक्कम्मि जीवदव्वे पंचण्णं णाणाणमक्कमेण[1] उत्तिविरोहादो । ण च केवलणाणसहावो, आवरणिज्जाभावेण सेसावरणाणमभावप्पसंगादो त्ति ? एत्थ परिहारो वुच्चदे—जीवो केवलणाण-

समाधान—यह कहना सही है कि अवधिज्ञानकी अपेक्षा मनःपर्ययज्ञान नियमसे अल्प हैं, किन्तु यह मनःपर्ययज्ञान यतः संयमके निमित्तसे ही उत्पन्न होता है इसलिये कारण द्वारा अवधिज्ञानकी अपेक्षा मनःपर्ययज्ञान महान् है, यह बतलानेके लिये इसका अवधिज्ञानके बाद निर्देश किया है ।

इस ज्ञानका जो आवरण कर्म है वह मनःपर्ययज्ञानावरणीय है ।

विशेषार्थ—इस कथनसे मनःपर्ययज्ञानके विषयपर स्पष्ट प्रकाश पड़ता है । मनःपर्ययज्ञान अवधिज्ञानके समान सीधे तौरसे पदार्थोंको नहीं जानता, किन्तु वह मनकी पर्यायों द्वारा ही रूपी पदार्थोंको जानता है । यह ठीक है कि जो पदार्थ मनके विषय हो गये हैं उन्हें तो वह अपनी मर्यादाके अनुसार जानता ही है, किन्तु जो अभी विषय नहीं हुए हैं या जो अर्धचिन्तित हैं वे आगे चलकर चूंकि मनके विषय होंगे, इसलिये उन्हें भी यह ज्ञान जानता है । मनःपर्ययका लक्षण कहते समय मनकी पर्यायों अर्थात् विशेषोंको मनःपर्ययज्ञान जानता है, ऐसा लक्षण कहा है । इसलिये यह शंका उठाई गई है कि ज्ञान केवल विशेषोंको नहीं जानता, किन्तु सामान्य विशेषात्मक पदार्थोंको ही जानता है । फिर यहां मनःपर्ययज्ञान मनके विशेषोंको जानता है, ऐसा क्यों कहा । इसका समाधान मूलमें किया ही है ।

जो मात्र आत्माके संनिधानसे उत्पन्न होता है, जो त्रिकाल गोचर समस्त द्रव्य और पर्यायोंको विषय करता है; जो करण, क्रम और व्यवधानसे रहित है; सकल प्रमेयोंके द्वारा जिसकी थाह नहीं पाई जा सकती, जो प्रत्यक्ष है और विनाशरहित है वह केवलज्ञान है । इसका आवारक जो कर्म है वह केवलज्ञानावरणीय कर्म है ।

शंका—जीव क्या पांच ज्ञान स्वभाववाला है या केवलज्ञान स्वभाववाला है ? पांच ज्ञान स्वभाववाला तो हो नहीं सकता, क्योंकि ऐसा माननेपर सहावस्थान लक्षण विरोध होनेसे एक जीव द्रव्यमें स्वीकार किये गये पांच ज्ञानोंका युगपत् अस्तित्व माननेमें विरोध आता है । वह केवलज्ञान स्वभाववाला भी नहीं हो सकता, क्योंकि ऐसा माननेपर शेष आवरणीय ज्ञानोंका अभाव हो जानेसे उनको आवरण करनेवाले शेष आवरण कर्मोंका अभाव प्राप्त होता है ?

१ काप्रतौ '-मक्कम्मेण-' इति पाठः ।

सहावो चेव। ण च सेसावरणाणमावरणिज्जाभावेण अभावो, केवलणाणावरणीएण आवरिदस्स वि केवलणाणस्स रूविदव्वाणं पच्चक्खग्गहणक्खमाणमवयवाणं संभवदंसणादो। ते च जीवादो णिप्फिडिदणाणकिरणा[1] पच्चक्ख-परोक्खभेएण दुविधा होंति। तत्थ जो पच्चक्खो भागो सो दुविहो– संजमपच्चओ सम्मत्त-संजम-भवपच्चओ चेदि। तत्थ संजमपच्चओ मणपज्जवणाणं णाम। अवरो वि ओहिणाणं। तत्थ जो सो परोक्खो सो दुविहो– इंदियणिबंधणो इंदियजणिदणाणणिबंधणो चेदि। तत्थ इंदियजो भागो मदिणाणं णाम। अवरो वि सुदणाणं[2]। एदेसिं चदुण्णं णाणाणं जमावारयं कम्मं तं मदिणाणावरणीयं सुदणाणावरणीयं ओहिणाणावरणीयं मणपज्जवणाणावरणीयं च भण्णदे। तदो केवलणाणसहावे जीवे संते वि णाणावरणीयपंचयभावो त्ति सिद्धं।

केवलणाणावरणीयं किं सव्वघादी आहो देसघादी[3]। ण ताव सव्वघादी, केवलणाणस्स णिस्सेसाभावे संते जीवाभावप्पसंगादो आवरणिज्जाभावेण सेसावरणाणमभावप्पसंगादो वा। ण च देसघादी[4], 'केवलणाण-केवलदंसणावरणीयपयडीओ सव्वघादियाओ' त्ति सुत्तेण सह विरोहादो। एत्थ परिहारो— ण ताव केवलणाणावरणीयं देसघादी, किंतु

समाधान—यहां उक्त शंकाका समाधान करते हैं। जीव केवलज्ञान स्वभाववाला ही है। फिर भी ऐसा माननेपर आवरणीय शेष ज्ञानोंका अभाव होनेसे उनके आवरण कर्मोंका अभाव नहीं होता, क्योंकि केवलज्ञानावरणीयके द्वारा आवृत हुए भी केवलज्ञानके रूपी द्रव्योंको प्रत्यक्ष ग्रहण करनेमें समर्थ कुछ अवयवोंकी सम्भावना देखी जाती है और वे जीवसे निकले हुए ज्ञानकिरण प्रत्यक्ष और परोक्षके भेदसे दो प्रकारके होते हैं। उनमें जो प्रत्यक्ष भाग है वह दो प्रकारका है— संयमप्रत्यय और सम्यक्त्व, संयम तथा भवप्रत्यय। उनमें संयमप्रत्यय मनःपर्ययज्ञान है और दूसरा अवधिज्ञान है। तथा उसमें जो परोक्ष भाग है वह भी दो प्रकारका है—इन्द्रियनिबन्धन और इन्द्रियजन्य-ज्ञान-निबन्धन। उनमें इन्द्रियजन्य भाग मतिज्ञान है और दूसरा श्रुतज्ञान है।

इन चार ज्ञानोंके जो आवारक कर्म हैं वे मतिज्ञानावरणीय, श्रुतज्ञानावरणीय, अवधिज्ञानावरणीय और मनःपर्ययज्ञानावरणीय कर्म कहे जाते हैं। इसलिये केवलज्ञानस्वभाव जीवके रहनेपर भी ज्ञानावरणीयके पांच भेद हैं, यह सिद्ध होता है।

शंका—केवलज्ञानावरणीय कर्म क्या सर्वघाति है या देशघाति है? सर्वघाति तो हो नहीं सकता, क्योंकि केवलज्ञानका निःशेष अभाव मान लेनेपर जीवके अभावका प्रसंग आता है। अथवा आवरणीय ज्ञानोंका अभाव होनेपर शेष आवरणोंके अभावका प्रसंग प्राप्त होता है। केवलज्ञानावरणीय कर्म देशघाति भी नहीं हो सकता, क्योंकि ऐसा माननेपर 'केवलज्ञानावरणीय और केवलदर्शनावरणीय कर्म सर्वघाति हैं' इस सूत्रके साथ विरोध आता है?

समाधान—यहां समाधान करते हैं। केवलज्ञानावरणीय देशघाति तो नहीं है, किन्तु

१ अप्रतौ 'णिप्पिडिद-', आ-का-ताप्रतिषु 'णिप्पडिद-' इति पाठः। २ का-ताप्रत्योः 'विसुद्धणाणं' इति पाठः। ३ काप्रतौ 'आधादेसघादी', ताप्रतौ 'आधा (हो) देसघादी' इति पाठः। ४ ताप्रतौ ', ण देसघादी' इति पाठः।

सव्वघादी चेव; णिस्सेसमावरिदकेवलणाणत्तादो। ण च जीवाभावो, केवलणाणे आवरिदे वि चदुण्णं णाणाणं संतुवलंभादो। जीवम्मि एक्कं केवलणाणं, तं च णिस्सेसमावरिदं[1]। कत्तो पुण चदुण्णं णाणाणं संभवो? ण, छारच्छण्णग्गीदो वप्फुप्पत्तीए[2] इव सव्वघादिणा आवरणेण आवरिदकेवलणाणादो चदुण्णं णाणाणमुप्पत्तीए विरोहाभावादो। एदाणि चत्तारि वि णाणाणि केवलणाणस्स अवयवा ण होंति, विगलाणं परोक्खाणं सक्खयाणं सवड्ढीणं[3] सगल-पच्चक्ख-क्खय[4]-वड्ढिहाणिविवज्जिदकेवलणाणस्स अवयवत्तविरोहादो। पुव्वं केवलणाणस्स चत्तारि वि णाणाणि अवयवा इदि उत्तं, तं कधं घडदे? ण, णाणसामण्णमवेक्खिय तदवयवत्तं पडि विरोहाभावादो। संपहि णाणावरणीयउत्तरपयडिपरूवणं काऊण उत्तरोत्तरपयडिपरूवणट्ठमुत्तरसुत्तं भणदि—

सर्वघाति ही है; क्योंकि वह केवलज्ञानका निःशेष आवरण करता है। फिर भी जीवका अभाव नहीं होता, क्योंकि केवलज्ञानके आवृत होनेपर भी चार ज्ञानोंका अस्तित्व उपलब्ध होता है।

शंका—जीवमें एक केवलज्ञान है। उसे जब पूर्णतया आवृत कहते हो, तब फिर चार ज्ञानोंका सद्भाव कैसे सम्भव हो सकता है?

समाधान—नहीं, क्योंकि जिस प्रकार राखसे ढकी हुई अग्निसे वाष्पकी उत्पत्ति होती है उसी प्रकार सर्वघाति आवरणके द्वारा केवलज्ञानके आवृत होनेपर भी उससे चार ज्ञानोंकी उत्पत्ति होनेमें कोई विरोध नहीं आता।

शंका—ये चारों ही ज्ञान केवलज्ञानके अवयव नहीं हैं, क्योंकि ये विकल हैं, परोक्ष हैं, क्षयसहित हैं, और वृद्धि-हानियुक्त हैं। अतएव इन्हें सकल, प्रत्यक्ष तथा क्षय और वृद्धि-हानिसे रहित केवलज्ञानके अवयव माननेमें विरोध आता है। इसलिए जो पहले केवलज्ञानके चारों ही ज्ञान अवयव कहे हैं, वह कहना कैसे बन सकता है?

समाधान—नहीं, क्योंकि ज्ञानसामान्यको देखते हुए चार ज्ञानोंको उसके अवयव माननेमें कोई विरोध नहीं आता।

विशेषार्थ—ज्ञानके पांच भेद और उनके पांच आवरण कर्म कैसे प्राप्त होते हैं, इस प्रश्नका वीरसेन स्वामीने बड़ी ही युक्तिपूर्वक समर्थन किया है। वास्तवमें ज्ञान एक है, इसलिये उसकी एक ही पर्याय प्रकट हो सकती हैं; उसकी एक साथ पांच अवस्थायें मानना युक्तियुक्त नहीं। यह प्रश्न है जिसका समाधान यहां वीरसेन स्वामीने किया है। उनके कथनसे स्पष्ट है कि एक कालमें ज्ञानकी एक ही पर्याय प्रकट होती है। उसके पांच भेद निमित्तभेदसे किये गये हैं। अन्तमें एक ही ज्ञानपर्याय शेष रहती है, इससे भी यही द्योतित होता है।

ज्ञानावरणीयकी उत्तर प्रकृतियोंका कथन करके अब उत्तरोत्तर प्रकृतियोंका कथन करनेके लिये आगेका सूत्र कहते हैं—

१ काप्रतौ 'तं भ णिस्सेस-', ताप्रतौ 'तं णिस्सेस-' इति पाठः। २ अ-आ-काप्रतिषु 'वप्पु-' इति पाठः। ३ का-ताप्रत्योः 'सव्वड्ढीणं' इति पाठः। ४ अप्रतौ 'पच्चक्खय', काप्रतौ 'पच्चक्खवक्खय' इति पाठः।

जं तमाभिणिबोहियणाणावरणीयं णाम कम्मं तं चउव्विहं वा चउवीसदिविधं वा अट्ठावीसदिविधं वा बत्तीसदिविधं वा णादव्वाणि भवंति ॥ २२ ॥

'जं तं आभिणिबोहियणाणावरणीयं कम्मं तं चउव्विहं वा' इच्चेवमादिसु सुत्तावयवेसु पुव्वमेगवयणणिद्देसं काऊण पुणो[1] पच्छा 'णादव्वाणि भवंति' त्ति बहुवयणणिद्देसो ण घडदे, समाणाहियरणाभावादो ? ण, दव्वट्ठियणयमवलंबिय एयत्तमुवगयस्स कम्मस्स पज्जवट्ठियणयावलंबणेण चउव्विहादिभेदमुवगयस्स बहुत्तं पडि विरोहाभावादो। चउव्विहादिभेदपरूवणट्ठमुत्तरसुत्तं भणदि—

चउव्विहं ताव ओग्गहावरणीयं ईहावरणीयं अवायावरणीयं धारणावरणीयं चेदि ॥ २३ ॥

तत्थ जं तं चउव्विहमाभिणिवोहियणाणावरणीयं तस्स ताव अत्थपरूवणं कस्सामो। तं जहा—विषय-विषयिसंपातसमनन्तरमाद्यं ग्रहणमवग्रहः[2]। रसादयोऽर्थाः विषयः, षडपीन्द्रियाणि विषयिणः, ज्ञानोत्पत्तेः पूर्वावस्था विषय-विषयिसंपातः ज्ञानोत्पादनकारणपरिणामविशेषसंतत्युत्पत्त्युपलक्षितः अन्तर्मुहूर्तकालः दर्शनव्यपदेशभाक्। तदनन्तरमाद्यं वस्तुग्रहण-

---

आभिनिबोधिकज्ञानावरणीय कर्म चार प्रकारका, चौबीस प्रकारका, अट्ठाईस प्रकारका और बत्तीस प्रकारका जानना चाहिये ॥ २२ ॥

शंका—'जं तं आभिणिबोहियणाणावरणीयं कम्मं तं चउव्विहं वा' इत्यादि सूत्रके अवयवोंमें पहले एकवचनका निर्देश करके पश्चात् 'णादव्वाणि भवंति' इस प्रकार बहुवचनका निर्देश करना घटित नहीं होता, क्योंकि इन दोनों वचनोंमें समान अधिकरणका अभाव है ?

समाधान—नहीं, क्योंकि द्रव्यार्थिक नयकी अपेक्षा एकत्वको प्राप्त हुआ कर्म पर्यायार्थिक नयकी अपेक्षा चार भेद आदि अनेक भेदोंको प्राप्त है। इसलिये उसे बहुत माननेमें कोई विरोध नहीं आता।

अब चतुर्विध आदि भेदोंका कथन करनेके लिये आगेका सूत्र कहते हैं—

चार भेद यथा— अवग्रहावरणीय, ईहावरणीय, अवायावरणीय और धारणावरणीय ॥ २३ ॥

पहले जो चार प्रकारका आभिनिबोधिकज्ञानावरणीय कर्म कहा है उसके अर्थका कथन करते हैं। यथा—विषय और विषयीका सम्पात होनेके अनन्तर जो प्रथम ग्रहण होता है वह अवग्रह है। रस आदिक अर्थ विषय हैं, छहों इन्द्रियां विषयी हैं, ज्ञानोत्पत्तिकी पूर्वावस्था विषय व विषयीका सम्पात (सम्बन्ध) है जो दर्शन नामसे कहा जाता है। यह दर्शन ज्ञानोत्पत्तिके करणभूत परिणामविशेषकी सन्ततिकी उत्पत्तिसे उपलक्षित होकर अन्तर्मुहूर्त काल स्थायी है। इसके बाद जो वस्तुका प्रथम ग्रहण होता है वह अवग्रह है। यथा—चक्षुके द्वारा

---

१ प्रतिपु 'मणो' इति पाठः। २ षट्खं. पु. १, पृ. ३५४.; पु. ९, पृ. १४४.

मवग्रहः, यथा चक्षुषा घटोऽयं घटोऽयमिति । यत्र घटादिना विना रूपदिशाकारादिविशिष्टं वस्तुमात्रं परिच्छिद्यते ज्ञानेन अनध्यवसायरूपेण तत्राप्यवग्रह एव, अनवगृहीतेऽर्थे ईहाद्यनुत्पत्तेः । एवं शेषेन्द्रियाणामप्यवग्रहो वक्तव्यः । एतस्य अवग्रहस्य यदावारकं कर्म तदवग्रहावरणीयम् ।

अवगृहीते तद्विशेषाकांक्षणमीहा । एषा अनध्यवसायस्वरूपावग्रहजनितसंशयपृष्ठभाविनी, शुक्लरूपं किं बलाका पताकेति संशयानस्य ईहोत्पत्तेः । न चाविशदावग्रहपृष्ठभाविन्येव ईहेति नियमः, विशदावग्रहेण पुरुषोऽयमिति अवगृहीतेऽपि वस्तुनि किमयं दाक्षिणात्यः किमुदीच्य इति संशयानस्य ईहाप्रत्ययोत्पत्त्युपलम्भात् । संशयप्रत्ययः क्वान्तःपतेत् ? ईहायाम् । कुतः ? ईहाहेतुत्वात् । तदपि कुतः ? कारणे कार्योपचारात् । वस्तुतः पुनरवग्रह एव । का ईहा नाम ? संशयादूर्ध्वमवायादधस्तात्[1] मध्यावस्थायां वर्तमानः विमर्शात्मकः प्रत्ययः हेत्ववष्टम्भबलेन समुत्पद्यमानः ईहेति भण्यते । नानुमानमीहा, तस्य अनवगृहीतार्थविषयत्वात् । न च अवगृहीतानवगृहीतार्थविषययोः ईहानुमानयोरेकत्वम्, भिन्नाधिकरणयो-

'यह घट है, यह घट है' ऐसा ज्ञान होना अवग्रह है । जहां घटादिके विना रूप, दिशा और आकार आदि विशिष्ट वस्तुमात्र ज्ञानके द्वारा अनध्यवसाय रूपसे जानी जाती है वहां भी अवग्रह ही है; क्योंकि, अनवगृहीत अर्थमें ईहादि ज्ञानोंकी उत्पत्ति नहीं हो सकती । इसी तरह शेष इन्द्रियोंका भी अवग्रह कहना चाहिये । इस अवग्रहका जो आवारक कर्म है वह अवग्रहावरणीय कर्म है ।

अवग्रहके द्वारा ग्रहण किये गये पदार्थमें उसके विशेषके जाननेकी इच्छा होना ईहा है । यह अनध्यवसायस्वरूप अवग्रहसे उत्पन्न हुए संशयके पीछे होती है, क्योंकि शुक्ल रूप क्या बलाका है या पताका है, इस प्रकार संशयको प्राप्त हुए जीवके ईहाकी उत्पत्ति होती है । अविशद अवग्रहके पीछे होनेवाली ही ईहा है, ऐसा कोई एकान्त नियम नहीं है; क्योंकि, विशद अवग्रहके द्वारा 'यह पुरुष है' इस प्रकार ग्रहण किये गये पदार्थमें भी 'क्या यह दाक्षिणात्य है या उदीच्य है', इस प्रकारके संशयको प्राप्त हुए मनुष्यके भी ईहाज्ञानकी उत्पत्ति उपलब्ध होती है ।

शंका— संशय प्रत्ययका अन्तर्भाव किस ज्ञानमें होता है ?

समाधान— ईहामें, क्योंकि वह ईहाका कारण है ।

शंका— यह भी क्यों ?

समाधान— क्योंकि कारणमें कार्यका उपचार होनेसे । वस्तुतः वह संशय प्रत्यय अवग्रह ही है ।

शंका— ईहाका क्या स्वरूप है ?

समाधान— संशयके बाद और अवायके पहले बीचकी अवस्थामें विद्यमान तथा हेतुके अवलम्बनसे उत्पन्न हुए विमर्शरूप प्रत्ययको ईहा कहते हैं ।

ईहा अनुमानज्ञान नहीं है, क्योंकि अनुमानज्ञान अनवगृहीत अर्थको विषय करता है । और अवगृहीत अर्थको विषय करनेवाले ईहाज्ञान तथा अनवगृहीत अर्थको विषय करनेवाले अनुमानको

१ अ-आप्रत्योः '-मवाय।धारात्', काप्रतौ '-मवायाधारात्', ताप्रतौ '-मवायाधा (दा) रात्' इति पाठः ।

स्तद्विरोधात् । किं च– नानयोरेकत्वम्, स्वविषयादभिन्न-भिन्नलिंगजनितयोरेकत्वविरोधात् । न च संशयज्ञानवत् वस्त्वपरिच्छेदकत्वादीहाज्ञानमप्रमाणम्, गृहीतवस्तुन ईहाज्ञानस्य दाक्षिणात्योदीच्यविषयलिंगावगन्तुस्तदसम्भवतो[1]ऽप्रमाणत्वविरोधात् । न चाविशदावग्रहपृष्ठभाविनी ईहा अप्रमाणम्, वस्तुविशेषपरिच्छित्तिनिमित्तभूतायाः परिच्छिन्नतदेकदेशायाः संशय-विपर्ययज्ञानाभ्यां व्यतिरिक्तायाः अप्रमाणत्वविरोधात् । अनध्यवसायरूपत्वादप्रमाणमिति[3] चेत्– न, संशयच्छेदनस्वभावायाः अध्यवसितशुक्लादिविशिष्टवस्तुसामान्याया त्रिभुवनगत-वस्तुभ्यः शौक्ल्यमाकृष्य एकस्मिन् वस्तुनि प्रतिष्ठापयिषोर्[4]ऽप्रमाणत्वविरोधात् । एतस्याः आवारकं कर्म ईहावरणीयम् ।

स्वगतलिंगविज्ञानात् संशयनिराकरणद्वारेणोत्पन्ननिर्णयोऽवायः । यथा उत्पतन-पक्ष-विक्षेपादिभिर्बलाकापंक्तिरेवेयं न पताकेति, वचनश्रवणतो दाक्षिणात्य[5] एवायं नोदीच्य इति वा । एतस्य आवारकं यत् कर्म तदवायावरणीयम् । अवेतस्य कालान्तरे अविस्मरण-

एक मानना ठीक नहीं है, क्योंकि भिन्न अधिकरणवाले होनेसे इन्हें एक माननेमें विरोध आता है । इनके एक न होनेका यह भी एक कारण है कि ईहाज्ञान अपने विषयसे अभिन्नरूप लिंगसे उत्पन्न होता है और अनुमानज्ञान अपने विषयसे भिन्नरूप लिंगसे उत्पन्न होता है, इसलिये इन्हें एक माननेमें विरोध आता है । संशयज्ञानके समान वस्तुका परिच्छेदक नहीं होनेसे ईहाज्ञान अप्रमाण है, यह कहना भी ठीक नहीं हैं; क्योंकि, ईहाज्ञान वस्तुको ग्रहण करके प्रवृत्त होता है और दाक्षिणात्य व उदीच्य विषयक लिंगका उसमें ज्ञान रहता है; इसलिये उसमें अप्रमाणता सम्भव न होनेके कारण उसे अप्रमाण माननेमें विरोध आता है । अविशद अवग्रहके बाद होनेवाली ईहा अप्रमाण है, यह कहना भी ठीक नहीं है; क्योंकि वह वस्तुविशेषकी परिच्छित्तिका कारण है और वह वस्तुके एकदेशको जान चुकी है तथा वह संशय और विपर्यय ज्ञानसे भिन्न है । अतः उसे अप्रमाण माननेमें विरोध आता है । वह अनध्यवसायरूप होनेसे अप्रमाण है, यह कहना भी ठीक नहीं है; क्योंकि संशयका छेदन करना उसका स्वभाव है, शुक्लादि विशिष्ट वस्तुको सामान्यरूपसे वह जान लेती है तथा त्रिभुवनगत वस्तुओंमेंसे शुक्लताको ग्रहण कर एक वस्तुमें प्रतिष्ठित करनेकी वह इच्छुक है; इसलिये उसे अप्रमाण माननेमें विरोध आता है । इसका आवारक कर्म ईहावरणीय कर्म है ।

स्वगत लिंगका ठीक तरहसे ज्ञान हो जानेके कारण संशय ज्ञानके निराकरण द्वारा उत्पन्न हुआ निर्णयात्मक ज्ञान अवाय है । यथा—ऊपर उड़ना व पंखोंको हिलाना-डुलाना आदि चिन्होंके द्वारा यह जान लेना कि यह बलाकापंक्ति ही है, पताका नहीं है । या वचनोंके सुननेसे ऐसा जान लेना कि यह पुरुष दाक्षिणात्य ही है, उदीच्य नहीं है; यह अवायज्ञान है । इसका आवारक जो कर्म है वह अवायावरणीय कर्म है ।

जाने हुए पदार्थके कालान्तरमें विस्मरण नहीं होनेका कारणभूत ज्ञान धारणा है ।

१ प्रतिषु 'गंतु तदसंभवतो' इति पाठः । २ ताप्रतौ 'ईहा, अप्रमाणवस्तु' इति पाठः । ३ प्रतिषु '.रूपत्वात्प्रमाणमिति' इति पाठः । ४ अ-आ-काप्रतिषु 'प्रतितिष्ठापयिपो-' इति पाठः । ५ ताप्रतौ 'वचनश्रवणतः, दाक्षिणात्य' इति पाठः ।

कारणं ज्ञानं धारणा, यथा सैवेयं बलाका पूर्वाह्णे यामहमद्राक्षं इति । एतस्यावारकं[1] कर्म धारणावरणीयम् । न च फलज्ञानत्वादीहादीनामप्रामाण्यम्, दर्शनफलस्य अवग्रहस्याप्यप्रामाण्य-प्रसंगात्, सर्वस्य विज्ञानस्य कार्यरूपस्यैवोपलम्भात्[2] । न गृहीतग्राहित्वादप्रामाण्यम्, सर्वात्मना अगृहीतग्राहिणो बोधस्यानुपलम्भात् । न च गृहीतग्रहणमप्रामाण्यनिबन्धनम्, संशय-विपर्यया-नध्यवसायजातेरेव अप्रमाणत्वोपलम्भात् ।

जं तं ओग्गहावरणीयं णाम कम्मं तं दुविहं अत्थोग्गहा-वरणीयं चेव वंजणोग्गहावरणीयं चेवं[3] ॥ २४ ॥

यथा—यह ज्ञान होना कि वही यह बलाका है जिसे प्रातःकाल हमने देखा था, धारणा है। इसका आवारक कर्म धारणावरणीय कर्म है ।

फलज्ञान होनेसे ईहादिक ज्ञान अप्रमाण हैं, ऐसा कहना ठीक नहीं है, क्योंकि ऐसा माननेपर अवग्रहज्ञानके भी दर्शनका फल होनेसे अप्रमाणताका प्रसंग आता है। दूसरे सभी ज्ञान कार्यरूप ही उपलब्ध होते हैं, इसलिये भी ईहादिक ज्ञान अप्रमाण नहीं हैं । ईहादिक ज्ञान गृहीतग्राही होनेसे अप्रमाण हैं, ऐसा कहना भी ठीक नहीं है; क्योंकि, सर्वात्मना अगृहीत अर्थको ग्रहण करनेवाला कोई भी ज्ञान उपलब्ध नहीं होता है । दूसरे गृहीत अर्थको ग्रहण करना, यह अप्रमाणताका कारण भी नहीं है; क्योंकि संशय, विपर्यय और अनध्यवसाय रूपसे जायमान ज्ञानोंमें ही अप्रमाणता देखी जाती है ।

विशेषार्थ— यहां दर्शन, अवग्रह और ईहाके स्वरूपपर विशद प्रकाश डाला गया है। इससे कई प्रश्नोंका समाधान हो जाता है। पहले दर्शन होता है । दर्शन क्या है, इसका खुलासा करते हुए बतलाया है कि पदार्थको जाननेकी भीतर जो अन्तर्मुखी प्रवृत्ति होती है और जिसमें अन्तर्मुहूर्त काल लगता है वह दर्शन है । दर्शन और ज्ञानकी कार्यमर्यादाके विषयमें विवाद है । पदार्थके आकार आदिको न ग्रहण कर 'है' इस रूपसे जो सामान्य ग्रहण होता है वह दर्शन है और आकार आदिके साथ जो ग्रहण होता है वह ज्ञान है । दर्शन और ज्ञानकी एक ऐसी व्याख्या की जाती है, किन्तु वीरसेन स्वामी इस व्याख्यासे सहमत नहीं है । वीरसेन स्वामी आत्मप्रत्ययको दर्शन और परप्रत्ययको ज्ञान कहते हैं । इसी आधारसे उन्होंने दर्शनकी उक्त व्याख्या की है । अनन्तर विषय-विषयीका सम्पात होनेपर अवग्रहज्ञान होता है । पदार्थका चाहे विशद ग्रहण हो चाहे अविशद ग्रहण हो, जो प्रथम ग्रहण होता है वह अवग्रह है । यह कहीं कहीं अनध्यवसायरूप होता है और कहीं कहीं रूप आदि विशेषके परिज्ञानके साथ होता है । इसके बाद संशय हो सकता है, पर इस संशय ज्ञानका अवग्रहज्ञानमें ही अन्तर्भाव होता है । यहां वीरसेन स्वामी अनध्यवसाय और संशय दोनोंको अवग्रह रूप मानते हैं ।

अवग्रहावरणीय कर्म दो प्रकारका है—अर्थावग्रहावरणीय और व्यञ्जनावग्रहा-वरणीय ॥ २४ ॥

१ ताप्रतौ 'एतस्या आवारकं' इति पाठः । २ अ-आ-काप्रतिषु 'कार्य रूपस्यैवोप-', ताप्रतौ 'कार्यं, रूपस्यैवोप-' इति पाठः । ३ से किं तं उग्गहे ? उग्गहे दुविहे पण्णत्ते । तं जहा- अत्थुग्गहे अ वंजणुग्गहे अ । नं. सू. २८.

कोऽर्थावग्रहः ? अप्राप्तार्थग्रहणमर्थावग्रहः । को व्यंजनावग्रहः ? प्राप्तार्थग्रहणं व्यंजनावग्रहः । न स्पष्टग्रहणमर्थावग्रहः, अस्पष्टग्रहणस्य व्यंजनावग्रहत्वप्रसंगात् । भवतु चेत्- न, चक्षुष्यप्यस्पष्टग्रहणदर्शनतो व्यंजनावग्रहस्य सत्त्वप्रसंगात् । न चैवम्, 'न चक्षुरनिन्द्रियाभ्याम्' इति तत्र तस्य प्रतिषेधात् । नाशुग्रहणमर्थावग्रहः, शनैर्ग्रहणस्य व्यंजनावग्रहत्वप्रसंगात् । न चैवम्, शनैर्ग्राहिणश्चक्षुषोऽपि व्यंजनावग्रहप्रसंगात्, क्षिप्राक्षिप्रविशेषणाभ्यां विना षट्त्रिंशत्-त्रिशतभंगानुत्पत्तेश्च । मनश्चक्षुर्भ्यां[2] व्यतिरिक्तेष्विन्द्रयेष्वप्राप्तार्थग्रहणं नोपलभ्यत इति चेत्- न, धवस्य अप्राप्तनिधिग्राहिण उपलम्भात्, अलाबूवल्ल्यादीनामप्राप्तवृत्तिवृक्षादिग्रहणोपलम्भात् । अर्थावग्रहस्य यदावारकं कर्म तदर्थावग्रहावरणीयम् । व्यंजनावग्रहस्य यदावारकं तद् व्यंजनावग्रहावरणीयम् ।

शंका— अर्थावग्रह क्या है ?

समाधान— अप्राप्त अर्थका ग्रहण अर्थावग्रह है ।

शंका— व्यंजनावग्रह क्या है ?

समाधान— प्राप्त अर्थका ग्रहण व्यंजनावग्रह है ।

स्पष्ट ग्रहणका नाम अर्थावग्रह है, यह कहना ठीक नहीं है; क्योंकि ऐसा माननेपर अस्पष्ट ग्रहणके व्यंजनावग्रह होनेका प्रसंग आता है ।

शंका— ऐसा हो जाओ ?

समाधान— नहीं, क्योंकि चक्षुसे भी अस्पष्ट ग्रहण देखा जाता है, इसलिये उसे व्यञ्जनावग्रह होनेका प्रसंग आता है । पर ऐसा है नहीं, क्योंकि 'चक्षु और मनसे व्यञ्जनावग्रह नहीं होता' इस सूत्रमें उसका निषेध किया है ।

आशु ग्रहणका नाम अर्थावग्रह है, यह कहना भी ठीक नहीं है; क्योंकि ऐसा माननेपर धीरे धीरे ग्रहण होनेको व्यञ्जनावग्रहत्वका प्रसंग आता है । पर ऐसा है नहीं, क्योंकि ऐसा माननेपर धीरे धीरे ग्रहण करनेवाला चाक्षुष अवग्रह भी व्यञ्जनावग्रह हो जायगा । तथा क्षिप्र और अक्षिप्र ये विशेषण यदि दोनों अवग्रहोंको नहीं दिये जाते हैं तो मतिज्ञानके तीन सौ छत्तीस भेद नहीं बन सकते हैं ।

शंका— मन और चक्षुके सिवा शेष चार इन्द्रियोंके द्वारा अप्राप्त अर्थका ग्रहण करना नहीं उपलब्ध होता है ?

समाधान— नहीं, क्योंकि धव वृक्ष अप्राप्त निधिको ग्रहण करता हुआ देखा जाता है और तूंबड़ीकी लता आदि अप्राप्त बाड़ी व वृक्ष आदिको ग्रहण करती हुई देखी जाती हैं । इससे शेष चार इन्द्रियां भी अप्राप्त अर्थको ग्रहण कर सकती हैं, यह सिद्ध होता है ।

अर्थावग्रहका जो आवारक कर्म है वह अर्थावग्रहावरणीय कर्म है और व्यञ्जनावग्रहका जो आवारक कर्म है वह व्यञ्जनावग्रहावरणीय कर्म है ।

---

१ त. सू. १-१९. २ अ-आ-काप्रतिषु 'भंगानुत्पत्तेश्चक्षुर्भ्यां' इति पाठः । ३ ताप्रतौ 'आलाबू-' इति पाठः ।

जं तं अत्थोग्गहावरणीयं णाम कम्मं तं थप्पं ॥ २५ ॥

कुतः ? तस्य पश्चाद् वर्ण्यमानत्वात् ।

जं तं वंजणोग्गहावरणीयं णाम कम्मं तं चउव्विहं– सोदिंदियवंजणोग्गहावरणीयं घाणिंदियवंजणोग्गहावरणीयं जिब्भिंदियवंजणोग्गहावरणीयं फासिंदियवंजणोग्गहावरणीयं चेदि ॥ २६ ॥[1]

एत्थ सोदिंदियस्स विसओ सद्दो । सो छव्विहो तद-विदद-घण-सुसिर-घोस-भासभेएण । तत्थ तदो णाम वीणा-तिसरि-आलावणि-वव्वीसं[2]-खुक्खुणादिजणिदो[3] । वितदो णाम भेरी-मुदिंग-पटहादिसमुब्भूदो[4] । घणो णाम जयघंटादिघणदव्वाणं संघादुट्ठाविदो[5] । सुसिरो णाम वंस-संख-काहलादिजणिदो[6] । घोसो णाम घस्समाणदव्वजणिदो । भासा दुविहा- अक्खरगया अणक्खरगया चेदि । तत्थ अणक्खरगया बीइंदियप्पहुडि जाव असण्णिपंचिंदियाणं मुहसमुब्भूदा बाल-मूअसण्णिपंचिंदियभासा च[7] । तत्थ अक्खरगया अणुववादिंदिय-

जो अर्थावग्रहावरणीय कर्म है उसे स्थगित करते हैं ॥ २५ ॥

क्योंकि, उसका आगे वर्णन करेंगे ।

जो व्यञ्जनावग्रहावरणीय कर्म है वह चार प्रकारका है— श्रोत्रेन्द्रियव्यञ्जनावग्रहावरणीय, घ्राणेन्द्रियव्यञ्जनावग्रहावरणीय, जिह्वेन्द्रियव्यञ्जनावग्रहावरणीय और स्पर्शनेन्द्रियव्यञ्जनावग्रहावरणीय ॥ २६ ॥

यहां श्रोत्रेन्द्रियका विषय शब्द है । वह छह प्रकारका है— तत, वितत, घन, सुषिर, घोष और भाषा । वीणा, त्रिसरिक, आलापिनी, वव्वीसक और खुक्खुण आदिसे उत्पन्न हुआ शब्द तत है । भेरी, मृदङ्ग और पटह आदिसे उत्पन्न हुआ शब्द वितत है । जयघण्टा आदि ठोस द्रव्योंके अभिघातसे उत्पन्न हुआ शब्द घन है । वंश, शंख और काहल आदिसे उत्पन्न हुआ शब्द सुषिर है । घर्षणको प्राप्त हुए द्रव्यसे उत्पन्न हुआ शब्द घोष है । भाषा दो प्रकारकी है— अक्षरात्मक और अनक्षरात्मक । द्वीन्द्रियसे लेकर असंज्ञी पञ्चेन्द्रिय पर्याप्त जीवोंके मुखसे उत्पन्न हुई भाषा तथा बालक और मूक संज्ञी पञ्चेन्द्रिय जीवोंकी भाषा भी अनक्षरात्मक भाषा है । उपघातसे रहित

१ से किं तं वंजणुग्गहे ? वंजणुग्गहे चउव्विहे पण्णत्ते । तं जहा— सोइंदियवंजणुग्गहे घाणिंदियवंजणुग्गहे जिब्भिदियवंजणुग्गहे फासिंदिअवंजणुग्गहे । से तं वंजणुग्गहे । नं. सू. २९. २ अ-आ ताप्रतिषु 'आलावणिव्वविस', काप्रतौ 'आलावणिवव्विस-' इति पाठः । वव्वीस-वंस-तिसरिय-वीणा " ॥ पउम- ११३–११. ३ तत्र चर्मतननिमित्तः पुष्कर-भेरी-दर्दुरादिप्रभवस्ततः । स. सि. ५–२४. तत्र चर्मतननात्ततः पुष्कर-भेरी-दर्दुरादिप्रभवः । त. रा. ५, २४, ६. ततं तंत्रीगतं तेषामनवद्धं हि पौष्करम् । घनं तालस्ततो वंशस्तथैव सुषिराख्यया ॥ ह. पु. १९–१४३. ततं वीणादिकं ज्ञेयं विततं पटहादिकम् । घनं तु कंसतालादि सुषिरं वंशादिकं विदुः ॥ पंचा. (तात्पर्यवृत्तावुद्धृतम्) ७९. ततं वीणादिकं वाद्यमानद्धं मुरजादिकम् । वंशादिकं तु शुषिरं कांस्यतालादिकं घनम् ॥ चतुर्विधमिदं वाद्यवादित्रातोद्यनामकम् । अमर. (नाट्यवर्गः) ४-५. ४ तंत्रीकृतवीणा-सुघोषादिसमुद्भवो विततः । स. सि. ५-२४. त. रा. ५, २४, ६. ५ तालघंटालालनाद्यभिघातजो घनः । स. सि. ५-२४. त. रा. ५, २४, ६. ६ वंश-शंखादिनिमित्तः सौषिरः । स. सि. ५-२४. त. रा. ५, २४, ६. ७ अनक्षरात्मको द्वीन्द्रियादीनामतिशयज्ञानस्वरूपप्रतिपादनहेतुः । स. सि. ५,२४. त. रा. ५, २४, ३. अनक्षरात्मको द्वीन्द्रियादिशब्दरूपो दिव्यध्वनिरूपश्च । पंचा. (ता. वृ.) ७९.

सण्णिपंचिंदियपज्जत्तभासो। सा दुविहा— भासा कुभासा चेदि । तत्थ कुभासाओ कीर[2]-पारसिय-सिंघल-वव्वरियादीणं विणिग्गयाओ सत्तसयभेदभिण्णाओ। भासाओ पुण अट्ठारस हवंति तिकुरुक[3]-तिलाढ-तिमरहट्ठ-तिमालव-तिगउड-तिमागधभासभेदेण। एत्थ उवउज्जंतीगाहा-

तद विददो घण सुसिरो घोसो भासा त्ति छव्विहो सद्दो।
सो पुण सद्दो[4] तिविहो संतो घोरो य मोघो य[5] ॥ १ ॥

एदेसिं सोदिंदियविसयाणं सद्दाणं सोदिंदियस्स य संजोगादो जं पढममुप्पण्णं णाणं पुट्ठ[6]-पविट्ठोगाढअंगांगिभावगदसद्दविसयं सोदिंदियवंजणोग्गहो णाम । अण्णत्थुप्पण्णाणं छव्विहाणं पि सद्दाणं कण्णछिद्देसु पविसिय सोदिंदियभावेण खओवसमं गदजीवपदेसेसु संबद्धाणं जं गहणं सो सोदिंदियवंजणोग्गहो त्ति भणिदं होदि। सद्द-पोग्गला सगुप्पत्ति-पदेसादो उच्छलिय दसदिसासु गच्छमाणा उक्कस्सेण जाव लोगंतं ताव गच्छंति। कुदो एदं णव्वदे ? सुत्ताविरुद्धाइरियवयणादो। ते किं सव्वे सद्द-पोग्गला लोगंतं गच्छंति आहो ण सव्वे इदि पुच्छिदे सव्वे ण गच्छंति, थोवा चेव गच्छंति। तं जहा— सद्दपज्जाएण परिणदपदेसे

इन्द्रियोंवाले संज्ञी पञ्चेन्द्रिय पर्याप्त जीवोंकी भाषा अक्षरात्मक भाषा है। वह दो प्रकारकी है— भाषा और कुभाषा। उनमें कुभाषायें काश्मीर देशवासी, पारसीक, सिंहल और वर्वरिक आदि जनोंके [मुखसे] निकली हुई सात सौ भेदोंमें विभक्त हैं। परन्तु भाषायें तीन कुरुक भाषाओं, तीन लाढ भाषाओं, तीन मरहठा भाषाओं, तीन मालव भाषाओं, तीन गौड़ भाषाओं, और तीन मागध भाषाओंके भेदसे अठारह होती हैं। यहां उपयुक्त गाथा—

शब्द छह प्रकारका है— तत, वितत, घन, सुषिर, घोष और भाषा। पुनः वह शब्द तीन प्रकारका है— प्रशस्त, घोर और मोघ ॥ १ ॥

श्रोत्र इन्द्रियके विषयभूत इन शब्दों और श्रोत्र इन्द्रियके संयोगसे स्पृष्ट, प्रविष्ट और अवगाढ रूप अंगांगिभावको प्राप्त हुए शब्दको विषय करनेवाला जो सर्वप्रथम ज्ञान उत्पन्न होता है वह श्रोत्रेन्द्रियव्यञ्जनावग्रह है। जो छहों प्रकारके शब्द अन्यत्र उत्पन्न हुए हैं और जो कर्णप्रदेशोंमें प्रवेश करके श्रोत्रेन्द्रियभावरूपसे क्षयोपशमको प्राप्त हुए जीवप्रदेशोंसे सम्बद्ध हैं उनका जो ग्रहण होता है वह श्रोत्रेन्द्रियव्यञ्जनावग्रह है, यह उक्त कथनका तात्पर्य है। शब्द-पुद्गल अपने उत्पत्तिप्रदेशसे उछलकर दसों दिशाओंमें जाते हुए उत्कृष्ट रूपसे लोकके अन्त भाग तक जाते हैं।

शंका— यह किस प्रमाणसे जाना जाता है ?

समाधान— वह सूत्रके अविरुद्ध व्याख्यान करनेवाले आचार्योंके वचनसे जाना जाता है।

शंका— क्या वे सब शब्द-पुद्गल लोकके अन्त तक जाते हैं या सब नहीं जाते ?

समाधान— सब नहीं जाते हैं, थोड़े ही जाते हैं। यथा—शब्द पर्यायसे परिणत हुए

---

१ अक्षरीकृतः शास्त्राभिव्यंजकः संस्कृत-प्राकृतविपरीतभेदादार्य-म्लेच्छव्यवहारहेतुः। स. सि. ५-२४. त. रा. ५, २४, ३. अक्षरात्मकः संस्कृत-प्राकृतादिरूपेणार्य-म्लेच्छभाषाहेतुः। पंचा. (ता. वृ.) ७९. २ ताप्रतौ 'किर' इति पाठः। ३ प्रतिपु 'तिकुदुकतिलाद' इति पाठः। ४ प्रतिपु 'घणसद्दो' इति पाठः। ५ काप्रतौ 'धोरो य मोघो य', ताप्रतौ 'घोरो य मूढो य' इति पाठः। ६ काप्रतौ 'घड', ताप्रतौ 'घट्ट' इति पाठः।

अणंता पोग्गला अवट्ठाणं कुणंति। विदियागासपदेसे तत्तो अणंतगुणहीणा। तदियागासपदेसे अणंतगुणहीणा। चउत्थागासपदेसे अणंतगुणहीणा। एवमणंतरोवणिधाए अणंतगुणहीणा होदूण गच्छंति जाव सव्वदिसासु वादवलयपेरंतं पत्ता त्ति। परदो किण्ण गच्छंति? धम्मात्थिकायाभावादो[2]। ण च सव्वे सद्द-पोग्गला एगसमएण चेव लोगंतं गच्छंति त्ति णियमो, केसिं पि दोसमए आदिं काढूण जहण्णेण अंतोमुहुत्तकालेण लोगंतपत्ती होदि त्ति उवदेसादो। एवं समयं पडि सद्दपज्जाएण परिणदपोग्गलाणं गमणावट्ठाणाणं परूवणा कायव्वा। उत्तं च—

पभवच्चुदस्स भागा वट्ठाणं णियमसा अणंता[3] दु।
पढमागासपदेसे विदियम्मि अणंतगुणहीणा[4] ॥ २ ॥

एत्थ गाहाए अत्थो वुच्चदे— पभवच्चुदस्स भागा अणंता पढमागासपदेसे अवट्ठाणं कुणंति त्ति संबंधो कायव्वो। एवमुप्पत्तिपदेसादो आगच्छमाणा पोग्गला जदि समसेडीए आगच्छंति तो मिस्सयं सुणदि। मिस्सयमिदि किं उत्तं होदि? परघादो अपरघादो च दुसंजोगेण

प्रदेशमें अनन्त पुद्गल अवस्थित रहते हैं। [उससे लगे हुए] दूसरे आकाशप्रदेशमें उनसे अनन्तगुणे हीन पुद्गल अवस्थित रहते हैं। तीसरे आकाशप्रदेशमें उनसे अनन्तगुणे हीन पुद्गल अवस्थित रहते हैं। चौथे आकाशप्रदेशमें उनसे अनन्तगुणे हीन पुद्गल अवस्थित रहते हैं। इस तरह वे अनन्तरोपनिधाकी अपेक्षा वातवलय पर्यन्त सब दिशाओंमें उत्तरोत्तर एक एक प्रदेशके प्रति अनन्तगुणे हीन होते हुए जाते हैं।

शंका— आगे क्यों नहीं जाते हैं?

समाधान— धर्मास्तिकायका अभाव होनेसे वे वातवलयके आगे नहीं जाते हैं।

ये सब शब्द-पुद्गल एक समयमें ही लोकके अन्त तक जाते हैं, ऐसा कोई नियम नहीं है। किन्तु ऐसा उपदेश है कि कितने ही शब्द-पुद्गल कमसे कम दो समयसे लेकर अन्तर्मुहूर्त कालके द्वारा लोकके अन्तको प्राप्त होते हैं। इस तरह प्रत्येक समयमें शब्द पर्यायसे परिणत हुए पुद्गलोंके गमन और अवस्थानका कथन करना चाहिये। कहा भी है—

उत्पत्तिस्थानमें च्युत हुए पुद्गलोंके अनन्त बहुभाग प्रमाण पुद्गल नियमसे प्रथम आकाशप्रदेशमें अवस्थान करते हैं। तथा दूसरे आकाशप्रदेशमें अनन्तगुणे हीन पुद्गल अवस्थान करते हैं ॥ २ ॥

यहां गाथाका अर्थ कहते हैं— इस गाथाके पदोंका 'पभवच्चुदस्स भागा अणंता पढमागासपदेसे अवट्ठाणं कुणंति' ऐसा सम्बन्ध करना चाहिये। इस प्रकार उत्पत्तिप्रदेशसे आते हुए पुद्गल यदि समश्रेणि द्वारा आते हैं तो मिश्रको सुनता है।

शंका— 'मिश्र' ऐसा कहनेका क्या तात्पर्य है?

१ वाक्यमिदं नोपलभ्यते ताप्रतौ. २ त. सू. १०-८. ३ ताप्रतौ 'णियमसा (दो) अणंता' इति पाठः। ४ अ-आ-काप्रतिषु 'अणंतगुणवाणा', ताप्रतौ 'अणंतगुणवा (ही) णा' इति पाठः।

विवक्खियो मिस्सयं णाम। समसेडीए आगच्छमाणे सद्द-पोग्गले परघादेण अपरघादेण च सुणदि। तं जहा— जदि परघादो णत्थि तो कंडुज्जुवाए गईए कण्णछिद्दे पविट्ठे सद्द-पोग्गले सुणदि। पराघादे संते वि सुणेदि, दो समसेडीदो पराघादेण उस्सेडिं गंतूण पुणो पराघादेण समसेडीए कण्णछिद्दे पविट्ठाणं सद्द-पोग्गलाणं सवणुवलंभादो। उस्सेडिं गदसद्द-पोग्गले पुण पराघादेणेव सुणेदि, अण्णहा तेसिं सवणाणुववत्तीदो[1]। एत्थ अण्णे आइरिया असद्द-पोग्गलेहि सह सुणेदि त्ति मिस्सपदस्स[2] अत्थं परूवेंति। तण्ण घडदे, असद्द-पोग्गलाणं सोदिंदियस्स अविसयाणं सवणाणुववत्तीदो[3]। असद्द-पोग्गले ण सुणेदि, सद्द-पोग्गले चेव सुणेदि, किंतु असद्द-पोग्गल-सद्दे सुणेदि त्ति ण वोत्तुं सक्किज्जदे, तस्स अणुत्तसिद्धीदो। कुदो? सव्वपोग्गलेहि सव्वजीवरासीदो अणंतगुणेहि सव्वलोगो आउण्णो त्ति तंतजुत्तिसिद्धीए। उत्तं च—

भासागदसमसेडिं सद्दं जदि सुणदि मिस्सयं सुणदि।
उस्सेडिं पुण सद्दं सुणेदि णियमा पराघादे[4] ॥ ३ ॥

एदस्स सोदिंदियवंजणोग्गहस्स जमावारयं कम्मं तं सोदिंदियवंजणोग्गहावरणीयं णाम।

समाधान— परघात और अपरघात इस प्रकार द्विसंयोगरूपसे विवक्षित पुद्गल मिश्र कहलाता है।

समश्रेणि द्वारा आते हुए शब्द-पुद्गलोंको परघात और अपरघात रूपसे सुनता है। यथा— यदि परघात नहीं है तो बाणके समान ऋजु गतिसे कर्णछिद्रमें प्रविष्ट हुए शब्द-पुद्गलोंको सुनता है। पराघातके होनेपर भी सुनता है तो समश्रेणिसे पराघात द्वारा उच्छ्रेणिको प्राप्त होकर पुनः पराघात द्वारा समश्रेणिसे कर्णछिद्रमें प्रविष्ट हुए शब्द-पुद्गलोंका श्रवण उपलब्ध होता है। उच्छ्रेणिको प्राप्त हुए-शब्द पुद्गल पुनः पराघातके द्वारा ही सुने जाते हैं। अन्यथा उनका सुनना नहीं बन सकता है।

यहांपर दूसरे आचार्य अशब्द-पुद्गलोंके साथ सुनता है, ऐसा मिश्रपदका अर्थ कहते हैं। परन्तु वह घटित नहीं होता, क्योंकि अशब्द-पुद्गल श्रोत्रेन्द्रियके विषय नहीं होते; अतः उनका सुनना नहीं वन सकता है। अशब्द-पुद्गलोंको नहीं सुनता है, किन्तु शब्द-पुद्गलोंको ही सुनता है। इसलिये अशब्द-पुद्गलरूप शब्दोंको सुनता है, ऐसा वोलना ठीक नहीं है; क्योंकि यह विना कहे सिद्ध है। कारण कि सव पुद्गलोंसे जो कि सव जीवराशिसे अनन्तगुणे हैं, सव लोक आपूर्ण है, इस प्रकार आगम और युक्तिसे सिद्ध है। कहा भी है—

भाषागत समश्रेणिरूप शब्दको यदि सुनता है तो मिश्रको ही सुनता है। और उच्छ्रेणिको प्राप्त हुए शब्दको यदि सुनता है तो नियमसे पराघातके द्वारा सुनता है ॥ ३ ॥

इस श्रोत्रेन्द्रिय व्यञ्जनावग्रहका जो आवारक कर्म है वह श्रोत्रेन्द्रियव्यञ्जनावग्रहावरणीय

---

१ अ-आ-काप्रतिषु 'सरणाणुववत्तीदो', ताप्रतौ 'सर (व) णाणुववत्तीदो' इति पाठः। २ काप्रतौ 'आइरिया असद्दपोग्गले ण सुणेदि सद्दपोग्गले मिस्सपदस्स' इति पाठः। ३ का-ताप्रत्योः 'समाणाणुववत्तीदो' इति पाठः ४ भासासमसेढीओ सद्दं जं सुणइ मीसियं सुणइ। वीसेढी पुण सद्दं सुणेइ णियमा पराघाए॥ नं. सू. गाथा ५. वि. भा. ३५१.

सुगंधो दुग्गंधो च बहुभेयभिण्णो घाणिंदियविसओ। तेसु सुगंध [दुग्गंध] पोग्गलेसु आगंतूण अदिमुत्तयपुप्फसंठाणट्ठिदघाणिंदियम्मि पविट्ठेसु जं पढमसुप्पज्जदि सुगंध-दुग्गंध-दव्वविसयविण्णाणं सो घाणिंदियवंजणोग्गहो णाम। तस्स जमावारयं कम्मं तं घाणिंदिय-वंजणोग्गहावरणीयं णाम। तित्त-कडुव-कसायंबिल-महुरदव्वाणि जिब्भिंदियविसओ। तेसु दव्वेसु बउलपत्तसंठाणट्ठिदजिब्भिंदिएण बद्ध-पुट्ठ-पविट्ठअंगांगिभावगदसंबंधमुवगदेसु जं रस-विण्णाणमुप्पज्जदि सो जिब्भिंदियवंजणोग्गहो [णाम]। तस्स जमावारयं कम्मं तं जिब्भिं-दियवंजणोग्गहावरणीयं णाम। कक्खड-मउअ-गरुअ-लहुअ-णिद्ध-लुक्ख-सीदुण्हदव्वाणि फसिंदियस्स विसओ। एदेसु दव्वेसु संपत्तफासिंदिएसु जं णाणमुप्पज्जदि तं फासिंदियवंजणो-ग्गहो णाम। तस्स जमावारयं कम्मं तं फासिंदियवंजणोग्गहावरणीयं णाम। चक्खिदिय-णोइंदिएसु वंजणोग्गहो णत्थि, पत्तत्थग्गहणे तेसिं सत्तीए अभावादो। एवं वंजणोग्गहपरूवणा कदा तदावरणपरूवणा च।

जं तं थप्पमत्थोग्गहावरणीयं णाम कम्मं तं छव्विहं ॥ २७ ॥

कुदो? सव्वेसु इंदिएसु अपत्तत्थग्गहणसत्तिसंभवादो। होदु णाम अपत्तत्थग्गहणं चक्खिंदिय-णोइंदियाणं, ण सेसिंदियाणं; तहोवलंभाभावादो त्ति? ण, एइंदिएसु फासिंदि-

कर्म है।

अनेक प्रकारका सुगन्ध और दुर्गन्ध घ्राणेन्द्रियका विषय है। उन सुगन्ध और दुर्गन्धवाले पुद्गलोंके अतिमुक्तक फूलके आकारवाली घ्राणेन्द्रियमें प्रविष्ट होनेपर जो सुगन्ध और दुर्गन्ध द्रव्यविषयक प्रथम ज्ञान उत्पन्न होता है वह घ्राणेन्द्रियव्यञ्जनावग्रह है। उसका आवारक जो कर्म है वह घ्राणेन्द्रियव्यञ्जनावग्रहावरणीय कर्म है।

तिक्त, कटुक, कषाय, आम्ल और मधुर द्रव्य जिह्वा इन्द्रियके विषय हैं। उन द्रव्योंके बकुलपत्रके आकारवाली जिह्वा इन्द्रियके साथ बद्ध, स्पृष्ट और प्रविष्ट होकर अंगांगिभावरूपसे सम्बन्धको प्राप्त होनेपर जो रसका विज्ञान उत्पन्न होता हैं वह जिह्वेन्द्रियव्यञ्जनावग्रह है। उसका जो आवारक कर्म है वह जिह्वेन्द्रियव्यञ्जनावग्रहावरणीय कर्म है। कर्कश, मृदु, गुरु, लघु, स्निग्ध, रुक्ष, शीत और उष्ण द्रव्य स्पर्शन इन्द्रियके विषय हैं। इन द्रव्योंके स्पर्शन इन्द्रियके साथ सम्बन्धको प्राप्त होनेपर जो ज्ञान उत्पन्न होता है वह स्पर्शनेन्द्रियव्यञ्जनावग्रह है। उसका आवारक जो कर्म है वह स्पर्शनेन्द्रियव्यञ्जनावग्रहावरणीय कर्म है। चक्षु इन्द्रिय और नोइन्द्रिय इन दोनोंमें व्यञ्जनावग्रह नहीं होता, क्योंकि, प्राप्त अर्थको ग्रहण करनेकी उनकी शक्ति नहीं पाई जाती। इस प्रकार व्यञ्जनावग्रह और उसके आवरण कर्मकी प्ररूपणा की।

जो अर्थावग्रहावरणीय कर्म स्थगित कर आये थे वह छह प्रकारका है ॥ २७ ॥

क्योंकि, सभी इन्द्रियोंमें अप्राप्त अर्थके ग्रहण करनेकी शक्तिका पाया जाना सम्भव है।

शंका—चक्षुइन्द्रिय और नोइन्द्रियके अप्राप्त अर्थका ग्रहण करना रहा आवे, किन्तु

१ काप्रतौ 'आदीमुत्तय' इति पाठः।

यस्स अपत्तणिहिग्गहणुवलंभादो। तदुवलंभो च तत्थ पारोहमोच्छणादुवलब्भदे। सेसिंदियाण-मपत्तत्थगहणं कुदोवगम्मदे ? जुत्तीदो। तं जहा— घाणिंदिय-जिब्भिंदिय-फासिंदियाणमुक्कस्सविसओ णव जोयणाणि। जदि एदेसिमिंदियाणमुक्कस्सखओवसमगदजीवो णवसु जोयणेसु ट्ठिददव्वेहिंतो विप्पडियं आगदपोग्गलाणं जिब्भा-घाण-फासिंदिएसु लग्गाणं रस-गंध-फासे जाणदि तो समंतदो णवजोयणब्भंतरट्ठिदगूहंभक्खणं तग्गंधजणिदअसादं च तस्स पसज्जेज्ज। ण च एवं, तिव्विंदियक्खओवसमगदचक्कवट्टीणं पि असायसायरंतोपवेस-प्पसंगादो। किंच— तिव्वखओवसमगदजीवाणं मरणं पि होज्ज, णवजोयणब्भंतरट्ठियविसेण जिब्भाए संबंधेण घादियाणं णवजोयणब्भंतरट्ठिदअग्गिणा दज्झमाणाणं च जीवणाणुववत्तीदो। किं च— ण तेसिं महुरभोयणं पि संभवदि, सगक्खेत्तंतोट्ठियतियदुअ-पिचुमंदकडुईरसेण मिलिददुद्धस्स महुरत्ताभावादो। तम्हा सेसिंदियाणं पि अपत्तग्गहणमत्थि त्ति इच्छिदव्वं। छण्णं पि अत्थोग्गहावरणीयाणं णामणिद्देसट्ठमुत्तरसुत्तं भणदि—

शेष इन्द्रियोंके वह नहीं बन सकता; क्योंकि, वे अप्राप्त अर्थको ग्रहण करती हुई नहीं उपलब्ध होती हैं ?

समाधान— नहीं, क्योंकि एकेन्द्रियोंमें स्पर्शन इन्द्रिय अप्राप्त निधिको ग्रहण करती हुई उपलब्ध होती हैं, और यह बात उस ओर प्रारोहको छोड़नेसे जानी जाती है।

शंका— शेष इन्द्रियां अप्राप्त अर्थको ग्रहण करती हैं, यह किस प्रमाणसे जाना जाता है ?

समाधान— युक्तिसे जाना जाता है। यथा— घ्राणेन्द्रिय, जिह्वेन्द्रिय और स्पर्शनेन्द्रियका उत्कृष्ट विषय नौ योजन है। यदि इन इन्द्रियोंके उत्कृष्ट क्षयोपशमको प्राप्त हुआ जीव नौ योजनके भीतर स्थित द्रव्योंमेंसे निकलकर आये हुए तथा जिह्वा, घ्राण और स्पर्शन इन्द्रियसे लगे हुए पुद्गलोंके रस, गन्ध और स्पर्शको जानता है तो उसके चारों ओरसे नौ योजनके भीतर स्थित विष्टाके भक्षण करनेका और उसकी गन्धके सूंघनेसे उत्पन्न हुए दुःखका प्रसंग प्राप्त होगा। परन्तु ऐसा है नहीं, क्योंकि, ऐसा माननेपर इन्द्रियोंके तीव्र क्षयोपशमको प्राप्त हुए चक्रवर्तियोंके भी असातारूपी सागरके भीतर प्रवेश करनेका प्रसंग आता है। दूसरे, तीव्र क्षयोपशमको प्राप्त हुए जीवोंका मरण भी हो जायगा, क्योंकि, नौ योजनके भीतर स्थित विषका जिह्वाके साथ सम्बन्ध होनेसे घातको प्राप्त हुए और नौ योजनके भीतर स्थित अग्निसे जलते हुए जीवोंका जीना नहीं बन सकता है। तीसरे, ऐसे जीवोंके मधुर भोजनका करना भी सम्भव नहीं है, क्योंकि, अपने क्षेत्रके भीतर स्थित तीखे रसवाले वृक्ष और नीमके कटुक रससे मिले हुए दूधमें मधुर रसका अभाव हो जायगा। इसीलिये शेष इन्द्रियां भी अप्राप्त अर्थको ग्रहण करती हैं, ऐसा स्वीकार करना चाहिये।

अब छहों अर्थावग्रहावरणीयोंका नामनिर्देश करनेके लिये आगेका सूत्र कहते हैं—

१ काप्रतौ 'सोदिंदियस्स', ताप्रतौ 'सोदिं (पासिं) दियस्स' इति पाठः। २ काप्रतौ 'सोदिं-दियाण-', ताप्रतौ 'सोदिं (पासिं) दियाण-' इति पाठः। ३ अ-आ-ताप्रतिषु 'विप्पद्दिय', काप्रतौ 'विप्पदिय' इति पाठः। ४ अप्रतौ 'गुह', आ-काप्रत्योः 'गुड' इति पाठः। ५ काप्रतौ 'तियदुअंबु-' इति पाठः। का-ताप्रत्योः 'कडुइ' इति पाठः।

चक्खिंदियत्थोग्गहावरणीयं सोदिंदियअत्थोग्गहावरणीयं घाणिंदियअत्थोग्गहावरणीयं जिब्भिंदियअत्थोग्गहावरणीयं फासिंदियअत्थोग्गहावरणीयं णोइंदियअत्थोग्गहावरणीयं। तं सव्वं अत्थोग्गहावरणीयं णाम कम्मं[1] ॥ २८ ॥

तत्थ सण्णिपंचिंदियपज्जत्तएसु चक्खिंदियउक्कस्सअत्थोग्गहो सत्तेतालसहस्स-वेसद-तेसट्ठिजोयणाणि साहियाणि ओसरिय ट्ठिदअत्थे समुप्पज्जदि ४७२६३ । ७ । २०[2] । असण्णिपंचिंदियपज्जत्तएसु[3] चक्खिंदियस्स अत्थोग्गहविसओ उक्कस्सो ऊणसट्ठिजोयण-सदाणि अट्ठुत्तराणि ५९०८ । चउरिंदियपज्जत्तएसु चक्खिंदियअत्थोग्गहविसओ खेत्तालंवणो उक्कस्सओ ऊणतीसजोयणसदाणि चउवण्णजोयणब्भहियाणि २९५४ । चक्खिंदियादो एत्तियाणि जोयणाणि अंतरिय ट्ठिददव्वे जं णाणमुप्पज्जदि सो चक्खिंदियअत्थोग्गहो। तस्स जमावरणं तं चक्खिंदियअत्थोग्गहावरणीयं णाम कम्मं । सण्णिपंचिंदयपज्जत्तएसु जवणालिय-संठाणसंठिदसोदिंदियअत्थोग्गहविसओ खेत्तालंबणो उक्कस्सओ बारहजोयणाणि १२ । असण्णिपंचिंदियपज्जत्तएसु अट्ठधणुसहस्साणि ८००० । एत्तियमद्धाणमंतरिय ट्ठिदसद्दग्गहणं सोदिंदियअत्थोग्गहो णाम । एदस्स जमावारयं कम्मं तं सोदिंदियअत्थोग्गहावरणीयं । संण्णिपंचिंदियपज्जत्तएसु घाणिंदियस्स विसओ उक्कस्सओ खेत्तगओ णव जोयणाणि ९ ।

चक्षुइन्द्रियअर्थावग्रहावरणीय, श्रोत्रेन्द्रियअर्थावग्रहावरणीय, घ्राणेन्द्रियअर्थावग्रहावरणीय, जिह्वेन्द्रियअर्थावग्रहावरणीय, स्पर्शनेन्द्रियअर्थावग्रहावरणीय और नोइन्द्रिय-अर्थावग्रहावरणीय; यह सब अर्थावग्रहावरणीय कर्म है ॥ २८ ॥

उनमेंसे संज्ञी पंचेन्द्रिय पर्याप्त जीवोंमें चक्षु इन्द्रियका उत्कृष्ट अर्थावग्रह साधिक सेंतालीस हजार दो सौ त्रेसठ (४७२६३$\frac{7}{20}$) योजन हटकर स्थित हुए पदार्थमें उत्पन्न होता है। असंज्ञी पंचेन्द्रिय पर्याप्तकोंमें चक्षुइन्द्रिय सम्बन्धी अर्थावग्रहका उत्कृष्ट विषय पांच हजार नौ सौ आठ (५९०८) योजन है। चतुरिन्द्रिय पर्याप्तकोंमें क्षेत्रके आलम्बनसे चक्षुइन्द्रिय सम्बन्धी उत्कृष्ट अर्थावग्रहका विषय दो हजार नौ सौ चौवन (२९५४) योजन है। चक्षु इन्द्रियसे इतने योजनका अन्तर देकर स्थित हुए द्रव्योंका जो ज्ञान होता है वह चक्षुइन्द्रिय-अर्थावग्रह है। उसका जो आवारककर्म है वह चक्षुइन्द्रिय-अर्थावग्रहावरणीय कर्म है।

संज्ञी पंचेन्द्रिय पर्याप्तकोंमें जौकी नालीके आकारसे स्थित श्रोत्रेन्द्रिय सम्बन्धी क्षेत्रके आश्रित उत्कृष्ट अर्थावग्रहका विषय बारह (१२) योजन है। असंज्ञी पंचेन्द्रिय पर्याप्तकोंमें वह आठ हजार (८०००) धनुष है। इतने क्षेत्रका अन्तर देकर स्थित हुए शब्दका ग्रहण करना श्रोत्रेन्द्रियअर्थावग्रह और इसका जो आवारक कर्म है वह श्रोत्रेन्द्रिय-अर्थावग्रहावरणीय कर्म है।

संज्ञी पंचेन्द्रिय पर्याप्तकोंमें घ्राणेन्द्रिय सम्बधी उत्कृष्ट क्षेत्रगत विषय नौ (९) योजन है।

१ से किं तं अत्थुग्गहे ? अत्थुग्गहे छव्विहे पण्णत्ते । तं जहा– सोइंदिअअत्थुग्गहे चक्खिंदिअ-अत्थुग्गहे घाणिंदिअअत्थुग्गहे जिब्भिंदिअअत्थुग्गहे फासिंदिअअत्थुग्गहे नोइंदिअअत्थुग्गहे । नं. सू. ३०.
२ अ-आप्रत्योः २०।२७ का-ताप्रत्योः '२७।२० इति पाठः । ३ ताप्रतौ '-पज्जत्तेसु' इति पाठः ।

असण्णिपंचिंदियपज्जत्तएसु चत्तारि धणुसदाणि ४०० । चदुरिंदियपज्जत्तएसु बेधणुस्सदाणि २०० । तेइंदियपज्जत्तएसु एयं धणुस्सदं १०० । घाणिंदियादो उक्कस्सखओवसमं गदादो एत्तियमद्धाणमंतरिय ट्ठिददव्वम्मि जं गंधणाणमुप्पज्जदि सो घाणिंदियअत्थोग्गहो । तस्स जमावारयं कम्मं तं घाणिंदियअत्थोग्गहावरणीयं णाम । सण्णिपंचिंदियपज्जत्तएसु जिब्भिंदियअत्थोग्गहस्स विसओ उक्कस्सओ खेत्तणिबंधणो णव जोयणाणि ९ । असण्णिपंचिंदियपज्जत्तएसु पंचधणुस्सदाणि बारसुत्तराणि ५१२ । चउरिंदियपज्जत्तएसु बेधणुसदाणि छप्पण्णाणि २५६ । तेइंदियपज्जत्तएसु धणुस्सदमट्ठावीसं १२८ । बेइंदियपज्जत्तएसु चदुसट्ठिधणूणि ६४ । उक्कस्सखओवसमगदजिब्भिंदियादो एत्तियमद्धाणमंतरिय ट्ठिददव्वस्स रसविसयं जं णाणमुप्पज्जदि सो जिब्भिंदियअत्थोग्गहो णाम । तस्स जमावारयं कम्मं तं जिब्भिंदियअत्थोग्गहावरणीयं णाम । सण्णिपंचिंदियपज्जत्तएसु फासिंदियअत्थोग्गहस्स उक्कस्सविसओ णव जोयणाणि ९ । असण्णिपंचिंदिएसु चउसट्ठिधणुसदाणि ६४०० । चउरिंदियपज्जत्तएसु बत्तीसधणुसदाणि ३२०० । तेइंदियपज्जत्तएसु सोलसधणुसदाणि १६०० । बेइंदियपज्जत्तएसु अट्ठधणुसदाणि ८०० । एइंदियपज्जत्तएसु चत्तारि धणुस्सदाणि ४०० । फासिंदियदो एत्तियमद्धाणमंतरिय ट्ठिददव्वम्हि जं णाणमुप्पज्जदि फासविसयं तं फासिंदियअत्थोग्गहो णाम । तस्स जमावारयं कम्मं तं फासिंदियअत्थोग्गहावरणीयं णाम । णोइंदियादो दिट्ठ-सुदाणुभूदेसु अत्थेसु णोइंदियादो पुधभूदेसु जं णाणमुप्पज्जदि सो णोइंदियअत्थो-

---

असंज्ञी पंचेन्द्रिय पर्याप्तकोंमें वह चार सौ (४००) धनुष है । चतुरिन्द्रिय पर्याप्तकोंमें दो सौ (२००) धनुष है । तीन इन्द्रिय पर्याप्तकोंमें एक सौ (१००) धनुष है । उत्कृष्ट क्षयोपशमको प्राप्त हुई घ्राणेन्द्रियसे इतने क्षेत्रका अन्तर देकर स्थित हुए द्रव्यमें जो गन्ध सम्बधी ज्ञान होता है वह घ्राणेन्द्रियअर्थावग्रह है और इसका जो आवारक कर्म है वह घ्राणेन्द्रिय-अर्थावग्रहावरणीय कर्म है ।

संज्ञी पंचेन्द्रिय पर्याप्तकोंमें जिह्वा इन्द्रिय सम्बन्धी क्षेत्रनिबन्धन अर्थावग्रहका उत्कृष्ट विषय नौ (९) योजन है । असंज्ञी पंचेन्द्रिय पर्याप्तकोंमें वह पांच सौ बारह (५१२) धनुष है । चौइन्द्रिय पर्याप्तकोंमें दो सौ छप्पन (२५६) धनुष है । तीन इन्द्रिय पर्याप्तकोंमें एक सौ अट्ठाईस (१२८) धनुष है । द्वीन्द्रिय पर्याप्तकोंमें चौंसठ (६४) धनुष है । उत्कृष्ट क्षयोपशमको प्राप्त हुई जिह्वा इन्द्रियसे इतने क्षेत्रका अन्तर देकर स्थित हुए द्रव्यका जो रसविषयक ज्ञान उत्पन्न होता है वह जिह्वेन्द्रियअर्थावग्रह है और उसका जो आवारक कर्म है वह जिह्वेन्द्रिय-अर्थावग्रहावरणीय कर्म है ।

संज्ञी पंचेन्द्रिय पर्याप्तकोंमें स्पर्शनेन्द्रियअर्थावग्रहका उत्कृष्ट विषय नौ (९) योजन है । असंज्ञी पंचेन्द्रिय पर्याप्तकोंमें छह हजार चार सौ (६४००) धनुष है । चतुरिन्द्रिय पर्याप्तकोंमें तीन हजार दो सौ (३२००) धनुष है । तीन इन्द्रिय पर्याप्तकोंमें एक हजार छह सौ (१६००) धनुष है । द्वीन्द्रिय पर्याप्तकोंमें आठ सौ (८००) धनुष है । एकेन्द्रिय पर्याप्तकोंमें चार सौ (४००) धनुष है । स्पर्शन इन्द्रियसे इतने क्षेत्रका अन्तर देकर स्थित हुए द्रव्यका जो स्पर्शविषयक ज्ञान होता है वह स्पर्शनेन्द्रियअर्थावग्रह है और उसका जो आवारक कर्म है वह स्पर्शनेन्द्रिय-अर्थावग्रहावरणीय कर्म है ।

नोइन्द्रियके द्वारा उससे पृथग्भूत दृष्ट, श्रुत और अनुभूत पदार्थोंका जो ज्ञान उत्पन्न होता है

ग्गहो णाम । एत्थ अद्धाणपरूवणा किमट्ठं ण कदा ? ण, सुदाणुभूदेसु दव्वेसु लोगंतरट्ठिदेसु वि अत्थोग्गहो त्ति कारणेण अद्धाणणियमाभावादो । एदस्स जमावारयं कम्मं तं णोइंदिय-अत्थोग्गहावरणीयं णाम । उत्तं च—

चत्तारि धणुसयाइं चउसट्ठि सयं च तह य धणुहाणं ।
फासे रसे य गंधे दुगुणा दुगुणा असण्णि त्ति ॥ ४ ॥
उणतीसजोयणसया चउवण्णा तह य होंति णायव्वा ।
चउरिंदियस्स णियमा चक्खुप्फासो सुणियमेणं ॥ ५ ॥
उणसट्ठिजोयणसया अट्ठ य तह जोयणा मुणेयव्वा ।
पंचिंदियसण्णीणं चक्खुप्फासो सुणियमेण ॥ ६ ॥
अट्ठेव धणुसहस्सा विसओ सोदस्स तह असण्णिस्स ।
इय एदे णायव्वा पोग्गलपरिणामजोएण ॥ ७ ॥
पासे रसे य गंधे विसओ णव जोयणा मुणेयव्वा ।
बारह जोयण सोदे चक्खुस्सद्धं पवक्खामि ॥ ८ ॥
सत्तेतालसहस्सा बे चेव सया हवंति तेवट्ठी ।
चक्खिंदियस्स विसओ उक्कस्सो होइ अदिरित्तो ॥ ९ ॥

वह नोइन्द्रियअर्थावग्रह है ।

शंका— यहां क्षेत्रकी प्ररूपणा क्यों नहीं की ?

समाधान— नहीं, क्योंकि लोकके भीतर स्थित हुए श्रुत और अनुभूत विषयोंका भी नोइन्द्रियके द्वारा अर्थावग्रह होता है । इस कारणसे यहां क्षेत्रका नियम नहीं है ।

इसका जो आवारक कर्म है वह नोइन्द्रियअर्थावग्रहावरणीय कर्म है । कहा भी है—

स्पर्शन, रसना और घ्राण इन्द्रियां क्रमसे चार सौ धनुष, चौंसठ धनुष और सौ धनुषके स्पर्श, रस और गन्धको जानती हैं । आगे असंज्ञी तक इन इन्द्रियोंका विषय दूना दूना है । चतुरिन्द्रिय जीवके चक्षु इन्द्रियका विषय नियमसे उनतीस सौ चौवन योजन है । पंचेन्द्रिय असंज्ञी जीवके चक्षु इन्द्रियका विषय उनसठ सौ आठ योजन जानना चाहिये । असंज्ञी जीवके श्रोत्र इन्द्रियका विषय आठ हजार धनुष है । यह सब विषय पुद्गलोंकी विविध पर्यायोंके निमित्तसे जानना चाहिये ॥ ४–७ ॥

संज्ञी पंचेन्द्रिय जीवके स्पर्शन, रसन और घ्राणका विषय नौ योजन तथा श्रोत्र इन्द्रियका विषय बारह योजन जानना चाहिये । चक्षु इन्द्रियका विषय आगे कहते हैं । चक्षु इन्द्रियका उत्कृष्ट विषय सेंतालीस हजार दो सौ त्रेसठ योजनसे कुछ अधिक है ॥ ८–९ ॥

विशेषार्थ—यहां व्यञ्जनावग्रह और अर्थावग्रहके स्वरूप, भेद और उनके आवरण कर्मोंका

१ अ-आ-काप्रतिषु 'अत्थाण-', ताप्रतौ 'अत्था (द्धा) ण–' इति पाठः । २ अ आप्रत्योः 'सुदाणुभूदेसु दव्वेसु लोगंतरि-', ताप्रतौ 'सुदाणुभूदेसु लोगंतरि (रे)–' इति पाठः । ३ प्रतिषु 'मुणियणेण' इति पाठः । ४ अ-आप्रत्योः 'चक्खुस्सुद्दं', काप्रतौ 'चक्खुस्सुदं इति पाठः । ५ अ-आ-काप्रतिषु 'तेवट्ठा' इति पाठः । ६ अप्रतौ 'उक्कस्सा होइ अओरित्ता', आ-काप्रत्योः 'उक्कस्सा होइ अदिरित्तो' इति पाठः ।

जं तं ईहावरणीयं णाम कम्मं तं छव्विहं ॥ २९ ॥

कुदो ? छहि इंदिएहि अवगहिदअत्थविसयत्तादो । अणवगहिदे अत्थे ईहा किण्ण उप्पज्जदे ? ण, अवगहिदत्थविसेसाकंखणमीहे त्ति वयणेण सह विरोहावत्तीदो । छव्विहेहा-णिमित्तपदुप्पायणट्ठमुत्तरसुत्तं भणदि—

चक्खिदियईहावरणीयं सोदिंदियईहावरणीयं घाणिंदियईहा-

निर्देश करके एकेन्द्रिय आदि किस जीवके किस इन्द्रियका कितना विषय है, इसका विस्तारके साथ निर्देश किया है । उनमें अन्य इन्द्रियोंका विषय तो सुगम है, मात्र संज्ञी पंचेन्द्रिय पर्याप्त जीवके चक्षु इन्द्रियका विषय जो ४७२६३ ७/२० योजन बतलाया है उसका स्पष्टीकरण इस प्रकार है— सूर्यको मेरु पर्वतकी प्रदक्षिणा करनेमें ६० मुहूर्त लगते हैं । तथा जब वह अभ्यन्तर वीथीमें होता है तब भरत क्षेत्रमें १८ मुहूर्तका दिन होता है । यतः उदयस्थानसे मध्यस्थान तक आनेमें सूर्यको नौ मुहूर्त लगते हैं, अतः सूर्यके चार क्षेत्र सम्बन्धी अभ्यन्तर वीथीकी परिधिमें ६० का भाग देकर ९ से गुणा करनेपर चक्षु इन्द्रियका उत्कृष्ट विषय पूर्वोक्तप्रमाण लब्ध होता है, क्योंकि, प्रातः काल इतने दूर स्थित उदय होनेवाले सूर्यके दर्शन होते हैं । यहां अभ्यन्तर वीथीका व्यास ९९६४० योजन और इसकी परिधि ३१५०८९ योजन है, इतना विशेष जानना चाहिए (देखिये जीवकाण्ड गाथा १६९) । अब यहां एकेन्द्रिय आदि जीवोंके किस इन्द्रियका उत्कृष्ट विषय कितना है, यह कोष्ठक देकर बतलाते हैं—

	स्पर्शन	रसना	घ्राण	चक्षु	श्रोत्र
एकेन्द्रिय	४०० धनुष	×	×	×	×
द्वीन्द्रिय	८०० ,,	६४ धनुष	×	×	×
त्रीन्द्रिय	१६०० ,,	१२८ ,,	१०० धनुष	×	×
चतुरिन्द्रिय	३२०० ,,	२५६ ,,	२०० ,,	२९५४ योजन	×
असंज्ञी पं.	६४०० ,,	५१२ ,,	४०० ,,	५९०८ ,,	८००० धनुष
संज्ञी पं.	९ योजन	९ योजन	९ योजन	४७२६३ ७/२० यो.	१२ योजन

जो ईहावरणीय कर्म है वह छह प्रकारका है ॥ २९ ॥

क्योंकि, यह छह इन्द्रियोंके द्वारा अवगृहीत अर्थको विषय करता है ।

शंका— अनवगृहीत अर्थमें ईहाज्ञान क्यों नहीं उत्पन्न होता ?

समाधान— नहीं, क्योंकि ऐसा माननेपर 'अवग्रहके द्वारा ग्रहण किये गये पदार्थमें उसके विशेषकी जाननेकी इच्छा होना ईहा है' इस वचनके साथ विरोध प्राप्त होता है ।

अब छह प्रकारकी ईहाके निमित्तका कथन करनेके लिये आगेका सूत्र कहते हैं—

चक्षुइन्द्रिय-ईहावरणीय कर्म, श्रोत्रेन्द्रिय-ईहावरणीय कर्म, घ्राणेन्द्रिय-ईहावरणीय-

वरणीयं जिब्भिंदियईहावरणीयं फासिंदियईहावरणीयं णोइंदियईहावरणीयं । तं सव्वमीहावरणीयं णाम कम्मं[1] ॥ ३० ॥

चक्खिंदियेण अवगहिदत्थविसेसाकंखणं विसेसुवलंभणिमित्तविचारो ईहे त्ति घेत्तव्वा । तिस्से आवारयं कम्मं चक्खिदियईहावरणीयं णाम । सोदिंदिएण गहिदसद्दो किं णिच्चो अणिच्चो दुस्सहाओ किमदुस्सहाओ त्ति चदुण्णं वियप्पाणं मज्झे एगवियप्पस्स लिंगगवेसणं सोदिंदियगदईहा । तिस्से आवारयं कम्मं सोदिंदियईहावरणीयं । घाणिंदियेण गंधमवग्गहिदूण एसो गंधो किं गुणरूवो किमगुणरूवो किं दुस्सहाओ किमदुस्सहाओ किं जच्चंतमावण्णो त्ति पंचण्णं वियप्पाणमण्णदमवियप्पलिंगण्णेसणं[2] एदेण होदव्वमिदि पच्चयपज्जवसाणं घाणिंदियगदईहा । तिस्से आवारयं कम्मं घाणिंदियईहावरणीयं । जिब्भिंदिएण रसमादाय किं मुत्तो किममुत्तो किं दुस्सहाओ किमदुस्सहाओ किं जच्चंतरमावण्णो त्ति विचारपच्चओ जिब्भिंदियगदईहा । तिस्से आवारयं कम्मं जिब्भिंदियईहावरणीयं । फासिंदिएण णिद्धादिफासमादाय किमेसो मयणफासो किं वज्जलेवफासो किं कुमारिगिरफासो किं पिसिद-मासफासो त्ति एदेसु अण्णदमस्स लिंगण्णेसणं फासिंदियगदईहा । तिस्से

कर्म, जिह्वेन्द्रिय-ईहावरणीय कर्म, स्पर्शनेन्द्रिय-ईहावरणीय कर्म और नोइन्द्रिय-ईहावरणीय कर्मः यह सब ईहावरणीय कर्म है ॥ ३० ॥

चक्षु इन्द्रियके द्वारा अवगृहीत अर्थके विशेषोंको जाननेकी इच्छा अर्थात् विशेषोंके जाननेके निमित्त होनेवाला विचार ईहा है, ऐसा यहां ग्रहण करना चाहिये। इसका आवारक कर्म चक्षुइन्द्रिय-ईहावरणीय कर्म हैं।

श्रोत्रेन्द्रियके द्वारा ग्रहण किया गया शब्द क्या नित्य है, क्या अनित्य है, क्या द्विस्वभाव है, या क्या अद्विस्वभाव है; इस प्रकार इन चार विकल्पोंमेंसे एक विकल्पके लिंगकी गवेषणा करना श्रोत्रेन्द्रियगत ईहा है। इसका आवारक कर्म श्रोत्रेन्द्रिय-ईहावरणीय कर्म है।

घ्राण इन्द्रियके द्वारा गन्धका अवग्रह करके यह गन्ध क्या गुणस्वरूप है, क्या अगुणस्वरूप है, क्या द्विस्वभाव है, क्या अद्विस्वभाव है, या क्या जात्यन्तरको प्राप्त है; इस प्रकार पांच विकल्पोंमेंसे अन्यतम विकल्पके लिंगकी गवेषणा करना कि 'यह होना चाहिए' इस प्रकारका प्रत्यय-पर्यवसितज्ञान घ्राणेन्द्रियगत ईहा है। इसका आवारक कर्म घ्राणेन्द्रिय-ईहावरणीय कर्म है।

जिह्वा इन्द्रियके द्वारा रसको ग्रहण करके वह क्या मूर्त है, क्या अमूर्त है, क्या द्विस्वभाव है, क्या अद्विस्वभाव है, या क्या जात्यन्तर अवस्थाको प्राप्त है; इस प्रकारका विचाररूप ज्ञान जिह्वेन्द्रियगत ईहा है। इसका आवारक कर्म जिह्वेन्द्रिय-ईहावरणीय कर्म है।

स्पर्शन इन्द्रियके द्वारा स्निग्ध आदि स्पर्शको ग्रहण कर क्या यह मदनस्पर्श है, क्या वज्रलेपस्पर्श है, क्या कुमारिगिरस्पर्श है, या क्या पिशित-मांसस्पर्श है; इस प्रकार इनमेंसे किसी एकके लिंगकी गवेषणा करना स्पर्शनइन्द्रियगत ईहा है। इसका आवारक कर्म स्पर्शनइन्द्रिय-

---

१ से किं तं ईहा ? ईहा छव्विहा पण्णत्ता। तं जहा— सोइंदिअईहा चक्खिदिअईहा घाणिंदिअईहा जिब्भिदिअईहा फासिंदिअईहा नोइंदिअईहा। नं. सू. ३२. २ आप्रतौ 'लिंगण्णेसण्णं' इति पाठः।

आवारयं कम्मं फासिंदियईहावरणीयं । दिट्ठ-सुदाणुभूदत्थं मणेण अवग्गहिदूण एसो किं सव्वगओ असव्वगओ दुस्सहाओ अदुस्सहाओ त्ति परिक्खा णोइंदियगदईहा । तिस्से आवारयं कम्मं णोइंदियईहावरणीयं । एवमीहा छव्विहा परूविदा ।

जं तं आवायावरणीयं णाम कम्मं तं छव्विहं ॥ ३१ ॥

छण्णमिंदियाणं छव्विहईहापच्चएहिंतो समुप्पज्जमाणत्तादो । ण च छ-ईहाहिंतो एगं कज्जमुप्पज्जदि, विरोहादो । तेसिं छण्णं पि णामणिद्देसट्ठमुत्तरसुत्तं भणदि—

चक्खिंदियआवायावरणीयं सोदिंदियआवायावरणीयं घाणिंदियआवायावरणीयं, जिब्भिंदियआवायावरणीयं फासिंदियआवायावरणीयं णोइंदियआवायावरणीयं । तं सव्वं आवायावरणीयं णाम कम्मं ॥ ३२ ॥

चक्खिंदियईहाणाणेण अवगयलिंगावट्ठंभबलेण एगवियप्पम्मि उप्पण्णणिच्छओ चक्खिंदियआवाओ णाम । तस्स आवारयं कम्मं चक्खिंदियआवायावरणीयं । एवं सव्वेसिमावायावरणीयाणं पुध पुध परूवणा जाणिदूण कायव्वा ।

जं तं धारणावरणीयं णाम कम्मं तं छव्विहं ॥ ३३ ॥

ईहावरणीय कर्म है ।

दृष्ट, श्रुत और अनुभूत अर्थको मनसे अवग्रहण कर यह क्या सर्वगत है, क्या असर्वगत है, क्या द्विस्वभाव है, या क्या अद्विस्वभाव है; इस प्रकारकी परीक्षा करना नोइन्द्रियगत ईहा है। इसका आवारक कर्म नोइन्द्रिय-ईहावरणीय कर्म है। इस प्रकार छह प्रकारकी ईहाका कथन किया।

जो अवायावरणीय कर्म है वह छह प्रकारका है ॥ ३१ ॥

क्योंकि, छह इन्द्रियोंकी छह प्रकारकी ईहाके निमित्तसे इस ज्ञानकी उत्पत्ति होती है । छह प्रकारकी ईहाओंसे एक प्रकारके कार्यकी उत्पत्ति मानी नहीं जा सकती है, क्योंकि ऐसा माननेमें विरोध आता है । अब उन छहोंका नामनिर्देश करनेके लिये आगेका सूत्र कहते हैं—

चक्षुइन्द्रियावायावरणीय कर्म, श्रोत्रेन्द्रियावायावरणीय कर्म, घ्राणेन्द्रियावायावरणीय कर्म; जिह्वेन्द्रियावायावरणीय कर्म, स्पर्शनेन्द्रियावायावरणीय कर्म और नोइन्द्रियावायावरणीय कर्म; यह सब अवायावरणीय कर्म है ॥ ३२ ॥

चक्षुइन्द्रियईहाज्ञानसे अवगत लिंगके बलसे एक विकल्पमें उत्पन्न हुआ निश्चय चक्षुइन्द्रिय-अवाय और उसका आवारक कर्म चक्षुइन्द्रियअवायावरणीय कर्म है । इसी प्रकार सब अवायावरणीय कर्मोंका जानकर अलग अलग कथन करना चाहिये ।

जो धारणावरणीय कर्म है वह छह प्रकारका है ॥ ३३ ॥

---

१ से किं तं अवाए? अवाए छव्विहे पण्णत्ते। तं जहा—सोइंदिअअवाए चक्खिंदिअअवाए घाणिंदिअअवाए जिब्भिंदिअअवाए फासिंदिअअवाए नोइंदिअअवाए । नं.सू. ३३. प्रतिषु 'मवाया-' इति पाठः ।

कुदो ? छव्विहआवायपच्चयसमुपज्जमाणत्तादो । धारणापच्चओ किं ववसायसरूवो किं णिच्छयसरूवो त्ति ? पढमपक्खे धारणेहापच्चयाणमेयत्तं, भेदाभावादो । विदिएं[1] धारणावायपच्चयाणमेयत्तं, णिच्छयभावेण दोण्णं भेदाभावादो त्ति ? ण एस दोसो, अवेदवत्थुलिंगग्गहणदुवारेण कालंतरे अविस्सरणहेदुसंसकारजणणं विण्णाणं धारणेत्ति अब्भुवगमादो[2] । ण चेदं गहिदग्गाहि त्ति अप्पमाणं, अविस्सरणहेदुलिंगग्गाहिस्स गहिदगहणत्ताभावादो । छण्णं धारणाणं णामणिद्देसपरूवणट्ठमुत्तरसुत्तं भणदि—

चक्खिंदियधारणावरणीयं सोदिंदियधारणावरणीयं घाणिंदियधारणावरणीयं जिब्भिंदियधारणावरणीयं फासिंदियधारणावरणीयं णोइंदियधारणावरणीयं । तं सव्वं धारणावरणीयं णाम कम्मं ॥३४॥

एदस्स सुत्तस्स अत्थो सुगमो । एत्थ ओग्गह-ईहावाय-धारणाभेदेण चउव्विहमाभिणिबोहियणाणं । तस्स आवरणं पि चउव्विहमेव, आवरणिज्जभेदेण आवरणस्स वि भेदुववत्तीदो ४ । एक्कस्स इंदियस्स जदि अवग्गहादिचत्तारिणाणाणि लब्भंति तो छण्ण-

क्योंकि, यह छह प्रकारके अवायके निमित्तसे उत्पन्न होता है ।

शंका— धारणाज्ञान क्या व्यवसायस्वरूप है या क्या निश्चयस्वरूप है ? प्रथम पक्षके स्वीकार करनेपर धारणा और ईहाज्ञान एक हो जाते हैं, क्योंकि, उनमें कोई भेद नहीं रहता । दूसरे पक्षके स्वीकार करनेपर धारणा और अवाय ये दोनों ज्ञान एक हो जाते हैं, क्योंकि, निश्चयभावकी अपेक्षा दोनों ज्ञानोंमें कोई भेद नहीं है ।

समाधान— यह कोई दोष नहीं है, क्योंकि अवायके द्वारा गृहीत वस्तुके लिंगको ग्रहण करके उसके द्वारा कालान्तरमें अविस्मरणके कारणभूत संस्कारको उत्पन्न करनेवाला विज्ञान धारणा है, ऐसा स्वीकार किया है । यह गृहीतग्राही होनेसे अप्रमाण है, ऐसा नहीं माना जा सकता है; क्योंकि, अविस्मरणके हेतुभूत लिंगको ग्रहण करनेवाला होनेसे यह गृहीतग्राही नहीं हो सकता । अब छहों प्रकारकी धारणाके नामनिर्देशका कथन करनेके लिये आगेका सूत्र कहते हैं—

चक्षुइन्द्रियधारणावरणीय कर्म, श्रोत्रइन्द्रियधारणावरणीय कर्म, घ्राणइन्द्रियधारणावरणीय कर्म, जिह्वाइन्द्रियधारणावरणीय कर्म, स्पर्शनइन्द्रियधारणावरणीय कर्म और नोइन्द्रियधारणावरणीय कर्म; यह सब धारणावरणीय कर्म है ॥ ३४ ॥

इस सूत्रका अर्थ सुगम है । यहां अवग्रह, ईहा, अवाय और धारणाके भेदसे आभिनिबोधिक ज्ञान चार प्रकारका है, इसलिये उसका आवरण भी चार प्रकारका ही है; क्योंकि, आवरणीयके भेदसे आवरणके भी भेद (४) बन जाते हैं । एक इन्द्रियके यदि अवग्रह आदि चार ज्ञान प्राप्त

१ अ-आ-काप्रतिषु 'विदिय', ताप्रतौ 'विदिय (ये)' इति पाठः । २ आ-का-ताप्रतिषु 'अब्भुवगमादो त्ति' इति पाठः । ३ से किं तं धारणा ? धारणा छव्विहा पण्णत्ता । तं जहा— सोइंदिअधारणा चक्खिंदिअधारणा घाणिंदिअधारणा जिब्भिंदिअधारणा फासिंदिअधारणा नोइंदिअधारणा । नं. सू. ३४.

मिंदियाणं किं लभामो त्ति पमाणेण फलगुणिदिच्छाए ओवट्टिदाए चउवीसआभिणिबोहिय-णाणाणि लब्भंति। तेसिमावरणाणि वि तत्तियाणि चेव २४। एत्थ जिब्भा-फास-घाण-सोदिंदियाणं वंजणोग्गहेसु पक्खित्तेसु अट्ठावीसआभिणिबोहियणाणवियप्पा तत्तिया चेव आवरणवियप्पा च लब्भंति २८। एत्थ चदुमूलभंगेसु पक्खित्तेसु बत्तीसआभिणिबोहिय-णाणवियप्पा तेत्तिया चेव आवरणवियप्पा च लब्भंति। ण मूलभंगाणं पुणरुत्तत्तमत्थि, विसेसादो सामण्णस्स कधंचि पुधभूदस्स उवलंभादो। तं जहा—सामण्णमेयसंखं विसेसो अणेयसंखो, वदिरेयलक्खणो विसेसो अण्णयलक्खणं सामण्णं, आहारो विसेसो आहेयो सामण्णं, णिच्चं सामण्णं अणिच्चो विसेसो। तम्हा सामण्ण-विसेसाणं णत्थि एयत्तमिदि ३२।

एवमाभिणिबोहियणाणावरणीयस्स कम्मस्स चउव्विहं वा चदुवीसदिविधं वा अट्ठावीसदिविधं वा बत्तीसदिविधं वा अडदालीस-विधं वा चोद्दाल-सदविधं वा अट्ठसट्ठि-सदविधं वा बाणउदि-सदविधं वा बेसद-अट्ठासीदिविधं वा तिसद-छत्तीसदिविधं वा तिसद-चुलसीदि-विधं वा णादव्वाणि भवंति ॥ ३५ ॥

एदस्स सुत्तस्स अत्थे परूविज्जमाणे ताव इमा अण्णा परूवणा कायव्वा, एदीए विणा सुत्तस्स अत्थावगमणुववत्तीदो। "बहु-बहुविध-क्षिप्रानिःसृतानुक्त-ध्रुवाणां सेतराणाम्[1]"

होते हैं तो छह इन्द्रियोंके कितने ज्ञान प्राप्त होंगे, इस प्रकार त्रैराशिक प्रक्रिया द्वारा फलराशिसे गुणित इच्छाराशिको प्रमाणराशिसे भाजित करनेपर चौवीस आभिनिबोधिक ज्ञान उपलब्ध होते हैं और उनके आवरण भी उतने (२४) ही प्राप्त होते हैं। इन चौवीस भेदोंमें जिह्वा, स्पर्शन, घ्राण और श्रोत्र इन्द्रिय सम्बन्धी चार व्यञ्जनावग्रहोंके मिलानेपर अट्ठाईस आभिनिबोधिक ज्ञानके भेद और उतने (२८) ही उनके आवरणोंके भेद भी प्राप्त होते हैं। इनमें चार मूल भंगोंके मिलाने-पर बत्तीस आभिनिबोधिक ज्ञानके भेद और उतने ही उनके आवरणोंके भेद भी प्राप्त होते हैं। इस तरह मूल भंगोंके मिलानेसे पुनरुक्त दोष भी नहीं आता, क्योंकि विशेषसे सामान्यमें कथंचित् भेद पाया जाता है। यथा—सामान्य एक संख्यावाला होता है और विशेष अनेक संख्यावाला होता है, विशेष व्यतिरेक लक्षणवाला होता है और सामान्य अन्वय लक्षणवाला होता है, विशेष आधार होता है और सामान्य आधेय होता है, सामान्य नित्य होता है और विशेष अनित्य होता है। इसलिये सामान्य और विशेष एक नहीं हो सकते।

इस प्रकार आभिनिबोधिकज्ञानावरणीय कर्मके चार भेद, चौवीस भेद, अट्ठाईस भेद, बत्तीस भेद, अड़तालीस भेद, एक सौ चवालीस भेद, एक सौ अड़सठ भेद, एक सौ बानबे भेद, दो सौ अठासी भेद, तीन सौ छत्तीस भेद और तीन सौ चौरासी भेद ज्ञातव्य हैं ॥३५॥

इस सूत्रके अर्थका कथन करते समय यह अन्य प्ररूपणा करनी चाहिये, क्योंकि, इसके विना इस सूत्रके अर्थका ज्ञान नहीं हो सकता है। "बहु, बहुविध, क्षिप्र, अनिःसृत, अनुक्त

१ त. सू. १-१६.

संख्या-वैपुल्यवाचिनो बहुशब्दस्य ग्रहणमविशेषात्[1]। बहुशब्दो हि संखावाची वैपुल्यवाची च, तस्योभयस्यापि ग्रहणम्। कस्मात्? अविशेषात्। संख्यायामेकः द्वौ बहवः इति। वैपुल्ये बहुरोदनो बहुः सूप इति[2]। बह्वग्रहाद्यभावः प्रत्यर्थवशवर्तित्वादिति चेत्– न, सर्वदैक-प्रत्ययोत्पत्तिप्रसंगात्। अस्तु चेत्– न, नगर-वन-स्कंधावारेष्वप्येकप्रत्ययोत्पत्तिप्रसंगात्[3]। नगर-वन-स्कन्धावाराणां नगरं वनं स्कन्धावार इति एकवचननिर्देशान्यथानुपपत्तितो न बहुत्वमिति चेत्– न, बहुत्वेन विना तत्प्रत्ययत्रितयोत्पत्तिविरोधात्। न च एकवचननिर्देशः एकत्व-लिंगम्, वनगतेषु धवादिष्वेकत्वानुपलम्भात्। न सादृश्यमेकत्वस्य कारणम्, तत्र तद्विरोधात्। किं च– यस्यैकार्थमेव विज्ञानं तस्य पूर्वविज्ञाननिवृत्तावुत्तरविज्ञानोत्पत्तिर्भवेत् अनिवृत्तौ वा? अनिवृत्तौ नोत्तरविज्ञानोत्पत्तिः, 'एकार्थमेकमनस्त्वात्' इत्यनेन विरोधात्[4]। तथा च इदम-

---

और ध्रुव तथा इनके प्रतिपक्षभूत पदार्थोंका आभिनिबोधिक ज्ञान होता है" इस सूत्रमें बहु शब्दको संख्यावाची और वैपुल्यवाची ग्रहण किया है, क्योंकि दोनों, प्रकारका अर्थ करनेमें कोई विशेषता नहीं है। बहु शब्द संख्यावाची है और वैपुल्यवाची भी है। उन दोनोंका ही यहां ग्रहण है, क्योंकि, इन दोनों ही अर्थोंमें समान रूपसे उसका प्रयोग होता है। संख्यामें यथा— एक, दो, बहुत। वैपुल्यमें यथा— बहुत भात, बहुत दाल।

शंका— बहुअवग्रह आदि ज्ञानोंका अभाव है, क्योंकि, ज्ञान एक एक पदार्थके प्रति अलग अलग होता है।

समाधान— नहीं, क्योंकि ऐसा माननेपर सर्वदा एक पदार्थके ज्ञानकी उत्पत्तिका प्रसंग आता है।

शंका— ऐसा रहा आवे?

समाधान— नहीं, क्योंकि ऐसा माननेपर नगर, वन और छावनीमें भी एक पदार्थके ज्ञानकी उत्पत्तिका प्रसंग आ जायगा।

शंका— नगर, वन और स्कन्धावारमें चूंकि एक नगर, एक वन और एक छावनी इस प्रकार एकवचनका प्रयोग अन्यथा बन नहीं सकता, इससे विदित होता है कि ये बहुत नहीं है?

समाधान— नहीं, क्योंकि बहुत्वके विना उन तीन प्रत्ययोंकी उत्पत्तिमें विरोध आता है। दूसरे, एक वचनका निर्देश एकत्वका साधक है ऐसी भी कोई बात नहीं है; क्योंकि, वनमें अवस्थित धवादिकोंमें एकत्व नहीं देखा जाता। सादृश्य एकत्वका कारण है, यह कहना भी ठीक नहीं है, क्योंकि वहां उसका विरोध है।

दूसरे, जिसके मतमें विज्ञान एक अर्थको ही ग्रहण करता है उसके मतमें पूर्व विज्ञानकी निवृत्ति होनेपर उत्तर विज्ञानकी उत्पत्ति होती है या पूर्व विज्ञानकी निवृत्ति हुए विना ही उत्तर विज्ञानकी उत्पत्ति होती है? पूर्व विज्ञानकी निवृत्ति हुए विना तो उत्तर विज्ञानकी उत्पत्ति हो नहीं सकती, क्योंकि "विज्ञान एक मन होनेसे एक अर्थको जानता है" इस वचनके साथ विरोध

---

१ स. सि. १–१६. २ त. रा. १, १६, १. ३ त. रा. १, १६, २. ४ त. रा. १, १६, ३.

विधशब्दः, बहुविधं बहुप्रकारमित्यर्थः । जातिगतभूयःसंख्याविशिष्टवस्तुप्रत्ययो बहुविधः । तद्यथा— चक्षुर्जः गो-मनुष्य-हय-हस्त्यादिजातिविशिष्टगवादिविषयोऽक्रमः प्रत्ययः । श्रोत्रजस्तत-वितत-घन-सुषिरादिशब्देष्वक्रमवृत्तिप्रत्ययः । कर्पूरागरु-तुरुष्क[2]-चन्दनादिगन्धेष्वक्रमवृत्तिः घ्राणजो बहुविधप्रत्ययः । तिक्त-कटु-कषायाम्ल-मधुर-लवणद्रव्यविषयः अक्रमवृत्तिः रसनजो बहुविधप्रत्ययः । स्निग्ध-मृदु-कठिनोष्ण-गुरु-लघु-शीतादिद्रव्यविषयः अक्रमवृत्तिर्बहुविधः प्रत्ययः स्पर्शनेन्द्रियजः । न चायमसिद्धः, उपलभ्यमानत्वात् । न चोपलम्भः अपह्नोतुं पार्यते, अव्यवस्थापत्तेः ।

एकजातिविषयः प्रत्ययः एकविधः[3] । न चैकविधैकप्रत्ययोरेकत्वम्, जाति-व्यक्त्योरेकत्वाभावतस्तद्विषयप्रत्यययोरेकत्वाभावात्[4] । आश्चर्यग्राही क्षिप्रप्रत्ययः । अभिनवशरावगतोदकवत् शनैः परिच्छिन्दानः अक्षिप्रप्रत्ययः ।

वस्त्वेकदेशस्य आलम्बनीभूतस्य ग्रहणकाले एकवस्तुप्रतिपत्तिः वस्त्वेकदेशप्रतिपत्तिकाल एव वा दृष्टान्तमुखेन अन्यथा वा अनवलम्बितवस्तुप्रत्तिपत्तिः अनुसंधानप्रत्ययः प्रत्यभिज्ञानप्रत्ययश्च अनिःसृतप्रत्ययः । न चायमसिद्धः, चक्षुषा घटस्यालम्बनीभूतार्वाग्भागदर्शनकाल एव

विध शब्द प्रकारवाची है, बहुविध अर्थात् बहुप्रकार । जातिगत बहुत संख्या विशिष्ट पदार्थोंका ज्ञान बहुविधज्ञान है । यथा— गाय, मनुष्य, घोड़ा और हाथी आदि जाति विशिष्ट गाय आदि पदार्थोंको विषय करनेवाला क्रमरहित प्रत्यय चाक्षुष बहुविधप्रत्यय हैं । तत, वितत, घन व सुषिर आदि शब्दोंका युगपत् होनेवाला प्रत्यय श्रोत्रज बहुविधप्रत्यय है । कपूर, अगरु, तुरुष्क और चन्दन आदिकी गन्धोंका युगपत् होनेवाला प्रत्यय घ्राणज बहुविधप्रत्यय है । तिक्त, कटु, कषाय, आम्ल, मधुर और लवण द्रव्यविषयक युगपत् होनेवाला प्रत्यय रसनज बहुविधप्रत्यय है । स्निग्ध, मृदु, कठिन, उष्ण, गुरु, लघु और शीत आदि द्रव्यविषयक युगपत् होनेवाला प्रत्यय स्पर्शनेन्द्रियज बहुविधप्रत्यय है । ऐसा प्रत्यय होना असिद्ध भी नहीं है, क्योंकि, उसकी उपलब्धि होती हैं । और उपलब्धिका अपलाप किया नहीं जा सकता, क्योंकि, ऐसा करनेपर अव्यवस्थाकी आपत्ति आती है ।

एक जातिविषयक प्रत्यय एकविधप्रत्यय है । एकविधप्रत्यय और एकप्रत्ययको एक नहीं मान सकते, क्योंकि, जाति और व्यक्ति एक नहीं होनेसे उनको विषय करनेवाले प्रत्यय भी एक नहीं हो सकते । शीघ्र अर्थको ग्रहण करनेवाला प्रत्यय क्षिप्रप्रत्यय है । जिस प्रकार नूतन सकोरेको प्राप्त हुआ जल उसे धीरे धीरे गीला करता है उसी प्रकार पदार्थको धीरे धीरे जाननेवाला प्रत्यय अक्षिप्रप्रत्यय है । अवलम्बनीभूत वस्तुके एकदेश ग्रहणके समयमें ही एक वस्तुका ज्ञान होना, या वस्तुके एकदेशके ज्ञानके समयमें ही दृष्टान्तमुखेन या अन्य प्रकारसे अनवलम्बित वस्तुका ज्ञान होना, तथा अनुसंधानप्रत्यय और प्रत्यभिज्ञानप्रत्यय; यह सब अनिःसृतप्रत्यय है । यह असिद्ध भी नहीं है, क्योंकि, चक्षुके द्वारा घटके अवलम्बनीभूत

---

१ ताप्रतौ 'विशिष्टं वस्तु' इति पाठः । २ ताप्रतौ 'तरुष्क' इति पाठः । ३ ताप्रतौ '-विषयः एकविधः' इति पाठः । ४ काप्रतौ 'एकजातिविषयः प्रत्ययोरेकत्वाभावात्' इति पाठः ।

क्वचिद् घटप्रत्ययोत्पत्त्युपलम्भात्, क्वचिद् गौरिव गवय इति उपमया सह उपमेयप्रत्ययोपलम्भात्, कदाचित् स एवायमिति प्रत्यभिज्ञानप्रत्ययदर्शनात्, कदाचिद् बहूनर्थान् जातिद्वारेणाणुसंदधानस्यानुसंधानप्रत्ययस्य दर्शनात्। अर्वाग्भागावष्टम्भबलेन अनालम्बितपरभागादिषूत्पद्यमानः प्रत्ययः अनुमानं किन्न स्यादिति चेत्– न, तस्य लिंगाद्भिन्नार्थविषयत्वात्। न तावदर्वाग्भागप्रत्ययसमकालभावी परभागप्रत्ययोऽनुमानम्, तस्य अवग्रहरूपत्वात्। न भिन्नकालभाव्यप्यनुमानम्, तस्य ईहापृष्ठभाविनः अवायप्रत्ययेऽन्तर्भावात्। क्वचिदेकवर्णश्रवणकाल एवाभिधास्यमानवर्णविषयप्रत्ययोत्पत्त्युपलम्भात्, क्वचित्स्वभ्यस्तवस्तुनि द्वित्र्यादिस्पर्शात्मके एकस्पर्शोपलम्भकाल एव स्पर्शान्तरविशिष्टतद्वस्तूपलम्भात्, क्वचिदेकरसग्रहणकाल एव तत्प्रदेशासन्निहितरसान्तरविशिष्टवस्तूपलम्भात्। निःसृतमित्यपरे पठन्ति। तन्न घटते, उपमाप्रत्ययस्य एकस्यैव तत्रोपलम्भात्।

एतत्प्रतिपक्षो निःसृतप्रत्ययः, क्वचित्कदाचिद्वस्त्वेकदेश एव प्रत्ययोत्पत्त्युपलम्भात्। प्रतिनियतं[1]गुणविशिष्टवस्तूपलम्भकाल एव तदिन्द्रियानियतगुणविशिष्टस्य तस्योपलब्धिरनुक्तप्रत्ययः। न चायमसिद्धः, चक्षुषा लवण-शर्करा-खण्डोपलम्भकाल एव कदाचित्तद्रसावगतेः,

अर्वाग्भागके देखनेके समयमें ही कहींपर पूरे घटके ज्ञानकी उत्पत्ति देखी जाती है। कहींपर 'गवय गायके समान होता है' इस प्रकार उपमाके साथ ही उपमेयज्ञानकी उपलब्धि होती है। कदाचित् 'वही यह है' इस प्रकार प्रत्यभिज्ञान प्रत्यय देखा जाता है। कदाचित् बहुत अर्थोंका जातिद्वारा अनुसंधान करनेवालेके अनुसंधान प्रत्यय देखा जाता है।

शंका— अर्वाग्भागके आलम्बनबलसे अनालम्बित परभागादिकोंका होनेवाला ज्ञान अनुमान ज्ञान क्यों नहीं होगा?

समाधान— नहीं, क्योंकि अनुमानज्ञान लिंगसे भिन्न अर्थको विषय करता है। अर्वाग्भागके ज्ञानके समान कालमें होनेवाला परभागका ज्ञान तो अनुमान ज्ञान हो नहीं सकता, क्योंकि, वह अवग्रहस्वरूप ज्ञान है। भिन्न कालमें होनेवाला भी उक्त ज्ञान अनुमान ज्ञान नहीं हो सकता, क्योंकि, ईहाके बादमें उत्पन्न होनेसे उसका अवायज्ञानमें अन्तर्भाव होता है।

कहींपर एक वर्णके सुननेके समयमें ही कहे आगे जानेवाले वर्णविषयक ज्ञानकी उत्पत्ति उपलब्ध होती है, कहींपर दो-तीन आदि स्पर्शवाली अतिशय अभ्यस्त वस्तुमें एक स्पर्शका ग्रहण होते समय ही दूसरे स्पर्शसे युक्त उस वस्तुका ग्रहण होता है, तथा कहींपर एक रसके ग्रहण समयमें ही उस प्रदेशमें असन्निहित दूसरे रससे युक्त वस्तुका ग्रहण होता है; इसलिये भी अनिःसृतप्रत्यय असिद्ध नहीं है। दूसरे आचार्य अनिःसृतके स्थानमें निःसृत पाठ पढ़ते हैं, परन्तु वह घटित नहीं होता, क्योंकि, ऐसा माननेपर एकमात्र उपमा प्रत्यय ही वहां उपलब्ध होता है।

इसका प्रतिपक्षभूत निःसृतप्रत्यय है, क्योंकि, कहींपर किसी कालमें वस्तुके एकदेशके ज्ञानकी ही उत्पत्ति देखी जाती है। प्रतिनियत गुण विशिष्ट वस्तुके ग्रहणके समय ही जो गुण उस इन्द्रियका विषय नहीं है ऐसे गुणसे युक्त उस वस्तुका ग्रहण होना अनुक्तप्रत्यय है। यह प्रत्यय असिद्ध भी नहीं है, क्योंकि, चक्षुके द्वारा लवण, शर्करा और खांडके ग्रहणके समय ही

१ ताप्रतौ 'प्रतिनियम' इति पाठः।

प्रदीपस्वरूपग्रहणकाल एव कदाचित्तत्स्पर्शोपलम्भात्, आहितसंस्कारस्य कस्यचिच्छब्दग्रहणकाल एव तद्रसादिप्रत्ययोपलम्भाच्च । एतत्प्रतिपक्षः उक्तप्रत्ययः । निःसृतोक्तयोः को भेदश्चेत्– न, उक्तस्य निःसृतानिःसृतोभयरूपस्य निःसृतेनैकत्वविरोधात् । नित्यत्वविशिष्टस्तम्भादिप्रत्ययः स्थिरः । न च स्थिरप्रत्ययः एकान्त इति प्रत्यवस्थातुं युक्तम्, विधि-निषेधादिद्वारेण अत्रापि अनेकान्तविषयत्वदर्शनात् । विद्युत्प्रदीपज्वालादौ उत्पाद-विनाशविशिष्टवस्तुप्रत्ययः अध्रुवः । उत्पाद-व्यय-ध्रौव्यविशिष्टवस्तुप्रत्ययोऽपि अध्रुवः, ध्रुवात्पृथग्भूतत्वात् । मनसोऽनुक्तस्य को विषयश्चेत्– अदृष्टमश्रुतमननुभूतं च । न च तस्य तत्र वृत्तिरसिद्धा, अन्यथा उपदेशमन्तरेण द्वादशांगश्रुतावगमनानुपपत्तेः ।

इदानीमुच्चार्य द्वादश प्रत्यया अवबोध्यन्ते । तद्यथा— चक्षुषा बहुमवगृह्णाति १ । चक्षुषा एकमवगृह्णाति २ । चक्षुषा बहुविधमवगृह्णाति ३ । चक्षुषा एकविधमवगृह्णाति ४ । चक्षुषा क्षिप्रमवगृह्णाति ५ । चक्षुषा अक्षिप्रमवगृह्णाति ६ । चक्षुषा अनिःसृतमवगृह्णाति ७ । चक्षुषा निःसृतमवगृह्णाति ८ । चक्षुषा अनुक्तमवगृह्णाति ९ । चक्षुषा उक्तमवगृह्णाति १० ।

कदाचित् उसके रसका ज्ञान हो जाता है, प्रदीपके स्वरूपका ग्रहण होते समय ही कदाचित् उसके स्पर्शका ज्ञान हो जाता है, और संस्कारसम्पन्न किसीके शब्दश्रवणके समय ही उस वस्तुके रसादिका ज्ञान भी देखा जाता है । इसका प्रतिपक्षभूत उक्तप्रत्यय है ।

शंका— निःसृत और उक्तमें क्या भेद है ?

समाधान— नहीं, क्योंकि उक्तप्रत्यय निःसृत और अनिःसृत उभयरूप होता है, इसलिये उसे निःसृतसे अभिन्न माननेमें विरोध आता है ।

नित्यत्वविशिष्ट स्तम्भ आदिका ज्ञान स्थिर अर्थात् ध्रुवप्रत्यय है । और स्थिरज्ञान एकान्तरूप है, ऐसा निश्चय करना युक्त नहीं है; क्योंकि, विधि-निषेधके द्वारा यहांपर भी अनेकान्तकी विषयता देखी जाती है । बिजली और दीपककी लौ आदिमें उत्पाद-विनाशयुक्त वस्तुका ज्ञान अध्रुवप्रत्यय है । उत्पाद, व्यय और ध्रौव्य युक्त वस्तुका ज्ञान भी अध्रुवप्रत्यय है; क्योंकि, यह ज्ञान ध्रुवज्ञानसे भिन्न है ।

शंका— मनसे अनुक्तका विषय क्या है ?

समाधान— अदृष्ट, अश्रुत और अननुभूत पदार्थ । इन पदार्थोंमें मनकी प्रवृत्ति असिद्ध भी नहीं है, क्योंकि, ऐसा नहीं माननेपर उपदेशके बिना द्वादशांग श्रुतका ज्ञान नहीं बन सकता है ।

अब बारह प्रकारके प्रत्ययोंका उच्चारण करके ज्ञान कराते हैं । यथा— चक्षुके द्वारा बहुतका अवग्रहज्ञान होता है १ । चक्षुके द्वारा एकका अवग्रहज्ञान होता है २ । चक्षुके द्वारा बहुविधका अवग्रहज्ञान होता है ३ । चक्षुके द्वारा एकविधका अवग्रहज्ञान होता है ४ । चक्षुके द्वारा क्षिप्रका अवग्रहज्ञान होता है ५ । चक्षुके द्वारा अक्षिप्रका अवग्रहज्ञान होता है ६ । चक्षुके द्वारा अनिःसृतका अवग्रहज्ञान होता है ७ । चक्षुके द्वारा निःसृतका अवग्रहज्ञान होता है ८ । चक्षुके द्वारा अनुक्तका अवग्रहज्ञान होता है ९ । चक्षुके द्वारा उक्तका अवग्रहज्ञान होता

चक्षुषा ध्रुवमवगृह्णाति ११। चक्षुषा अध्रुवमवगृह्णाति १२। एवं चक्षुरिन्द्रियावग्रहो द्वादशविधः। एवमीहावाय-धारणानामपि प्रत्येकं द्वादश भंगाः प्रतिपाद्याः। तद्यथा— चक्षुषा बहुमीहते १, एकमीहते २, बहुविधमीहते ३, एकविधमीहते ४, क्षिप्रमीहते ५, अक्षिप्रमीहते ६, अनिःसृतमीहते ७, निःसृतमीहते ८, अनुक्तमीहते ९, उक्तमीहते १०, ध्रुवमीहते ११, अध्रुवमीहते १२। एवमीहायाः द्वादश भेदाः। बहुमवैति १, एकमवैति २, बहुविधमवैति ३, एकविधमवैति ४, क्षिप्रमवैति ५, अक्षिप्रमवैति ६, अनिःसृतमवैति ७, निःसृतमवैति ८, अनुक्तमवैति ९, उक्तमवैति १०, ध्रुवमवैति ११, अध्रुवमवैति १२। एवं द्वादश अवायभेदाः। बहुं धारयति १, एकं धारयति २, बहुविधं धारयति ३, एकविधं धारयति ४, क्षिप्रं धारयति ५, अक्षिप्रं धारयति ६, अनिःसृतं धारयति ७, निःसृतं धारयति ८, अनुक्तं धारयति ९, उक्तं धारयति १०, ध्रुवं धारयति ११, अध्रुवं धारयति १२। एवं धारणायाः द्वादश भेदाः। संपहि एदेण बीजपदेण सव्वभंगा उच्चारेदव्वा। एवमुच्चारिय सिद्धभंगाणं पमाणपरूवणं कस्सामो। तं जहा— ४, २४, २८, ३२ एदे पुव्वुप्पाइदे भंगे दोसु ट्ठाणेसु ट्ठविय छहि बारसेहि य गुणिय पुणरुत्तमवणिय परिवाडीए

है १०। चक्षुके द्वारा ध्रुवका अवग्रहज्ञान होता है ११। चक्षुके द्वारा अध्रुवका अवग्रहज्ञान होता है १२। इस प्रकार चक्षुइन्द्रियअवग्रह बारह प्रकारका है। इसी प्रकार ईहा, अवाय और धारणाके भी अलग अलग बारह बारह भेद जानने चाहिये। यथा— चक्षुके द्वारा बहुतका ईहाज्ञान होता है १। एकका ईहाज्ञान होता है २। बहुविधका ईहाज्ञान होता है ३। एकविधका ईहाज्ञान होता है ४। क्षिप्रका ईहाज्ञान होता है ५। अक्षिप्रका ईहाज्ञान होता है ६। अनिःसृतका ईहाज्ञान होता है ७। निःसृतका ईहाज्ञान होता है ८। अनुक्तका ईहाज्ञान होता है ९। उक्तका ईहाज्ञान होता है १०। ध्रुवका ईहाज्ञान होता है ११। अध्रुवका ईहाज्ञान होता है १२। इस प्रकार ईहाके बारह भेद हैं। बहुतका अवायज्ञान होता है १। एकका अवायज्ञान होता है २। बहुविधका अवायज्ञान होता है ३। एकविधका अवायज्ञान होता है ४। क्षिप्रका अवायज्ञान होता है ५। अक्षिप्रका अवायज्ञान होता है ६। अनिःसृतका अवायज्ञान होता है ७। निःसृतका अवायज्ञान होता है ८। अनुक्तका अवायज्ञान होता है ९। उक्तका अवायज्ञान होता है १०। ध्रुवका अवायज्ञान होता है ११। अध्रुवका अवायज्ञान होता है १२। इस प्रकार अवायज्ञान बारह प्रकारका है। बहुतका धारणाज्ञान होता है १। एकका धारणाज्ञान होता है २। बहुविधका धारणाज्ञान होता है ३। एकविधका धारणाज्ञान होता है ४। क्षिप्रका धारणाज्ञान होता है ५। अक्षिप्रका धारणाज्ञान होता है ६। अनिःसृतका धारणाज्ञान होता है ७। निःसृतका धारणाज्ञान होता है ८। अनुक्तका धारणाज्ञान होता है ९। उक्तका धारणाज्ञान होता है १०। ध्रुवका धारणाज्ञान होता है ११। अध्रुवका धारणाज्ञान होता है १२। इस प्रकार धारणाज्ञानके बारह भेद हैं।

अब इस बीजपदके द्वारा सब भंगोंका उच्चारण करना चाहिये। इस प्रकार उच्चारण करके सिद्ध हुए भंगोंके प्रमाणका कथन करते हैं। यथा— पहले उत्पन्न किये गये ४, २४, २८ और ३२ भेदोंको दो स्थानोंमें रखकर छह और बारहसे गुणा करके और पुनरुक्त भंगोंको कम करके

ट्ठइदे सुत्तपरूविदभंगपमाणं होदि । तं च एदं– ४, २४, २८, ३२, ४८, १४४, १६८, १९२, २८८, ३३६, ३८४ । जत्तिया मदिणाणवियप्पा तत्तिया चेव आभिणिबोहियणाणावरणीयस्स पयडिवियप्पा त्ति वत्तव्वं ।

तस्सेव आभिणिबोहियणाणावरणीयकम्मस्स अण्णा परूवणा कायव्वा भवदि ॥ ३६ ॥

का अण्णा अत्थपरूवणा ? चदुण्णमोग्गहादीणमाभिणिबोहियणाणस्स च पज्जायसद्दपरूवणा पुव्वपरूवणादो पुधभूदा त्ति अण्णा वत्तव्वा । किमट्ठमेसा वुच्चदे ? सुहावगमणट्ठं ।

क्रमसे स्थापित करनेपर सूत्रमें कहे गये भेदोंका प्रमाण होता है । वह इस प्रकार है—४, २४, २८, ३२, ४८, १४४, १६८, १९२, २८८, ३३६, ३८४.

जितने मतिज्ञानके भेद हैं उतने ही आभिनिवोधिकज्ञानावरणीयके प्रकृतिविकल्प हैं, ऐसा कहना चाहिये ।

विशेषार्थ—यहां मतिज्ञानके अवान्तर भेदोंका विस्तारके साथ विवेचन किया गया है । मूलमें अवग्रह, ईहा, अवाय और धारणा ये ४ भेद हैं । इन्हें पांच इन्द्रिय और मनसे गुणित करनेपर २४ भेद होते हैं । इनमें व्यञ्जनावग्रहके ४ भेद मिलानेपर २८ भेद होते हैं । ये २८ उत्तर भेद हैं, इसलिए इनमें अवग्रह आदि ४ मूल भंग मिलानेपर ३२ भेद होते हैं । ये तो इन्द्रियों और अवग्रह आदिकी अलग अलग विवक्षासे भेद हुए । अब जो वहु, वहुविध, क्षिप्र, अनिःसृत, अनुक्त और ध्रुव ऐसे छह प्रकारके पदार्थ तथा इनके प्रतिपक्षभूत छह इतर पदार्थोंको मिलाकर बारह प्रकारके पदार्थ वतलाये हैं उनसे अलग अलग उक्त विकल्पोंको गुणित किया जाता है तो सूत्रोक्त मतिज्ञानके सभी विकल्प उत्पन्न होते हैं । यथा—४ × ६ = २४, २४ × ६ = १४४, २८ × ६ = १६८, ३२ × ६ = १९२; ४ × १२ = ४८, २४ × १२ = २८८, २८ × १२ = ३३६, ३२ × १२ = ३८४.

मतिज्ञानके २४ भेद पहले कहे ही हैं और यहां भी ४ को ६ से गुणित करनेपर २४ विकल्प आते हैं, इसलिए इस २४ संख्याको पुनरुक्त मानकर अलग कर देनेपर ४, २४, २८, ३२, ४८, १४४, १६८, १९२, २८८, ३३६ और ३८४ मतिज्ञानके विकल्प होते हैं । यद्यपि पहले जो २४ विकल्प कहे हैं वे अन्य प्रकारसे कहे गये हैं और यहां अन्य प्रकारसे उत्पन्न किये गये हैं, पर संख्याकी दृष्टिसे एक चौवीसीको पुनरुक्त मानकर अलग कर दिया है ।

उसी आभिनिवोधिकज्ञानावरणीय कर्मकी अन्य प्ररूपणा की जाती है ॥ ३६ ॥

शंका—अन्य अर्थप्ररूपणा कौनसी है ?

समाधान—चार अवग्रह आदिके और आभिनिवोधिक ज्ञानके पर्यायवाची शब्दोंकी प्ररूपणा चूंकि पूर्वोक्त प्ररूपणासे भिन्न है, इसलिये इसे अन्य कहनी चाहिये ।

शंका— इसका कथन किसलिये करते हैं ?

समाधान— सुखपूर्वक ज्ञान होनेके लिये ।

ओग्गहे योदाणे साणे अवलंबणा मेहा[1] ॥ ३७ ॥

एदे पंच वि ओग्गहस्स पज्जायसद्दा । अवगृह्यते अनेन घटाद्यर्थो इत्यवग्रहः । अवदीयते खण्ड्यते परिच्छिद्यते अन्येभ्य अर्थः अनेनेति अवदानम्[2] । स्यति छिनत्ति हन्ति विनाशयति अनध्यवसायमित्यवग्रहः सानम् । अवलम्ब्यते इन्द्रियादीनि स्वोत्पत्तये इत्यवग्रहः अवलम्बना । मेध्यति परिच्छिनत्ति[3] अर्थमनया इति मेधा । संपहि ईहाए एयट्ठपरूवणट्ठ-मुत्तरसुत्तं भणदि—

ईहा ऊहा अपोहा[4] मग्गणा गवेसणा मीमांसा[5] ॥ ३८ ॥

उत्पन्नसंशयविनाशाय ईहते चेष्टते अनया बुद्ध्या इति ईहा । अवगृहीतार्थस्य अनधि-गतविशेषः[6] उह्यते तर्क्यते अनया इति ऊहा । अपोह्यते संशयनिबन्धनविकल्पः अनया इति अपोहा । अवगृहीतार्थविशेषो मृग्यते अन्विष्यते अनया इति मार्गणा । गवेष्यते अनया इति गवेषणा । मीमांस्यते विचार्यते अवगृहीतो अर्थो विशेषरूपेण अनया इति मीमांसा ।

अवग्रह, अवधान, सान, अवलम्बना और मेधा ये अवग्रहके पर्यायवाची नाम हैं ॥३७॥

ये पांचों ही अवग्रहके पर्याय शब्द हैं। जिसके द्वारा घटादि पदार्थ 'अवगृह्यते' अर्थात् जाने जाते हैं वह अवग्रह है । जिसके द्वारा 'अवधीयते खण्ड्यते' अर्थात् अन्य पदार्थोंसे अलग करके विवक्षित अर्थ जाना जाता है वह अवग्रहका अन्य नाम अवधान है । जो अनध्यवसायको 'स्यति छिनत्ति हन्ति विनाशयति' अर्थात् छेदता हैं नष्ट करता है वह अवग्रहका तीसरा नाम सान है । जो अपनी उत्पत्तिके लिये इन्द्रियादिकका अवलम्बन लेता है वह अवग्रहका चौथा नाम अवलम्बना है । जिसके द्वारा पदार्थ 'मेध्यति' अर्थात् जाना जाता है वह अवग्रहका पांचवां नाम मेधा हैं । अब ईहाके एकार्थोंका कथन करनेके लिये आगेका सूत्र कहते हैं—

ईहा, ऊहा, अपोहा, मार्गणा, गवेषणा और मीमांसा ये ईहाके पर्याय नाम हैं ॥ ३८॥

जिस बुद्धिके द्वारा उत्पन्न हुए संशयका नाश करनेके लिये 'ईहते' अर्थात् चेष्टा करते हैं वह ईहा है। जिसके द्वारा अवग्रहके द्वारा ग्रहण किये गये अर्थके नहीं जाने गये विशेषकी 'ऊह्यते' अर्थात् तर्कणा करते हैं वह ऊहा है। जिसके द्वारा संशयके कारणभूत विकल्पका 'अपोह्यते' अर्थात् निराकरण किया जाता है वह अपोहा है । अवग्रहके द्वारा ग्रहण किये अर्थके विशेषका जिसके द्वारा मार्गण अर्थात् अन्वेषण किया जाता है वह मार्गणा है। जिसके द्वारा गवेषणाकी जाती है वह गवेषणा हैं । अवग्रहके द्वारा ग्रहण किया गया अर्थ विशेषरूपसे जिसके

---

१ तस्स णं इमे एगट्ठिया नाणाघोसा नाणावंजणा पंच नामधिज्जा भवंति । तं जहा– ओगेण्हणया उवधारणया सवणया अवलंबणया मेहा । से त्तं उग्गहे । नं. सू. २९. २ काप्रतौ 'अवधानं' इति पाठः । ३ ताप्रतौ 'परिच्छिन्नत्ति' इति पाठः । ४ अ-आ-काप्रतिषु 'पूहा' इति पाठः । ५...... तीसे णं इमे एगट्ठिया नाणाघोसा नाणावंजणा पंचनामधिज्जा भवंति । तं जहा– आभोगणया मग्गणया गवेसणया चिंता विमंसा । से त्तं ईहा । नं. सू. ३२. ईहा अपोह वीमंसा मग्गणा य गवेणा । सन्ना सई मई पन्ना सव्वं आभिणिबोहियं ॥ नं. सू. गाथा ६. वि. भा. ३९६. ६ ताप्रतौ 'अनधिगतिविशेषः' इति पाठः ।

संपहि अवायस्स एयट्टपरूवणट्ठमुत्तरसुत्तं भणदि—

अवायो ववसायो बुद्धी विण्णाणी आउंडी पच्चाउंडी[1] ॥३९॥

अवेयते निश्चीयते मीमांसितोऽर्थोऽनेनेत्यवायः । व्यवसीयते निश्चीयते अन्वेषितोऽर्थोऽनेनेति व्यवसायः । ऊहितोऽर्थो बुद्ध्यते अवगम्यते अनया इति बुद्धिः । विशेषरूपेण ज्ञायते तर्कितोऽर्थोऽनया इति विज्ञप्तिः । आमुंड्यते संकोच्यते वितर्कितोऽर्थः अनयेति आमुंडा । प्राकृते 'एदे छच्च समाणा' इत्यनेन ईत्वम् । प्रत्यर्थमामुंड्यते संकोच्यते मीमांसितोऽर्थः अनयेति प्रत्यामुंडा । संपहि धारणाए एयट्टपरूवणमुत्तरसुत्तं भणदि—

धरणी धारणा[2] ट्ठवणा कोट्ठा पदिट्ठा[3] ॥ ४० ॥

धरणीव बुद्धिर्धरणी । यथा धरणी गिरि-सरित्-सागर-वृक्ष-क्षुपाश्मादीन् धारयति तथा निर्णीतमर्थं या बुद्धिर्धारयति सा धरणी णाम । धार्य्यते निर्णीतोऽर्थः अनया इति धारणा । [4]स्थाप्यते अनया निर्णीतरूपेण अर्थ इति स्थापना । कोष्ठा इव कोष्ठा । कोष्ठा नाम कुस्थली, तद्वन्निर्णीतार्थं धारयतीति कोष्ठेति भण्यते । प्रतितिष्ठन्ति विनाशेन विना अस्यामर्था इति

द्वारा मीमांसित किया जाता है अर्थात् विचारा जाता है वह मीमांसा है । अब अवायके एकार्थोंका कथन करनेके लिये आगेका सूत्र कहते हैं—

अवाय, व्यवसाय, बुद्धि, विज्ञप्ति, आमुंडा और प्रत्यामुंडा ये पर्याय नाम हैं ॥ ३९ ॥

जिसके द्वारा मीमांसित अर्थ 'अवेयते' अर्थात् निश्चित किया जाता है वह अवाय है । जिसके द्वारा अन्वेषित अर्थ 'व्यवसीयते' अर्थात् निश्चित किया जाता है वह व्यवसाय है । जिसके द्वारा ऊहित अर्थ 'बुद्ध्यते' अर्थात् जाना जाता है वह बुद्धि है । जिसके द्वारा तर्कसंगत अर्थ विशेषरूपसे जाना जाता है वह विज्ञप्ति है । जिसके द्वारा वितर्कित अर्थ 'आमुंडयते' अर्थात् संकोचित किया जाता है वह आमुंडा है । प्राकृतमें 'एदे छच्च समाणा' इस नियमके अनुसार यहां ईत्व हो गया है । जिसके द्वारा मीमांसित अर्थ अलग अलग 'आमुंडयते' अर्थात् संकोचित किया जाता है वह प्रत्यामुंडा है । अब धारणा ज्ञानके एकार्थोंका ज्ञान करानेके लिये आगेका सूत्र कहते हैं—

धरणी, धारणा, स्थापना, कोष्ठा और प्रतिष्ठा ये एकार्थ नाम हैं ॥ ४० ॥

धरणीके समान बुद्धिका नाम धरणी है । जिस प्रकार धरणी (पृथिवी) गिरि, नदी, सागर, वृक्ष, झाड़ी और पत्थर आदिको धारण करती है उसी प्रकार जो बुद्धि निर्णीत अर्थको धारण करती है वह धरणी है । जिसके द्वारा निर्णीत अर्थ धारण किया जाता है वह धारणा है । जिसके द्वारा निर्णीतरूपसे अर्थ स्थापित किया जाता है वह स्थापना है । कोष्ठाके समान बुद्धिका नाम कोष्ठा है । कोष्ठा कुस्थलीको कहते हैं । उसके समान जो निर्णीत अर्थको धारण करती है वह बुद्धि कोष्ठा कही जाती है । जिसमें विनाशके विना पदार्थ प्रतिष्ठित रहते हैं वह बुद्धि प्रतिष्ठा है ।

१ तस्स णं इमे एगट्ठिआः नाणाघोसा नाणावंजणा पंच णामधिज्जा भवंति । तं जहा— आउट्टणया पच्चाउट्टणया अवाए बुद्धी विण्णाणे । से त्तं अवाए । नं सू. ३३. २ अ-आ-ताप्रतिषु 'घारणी' इति पाठः । ३ वीसे णं इमे एगट्ठिआ नाणाघोसा नाणावंजणा पंच नामधिज्जा भवंति । तं जहा— धरणा धारणा ठवणा पइट्ठा कोट्ठे । से त्तं धारणा । नं. सू. ३४. ४ ताप्रतावतः प्राक् [स्थाप्यते अनया इति धारणा] इत्येतावानयं कोष्ठकान्तर्गतोऽधिकः पाठोऽस्ति ।

प्रतिष्ठा । संपहि आभिणिबोहियणाणस्स एयट्ठपरूवणट्ठमुत्तरसुत्तं भणदि—

सण्णा सदी मदी चिंता चेदि[1] ॥ ४१ ॥

सम्यग्ज्ञायते अनया इति संज्ञा । स्मरणं स्मृतिः । मननं मतिः । चिन्तनं चिन्ता[2] ।

[3]एवमाभिणिबोहियणाणावरणीयस्स कम्मस्स अण्णा परूवणा कदा होदि ॥ ४२ ॥

आभिणिबोहियणाणपरूवणाए कदाए कधं तदावरणीयस्स परूवणा होदि ? ण एस दोसो, आभिणिबोहियणाणावगमस्स तदावरणावगमाविणाभावित्तादो ।

संपहि सुहुमेइंदियलद्धिअक्खरप्पहुडि छवड्ढीए ट्ठिदअंखेज्जलोगमेत्तमदिणाणवियप्पा अत्थि, ते एत्थ किण्ण परूविदा ? ण एस दोसो, तेसिं सव्वेसिं पि णाणाणं तदावरणाणं च एत्थेव अंतब्भावादो । अधवा, देसामासियमिदं सुत्तं, तेण ते वि एत्थ परूवेदव्वा । अम्हे

अब आभिनिबोधिक ज्ञानके एकार्थोंका कथन करनेके लिये आगेका सूत्र कहते हैं—

संज्ञा, स्मृति, मति और चिन्ता ये एकार्थवाची नाम हैं ॥ ४१ ॥

जिसके द्वारा भले प्रकार जानते हैं वह संज्ञा है । स्मरण करना स्मृति है । मनन करना मति है । चिन्तन करना चिन्ता है ।

इस प्रकार आभिनिबोधिकज्ञानावरणीय कर्मकी अन्य प्ररूपणा की गई है ॥ ४२ ॥

शंका—आभिनिबोधिक ज्ञानका कथन करनेपर आभिनिबोधिकज्ञानावरणका कथन कैसे होता है ?

समाधान—यह कोई दोष नहीं है, क्योंकि आभिनिबोधिक ज्ञानका अवगम आभिनिबोधिकज्ञानावरणके अवगमका अविनाभावी है ।

शंका—सूक्ष्म एकेन्द्रिय जीवके लब्ध्यक्षरज्ञानसे लेकर छह वृद्धियोंके साथ स्थित असंख्यात लोकप्रमाण मतिज्ञानविकल्प होते हैं, वे यहां क्यों नहीं कहे गये हैं ?

समाधान—यह कोई दोष नहीं है, क्योंकि उन सब ज्ञानोंका और उनके आवरण कर्मोंका इन्हींमें अन्तर्भाव हो जाता है। अथवा यह सूत्र देशामर्शक है, इसलिये वे भी यहांपर कहने चाहिये ।

विशेषार्थ—जिस प्रकार लब्ध्यपर्याप्तक जीवके सबसे जघन्य श्रुतज्ञान होता है और आगे उत्तरोत्तर उस ज्ञानमें असंख्यात लोकप्रमाण अनन्तभागवृद्धि आदि षड्गुणी वृद्धि देखी जाती हैं उसी प्रकार लब्ध्यपर्याप्तक जीवके सबसे जघन्य मतिज्ञान होता है और आगे उस ज्ञानमें असंख्यात लोकप्रमाण अनन्तभागवृद्धि आदि षड्गुणी वृद्धि देखी जाती हैं। इतना ही नहीं, आगे चलकर अक्षरज्ञानके उत्पन्न होनेपर फिर दुगुणी तिगुणी आदि वृद्धि होकर जिस प्रकार पूर्ण श्रुतज्ञानकी उत्पत्ति होती है उसी प्रकार मतिज्ञानकी भी उत्तरोत्तर वृद्धि होनी चाहिए। इसलिए प्रश्न है कि यहांपर इस विवक्षासे मतिज्ञानका विवेचन क्यों नहीं किया। इस शंकाका वीरसेन स्वामीने जो समाधान किया है उसका भाव यह है कि यहां मतिज्ञानके जातिकी अपेक्षा

---

१ मतिः स्मृतिः संज्ञा चिन्ताऽभिनिबोध इत्यनर्थान्तरम् ॥ त. सू. १–१३. सण्णा सई मई पण्णा सव्वं आभिणिबोहियं ॥ नं. सू. गाथा ६., वि. भा. ३९६ (नि. १२). २ ताप्रतौ 'स्मृतिः स्मरणं । मतिः मननं । चिंता चिंतनं ।' इति पाठः । ३ ताप्रतौ धवलान्तर्गतमिदं न सूत्रत्वेनोपलभ्यते ।

दु 'मदिपुव्वं सुदं'[1] इदि जाणावणट्ठं सुदणाणावरणपरूवणाए तप्परूवणं कस्सामो ।

सुदणाणावरणीयस्स कम्मस्स केवडियाओ पयडीओ ? ॥४३॥

किं संखेज्जाओ किमसंखेज्जाओ किमणंताओ त्ति पुच्छा कदा होदि । किं सुदणाणं णाम ? अवग्गहादिधारणापेरंतमदिणाणेण अवगयत्थादो अण्णत्थावगमो सुदणाणं । तं च दुविहं– सद्दलिंगजं असद्दलिंगजं चेदि । धूमलिंगादो जलणावगमो असद्दलिंगजो । अवरो सद्दलिंगजो । किंलक्खणं लिंगं ? अण्णहाणुववत्तिलक्खणं । पक्षधर्मत्वं सपक्षे सत्त्वं विपक्षे च असत्त्वमिति एतैस्त्रिभिर्लक्षणैरुपलक्षितं वस्तु किं न लिंगमिति चेत्– न, व्यभिचारात् । तद्यथा— पक्वान्याम्रफलान्येकशाखाप्रभवत्वादुपयुक्ताम्रफलवत्, स श्यामः त्वत्पुत्रत्वादितरपुत्रवत्, सा भूमिः समस्थला भूमित्वात्, समस्थलत्वेन वादि-प्रतिवादिप्रसिद्धभूभाग-

---

भेद गिनाये हैं, उत्तरोत्तर वृद्धिंगत क्षयोपशमकी अपेक्षा भेद नहीं गिनाये हैं; इसलिए क्षयोपशमकी मुख्यतासे जो भेद सम्भव हों उनका इन्हीं भेदोंमें अन्तर्भाव कर लेना चाहिए । यहां एक बात और ध्यान देने योग्य है कि यहांपर आभिनिबोधिक ज्ञानके जो मति आदिक पर्याय नाम बतलाये हैं वे अलग अलग ज्ञानविशेषको सूचित नहीं करते हैं । यहां जितने पर्यायवाची नाम दिये गये हैं वे इसी भावको सूचित करते हैं ।

अब हम मतिज्ञानपूर्वक श्रुतज्ञान होता है, इस बातका ज्ञान करानेके लिये श्रुतज्ञानावरण कर्मकी प्ररूपणाके प्रसंगसे उसकी प्ररूपणा करते हैं—

श्रुतज्ञानावरणीय कर्मकी कितनी प्रकृतियां हैं ? ॥ ४३ ॥

क्या संख्यात हैं, क्या असंख्यात हैं, या क्या अनन्त हैं इस प्रकार यहां पृच्छा की गई है ।

शंका— श्रुतज्ञान क्या है ?

समाधान— अवग्रहसे लेकर धारणा पर्यन्त मतिज्ञानके द्वारा जाने गये अर्थके निमित्तसे अन्य अर्थका ज्ञान होना श्रुतज्ञान है ।

वह दो प्रकारका है—शब्दलिंगज और अशब्दलिंगज । धूमके निमित्तसे अग्निका ज्ञान होना अशब्दलिंगज श्रुतज्ञान है । दूसरा शब्दलिंगज श्रुतज्ञान है ।

शंका— लिंगका क्या लक्षण है ?

समाधान— लिंगका लक्षण अन्यथानुपपत्ति है ।

शंका— पक्षधर्मत्व, सपक्षमें सत्त्व और विपक्षमें असत्त्व इस प्रकार इन तीन लक्षणोंसे उपलक्षित पदार्थ लिंग क्यों नहीं माना जाता ?

समाधान— नहीं, क्योंकि ऐसे पदार्थको लिंग माननेपर व्यभिचार दोष आता है । यथा— आमके फल पक्व हैं, क्योंकि वे एक शाखासे उत्पन्न हुए हैं, यथा उपयुक्त आमके फल । वह श्याम होगा, क्योंकि वह तुम्हारा बालक है, यथा तुम्हारे दूसरे बालक । वह भूमि समस्थलवाली है, क्योंकि भूमि है, यथा समस्थलरूपसे वादी और प्रतिवादी दोनोंके लिये प्रसिद्ध भूभाग ।

---

१ त. सू. १–२०.

वत्, लोहलेख्यं वज्रं पार्थिवत्वात् घटवत्, इत्यादीनि साधनानि[1] त्रिलक्षणान्यपि न साध्यसिद्धये भवन्ति । विश्वमनेकान्तात्मकं सत्त्वात्, वर्द्धते समुद्रश्चन्द्रवृद्धयन्यथानुपपत्तेः, चन्द्रकान्तोपलात्स्रवत्युदकं चन्द्रोदयान्यथानुपपत्तेः, उदेष्यति रोहिणी कृत्तिकोदयान्यथानुपपत्तेः, म्रियते राजा रात्राविन्द्रचापोत्पत्यन्यथानुपपत्तेः, राष्ट्रभंगः राष्ट्राधिपतेर्मरणं वा प्रतिमारोदनान्यथानुपपत्तेः, इत्यादीनि साधनानि अत्रिलक्षणान्यपि साध्यसिद्धये प्रभवन्ति । ततः इदमन्तरेण[2] इदमनुपपन्नमितीदमेव लक्षणं लिंगस्येति प्रत्येतव्यम् । अत्र श्लोकः—

अन्यथानुपपन्नत्वं यत्र तत्र त्रयेण किम् ।
नान्यथानुपपन्नत्वं यत्र तत्र त्रयेण किम्[3] ॥ १० ॥

नात्र तादात्म्य-तदुत्पत्त्यन्यतरनियमोऽपि, व्यभिचारात्[4] । स च सुगम इति नेह प्रपंच्यते । शेषं हेतुवादेषु द्रष्टव्यम् । एत्थ सद्दलिंगजसुदणाणपरूवणा कीरदे । एदेण सुत्तेण

लोहलेख्य वज्रमय है, क्योंकि वह पार्थिव है, यथा घट । इत्यादिक साधन तीन लक्षणवाले होकर भी साध्यकी सिद्धि करनेमें समर्थ नहीं होते । इसके अतिरिक्त विश्व अनेकान्तात्मक है, क्योंकि वह सत्स्वरूप हैं । समुद्र बढ़ता है, अन्यथा चन्द्रकी वृद्धि नहीं बन सकती । चन्द्रकान्त मणिसे जल झरता है, अन्यथा चन्द्रोदयकी उपपत्ति नहीं बन सकती । रोहिणी उदित होगी, अन्यथा कृतिकाका उदय नहीं बन सकता । राजा मरनेवाला हैं, अन्यथा रात्रिमें इन्द्रधनुषकी उत्पत्ति नहीं बन सकती । राष्ट्रका भंग या राष्ट्रके अधिपतिका मरण होगा, अन्यथा प्रतिमाका रुदन करना नहीं बन सकता । इत्यादिक साधन तीन लक्षणोंसे रहित होकर भी साध्यकी सिद्धि करनेमें समर्थ हैं । इसलिये 'इसके विना यह नहीं हो सकता' यही एक लक्षण लिंगका जानना चाहिये । इस विषयमें एक श्लोक है—

जहां अन्यथानुपपत्ति है वहां पक्षसत्त्वादि उन तीनके होनेसे क्या मतलब अर्थात् कुछ भी नहीं, और जहां अन्यथानुपत्ति नहीं है वहां उन तीनके होनेसे क्या प्रयोजन सिद्ध होगा अर्थात् कुछ भी नहीं ॥ १० ॥

यहां तादात्म्य और तदुत्पत्ति इनमेंसे किसी एकका नियम मानना भी ठीक नहीं है, क्योंकि ऐसा माननेपर व्यभिचार दोष आता है । वह सुगम है, इसलिये यहां उसका कथन नहीं करते । शेष कथन हेतुवादके प्रतिपादक ग्रन्थोंमें देखना चाहिये । यहां शब्दलिंगज श्रुतज्ञानका कथन करते हैं—

---

१ प्रतिषु 'साधनादीनि' इति पाठः । २ अ-आ-काप्रतिषु 'इदमनंतरेण', ताप्रतौ 'इदमनंतरेण (मंतरेण)' इति पाठः । ३ द्रष्टव्यास्त्यत्र पण्डितमहेन्द्रकुमारन्यायाचार्येण लिखिता न्यायकुमुदचन्द्रप्रस्तावना (पृ. ७३–७६.) पण्डितदरबारीलालन्यायाचार्येण सम्पादिता न्यायदीपिका च (पृ. ९४, टि. ७). ४ तादात्म्य-तदुत्पत्तिलक्षणप्रतिबन्धेऽप्यविनाभावादेव गमकत्वम् । तदभावे वक्तृत्व-तत्पुत्रत्वादेस्तादात्म्य-तदुत्पत्तिप्रतिबन्धे सत्यप्यसर्वज्ञत्वे श्यामत्वे च साध्ये गमकत्वाप्रतीतेः । तदभावेऽपि चाविनाभावप्रसादात्कृत्तिकोदय-चन्द्रोदयोद्गृहीताण्डकपिपीलिकोत्सर्पणैकाम्रफलोपलभ्यमानमधुररसस्वरूपाणां हेतूनां यथाक्रमं शकटोदय-समानसमयसमुद्रवृद्धि-भाविवृष्टि-समसमयसिन्दूरारुणरूपस्वभावेषु साध्येषु गमकत्वप्रतीतेश्च । प्र. क. मा. पृ. ११०.

देसामासिभावमावण्णेण सूचिदस्स असद्दलिंगजसुदणाणस्स परूवणा किण्ण कीरदे ? गंथबहुत्तभएण मंदमेहाविजणाणुग्गहट्टं च ण कीरदे ।

सुदणाणावरणीयस्स कम्मस्स संखेज्जाओ पयडीओ ॥ ४४ ॥

कुदो ? मज्झिमसंखेवसमासयणादो । तासिं पयडीणं संखेज्जत्तपदुप्पायणट्ठमुत्तर-सुत्तं भणदि—

जावदियाणि अक्खराणि अक्खरसंजोगा वा ॥ ४५ ॥

जावदियाणि अक्खराणि तावदियाणि चेव सुदणाणाणि, एगेगक्खरादो एगेगसुद-णाणुप्पत्तीए । एत्थ ताव अक्खरपमाणपरूवणं कस्सामो । तं जहा— वग्गक्खरा पंचवीस, अंतत्था चत्तारि, चत्तारि उम्हाक्खरा, एवं तेत्तीसा होंति वंजणाणि ३३ । अ इ उ ऋ ऌ ए ऐ ओ औ एवमेदे णव सरा हरस्स-दीह-पुदभेदेण पुध पुध भिण्णा सत्तावीस होंति । एचां ह्रस्वा न सन्तीति चेत्– न, प्राकृते तत्र तत्सत्त्वाविरोधात् । अजोगवाहा अं अः ≍ क ≍ प इति चत्तारि चेव होंति । एवं सव्वक्खराणि चउसट्ठी ६४ । एत्थ गाहा—

शंका— देशामर्शकभावको प्राप्त हुए इस सूत्र द्वारा अशब्दलिंगज श्रुतज्ञानका भी सूचन होता है, इसलिये यहां उसका कथन क्यों नहीं करते ?

समाधान— ग्रन्थके बढ़ जानेके भयसे और मन्दबुद्धि जनोंका उपकार करनेके अभि-प्रायसे यहां अशब्दलिंगज श्रुतज्ञानका कथन नहीं करते।

श्रुतज्ञानावरणीय कर्मकी संख्यात प्रकृतियां हैं ॥ ४४ ॥

क्योंकि यहां मध्यम संक्षेपका आश्रय लिया गया है। अब उन प्रकृतियोंकी निश्चित संख्याका ज्ञान करानेके लिये आगेका सूत्र कहते हैं—

जितने अक्षर हैं और जितने अक्षरसंयोग हैं उतनी श्रुतज्ञानावरणीय कर्मकी प्रकृतियां हैं ॥ ४५ ॥

जितने अक्षर हैं उतने ही श्रुतज्ञान हैं, क्योंकि एक एक अक्षरसे एक एक श्रुतज्ञानकी उत्पत्ति होती है। अब यहां अक्षरोंके प्रमाणका कथन करते हैं। यथा—

वर्गाक्षर पच्चीस, अन्तस्थ चार और उष्माक्षर चार इस प्रकार तेतीस व्यंजन होते हैं।

अ, इ, उ, ऋ, ऌ, ए, ऐ, ओ, औ इस प्रकार ये नौ स्वर अलग अलग ह्रस्व, दीर्घ और प्लुतके भेदसे सत्ताईस होते हैं।

शंका— एच् अर्थात् ए, ऐ, ओ और औ इनके ह्रस्व भेद नहीं होते ?

समाधान— नहीं, क्योंकि प्राकृतमें उनमें इनका सद्भाव माननेमें कोई विरोध नहीं आता।

अयोगवाह अं, अः, ≍ क और ≍ प ये चार ही होते हैं। इस प्रकार सब अक्षर चौंसठ ६४ होते हैं। इस विषयमें गाथा—

१ पत्तेयमक्खराइं अक्खरसंजोग जत्तिया लोए। एवइया सुयनाणे पयडीओ होंति नायव्वा ॥ वि. भा. ४४४ (नि. १७.). २ ताप्रतौ '+क' इति पाठः।

तेत्तीसवंजणाइं सत्तावीसं हवंति सव्वसरा ।
चत्तारि अजोगवहा एवं चउसट्ठि वण्णाओ[1] ॥ ११ ॥

एकमात्रो ह्रस्वः, द्विमात्रो दीर्घः, त्रिमात्रः प्लुतः, मात्रार्द्धं व्यञ्जनम् । अत्र श्लोकः—

एकमात्रो भवेद्ध्रस्वो द्विमात्रो दीर्घ उच्यते ।
त्रिमात्रस्तु प्लुतो ज्ञेयो व्यञ्जनं त्वर्द्धमात्रकम् ॥ १२ ॥

एदेहिं चउसट्ठिअक्खरेहिंतो चउसट्ठिसुदणाणवियप्पा होंति । तेसिमावरणाणं पि चउसट्ठिपमाणं होदि । जावदियाणि अक्खराणि त्ति एदस्स अत्थो परूविदो । जावदिया अक्खरसंजोगा त्ति एदस्स अत्थो वुच्चदे । तं जहा– एदेसिं चउसट्ठिअक्खराणं जत्तिया संजोगा तत्तियमेत्ता वा सुदणाणवियप्पा होंति । एत्थ वासद्दो वियप्पत्थे दट्ठव्वो । तेण जत्तियाणि अक्खराणि तत्तियमेत्ता सुदणाणवियप्पा होंति, चउसट्ठिअक्खरेहिंतो पुधभूद-अक्खरसंजोगाभावादो । अक्खरसंजोगमेत्ता वा सुदणाणवियप्पा होंति, अक्खरसंजोगेहिंतो पुधभूदचउसट्ठिअक्खराणमभावादो । एदेसिं चउसट्ठिअक्खराणं संजोगक्खरपमाणपरूवणट्ठ-मुत्तरसुत्तमागदं—

तेसिं गणिदगाधा भवदि—

संजोगावरणट्ठं चउसट्ठिं थावए दुवे रासिं ।
अण्णोण्णसमब्भासो रूवूणं णिद्दिसे[2] गणिदं ॥ ४६ ॥

तेतीस व्यंजन, सत्ताईस स्वर और चार अयोगवाह इस प्रकार कुल वर्ण चौंसठ होते हैं ॥ ११ ॥

एक मात्रावाला वर्ण ह्रस्व होता है, दो मात्रावाला वर्ण दीर्घ होता है, तीन मात्रावाला वर्ण प्लुत होता है, और अर्ध मात्रावाला वर्ण व्यंजन होता है । इस विषयमें एक श्लोक है—

एक मात्रावाला ह्रस्व कहलाता है, दो मात्रावाला दीर्घ कहलाता है, तीन मात्रावाला प्लुत जानना चाहिये और व्यंजन अर्ध मात्रावाला होता है ॥ १२ ॥

इन चौंसठ अक्षरोंसे चौंसठ श्रुतज्ञानके विकल्प होते हैं और उनके आवरणोंका प्रमाण भी चौंसठ होता है । इस प्रकार 'जितने अक्षर होते हैं' इसके अर्थकी प्ररूपणा की है । अब 'जितने अक्षरसंयोग होते हैं' इस वचनका अर्थ कहते हैं । यथा–– अथवा इन चौंसठ अक्षरोंके जितने संयोग होते हैं उतने मात्र श्रुतज्ञानके विकल्प होते हैं । यहां 'वा' शब्द विकल्परूप अर्थमें जानना चाहिये । इसलिये जितने अक्षर होते हैं उतने श्रुतज्ञानके विकल्प होते हैं, क्योंकि चौंसठ अक्षरोंसे पृथग्भूत अक्षरसंयोग नहीं पाये जाते । अथवा अक्षरोंके संयोगमात्र श्रुतज्ञानके विकल्प होते हैं, क्योंकि अक्षरसंयोगोंसे पृथग्भूत चौंसठ अक्षर नहीं पाये जाते । इन चौंसठ अक्षरोंके संयोगाक्षरोंका प्रमाण बतलानेके लिये आगेका सूत्र आया है––

उनकी गणित गाथा है—संयोगावरणोंको लानेके लिये चौंसठ संख्याप्रमाण दो राशि स्थापित करे । पश्चात् उनका परस्पर गुणा करके जो लब्ध आवे उसमेंसे एक कम करने पर कुल संयोगाक्षर होते हैं ॥ ४६ ॥

१ गो. जी. ३५२. २ अप्रतौ 'णिद्देसणे', आ-काप्रत्योः 'णिद्देसेण' इति पाठः । ३ चउसट्ठिपदं विरलिय दुगं च दाऊण संगुणं किच्चा । रूऊणं च कुए पुण सुदणाणस्सक्खरा होंति ॥ गो. जी. ३५३.

तेसिमक्खरसंजोगाणं गणिदे गणणाए एसा गाहा होदि । 'संजोगावरणट्ठं' अक्खरसंजोगावरणपमाणाणयणट्ठमिदि वुत्तं होदि। 'चउसट्ठिं थावए' अक्खराणं चउसट्ठि-संखं तेहिंतो पुधभावेण कप्पिय विरलेदूण कम्मभूमीए बुद्धीए वा ठावए[1] । एत्थ चउसट्ठि-अक्खरट्ठवणा एसा— अ आ आ३ । इ ई ई३ । उ ऊ ऊ३ । ऋ ॠ ॠ३ । ऌ ॡ ॡ३ । ए ए ए३ । ऐ ऐ ऐ३ । ओ ओ ओ३ । औ औ औ३ । क ख ग घ ङ । च छ ज झ ञ । ट ठ ड ढ ण । त थ द ध न । प फ ब भ म । य र ल व । श ष स ह । ᳵक ᳵप अं अः । एदेसिं अक्खराणं मज्झे क् ख् ग् घ् ङ् एदाओ पंच वि धारणाओ[2] किण्ण गहिदाओ ? ण, सरविरहिय-कवग्गाणुसारिसंजोगम्हि समुप्पण्णाणं धार-णाणं[3] संजोगक्खरेसु पवेसादो । 'दुवे रासिं' एदेसिमक्खराणं संखं रासिं दुवे विरलिय दुगुणिदमण्णोण्णेण संगुणे अण्णोण्णसमब्भासो एत्तियो होदि– १८४४६७४४०७३७०-९५५१६१६ । एदम्मि संखाणे रूवूणे कदे संजोगक्खराणं गणिदं होदि[4] त्ति णिद्दिसे । संपहि चउसट्ठिअक्खरसंखं विरलिय विगुणिदं वग्गियं[5] संवग्गिदे एगसंजोग-दुसंजोगादि-

---

उन अक्षरसंयोगोंकी गणना करनेके लिये यह गाथा आई है। 'संयोगावरणोंके लिये' इस पदका तात्पर्य है--अक्षरसंयोगावरणोंका प्रमाण लानेके लिये। 'चउसट्ठिं थावए' इसका तात्पर्य है कि अक्षरोंकी चौंसठ संख्याकी उनसे पृथक् रूपसे कल्पना कर और उसका विरलन कर कर्मभूमि (क्रियास्थल) में या बुद्धिमें स्थापित करे।

यहां चौंसठ अक्षरोंकी स्थापना इस प्रकार है—अ आ आ३, इ ई ई३, उ ऊ ऊ३, ऋ ॠ ॠ३, ऌ ॡ ॡ३, ए ए२ ए३, ऐ ऐ२ ऐ३, ओ ओ२ ओ३, औ औ२ औ३, क ख ग घ ङ, च छ ज झ ञ, ट ठ ड ढ ण, त थ द ध न, प फ ब भ म, य र ल व, श ष स ह, ᳵक ᳵप अं अः ।

शंका—इन अक्षरोंमें क् ख् ग् घ् ङ् इन पांच धारणाओंको क्यों नहीं ग्रहण किया ?

समाधान— नहीं, क्योंकि स्वररहित कवर्गका अनुसरण करनेवाले संयोगमें उत्पन्न हुई धारणाओंका संयोगाक्षरोंमें अन्तर्भाव हो जाता है।

'दुवे रासिं' इस पदका अभिप्राय है कि इन अक्षरोंकी संख्याकी राशि प्रमाण २ का विरलन कर परस्पर गुणा करनेपर परस्पर गुणा करनेसे प्राप्त हुई राशि इतनी होती है—१८४४-६७४४०७३७०९५५१६१६ । इस संख्यामेंसे एक कम करनेपर संयोगाक्षरोंका प्रमाण होता है, ऐसा निर्देश करना चाहिये ।

अब चौंसठ अक्षरोंकी संख्याका विरलनकर और उसे द्विगुणित कर वर्गित संवर्गित करनेपर

---

१ आ-काप्रत्योः 'रावए', ताप्रतौ 'रा (था) वए' इति पाठः । २ अ-ताप्रत्योः 'धीरणाओ' इति पाठः । ३ प्रतिषु 'दीरणाणं' इति पाठः। ४ एकट्ठ च च य छस्सत्तयं च च य सुण्ण-सत्त-तिय-सत्ता । सुण्णं णव पण पंच य एक्कं छक्केक्कगो य पणगं च ॥ गो. जी. ३५४. ५ प्रतिषु 'वग्गियं' इति पाठः ।

सुदणाणवियप्पा कधमुप्पज्जंति, किमट्ठं वा उप्पण्णरासी रूवूणा कीरदि त्ति उत्ते उच्चदे— पढमक्खरे एक्को चेव भंगो, सेसक्खरेहि संजोगाभावादो । संपहि बिदियक्खरे णिरुद्धे वे भंगा होंति, सत्थाणेण एक्को भंगो १, पढम-विदियक्खराणं संजोगेण विदियो भंगो १, एवं दोण्णं चेव भंगाणमुवलंभादो १ ।

संजोगो णाम किं दोण्णमक्खराणेयत्तं किं सह उच्चारणं एयत्थीभावो वा ? ण ताव एयत्तं, एयत्तभावेण णट्ठदुब्भावाणं संजोगविरोहादो । ण च सहोच्चारणं, चउसट्ठिअक्खराणं एगवारेण उच्चारणाणुववत्तीदो । तदो एगत्थीभावो संजोगो त्ति घेत्तव्वो । कधमेक्कम्हि अत्थे वट्टमाणाणं बहूणमक्खराणमेगक्खरसण्णा ? ण एस दोसो, अत्थदुवारेण तेसिं सव्वेसिं पि एयत्तुवलंभादो । वट्टमाणकाले बहूणमक्खराणमेयक्खरत्तं ण उवलब्भदि त्ति ण पच्चवट्ठादुं जुत्तं, वट्टमाणकाले वि 'त्वक्म्य' इच्चाईणं बहूणमक्खराणमेयत्थे वट्टमाणाणमेयक्खरत्तुवलंभादो । ण च सरेहि अणंतरियवंजणाणमेयत्थे वट्टमाणाणं चेव एयक्खरत्तं, सरेहि अंतरियाणं बहूणं वंजणाणं पि एयत्तं ण विरुज्झदे, अच्चंतभेयाणमेयत्थे वुत्तिं पडि भेदाभावादो । अणुलोम-विलोम-

---

एकसंयोगी और द्विसंयोगी आदि श्रुतज्ञानके विकल्प कैसे उत्पन्न होते हैं और उस उत्पन्न हुई राशिमेंसे एक कम किसलिये किया जाता है, ऐसा पूछनेपर कहते हैं—प्रथम अक्षरका एक ही भंग होता है, क्योंकि, उसका शेष अक्षरोंके साथ संयोग नहीं है । आगे दूसरे अक्षरकी विवक्षा करनेपर दो भंग होते हैं, क्योंकि, स्वस्थानकी अपेक्षा एक भंग और पहले व दूसरे अक्षरोंके संयोगसे दूसरा भंग इस प्रकार दो ही भंग उपलब्ध होते हैं ।

संयोग क्या है ? क्या दो अक्षरोंकी एकता संयोग है, क्या उनका एक साथ उच्चारण करना संयोग है, या क्या उनकी एकार्थिता (एकार्थबोधकता) का नाम संयोग है ? दो अक्षरोंकी एकता तो संयोग हो नहीं सकती, क्योंकि, एकत्वभाव माननेपर द्वित्वका नाश हो जानेके कारण उनका संयोग होनेमें विरोध आता है । सहोच्चारणका नाम भी संयोग नहीं है, क्योंकि, चौंसठ अक्षरोंका एक साथ उच्चारण करना बनता नहीं है । इसलिये एकार्थता नाम संयोग है, ऐसा यहां ग्रहण करना चाहिये ।

शंका— एक अर्थमें विद्यमान बहुत अक्षरोंकी एक अक्षर संज्ञा कैसे हो सकती है ?

समाधान— यह कोई दोष नहीं है, क्योंकि, अर्थके द्वारा उन सभीके एकत्व पाया जाता है ।

वर्तमान कालमें बहुत अक्षरोंका एक अक्षरपना नहीं उपलब्ध होता है, ऐसा निश्चय करना भी युक्त नहीं है; क्योंकि वर्तमान कालमें भी 'त्वक्म्य' इत्यादिक बहुत अक्षरोंके एक अर्थमें विद्यमान होते हुए एकाक्षरता उपलब्ध होती है । स्वरोंसे अन्तरित न होकर एक अर्थमें विद्यमान व्यंजनोंके ही एक अक्षरपना नहीं है, किन्तु स्वरोंके द्वारा अन्तरको प्राप्त हुए बहुत व्यंजनोंके भी एकाक्षरपना अविरुद्ध है; क्योंकि, अत्यन्त भिन्न अक्षरोंकी एक अर्थमें वृत्ति होनेकी अपेक्षा उनमें कोई भेद नहीं है ।

---

१ का-ताप्रत्योः 'विभंगा' इति पाठः ।

भावेणं अणेगत्थेसु वट्टमाणाणं चदुण्णमक्खराणं कधमेयक्खरत्तं जुज्जदे ? ण, अणेगेसु अत्थेसु वट्टमाणगोसद्दस्स एयक्खरत्तुवलंभादो । ण खणभंगुरत्तणेण बहित्थवण्णेसु ण समुदाओ[2] अत्थि त्ति णासंकणिज्जं, बज्झत्थवण्णजणिदअंतरंगवण्णेसु एगजीवदव्वम्मि देसभेदेण विणा वट्टमाणेसु वंजणपज्जायभावेण अंतोमुहुत्तमवट्ठिदेसु बज्झत्थविसयविण्णाणजणणक्खमेसु तदुवलंभादो । ण बज्झत्थवण्णेसु तदसंभवो चेव, कारणे कज्जुवयारेण तत्थ वि तदुवलंभादो ।

संपहि पढम-विदियअक्खरभंगाणमेगवारेण आगमणे इच्छिज्जमाणे पढम-विदिय-अक्खरसंखं विरलिय विगं करिय अण्णोण्णगुणे कदे चत्तारि होंति । पुणो एत्थ एगरूवे अवणिदे पढम-बिदियअक्खराणमेगसंजोग-दुसंजोगेहि तिण्णि अक्खराणि होंति । सुदणाण-वियप्पा वि तत्तिया चेव ३, कारणभेदस्स कज्जभेदाविणाभावित्तादो[3] । एदेण कारणेण विरलिय विगं करिय अण्णोण्णब्भत्थं काऊण रूवूणं[4] कीरदे । संपहि तदियक्खरे णिरुद्धे एगसंजोगेण एक्को भंगो १ । पढम-तदियअक्खराणं दुसंजोगेण विदियो भंगो २ । विदिय-तदियअक्खराणं दुसंजोगेण तदियो भंगो ३ । पढम-विदिय-तदियअक्खराणं तिसंजोगेण चउत्थभंगो ४ । एवं तदियअक्खरस्स एग-दु-तिसंजोगेहि चत्तारिभंगा लद्धा ४ । संपहि

शंका— अनुलोम और विलोम भावसे अनेक अर्थोंमें विद्यमान चार अक्षरोंके एक अक्षरपना कैसे बन सकता है ?

समाधान— नहीं, क्योंकि अनेक अर्थोंमें विद्यमान गो शब्दके एक अक्षरपना उपलब्ध होता है ।

क्षणभंगुर होनेके कारण बाह्यार्थ वर्णोंका समुदाय नहीं हो सकता, ऐसी आशंका करना भी ठीक नहीं है; क्योंकि, बाह्यार्थ वर्णोंसे उत्पन्न उन अन्तरंग वर्णोंमें—जो एक जीव द्रव्यमें देशभेदके विना विद्यमान हैं, जो व्यंजन पर्यायरूपसे अन्तर्मुहूर्त काल तक अवस्थित रहते हैं, और जो बाह्यार्थ विषयक विज्ञानके उत्पन्न करनेमें समर्थ हैं—समुदाय पाया जाता है । यदि कहा जाय कि यह तो अन्तरंग वर्णोंमें समुदाय हुआ, बाह्यार्थ वर्णोंमें तो वह असंभव ही है; सो ऐसा कहना भी ठीक नहीं है, क्योंकि कारणमें कार्यका उपचार करनेसे उनमें भी वह पाया जाता है ।

अब प्रथम और द्वितीय अक्षरोंके भंगोंको एक साथ लानेकी इच्छा होनेपर प्रथम और द्वितीय अक्षरोंकी संख्याका विरलनकर और उसे दूना कर परस्पर गुणा करनेपर चार होते हैं । फिर इसमेंसे एक अंकके घटा देनेपर प्रथम और द्वितीय अक्षरोंके एकसंयोग और द्विसंयोग रूपसे तीन अक्षर होते हैं और श्रुतज्ञानके विकल्प भी उतने ही होते हैं ३, क्योंकि कारणका भेद कार्यभेदका अविनाभावी होता है । इसी कारणसे विरलन कर और विरलित राशिप्रमाण दो अंकको स्थापित कर परस्पर गुणा करके एक कम करते हैं ।

अब तीसरे अक्षरके विवक्षित होनेपर एक संयोगसे एक भंग होता है १ । प्रथम और तृतीय अक्षरोंके द्विसंयोगसे दूसरा भंग होता है २ । द्वितीय और तृतीय अक्षरोंके द्विसंयोगसे तीसरा भंग होता है ३ । प्रथम, द्वितीय और तृतीय अक्षरोंके त्रिसंयोगसे चौथा भंग होता है ४ । इस प्रकार तृतीय अक्षरके एक, दो और तीन संयोगोंसे चार भंग लब्ध होते हैं ४ । अब प्रथम

---

१ ताप्रतौ 'अणुलोमभावेण' इति पाठः । २ काप्रतौ 'वहित्थमण्णेसु ण समुदाओ', ताप्रतौ बहित्थवण्णेसु [ण] समुदाओ' इति पाठः । ३ का-ताप्रत्योः '-भावित्ता' इति पाठः । ४ ताप्रतौ रूवणं' इति पाठः । ५ अ-ताप्रत्योः 'पढमविदिय' इति पाठः ।

पढम-बिदियअक्खरभंगेहि सह तदियक्खरभंगे इच्छामो त्ति तिण्णि अक्खराणि विरलिय विगं करिय अण्णोण्णब्भत्थे कदे अट्ठ भंगा उप्पज्जंति। पुणो एत्थ एगे भंगे अवणिदे पढम-बिदिय-तादियक्खराणं सत्त भंगा होंति ७।

तेसिमुच्चारणक्कमो वुच्चदे— अयारस्स एगसंजोगेण एगमक्खरं लब्भदि १। आयारस्स वि एगसंजोगेण एगो अक्खरवियप्पो लब्भदि १। आ३यारस्स वि एगसंजोगेण एयो अक्खरवियप्पो। एवमेगसंजोगक्खराणि तिण्णि होंति ३। पुणो अयार-आयाराणं दुसंजोगेण चउत्थो अक्खरवियप्पो ४। पुणो अयार-आ३याराणं दुसंजोगेण पंचमो अक्खरवियप्पो ५। पुणो आयार-आ३याराणं दुसंजोगेण छट्ठो अक्खरवियप्पो ६। पुणो अयार-आयार-आ३-याराणं[1] तिसंजोगेण सत्तमो अक्खरवियप्पो ७। जत्तियाणि अक्खराणि तत्तियाणि चेव सुदणाणाणि, सव्वत्थ कारणमणुवट्टमाणकज्जाणमुवलंभादो। तेण अण्णोण्णब्भत्थरासी रूवूणा कीरदे।

संपहि चउत्थअक्खरे णिरुद्धे एगसंजोगेण एक्को भंगो १। पढम-चउत्थअक्खराणं दुसंजोगेण बिदियक्खरं २। बिदिय-चउत्थअक्खराणं[2] दुसंजोगेण तदियमक्खरं ३। तदिय-चउत्थअक्खराणं दुसंजोगेण चउत्थमक्खरं ४। पुणो पढम-बिदिय-चउत्थअक्खराणं

और द्वितीय अक्षरोंके भंगोंके साथ तृतीय अक्षरके भंग लाना इष्ट है, इसलिये तीन अक्षरोंका विरलन कर और तत्प्रमाण दो स्थापित कर परस्पर गुणा करनेपर आठ भंग उत्पन्न होते हैं। फिर इनमेंसे एक भंगके कम करनेपर प्रथम, द्वितीय और तृतीय अक्षरोंके सब मिलाकर सात भंग होते हैं ७।

अब इनके उच्चारणका क्रम कहते हैं— अकारके एकसंयोगसे एक अक्षर उपलब्ध होता है १। आकारके भी एकसंयोगसे एक अक्षरविकल्प उपलब्ध होता है १। आकार३के भी एकसंयोगसे एक अक्षरविकल्प उपलब्ध होता है १। इस प्रकार एकसंयोगी अक्षर तीन होते हैं ३। पुनः अकार और आकारके द्विसंयोगसे चौथा अक्षरविकल्प होता है ४। पुनः अकार और आ३कारके द्विसंयोगसे पांचवां अक्षरविकल्प होता है ५। पुनः आकार और आ३कारके द्विसंयोगसे छठा अक्षरविकल्प होता है ६। पुनः अकार, आकार और आ३कारके त्रिसंयोगसे सातवां अक्षरविकल्प होता है ७। जितने अक्षर होते हैं उतने ही श्रुतज्ञानके विकल्प होते हैं, क्योंकि, सर्वत्र कारणका अनुकरण करनेवाले कार्य उपलब्ध होते हैं। इसलिये अन्योन्यगुणित राशिमेंसे एक कम करते हैं।

अब चतुर्थ अक्षरके विवक्षित होनेपर एकसंयोगसे एक भंग होता है १। प्रथम और चतुर्थ अक्षरोंके द्विसंयोगसे दूसरा अक्षर होता है २। द्वितीय और चतुर्थ अक्षरोंके द्विसंयोगसे तीसरा अक्षर होता है ३। तृतीय और चतुर्थ अक्षरोंके द्विसंयोगसे चौथा अक्षर होता है ४। फिर प्रथम, द्वितीय और चतुर्थ अक्षरोंके त्रिसंयोगसे पांचवां अक्षर होता है ५। पुनः प्रथम, तृतीय

---

१ अ-आ-काप्रतिषु 'अयार-आयाराणं', ताप्रतौ 'अयार-[आयार-] आयाराणं' इति पाठः।
२ ताप्रतौ 'अक्खाराणं' इति पाठः।

तिसंजोगेण पंचममक्खरं ५। पुणो पढम-तदिय-चउत्थअक्खराणं तिसंजोगेण छट्ठमक्खरं ६। पुणो विदिय-तदिय-चउत्थअक्खराणं तिसंजोगेण सत्तमक्खरं ७। पुणो पढम-विदिय-तदिय-चउत्थअक्खराणं चदुसंजोगेण अट्ठमक्खरं ८। एवं चउत्थअक्खरस्स अट्ठ भंगा। संपहि पुव्विल्लभंगेहि सह चउत्थअक्खरस्स भंगेसु आणिज्जमाणेसु चत्तारि रूवाणि विरलिय दुगुणिय अण्णोण्णब्भत्थे कदे भंगा सोलस हवंति। पुणो रूवूणे कदे चदुण्णमक्खराणमेग-संजोग-दुसंजोग-तिसंजोग-चदुसंजोगअक्खरभंगा पण्णारस होंति १५। एत्थ एदेसिमुच्चारण-क्कमो वुच्चदे। तं जहा— अयारस्स एगसंजोगेण एगमक्खरं १। आयारस्स वि एगसंजोगेण विदियमक्खरं २। आ३यारस्स वि एगसंजोगेण तदियमक्खरं ३। इगारस्स एगसंजोगेण चउत्थमक्खरं ४। पुणो अयार-आयाराणं दुसंजोगेण पंचममक्खरं ५। पुणो अयार-आ३याराणं दुसंजोगेण छट्ठमक्खरं ६। पुणो अयार-इयाराणं दुसंजोगेण सत्तममक्खरं ७। पुणो आयार-आ३याराणं दुसंजोगेण अट्ठममक्खरं ८। पुणो आयार-इयाराणं दुसंजोगेण णवममक्खरं उप्पज्जदि ९। पुणो आ३यार-इयाराणं दुसंजोगेण दसममक्खरं १०। पुणो अयार-आयार-आ३याराणं तिसंजोगेण एक्कारसमक्खरं ११। पुणो अयार-आयार-इयाराणं

और चतुर्थ अक्षरोंके त्रिसंयोगसे छठा अक्षर होता है ६। पुनः द्वितीय, तृतीय और चतुर्थ अक्षरोंके त्रिसंयोगसे सातवां अक्षर होता है ७। पुनः प्रथम, द्वितीय, तृतीय और चतुर्थ अक्षरोंके चतुःसंयोगसे आठवां अक्षर होता है ८। इस प्रकार चौथे अक्षरके आठ भंग होते हैं ८। अब पूर्वोक्त भंगोंके साथ चतुर्थ अक्षरके भंगोंके लानेपर चार अंकोंका विरलन कर और विरलित राशिके प्रत्येक एकको द्विगुणित कर परस्पर गुणित करनेपर सोलह भंग होते हैं १६। पुनः एक कम करनेपर चार अक्षरोंके एकसंयोग, द्विसंयोग, त्रिसंयोग और चतुःसंयोग रूप अक्षरोंके भंग पन्द्रह होते हैं १५।

यहां इनके उच्चारणका क्रम कहते हैं। यथा— अकारका एकसंयोगसे एक अक्षर होता है १। आकारका भी एकसंयोगसे दूसरा अक्षर होता है २। आकार३का भी एकसंयोगसे तीसरा अक्षर होता है ३। इकारका एक संयोगसे चौथा अक्षर होता है ४। पुनः अकार और आकारके द्विसंयोगसे पांचवां अक्षर होता है ५। पुनः अकार और आ३कारके द्विसंयोगसे छठा अक्षर होता है ६। पुनः अकार और इकारके द्विसंयोगसे सातवां अक्षर होता है ७। पुनः आकार और आ३कारके द्विसंयोगसे आठवां अक्षर होता है ८। पुनः आकार और इकारके द्विसंयोगसे नौवां अक्षर उत्पन्न होता है ९। पुनः आ३कार और इकारके द्विसंयोगसे दसवां अक्षर होता है। पुनः अकार, आकार और आ३कारके त्रिसंयोगसे ग्यारहवां अक्षर होता है ११। पुनः अकार, आकार और इकारके त्रिसंयोगसे वारहवां अक्षर होता है १२।

---

१ काप्रतौ 'आयारस्स एग-' इति पाठः। २ काप्रतौ 'इगारस्स वि एगसंजोगेण वि चउत्थ-' इति पाठः।

तिसंजोगेण बारसमक्खरं १२ । पुणो अयार-आ३यार-इयाराणं तिसंजोगेण तेरसमक्खरं १३ । पुणो आयार-आ३यार-इयाराणं तिसंजोगेण चोद्दसमक्खरं १४ । पुणो अयार-आयार-आ३यार-इयाराणं चदुसंजोगेण पण्णारसमक्खरं १५ । एवं चदुण्णमक्खराणं एग-दु-ति-चदुसंजोगेण पण्णारस अक्खराणि उप्पण्णाणि । एत्थ पण्णारस चेव सुदणाणवियप्पा होंति । तदावरण-वियप्पा तत्तिया चेव । जेणेवमक्खराणि उप्पज्जंति तेण अण्णोण्णब्भत्थरासी सव्वत्थ रूवूणा कायव्वा । अणेण विहाणेण सेसक्खरपरूवणं पि काऊण अंतेवासीणं अवगमो उप्पाएदव्वो । एवं कदे—

एयट्ठ च च य छ सत्तयं च च य सुण्ण सत्त तिय सत्तं ।
सुण्णं णव पण पंच य एगं छक्केक्कगो य पणगं च[1] ॥ १३ ॥

एत्तियमेत्ताणि संजोगक्खराणि उप्पज्जंति । तेहिंतो तत्तियमेत्ताणि चेव सुदणाणाणि उप्पज्जंति । तदावरणवियप्पा वि तत्तिया चेव । अधवा—

एकोत्तरपदवृद्धो रूपाद्यैर्भाजितश्च पदवृद्धैः ।
गच्छः संपातफलं समाहतः सन्निपातफलम्[2] ॥ १४ ॥

एदीए करणगाथाए सगलसंजोगक्खराणं सुदणाणाणं तदावरणाणं च वियप्पा

पुनः अकार, आ३कार और इकारके त्रिसंयोगसे तेरहवां अक्षर होता है १३ । पुनः आकार, आ३कार और इकारके त्रिसंयोगसे चौदहवां अक्षर होता है १४ । पुनः अकार, आकार, आ३कार और इकारके चार संयोगसे पन्द्रहवां अक्षर होता है १५ । इस प्रकार चार अक्षरोंके एक, दो, तीन और चार संयोगसे पन्द्रह अक्षर उत्पन्न होते हैं । यहां पन्द्रह ही श्रुतज्ञानके विकल्प होते हैं और तदावरणके विकल्प भी उतने ही होते हैं । यतः इस विधिसे अक्षर उत्पन्न होते हैं, अतः अन्योन्याभ्यस्त राशि सर्वत्र एक अंकसे कम करनी चाहिये । इसी विधिसे शेष अक्षरोंका भी कथन करके शिष्योंको उनका ज्ञान कराना चाहिये । ऐसा करनेपर—

एक आठ चार चार छह सात चार चार शून्य सात तीन सात शून्य नौ पांच पांच एक छह एक और पांच अर्थात् १८४४६७४४०७३७०९५५१६१५ ॥ १३ ॥

इतने मात्र संयोग अक्षर उत्पन्न होते हैं । तथा उनसे इतने ही श्रुतज्ञान उत्पन्न होते हैं, और श्रुतज्ञानावरणके विकल्प भी उतने ही होते हैं । अथवा—

एकसे लेकर एक एक बढ़ाते हुए पदप्रमाण संख्या स्थापित करो । पुनः उसमें अन्तमें स्थापित एकसे लेकर पदप्रमाण बढ़ी हुई संख्याका भाग दो । इस क्रियाके करनेसे संपातफल गच्छप्रमाण प्राप्त होता है । उस सम्पातफलको त्रेसठ बटे दो आदिसे गुणा कर देनेपर सन्निपात-फल प्राप्त होता है ॥ १४ ॥

इस करणगाथाके द्वारा सब संयोगाक्षरों, श्रुतज्ञानों और श्रुतज्ञानावरणोंके भी विकल्प उत्पन्न

---

१ ताप्रतौ 'य पणयं ॥' इति पाठः । गो. जी. ३५२. २ षट्खं. पु. ५, पृ. १९३.; पु. १२, पृ. १६२. जयध. २, पृ. ३००.

उप्पादेदव्वा । तं जहा—

१	२	३	४	५	६	७	८	९	१०	११	१२	१३	१४
६४	६३	६२	६१	६०	५९	५८	५७	५६	५५	५४	५३	५२	५१
१५	१६	१७	१८	१९	२०	२१	२२	२३	२४	२५	२६	२७	२८
५०	४९	४८	४७	४६	४५	४४	४३	४२	४१	४०	३९	३८	३७
२९	३०	३१	३२	३३	३४	३५	३६	३७	३८	३९	४०	४१	४२
३६	३५	३४	३३	३२	३१	३०	२९	२८	२७	२६	२५	२४	२३
४३	४४	४५	४६	४७	४८	४९	५०	५१	५२	५३	५४	५५	५६
२२	२१	२०	१९	१८	१७	१६	१५	१४	१३	१२	११	१०	९
५७	५८	५९	६०	६१	६२	६३	६४						
८	७	६	५	४	३	२	१						

एदं ठविय अंतिमचउसट्ठीए एगरूवेण भाजिदाए चउसट्ठी संपातफलं लब्भदि ६४ । किं संपातफलं णाम ? संपादो एगसंजोगो, तस्स फलं संपादफलं णाम । पुणो तिसट्ठि-दुभागेण संपादफले गुणिदे चउसट्ठिअक्खराणं दुसंजोगभंगा एत्तिया होंति २०१६ । तं जहा— अगारे[1] णिरुद्धे जाव सेसतिसट्ठिअक्खरेसु परिवाडीए[2] अक्खो संचरदि ताव तेसट्ठि-भंगा लब्भंति ६३ । पुणो आयारे णिरुद्धे आइकारादिबावट्ठिअक्खरेसु परिवाडीए जाव

करने चाहिये । यथा—

१/६४	२/६३	३/६२	४/६१	५/६०	६/५९	७/५८	८/५७	९/५६	१०/५५	११/५४	१२/५३	१३/५२	१४/५१	१५/५०
१६/४९	१७/४८	१८/४७	१९/४६	२०/४५	२१/४४	२२/४३	२३/४२	२४/४१	२५/४०	२६/३९	२७/३८	२८/३७	२९/३६	३०/३५
३१/३४	३२/३३	३३/३२	३४/३१	३५/३०	३६/२९	३७/२८	३८/२७	३९/२६	४०/२५	४१/२४	४२/२३	४३/२२	४४/२१	४५/२०
४६/१९	४७/१८	४८/१७	४९/१६	५०/१५	५१/१४	५२/१३	५३/१२	५४/११	५५/१०	५६/९	५७/८	५८/७	५९/६	६०/५
६१/४	६२/३	६३/२	६४/१											

इसे स्थापित कर अन्तिम चौंसठमें एकका भाग देनेपर चौंसठ संपातफल लब्ध होता है ६४ ।

शंका— संपातफल किसे कहते हैं ?

समाधान— एकसंयोगका नाम संपात है और उसके फलको संपातफल कहते हैं ।

पुनः त्रेसठ बटे दोसे संपातफलको गुणित करनेपर चौंसठ अक्षरोंके द्विसंयोग भंग इतने होते हैं— $६४ \times \frac{६३}{२} = २०१६$ । यथा— अकारके विवक्षित होनेपर जब तक शेष त्रेसठ अक्षरों-पर क्रमसे अक्षका संचार होता है तब तक त्रेसठ भंग प्राप्त होते हैं ६३ । पुनः आकारके विवक्षित होनेपर आइकार आदि बासठ अक्षरोंपर क्रमसे जब तक अक्षका संचार होता है तब तक बासठ

१ अप्रतौ 'अकारेण', आ-काप्रत्योः 'आगासे', ताप्रतौ 'आगासे (अगारे)' इति पाठः ।
२ ताप्रतौ 'सपरिवाडीए' इति पाठः ।

अक्खो संचरदि ताव बासट्ठिभंगा लब्भंति ६२ । पुणो आ३यारे णिरुद्धे इकारादिएगसट्ठि-अक्खरेसु परिवाडीए अक्खे संचरमाणे एगसट्ठी दुसंजोगभंगा लब्भंति ६१ । पुणो इकारे णिरुद्धे ईकारादिसट्ठिअक्खरेसु परिवाडीए जाव अक्खो संचरदि ताव इकारस्स दुसंजोगेण सट्ठिभंगा लब्भंति ६० । पुणो ईकारादिएगूणसट्ठिअक्खराणं दुसंजोगभंगा परिवाडीए उप्पादेदव्वा । एवमुप्पण्णदुसंजोगभंगेसु एक्कदो मेलाविदेसु सोलसुत्तरबेसहस्समेत्तभंगा उप्पज्जंति । अधवा—

संकलणरासिमिच्छे दोरासिं थावयाहि रूवहियं[1] ।
तत्तो एगदरद्धं एगदरगुणं हवे गणिदं[2] ॥ १५ ॥

एदीए गाहाए एगादिएगुत्तरतेवट्ठिगच्छसंकलणाए आणिदाए चउसट्ठिअक्खराणं दुसंजोगभंगा सोलसुत्तरबेसहस्समेत्ता होंति २०१६ । संपहि चउसट्ठिअक्खराणं तिसंजोग-भंगे भण्णमाणे दुसंजोगभंगे उप्पण्णसोलसुत्तरबेसहस्सेसु बावट्ठीए तिभागेण गुणिदेसु तिसंजोग-भंगा एत्तिया होंति ४१६६४ । अधवा—

गच्छकदी मूलजुदा उत्तरगच्छादिएहि संगुणिदा ।
छहि भजिदे जं लद्धं संकलणाए हवे कलणा ॥ १६ ॥

भंग प्राप्त होते हैं ६२ । पुनः आ३कारके विवक्षित होनेपर इकार आदि इकसठ अक्षरोंपर क्रमसे अक्षका संचार होनेपर इकसठ द्विसंयोगी भंग प्राप्त होते हैं ६१ । पुनः इकारके विवक्षित होने-पर ईकार आदि साठ अक्षरोंपर क्रमसे जब तक अक्षका संचार होता है तब तक इकारके द्विसंयोगसे साठ भंग प्राप्त होते हैं ६० । पुनः ईकार आदि उनसठ अक्षरोंके द्विसंयोगी भंग क्रमसे उत्पन्न कराने चाहिये । इस प्रकार उत्पन्न हुए द्विसंयोगी भंगोंके एक साथ मिलानेपर दो हजार सोलह मात्र भंग उत्पन्न होते हैं । अथवा—

यदि संकलन राशिका लाना अभीष्ट हो तो एक राशि वह जिसकी कि संकलन राशि अभीष्ट है तथा दूसरी राशि उससे एक अंक अधिक, इस प्रकार दो राशियोंको स्थापित करे । पश्चात् उनमेंसे किसी एक राशिके अर्ध भागको दूसरी राशिसे गुणित करनेपर गणित अर्थात् विवक्षित राशिके संकलनका प्रमाण होता है ॥ १५ ॥

इस गाथाके द्वारा एकको आदि लेकर उत्तरोत्तर एक एक अधिक तिरेसठ गच्छकी संकलनाके ले आनेपर चौंसठ अक्षरोंके द्विसंयोग भंग दो हजार सोलह होते हैं— $\frac{६३}{२} \times ६४ = २०१६$ । अब चौंसठ अक्षरोंके त्रिसंयोग भंगोंका कथन करनेपर पूर्वमें उत्पन्न हुए २०१६ द्विसंयोगी भंगोंको बासठ बटे तीनसे गुणित करनेपर त्रिसंयोगी भंग इतने होते हैं—$२०१६ \times \frac{६२}{३} = ४१६६४$ । अथवा—

गच्छका वर्ग करके उसमें मूलको जोड़ दे, पुनः आदि-उत्तर सहित गच्छसे गुणित करके उसमें छहका भाग दे । इससे जो लब्ध आवे वह संकलनाकी कलना होती है ॥ १६ ॥

---

१ प्रतिषु 'रूवाहियं' इति पाठः । २ सैकपदघ्नपदार्धमथैकाद्यङ्कयुतिः किल संकलिताख्या । लीलावती (श्रेढीव्यवहार) १. ३ ताप्रतौ 'चउसट्ठिअक्खराणं तिसंजोगभंगे उप्पण्ण-' इति पाठः ।

इमाए गाहाए पुव्विल्लतिसंजोगभंगा आणेदव्वा। एत्थ गच्छो बावट्ठी ६२। तव्वग्गो एत्तियो होदि ३८४४। पुणो एत्थ मूले बावट्ठीए पक्खित्ताए एत्तियं होदि ३९०६। पुणो एदम्मि गच्छेण आदि-उत्तरसहिदेण गुणिदे एत्तियं होदि २४९९८४। पुणो एत्थ छहि भागे हिदे पुव्वलद्धा तिसंजोगभंगा एत्तिया होंति ४१६६४। किं कारणं? जेण चउसट्ठिअक्खराणि परिवाडीए ट्ठविय पुणो अकारे[1] णिरुद्धे पढम-विदियअक्खे धुवे कादूण तदियक्खो आ३कारादिबावट्ठिअक्खरेसु जाव संचरदि ताव बावट्ठी तिसंजोगभंगा लब्भंति ६२। पुणो पढमक्खमयारे चेव ट्ठविय सेसदोअक्खे आ३यार-इकारेसु ट्ठवेदूण पुणो तत्थ आदिमदोअक्खे धुवे कादूण तदियक्खे परिवाडीए संचरमाणे एयट्ठी तिसंजोगभंगा लब्भंति ६१। पुणो अयारक्खं[3] धुवं कादूण सेसदोअक्खे इकार-ईकारेसु ट्ठविय तदियक्खे परिवाडीए संचरमाणे सट्ठी तिसंजोगभंगा लब्भंति ६०। एवमयारक्खं धुवं कादूण सेसदोअक्खा परिवाडीए संचरमाणा जाव सव्वक्खराणमंतं गच्छंति ताव बासट्ठिसंकलणमेत्ता अयारस्स[4] तिसंजोगभंगा लब्भंति। पुणो आयारे णिरुद्धे सेसदोअक्खा परिवाडीए संचरमाणा जाव सव्वक्खराणमंतं गच्छंति ताव एयट्ठिसंकलणमेत्ता आयारस्स तिसंजोगभंगा उप्पज्जंति। पुणो

इस गाथा द्वारा पूर्वोक्त त्रिसंयोगी भंगोंको लाना चाहिये। यहां गच्छ बासठ है। उसका वर्ग इतना होता है— $६२ \times ६२ = ३८४४$। पुनः इसमें मूल बासठके मिला देनेपर इतना होता है— $३८४४ + ६२ = ३९०६$। पुनः इसे आदि-उत्तर सहित गच्छसे गुणित करनेपर इतना होता है— $३९०६ \times (१ + १ + ६२) = २४९९८४$। पुनः इसमें छहका भाग देनेपर पूर्व लब्ध त्रिसंयोगी भंग इतने होते हैं— $२४९९८४ \div ६ = ४१६६४$। इसका कारण यह है कि चौंसठ अक्षरोंको क्रमसे स्थापित कर पुनः अकारके विवक्षित होनेपर प्रथम और द्वितीय अक्षको ध्रुव करके तीसरा अक्ष आ३कार आदि बासठ अक्षरोंपर जब तक संचार करता है तब तक बासठ त्रिसंयोगी भंग प्राप्त होते हैं ६२। पुनः प्रथम अक्षको अकारपर ही स्थापित कर शेष दो अक्षोंको आ३कार और इकारपर स्थापित कर पुनः इनमेंसे प्रारम्भके दो अक्षोंको ध्रुव करके तृतीक्ष अक्षके क्रमसे संचार करनेपर इकसठ त्रिसंयोगी भंग प्राप्त होते है ६१। पुनः अकार अक्षको ध्रुव करके शेष दो अक्षोंको इकार और ईकारपर स्थापित कर तृतीय अक्षके क्रमसे संचार करनेपर साठ त्रिसंयोगी भंग प्राप्त होते हैं ६०। इस प्रकार अकार अक्षको ध्रुव करके शेष दो अक्ष क्रमसे संचार करते हुए जब तक सब अक्षरोंके अन्तको प्राप्त होते हैं तब तक अकारके बासठ संख्याके संकलन मात्र ($\frac{६२}{२} \times ६३ = १९५३$) त्रिसंयोगी भंग उत्पन्न होते हैं। पुनः आकारके विवक्षित होनेपर शेष दो अक्ष क्रमसे संचार करते हुए जब तक सब अक्षरोंके अन्तको प्राप्त होते हैं तब तक इकसठ संख्याके संकलनमात्र ($\frac{६१}{२} \times ६२ = १८९१$) आकारके त्रिसंयोगी भंग उत्पन्न

१ प्रतिपु 'आकारे' इति पाठः। २ अ-आ-का-ताप्रतिपु न दीर्घ-प्लुतआकारादिभेदकः कश्चित् संकेतोऽस्ति। मप्रतितः कृतसंशोधने प्लुत-आकारस्य 'आ३' इत्येवंविधः संकेतः कृतः, स तु यत्र-क्वचिन्न सर्वत्र। ३ ताप्रतौ 'आयारक्खं' इति पाठः। ४ प्रतिषु 'आयारस्स' इति पाठः

आ३यारे णिरुद्धे सट्ठिसंकलमेत्ता आ३यारस्स तिसंजोगभंगा उप्पज्जंति । पुणो इकारे णिरुद्धे एगूणसट्ठिसंकलणमेत्ता इकारस्स तिसंजोगभंगा उप्पज्जंति । एवमीकारादिअक्खराणं पत्तेयं पत्तेयं अट्ठावण्ण-सत्तावण्ण-छप्पण्णादीणं संकलणमेत्ता भंगा उप्पज्जंति । एवं उप्पण्णसव्व-संकलणासु मेलाविदासु चउसट्ठिअक्खराणं तिसंजोगभंगा सव्वे उप्पज्जंति । तेसिं पमाणमेदं ४१६६४ । अधवा[1]—

एकोत्तरपदवृद्धो रूपोनस्त्ववहृतश्च रूपाद्यैः ।
प्रचयहतः प्रभवयुतो गच्छोद्धान्योन्यस्य संगुणितः ॥ १७ ॥

एदेण सुत्तेण इच्छिद-इच्छिदसंजोगभंगा आणेदव्वा । संपहि चउसट्ठिअक्खराणं चदु-संजोगभंगपमाणे उप्पाइज्जमाणे एक्कसट्ठिचदुब्भागेण ४१६६४ एदेसु तिसंजोगभंगेसु गुणिदेसु चउसट्ठिअक्खराणं सव्वे चदुसंजोगभंगा उप्पज्जंति । तेसिं पमाणमेदं ६३५३७६[3] । एवं पंचसंजोग-छसंजोगादिभंगे उप्पादिय सव्वेसु एक्कट्ठकदेसु पुव्वुप्पाइदरूवूणेयट्ठिमेत्ताणि संजोगक्खराणि, तेत्तियमेत्ताणि चेव तेहिंतो उप्पण्णसुदणाणाणि तदावरणाणि च उप्पज्जंति ।

दुप्पहुडीणमक्खराणमेयट्ठे वट्टमाणाणं संजोगो होदु णाम । ण च एगसंजोगो घडदे, दुट्ठस्स संजोगस्स एक्कम्मि संभवविरोहादो ? ण एस दोसो, दोण्णमयाराणमेयट्ठे वट्टमाणाण-

होते हैं । पुनः आ३कारके विवक्षित होनेपर साठके संकलनमात्र ($\frac{60}{2} \times 61 = 1830$) आ३कारके त्रिसंयोगी भंग उत्पन्न होते हैं । पुनः इकारके विवक्षित होनेपर उनसठके संकलन-मात्र ($\frac{59}{2} \times 60 = 1770$) इकारके त्रिसंयोगी भंग उत्पन्न होते हैं । इसी प्रकार ईकार आदि अक्षरोंमें प्रत्येक प्रत्येकके यथाक्रमसे अट्ठावन, सत्तावन और छप्पन आदि संख्याओंके संकलनमात्र भंग उत्पन्न होते हैं । इस प्रकार उत्पन्न हुई सब संकलनाओंके मिलानेपर चौंसठ अक्षरोंके सब त्रिसंयोगी भंग उत्पन्न होते हैं । उनका प्रमाण यह है—४१६६४ । अथवा—

वृद्धिंगत एकोत्तर पदको एक आदिसे भाजित करके प्रचयसे गुणित करे और प्रभवको जोड़ दे । पुनः गच्छ प्रमाण स्थानोंको परस्पर गुणित करे । ऐसा करनेसे इच्छित संयोगी भंग प्राप्त होते हैं (?) ॥ १७ ॥ इस सूत्र द्वारा इच्छित इच्छित संयोगी भंग ले आने चाहिये ।

अब चौंसठ अक्षरोंके चार संयोगी भंगोंका प्रमाण उत्पन्न करानेपर इकसठ बटे चारसे ४१६६४ इन त्रिसंयोगी भंगोंके गुणित करनेपर चौंसठ अक्षरोंके सब चार संयोगी भंग उत्पन्न होते हैं । उनका प्रमाण यह है—६३५३७६ । इसी प्रकार पांचसंयोगी और छह संयोगी आदि भंग उत्पन्न करा कर सब भंगोंको एकत्रित करनेपर पहले उत्पन्न कराये गये एक कम एकट्ठीमात्र संयोगाक्षर और उनके निमित्तसे उत्पन्न हुए उतने मात्र ही श्रुतज्ञान तथा उतने ही श्रुतज्ञानावरण कर्म उत्पन्न होते हैं ।

शंका— एक अर्थमें विद्यमान दो आदि अक्षरोंका संयोग भले ही होवे, परन्तु एक अक्षर का संयोग नहीं बन सकता; क्योंकि संयोग द्विस्थ होता है, अतः उसे एकमें माननेमें विरोध आता है ?

१ ताप्रतौ 'अथ' इति पाठः । २ आप्रतौ 'त्रिसंजोग', ताप्रतौ 'थि (ति) संजोग' इति पाठः । ३ ताप्रतौ ६३५३ (०) ७६ इति पाठः ।

मेयक्खरसरूवेण परिणामुवलंभादो। 'या श्रीः सा गौः' एदमसंजोगेयक्खरस्स उदाहरणं ण होदि; संजुत्ताणेगक्खरेहि णिप्फण्णत्तादो। ण च एगसंजोगक्खरस्स वि उदाहरणं, भिण्णजादि-अक्खरसंजोगस्स एयक्खरसंजोगत्तविरोहादो। तहा "वीरं देवं नित्यं वंदे, वृषभं वरदं सततं प्रणमे, वीरजिनं वीतभयं लोकगुरुं नौमि सदा, कनकनिभं शशिवदनं अजितजिनं शरणमिये" इच्चेवमादिवियहिचारो दरिसावेयव्वो। पुणो कधं होदि त्ति भणिदे अक्खराणं संजोगमसंजोगेदूण जदा अक्खराणि चेव पादेक्कं विवक्खियाणि होंति तदा सुदणाणक्खराणं पमाणं चउसट्ठी होदि, एदेहिंतो पुधभूदसंजोगक्खराणमभावादो। सुदणाणं पि चउसट्ठिमेत्तं चेव होदि, संजुत्तासंजुत्तभावेण ट्ठिदसुदणाणकारणअक्खराणं चउसट्ठिभावदंसणादो। तदावरणं पि तत्तियं चेव, आवरणिज्जभेदेण आवरणभेदुवलंभादो। अक्खरसमुदायादो समुप्पज्जमाणसुदणाणं कधमेगक्खरादो समुप्पज्जदि? पादेक्कमक्खराणं तदुप्पायणसत्तिअभावे समुदायादो वि[2] तदुप्पत्तिविरोहादो। वज्झेगेगत्थविसयविण्णाणुप्पत्तिक्खमो अक्खरकलाओ संजोगक्खरं णाम, जहा 'या श्रीः सा गौः' इच्चेवमादि। एदाणि संजोगक्खराणि

समाधान— यह कोई दोष नहीं है, क्योंकि एक अर्थमें विद्यमान दो अकारोंका एक अक्षररूपसे परिणमन देखा जाता है।

'या श्रीः सा गौः' यह असंयोगी एक अक्षरका उदाहरण नहीं है, क्योंकि, यह संयुक्त अनेक अक्षरोंसे निष्पन्न हुआ है। तथा यह एक संयोगाक्षरका भी उदाहरण नहीं है, क्योंकि, भिन्न जातिके अक्षरोंके संयोगको एक अक्षरसंयोग माननेमें विरोध आता है। तथा 'वीरं देवं नित्यं वन्दे, वृषभं वरदं सततं प्रणमे, वीरजिनं वीतभयं लोकगुरुं नौमि सदा, कनकनिभं शशिवदनं अजितजिनं शरणमिये' इत्यादिके साथ व्यभिचार भी दिखाना चाहिये।

फिर एकसंयोगी भंग कैसे प्राप्त होता है, ऐसा पूछनेपर उत्तर देते हैं कि अक्षरोंके संयोगकी विवक्षा न करके जब अक्षर ही केवल पृथक् पृथक् विवक्षित होते हैं तब श्रुतज्ञानके अक्षरोंका प्रमाण चौंसठ होता है, क्योंकि, इनसे पृथग्भूत अक्षरोंके संयोगरूप अक्षर नहीं पाये जाते। श्रुतज्ञान भी चौंसठ प्रमाण ही होता है, क्योंकि, संयुक्त और असंयुक्त रूपसे स्थित श्रुतज्ञान-के कारणभूत अक्षर चौंसठ ही देखे जाते हैं। तदावरण कर्म भी उतने ही होते हैं, क्योंकि आवरणीयके भेदसे आवरणमें भेद देखा जाता है।

शंका— अक्षरोंके समुदायसे उत्पन्न होनेवाला श्रुतज्ञान एक अक्षरसे कैसे उत्पन्न होता है?

समाधान— कारण कि प्रत्येक अक्षरोंमें श्रुतज्ञानके उत्पादनकी शक्तिका अभाव होनेपर उनके समुदायसे भी उसके उत्पन्न होनेका विरोध है।

बाह्य एक एक अर्थको विषय करनेवाले विज्ञानकी उत्पत्तिमें समर्थ अक्षरोंके समुदायको संयोगाक्षर कहते हैं। यथा—'या श्रीः सा गौः' इत्यादि। ये संयोगाक्षर, इनसे उत्पन्न हुए

१ अ-आ-काप्रतिषु 'भाग-' इति पाठः। २ आप्रतौ 'समुदायो वि', ताप्रतौ 'समुदायो (यादो) वि' इति पाठः।

तज्जणिदसुदणाणाणि[2] तदावरणाणि च रूवूणेयट्ठिमेत्ताणि । जदि वि एगसंजोगक्खरमणेगेसु अत्थेसु अक्खरवच्चासावच्चासवलेण वट्टदे तो वि अक्खरमेक्कं चेव, अण्णोण्णमवेक्खिय णाणकज्जजणयाणं भेदाणुववत्तीदो ।

तस्सेव सुदणाणावरणीयस्स कम्मस्स वीसदिविधा परूवणा कायव्वा भवदि ॥ ४७ ॥

पुव्वं संजोगक्खरमेत्ताणि सुदणाणावरणाणि परूविदाणि । संपहि ताणि चेव सुद-णाणावरणाणि वीसदिविधाणि त्ति भण्णमाणे एदस्स सुत्तस्स पुव्वसुत्तेण विरोहो किण्ण जायदे ? ण एस दोसो, भिण्णाहिप्पायत्तादो । पुव्विल्लसुत्तमक्खरणिबंधणभेदपरूवयं; एदं पुण खओव-समगदभेदमस्सिदूण आवरणभेदपरूवयं । तम्हा दोसो णत्थि त्ति घेत्तव्वो । वीसदिविधसुद-णाणावरणणामपरूवणट्ठमुत्तरसुत्तं भणदि—

पज्जय-अक्खर-पद-संघादय-पडिवत्ति-जोगदाराइं ।
पाहुडपाहुड-वत्थू पुव्व समासा य बोद्धव्वा[3] ॥ १ ॥

श्रुतज्ञान और तदावरण कर्म ये एक कम एकट्ठी प्रमाण होते हैं ।

यद्यपि एक संयोगाक्षर अनेक अर्थोंमें अक्षरोंके उलट-फेरके बलसे रहता है तो भी अक्षर एक ही है, क्योंकि, एक दूसरेको देखते हुए ज्ञानरूप कार्यको उत्पन्न करनेकी अपेक्षा उनमें कोई भेद नहीं पाया जाता ।

उसी श्रुतज्ञानावरणीय कर्मकी वीस प्रकारकी प्ररूपणा करनी चाहिये ॥ ४७ ॥

शंका— पहले जितने संयोगक्षर होते हैं उतने श्रुतज्ञानावरण कर्म कह आये हैं । अब वे हीं श्रुतज्ञानावरण कर्म बीस प्रकारके होते हैं; ऐसा कथन करनेपर इस सूत्रका पूर्व सूत्रसे विरोध क्यों नहीं होता ?

समाधान— यह कोई दोष नहीं है, क्योंकि भिन्न अभिप्रायसे यह सूत्र कहा गया है । पूर्व सूत्र अक्षरनिमित्तक भेदोंका कथन करता है, परन्तु यह सूत्र क्षयोपशमके भेदोंका आलम्बन लेकर आवरणके भेदोंका कथन करता है । इसलिये कोई दोष नहीं है, ऐसा यहां ग्रहण करना चाहिये ।

अब बीस प्रकारके श्रुतज्ञानावरणके नामोंका कथन करनेके लिये आगेका गाथासूत्र कहते हैं—

पर्याय, पर्यायसमास, अक्षर, अक्षरसमास, पद, पदसमास, संघात, संघातसमास, प्रतिपत्ति, प्रतिपत्तिसमास, अनुयोगद्वार, अनुयोगद्वारसमास, प्राभृतप्राभृत, प्राभृतप्राभृत-समास, प्राभृत, प्राभृतसमास, वस्तु, वस्तुसमास, पूर्व और पूर्वसमास; ये श्रुतज्ञानके बीस भेद जानने चाहिये ॥ १ ॥

१ ताप्रतौ 'संजोगक्खराणि । तज्जणिद-' इति पाठः । २ अ-आ-काप्रतिषु 'सुदणाणाणं', ताप्रतौ 'सुदणाणं' इति पाठः । ३ पज्जायक्खरपदसंघादं पडिवत्तियाणिजोगं च । दुगवारपाहुडं च य पाहुडयं वत्थु पुव्वं च ॥ तेसिं च समासेहि य वीसविहं वा हु होदि सुदणाणं । आवरणस्स वि भेदा तत्तियमेत्ता हवंति त्ति ॥ गो. जी. ३१६–३१७.

पज्जयावरणीयं[1] पज्जयसमासावरणीयं अक्खरावरणीयं अक्खरसमासावरणीयं पदावरणीयं पदसमासावरणीयं संघादावरणीयं संघादसमासावरणीयं पडिवत्तिआवरणीयं पडिवत्तिसमासावरणीयं अणियोगद्दारावरणीयं अणियोगद्दारसमासावरणीयं पाहुडपाहुडावरणीयं पहुडपाहुडसमासावरणीयं पाहुडावरणीयं पाहुडसमासावरणीयं वत्थुआवरणीयं वत्थुसमासावरणीयं पुव्वावरणीयं पुव्वसमासावरणीयं चेदि ॥ ४८ ॥

गाहासुत्तेण भणिदअत्थो चेव पुणो किमट्ठं परूविदो ? गाहासुत्तत्थविवरणा जेण पच्छिमसुत्तेण कदा तेणेसो ण दोसो। जोगद्दारमिदि[2] वुत्ते कधमणियोगद्दारस्स गहणं होदि ? ण एस दोसो; णामेगदेसादो वि णामिल्ले बुद्धिसमुप्पत्तिदंसणादो। ण च एसो ववहारो लोगे अप्पसिद्धो, सच्चभामाए भामा; बलदेवे देवो; भीमसेणे[3] सेणो त्ति संववहारदंसणादो। पाहुडावरणस्स गाहासुत्ते असंतस्स कधमुवलद्धी जायदे ? ण एस दोसो; पाहुड-पाहुडसद्दस्स

पर्यायावरणीय, पर्यायसमासावरणीय, अक्षरावरणीय, अक्षरसमासावरणीय, पदावरणीय, पदसमासावरणीय, संघातावरणीय, संघातसमासावरणीय, प्रतिपत्ति-आवरणीय, प्रतिपत्तिसमासावरणीय, अनुयोगद्वारावरणीय, अनुयोगद्वारसमासावरणीय, प्राभृतप्राभृतावरणीय, प्राभृतप्राभृतसमासावरणीय, प्राभृतावरणीय, प्राभृतसमासावरणीय, वस्तुआवरणीय, वस्तुसमासावरणीय, पूर्वावरणीय, पूर्वसमासावरणीय; ये श्रुतज्ञानावरणके बीस भेद हैं ॥ ४८ ॥

शंका— गाथा सूत्रके द्वारा कहे हुए अर्थका ही पुनः किसलिये कथन किया है ?

समाधान— यतः अगले सूत्र द्वारा गाथासूत्रके अर्थका ही विवरण किया गया गया है, इसलिये यह कोई दोष नहीं है।

शंका— गाथासूत्रमें 'जोगद्दारं' ऐसा जो कहा है उससे 'अनुयोगद्वार' अर्थका ग्रहण कैसे होता है ?

समाधान— यह कोई दोष नहीं है, क्योंकि, नामके एकदेशसे भी नामवालेमें बुद्धि उत्पन्न होती हुई देखी जाती है। और यह व्यवहार लोकमें कुछ अप्रसिद्ध नहीं है, क्योंकि, सत्यभामाके 'भामा' पदका, बलदेवके लिये 'देव' पदका और भीमसेनके लिये 'सेन' पदका व्यवहार होता हुआ देखा जाता है।

शंका— प्राभृतावरणका गाथासूत्रमें निर्देश नहीं किया गया है, ऐसी अवस्थामें उसका ग्रहण कैसे होता है ?

१ प्रतिषु 'पज्जायावरणीयं' इति पाठः। २ काप्रतौ 'ओगद्दारम्मिदि'; ताप्रतौ 'जोगद्दारम्मिदि' पाठः। ३ अ-आ-काप्रतिषु 'बलदेवो देवो भीमसेणो' इति पाठः।

अंतिमपाहुडसद्दस्स दुरावित्तीए कदाए[1] तदुवलंभादो। समाससद्दो पादेक्कं संबंधणिज्जो, अण्णहा सुदणाणावरणस्स वीसदिविधत्ताणुववत्तीदो।

संपहि एदेसिं वीसदिविधावरणाणं सरूवपरूवणट्ठं ताव वीसदिविधसुदणाणस्स परूवणं कस्सामो। तं जहा—सुहुमणिगोदलद्धिअपज्जत्तयस्स [जं] जहण्णयं णाणं तं लद्धि-अक्खरं णाम। कधं तस्स अक्खरसण्णा? खरणेण विणा एगसरूवेण अवट्ठाणादो। केवल-णाणमक्खरं, तत्थ वड्ढि-हाणीणमभावादो। दव्वट्ठियणए सुहुमणिगोदणाणं तं चेवे त्ति वा अक्खरं। किमेदस्स पमाणं? केवलणाणस्स अणंतिमभागो। एदं णिरावरणं, 'अक्खर-स्साणंतिमभागो णिच्चुग्घाडिययो[2]' त्ति वयणादो एदम्मि आवरिदे जीवाभावप्पसंगादो वा[3]। एदम्हि लद्धिअक्खरे सव्वजीवरासिणा भागे हिदे सव्वजीवरासीदो अणंतगुणणाणा-विभागपडिच्छेदा आगच्छंति। सव्वजीवरासीदो लद्धिमक्खरमणंतगुणमिदि कुदो णव्वदे? परियम्मादो। तं जहा— सव्वजीवरासी वग्गिज्जमाणा वग्गिज्जमाणा अणंतलोगमेत्तवग्गण-

समाधान— यह कोई दोष नहीं है, क्योंकि प्राभृतप्राभृत शब्दके अन्तिम प्राभृत शब्दकी दो वार आवृत्ति की गई है। इसलिये उसका ग्रहण हो जाता है।

'समास' शब्दका प्रत्येकके साथ सम्बन्ध कर लेना चाहिये, क्योंकि, अन्यथा श्रुतज्ञाना-वरणके बीस भेद नहीं बन सकते।

अब इन बीस प्रकारके आवरणोंके स्वरूपका कथन करनेके लिये बीस प्रकारके श्रुतज्ञानका कथन करते हैं। यथा— सूक्ष्म निगोद लब्ध्यपर्याप्तकके जो जघन्य ज्ञान होता है उसका नाम लब्ध्यक्षर है।

शंका— इसकी अक्षर संज्ञा किस कारणसे है?

समाधान— क्योंकि यह ज्ञान नाशके विना एक स्वरूपसे अवस्थित रहता है। अथवा केवलज्ञान अक्षर है, क्योंकि उसमें वृद्धि और हानि नहीं होती। द्रव्यार्थिक नयकी अपेक्षा चूंकि सूक्ष्म निगोद लब्ध्यपर्याप्तकका ज्ञान भी वही है, इसलिये भी इस ज्ञानको अक्षर कहते हैं।

शंका—इसका प्रमाण क्या है?

समाधान—इसका प्रमाण केवलज्ञानका अनन्तवां भाग है।

यह ज्ञान निवारण है, क्योंकि, अक्षरका अनन्तवां भाग नित्य उद्घाटित (प्रगट) रहता है, ऐसा आगमवचन है, अथवा इसके आवृत्त होनेपर जीवके अभावका प्रसंग आता है। इस लब्ध्यक्षर ज्ञानमें सब जीव राशिका भाग देनेपर सब जीवनराशिसे अनन्तगुणे ज्ञानाविभागप्रतिच्छेद आते हैं।

शंका— सब जीवराशिसे लब्ध्यक्षरज्ञान अनन्तगुणा है, यह किस प्रमाणसे जाना जाता है?

समाधान— वह परिकर्मसे जाना जाता है। यथा— "सब जीवराशिका उत्तरोत्तर वर्ग करनेपर

---

१ प्रतिषु 'दुरावित्तीकदाए' इति पाठः। २ सुहुमणिगोदअपज्जत्तयस्स जादस्स तदियसमयम्हि। हवदि हु सव्वजहण्णं णिच्चुग्घाडं णिरावरणं॥ गो. जी. ३१९. ३ ××× सव्वजीवाणं पि य णं अक्खरस्स अणंतभागो णिच्चुग्घाडिओ (चिट्ठइ)। जइ पुण सो वि आवरिज्जा तेणं जीवो अजीवत्तं पाविज्जा। नं. सू. ४२. ४ काप्रतौ 'लद्धमक्खर-' इति पाठः।

ट्ठाणाणि उवरि गंतूण सव्वपोग्गलदव्वं पावदि। पुणो सव्वपोग्गलदव्वं वग्गिज्जमाणं वग्गिज्जमाणं अणंतलोगमेत्तवग्गणट्ठाणाणि उवरि गंतूण सव्वकालं पावदि। पुणो सव्वकाला वग्गिज्जमाणा वग्गिज्जमाणा अणंतलोगमेत्तवग्गणट्ठाणाणि उवरि गंतूण सव्वागाससेढिं पावदि। पुणो सव्वागाससेढी वग्गिज्जमाणा वग्गिज्जमाणा अणंतलोगमेत्तवग्गणट्ठाणाणि उवरि गंतूण धम्मत्थिय-अधम्मत्थियदव्वाणमगुरुअलहुअगुणं पावदि। पुणो धम्मत्थिय-अधम्मत्थिय-अगुरुअलहुअगुणो वग्गिज्जमाणो वग्गिज्जमाणो अणंतलोगमेत्तवग्गणट्ठाणाणि उवरि गंतूण एगजीवस्स अगुरुअलहुअगुणं पावदि। पुणो एगजीवस्स अगुरुअलहुअगुणो वग्गिज्जमाणो वग्गिज्जमाणो अणंतलोगमेत्तवग्गणट्ठाणाणि उवरि गंतूण सुहुमणिगोदअपज्जत्तयस्स लद्धिवखरं पावदि त्ति परियम्मे भणिदं।

तं पुण लद्धिअक्खरं अक्खरसण्णिदस्स केवलणाणस्स अणंतिमभागो। तेणेदम्हि लद्धिअक्खरे सव्वजीवरासिणा भागे हिदे लद्धं सव्वजीवरासीदो अणंतगुणं णाणाविभाग-पडिच्छेदेहि होदि[1]। एदम्मि पक्खेवे लद्धिअक्खरम्हि पडिरासिदम्मि पक्खित्ते पज्जयणाण-पमाणमुप्पज्जदि। पुणो पज्जयणाणे सव्वजीवरासिणा भागे हिदे जं भागलद्धं[2] तम्मि तत्थेव पज्जयणाणे पडिरासिदे पक्खित्ते पज्जयसमासणाणमुप्पज्जदि[3]। पुणो एदस्सुवरि भावविहाणकमेण अणंतभागवड्ढि-असंखेज्जभागवड्ढि-संखेज्जभागवड्ढि-संखेज्जगुणवड्ढि-असंखेज्जगुणवड्ढि-अणंतगुणवड्ढि-कमेण पज्जयसमासणाणट्ठाणाणि णिरंतरं गच्छंति जाव असंखेज्जलोगमेत्तपज्जयसमासणाणट्ठाणाणं दुचरिमट्ठाणे त्ति। पुणो एदस्सुवरि एगपक्खेवे वड्ढिदे चरिमं पज्जयसमासणाणट्ठाणं होदि।

अनन्त लोकप्रमाण वर्गस्थान आगे जाकर सब पुद्गल द्रव्य प्राप्त होता है। पुनः सब पुद्गल द्रव्यका उत्तरोत्तर वर्ग करनेपर अनन्त लोकमात्र वर्गस्थान आगे जाकर सब काल प्राप्त होता है। पुनः सब कालोंका उत्तरोत्तर वर्ग करनेपर अनन्त लोकमात्र वर्गस्थान आगे जाकर सब आकाशश्रेणि प्राप्त होती है। पुनः सब आकाशश्रेणिका उत्तरोत्तर वर्ग करनेपर अनन्त लोकमात्र वर्गस्थान आगे जाकर धर्मास्तिकाय और अधर्मास्तिकाय द्रव्यका अगुरुलघु गुण प्राप्त होता है। पुनः धर्मास्तिकाय और अधर्मास्तिकायके अगुरुलघु गुणका उत्तरोत्तर वर्ग करनेपर अनन्त लोकमात्र वर्गस्थान आगे जाकर एक जीवका अगुरुलघु गुण प्राप्त होता है। पुनः एक जीवके अगुरुलघु गुणका उत्तरोत्तर वर्ग करनेपर अनन्त लोकमात्र वर्गस्थान आगे जाकर सूक्ष्म निगोद लब्ध्यपर्याप्तका लब्ध्यक्षरज्ञान प्राप्त होता है।" ऐसा परिकर्ममें कहा है।

वह लब्ध्यक्षरज्ञान अक्षरसंज्ञक केवलज्ञानका अनन्तवां भाग है, इसलिये इस लब्ध्यक्षर-ज्ञानमें सब जीवराशिका भाग देनेपर ज्ञानाविभागप्रतिच्छेदोंकी अपेक्षा सब जीवराशिसे अनन्त-गुणा लब्ध होता है। इस प्रक्षेपको प्रतिराशिभूत लब्ध्यक्षरज्ञानमें मिलानेपर पर्यायज्ञानका प्रमाण उत्पन्न होता है। पुनः पर्यायज्ञानमें सब जीवराशिका भाग देनेपर जो भागलब्ध आवे उसे प्रतिराशिभूत उसी पर्यायज्ञानमें मिला देनेपर पर्यायसमासज्ञान उत्पन्न होता है। पुनः इसके आगे भावविधानोक्त विधानके अनुसार अनन्तभागवृद्धि, असंख्यातभागवृद्धि, संख्यातभागवृद्धि, संख्यात-गुणवृद्धि, असंख्यातगुणवृद्धि और अनन्तगुणवृद्धिके क्रमसे असंख्यात लोकमात्र पर्यायसमास

१ प्रतिषु 'अणंतगुणणाणा-' इति पाठः। २ ताप्रतौ 'भागं लद्धं' इति पाठः। ३ ताप्रतौ 'पज्जय-णाणसमासमुप्पज्जदि' इति पाठः।

एवं पज्जयसमासणाणट्ठाणाणि असंखेज्जलोगमेत्तछट्ठाणपमाणाणि । पज्जयणाणं पुण एगवियप्पं चेव । कुदो ? बहूणं पज्जयाणमभावादो । को पज्जओ णाम ? णाणाविभागपडिच्छेदपक्खेवो[1] पज्जओ णाम । तस्स समासो जेसु णाणट्ठाणेसु अत्थि तेसिं णाणट्ठाणाणं पज्जयसमासो त्ति सण्णा । जत्थ पुण एक्को चेव पक्खेवो तस्स पज्जओ[2] त्ति सण्णा, एक्कम्मि पज्जए समासाणुववत्तीदो । एत्थ भावविहाणक्कमो चेव होदि त्ति कधं णव्वदे ? कम्म-जीवभावाणं भावत्तं पडि भेदाभावादो । रूव-रस-गंधफासादीणं पि भेदाभावेण भावविहाणक्कमो पसज्जदे ? ण एस दोसो, तत्थ वि छण्णं वड्ढीणं संभवब्भुवगमादो ।

पुणो चरिमपज्जयसमासणाणट्ठाणे सव्वजीवरासिणा भागे हिदे लद्धं तम्हि चेव पक्खित्ते अक्खरणाणमुप्पज्जदि । एदं पुण अक्खरणाणं अणंताणंताणि सुहुमणिगोदअपज्जत्तलद्धिअक्खराणि घेत्तूण होदि । लद्धिअक्खरं णिव्वत्तिअक्खरं संठाणक्खरं चेदि तिविहमक्खरं । तत्थ जं तं लद्धिअक्खरं तं[3] सुहुमणिगोदअपज्जत्तप्पहुडि जाव सुदकेवलि त्ति ताव जे

ज्ञानस्थानोंके द्विचरमस्थानके प्राप्त होने तक पर्यायसमासज्ञानस्थान निरन्तर प्राप्त होते रहते हैं। पुनः इसके ऊपर एक प्रक्षेपकी वृद्धि होनेपर अन्तिम पर्यायसमासज्ञानस्थान होता है । इस प्रकार पर्यायसमासज्ञानस्थान असंख्यात लोकमात्र छह स्थान प्रमाण प्राप्त होते हैं । परन्तु पर्यायज्ञान एक प्रकारका ही होता है, क्योंकि, बहुत पर्यायोंका वहां अभाव है ।

शंका— पर्याय किसका नाम है ?

समाधान— ज्ञानाविभागप्रतिच्छेदोंके प्रक्षेपका नाम पर्याय है ।

उनका समास जिन ज्ञानस्थानोंमें होता है उन ज्ञानस्थानोंकी पर्यायसमास संज्ञा है । परन्तु जहां एक ही प्रक्षेप होता है उस ज्ञानकी पर्याय संज्ञा है, क्योंकि, एक पर्यायमें उनका समास नहीं बन सकता ।

शंका— यहां भावविधानका ही क्रम है, यह किस प्रमाणसे जाना जाता है ?

समाधान— क्योंकि, कर्म और जीवके भावोंका भावसामान्यके प्रति कोई भेद नहीं है। इससे जाना जाता है कि यहां भावविधानका ही क्रम है ।

शंका— इस प्रकारसे तो रूप, रस, गन्ध और स्पर्श आदिकोंके भी उससे कुछ भेद न होनेके कारण भावविधानक्रमका प्रसंग प्राप्त होता है ?

समाधान— यह कोई दोष नहीं है, क्योंकि वहां भी छहों वृद्धियोंका सद्भाव स्वीकार किया गया है ।

पुनः अन्तिम पर्यायसमासज्ञानस्थानमें सब जीवराशिका भाग देनेपर जो लब्ध आवे उसे उसीमें मिलानेपर अक्षरज्ञान उत्पन्न होता है । यह अक्षरज्ञान सूक्ष्म निगोद लब्ध्यपर्याप्तकके अनन्तानन्त लब्ध्यक्षरोंके बराबर होता है ।

अक्षरके तीन भेद हैं— लब्ध्यक्षर, निर्वृत्त्यक्षर और संस्थानाक्षर । सूक्ष्मनिगोद लब्ध्य-

१ आ-का-ताप्रतिषु 'पडिच्छेदो पक्खेवो' इति पाठः । २ आप्रतौ 'तंपसज्जओ', काप्रतौ 'तंउपज्जओ' इति पाठः । ३ ताप्रतौ 'तं' इत्येतत्पदं नास्ति ।

खओवसमा तेसिं लद्धिअक्खरमिदि सण्णा । जीवाणं मुहादो णिग्गयस्स सद्दस्स णिव्वत्तिअक्खरमिदि सण्णा । तं च णिव्वत्तिअक्खरं वत्तमवत्तं चेदि दुविहं । तत्थ वत्तं सण्णिपंचिंदियपज्जत्तएसु होदि । अवत्तं बेइंदियप्पहुडि जाव सण्णिपंचिंदियपज्जत्तएसु होदि । जं तं संठाणक्खरं णाम तं ट्ठवणक्खरमिदि घेत्तव्वं । का ट्ठवणा णाम ? एदमिदमक्खरमिदि अभेदेण बुद्धीए जा ट्ठविदा लीहादव्वं वा तं ट्ठवणक्खरं णाम । एदेसु तिसु[1] अक्खरेसु केणेत्थ अक्खरेण पयदं ? लद्धिअक्खरेण, ण सेसेहि; जडत्तादो[2] ।

संपहि लद्धिअक्खरं जहण्णं सुहुमणिगोदलद्धिअपज्जत्तयस्स होदि, उक्कस्सं चोद्दस-पुव्विस्स । णिव्वत्तिअक्खरं जहण्णयं बेइंदियपज्जत्तादिसु, उक्कस्सयं चोद्दसपुव्विस्स । एवं संठाणक्खरस्स वि वत्तव्वं । एगादो अक्खरादो जहण्णेण उप्पज्जदि णाणं तं अक्खरसुद-णाणमिदि घेत्तव्वं । इमस्स अक्खरस्स उवरि बिदिए अक्खरे वड्ढिदे अक्खरसमासो णाम सुदणाणं होदि । एवमेगेगक्खरवड्ढिकमेण अक्खरसमासं सुदणाणं वड्ढमाणं गच्छदि जाव संखेज्जक्खराणि वड्ढिदाणि त्ति । पुणो संखेज्जक्खराणि घेत्तूण एगं पदसुदणाणं होदि ।

अत्थपदं पमाणपदं मज्झिमपदमिति तिविहं पदं होदि । तत्थ जेत्तिएहि अत्थोवलद्धी

पर्याप्तकसे लेकर श्रुतकेवली तक जीवोंके जितने क्षयोपशम होते हैं उन सबकी लब्ध्यक्षर संज्ञा है । जीवोंके मुखसे निकले हुए शब्दकी निर्वृत्त्यक्षर संज्ञा है । उस निर्वृत्त्यक्षरके व्यक्त और अव्यक्त ऐसे दो भेद हैं । उनमेंसे व्यक्त निर्वृत्त्यक्षर संज्ञी पंचेन्द्रिय पर्याप्तकोंके होता है और अव्यक्त निर्वृत्त्यक्षर द्वीन्द्रियसे लेकर संज्ञी पंचेन्द्रिय पर्याप्त तक जीवोंके होता है । संस्थानाक्षरका दूसरा नामस्थापना-अक्षर है, ऐसा ग्रहण करना चाहिये ।

शंका— स्थापना क्या है ?

समाधान— 'यह वह अक्षर है' इस प्रकार अभेदरूपसे बुद्धिमें जो स्थापना होती है या जो लिखा जाता है वह स्थापना-अक्षर है ।

शंका— इन तीन अक्षरोंमेंसे प्रकृतमें कौनसे अक्षरसे प्रयोजन है ?

समाधान— लब्ध्यक्षरसे प्रयोजन है, शेष अक्षरोंसे नहीं है; क्योंकि वे जड़ स्वरूप हैं ।

जघन्य लब्ध्यक्षर सूक्ष्म निगोद लब्ध्यपर्याप्तकके होता है और उत्कृष्ट चौदह पूर्वधारीके होता है । जघन्य निर्वृत्त्यक्षर द्वीन्द्रिय पर्याप्तक आदिकोंके होता है और उत्कृष्ट चौदह पूर्वधारीके होता है । इसी प्रकार संस्थानाक्षरका भी कथन करना चाहिये । एक अक्षरसे जो जघन्य ज्ञान उत्पन्न होता है वह अक्षरश्रुतज्ञान है, ऐसा यहां ग्रहण करना चाहिये । इस अक्षरके ऊपर दूसरे अक्षरकी वृद्धि होनेपर अक्षरसमास नामका श्रुतज्ञान होता है । इस प्रकार एक एक अक्षरकी वृद्धि होते हुए संख्यात अक्षरोंकी वृद्धि होने तक अक्षरसमास श्रुतज्ञान होता है । पुनः संख्यात अक्षरोंको मिलाकर एक पद नामका श्रुतज्ञान होता है ।

अर्थपद, प्रमाणपद और मध्यमपद इस प्रकार पद तीन प्रकारका है । उनमेंसे

---

१ ताप्रतौ 'तीसु' इति पाठः । २ प्रतिषु 'जदत्तादो' इति पाठः ।

होदि तमत्थपदं णाम । एदं च अणवट्टिदं, अणियदअक्खरेहिंतो अत्थुवलद्धिदंसणादो । ण चेदमसिद्धं, अः विष्णुः[1], इः कामः[2], कः ब्रह्मा[3] इच्चेवमादिसु एगेगक्खरादो चेव अत्थुवलंभादो । अट्ठक्खरणिप्फण्णं पमाणपदं । एदं च अवट्टिदं, णियदट्ठसंखादो ।

सोलससदचोत्तीसं कोडी तेसीदि चेव लक्खाइं ।
सत्तसहस्सट्ठसदा अट्ठासीदा य पदवण्णा[4] ॥ १८ ॥

एत्तियाणि अक्खराणि घेत्तूण एगं मज्झिमपदं होदि । एदं पि संजोगक्खरसंखाए अवट्टिदं, वुत्तपमाणादो अक्खरेहि वड्ढि-हाणीणमभावादो । एदेसु केण पदेण पयदं ? मज्झिमपदेण । वुत्तं च—

तिविहं पदमुद्दिट्ठं पमाणपदमत्थमज्झिमपदं च ।
मज्झिमपदेण वुत्ता पुव्वंगाणं पदविभागा[5] ॥ १९ ॥
बारससदकोडीओ[6] तेसीदि हवंति तह य लक्खाइं ।
अट्ठावण्णसहस्सं पंचेव पदाणि सुदणाणे[7] ॥ २० ॥

जितनोंके द्वारा अर्थका ज्ञान होता है वह अर्थपद है । यह अनवस्थित है, क्योंकि, अनियत अक्षरोंके द्वारा अर्थका ज्ञान होता हुआ देखा जाता है । और यह बात असिद्ध भी नहीं है, क्योंकि 'अ' का अर्थ विष्णु है, 'इ' का अर्थ काम है, और 'क' का अर्थ ब्रह्मा है; इस प्रकार इत्यादि स्थलोंपर एक एक अक्षरसे ही अर्थकी उपलब्धि होती है । आठ अक्षरसे निष्पन्न हुआ प्रमाणपद है । यह अवस्थित है, क्योंकि इसकी आठ संख्या नियत है ।

सोलह सौ चौंतीस करोड़ तिरासी लाख सात हजार आठ सौ अठासी (१६३४८३०७८८८) इतने मध्यम पदके वर्ण होते हैं ॥ १८ ॥

इतने अक्षरोंको ग्रहण कर एक मध्यम पद होता है । यह भी संयोगी अक्षरोंकी संख्याकी अपेक्षा अवस्थित है, क्योंकि, उसमें उक्त प्रमाणसे अक्षरोंकी अपेक्षा वृद्धि और हानि नहीं होती ।

शंका— इन पदोंमेंसे प्रकृतमें किस पदसे प्रयोजन है ?

समाधान— मध्यम पदसे प्रयोजन है । कहा भी है—

पद तीन प्रकारका कहा गया है— प्रमाणपद, अर्थपद और मध्यमपद । इनमेंसे मध्यमपदके द्वारा पूर्व और अंगोंका पदविभाग कहा गया है ॥ १९ ॥

श्रुतज्ञानके एक सौ बारह करोड़ तिरासी लाख अट्ठावन हजार और पांच (११२८३५८००५) ही पद होते हैं ॥ २० ॥

---

१ अ स्यादभावे स्वल्पार्थे विष्णावेष त्वनव्ययम् ॥ अने. सं. (प. कां.) १. २ इ स्यात्खेदे प्रकोपोक्तौ कामदेवे त्वनव्ययम् ॥ अने. सं. (प. कां.) ३. ३ को ब्रह्मण्यात्मनि रवौ मयूरेऽग्नौ यमेऽनिले । कं शीर्षेऽप्सु सुखे ××× ॥ अने. सं. १–५. ४ गो. जी. ३३५. ५ षट्खं. पु. ९ पृ. १९६. तिविहं पदं तु भणिदं अत्थपद-पमाण-मज्झिमपदं ति । मज्झिमपदेण भणिदा पुव्वंगाणं पदविभागा ॥ क. पा. १, पृ. ९२. ६ काप्रतौ 'वासपदकोडीओ', ताप्रतौ 'बारसन(स) दकोडीओ' इति पाठः । ७ अट्ठावण्ण-सहस्सा दोण्णि य छप्पण्णमेत्तकोडीओ । तेसीदिसदसहस्सं पदसंखा पंच सुदणाणे ॥ क. पा. १, पृ. ९३.

एत्तियाणि पदाणि घेत्तूण सगलसुदणाणं होदि । एदेसु पदेसु संजोगक्खराणि चेव सरिसाणि, ण संजोगक्खरावयवक्खराणि; तत्थ संखाणियमाभावादो । एदस्स मज्झिमपद-सुदणाणस्सुवरि एगे अक्खरे वड्डिदे पदसमासो णाम सुदणाणं होदि । पदस्स उवरि अण्णेगे[1] पदे वड्डिदे पदसमाससुदणाणं होदि त्ति वोत्तुं जुत्तं । पदस्सुवरि एगेगक्खरे वड्डिदे ण पदसमाससुदणाणं होदि, अक्खरस्स पदत्ताभावादो त्ति ? ण एस दोसो, पदावयवस्स अक्खरस्स वि पदव्ववएसे संते विरोहाभावादो । ण च अवयवे अवयविसण्णा अप्पसिद्धा, पडो दद्धो[2] गामो दद्धो इच्चेवमादिसु अवयवस्स वि अवयविसण्णुवलंभादो[3] । एवमेगे-गक्खरवड्डीए पदसमाससुदणाणं वड्ढमाणं गच्छदि जावेगक्खरेणूणसंघादसुदणाणे त्ति । पुणो एदस्सुवरि एगेगक्खरे[4] वड्डिदे संघादणामसुदणाणं होदि । होंतं पि संखेज्जाणि पदाणि घेत्तूण एगसंघादसुदणाणं होदि[5] । मग्गणावयवो संघादसुदणाणं णाम, जहा गदिमग्गणाए णिरय-गइविसओ अवगमो तदुप्पत्तिहेदुपदाणि वा ।

अक्खरसुदणाणादो उवरि छव्विहाए वड्डीए सुदणाणं किण्ण वड्ढदे ? ण, अक्खरणाणं

इतने पदोंका आश्रय कर सकल श्रुतज्ञान होता है । इन पदोंमें संयोगी अक्षर ही समान हैं, संयोगी अक्षरोंके अवयव अक्षर नहीं; क्योंकि, उनकी संख्याका कोई नियम नहीं है । इस मध्यमपद श्रुतज्ञानके ऊपर एक अक्षरके बढ़नेपर पदसमास नामका श्रुतज्ञान होता है ।

शंका— पदके ऊपर अन्य एक पदके बढ़नेपर पदसमास श्रुतज्ञान होता है, ऐसा कहना उचित है । किन्तु पदके ऊपर एक अक्षरके बढ़नेपर पदसमास श्रुतज्ञान नहीं होता, क्योंकि, अक्षर पद नहीं हो सकता ?

समाधान— यह कोई दोष नहीं है, क्योंकि पदके अवयवभूत अक्षरकी भी पद संज्ञा होनेमें कोई विरोध नहीं आता । अवयवमें अवयवीका व्यवहार अप्रसिद्ध है, यह बात भी नहीं है; क्योंकि ' वस्त्र जल गया, गांव जल गया ' इत्यादि उदाहरणोंमें वस्त्र या गांवके एक अवयवमें ही अवयवीका व्यवहार होता हुआ देखा जाता है ।

इस प्रकार एक एक अक्षरकी वृद्धिसे बढ़ता हुआ पदसमास श्रुतज्ञान एक अक्षरसे न्यून संघात श्रुतज्ञानके प्राप्त होने तक जाता है । पुनः इसके ऊपर एक एक अक्षरकी वृद्धि होनेपर संघात नामका श्रुतज्ञान होता है । ऐसा होते हुए भी संख्यात पदोंको मिलाकर एक संघात श्रुतज्ञान होता है । मार्गणाज्ञानका अवयवभूत ज्ञान संघात श्रुतज्ञान है । यथा गति मार्गणामें नरकगति-विषयक ज्ञान । अथवा इस संघात श्रुतज्ञानकी उत्पत्तिके हेतुभूत पदोंका नाम संघात है ।

शंका— अक्षर श्रुतज्ञानके ऊपर छह प्रकारकी वृद्धि द्वारा श्रुतज्ञानकी वृद्धि क्यों नहीं होती ?

---

१ ताप्रतौ ' अणेगे ' इति पाठः । २ आ-का-ताप्रतिषु ' पदो उद्धो ' इति पाठः । ३ आ-का-ताप्रतिषु ' अवयवस्स विसण्णुवलंभादो ' इति पाठः । ४ ताप्रतौ ' ए [गे] गक्खरे ' इति पाठः । ५ एयपदादो उवरिं एगेगेणक्खरेण वड्ढंतो । संखेज्जसहस्सपदे उड्ढे संघादणाम सुदं ॥ गो. जी. ३३६.

णाम सगलसुदणाणस्स संखेज्जदिभागो। तम्हि समुप्पण्णे संखेज्जभागवड्ढि-संखेज्जगुणवड्ढीओ चेव होंति, ण छव्विहवड्ढीओ; एगक्खरणाणेण संजादबलस्स छव्विहवड्ढिविरोहादो। अक्खरणाणादो उवरि छव्विहवड्ढिपरूविदवेयणावक्खाणेण सह किण्ण विरोहो? ण, भिण्णाहिप्पायत्तादो। एयक्खरक्खओवसमादो[1] जेसिमाइरियाणमहिप्पाएण उवरिमक्खओवसमा छव्विहवड्ढीए वड्ढिदा अत्थि तमस्सिय तं वक्खाणं तत्थ परूविदं। एगक्खरसुदणाणं जेसिमाइरियाणमहिप्पाएण सयलसुदणाणस्स संखेज्जदिभागो चेव तेसिमहिप्पाएणेदं वक्खाणं। तेण ण दोण्णं विरोहो।

समाधान—नहीं, क्योंकि अक्षरज्ञान सकल श्रुतज्ञानके संख्यातवें भागप्रमाण होता है। उसके उत्पन्न होनेपर संख्यातभागवृद्धि और संख्यातगुणवृद्धि ही होती हैं। छह प्रकारकी वृद्धियां नहीं होतीं, क्योंकि, एक अक्षररूप ज्ञानके द्वारा जिसे बलकी प्राप्ति हुई है उसके छह प्रकारकी वृद्धिके माननेमें विरोध आता है।

शंका— अक्षरज्ञानके ऊपर छह प्रकारकी वृद्धिका कथन करनेवाले वेदना अनुयोगद्वारके व्याख्यानके साथ इस व्याख्यानका विरोध क्यों नहीं होता है?

समाधान— नहीं, क्योंकि उसका इससे भिन्न अभिप्राय है। जिन आचार्योंके अभिप्रायानुसार एक अक्षरके क्षयोपशमसे आगेके क्षयोपशम छह वृद्धियों द्वारा वृद्धिको लिए हुए होते हैं उन आचार्योंके अभिप्रायको ध्यानमें रख कर वेदना अनुयोगद्वारामें वह व्याख्यान किया है। किन्तु जिन आचार्योंके अभिप्रायानुसार एक अक्षर श्रुतज्ञान सकल श्रुतज्ञानके संख्यातवें भागप्रमाण ही होता है उन आचार्योंके अभिप्रायानुसार यह व्याख्यान किया है। इसलिये इन दोनों व्याख्यानोंमें कोई विरोध नहीं है।

विशेषार्थ— यहां अक्षरज्ञानके ऊपर ज्ञानके विकल्प किस क्रमसे उत्पन्न होते हैं, इस बातका विचार किया गया है। एक मत यह है कि अक्षरज्ञानके आगे भी षड्गुणी वृद्धि होती है। इस मतको माननेपर दूसरे अक्षरज्ञानकी उत्पत्ति युगपत् न होकर अनन्तभागवृद्धि, असंख्यातभागवृद्धि आदिके क्रमसे ही होगी। और दूसरा मत यह है कि एक अक्षरज्ञानके आगे दूसरे अक्षरज्ञानकी उत्पत्ति युगपत् होती है। इस मतके माननेपर एक अक्षरज्ञानके आगे संख्यातगुणवृद्धि और संख्यातभागवृद्धि ये दो वृद्धियां ही सम्भव हैं। उदाहरणार्थ— प्रथम अक्षरज्ञानके बाद दूसरे अक्षरज्ञानकी उत्पत्ति होनेपर संख्यातगुणवृद्धि होती है और दो अक्षरज्ञानोंके ऊपर तीसरे अक्षरज्ञानकी उत्पत्ति होनेपर संख्यातभागवृद्धि होती है। इस प्रकार ये दो मत हैं। सूत्रकारने 'अक्षरश्रुतज्ञानावरणीय कर्मकी कितनी प्रकृतियां हैं' ऐसा प्रश्न करनेपर 'संख्यात प्रकृतियां हैं' ऐसा समाधान किया है, इसलिए यहांपर वीरसेन स्वामीने इसके अनुरूप मतका संकलन किया है। पर इसके सिवा इस विषयमें एक दूसरा भी मत उपलब्ध होता है, यह दिखलानेके लिए उसका संकलन वेदना अनुयोगद्वारमें किया है।

१ अप्रतौ 'खओवसमाणदो', काप्रतौ 'खओवसमाणो', ताप्रतौ 'क्खओवसमासो (दो)' इति पाठः।

पुणो संघादसुदणाणस्सुवरि एगक्खरे वड्डिदे संघादसमाससुदणाणं होदि । एत्थ वि संघादे गदे सो वि संघादो त्ति कादूण संघादसमासो जुज्जदि त्ति वत्तव्वं । एवमेगेगक्खर-वड्डिक्कमेण संघादसमाससुदणाणं वड्डमाणं गच्छदि जाव एगक्खरेणूणगदिमग्गणे त्ति । पुणो एत्थ एगक्खरे वड्डिदे पडिवत्तिसुदणाणं होदि । होंतं पि संखेज्जाणि संघादसुदणाणाणि घेत्तूण एयं पडिवत्तिसुदणाणं होदि । अणियोगद्दारस्स जे अहियारा तत्थ एक्कस्स अहियारस्स पडिवत्ति त्ति सण्णा । एगक्खरेणूणसव्वाहियाराणं पडिवत्तिसमासो त्ति सण्णा । पडिवत्तीए जे अहियारा तत्थ एक्केक्कहियारस्स संघादे त्ति सण्णा । एगक्खरेणूणसव्वाहियाराणं संघाद-समासो त्ति सण्णा । एदमत्थपदं सव्वत्थ पउंजिदव्वं ।

पुणो पडिवत्तिसुदणाणस्सुवरि एगक्खरे वड्डिदे पडिवत्तिसमाससुदणाणं होदि । एव-मेगेगक्खरवड्डिक्कमेण पडिवत्तिसमाससुदणाणं वड्डमाणं गच्छदि जाव एगक्खरेणूणअणियोग-द्दारसुदणाणे त्ति । पुणो एत्थ एगक्खरे वड्डिदे अणियोगद्दारसुदणाणं होदि । किमणि-योगद्दारं णाम ? पाहुडस्स जे अहियारा तत्थ एक्केक्कस्स पाहुडपाहुडे त्ति सण्णा । पाहुड-

पुनः संघात श्रुतज्ञानके ऊपर एक अक्षरकी वृद्धि होनेपर संघातसमास श्रुतज्ञान होता है। यहांपर भी संघातके अतीत होनेपर वह भी संघात है, ऐसा समझकर संघातसमास बन जाता हैं; ऐसा कहना चाहिये । इस प्रकार एक एक अक्षरकी वृद्धिके क्रमसे बढ़ता हुआ एक अक्षरसे न्यून गतिमार्गणाविषयक ज्ञानके प्राप्त होने तक संघातसमास श्रुतज्ञान होता है। पुनः इस ज्ञानपर एक अक्षरकी वृद्धि होनेपर प्रतिपत्ति श्रुतज्ञान होता है। ऐसा होता हुआ भी संख्यात संघात श्रुतज्ञानोंका आश्रय कर एक प्रतिपत्ति श्रुतज्ञान होता है। अनुयोगद्वारके जितने अधिकार होते हैं उनमेंसे एक अधिकारकी प्रतिपत्ति संज्ञा है और एक अक्षरसे न्यून सब अधिकारोंकी प्रतिपत्ति-समास संज्ञा है । प्रतिपत्तिके जितने अधिकार होते हैं उनमेंसे एक एक अधिकारकी संघात संज्ञा है और एक अक्षर न्यून सब अधिकारोंकी संघातसमास संज्ञा है। इस अर्थपदका सब जगह कथन करना चाहिये ।

विशेषार्थ— आशय यह है कि एक अक्षरज्ञान और पदज्ञानके मध्यका जितना ज्ञान हैं वह अक्षरसमास कहलाता है। इसी प्रकार पदज्ञान और संघातज्ञानके मध्यका जितना ज्ञान है वह पदसमास कहलाता है। तथा संघातज्ञान और प्रतिपत्तिज्ञानके मध्यका जितना ज्ञान हैं वह संघातसमास ज्ञान कहलाता है। इसी प्रकार आगे भी अनुयोगद्वारसमास, प्राभृतप्राभृतसमास, प्राभृतसमास, वस्तुसमास और पूर्वसमासका कथन करना चाहिये ।

पुनः प्रतिपत्ति श्रुतज्ञानके ऊपर एक अक्षरकी वृद्धि होनेपर प्रतिपत्तिसमास श्रुतज्ञान होता है। इस प्रकार एक एक अक्षरकी वृद्धिके क्रमसे बढ़ता हुआ एक अक्षरसे न्यून अनुयोगद्वार श्रुतज्ञानके प्राप्त होने तक प्रतिपत्तिसमास श्रुतज्ञान जाता है। पुनः इसमें एक अक्षरकी वृद्धि होनेपर अनुयोगद्वार श्रुतज्ञान होता है।

शंका— अनुयोगद्वार यह किसकी संज्ञा है ?

समाधान— प्राभृतके जितने अधिकार होते हैं उनमेंसे एक एक अधिकारकी प्राभृत-

पाहुडस्स जे अहियारा तत्थ एक्केक्कस्स अणियोगद्दारमिदि सण्णा । पुणो अणियोगद्दारसुदणाणस्सुवरि एगक्खरे वड्ढिदे अणियोगद्दारसमासो णाम सुदणाणं होदि । एवमेगेगुत्तरक्खरवड्ढीए अणियोगद्दारसमाससुदणाणं वड्ढमाणं गच्छदि जाव एगक्खरेणूणपाहुडपाहुडे त्ति । पुणो एदस्सुवरि एगक्खरे वड्ढिदे पाहुडपाहुडसुदणाणं होदि । किं पाहुडपाहुडं णाम ? संखेज्जाणि अणियोगद्दाराणि घेत्तूण एगं पाहुडपाहुडसुदणाणं होदि । पुणो एदस्सुवरि एगक्खरे वड्ढिदे पाहुडपाहुडसमाससुदणाणं होदि । एवमेगेगक्खरउत्तरवड्ढीए पाहुडपाहुडसमाससुदणाणं वड्ढमाणं गच्छदि जाव एगक्खरेणूणपाहुडसुदणाणे त्ति । पुणो एदस्सुवरि एगक्खरे वड्ढिदे पाहुडसुदणाणं होदि । तं पुण संखेज्जाणि पाहुडपाहुडाणि घेत्तूण एगं पाहुडसुदणाणं होदि । एदस्सुवरि एगक्खरे वड्ढिदे पाहुडसमाससुदणाणं होदि । एवमेगेगुत्तरक्खरवड्ढीए पाहुडसमाससुदणाणं वड्ढमाणं गच्छदि जाव एगक्खरेणूणवत्थुसुदणाणे त्ति । पुणो एत्थ एगक्खरे वड्ढिदे वत्थुसुदणाणं होदि । वत्थु त्ति किं वुत्तं होदि ? पुव्वसुदणाणस्स जे अहियारा तेसिं पुध पुध वत्थु इदि सण्णा । जहा अग्गेणियस्स पुव्वस्स चयणलद्धिआदिचोद्दसअहियारा । एदस्सुवरि एगक्खरे वड्ढिदे वत्थुसमाससुदणाणं होदि । एवमेगेगक्खरुत्तरवड्ढीए वत्थुसमाससुदणाणं

प्राभृत संज्ञा है । और प्राभृतप्राभृतके जितने अधिकार होते हैं उनमेंसे एक एक अधिकारकी अनुयोगद्वार संज्ञा है ।

पुनः अनुयोगद्वार श्रुतज्ञानके ऊपर एक अक्षरकी वृद्धि होनेपर अनुयोगद्वारसमास नामका श्रुतज्ञान होता है । इस प्रकार उत्तरोत्तर एक एक अक्षरकी वृद्धि होते हुए एक अक्षरसे न्यून प्राभृतप्राभृत श्रुतज्ञानके प्राप्त होने तक अनुयोगद्वारसमास श्रुतज्ञान होता है । पुनः इसके ऊपर एक अक्षरकी वृद्धि होनेपर प्राभृतप्राभृत श्रुतज्ञान होता है ।

शंका—प्राभृतप्राभृत यह क्या है ?

समाधान—संख्यात अनुयोगद्वारोंको ग्रहण कर एक प्राभृतप्राभृत श्रुतज्ञान होता है ।

पुनः इसके ऊपर एक अक्षरकी वृद्धि होनेपर प्राभृतप्राभृतसमास श्रुतज्ञान होता है । इस प्रकार उत्तरोत्तर एक एक अक्षरकी वृद्धि होते हुए एक अक्षरसे न्यून प्राभृत श्रुतज्ञानके प्राप्त होने तक प्राभृतप्राभृतसमास श्रुतज्ञान होता है । पुनः इसके ऊपर एक अक्षरकी वृद्धि होनेपर प्राभृत श्रुतज्ञान होता है । संख्यात प्राभृतप्राभृतोंको ग्रहण कर एक प्राभृत श्रुतज्ञान होता है, यह उक्त कथनका तात्पर्य है । इसके ऊपर एक अक्षरकी वृद्धि होनेपर प्राभृतसमास श्रुतज्ञान होता है । इस प्रकार उत्तरोत्तर एक एक अक्षरकी वृद्धि होते हुए एक अक्षरसे न्यून वस्तु श्रुतज्ञानके प्राप्त होने तक प्राभृतसमास श्रुतज्ञान होता है । पुनः इसमें एक अक्षरकी वृद्धि होनेपर वस्तु श्रुतज्ञान होता है ।

शंका—वस्तु इस पदसे क्या कहा गया है ?

समाधान—पूर्व श्रुतज्ञानके जितने अधिकार हैं उनकी अलग अलग वस्तु संज्ञा है । यथा—अग्रायणीय पूर्वके चयनलब्धि आदि चौदह अधिकार ।

इसके ऊपर एक अक्षरकी वृद्धि होनेपर वस्तुसमास श्रुतज्ञान होता है । इस प्रकार उत्तरोत्तर

वड्ढमाणं गच्छदि जाव एगक्खरेणूणपुव्वसुदणाणे त्ति । पुणो एदस्सुवरि एगक्खरे वड्ढिदे पुव्वसुदणाणं होदि । किं पुव्वं णाम ? पुव्वगयस्स जे उप्पादपुव्वादिचोद्दसअहियारा तेसिं पुध पुध पुव्वसुदणाणमिदि सण्णा । पुणो एदस्स उप्पायपुव्वसुदणाणस्सुवरि एगक्खरे वड्ढिदे पुव्वसमाससुदणाणं होदि । एवमेगेगक्खरुत्तरवड्ढीए पुव्वसमाससुदणाणं वड्ढमाणं गच्छदि जाव अंगपविट्ठंगबाहिरसगलसुदणाणक्खराणि सव्वाणि वड्ढिदाणि त्ति । एवं पुव्वाणुपुव्वीए सुदणाणस्स वीसदिविधा परूवणा कदा । एवमणुसारिबुद्धिविसिट्ठजीवस्स सुदणाणेण सह परिणमणविहाणं[1] समुद्दिट्ठं ।

संपहि पडिसारिबुद्धिविसिट्ठजीवाणं सुदणाणपज्जाएण परिणमणविहाणं भणिस्सामो । तं जहा— लोगबिंदुसारपुव्वस्स जं चरिमभावक्खरं तमणंताणंतखंडाणि कादूण एगखंडं सुहुमणिगोदलद्धिअपज्जत्तयस्स जहण्णयं लद्धिअक्खरं होदि । पुणो तस्सुवरि अणंतभागे वड्ढिदे पज्जयसुदणाणं होदि । पुणो एदस्सुवरि अणंतभागुत्तरं वड्ढिदे पज्जयसमाससुदणाणं होदि । पुणो एवमणंतभागवड्ढि-असंखेज्जभागवड्ढि-संखेज्जभागवड्ढि-संखेज्जगुणवड्ढि-असंखेज्ज-गुणवड्ढि-अणंतगुणवड्ढिकमेण असंखेज्जलोगमेत्तछट्ठाणाणि पज्जयसमाससुदणाणसरूवेण गच्छंति जाव एगपक्खेवेणूणएगक्खरे त्ति । पुणो एदस्सुवरि एगपक्खेवे वड्ढिदे लोगबिंदुसारपुव्वस्स

एक एक अक्षरकी वृद्धि होते हुए एक अक्षरसे न्यून पूर्वश्रुतज्ञानके प्राप्त होने तक वस्तुसमास श्रुतज्ञान होता है । पुनः इसके ऊपर एक अक्षरकी वृद्धि होनेपर पूर्व श्रुतज्ञान होता है ।

शंका— पूर्व यह किसकी संज्ञा है ?

समाधान— पूर्वगतके जो उत्पादपूर्व आदि चौदह अधिकार हैं उनकी अलग अलग पूर्व श्रुतज्ञान यह संज्ञा है ।

पुनः इस उत्पादपूर्व श्रुतज्ञानके ऊपर एक अक्षरकी वृद्धि होनेपर पूर्वसमास श्रुतज्ञान होता है । इस प्रकार उत्तरोत्तर एक एक अक्षरकी वृद्धि होते हुए अंगप्रविष्ट और अंगबाह्य रूप सकल श्रुतज्ञानके सब अक्षरोंकी वृद्धि होने तक पूर्वसमास श्रुतज्ञान होता है । इस प्रकार पूर्वानुपूर्वीके अनुसार श्रुतज्ञानकी बीस प्रकारकी प्ररूपणा की । इस प्रकार अनुसारी बुद्धि विशिष्ट जीवके श्रुतज्ञानके साथ परिणमन करनेकी विधि कही ।

अब प्रतिसारी बुद्धि विशिष्ट जीवोंके श्रुतज्ञान पर्यायके साथ परिणमन करनेकी विधि कहते हैं । यथा— लोकबिन्दुसारपूर्वका जो अन्तिम भावाक्षर है उसके अनन्तानन्त खण्ड करके उनमेंसे एक खण्डप्रमाण सूक्ष्म निगोद लब्ध्यपर्याप्तकका जघन्य लब्ध्यक्षर नामका श्रुतज्ञान होता है । पुनः उसके ऊपर अनन्तभाग वृद्धिके होनेपर पर्याय श्रुतज्ञान होता है । पुनः इसके ऊपर उत्तरोत्तर अनन्तभाग-वृद्धिके होनेपर पर्यायसमास श्रुतज्ञान होता है । पुनः इस प्रकार अनन्तभागवृद्धि, असंख्यात-भागवृद्धि, संख्यातभागवृद्धि, संख्यातगुणवृद्धि, असंख्यातगुणवृद्धि और अनन्तगुणवृद्धिके क्रमसे एक प्रक्षेपसे न्यून एक अक्षर श्रुतज्ञानके प्राप्त होने तक असंख्यात लोकमात्र छह वृद्धि स्थानरूप पर्यायसमास श्रुतज्ञान होता है । पुनः इसके ऊपर एक प्रक्षेपकी वृद्धि होनेपर लोकबिन्दुसार पूर्वका

१ अ-आ-काप्रतिषु ' विहीणं ' इति पाठः ।

एगचरिमक्खरं होदि । पुणो एदस्सुवरि एगक्खरे वड्डिदे अक्खरसमाससुदणाणं होदि । एवमेगेगक्खरुत्तरवड्डिकमेण अक्खरसमाससुदणाणं वड्ढमाणं गच्छदि जाव एगक्खरेणूण-पदसुदणाणे त्ति । पुणो एदस्सुवरि एगक्खरे वड्डिदे एगं मज्झिमपदसुदणाणं होदि । पुणो एदस्सुवरि एगक्खरे वड्डिदे पदसमाससुदणाणं होदि । एवमेगेगक्खरुत्तरवड्डिकमेण पदसमाससुदणाणं वड्ढमाणं गच्छदि जाव एगक्खरेणूणसंघादसुदणाणे त्ति । पुणो एदस्सुवरि एगक्खरे वड्डिदे संघादसुदणाणं होदि । पुणो एदस्सुवरि एगक्खरे वड्डिदे संघादसमास-सुदणाणं होदि । एवमेगेगक्खरुत्तरवड्डिकमेण संघादसमाससुदणाणं गच्छदि जाव एगक्खरेणूणपडिवत्तिसुदणाणे त्ति । पुणो एदस्सुवरि एगक्खरे वड्डिदे पडिवत्तिसुदणाणं होदि । पुणो एदस्सुवरि एगक्खरे वड्डिदे पडिवत्तिसमाससुदणाणं होदि । एवं पडिवत्तिसमास-सुदणाणं होदूण ताव गच्छदि जाव एगक्खरेणूणअणिओगद्दारसुदणाणं होदि । पुणो एदस्सुवरि एगक्खरे वड्डिदे अणियोगद्दारसुदणाणं होदि । पुणो एदस्सुवरि एगक्खरे वड्डिदे अणिओगद्दारसमाससुदणाणं होदि । एवमेगेगक्खरुत्तरवड्डिकमेण अणियोगद्दार- [समास] सुदणाणं ताव गच्छदि जाव एगक्खरेणूणपाहुडपाहुडे त्ति । पुणो एदस्सुवरि एगक्खरे वड्डिदे पाहुडपाहुडसुदणाणं होदि । पुणो एदस्सुवरि एगक्खरे वड्डिदे पाहुडपाहुडसमास-सुदणाणं होदि । एवमेगेक्खरुत्तरवड्डिकमेण पाहुडपाहुडसमाससुदणाणं होदूण गच्छदि जाव

एक अन्तिम अक्षर होता है । पुनः इसके ऊपर एक अक्षरकी वृद्धि होनेपर अक्षरसमास श्रुतज्ञान होता है । इस प्रकार उत्तरोत्तर एक एक अक्षरकी वृद्धिके क्रमसे एक अक्षरसे न्यून पद श्रुतज्ञानके होने तक अक्षरसमास श्रुतज्ञान बढ़ता रहता है । पुनः इसके ऊपर एक अक्षरकी वृद्धि होनेपर एक मध्यमपद श्रुतज्ञान होता है । पुनः इसके ऊपर एक अक्षरकी वृद्धि होनेपर पदसमास श्रुतज्ञान होता है । इस प्रकार उत्तरोत्तर एक एक अक्षरकी वृद्धिके क्रमसे एक अक्षरसे न्यून संघात श्रुतज्ञानके प्राप्त होने तक पदसमास श्रुतज्ञान होता है । पुनः इसके ऊपर एक अक्षरकी वृद्धि होनेपर संघात श्रुतज्ञान होता है । पुनः इसके ऊपर एक अक्षरकी वृद्धि होनेपर संघातसमास श्रुतज्ञान होता है । इस प्रकार उत्तरोत्तर एक एक अक्षरकी वृद्धिके क्रमसे एक अक्षरसे न्यून प्रतिपत्ति श्रुतज्ञानके प्राप्त होने तक संघातसमास श्रुतज्ञान बढ़ता रहता है । पुनः इसके ऊपर एक अक्षरकी वृद्धि होनेपर प्रतिपत्ति श्रुतज्ञान होता है । पुनः इसके ऊपर एक अक्षरकी वृद्धि होनेपर प्रतिपत्तिसमास श्रुतज्ञान होता है । इस प्रकार एक अक्षरसे न्यून अनुयोगद्वार श्रुतज्ञानके प्राप्त होने तक प्रतिपत्तिसमास श्रुतज्ञान बढ़ता रहता है । पुनः इसके ऊपर एक अक्षरकी वृद्धि होनेपर अनुयोगद्वार श्रुतज्ञान होता है । पुनः इसके ऊपर एक अक्षरकी वृद्धि होनेपर अनुयोगद्वारसमास श्रुतज्ञान हो ा है । इस प्रकार उत्तरोत्तर एक एक अक्षरकी वृद्धिके क्रमसे एक अक्षरसे न्यून प्राभृतप्राभृत श्रुतज्ञानके प्राप्त होने तक अनुयोगद्वारसमास श्रुतज्ञान बढ़ता रहता है । पुनः इसके ऊपर एक अक्षरकी वृद्धि होनेपर प्राभृतप्राभृत श्रुतज्ञान होता है । पुनः इसके ऊपर एक अक्षरकी वृ द्धि होने-पर प्राभृतप्राभृतसमास श्रुतज्ञान होता है । इस प्रकार उत्तरोत्तर एक एक अक्षर वृद्धिके क्रमसे एक अक्षरसे न्यून प्राभृत श्रुतज्ञानके प्राप्त होने तक प्राभृतप्राभृतसमास श्रुतज्ञान बढ़ता रहता है । पुनः

एगक्खरेणूणपाहुडसुदणाणे त्ति । पुणो एदस्सुवरि एगक्खरे वड्ढिदे लोगबिंदुसारचरिमपाहुडसुदणाणं[1] होदि । पुणो एदस्सुवरि एगक्खरे वड्ढिदे पाहुडसमाससुदणाणं होदि । एवमेगेगक्खरुत्तरवड्ढिकमेण पाहुडसमाससुदणाणं वड्ढमाणं गच्छदि जाव एगक्खरेणूणलोगबिंदुसारदसमवत्थुसुदणाणे त्ति । पुणो एदस्सुवरि एगक्खरे वड्ढिदे वत्थुसुदणाणं होदि । पुणो एदस्सुवरि एगक्खरे वड्ढिदे वत्थुसमाससुदणाणं होदि । एवमेगेगक्खरुत्तरवड्ढिकमेण वत्थुसमाससुदणाणं गच्छदि जाव एगक्खरेणूणलोगबिंदुसारसुदणाणे त्ति । पुणो एदस्सुवरि एगक्खरे वड्ढिदे लोगबिंदुसारसुदणाणं होदि[2] । पुणो लोगबिंदुसारसुदणाणस्सुवरि एगक्खरे वड्ढिदे पुव्वसमाससुदणाणं होदि । एवमेगेगक्खरुत्तरवड्ढिकमेण पुव्वसमाससुदणाणं होदूण गच्छदि जाव सयलसुदणाणपढमक्खरे त्ति । एवं पडिसारिबुद्धिजीवाणं सुदणाणेण परिणमणविहाणं परूविदं ।

संपहि सुहुमणिगोदलद्धिअपज्जत्तसव्वजहण्णलद्धिअक्खरस्सुवरि एगे पक्खेवे[3] वड्ढिदे

इसके ऊपर एक अक्षरकी वृद्धि होनेपर लोकविन्दुसारका अन्तिम प्राभृत श्रुतज्ञान होता है । पुनः इसके ऊपर एक अक्षरकी वृद्धि होनेपर प्राभृतसमास श्रुतज्ञान होता है । इस प्रकार उत्तरोत्तर एक एक अक्षर वृद्धि होनेके क्रमसे एक अक्षरसे न्यून लोकविन्दुसारके दसवें वस्तु श्रुतज्ञानके प्राप्त होने तक प्राभृतसमास श्रुतज्ञान बढ़ता रहता है । पुनः इसके ऊपर एक अक्षरकी वृद्धि होनेपर वस्तु श्रुतज्ञान होता है । पुनः इसके ऊपर एक अक्षरकी वृद्धि होनेपर वस्तुसमास श्रुतज्ञान होता है । इस प्रकार उत्तरोत्तर एक एक अक्षर वृद्धि होनेके क्रमसे एक अक्षरसे न्यून लोकविन्दुसार श्रुतज्ञानके प्राप्त होने तक वस्तुसमास श्रुतज्ञान बढ़ता रहता है । पुनः इसके ऊपर एक अक्षरकी वृद्धि होनेपर लोकबिन्दुसार श्रुतज्ञान होता है । पुनः लोकबिन्दुसार श्रुतज्ञानके ऊपर एक अक्षरकी वृद्धि होनेपर पूर्वसमास श्रुतज्ञान होता है । इस प्रकार उत्तरोत्तर एक एक अक्षर वृद्धि होनेके क्रमसे सकल श्रुतज्ञानके प्रथम अक्षरके प्राप्त होने तक पूर्वसमास श्रुतज्ञान बढ़ता रहता है । इस प्रकार प्रतिसारी बुद्धिवाले जीवोंके श्रुतज्ञानरूपसे परिणमन करनेकी विधि कही ।

विशेषार्थ—यहांपर सूक्ष्म निगोद लब्ध्यपर्याप्तकके जघन्य ज्ञानसे आगे श्रुतज्ञानकी वृद्धि किस क्रमसे होती है, इसका विवेचन दो प्रकारसे किया है । कितने ही जीव ऐसे होते हैं जिनके पहले उत्पादपूर्वका ज्ञान होता है और आगे वह आनुपूर्वीको लिए हुए बढ़ता रहता है । और कितने ही जीव ऐसे होते हैं जिनके पहले अन्तिम पूर्व लोकविन्दुसारका ज्ञान होता है और आगे वह प्रथम उत्पादपूर्वके ज्ञानके प्राप्त होने तक बढ़ता रहता है । इनमेंसे पहले प्रकारके जीव अनुसारी बुद्धिवाले कहे गये हैं और दूसरे प्रकारके जीव प्रतिसारी बुद्धिवाले कहे गये हैं । इस प्रकार श्रुतज्ञानके क्षयोपशमकी अपेक्षा जो वीस भेद किये हैं उनका विस्तारसे विचार किया गया है ।

सूक्ष्म निगोद लब्ध्यपर्याप्तकके सबसे जघन्य लब्ध्यक्षर श्रुतज्ञानके ऊपर एक प्रक्षेपकी वृद्धि

१ ताप्रतौ 'वड्ढिदे पाहुडसुदणाणं होदि' इति पाठः (काप्रतौ त्रुटितोऽत्र पाठः) । २ ताप्रतौ 'लोगबिंदुसारसुदणाणे त्ति' इति पाठः । ३ अ-का-ताप्रतिषु 'एगेगपक्खेवे' इति पाठः ।

पज्जयसुदणाणं होदि । तं च एयवियप्पं । पज्जयस्सुवरि एगपक्खेवे वड्ढिदे पज्जयसमाससुदणाणं होदि । तं च असंखेज्जलोगमेत्तछट्ठाणपमाणं होदि । पज्जयसमासचरिमवियप्पस्सुवरि एगपक्खेवे वड्ढिदे अक्खरसुदणाणं होदि । तं पि एयवियप्पं । अक्खरसमाससुदणाणं संखेज्ज-वियप्पं । कुदो ? दुरूवूणमज्झिमपदक्खरपमाणत्तादो[1] । पदसुदणाणमेयवियप्पं, चरिमक्खर-समासणाणस्सुवरि एगक्खरे पविट्ठे[2] तदुप्पत्तीदो । पदसमाससुदणाणं संखेज्जवियप्पं, सरूव-पदक्खरूणसंघादक्खरपमाणत्तादो । संघादसुदणाणमेयवियप्पं । संघादसमाससुदणाणं संखेज्ज-वियप्पं । कुदो ? एगक्खराहियसंघादक्खरपरिहीणपडिवत्तिअक्खरपमाणत्तादो । पडिवत्ति-सुदणाणमेयवियप्पं, अंतिमसंघादसमाससुदणाणस्सुवरि एक्कम्हि चेव अक्खरे पविट्ठे तदु-प्पत्तीदो । पडिवत्तिसमाससुदणाणं संखेज्जवियप्पं, एगक्खराहियपडिवत्तिअक्खरेहि परिहीण-अणियोगद्दारसुदणाणक्खरपमाणत्तादो । अणियोगद्दारसुदणाणमेयवियप्पं, अंतिमपडिवत्ति-समाससुदणाणम्मि एक्कम्हि चेव अक्खरे पविट्ठे तदुप्पत्तीदो । अणियोगद्दारसमाससुदणाणं संखेज्जवियप्पं, रूवाहियँ[3]अणियोगद्दारक्खरेहि परिहीणपाहुडपाहुडसुदणाणक्खरपमाणत्तादो । पाहुडपाहुडसुदणाणमेयवियप्पं, उक्कस्सअणियोगद्दारसमाससुदणाणम्मि एगक्खरे पविट्ठे तदु-

होनेपर पर्याय श्रुतज्ञान होता है । वह एक प्रकारका है । पर्याय श्रुतज्ञानके ऊपर एक प्रक्षेपकी वृद्धि होनेपर पर्यायसमास श्रुतज्ञान होता है । वह असंख्यात लोकमात्र छह स्थानप्रमाण है । पर्यायसमासके अन्तिम विकल्पके ऊपर एक प्रक्षेपकी वृद्धि होनेपर अक्षर श्रुतज्ञान होता है । वह भी एक प्रकारका है । अक्षरसमास श्रुतज्ञान संख्यात प्रकारका है, क्योंकि, वह दो अक्षर कम मध्यम पदके अक्षरप्रमाण है । पद श्रुतज्ञान एक प्रकारका है, क्योंकि, अन्तिम अक्षरसमास श्रुतज्ञानके ऊपर एक अक्षरकी वृद्धि होनेपर इस ज्ञानकी उत्पत्ति होती है । पदसमास श्रुतज्ञान संख्यात प्रकारका है, क्योंकि, यह संघात श्रुतज्ञानके अक्षरोंमेंसे एक अधिक पद श्रुतज्ञानके अक्षरोंको कम करनेपर जितना प्रमाण शेष रहे उतना है । संघात श्रुतज्ञान एक प्रकारका है । संघातसमास श्रुतज्ञान संख्यात प्रकारका है, क्योंकि, यह प्रतिपत्ति श्रुतज्ञानके अक्षरोंमेंसे एक अक्षर अधिक संघात श्रुतज्ञानके अक्षरोंको कम करनेपर जितना प्रमाण शेष रहे उतना है । प्रतिपत्ति श्रुतज्ञान एक प्रकारका है, क्योंकि, अन्तिम संघातसमास श्रुतज्ञानके ऊपर एक ही अक्षरके प्रविष्ट होनेपर प्रतिपत्ति श्रुतज्ञानकी उत्पत्ति होती है । प्रतिपत्तिसमास श्रुतज्ञान संख्यात प्रकारका है, क्योंकि, यह अनुयोगद्वार श्रुतज्ञानके अक्षरोंमेंसे एक अक्षर अधिक प्रतिपत्ति श्रुतज्ञानके अक्षरोंको कम करनेपर जो शेष रहे तत्प्रमाण है । अनुयोगद्वार श्रुतज्ञान एक प्रकारका है, क्योंकि, अन्तिम प्रतिपत्तिसमास श्रुतज्ञानमें एक ही अक्षरके प्रविष्ट होनेपर इस ज्ञानकी उत्पत्ति होती है । अनुयोगद्वारसमास श्रुतज्ञान संख्यात प्रकारका है, क्योंकि, यह प्राभृतप्राभृत श्रुतज्ञानके अक्षरोंमेंसे एक अक्षरसे अधिक अनुयोगद्वारके अक्षरोंको कम करनेपर जितने अक्षर शेष रहें तत्प्रमाण है । प्राभृतप्राभृत श्रुतज्ञान एक प्रकारका है, क्योंकि, उत्कृष्ट अनुयोगद्वारसमास श्रुतज्ञानमें एक अक्षरके प्रविष्ट होनेपर इस

१ अप्रतौ ' कुदो रूवेण ' इति पाठः । २ ताप्रतौ ' अक्खरपविट्ठे ' इति पाठः । ३ अ-काप्रत्योः ' परूवाहिय-', ताप्रतौ ' [प] रूवाहिय-' इति पाठः ।

प्पत्तीदो। पाहुडपाहुडसमाससुदणाणं संखेज्जवियप्पं, एगक्खराहियपाहुडपाहुडक्खरेहि परिहीणपाहुडक्खरपमाणत्तादो। पाहुडसुदणाणमेयवियप्पं, उक्कस्सपाहुडपाहुडसमाससुदणाणम्मि एगक्खरे पक्खित्ते तदुप्पत्तीदो। पाहुडसमाससुदणाणं संखेज्जवियप्पं, एगक्खराहियपाहुडक्खरपरिहीणवत्थुअक्खरपमाणत्तादो। वत्थुसुदणाणमेयवियप्पं, उक्कस्सपाहुडसमाससुदणाणम्मि एगक्खरे पक्खित्ते तदुप्पत्तीदो। वत्थुसमाससुदणाणं संखेज्जवियप्पं, एगक्खराहियवत्थुअक्खरेहि परिहीणपुव्वक्खरपमाणत्तादो। पुव्वसुदणाणमेयवियप्पं, उक्कस्सवत्थुसमाससुदणाणम्मि एगक्खरे पविट्ठे[1] तदुप्पत्तीदो। पुव्वसमाससुदणाणं संखेज्जवियप्पं, एगक्खराहियपुव्वक्खरेहि परिहीणपुव्वगदक्खरपमाणत्तादो। अधवा, सव्वे समासा असंखेज्जवियप्पा।

ज्ञानकी उत्पत्ति होती है। प्राभृतप्राभृतसमास श्रुतज्ञान संख्यात प्रकारका है, क्योंकि, यहप्रा भृतमें जितने अक्षर होते हैं उनमेंसे एक अक्षरसे अधिक प्राभृतप्राभृत श्रुतज्ञानके अक्षरोंको कम करनेपर जितने अक्षर शेष रहें तत्प्रमाण है। प्राभृत श्रुतज्ञान एक प्रकारका है, क्योंकि, उत्कृष्ट प्राभृतप्राभृतसमास श्रुतज्ञानमें एक अक्षरकी वृद्धि होनेपर इसकी उत्पत्ति होती है। प्राभृतसमास श्रुतज्ञान संख्यात प्रकारका है, क्योंकि, यह वस्तु श्रुतज्ञानके अक्षरोंमेंसे एक अक्षरसे अधिक प्राभृत श्रुतज्ञानके अक्षरोंको कम करनेपर जितने अक्षर शेप रहें तत्प्रमाण होता है। वस्तु श्रुतज्ञान एक प्रकारका है, क्योंकि, उत्कृष्ट प्राभृतसमास श्रुतज्ञानमें एक अक्षरके मिलानेपर इस ज्ञानकी उत्पत्ति होती है। वस्तुसमास श्रुतज्ञान संख्यात प्रकारका है, क्योंकि, यह पूर्व श्रुतज्ञानके जितने अक्षर होते हैं उनमेंसे एक अक्षर अधिक वस्तुके अक्षरोंको कम करनेपर जितने अक्षर शेप रहते हैं तत्प्रमाण होता है। पूर्व श्रुतज्ञान एक प्रकारका है, क्योंकि, उत्कृष्ट वस्तुसमास श्रुतज्ञानमें एक अक्षरके मिलानेपर इस ज्ञानकी उत्पत्ति होती है। पूर्वसमास श्रुतज्ञान संख्यात प्रकारका है, क्योंकि, यह पूर्वगतके जितने अक्षर होते हैं उनमेंसे एक अधिक पूर्वके अक्षरोंके कम करनेपर जितने अक्षर शेष रहें तत्प्रमाण होता है। अथवा सब समासज्ञान असंख्यात प्रकारके होते हैं।

विशेषार्थ—यहां श्रुतज्ञानके वीस भेदोंमेंसे कौन श्रुतज्ञान कितने प्रकारका है, यह वतलाया है। पर्याय, अक्षर, पद, संघात, प्रतिपत्ति, अनुयोगद्वार, प्राभृतप्राभृत, प्राभृत, वस्तु और पूर्व ये श्रुतज्ञान एक एक प्रकारके हैं; यह स्पष्ट ही है। अब रहे इनके समास श्रुतज्ञान सो पर्यायसमास श्रुतज्ञान असंख्यात प्रकारका है, इसमें कोई मतभेद नहीं है। शेप अक्षरसमास आदि श्रुतज्ञानोंमें यह अवश्य ही विचार उठता है कि उनमेंसे प्रत्येकके कितने विकल्प होते हैं। यहां प्रत्येकके संख्यात विकल्प वतलाये हैं। यह कथन अक्षरज्ञानके ऊपर अक्षरज्ञानकी ही वृद्धि होती है, इस अभिप्रायको ध्यानमें रखकर किया गया है। किन्तु जिनके मतसे अक्षरज्ञानके वाद भी छह वृद्धियां स्वीकार की गईं हैं उनके मतसे सब समासज्ञान असंख्यात प्रकारके प्राप्त होते हैं। यही कारण है कि यहां पहले अक्षरसमास आदि सब समास ज्ञानोंके संख्यात भेद वतला कर वादमें उनके असंख्यात प्रकारके होनेकी सूचना की है।

१ आ-का-ताप्रतिषु 'एगक्खरे पक्खित्ते पविट्ठे' इति पाठः।

अंगबाहिरचोद्दसपइण्णयज्झायी[1] आयारादिएक्कारसंगाइं परियम्म-सुत्त-पढमाणियोग-चूलियाओ च कत्थंतब्भावं[2] गच्छंति ? ण अणियोगद्दारे तस्स समासे वा, तस्स पाहुडपाहुड-पडिबद्धत्तादो । ण पाहुडपाहुडे तस्समासे वा, तस्स पुव्वगयअवयवत्तादो । ण च परियम्म-सुत्त-पढमाणियोग-चूलियाओ एक्कारस अंगाइं वा पुव्वगयावयवा । तदो ण ते कत्थ वि लयं[3] गच्छंति ? ण एस दोसो, अणियोगद्दार-तस्समासाणं च अंतब्भावादो । ण च अणियोगद्दार-तस्समासेहि पाहुडपाहुडावयवेहि चेव होदव्वमिदि णियमो अत्थि, विप्पडिसेहाभावादो । अधवा, पडिवत्तिसमासे एदेसिमंतब्भावो वत्तव्वो । पच्छाणुपुव्वीए पुण विवक्खियाए पुव्वसमासे अंतब्भावं गच्छंति त्ति वत्तव्वं ।

शंका— अंगबाह्य चौदह प्रकीर्णकाध्याय, आचार आदि ग्यारह अंग, परिकर्म, सूत्र, प्रथमानुयोग और चूलिका; इनका किस श्रुतज्ञानमें अन्तर्भाव होता है ? अनुयोगद्वार या अनुयोगद्वारसमासमें तो इनका अन्तर्भाव हो नहीं सकता, क्योंकि, ये दोनों प्राभृतप्राभृत श्रुतज्ञानसे प्रतिबद्ध हैं । प्राभृतप्राभृत या प्राभृतप्राभृतसमासमें भी इनका अन्तर्भाव नहीं हो सकता, क्योंकि, ये पूर्वगतके अवयव हैं । परन्तु परिकर्म, सूत्र, प्रथमानुयोग, चूलिका और ग्यारह अंग ये पूर्वगतके अवयव नहीं हैं । इसलिये इनका किसी भी श्रुतज्ञानके भेदमें अन्तर्भाव नहीं होता ?

समाधान— यह कोई दोष नहीं है, क्योंकि, अनुयोगद्वार और अनुयोगद्वारसमासमें इनका अन्तर्भाव होता है । अनुयोगद्वार और अनुयोगद्वारसमास प्राभृतप्राभृतके अवयव ही होने चाहिये, ऐसा कोई नियम नहीं है; क्योंकि, इसका कोई निषेध नहीं किया है । अथवा, प्रतिपत्तिसमास श्रुतज्ञानमें इनका अन्तर्भाव कहना चाहिये । परन्तु पश्चादानुपूर्वीकी विवक्षा करनेपर इनका पूर्वसमास श्रुतज्ञानमें अन्तर्भाव होता है, यह कहना चाहिये ।

विशेषार्थ— एक ओर समस्त श्रुतज्ञानके ग्यारह अंग, चौदह पूर्व, परिकर्म, सूत्र, प्रथमानुयोग, चूलिका और अंगबाह्य इतने भेद किये हैं और दूसरी ओर यहां श्रुतज्ञानके जो वीस भेद बतलाये हैं वे सब पूर्वगतज्ञानसे प्रतिबद्ध ज्ञात होते हैं, क्योंकि, पूर्वके अधिकारोंको वस्तु, वस्तुके अवान्तर अधिकारोंको प्राभृत, प्राभृतके अवान्तर अधिकारोंको प्राभृतप्राभृत, प्राभृतप्राभृतके अवान्तर अधिकारोंको अनुयोगद्वार और अनुयोगद्वारके अवान्तर अधिकारोंको प्रतिपत्ति कहते हैं । संघात प्रतिपत्तिके और पद संघातके अवान्तर भेद हैं । इसलिये चौदह पूर्वोंके सिवा शेष श्रुतज्ञानका किस भेदमें अन्तर्भाव होता है, यह एक प्रश्न है । प्रकृतमें इसी प्रश्नका उत्तर दो प्रकारसे दिया गया है । पूर्वानुपूर्वीकी अपेक्षा शेष ज्ञानभेदोंका अनुयोगद्वार और अनुयोगद्वार-समास ज्ञानमें या प्रतिपत्तिसमास ज्ञानमें अन्तर्भाव किया है और पश्चादानुपूर्वीकी अपेक्षा इन भेदोंका पूर्वगतमें ही अन्तर्भाव किया है । जहां तक प्रश्नके समाधानकी बात है, इस उत्तरसे समाधान तो हो जाता है, पर यह जिज्ञासा बनी रहती है कि यदि ऐसी बात थी तो पूर्व पूर्व ज्ञानभेदको उत्तर उत्तर ज्ञानभेदका अवान्तर अधिकार नहीं मानना था । किन्तु यहां इस प्रकारकी व्यवस्था न कर सब अनुयोगद्वारोंकी परिसमाप्ति पूर्वसमासमें की गई है । व्याख्यामें तो

१ काप्रतौ 'पइण्णवज्झाया' इति पाठः । २ आ-काप्रत्योः 'कथंतब्भावं', तांप्रतौ 'कथं (त्थं) तब्भावं' इति पाठः । ३ अ-काप्रत्योः 'एयं' इति पाठः ।

तत्थ सुहुमणिगोदलद्धिअपज्जत्तयस्स जं जहण्णं लद्धिअक्खरं तस्स णत्थि आवरणं। तदुवरिमस्स पज्जयसण्णिदस्स णाणस्स जमावरणं तं पज्जयणाणावरणीयं । एदम्हादो पक्खेवुत्तरस्स णाणस्स पज्जयसमाससण्णिदस्स जमावरणं तं पज्जयसमासणाणावरणीयं । एवमणंतभागवड्ढि-असंखेज्जभागवड्ढि- संखेज्जभागवड्ढि-संखेज्जगुणवड्ढि-असंखेज्जगुणवड्ढि-अणंतगुण-वड्ढिकमेण असंखेज्जलोगमेत्तछट्ठाणपमाणाणि पज्जयसमासावरणीयाणि होंति । एदाणि सव्वाणि जादीए एयत्तमुवगमंति त्ति पज्जयसमासावरणीयमेक्कं चेव होदि १ । एवं पुव्विल्लेण सह दोण्णि सुदणाणावरणीयाणि होंति २ । अक्खरसुदणाणस्स जमावरयं कम्मं तमक्खरावरणीयं । एवं तिण्णि आवरणाणि ३ । पुणो एदस्सुवरिमस्स अक्खरस्स जमावरणीय-कम्मं तमक्खरसमासावरणीयं णाम चउत्थमावरणं ४ । अक्खरसमासावरणाणि वत्तिदुवारेण जदि वि संखेज्जाणि तो वि एक्कं चेव आवरणमिदि ताणि गहिदाणि[1], जादिदुवारेण

अंगबाह्यके अक्षरोंको भी पूर्वसमासके भीतर परिगणित कर लिया गया है । इसलिये यह विचारणीय हो जाता है कि यहां ऐसा क्यों किया गया है ? साधारणतया ग्यारह अंग स्वतन्त्र माने जाते हैं और बारहवें दृष्टिवाद अंगके पूर्वगत, परिकर्म, सूत्र, प्रथमानुयोग और चूलिका ये पांच भेद किये जाते हैं । स्वयं वीरसेन स्वामीने अन्यत्र श्रुतका इसी प्रकारसे विभाग किया है । इसलिये, यदि क्षयोपशमकी अपेक्षा किये गये श्रुतज्ञानके भेदोंको पूर्वसमास ज्ञानके भीतर लिया जाता है तो ग्यारह अंग व दृष्टिवादके शेष भेद सब संयोगी अक्षरोंके बाहर पड़ जाते हैं । अंगबाह्यके सम्बन्धमें दो मत मिलते हैं । वीरसेन स्वामीके अभिप्रायानुसार तो इनकी रचना गणधरोंने ही की थी । किन्तु पूज्यपाद स्वामीने अपनी सर्वार्थसिद्धि टीकामें अंगबाह्यकी रचना अन्य आचार्योंके द्वारा की गई बतलाई है । थोड़ी देरके लिये हमें इस मतभेदको भुलाकर मूल प्रश्नपर आना है, क्योंकि, अंगबाह्यके विषयमें तो यह समाधान हो सकता है कि सामायिक आदि मूल अंगबाह्योंकी रचना गणधरोंने की होगी । प्रश्न यहां श्रुतज्ञानके सब भेदोंके विचारका है । इस व्यवस्थाको देखते हुए हमारा तो ऐसा ख्याल है कि श्रुतज्ञानके सब भेदोंमें पूर्वगतको मुख्य मानकर यह प्ररूपणा की गई है । परन्तु पूर्वगतको ही मुख्यता क्यों दी गई है, यह फिर भी ध्यान देने योग्य है ।

उनमेंसे सूक्ष्म निगोद लब्ध्यपर्याप्तकका जो जघन्य लब्ध्यक्षर ज्ञान है उसका आवरण नहीं है । उससे आगेके पर्याय संज्ञावाले ज्ञानका जो आवरण है वह पर्यायज्ञानावरणीय है । इससे एक प्रक्षेप अधिक आगेके पर्यायसमास ज्ञानका जो आवरण है वह पर्यायसमासज्ञानावरणीय है । इस प्रकार अनन्तभागवृद्धि, असंख्यातभागवृद्धि, संख्यातभागवृद्धि, संख्यातगुणवृद्धि, असंख्यातगुणवृद्धि और अनन्तगुणवृद्धिके क्रमसे असंख्यात लोकमात्र छह स्थान प्रमाण पर्यायसमासज्ञानावरणीय होते हैं । ये सब जातिकी अपेक्षा एक हैं, इसलिये पर्यायसमासज्ञानावरणीय कर्म एक ही है १ । इस प्रकार पूर्वोक्त आवरणके साथ दो श्रुतज्ञानावरण होते हैं २ । अक्षर श्रुतज्ञानका जो आवारक कर्म है वह अक्षरावरणीय है । इस प्रकार तीन आवरण कर्म होते हैं ३ । पुनः इससे आगेके अक्षरका जो आवरणीय कर्म है वह अक्षरसमासावरणीय नामका चौथा आवरण कर्म है ४ । अक्षरसमासावरणीय कर्म यद्यपि व्यक्तिकी अपेक्षा संख्यात हैं तो भी एक ही आवरणकर्म है, ऐसा समझकर वे ग्रहण

---

१ ताप्रतौ 'ताणि [ण] गहिदाणि' इति पाठः ।

तेसिमेयत्तुवलंभादो। पदसुदणाणस्स जमावरणं तं पदसुदणाणावरणीयं णाम पंचममावरणं ५। पदसमासणाणस्स जमावारयं कम्मं तं पदसमासणाणावरणीयं छट्ठं ६। जदि वि एदं वत्तिदुवारेण संखेज्जवियप्पं तो वि तण्ण गहिदं, पज्जएहि अत्थित्ताभावादो। एक्कं चेवे त्ति गहिदं, दव्वट्ठियत्तादो। संघादणाणस्स जमावरयं कम्मं तं संघादणाणावरणीयं सत्तमं ७। संघादसमासणाणस्स जमावारयं कम्मं तं संघादसमासावरणीयमट्ठमं ८। जदि वि एदं संखेज्जवियप्पं तो वि जादिदुवारेण एक्कं चेवे त्ति गहिदं। पडिवत्तिसुदणाणस्स जमावारयं कम्मं तं पडिवत्तिआवरणीयं[1] णवमं ९। पडिवत्तिसमाससुदणाणस्स जमावारयं कम्मं तं पडिवत्तिसमासावरणीयं दसमं १०। अणियोगसुदणाणस्स जमावारयं कम्मं तमणियोगावरणीयमेक्कारसमं ११। अणियोगसमाससुदणाणस्स संखेज्जवियप्पस्स जादिदुवारेण एयत्तमावण्णस्स जमावरणं तमणियोगसमासावरणीयं बारसमं १२। पाहुडपाहुडसुदणाणस्स जमावरणं[2] तं पाहुडपाहुडणाणावरणीयं तेरसमं १३। पाहुडपाहुडसमाससुदणाणस्स वत्तिदुवारेण संखेज्जवियप्पेसु संतेसु वि जादिदुवारेण एयत्तमावण्णस्स जमावरयं कम्मं तं पाहुडपाहुडसमासावरणीयं चोद्दसमं १४। पाहुडसुदणाणस्स जमावारयं कम्मं तं पाहुडावरणीयं पण्णरसं १५। पाहुडसमाससुदणाणस्स वत्तिदुवारेण

किये गये हैं; क्योंकि, जातिकी अपेक्षा उनमें एकत्व उपलब्ध होता है। पद श्रुतज्ञानका जो आवरण कर्म है वह पदश्रुतज्ञानावरणीय नामका पांचवां आवरण है ५। पदसमास ज्ञानका जो आवारक कर्म है वह पदसमासज्ञानावरणीय नामका छठा कर्म है ६। यद्यपि यह व्यक्तिकी अपेक्षा संख्यात प्रकारका है तो भी उन भेदोंका ग्रहण नहीं किया है; क्योंकि, यहां पर्यायोंके ग्रहणकी विवक्षा नहीं है। एक ही है, ऐसा मानकर उसका ग्रहण किया है, क्योंकि, यहां द्रव्यार्थिक नयकी मुख्यता है। संघातज्ञानका जो आवारक कर्म है वह संघातज्ञानावरणीय नामका सातवां आवरण है ७। संघातसमास ज्ञानका जो आवारक कर्म है वह संघातसमासज्ञानावरणीय नामका आठवां आवरण है ८। यद्यपि यह संख्यात प्रकारका है तो भी जातिकी अपेक्षा एक ही है, ऐसा यहां ग्रहण किया है। प्रतिपत्ति श्रुतज्ञानका जो आवारक कर्म है वह प्रतिपत्तिआवरणीय नामका नौवा आवरण है ९। प्रतिपत्तिसमास श्रुतज्ञानका जो आवारक कर्म है वह प्रतिपत्तिसमासावरणीय नामका दसवां आवरण है १०। अनुयोग श्रुतज्ञानका जो आवारक कर्म है वह अनुयोगावरणीय नामका ग्यारहवां आवरण है ११। जो व्यक्तिशः संख्यात प्रकारका है, किन्तु जातिकी अपेक्षा एक प्रकारका है, ऐसे अनुयोगसमास श्रुतज्ञानका जो आवरण कर्म है वह अनुयोगसमासावरणीय नामका बाहरवां आवरण है १२। प्राभृतप्राभृत श्रुतज्ञानका जो आवारक कर्म है वह प्राभृतप्राभृतावरणीय नामका तेरहवां आवरण है १३। व्यक्तिकी अपेक्षा संख्यात भेदोंके होनेपर भी जो जातिकी अपेक्षा एक प्रकारका है ऐसे प्राभृतप्राभृतसमास श्रुतज्ञानका जो आवारक कर्म है वह प्राभृतप्राभृतसमासावरणीय नामका चौदहवां आवरण कर्म है १४। प्राभृत श्रुतज्ञानका जो आवारक कर्म है वह प्राभृतावरणीय नामका पन्द्रहवां आवरण कर्म है १५। व्यक्तिकी अपेक्षा संख्यात प्रकारका

---

१ ताम्रतौ 'आवरणं' इति पाठः। २ अ-आ-काप्रतिषु 'जमावारयं' इति पाठः।

संखेज्जत्ते संते वि जादिदुवारेण एयत्तमावण्णस्स जमावारयं कम्मं तं पाहुडसमासावरणीयं सोलसमं १६। वत्थुसुदणाणस्स जमावारयं कम्मं तं वत्थुआवरणीयं सत्तारसमं १७। वत्थुसमाससुदणाणस्स वत्तिदुवारेण संखेज्जवियप्पे संते वि जादिदुवारेण एयत्तमावण्णस्स जमावारयं कम्मं तं वत्थुसमासावरणीयमट्ठारसमं १८। पुव्वसुदणाणस्स जमावारयं कम्मं तं पुव्वावरणीयमेक्कोणवीसदिमं १९। पुव्वसमाससुदणाणस्स वत्तिदुवारेण संखेज्जवियप्पे संते वि जादीए एयत्तमावण्णस्स जमावारयं कम्मं तं वीसदिमं पुव्वसमासावरणीयं २०। एवमणुलोमेण सुदणाणस्स वीसदिविधा आवरणपरूवणा परूविदा। एवं विलोमेण वीसदिविधा सुदणाणावरणीयपरूवणा परूवेदव्वा, विसेसाभावादो। जेत्तिया सुदणाणवियप्पा, मदिणाणवियप्पा वि तत्तिया चेव, सुदणाणस्स मदिणाणपुव्वत्तादो।

तस्सेव सुदणाणावरणीयस्स अण्णं परूवणं कस्सामो ॥ ४९ ॥

सुदणाणस्स एयट्ठपरूवणा भणिस्समाणा[1] कधं सुदणाणावरणीयस्स परूवणा होज्ज? ण एस दोसो, आवरणिज्जसरूवपरूवणाए तदावरणसरूवावगमाविणाभावित्तादो कम्मकारए आवरणिज्जसद्दणिप्पत्तीदो वा।

होते हुए भी जो जातिकी अपेक्षा एक प्रकारका है ऐसे प्राभृतसमास श्रुतज्ञानका जो आवारक कर्म है वह प्राभृतसमासावरणीय नामका सोलहवां आवरण कर्म है। १६। वस्तु श्रुतज्ञानका जो आवारक कर्म है वह वस्तुश्रुतावरणीय नामका सत्रहवां आवरण कर्म है १७। व्यक्तिकी अपेक्षा संख्यात प्रकारका होनेपर भी जातिकी अपेक्षा जो एक प्रकारका है ऐसे वस्तुसमास श्रुतज्ञानका जो आवारक कर्म है वह वस्तुसमासावरणीय नामका अठारहवां आवरण कर्म है १८। पूर्व श्रुतज्ञानका जो आवारक कर्म है वह पूर्वश्रुतावरणीय नामका उन्नीसवां आवरण कर्म है १९। व्यक्तिकी अपेक्षा संख्यात प्रकारका होते हुए भी जातिकी अपेक्षा जो एक प्रकारका है ऐसे पूर्वसमास श्रुतज्ञानका जो आवारक कर्म है वह पूर्वसमासावरणीय नामका वीसवां आवरण कर्म है २०। इस प्रकार अनुलोमक्रमसे श्रुतज्ञानके वीस प्रकारके आवरणका कथन किया। इसी प्रकार विलोमक्रमसे वीस प्रकारके श्रुतज्ञानावरणका कथन करना चाहिये, क्योंकि, उससे इसमें कोई विशेषता नहीं है। जितने श्रुतज्ञानके भेद हैं मतिज्ञानके भेद भी उतने ही हैं, क्योंकि, श्रुतज्ञान मतिज्ञानपूर्वक होता है।

उसी श्रुतज्ञानावरणीय कर्मकी अन्य प्ररूपणा करते हैं ॥ ४९ ॥

शंका— श्रुतज्ञानके पर्याय नामोंकी प्ररूपणा जो आगे की जानेवाली है वह श्रुतज्ञानावरणीय कर्मकी प्ररूपणा कैसे हो सकती है?

समाधान— यह कोई दोष नहीं है, क्योंकि आवरणीयके स्वरूपका कथन तदावरणके स्वरूपके ज्ञानका अविनाभावी होता है। अथवा कर्म कारकमें आवरणीय शब्दकी निष्पत्ति हुई है, इसलिये कोई दोष नहीं है।

१ अ-आप्रत्योः 'भविस्समाणा' इति पाठः।

पावयणं पवयणीयं[1] पवयणट्ठो गदीसु मग्गणदा आदा परंपरलद्धी अणुत्तरं पवयणं पवयणी पवयणद्धा पवयणसण्णियासो णयविधी णयंतरविधी भंगविधी भंगविधिविसेसो पुच्छाविधी पुच्छाविधिविसेसो तच्चं भूदं भव्वं भवियं[2] अवितथं अविहदं वेदं णायं सुद्धं सम्माइट्ठी हेदुवादो णयवादो पवरवादो मग्गवादो सुदवादो परवादो लोइयवादो लोगुत्तरीयवादो अग्गं मग्गं जहाणुमग्गं पुव्वं जहाणुपुव्वं पुव्वादिपुव्वं चेदि ॥ ५० ॥

एदे सुदणाणस्स इगिदालीसं परियायसद्दा । संपहि एदेसिं पुध पुध परूवणं कस्सामो । तं जहा– उच्यते भण्यते कथ्यते इति वचनं शब्दकलापः, प्रकृष्टं वचनं प्रवचनम् । कुतः प्रकृष्टता ? पूर्वापरविरोधादिदोषाभावात् निरवद्यार्थप्रतिपादनात् अविसंवादात् प्रकृष्टत्वम् । प्रवचने प्रकृष्टशब्दकलापे भवं ज्ञानं द्रव्यश्रुतं वा प्रावचनं[4] नाम । कथं द्रव्यश्रुतस्य वचनात्मकस्य वचनादुत्पत्तिः ? न एष दोषः, वचनरचनायास्तेभ्यः कथंचिद् व्यतिरिक्तायाः श्रुत-

---

प्रावचन, प्रवचनीय, प्रवचनार्थ, गतियोंमें मार्गणता, आत्मा, परम्परा लब्धि, अनुत्तर, प्रवचन, प्रवचनी, प्रवचनाद्धा, प्रवचनसंनिकर्ष, नयविधि, नयान्तरविधि, भंगविधि, भंगविधिविशेष, पृच्छाविधि, पृच्छाविधिविशेष, तत्त्व, भूत, भव्य, भविष्यत्, अवितथ, अविहत, वेद, न्याय्य, शुद्ध, सम्यग्दृष्टि, हेतुवाद, नयवाद, प्रवरवाद, मार्गवाद, श्रुतवाद, परवाद, लौकिकवाद, लोकोत्तरीयवाद, अग्र्य, मार्ग, यथानुमार्ग, पूर्व, यथानुपूर्व और पूर्वातिपूर्व; ये श्रुतज्ञानके पर्याय नाम हैं ॥ ५० ॥

ये श्रुतज्ञानके इकतालीस पर्याय शब्द हैं । अब इनका पृथक् पृथक् कथन करते हैं । यथा—'वच्' धातुसे वचन शब्द बना है । 'उच्यते भण्यते कथ्यते इति वचनम्' इस व्युत्पत्तिके अनुसार जो कहा जाता है वह वचन है । इस प्रकार वचन पदसे शब्दोंका समुदाय लिया जाता है । प्रकृष्ट वचनको प्रवचन कहते हैं ।

शंका—प्रकृष्टता कैसे है ?

समाधान—पूर्वापरविरोधादि दोषसे रहित होनेके कारण, निरवद्य अर्थका कथन करनेके कारण, और विसंवादरहित होनेके कारण प्रकृष्टता है ।

प्रवचन अर्थात् प्रकृष्ट शब्दकलापमें होनेवाला ज्ञान या द्रव्यश्रुत प्रावचन कहलाता है ।

शंका—जब कि द्रव्यश्रुत वचनात्मक है तब उसकी वचनसे ही उत्पत्ति कैसे हो सकती है ?

समाधान—यह कोई दोष नहीं है, क्योंकि श्रुत संज्ञाको प्राप्त हुई वचनरचना चूंकि वचनोंसे कथंचित् भिन्न है, अतएव उनसे उसकी उत्पत्ति माननेमें कोई विरोध नहीं आता ।

---

१ काप्रतौ 'पवणीयं' इति पाठः । २ ताप्रतौ 'भूदं भवियं भव्वं' इति पाठः । ३ अ-आ-काप्रतिषु 'णामं' इति पाठः । ४ अ-आ-काप्रतिषु 'ज्ञानं द्रव्यश्रुतं वा प्रवचनं', ताप्रतौ 'ज्ञानं । द्रव्यश्रुतं वा प्रवचनं' इति पाठः ।

व्यपदेशभाजस्तत उत्पत्त्यविरोधात्; प्रवचनमेव प्रावचनमिति व्युत्पत्तिसमाश्रयणाद्वा । एवं पावयणपरूवणा गदा ।

प्रबन्धेन वचनीयं व्याख्येयं प्रतिपादनीयमिति प्रवचनीयम् । किमर्थं सर्वकालं व्याख्यायते ? श्रोतुर्व्याख्यातुश्च असंख्यातगुणश्रेण्या कर्मनिर्जरणहेतुत्वात् । उत्तं च—

सज्झायं कुव्वंतो पंचिंदियसंवुडो तिगुत्तो य ।
होदि य एयग्गमणो विणएण समाहिदो भिक्खू[1] ॥ २१ ॥
जह जह सुदमोगाहिदि अदिसयरसपसरमसुदपुव्वं तु ।
तह तह पल्हादिज्जदि णव-णवसंवेगसद्धाए[2] ॥ २२ ॥
जं अण्णाणी कम्मं खवेइ भवसयसहस्सकोडीहिं ।
तं णाणी तिहि गुत्तो खवेइ अंतोमुहुत्तेण[3] ॥ २३ ॥

एवं पवयणीयपरूवणा गदा[4] ।

द्वादशांगवर्णकलापो वचनम्, अर्यते गम्यते परिच्छिद्यत इति अर्थो नव पदार्थाः ।

अथवा 'प्रवचनमेव प्रावचनम्' ऐसी व्युत्पत्तिका आश्रय करनेसे उक्त दोप नहीं आता ।

इस प्रकार प्रावचनप्ररूपणा समाप्त हुई ।

प्रवन्धपूर्वक जो वचनीय अर्थात् व्याख्येय या प्रतिपादनीय होता है वह प्रवचनीय कहलाता है ।

शंका— इसका सर्व काल किसलिये व्याख्यान करते हैं ?

समाधान— क्योंकि वह व्याख्याता और श्रोताके असंख्यातगुणी श्रेणिरूपसे होनेवाली कर्मनिर्जराका कारण है । कहा भी है—

स्वाध्यायको करनेवाला भिक्षु पांचों इन्द्रियोंके व्यापारसे रहित और तीन गुप्तियोंसे सहित होकर एकाग्रमन होता हुआ विनयसे संयुक्त होता है ॥ २१ ॥

जिसमें अतिशय रसका प्रसार है और जो अश्रुतपूर्व है ऐसे श्रुतका वह जैसे जैसे अवगाहन करता है वैसे ही वैसे अतिशय नवीन धर्मश्रद्धासे संयुक्त होता हुआ परम आनन्दका अनुभव करता है ॥ २२ ॥

अज्ञानी जीव जिस कर्मका लाखों करोड़ों भवोंके द्वारा क्षय करता है उसका ज्ञानी जीव तीन गुप्तियोंसे गुप्त होकर अन्तर्मुहूर्तमें क्षय कर देता है ॥ २३ ॥

इस प्रकार प्रवचनीयप्ररूपणा समाप्त हुई ।

द्वादशांग रूप वर्णोंका समुदाय वचन है, जो 'अर्यते गम्यते परिच्छद्यते' अर्थात् जाना जाता है वह अर्थ है । यहां अर्थ पदसे नौ पदार्थ लिये गये हैं । वचन और अर्थ ये दोनों मिलकर

---

१ अ-आ-काप्रतिषु 'भिक्खो' इति पाठः । भ. आ. १०४. मूला. ५–२१३. २ भ. आ. १०५. तत्र 'सुदमोगाहिदि' इत्येतस्य स्थाने 'सुदमोग्गाहदि'; 'णवणवसंवेगसद्धाए' इत्येतस्य च स्थाने 'नवनवसंवेगसड्ढए' इति पाठः । नवनवसंवेगसड्ढाए प्रत्यग्रतरधर्मश्रद्धया । ननु च संसाराद्भीरुता संवेगः, ततोऽयमर्थः स्यादसंबंधः ? न दोषः, संसारभीरुताहेतुको धर्मपरिणामः आयुधनिपातभीरुताहेतुककवचग्रहणवत् । तेन संवेगशब्दः कार्ये धर्मे वर्तते । विजयोदया. ३ प्र. सा. ३–३८. भ. आ. १०८. ४ अ-काप्रत्योः 'कदा' इति पाठः

वचनं च अर्थश्च वचनार्थौ, प्रकृष्टौ निरवद्यौ वचनार्थौ यस्मिन्नागमे स प्रवचनार्थः। प्रत्यक्षानुमानानुमताविरोधिसप्तभंग्यात्मकसुनयस्वरूपतया निरवद्यं वचनम्। ततो वचननिरवद्यत्वेनैव अर्थस्य निरवद्यत्वं गम्यते इति नार्थोऽर्थग्रहणेन ? न एष दोषः, शब्दानुसारिजनानुग्रहार्थं तत्प्रतिपादनात्। अथवा, प्रकृष्टवचनैरर्य्यते गम्यते परिच्छिद्यत इति प्रवचनार्थो द्वादशांगभावश्रुतम्। सकलसंयोगाक्षरैर्विशिष्टवचनारचितैर्बह्वर्थैर्विशिष्टोपादानकारणैर्विशिष्टाचार्यसहायैः द्वादशांगमुत्पाद्यत इति यावत्। एवं पवयणट्ठपरूवणा गदा।

गतिशब्दो येन देशामर्शकस्तेन गतिग्रहणेन मार्गणास्थानानां चतुर्दशानामपि ग्रहणम्। गतिषु मार्गणस्थानेषु चतुदर्शगुणस्थानोपलक्षिता जीवाः मृग्यन्ते अन्विष्यन्ते अनया इति गतिषु मार्गणता श्रुतिः। एवं गदीसु मग्गणदा त्ति गदा। आत्मा द्वादशांगम्, आत्मपरिणामत्वात्। न च परिणामः परिणामिनो भिन्नः, मृद्द्रव्यात् पृथग्भूतघटादिपर्यायानुपलम्भात्। आगमत्वं प्रत्यविशेषतो द्रव्यश्रुतस्याप्यात्मत्वं प्राप्नोतीति चेत्— न, तस्यानात्म-

---

वचनार्थ कहलाते हैं। जिस आगममें वचन और अर्थ ये दोनों प्रकृष्ट अर्थात् निर्दोष हैं उस आगमकी प्रवचनार्थ संज्ञा है।

शंका— प्रत्यक्ष व अनुमानसे अनुमत और परस्पर विरोधसे रहित सप्तभंगी रूप वचन सुनयस्वरूप होनेसे निर्दोष है। अतएव जब वचनकी निर्दोषतासे ही अर्थकी निर्दोषता जानी जाती है तब फिर अर्थके ग्रहणका कोई प्रयोजन नहीं रहता ?

समाधान— यह कोई दोष नहीं है, क्योंकि शब्दानुसारी जनोंका अनुग्रह करनेके लिये 'अर्थ' पदका कथन किया है।

अथवा, प्रकृष्ट वचनोंके द्वारा जो 'अर्यते गम्यते परिच्छिद्यते' अर्थात् जाना जाता है वह प्रवचनार्थ अर्थात् द्वादशांग भावश्रुत है। जो विशिष्ट रचनासे आरचित हैं, बहुत अर्थवाले हैं, विशिष्ट उपादान कारणोंसे सहित हैं और जिनको हृदयंगम करनेमें विशिष्ट आचार्योंकी सहायता लगती है ऐसे सकल संयोगी अक्षरोंसे द्वादशांग उत्पन्न किया जाता है; यह उक्त कथनका तात्पर्य है। इस प्रकार प्रवचनार्थका कथन किया।

यतः गति शब्द देशामर्शक है, अतः गति शब्दका ग्रहण करनेसे चौदहों मार्गणास्थानोंका ग्रहण होता है। गतियोंमें अर्थात् मार्गणास्थानोंमें चौदह गुणस्थानोंसे उपलक्षित जीव जिसके द्वारा खोजे जाते हैं वह गतियोंमें मार्गणता नामक श्रुति है। इस प्रकार गतियोंमें मार्गणताका कथन किया।

द्वादशांगका नाम आत्मा है, क्योंकि वह आत्माका परिणाम है। और परिणाम परिणामीसे भिन्न होता नहीं है, क्योंकि, मिट्टी द्रव्यसे पृथग्भूत घटादि पर्यायें पाई नहीं जातीं।

शंका— द्रव्यश्रुत और भावश्रुत ये दोनों ही आगमसामान्यकी अपेक्षा समान हैं। अतएव जिस प्रकार भावस्वरूप द्वादशांगको 'आत्मा' माना है उसी प्रकार द्रव्यश्रुतके भी आत्मस्वताका प्रसंग प्राप्त होता है ?

धर्मस्योपचारेण प्राप्तागमसंज्ञस्य परमार्थतः आगमत्वाभावात् । एवमादा त्ति गदं । विकरणा अणिमादयो मुक्तिपर्यंता इष्टवस्तूपलम्भा लब्धयः । लब्धीनां परम्परा यस्मादागमात् प्राप्यते यस्मिन् तत्प्राप्त्युपायो निरूप्यते वा स परम्परालब्धिरागमः । परंपरलद्धि त्ति गदं । उत्तरं प्रतिवचनम्, न विद्यते उत्तरं यस्य श्रुतस्य तदनुत्तरं श्रुतम् । अथवा— अधिकमुत्तरम्, न विद्यते उत्तरोऽन्यसिद्धान्तः अस्मादित्यनुत्तरं श्रुतम् । एवमणुत्तरे त्ति गदं ।

प्रकर्षेण कुतीर्थ्यानालीढतया[1] उच्यन्ते जीवादयः पदार्थाः अनेनेति प्रवचनं वर्णपंक्त्यात्मकं द्वादशांगम् । अथवा, प्रमाणाद्यविरोधेन उच्यतेऽर्थोऽनेन करणभूतेनेति[2] प्रवचनं द्वादशांगं भावश्रुतम्[3] । कथं ज्ञानस्य करणत्वम् ? न, अवबोधमन्तरेणार्थाविसंवादिवचनाप्रवृत्तेः[4] । न च सुत्त-मत्तवचनैर्व्यभिचारः, तत्र अविसंवादनियमाभावात् । पवयणं ति गदं । प्रकृष्टानि वचनान्यस्मिन् सन्तीति प्रवचनी भावागमः । अथवा प्रोच्यते इति प्रवचनोऽर्थः, सोऽत्रास्तीति

समाधान— नहीं, क्योंकि वह द्रव्यश्रुत आत्माका धर्म नहीं है । उसे जो आगम संज्ञा प्राप्त है वह उपचारसे प्राप्त है, वास्तवमें वह आगम नहीं है ।

इस प्रकार आत्माका कथन किया ।

मुक्ति पर्यन्त इष्ट वस्तुको प्राप्त करानेवाली अणिमा आदि विक्रियायें लब्धि कही जाती हैं । इन लब्धियोंकी परम्परा जिस आगमसे प्राप्त होती है या जिसमें उनकी प्राप्तिका उपाय कहा जाता है वह परम्परालब्धि अर्थात् आगम है । इस प्रकार परम्परालब्धिका कथन किया । उत्तर प्रतिवचनका दूसरा नाम है, जिस श्रुतका उत्तर नहीं है वह श्रुत अनुत्तर कहलाता है । अथवा उत्तर शब्दका अर्थ अधिक है, इससे अधिक चूंकि अन्य कोई भी सिद्धान्त नहीं पाया जाता, इसीलिये इस श्रुतका नाम अनुत्तर है । इस प्रकार अनुत्तर पदका कथन किया ।

यह प्रकर्षसे अर्थात् कुतीर्थ्योंके द्वारा नहीं स्पर्श किये जाने स्वरूपसे जीवादि पदार्थोंका निरूपण करता है, इसलिये वर्ण-पंक्त्यात्मक द्वादशांगको प्रवचन कहते हैं । अथवा करणभूत इस ज्ञानके द्वारा प्रमाण आदिके अविरोधरूपसे जीवादि अर्थ कहे जाते हैं, इसलिये द्वादशांग भावश्रुतको प्रवचन कहते हैं ।

शंका— ज्ञानको करणपना कैसे प्राप्त है ?

समाधान— नहीं, क्योंकि ज्ञानके विना अर्थमें अविसंवादी वचनकी प्रवृत्ति नहीं हो सकती । इस हेतुका सुप्त और मत्तके वचनोंके साथ व्यभिचार होगा, यह कहना भी ठीक नहीं है; क्योंकि, उनके अविसंवादी होनेका कोई नियम नहीं है । इस प्रकार प्रवचनका कथन किया ।

जिसमें प्रकृष्ट वचन होते हैं वह प्रवचनी है, इस व्युत्पत्तिके अनुसार भावागमका नाम प्रवचनी है । अथवा जो कहा जाता है वह प्रवचन है, इस व्युत्पत्तिके अनुसार प्रवचन अर्थको कहते हैं । वह इसमें है इसलिये वर्णोपादानकारणक द्वादशांग ग्रन्थका नाम प्रवचनी है । इस

---

१ काप्रतौ 'कुतिर्थ्यनालीढतया' इति पाठः । २ ताप्रतौ 'कारणभूतेनेति' इति पाठः । ३ का-ताप्रत्योः 'प्रवचनं द्वादशांगं, द्वादशांगभावश्रुतं' इति पाठः । ४ काप्रतौ 'वचनप्रवृत्तेः', ताप्रतौ 'वचन (ना) प्रवृत्तेः' इति पाठः ।

प्रवचनी द्वादशांगग्रन्थः वर्णोपादानकारणः। एवं पवयणि त्ति गदं।

अद्धा कालः, प्रकृष्टानां शोभनानां वचनानामद्धा कालः यस्यां श्रुतौ सा पवयणद्धा श्रुतज्ञानम्। किमर्थं श्रुतज्ञानेन परिणतावस्थायां शोभनवचनानामेव प्रवृत्तिः? नैष दोषः, अशोभनवचनहेतुरागादित्रितयस्य तत्रासत्त्वात्। एवं पवयणद्धा त्ति गदा। उच्यन्ते इति वचनानि जीवाद्यर्थाः, प्रकर्षेण वचनानि सन्निकृष्यन्तेऽस्मिन्निति प्रवचनसन्निकर्षो द्वादशांग-श्रुतज्ञानम्। कः सन्निकर्षः? एकस्मिन् वस्तुन्येकस्मिन् धर्मे निरुद्धे शेषधर्माणां तत्र सत्त्वासत्त्वविचारः सत्स्वप्येकस्मिन्नुत्कर्षमुपगते शेषाणामुत्कर्षानुत्कर्षविचारश्च सन्निकर्षः। अथवा, प्रकर्षेण वचनानि जीवाद्यर्थाः संन्यस्यन्ते प्ररूप्यन्ते अनेकान्तात्मतया अनेनेति प्रवचनसंन्यासः। एवं पवयणसण्णियासो त्ति गदं।

नयाः नैगमादयः, ते विधीयन्ते निरूप्यन्ते सदसदादिरूपेणास्मिन्निति नयविधिः। अथवा, नैगमादिनयैः विधीयन्ते जीवादयः पदार्था अस्मिन्निति नयविधिः। णयविधि त्ति गदं। नयान्तराणि नैगमादिसप्तशतनयभेदाः, ते विधीयन्ते निरूप्यन्ते विषयसांकर्यनिरा-करणद्वारेण अस्मिन्निति नयान्तरविधिः श्रुतज्ञानम्। एवं णयंतरविधि त्ति गदं। अहिंसा-

---

प्रकार प्रवचनीका कथन किया। अद्धा कालको कहते हैं, प्रकृष्ट अर्थात् शोभन वचनोंका काल जिस श्रुतिमें होता है वह प्रवचनाद्धा अर्थात् श्रुतज्ञान है।

शंका—श्रुतज्ञानरूपसे परिणत हुई अवस्थामें शोभन वचनोंकी ही प्रवृत्ति किसलिये होती है?

समाधान—यह कोई दोष नहीं है, क्योंकि अशोभन वचनोंके हेतुभूत रागादित्रिक (राग, द्वेष और मोह) का वहां अभाव है। इस प्रकार प्रवचनाद्धाका कथन किया।

'जो कहे जाते हैं' इस व्युत्पत्तिके अनुसार वचन शब्दका अर्थ जीवादि पदार्थ है। प्रकर्षरूपसे जिसमें वचन सन्निकृष्ट होते हैं वह प्रवचनसन्निकर्ष रूपसे प्रसिद्ध द्वादशांग श्रुतज्ञान है।

शंका— सन्निकर्ष क्या है?

समाधान— एक वस्तुमें एक धर्मके विवक्षित होनेपर उसमें शेष धर्मोंके सत्त्वासत्त्वका विचार तथा उसमें रहनेवाले उक्त धर्मोंमेंसे किसी एक धर्मके उत्कर्षको प्राप्त होनेपर शेष धर्मोंके उत्कर्षानुत्कर्षका विचार करना सन्निकर्ष कहलाता है।

अथवा, प्रकर्षरूपसे वचन अर्थात् जीवादि पदार्थ अनेकान्तात्मक रूपसे जिसके द्वारा संन्यस्त अर्थात् प्ररूपित किये जाते है वह प्रवचनसंन्यास अर्थात् उक्त द्वादशांग श्रुतज्ञान ही है। इस प्रकार प्रवचनसन्निकर्ष या प्रवचनसंन्यासका कथन किया।

नय नैगम आदिक हैं। वे सत् व असत् आदि स्वरूपसे जिसमें 'विधीयन्ते' अर्थात् कहे जाते हैं वह नयविधि—आगम है। अथवा नैगमादि नयोंके द्वारा जीवादि पदार्थोंका जिसमें विधान किया जाता है वह नयविधि—आगम है। इस प्रकार नयविधिका कथन किया। नयान्तर अर्थात् नयोंके नैगमादिक सात सौ भेद विषयसांकर्यके निराकरण द्वारा जिसमें विहित अर्थात् निरूपित किये जाते हैं वह नयान्तरविधि अर्थात् श्रुतज्ञान है। इस प्रकार नयान्तरविधिका कथन किया।

सत्यास्तेय-शील-गुण-नय-वचन-द्रव्यादिविकल्पाः भंगाः । ते विधीयन्तेऽनेनेति भंगविधिः श्रुतज्ञानम् । अथवा, भंगो वस्तुविनाशः स्थित्युत्पत्त्यविनाभावी, सोऽनेन विधीयते निरूप्यत इति भंगविधिः श्रुतम् । एवं भंगविधि त्ति गदं । विधानं विधिः, भंगानां विधिर्भेदो[1] विशेष्यते[2] पृथग्भावेन निरूप्यते[3] अनेनेति भंगविधिविशेषः श्रुतज्ञानम् । एवं भंगविधिविसेसो त्ति गदं ।

द्रव्य-गुण-पर्यय-विधि-निषेधविषयप्रश्नः पृच्छा, तस्याः क्रमः अक्रमश्च अक्रमप्रायश्चित्तं[4] च विधीयते अस्मिन्निति पृच्छाविधिः श्रुतम् । अथवा पृष्टोऽर्थः पृच्छा, सा विधीयते निरूप्यते ऽस्मिन्निति पृच्छाविधिः श्रुतम् । एवं पुच्छाविधि त्ति गदं । विधानं विधिः, पृच्छायाः विधिः पृच्छाविधिः; स विशिष्यते ऽनेनेति पृच्छाविधिविशेषः । अर्हदाचार्योपाध्याय-साधवोऽनेन प्रकारेण पृष्टव्याः प्रश्नभंगाश्च इयन्त एवे त्ति यतः सिद्धान्ते निरूप्यन्ते ततस्तस्य पृच्छाविधिविशेष इति संज्ञेत्युक्तं भवति । पुच्छाविधिविसेसो त्ति गदं । तदिति विधिस्तस्य भावस्तत्त्वम् । कथं श्रुतस्य विधिव्यपदेशः[5] ? सर्वनयविषयाणामस्तित्वविधायक-

अहिंसा, सत्य, अस्तेय, शील, गुण, नय, वचन और द्रव्यादिकके भेद भंग कहलाते हैं । उनका जिसके द्वारा विधान किया जाता है वह भंगविधि अर्थात् श्रुतज्ञान है । अथवा, भंगका अर्थ स्थिति और उत्पत्तिका अविनाभावी वस्तुविनाश है । वह जिसके द्वारा विहित अर्थात् निरूपित किया जाता है वह भंगविधि अर्थात् श्रुत है । इस प्रकार भंगविधिका कथन किया ।

विधिका अर्थ विधान है । भंगोंकी विधि अर्थात् भेद 'विशेष्यते' अर्थात् पृथक् रूपसे जिसके द्वारा निरूपित किया जाता है वह भंगविधिविशेष अर्थात् श्रुतज्ञान है । इस प्रकार भंगविधिविशेषका कथन किया ।

द्रव्य, गुण और पर्यायके विधि-निषेधविषयक प्रश्नका नाम पृच्छा है । उसके क्रम और अक्रमका तथा प्रायश्चित्तका जिसमें विधान किया जाता है वह पृच्छाविधि अर्थात् श्रुत है । अथवा पूछा गया अर्थ पृच्छा है, वह जिसमें विहित की जाती है अर्थात् कही जाती है वह पृच्छाविधि श्रुत है । इस प्रकार पृच्छाविधिका कथन किया । विधान करना विधि है । पृच्छाकी विधि पृच्छाविधि है । वह जिसके द्वारा विशेषित की जाती है वह पृच्छाविधिविशेष है । अरिहन्त, आचार्य, उपाध्याय और साधु इस प्रकारसे पूछे जाने योग्य हैं तथा प्रश्नोंके भेद इतने ही हैं; ये सब चूंकि सिद्धान्तमें निरूपित किये जाते हैं अतः उसकी पृच्छाविधिविशेष यह संज्ञा है, यह उक्त कथनका तात्पर्य है । इस प्रकार पृच्छाविधिविशेषका कथन किया । 'तत्' इस सर्वनामसे विधिकी विवक्षा है, 'तत्' का भाव तत्त्व है ।

शंका---श्रुतकी विधि संज्ञा कैसे है ?

समाधान---चूंकि वह सब नयोंके विषयके अस्तित्वका विधायक है, इसलिए श्रुतकी विधि संज्ञा उचित ही है ।

१ प्रतिपु 'विधेर्भेदो' इति पाठः । २ अ-आ-काप्रतिपु 'विशेष्यंते' इति पाठः । ३ अ-आ-काप्रतिपु 'निरूप्यंते' इति पाठः । ४ प्रतिपु 'अक्रमश्च अक्रपप्रश्नपायश्चित्तं' इति पाठः । ५ ताप्रतौ 'विधिर्व्यपदेशः' इति पाठः ।

त्वात् । तत्त्वं श्रुतं ज्ञानम् । एवं तच्चं त्ति गदं ।

अभूत् इति भूतम्, भवतीति भव्यम्, भविष्यतीति भविष्यत्, अतीतानागत-वर्त्तमान-कालेष्वस्तीत्यर्थः । एवं सत्यागमस्य नित्यत्वम् । सत्येवमागमस्यापौरुषेयत्वं प्रसजतीति चेत्— न, वाच्य-वाचकभावेन वर्ण-पद-पंक्तिभिश्च प्रवाहरूपेण चापौरुषेयत्वाभ्युपगमात् । एतेन हरि-हर-हिरण्यगर्भादिप्रणीतवचनानामागमत्वमपाकृतं द्रष्टव्यम् । भूदं भव्वं भविस्सं ति गदं । वितथमसत्यम्, न विद्यते वितथं यस्मिन् श्रुतज्ञाने तदवितथम्, तथ्यमित्यर्थः । अवितथं ति गदं । दुर्दृष्टिवचनैर्न हन्यते न हनिष्यते नावधीति[1] अविहतं श्रुतज्ञानम् । अविहदं ति गदं । अशेषपदार्थान् वेत्ति वेदिष्यति अवेदीदिति वेदः सिद्धान्तः । एतेन सूत्रकंठग्रन्थकथाया वितथरूपायाः वेदत्वमपास्तम् । वेदं ति गदं । न्यायादनपेतं न्याय्यं श्रुतज्ञानम् । अथवा, ज्ञेयानुसारित्वा[2]न्न्यायरूपत्वाद्वा न्यायः सिद्धान्तः । णायं[3] ति गदं ।

वचनार्थगतदोषातीतत्वाच्छुद्धः सिद्धान्तः । एवं सुद्धं ति गदं । सम्यग्दृश्यन्ते परि-

---

तत्त्व श्रुतज्ञान है । इस प्रकार तत्त्वका विचार किया ।

आगम अतीत कालमें था इसलिए उसकी भूत संज्ञा है, वर्तमान कालमें है इसलिए उसकी भव्य संज्ञा है, और वह भविष्य कालमें रहेगा इसलिए उसकी भविष्यत् संज्ञा है । आगम अतीत, अनागत और वर्तमान कालमें है; यह उक्त कथनका तात्पर्य है । इस प्रकार वह आगम नित्य है ।

शंका—ऐसा होनेपर आगमको अपौरुषेयताका प्रसंग आता है ?

समाधान— नहीं, क्योंकि वाच्य-वाचकभावसे तथा वर्ण, पद व पंक्तियोंके द्वारा प्रवाह रूपसे चला आनेके कारण आगमको अपौरुपेय स्वीकार किया है ।

इस कथनसे हरि, हर और हिरण्यगर्भ आदिके द्वारा रचे गये वचन आगम हैं; इसका निराकरण जान लेना चाहिये । इस प्रकार भूत, भव्य और भविष्यत्का कथन किया । वितथ और असत्य ये समानार्थक शब्द हैं । जिस श्रुतज्ञानमें वितथपना नहीं पाया जाता वह अवितथ अर्थात् तथ्य है, यह उक्त कथनका तात्पर्य है । इस प्रकार अवितथका कथन किया । मिथ्यादृष्टियोंके वचनों द्वारा जो न वर्तमानमें हता जाता है, न भविष्यमें हता जा सकेगा, और न भूतकालमें हता गया है वह अविहत—श्रुतज्ञान है । इस प्रकार अविहतका कथन किया । अशेष पदार्थोंको जो वेदता है, वेदेगा और वेद चुका है वह वेद अर्थात् सिद्धान्त है । इससे सूत्रकण्ठों अर्थात् ब्राह्मणोंकी मिथ्यारूप ग्रन्थकथा वेद है, इसका निराकरण किया गया है । इस प्रकार वेदका कथन किया । न्यायसे युक्त है इसलिये श्रुतज्ञान न्याय्य कहलाता है । अथवा ज्ञेयका अनुसरण करनेवाला होनेसे या न्यायरूप होनेसे सिद्धान्तको न्याय्य कहते हैं । इस प्रकार न्याय्यका कथन किया ।

वचन और अर्थगत दोषोंसे रहित होनेके कारण सिद्धान्तका नाम शुद्ध है । इस प्रकार

---

१ अप्रतौ 'नावधीयति' इति पाठः । २ अप्रतौ 'ज्ञायानुसारि-', आप्रतौ 'ज्ञयासारि-', काप्रतौ 'ज्ञयाऽसारि-', ताप्रतौ 'ज्ञयासा (ज्ञेयानुसा) रि-' इति पाठः । ३ प्रतिषु 'णेयं' इति पाठः ।

च्छिद्यन्ते जीवादयः पदार्थाः अनया इति सम्यग्दृष्टिः श्रुतिः, सम्यग्दृश्यन्ते श्रद्धीयन्ते अनया जीवादयः पदार्थाः इति सम्यग्दृष्टिः, सम्यग्दृष्ट्यविनाभावित्वाद्वा सम्यग्दृष्टिः । सम्माइट्ठि त्ति गदं । हेतुः साध्याविनाभावि लिंगं अन्यथानुपपत्त्येकलक्षणोपलक्षितः । स हेतुर्द्विविधः साधन-दूषणहेतुभेदेन । तत्र स्वपक्षसिद्धये प्रयुक्तः साधनहेतुः । प्रतिपक्षनिर्लोट्टनायै प्रयुक्तो दूषणहेतुः । हिनोति गमयति परिच्छिनत्त्यर्थमात्मानं चेति प्रमाणपंचकं वा हेतुः । स उच्यते कथ्यते अनेनेति हेतुवादः श्रुतज्ञानम् । एवं हेतुवादो त्ति गदं । आत्रिकाँमुत्रिकफलप्राप्त्युपायो नयः । स उच्यते कथ्यते अनेनेति नयवादः सिद्धान्तः । णयवादो त्ति गदं ।

स्वर्गापवर्गमार्गत्वाद्रत्नत्रयं प्रवरः । स उद्यते[4] निरूप्यते अनेनेति प्रवरवादः । एवं पवरवादो त्ति गदं । मृग्यते अनेनेति मार्गः पंथाः । स पंचविधः— नरकगतिमार्गः तिर्यग्गतिमार्गः मनुष्यगतिमार्गः देवगतिमार्गः मोक्षगतिमार्गश्चेति । तत्र एकैको मार्गोऽनेकविधः, कृमि-कीटादिभेदभिन्नत्वात् । एते मार्गाः एतेषामाभासाश्च अनेन कथ्यन्त इति मार्गवादः सिद्धान्तः । मग्गवादो त्ति गदं । श्रुतं द्विविधं— अंगप्रविष्टमंगबाह्यमिति । तदुच्यते कथ्यते

शुद्ध पदका कथन किया । इसके द्वारा जीवादि पदार्थ सम्यक् प्रकारसे देखे जाते हैं अर्थात् जाने जाते हैं, इसलिये इसका नाम सम्यग्दृष्टि—श्रुति है; इसके द्वारा जीवादिक पदार्थ सम्यक् प्रकारसे देखे जाते हैं अर्थात् श्रद्धान किये जाते हैं, इसलिये इसका नाम सम्यग्दृष्टि है; अथवा सम्यग्दृष्टिके साथ श्रुतिका अविनाभाव होनेसे उसका नाम सम्यग्दृष्टि है । इस प्रकार सम्यग्दृष्टि पदका कथन किया । जो लिंग अन्यथानुपपत्तिरूप एक लक्षणसे उपलक्षित होकर साध्यका अविनाभावी होता है उसे हेतु कहा जाता है । वह हेतु दो प्रकारका है—साधनहेतु और दूषणहेतु । इनमें स्वपक्षकी सिद्धिके लिये प्रयुक्त हुआ हेतु साधनहेतु और प्रतिपक्षका खण्डन करनेके लिये प्रयुक्त हुआ दूषणहेतु है । अथवा जो अर्थ और आत्माका 'हिनोति' अर्थात् ज्ञान कराता है उस प्रमाणपंचकको हेतु कहा जाता है । उक्त हेतु जिसके द्वारा 'उच्यते' अर्थात् कहा जाता है वह श्रुतज्ञान हेतुवाद कहलाता है । इस प्रकार हेतुवाद पदका कथन किया । ऐहिक और पारलौकिक फलकी प्राप्तिका उपाय नय है । उसका वाद अर्थात् कथन इस सिद्धान्तके द्वारा किया जाता है, इसलिये यह नयवाद कहलाता है । इस प्रकार नयवाद पदका कथन किया ।

स्वर्ग और अपवर्गका मार्ग होनेसे रत्नत्रयका नाम प्रवर है । उसका वाद अर्थात् कथन इसके द्वारा किया जाता है, इसलिये इस आगमका नाम प्रवरवाद है । इस प्रकार प्रवरवाद पदका कथन किया । जिसके द्वारा मार्गण किया जाता है वह मार्ग अर्थात् पथ कहलाता है । वह पांच प्रकारका है— नरकगतिमार्ग, तिर्यग्गतिमार्ग, मनुष्यगतिमार्ग, देवगतिमार्ग और मोक्षगतिमार्ग । उनमेंसे एक एक मार्ग कृमि व कीट आदिके भेदसे अनेक प्रकारका है । ये मार्ग और मार्गाभास जिसके द्वारा कहे जाते हैं वह सिद्धान्त मार्गवाद कहलाता है । इस प्रकार मार्गवादका कथन किया । श्रुत दो प्रकारका है—अंगप्रविष्ट और अंगबाह्य । इसका कथन जिस वचनकलापके द्वारा

१ प्रतिषु 'सम्यग्दृष्ट्याविना-' इति पाठः । २ अ-आप्रत्योः 'निलोठनाय', ताप्रतौ 'निर्लोटनाय' इति पाठः । ३ अप्रतौ 'अत्रिका-' इति पाठः । ४ अ-आप्रत्योः 'उच्यते' इति पाठः ।

अनेन वचनकलापेनेति श्रुतवादो द्रव्यश्रुतम् । सुदवादो त्ति गदं । मस्करी-कणभक्षाक्षपाद-कपिल-शौद्धोदनि-चार्वाक-जैमिनिप्रभृतयस्तद्दर्शनानि च परोधन्ते दूष्यन्ते अनेनेति परवादो राद्धान्तः । परवादो त्ति गदं । लोक एव लौकिकः । को लोकः ? लोक्यन्त उपलभ्यन्ते यस्मिन् जीवादयः पदार्थाः स लोकः । स त्रिविधः ऊर्ध्वाधोमध्यमलोकभेदेन । स लोकः कथ्यते अनेनेति लौकिकवादः सिद्धान्तः । लोइयवादो त्ति गदं । लोकोत्तरः अलोकः, स उच्यते कथ्यते अनेनेति लोकोत्तरवादः । लोकोत्तरीयवादो त्ति गदं । चारित्राच्छ्रुतं प्रधान-मिति अग्रयम् । कथं ततः श्रुतस्य प्रधानता ? श्रुतज्ञानमन्तरेण चारित्रानुत्पत्तेः । अथवा, अग्रचं मोक्षः, तत्साहचर्याच्छ्रुतमप्यग्रयम् । अग्गं ति गदं । मार्गः पंथा श्रुतम् । कस्य ? मोक्षस्य । न 'सम्यग्दर्शन-ज्ञानचारित्राणि मोक्षमार्गः[2]' इत्यनेन विरोधः, द्वादशांगस्स सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्राविनाभाविनो मोक्षमार्गत्वेनाभ्युपगमात् । मग्गं ति गदं ।

किया जाता है वह द्रव्यश्रुत श्रुतवाद कहलाता है । इस प्रकार श्रुतवादका कथन किया । मस्करी, कणभक्ष, अक्षपाद, कपिल, शौद्धोदनि, चार्वाक और जैमिनि आदि तथा उनके दर्शन जिसके द्वारा 'परोधन्ते' अर्थात् दूषित किये जाते हैं वह राद्धान्त (सिद्धान्त) परवाद कहलाता है । इस प्रकार परवादका कथन किया । लौकिक शब्दका अर्थ लोक ही है ।

शंका—लोक किसे कहते हैं ?

समाधान—जिसमें जीवादि पदार्थ देखे जाते हैं अर्थात् उपलब्ध होते हैं उसे लोक कहते हैं ।

वह लोक तीन प्रकारका है—ऊर्ध्वलोक, मध्यमलोक और अधोलोक । जिसके द्वारा इस लोकका कथन किया जाता है वह सिद्धान्त लौकिकवाद कहलाता है । इस प्रकार लौकिकवाद पदका कथन किया । लोकोत्तर पदका अर्थ अलोक है, जिसके द्वारा उसका कथन किया जाता है वह श्रुत लोकोत्तरवाद कहा जाता है । इस प्रकार लोकोत्तरवादका कथन किया । चारित्रसे श्रुत प्रधान है इसलिये उसकी अग्र्य संज्ञा है ।

शंका—चारित्रसे श्रुतकी प्रधानता किस कारणसे है ?

समाधान—क्योंकि श्रुतज्ञानके विना चारित्रकी उत्पत्ति नहीं होती, इसलिये चारित्रकी अपेक्षा श्रुतकी प्रधानता है ।

अथवा अग्र्य शब्दका अर्थ मोक्ष है । उसके साहचर्यसे श्रुत भी अग्र्य कहलाता है । इस प्रकार अग्र्य पदका कथन किया । मार्ग, पथ और श्रुत ये एकार्थक नाम हैं । किसका मार्ग ? मोक्षका । ऐसा माननेपर "सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान और सम्यक्चारित्र ये तीनों मिलकर मोक्षके मार्ग हैं" इस कथनके साथ विरोध होगा, यह भी सम्भव नहीं है; क्योंकि सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान और सम्यक्चारित्रके अविनाभावी द्वादशांगको मोक्षमार्गरूपसे स्वीकार किया है । इस प्रकार मार्ग पदका व्याख्यान किया ।

---

१ ताप्रतौ 'अनेनेति वा लौकिकवादः' इति पाठः । २ त. सू. १, १.

यथा स्थिताः जीवादयः पदार्थाः तथा अनुमृग्यन्ते अन्विष्यन्ते अनेनेति यथानुमार्गः श्रुतज्ञानम्। जहाणुमग्गं ति गदं। लोकवदनादित्वात्पूर्वम् । पुव्वं ति गदं । यथानुपूर्वी यथानुपरिपाटी इत्यनर्थान्तरम्। तत्र भवं श्रुतज्ञानं द्रव्यश्रुतं वा यथानुपूर्वम् । सर्वासु पुरुषव्यक्तिषु स्थितं श्रुतज्ञानं द्रव्यश्रुतं च यथानुपरिपाट्या सर्वकालमवस्थितमित्यर्थः । एवं जहाणुपुव्वि त्ति गदं। बहुषु पूर्वेषु वस्तुषु इदं श्रुतज्ञानं[1] अतीव पूर्वमिति पूर्वातिपूर्वं श्रुतज्ञानम्। कुतोऽतिपूर्वत्वम्? प्रमाणमन्तरेण शेषवस्तुपूर्वत्वावगमानुपपत्तेः । एवं सुदणाणावरणीयस्स कम्मस्स अण्णा परूवणा कदा होदि ।

ओहिणाणावरणीयस्स कम्मस्स केवडियाओ पयडीओ ? ॥ ५१ ॥

एदं[2] पुच्छासुत्तं किं संखेज्जाओ किमसंखेज्जाओ किमणंताओ त्ति एदं तिदयमुवेक्खदे[3]। सेसं सुगमं ।

ओहिणाणावरणीयस्स कम्मस्स असंखेज्जाओ पयडीओ ॥ ५२ ॥

असंखेज्जाओ त्ति कुदोवगम्मदे ? आवरणिज्जस्स ओहिणाणस्स असंखेज्जवियप्पत्तादो ।

यथावस्थित जीवादि पदार्थ जिसके द्वारा 'अनुमृग्यन्ते' अर्थात् अन्वेषित किये जाते हैं वह श्रुतज्ञान यथानुमार्ग कहलाता है। इस प्रकार यथानुमार्ग पदका व्याख्यान किया। लोकके समान अनादि होनेसे श्रुत पूर्व कहलाता है। इस प्रकार पूर्व पदका व्याख्यान किया। यथानुपूर्वी और यथानुपरिपाटी ये एकार्थवाची शब्द हैं। इसमें होनेवाला श्रुतज्ञान या द्रव्यश्रुत यथानुपूर्व कहलाता है। सब पुरुषव्यक्तियोंमें स्थित श्रुतज्ञान और द्रव्यश्रुत यथानुपरिपाटीसे सर्वकाल अवस्थित है, यह उक्त कथनका तात्पर्य है। इस प्रकार यथानुपूर्वी पदका कथन किया। बहुत पूर्व वस्तुओंमें यह श्रुतज्ञान अतीव पूर्व है, इसलिये श्रुतज्ञान पूर्वातिपूर्व कहलाता है।

शंका— इसे अतिपूर्वता किस कारणसे प्राप्त है ?

समाधान— क्योंकि प्रमाणके विना शेष वस्तु पूर्वोंका ज्ञान नहीं हो सकता, इसलिये इसे अतिपूर्व कहा है।

इस प्रकार श्रुतज्ञानावरणीय कर्मकी अन्य प्ररूपणा की।

अवधिज्ञानावरण कर्मकी कितनी प्रकृतियां हैं ? ॥ ५१ ॥

यह पृच्छासूत्र वे क्या संख्यात हैं, क्या असंख्यात हैं और क्या अनन्त हैं; इन तीनकी अपेक्षा करता है। शेष कथन सुगम है।

अवधिज्ञानावरण कर्मकी असंख्यात प्रकृतियां हैं ॥ ५२ ॥

शंका— असंख्यात हैं, यह किस प्रमाणसे जाना जाता है ?

समाधान— क्योंकि आवरणीय अवधिज्ञानके असंख्यात विकल्प हैं। उन विकल्पोंका

---

१ प्रतिषु 'श्रुतं ज्ञानं' इति पाठः। २ प्रतिषु 'एवं' इति पाठः ३ प्रतिषु सर्वत्रैव 'अपेक्षते'। इत्येतस्मिन्नर्थे 'उवेक्खदे' इत्ययमेव पाठ उपलभ्यते। ४ संखाईयाओ खलु ओहीनाणस्स सव्वपयडीओ। काई भवपच्चइया खओवसमियाओ काओ वि ॥ वि. भा. ५७१ (नि. २४).

तेसिं वियप्पाणं परूवणा जहा वेयणाए कदा तहा एत्थ वि कायव्वा । ण च आवरणिज्जेसु असंखेज्जलोगमेत्तेसु संतेसु तदावरणीयाणं संखेज्जत्तमणंतत्तं वा जुज्जदे, विरोहादो । संपहि आवरणिज्जवियप्पदुप्पायणदुवारेण आवरणवियप्पपदुप्पायणट्ठमुत्तरसुत्तं भणदि—

तं च ओहिणाणं दुविहं भवपच्चइयं चेव गुणपच्चइयं चेव ॥ ५३ ॥

भव उत्पत्तिः प्रादुर्भावः, स प्रत्ययः कारणं यस्य अवधिज्ञानस्य तद् भवप्रत्ययकम् । जदि भवमेत्तमोहिणाणस्स कारणं होज्ज तो देवेसु णेरइएसु वा उप्पण्णपढमसमए ओहिणाणं किण्ण उप्पज्जदे ? ण एस दोसो, ओहिणाणुप्पत्तीए छहि पज्जत्तीहि पज्जत्तयदभवग्गहणादो । ण च मिच्छाइट्ठीसु ओहिणाणं णत्थि त्ति वोत्तुं जुत्तं, मिच्छत्तसहचरिदओहिणाणस्सेव विहंगणाणववएसादो । देव-णेरइयसम्माइट्ठीसु समुप्पण्णोहिणाणं ण भवपच्चइयं, सम्मत्तेण विणा भवादो[2] चेव ओहिणाणस्साविब्भावाणुवलंभादो ? ण एस दोसो, सम्मत्तेण विणा

कथन जिस प्रकार वेदना खण्डमें किया गया है उसी प्रकार यहां भी करना चाहिये । आवरणीयोंके असंख्यात लोकप्रमाण होनेपर तदावरणीयोंके संख्यात या अनन्त विकल्प नहीं माने जा सकते, क्योंकि, ऐसा माननेपर विरोध आता है ।

अब आवरणीयभेदोंके कथन द्वारा आवरणके भेदोंका कथन करनेके लिये आगेका सूत्र कहते हैं—

वह अवधिज्ञान दो प्रकारका है— भवप्रत्यय अवधिज्ञान और गुणप्रत्यय अवधिज्ञान ॥ ५३ ॥

भव, उत्पत्ति और प्रादुर्भाव ये पर्याय नाम हैं । जिस अवधिज्ञानका प्रत्यय अर्थात् कारण भव है वह भवप्रत्यय अवधिज्ञान है ।

शंका— यदि भवमात्र ही अवधिज्ञानका कारण है तो देवों और नारकियोंमें उत्पन्न होनेके प्रथम समयमें ही अवधिज्ञान क्यों नहीं उत्पन्न होता ?

समाधान— यह कोई दोष नहीं है, क्योंकि छह पर्याप्तियोंसे पर्याप्त भवको ही यहां अवधिज्ञानकी उत्पत्तिका कारण माना गया है ।

मिथ्यादृष्टियोंके अवधिज्ञान नहीं होता, ऐसा कहना युक्त नहीं है, क्योंकि, मिथ्यात्वसहचरित अवधिज्ञानकी ही विभंगज्ञान संज्ञा है ।

शंका— देव और नारकी सम्यग्दृष्टियोंमें उत्पन्न हुआ अवधिज्ञान भवप्रत्यय नहीं है, क्योंकि, उनमें सम्यक्त्वके विना एक मात्र भवके निमित्तसे ही अवधिज्ञानकी उत्पत्ति उपलब्ध नहीं होती ?

समाधान— यह कोई दोष नहीं है, क्योंकि सम्यक्त्वके विना भी पर्याप्त मिथ्यादृष्टियोंके

---

१ से किं तं ओहिनाणपच्चक्खं ? ओहिनाणपच्चक्खं दुविहं पण्णत्तं । तं जहा– भवपच्चइयं च खओवसमियं च । नं. सू. ६. ओही भवपच्चइओ गुणपच्चइओ य वण्णिओ दुविहो । तस्स य बहूविगप्पा दव्वे खेत्ते य काले य ॥ नं. सू. गा. ६३. २ प्रतिषु 'विणाभावादो' इति पाठः ।

वि मिच्छाइट्ठीसु पज्जत्तयदेसु ओहिणाणुप्पत्तिदंसणादो । तम्हा तत्थतणमोहिणाणं भवपच्चइयं चेव । सामण्णणिद्देसे संते सम्माइट्ठि-मिच्छाइट्ठीणमोहिणाणं पज्जत्तभवपच्चइयं[1] चेवे त्ति कुदो णव्वदे ? अपज्जत्तदेव-णेरइएसु विहंगणाणपडिसेहण्णहाणुववत्तीदो । विहंगणाणस्सेव अपज्जत्तकाले ओहिणाणस्स पडिसेहो किण्ण कीरदे ? ण, उप्पत्तिं पडि तस्स वि तत्थ विहंगणाणस्सेव पडिसेहदंसणादो । ण च सम्माइट्ठीणमुप्पण्णपढमसमए चेव होदि, विहंगणाणस्स वि तहाभावप्पसंगादो । ण च सम्मत्तेण विसेसो कीरदे, भवपच्चइयत्तं फिट्टिदूण तस्स गुणपच्चइयत्तप्पसंगादो । ण च तत्थ ओहिणाणस्सच्चंताभावो, तिरिक्ख-मणुस्सेसु सम्मत्त-गुणेणुप्पण्णस्स तत्थावट्ठाणुवलंभादो । ण विहंगणाणस्स एस कमो, तक्कारणाणुकंपादीणं तत्थाभावेण[2] तदवट्ठाणाभावादो ।

अणुव्रत-महाव्रतानि सम्यक्त्वाधिष्ठानानि गुणः कारणं यस्यावधिज्ञानस्य तद् गुण-

---

अवधिज्ञानकी उत्पत्ति देखी जाती है, इसलिये वहां उत्पन्न होनेवाला अवधिज्ञान भव-प्रत्यय ही है ।

शंका— देवों और नारकियोंका अवधिज्ञान भवप्रत्यय होता है, ऐसा सामान्य निर्देश होनेपर सम्यग्दृष्टि और मिथ्यादृष्टियोंका अवधिज्ञान पर्याप्त भवके निमित्तसे ही होता है, यह किस-प्रमाणसे जाना जाता है ?

समाधान— क्योंकि, अपर्याप्त देवों और नारकियोंके विभंगज्ञानका जो प्रतिषेध किया है वह अन्यथा वन नहीं सकता । इससे जाना जाता है कि देवों और नारकियोंके सम्यग्दृष्टि और मिथ्यादृष्टि दोनों ही अवस्थाओंमें अवधिज्ञान पर्याप्त भवके निमित्तसे ही होता है ।

शंका— विभंगज्ञानके समान अपर्याप्त कालमें अवधिज्ञानका निषेध क्यों नहीं करते ?

समाधान— नहीं, क्योंकि उत्पत्तिकी अपेक्षा उसका भी वहां विभंगज्ञानके समान ही निषेध देखा जाता है । सम्यग्दृष्टियोंके उत्पन्न होनेके प्रथम समयमें ही अवधिज्ञान होता है, ऐसा नहीं है; क्योंकि, ऐसा माननेपर विभंगज्ञानके भी उसी प्रकारकी उत्पत्तिका प्रसंग आता है । सम्यक्त्वसे इतनी विशेषता हो जाती है, यह कहना भी ठीक नहीं है; क्योंकि, ऐसा माननेपर भवप्रत्ययपना नष्ट होकर उसके गुणप्रत्ययपनेका प्रसंग आता है । पर इसका यह अर्थ नहीं कि देवों और नारकियोंके अपर्याप्त अवस्थामें अवधिज्ञानका अत्यन्त अभाव है, क्योंकि, तिर्यंचों और मनुष्योंमें सम्यक्त्व गुणके निमित्तसे उत्पन्न हुआ अवधिज्ञान देवों और नारकियोंके अपर्याप्त अवस्थामें भी पाया जाता है । विभंगज्ञानमें भी यह क्रम लागू हो जायगा, यह कहना ठीक नहीं है; क्योंकि, अवधिज्ञानके कारणभूत अनुकम्पा आदिका अभाव होनेसे अपर्याप्त अवस्थामें वहां उसका अवस्थान नहीं रहता ।

सम्यक्त्वसे अधिष्ठित अणुव्रत और महाव्रत गुण जिस अवधिज्ञानके कारण हैं वह गुणप्रत्यय अवधिज्ञान है ।

---

१ अ-का-ताप्रतिषु 'पज्जत्तं भवपच्चइयं' इति पाठः । २ ताप्रतौ 'तत्थ भावेण' इति पाठः ।

प्रत्ययकम्। जदि सम्मत्त-अणुव्वद-महव्वदेहिंतो ओहिणाणमुप्पज्जदि तो सव्वेसु असंजदसम्माइट्ठिसंजदासंजद-संजदेसु ओहिणाणं किण्ण उवलब्भदे? ण एस दोसो, असंखेज्जलोगमेत्त-सम्मत्त संजम-संजमासंजमपरिणामेसु ओहिणाणावरणक्खओवसमणिमित्ताणं परिणामाणमइथोवत्तादो। ण च ते सव्वेसु संभवंति, तप्पडिवक्खपरिणामाणं बहुत्तेण तदुवलद्धीए थोवत्तादो।

जं तं भवपच्चइयं तं देव-णेरइयाणं[1] ॥ ५४ ॥

भवपच्चइयं जमोहिणाणं तं देव-णेरइयाणं चेव होदि त्ति किमट्ठं वुच्चदे? ण, देव-णेरइयभवे मोत्तूण अण्णेसिं भवाणं तक्कारणत्ताभावादो।

जं तं गुणपच्चइयं तं तिरिक्ख-मणुस्साणं[2] ॥ ५५ ॥

कुदो? तिरिक्ख-मणुस्सभवे मोत्तूण अण्णत्थ अणुव्वय-महव्वयाणमभावादो।

तं च अणेयविहं देसोही परमोही सव्वोही हायमाणयं वड्ढमाणयं अवट्ठिदं अणवट्ठिदं अणुगामी अणणुगामी सप्पडिवादी अप्पडिवादी एयक्खेत्तमणेयक्खेत्तं ॥ ५६ ॥

शंका— यदि सम्यक्त्व, अणुव्रत और महाव्रतके निमित्तसे अवधिज्ञान उत्पन्न होता हैं तो सब असंयतसम्यग्दृष्टि, संयतासंयत और संयतोंके अधिज्ञान क्यों नहीं पाया जाता?

समाधान— यह कोई दोष नहीं है, क्योंकि सम्यक्त्व, संयमासंयम और संयम रूप परिणाम असंख्यात लोकप्रमाण हैं। उनमेंसे अवधिज्ञानावरणके क्षयोपशमके निमित्तभूत परिणाम अतिशय स्तोक हैं। वे सबके सम्भव नहीं हैं, क्योंकि, उनके प्रतिपक्षभूत परिणाम बहुत हैं। इसलिये उनकी उपलब्धि क्वचित् ही होती है।

जो भवप्रत्यय अवधिज्ञान है वह देवों और नारकियोंके होता है ॥ ५४ ॥

शंका— जो अवधिज्ञान भवप्रत्यय होता है वह देवों और नारकियोंके ही होता है, यह किसलिये कहते हो?

समाधान— नहीं, क्योंकि देवों और नारकियोंके भवोंको छोड़कर अन्य भव उसके कारण नहीं हैं।

जो गुणप्रत्यय अवधिज्ञान है वह तिर्यंचों और मनुष्योंके होता है ॥ ५५ ॥

क्योंकि, तिर्यंच और मनुष्य भवोंको छोड़कर अन्यत्र अणुव्रत और महाव्रत नहीं पाये जाते।

वह अनेक प्रकारका है— देशावधि, परमावधि, सर्वावधि, हायमान, वर्धमान, अवस्थित, अनवस्थित, अनुगामी, अननुगामी, सप्रतिपाती, अप्रतिपाती, एकक्षेत्र और अनेकक्षेत्र ॥ ५६ ॥

---

१ भवप्रत्ययोऽवधिर्देव-नारकाणाम्। त. सू. १-२१. से किं तं भवपच्चइयं? भवपच्चइयं दुण्हं। तं जहा—देवाण य णेरइआण य। नं. सू. ७. २ क्षयोपशमनिमित्तः षड्विकल्पः शेषाणाम्। त. सू. १-२२. से किं तं खाओवसमियं? खाओवसमियं दुण्हं। तं जहा—मणुस्साण य पंचिंदियतिरिक्खजोणियाण य। ××× नं. सू. ८. ३ त. रा. १, २२, ४. अहवा गुणपडिवन्नस्स अणगारस्स ओहिनाणं समुप्पज्जइ।

तमोहिणाणमणेयविहं ति वुत्ते सामण्णेणोहिणाणमणेयविहं ति घेत्तव्वं । अणंतरत्तादो गुणपच्चइयमोहिणाणमणेयविहं ति किण्ण वुच्चदे ? ण, भवपच्चइयओहिणाणे वि अवट्ठिद-अणवट्ठिद-अणुगामि-अणणुगामिवियप्पुवलंभादो । देसोहि-परमोहि-सव्वोहीणं दव्व-खेत्त-काल-भाववियप्पपरूवणा जहा वेयणाए कदा तहा कायव्वा, विसेसाभावादो । किण्हपक्खचंदमंडलं व जमोहिणाणमुप्पण्णं संतं वड्ढि-अवट्ठाणेहि विणा हायमाणं चेव होदूण गच्छदि जाव णिस्सेसं विणट्ठं ति तं हायमाणं णाम[1] । एदं देसोहीए अंतो णिवददि, ण परमोहि-सव्वोहीसु; तत्थ हाणीए अभावादो । जमोहिणाणमुप्पण्णं संतं सुक्कपक्खचंदमंडलं व समयं पडि अवट्ठाणेण विणा वड्ढमाणं गच्छदि जाव अप्पणो उक्कस्सं पाविदूण उवरिमसमए केवलणाणे समुप्पण्णे विणट्ठं ति तं वड्ढमाणं णाम[2] । एदं देसोहि-परमोहिसव्वोहीणमंतो

वह अवधिज्ञान अनेक प्रकारका है, ऐसा कथन करनेपर सामान्यसे अवधिज्ञान अनेक प्रकारका है, ऐसा यहां ग्रहण करना चाहिये ।

शंका— अनन्तर निर्दिष्ट होनेसे गुणप्रत्यय अवधिज्ञान अनेक प्रकारका है, ऐसा क्यों नहीं ग्रहण करते ?

समाधान— नहीं, क्योंकि भवप्रत्यय अवधिज्ञानमें भी अवस्थित, अनवस्थित, अनुगामी और अननुगामी भेद उपलब्ध होते हैं ।

देशावधि, परमावधि और सर्वावधिके द्रव्य, क्षेत्र, काल और भावके विकल्प जिस प्रकार वेदनाखण्डमें कहे हैं उसी प्रकार यहां भी कहने चाहिये, क्योंकि, उनसे इनमें कोई भेद नहीं है । कृष्ण पक्षके चन्द्रमण्डलके समान जो अवधिज्ञान उत्पन्न होकर वृद्धि और अवस्थानके विना निःशेष विनष्ट होने तक घटता ही जाता है वह हायमान अवधिज्ञान है । इसका देशावधिमें अन्तर्भाव होता है, परमावधि और सर्वावधिमें नहीं; क्योंकि, परमावधि और सर्वावधिमें हानि नहीं होती । जो अवधिज्ञान उत्पन्न होकर शुक्ल पक्षके चन्द्रमण्डलके समान प्रतिसमय अवस्थानके विना जब तक अपने उत्कृष्ट विकल्पको प्राप्त होकर अगले समयमें केवलज्ञानको उत्पन्न कर विनष्ट नहीं हो जाता तब तक बढ़ता ही रहता है वह वर्धमान अवधिज्ञान है । इसका देशावधि, परमावधि और सर्वावधिमें अन्तर्भाव

तं समासओ छव्विहं पन्नत्तं । तं जहा–आणुगामिअं १, अणाणुगामिअं २, वड्ढमाणयं ३, हीयमाणयं ४, पडिवाइयं ५, अप्पडिवाइयं ६ । नं. सू. ९.

१ अपरोऽवधिः परिच्छिन्नोपादानसन्तत्यग्निशिखावत् सम्यग्दर्शनादिगुणहानि-संक्लेशपरिणामविवृद्धियोगात् यत्प्रमाण उत्पन्नस्ततो हीयते आ अङ्गुलस्याऽसंख्येयभागादिति । त. रा. १, २२, ४. से किं तं हीयमाणयं ओहिनाणं ? हीयमाणयं ओहिनाणं अप्पसत्थेहिं अज्झवसाणट्ठाणेहिं वट्टमाणस्स वट्टमाणचरित्तस्स संकिलिस्समाणस्स संकिलिस्समाणचरित्तस्स सव्वओ समंता ओही परिहायइ से त्तं हीयमाणयं ओहिनाणं । नं. सू. १३. २ अपरोऽवधिः अरणिनिर्मथनोत्पन्नशुष्कपत्रोपचीयमानेन्धननिचयसमिद्धपावकवत् सम्यग्दर्शनादिगुणविशुद्धिपरिणामसन्निधानाद्यत्परिमाण उत्पन्नस्ततो वर्धते आ असंख्येयलोकेभ्यः । त. रा. १, २२, ४. से किं तं वड्ढमाणयं ओहिनाणं ? पसत्थेसु अज्झवसाणट्ठाणेसु वट्टमाणस्स वड्ढमाणचरित्तस्स विसुज्झमाणस्स विसुज्झमाणचरित्तस्स सव्वओ समंता ओही वड्ढइ । XXX से त्तं वड्ढमाणयं ओहिनाणं । नं. सू. १२.

णिवददि, तिण्णि वि णाणाणि अवगाहिय अवट्ठिदत्तादो। जमोहिणाणमुप्पज्जिय वड्ढि-हाणीहि विणा दिणयरमंडलं व अवट्ठिदं होदूण अच्छदि जाव केवलणाणमुप्पण्णं ति तमवट्ठिदं णाम[1]। जमोहिणाणमुप्पण्णं संतं कयावि वड्ढदि कयावि हायदि कयावि अवट्ठाणभावमुवणमदि तमणवट्ठिदं णाम[2]। जमोहिणाणमुप्पण्णं संतं जीवेण सह गच्छदि तमणुगामी णाम[3]। तं च तिविहं खेत्ताणुगामी भवाणुगामी खेत्त-भवाणुगामी चेदि। तत्थ जमोहिणाणं एयम्मि खेत्ते उप्पण्णं संतं सग-परपयोगेहि सग-परखेत्तेसु हिंडंतस्स जीवस्स ण विणस्सदि तं खेत्ताणुगामी णाम। जमोहिणाणमुप्पण्णं संतं तेण जीवेण सह अण्णभवं गच्छदि तं भवाणुगामी णाम। जं भरहेरावदं-विदेहादिखेत्ताणि देव-णेरइय-माणुस-तिरिक्खभवं पि गच्छदि तं खेत्त-भवाणुगामि त्ति भणिदं होदि। जं तमणणुगामी[5] णाम ओहिणाणं तं तिविहं खेत्ताणणुगामी भवाणणुगामी खेत्त-भवाणणुगामी चेदि। [जं] खेत्तंतरं ण गच्छदि, भवंतरं चेव गच्छदि [तं] खेत्ताणणुगामि त्ति भण्णदि। जं भवंतरं ण गच्छदि, खेत्तंतरं चेव गच्छदि तं भवाणणुगामी णाम। जं खेत्तंतर-भवांतराणि ण गच्छदि एक्कम्हि चेव

होता है, क्योंकि, यह तीनों ही ज्ञानोंका सहारा लेकर अवस्थित है। जो अवधिज्ञान उत्पन्न होकर वृद्धि व हानिके विना दिनकरमण्डलके समान केवलज्ञानके उत्पन्न होने तक अवस्थित रहता है वह अवस्थित अवधिज्ञान है। जो अवधिज्ञान उत्पन्न होकर कदाचित् बढ़ता है, कदाचित् घटता है, और कदाचित् अवस्थित रहता है वह अनवस्थित अवधिज्ञान है। जो अवधिज्ञान उत्पन्न होकर जीवके साथ जाता है वह अनुगामी अवधिज्ञान है। वह तीन प्रकारका है— क्षेत्रानुगामी, भवानुगामी और क्षेत्र-भवानुगामी। उनमेंसे जो अवधिज्ञान एक क्षेत्रमें उत्पन्न होकर स्वतः या परप्रयोगसे जीवके स्वक्षेत्र या परक्षेत्रमें विहार करनेपर विनष्ट नहीं होता है वह क्षेत्रानुगामी अवधिज्ञान है। जो अवधिज्ञान उत्पन्न होकर उस जीवके साथ अन्य भवमें जाता है वह भवानुगामी अवधिज्ञान है। जो भरत, ऐरावत और विदेह आदि क्षेत्रोंमें तथा देव, नारक, मनुष्य और तिर्यंच भवमें भी साथ जाता है वह क्षेत्र-भवानुगामी अवधिज्ञान है; यह उक्त कथनका तात्पर्य है। जो अननुगामी अवधिज्ञान है वह तीन प्रकारका है—क्षेत्राननुगामी, भवाननुगामी और क्षेत्र-भवाननुगामी। जो क्षेत्रान्तरमें साथ नहीं जाता है; भवान्तरमें ही साथ जाता है वह क्षेत्राननुगामी अवधिज्ञान कहलाता है। जो भवान्तरमें साथ नहीं जाता है, क्षेत्रान्तरमें ही साथ जाता है; वह भवाननुगामी अवधिज्ञान है। जो क्षेत्रान्तर और भवान्तर दोनोंमें साथ नहीं जाता, किन्तु एक ही क्षेत्र और

१ अपरोऽवधिः सम्यग्दर्शनादिगुणावस्थानाद्यत्परिमाण उत्पन्नस्तत्परिमाण एवावतिष्ठते न हीयते नापि वर्धते लिङ्गवत् आ भवक्षयादाकेवलज्ञानोत्पत्तेर्वा। त. रा. १, २२, ४. २ अन्योऽवधिः सम्यग्दर्शनादिगुणवृद्धि-हानियोगाद्यत्परिमाण उत्पन्नस्ततो वर्धते यावदनेन वर्धितव्यम्, हीयते च यावदनेन हातव्यं वायुवेगप्रेरितजलोर्मिवत्। त. रा. १, ४, २२. ३ कश्चिदवधिः भास्करप्रकाशवद्गच्छन्तमनुगच्छति। त. रा. १, २२, ४. अणुगामिओऽणुगच्छइ गच्छंतं लोअणं जहा पुरिसं। इयरो उ नाणुगच्छइ ठियप्पईवो व्व गच्छंतं। नं. सू. गा. ९ (उद्धृतास्तीयं गाथा मलयगिरिणास्य टीकायाम्). ४ आ-काप्रत्योः 'भरदेरावत', ताप्रतौ 'भरदेरावद' इति पाठः। ५ कश्चिन्नानुगच्छति, तत्रैवातिपतति उन्मुखप्रश्नादेशिकपुरुषवचनवत्। त. रा. १, २२, ४.

खेत्ते भवे च पडिबद्धं तं खेत्त-भवाणणुगामि त्ति भण्णदि। जमोहिणाणमुप्पण्णं संतं णिम्मूलदो विणस्सदि तं सप्पडिवादी णाम[1]। ण च एदं पुव्विल्लओहिणाणेसु पविसदि[2], एदस्स हायमाण-वड्डमाण-अवट्ठिद-अणवट्ठिद-अणुगामि-अणणुगामिओहिणाणाणं छण्णं भावमणावण्णस्स[3] तत्थेक्कम्हि पवेसविरोहादो। जमोहिणाणमुप्पण्णं संतं केवलणाणे समुप्पण्णे चेव विणस्सदि, अण्णहा ण विणस्सदि; तमप्पडिवादी[4] णाम। एदं पि पुव्विल्लोहिणाणेसु विसेससरूवेसु ण पविसदि[5], सामण्णसरूवत्तादो। जस्स ओहिणाणस्स जीवसरीरस्स एगदेसो करणं होदि तमोहिणाणमेगक्खेत्तं णाम। जमोहिणाणं पडिणियदखेत्तं वज्जिय सरीरसव्वावयवेसु वट्टदि तमणेयक्खेत्तं णाम। तित्थयर-देव-णेरइयाणं ओहिणाणमणेयक्खेत्तं चेव, सरीरसव्वावयवेहि सगविसयभूदत्थग्गहणादो। वुत्तं च—

णेरइय-देव-तित्थयरोहिक्खेत्तस्सब्भाहिरं एदें।
जाणंति सव्वदो खलु सेसा देसेण जाणंति[6] ॥ २४ ॥

सेसा देसेणेव जाणंति त्ति एत्थ णियमो ण कायव्वो, परमोहि-सव्वोहिणाणगण-

भवके साथ सम्बन्ध रखता है वह क्षेत्र-भवाननुगामी अवधिज्ञान कहलाता है। जो अवधिज्ञान उत्पन्न होकर निर्मूल विनाशको प्राप्त होता है वह सप्रतिपाती अवधिज्ञान है। इसका पूर्वोक्त अवधिज्ञानोंमें प्रवेश नहीं होता है, क्योंकि हायमान, वर्धमान, अवस्थित, अनवस्थित, अनुगामी और अननुगामी इन छहों ही अवधिज्ञानोंसे भिन्नस्वरूप होनेके कारण उनमेंसे किसी एकमें उसका प्रवेश माननेमें विरोध आता है। जो अवधिज्ञान उत्पन्न होकर केवलज्ञानके उत्पन्न होनेपर ही विनष्ट होता है, अन्यथा विनष्ट नहीं होता; वह अप्रतिपाती अवधिज्ञान है। यह भी उन विशेषस्वरूप पहलेके अवधिज्ञानोंमें अन्तर्भूत नहीं होता, क्योंकि, यह सामान्यस्वरूप है। जिस अवधिज्ञानका करण जीवशरीरका एकदेश होता है वह एकक्षेत्र अवधिज्ञान है। जो अवधिज्ञान प्रतिनियत क्षेत्रके विना शरीरके सब अवयवोंमें रहता है वह अनेकक्षेत्र अवधिज्ञान है। तीर्थंकर, देवों और नारकियोंके अनेकक्षेत्र ही अवधिज्ञान होता है, क्योंकि, ये शरीरके सब अवयवों द्वारा अपने विषयभूत अर्थको ग्रहण करते हैं। कहा भी है—

नारकी, देव और तीर्थंकर इनका जो अवधिक्षेत्र है उसके भीतर ये सर्वांगसे जानते हैं और शेष जीव शरीरके एकदेशसे जानते हैं ॥ २४ ॥

शेष जीव शरीरके एकदेशसे ही जानते हैं, इस प्रकारका यहां नियम नहीं करना चाहिये;

१ प्रतिपातीति विनाशी विद्युत्प्रकाशवत् । त. रा. १, २२, ४. से किं तं पडिवाइ ओहिनाणं? पडिवाइ ओहिनाणं जहण्णेणं अंगुलस्स असंखिज्जइभागं वा संखिज्जइभागं वा बालग्गं वा बालग्गपुहत्तं वा लिक्खं वा लिक्खपुहत्तं वा × × × उक्कोसेणं लोगं वा पासित्ता णं पडिवइज्जा से त्तं पडिवाइओहिनाणं। नं. सू. १४. २ अ-आ-काप्रतिषु 'पविस्सदि' इति पाठः। ३ प्रतिषु 'भावमाणस्स' इति पाठः।

४ तद्विपरीतोऽप्रतिपाती। त. रा. १, २२, ४. से किं तं अपडिवाइ ओहिनाणं? अपडिवाइ ओहिनाणं जेण अलोगस्स एगमवि आगासपएसं जाणइ पासइ तेण परं अपडिवाइ ओहिनाणं से त्तं अपडिवाइ ओहिनाणं। नं. सू. १५. ५ अ-आ-काप्रतिषु 'पविस्सदि' इति पाठः। ६ नेरइय-देव-तित्थंकरा य ओहिस्सऽबाहिरा हुंति। पासंति सव्वओ खलु सेसा देसेण पासंति॥ नं. सू. गा. ६४. इति पाठः।

हराईणं सगसव्वावयवेहि सगविसईभूदत्थस्स गहणुवलंभादो। तेण सेसा देसेण सव्वदो च जाणंति[1] त्ति घेत्तव्वं। ओहिणाणमणेयक्खेत्तं चेव, सव्वजीवपदेसेसु अक्कमेण खओवसमं गदेसु सरीरेगदेसेणेव बज्झट्ठावगमाणुववत्तीदो? ण, अण्णत्थ करणाभावेण करणसरूवेण परिणद-सरीरेगदेसेण तदवगमस्स विरोहाभावादो। ण च सकरणो खओवसमो तेण विणा जाणदि, विप्पडिसेहादो। जीवपदेसाणमेगदेसे चेव ओहिणाणावरणक्खओवसमे संते एयक्खेत्तं जुज्जदि त्ति ण पच्चवट्ठेयं, उदयगदगोवुच्छाए सव्वजीवपदेसविसयाए देसट्ठाइणीए[2] संतीए[3] जीवेगदेसे चेव खओवसमस्स वुत्तिविरोहादो। ण चोहिणाणस्स पच्चक्खत्तं पि फिट्टदि अणेयक्खेत्ते अपरायत्ते पच्चक्खलक्खणुवलंभादो। संपहि एयक्खेत्ताणं सरूवपरूवणट्ठमुत्तरसुत्तं भणदि—

खेत्तदो ताव अणेयसंठाणसंठिदा ॥ ५७ ॥

जहा कायाणमिंदियाणं च पडिणियदं संठाणं तहा ओहिणाणस्स ण होदि, किंतु ओहिणाणावरणीयखओवसमगदजीवपदेसाणं करणीभूदसरीरपदेसा अणेयसंठाणसंठिदा होंति।

क्योंकि, परमावधिज्ञानी और सर्वावधिज्ञानी गणधरादिक अपने शरीरके सब अवयवोंसे अपने विषयभूत अर्थको ग्रहण करते हुए देखे जाते हैं। इसलिये शेष जीव शरीरके एकदेशसे और सर्वांगसे जानते हैं, ऐसा यहां ग्रहण करना चाहिये।

शंका—अवधिज्ञान अनेकक्षेत्र ही होता है, क्योंकि, सब जीव प्रदेशोंके युगपत् क्षयोपशमको प्राप्त होनेपर शरीरके एकदेशसे ही बाह्य अर्थका ज्ञान नहीं बन सकता?

समाधान—नहीं, क्योंकि अन्य देशोंमें करणस्वरूपता नहीं है, अतएव करणस्वरूपसे परिणत हुए शरीरके एकदेशसे बाह्य अर्थका ज्ञान माननेमें कोई विरोध नहीं आता। सकरण क्षयोपशम उसके विना जानता है, यह कहना ठीक नहीं है; क्योंकि, इस मान्यताका विरोध है। जीवप्रदेशोंके एकदेशमें ही अवधिज्ञानावरणका क्षयोपशम होनेपर एकक्षेत्र अवधिज्ञान बन जाता है, ऐसा निश्चय करना भी ठीक नहीं है; क्योंकि, उदयको प्राप्त हुई गोपुच्छा सब जीवप्रदेशोंको विषय करती है, इसलिये उसका देशस्थायिनी होकर जीवके एकदेशमें ही क्षयोपशम माननेमें विरोध आता है। इससे अवधिज्ञानकी प्रत्यक्षता विनष्ट हो जाती है, यह कहना भी ठीक नहीं है; क्योंकि, वह अनेक क्षेत्रमें उसके पराधीन न होनेपर उसमें प्रत्यक्षका लक्षण पाया जाता है।

अब एकक्षेत्रोंके स्वरूपका कथन करनेके लिये आगेका सूत्र कहते हैं—

क्षेत्रकी अपेक्षा शरीरप्रदेश अनेक संस्थान संस्थित होते हैं ॥ ५७ ॥

जिस प्रकार शरीरोंका और इन्द्रियोंका प्रतिनियत आकार होता है उस प्रकार अवधिज्ञानका नहीं होता है, किन्तु अवधिज्ञानावरणीय कर्मके क्षयोपशमको प्राप्त हुए जीवप्रदेशोंके करणरूप शरीरप्रदेश अनेक संस्थानोंसे संस्थित होते हैं।

---

१ प्रतिषु 'णाणंति' इति पाठः। २ अ-आ-ताप्रतिषु 'देसट्ठाइणीए', काप्रतौ 'देसट्ठाणीए' इति पाठः। ३ अप्रतौ 'सत्तीए' इति पाठः।

मसुरिय-कुसग्ग-बिंदू सूइकलाओ[1] पदाय संठाणा ।
पुढविदगागणि-वाऊ हरिद-तसा णेयसंठाणा[2] ॥ २५ ॥

एदं कायसंठाणं ।

जवणालिया मसूरी आदिमुत्तय-चंडगे खुरप्पे य ।
इंदियसंठाणा खलु पासं तु अणेयसंठाणं[3] ॥ २६ ॥

एदाणि इंदियसंठाणाणि । एवं काइंदियाणं संठाणाणि अवगदसरूवाणि । एयक्खेत्तोहिणाणस्स संठाणाणि केरिसाणि त्ति पुच्छिदे उत्तरसुत्तं भणदि—

सिरिवच्छ-कलस-संख-सोत्थिय-णंदावत्तादीणि संठाणाणि णादव्वाणि भवंति ॥ ५८ ॥

एत्थ आदिसद्देण अण्णेसिं पि सुहसंठाणाणं गहणं कायव्वं । ण च एक्कस्स जीवस्स एक्कम्हि चेव पदेसे ओहिणाणकरणं होदि त्ति णियमो अत्थि, एग-दो-तिण्णि-चत्तारि-पंच-छआदिखेत्ताणमेगजीवम्हि संखादिसुहसंठाणाणं कम्हि वि संभवादो[4] । एदाणि संठाणाणि तिरिक्ख-मणुस्साणं णाहीए उवरिमभागे होंति, णो हेट्ठा; सुहसंठाणाणमधोभागेण[5] सह

पृथिवीकायका आकार मसूरके समान होता है, जलकायका आकार कुशाग्रबिन्दुके समान होता है, अग्निकायका आकार सूचीकलापके समान होता है, तथा वायुकायका आकार ध्वजपटके समान होता है । हरितकाय तथा त्रसकाय अनेक आकारवाले होते हैं ॥ २५ ॥

यह कायोंका आकार है ।

श्रोत्र, चक्षु, नासिका और जिह्वा इन इन्द्रियोंका आकार क्रमशः यवनाली, मसूर, अतिमुक्तक फूल और अर्धचन्द्र या खुरपाके समान है; तथा स्पर्शन इन्द्रिय अनेक आकारवाली है ॥ २६ ॥

ये इन्द्रियोंके आकार हैं । इस प्रकार काय और इन्द्रियोंके आकार अवगतस्वरूप हैं । किन्तु एकक्षेत्र अवधिज्ञानके आकार कैसे होते हैं, ऐसा पूछनेपर आगेका सूत्र कहते हैं—

श्रीवत्स, कलश, शंख, सांथिया और नन्द्यावर्त आदि आकार जानने योग्य हैं ॥ ५८ ॥

यहां आदि शब्दसे अन्य भी शुभ संस्थानोंका ग्रहण करना चाहिये । एक जीवके एक ही स्थानमें अवधिज्ञानका करण होता है, ऐसा कोई नियम नहीं है, क्योंकि, किसी भी जीवके एक, दो, तीन, चार, पांच और छह आदि क्षेत्ररूप शंखादि शुभ संस्थान सम्भव हैं । ये संस्थान तिर्यंच और मनुष्योंके नाभिके उपरिम भागमें होते हैं, नीचेके भागमें नहीं होते; क्योंकि, शुभ संस्थानोंका

१ अ-आ-काप्रतिषु ' चूईकलाओ ' इति पाठः । २ मसुरिय कुसग्गबिंदू सूइकलावा पडाय संठाणा कायाणं संठाणं हरिद-तसा णेगसंठाणा ॥ मूला. १२-४८. मसुरंबुबिंदु-सूईकलाव-धयसण्णिहो हवे देहो । पुढवीआदिचउण्हं तरु-तसकाया अणेयविहा ॥ गो. जी. २००. ३ जवणालिया मसूरी अतिमुत्तय चंदए खुरप्पे च । इंदियसंठाणा खलु फासस्स अणेयसंठाणं ॥ मूला. १२-५०. चक्खू सोदं घाणं जिब्भायारं मसूर-जवणाली । अतिमुत्त-खुरप्पसमं फासं तु अणेयसंठाणं ॥ गो. जी. १७०. ४ भवपच्चइगो सुर-णिरयाणं तित्थे वि सव्वअंगुत्थो । गुणपच्चइगो णर-तिरियाणं संखादिचिण्हभवो ॥ गो. जी. ३७०. ५ अ-आप्रत्योः ' सुहसंठाणमधोभागेण ', काप्रतौ ' सुहसंठाणमभागेण ', ताप्रतौ 'सुहसंठा[णा] णमधोभागेण ' इति पाठः ।

विरोहादो। तिरिक्ख-मणुस्सविहंगणाणीणं णाहीए हेट्ठा सरडादिअसुहसंठाणाणि होंति त्ति गुरूवदेसो, ण सुत्तमत्थि। विहंगणाणीणमोहिणाणे सम्मत्तादिफलेण समुप्पण्णे सरडादि-असुहसंठाणाणि फिट्टिदूण णाहीए उवरि संखादिसुहसंठाणाणि होंति त्ति घेत्तव्वं। एवमोहिणाणपच्छायदविहंगणाणीणं पि सुहसंठाणाणि फिट्टिदूण असुहसंठाणाणि होंति त्ति घेत्तव्वं। के वि आइरिया ओहिणाण-विभंगणाणाणं खेत्तसंठाणभेदो णाभीए हेट्ठोवरि णियमो च णत्थि त्ति भणंति, दोण्णं पि ओहिणाणत्तं पडि भेदाभावादो। ण च सम्मत्त-मिच्छत्तसहचारेण कदणामभेदादो भेदो अत्थि, अइप्पसंगादो। एदमेत्थ पहाणं कायव्वं।

कालदो ताव समयावलिय-खण-लव-मुहुत्त-दिवस-पक्ख[1]-मास-उडु-अयण-संवच्छर-जुग-पुव्व-पव्व-पलिदोवम-सागरोवमादओ विधओ णादव्वा भवंति ॥ ५९ ॥

अणवट्ठिदस्स ओहिणाणस्स अवट्ठाणकालभेदपदुप्पायणट्ठमेदं सुत्तमागदं। दोण्णं परमाणूणं तप्पाओग्गवेगेण उड्ढमधो च गच्छंताणं सरीरेहि अण्णोण्णफोसणकालो समओ णाम[2]। सो कस्स वि ओहिणाणस्स अवट्ठाणकालो होदि। कुदो? उप्पण्णविदियसमए

अधोभागके साथ विरोध है। तथा तिर्यञ्च और मनुष्य विभंगज्ञानियोंके नाभिसे नीचे गिरगिट आदि अशुभ संस्थान होते हैं। ऐसा गुरुका उपदेश है, इस विषयमें कोई सूत्रवचन नहीं है। विभङ्गज्ञानियोंके सम्यक्त्व आदिके फल स्वरूपसे अवधिज्ञानके उत्पन्न होनेपर गिरगिट आदि अशुभ आकार मिटकर नाभिके ऊपर शंख आदि शुभ आकार हो जाते हैं, ऐसा यहां ग्रहण करना चाहिए। इसी प्रकार अवधिज्ञानसे लौटकर प्राप्त हुए विभंगज्ञानियोंके भी शुभ संस्थान मिटकर अशुभ संस्थान हो जाते हैं, ऐसा यहां ग्रहण करना चाहिए।

कितने ही आचार्य अवधिज्ञान और विभंगज्ञानका क्षेत्रसंस्थानभेद तथा नाभिके नीचे-ऊपरका नियम नहीं है, ऐसा कहते हैं; क्योंकि, अवधिज्ञानसामान्यकी अपेक्षा दोनोंमें कोई भेद नहीं है। सम्यक्त्व और मिथ्यात्वकी संगतिसे किये गये नामभेदके होनेपर भी अवधिज्ञानकी अपेक्षा उनमें कोई भेद नहीं हो सकता; क्योंकि, ऐसा माननेपर अतिप्रसंग दोष आता है। इसी अर्थको यहां प्रधान करना चाहिए।

कालकी अपेक्षा तो समय, आवलि, क्षण, लव, मुहूर्त, दिवस, पक्ष, मास, ऋतु, अयन, संवत्सर, युग, पूर्व, पर्व, पल्योपम और सागरोपम आदि ज्ञातव्य हैं ॥ ६० ॥

अनवस्थित अवधिज्ञानके अवस्थानकालके भेदोंका कथन करनेके लिए यह सूत्र आया है। तत्प्रायोग्य वेगसे एकके ऊपरकी ओर और दूसरेके नीचेकी ओर जानेवाले दो परमाणुओंका उनके शरीर द्वारा स्पर्शन होनेमें लगनेवाला काल समय कहलाता है। वह किसी भी अवधिज्ञानका अवस्थानकाल होता है, क्योंकि, उत्पन्न होनेके दूसरे समयमें ही विनष्ट हुए अवधिज्ञानका एक

१ ताप्रतौ 'लवदिवसमुहुत्तपक्ख-' इति पाठः। २ परमाणुणियट्ठिदगयणपदेसस्स दिक्कमणमेत्तो। जो कालो अविभागी होदि पुढं समयणामा सो ॥ ति. प. ४, २८५. अवरा पज्जायठिदी खणमेत्तं होदि तं च समओ त्ति। दोण्हमणूणमदिक्कमकालपमाणं हवे सो दु ॥ गो. जी. ५७२.

चेव विणट्ठस्स ओहिणाणस्स एगसमयकालुवलंभादो। जीवट्ठाणदिसु ओहिणाणस्स जहण्णकालो अंतोमुहुत्तमिदि पढिदो[1]। तेण सह कधमेदं सुत्तं ण विरुज्झदे? ण एस दोसो, ओहिणाण-सामण्ण-विसेसावलंबणादो। जीवट्ठाणे जेण सामण्णोहिणाणस्स[2] कालो परूविदो तेण तत्थ अंतोमुहुत्तमेत्तो होदि। एत्थ पुण ओहिणाणविसेसेण अहियारो, तेण एक्कम्हि ओहिणाणविसेसे एगसमयमच्छिदूण चिदियसमए वड्ढीए हाणीए वा णाणंतरमुवगयस्स एगसमओ लब्भदे। एवं दो-तिण्णिसमए आदिं कादूण जाव समऊणावलिया त्ति ताव एवं चेव परूवणा कायव्वा। कुदो? दो-तिण्णिआदिसमए अच्छिदूण वि ओहिणाणस्स वड्ढि-हाणीहि णाणंतरगमणुवलंभादो। एवमावलियमेत्तकालं पि ओहिणाणविसेसे अच्छिदूण वड्ढि-हाणीहि णाणंतरगमणं संभवदि। एवं खण-लव-मुहुत्त-दिवस-पक्खादीसु सुत्तुद्दिट्ठेसु ओहिणाणस्स अवट्ठाणपरूवणा कायव्वा।

संपहि खण-लवादीणमत्थपरूवणं कस्सामो। तं जहा— थोवो खणो णाम। सो च संखेज्जावलियमेत्तो होदि। कुदो? संखेज्जावलियाहि एगो उस्सासो, सत्तुस्सासेहि एगो थोवो होदि त्ति परियम्मवयणादो। सत्तहि खणेहि एगो लवो होदि। सत्तहत्तरिलवेहि एगो मुहुत्तो होदि। अधवा सत्ततीससदेहि तेहत्तरिउस्सासेहि[3] एगो मुहुत्तो होदि। वुत्तं च—

समय काल उपलब्ध होता है।

शंका— जीवस्थान आदिमें अवधिज्ञानका जघन्य काल अन्तर्मुहूर्त कहा है। उसके साथ यह सूत्र कैसे विरोधको प्राप्त नहीं होता?

समाधान— यह कोई दोष नहीं है, क्योंकि अवधिज्ञानसामान्य और अवधिज्ञान-विशेषका अवलम्बन लिया गया है। यतः जीवस्थानमें सामान्य अवधिज्ञानका काल कहा है, अतः वहां अन्तर्मुहूर्त मात्र काल होता है। किन्तु यहांपर अवधिज्ञानविशेषका अधिकार है, इसलिए एक अवधिज्ञानविशेषका एक समय काल तक रहकर दूसरे समयमें वृद्धि या हानिके द्वारा ज्ञानान्तर-को प्राप्त हो जानेपर एक समय काल उपलब्ध होता है। इसी प्रकार दो तीन समयसे लेकर एक समय कम आवलि काल तक इसी प्रकार कथन करना चाहिए, क्योंकि, दो या तीन आदि समय तक रहकर भी अवधिज्ञानकी वृद्धि और हानिके द्वारा ज्ञानान्तर रूपसे उपलब्धि देखी जाती है। इसी प्रकार आवलिमात्र काल तक भी अवधिज्ञानविशेषमें रहकर वृद्धि या हानिके द्वारा ज्ञानान्तर रूपसे प्राप्ति सम्भव है। इसी प्रकार सूत्रमें कहे गए क्षण, लव, मुहूर्त, दिवस और पक्ष आदि काल तक अवधिज्ञानके अवस्थानका काल कहना चाहिए।

अब क्षण और लव आदिकोंके अर्थका कथन करते हैं। यथा—क्षणका अर्थ स्तोक है, वह संख्यात आवलि प्रमाण होता है; क्योंकि, संख्यात आवलियोंका एक उच्छ्वास होता है और सात उच्छ्वासोंका एक स्तोक होता है, ऐसा परिकर्म सूत्रका वचन है। सात क्षणोंका एक लव और सतत्तर लवोंका एक मुहूर्त होता है। अथवा तीन हजार सात सौ तिहत्तर उच्छ्वासोंका एक मुहूर्त होता है। कहा भी है—

१ काप्रतौ 'पदिदो', ताप्रतौ 'पदिदो (परूविदो)' इति पाठः। षट्खं. पु. ७, पृ. १६४.
२ प्रतिपु 'सामण्णेहिणाणस्स' इति पाठः। ३ होंति हु असंखसमया आवलिणामो तहेव उस्सासो। संखेज्जावलिणिवहो सो च्चिय पाणो त्ति विक्खादो॥ सत्तुस्सासो थोवं सत्तत्थोवा लवित्ति णादव्वो। सत्तत्तरिदलिदलवा णाली वेणालिया मुहुत्तं च॥ ति. प. ४, २८६-८७.

तिण्णि सहस्सा सत्त य सयाणि तेवत्तरिं च उस्सासा ।
एसो हवदि मुहुत्तो सव्वेसिं चेव मणुयाणं ॥ २७ ॥

तीसमुहुत्तेहि दिवसो होदि । पण्णरसदिवसेहि पक्खो होदि । बेहि पक्खेहि मासो । बेमासे उडू । तीहि उडूहि अयणं । अयणेहि बेहि संवच्छरो । पंचहि संवच्छरेहि जुगो । सत्तरिकोडिलक्ख-छप्पण्णसहस्सकोडिवरिसेहि पुव्वं होदि । वुत्तं च—

पुव्वस्स दु परिमाणं सदरिं खलु कोडिसयसहस्साइं ।
छप्पण्णं च सहस्सा बोद्धव्वा वस्सकोडीणं[1] ॥ २८ ॥

७०५६०००००००००० । पुणो एदाणि एगपुव्ववस्साणि ट्ठवेदूण लक्खगुणिदेण चउरासीदिवग्गेण गुणिदे पव्वं होदि[2] । असंखेज्जेहि वस्सेहि पलिदोवमं होदि ।

योजनं विस्तृतं पल्यं यच्च योजनमुच्छ्रितम् ।
आसप्ताहःप्ररूढानां केशानां तु सुपूरितम् ॥ २९ ॥
ततो वर्षशते पूर्णे एकैके रोम्णि उद्धृते ।
क्षीयते येन कालेन तत्पल्योपममुच्यते[3] ॥ ३० ॥

इति वचनात् संखेज्जेहि वि[4] वस्सेहि ववहारपल्लं होदि, तमेत्थ किण्ण घेप्पदे ?

सब मनुष्योंके तीन हजार सात सौ तिहत्तर उच्छ्वासोंका एक मुहूर्त होता है ॥ २७ ॥

तीस मुहूर्तका एक दिन होता है । पन्द्रह दिनका एक पक्ष होता है । दो पक्षका एक महीना होता है । दो महीनेकी एक ऋतु होती है । तीन ऋतुओंका एक अयन होता है । दो अयनोंका एक वर्ष होता है । पांच वर्षका एक युग होता है । सत्तर लाख करोड़ और छप्पन हजार करोड़ वर्षोंका एक पूर्व होता है । कहा भी है—

सत्तर लाख करोड़ और छप्पन हजार करोड़ वर्षप्रमाण पूर्वका परिमाण जानना चाहिए ॥२८॥
७०५६०००००००००० ।

पुनः एक पूर्वके इन वर्षोंको स्थापित कर एक लाखसे गुणित चौरासीके वर्गसे गुणा करनेपर पर्व होता है । असंख्यात वर्षोंका पल्योपम होता है ।

शंका— एक योजन व्यासवाला और एक योजन ऊँचा पल्य अर्थात् कुशूल लेकर उसे एक दिनसे लेकर सात दिन तकके उगे हुए केशोंसे भर दे । अनन्तर पूरे सौ-सौ वर्ष होनेपर एक-एक रोम निकाले, जितने कालमें वह खाली होगा उतने कालको पल्योपम कहते हैं ॥ २९–३० ॥

इस वचनके अनुसार संख्यात वर्षोंका भी एक व्यवहार पल्य होता है । उसका ग्रहण यहां क्यों नहीं करते ?

१ स. सि. ३-३१ (उद्धृता). जं. प. १३-१२. प्र. सारो. १३८७. २ पूर्वं चतुरशीतिघ्नं पूर्वाङ्गं परिभाष्यते । पूर्वाङ्गताडितं तत्तु पर्वाङ्गं पर्वमिष्यते ॥ आ. पु. ३, २१९. ३ प्रमाणयोजनव्यासस्त्रावगाढ-विशेषवत् । त्रिगुणं परिवेषेण क्षेत्रं पर्यन्तभित्तिकम् ॥ सप्ताहान्ताविरोमाग्रैरापूर्य कठिनीकृतम् । तदुद्धार्यमिदं पल्यं व्यवहाराख्यमिष्यते । एकैकस्मिंस्ततो रोम्णि प्रत्यब्दशतमुद्धृते । यावतास्य क्षयः कालः पल्यं व्युत्पत्तिमात्रकृत् ॥ ह. पु. ७, ४७-४९. ४ काप्रतौ 'संखेज्जेहिम्मि' इति पाठः ।

ण, तत्थ वि वरिससयसद्दो विउलत्तवाचओ त्ति असंखेज्जेसु वरिससदेसु अदिक्कंतएसु एगरोमसमुद्धरणादो असंखेज्जेहि चेव वस्सेहि पलिदोवमं होदि। दसकोडाकोडिपलिदोवमेहि एगं सागरोवमं होदि। वुत्तं च—

कोटिकोटयो दशैतेषां पल्यानां सागरोपमम्।
सागरोपमकोटीनां दश कोटयोऽवसर्पिणी ॥ ३१ ॥

समयावलियादिसुत्तपदाणि जेण देसामासियाणि तेण एदेसिं विच्चालिमसंखाए गहणं कायव्वं। अधवा, आदिसद्दो पयारवाचओ तेण एदेसिमंतरकालसंखाणं सागरोवमादो उवरिमसंखाणं च गहणं कायव्वं। उप्पण्णपढमसमयप्पहुडि एत्तियं कालमच्छिदूण अणवट्टिद-मोहिणाणं वड्ढिदूण वा हाइदूण वा णाणंतरं गच्छदि त्ति भणिदं होदि। संपहि जहण्ण-ओहिणाणस्स खेत्तपरूवणपदुप्पायणट्ठमुत्तरसुत्तं भणदि—

ओगाहणा जहण्णा णियमा दु सुहुमणिगोदजीवस्स।
जद्देही तद्देही जहण्णिया खेत्तदो ओही ॥ ३ ॥

एदस्स सुत्तस्स अत्थो वुच्चदे। तं जहा—एगमुस्सेहघणंगुलं ठविय पलिदोवमस्स असंखेज्जदिभागेण खंडिदे तत्थ एयखंडपमाणं सुहुमणिगोदजीवअपज्जत्तयस्स तदियसमय-

---

समाधान—नहीं, क्योंकि वहांपर भी वर्षशत शब्दको वैपुल्यवाची ग्रहण किया है; इसलिए असंख्यात सौ वर्षोंके व्यतीत होनेपर एक रोम निकाले। अतः असंख्यात वर्षोंका ही एक पल्योपम होता है।

दस कोड़ाकोड़ी पल्योपमोंका एक सागर होता है। कहा भी है—

इन दस कोड़ाकोड़ी पल्योंका एक सागरोपम होता है और दस कोड़ाकोड़ी सागरोपमोंका एक अवसर्पिणी काल होता है ॥ ३१ ॥

सूत्रमें जो समय, आवलि आदि पद कहे हैं वे देशामर्शक हैं, अतः इनके बीचकी संख्याका भी ग्रहण करना चाहिए। अथवा आदि शब्द प्रकारवाची है, इसलिए इनके मध्यमें आनेवाले कालोंकी संख्याओंका और सागरोपमसे ऊपरकी संख्याओंका ग्रहण होता है। अनवस्थित अवधि-ज्ञान उत्पन्न होनेके प्रथम समयसे लेकर इतने काल तक अवस्थित रहकर वृद्धिको प्राप्त होकर या हानिको प्राप्त होकर ज्ञानान्तरको प्राप्त होता है, यह उक्त कथनका तात्पर्य है। अब जघन्य अवधिज्ञानके क्षेत्रका कथन करनेके लिए आगेका सूत्र कहते हैं—

सूक्ष्म निगोद लब्ध्यपर्याप्तक जीवकी जितनी जघन्य अवगाहना होती है उतना अवधिज्ञानका जघन्य क्षेत्र है ॥ ३ ॥

इस सूत्रका अर्थ कहते हैं। यथा—एक उत्सेधघनांगुलको स्थापित कर उसमें पल्योपमके असंख्यातवें भागका भाग देनेपर जो एक खण्डप्रमाण लब्ध आता है उतनी तीसरे समयमें

---

१ ताप्रतौ '-सद्दे (दे) सु' इति पाठः। २ ह. पु. ७, ५१ पूर्वार्द्धम्. ३ म. बं. १, पृ. २१. षट्खं. पु. ९ पृ. १६. जावइया तिसमयाहारगस्स सुहुमस्स पणगजीवस्स। ओगाहणा जहन्ना ओहीखित्तं जहन्नं तु ॥ नं. सू. गा. ४८. विशेपा. ५९१.

आहार-तदियसमयतब्भवत्थस्स जहण्णिया ओगाहणा होदि । जद्देही जावद्धा एसा ओगाहणा तद्देही तावद्धा चेव जहण्णिया ओही खेत्तदो होदि । तद्देही चेवे त्ति अवहारणं कुदोवलब्भदे ? णियमणिद्देसादो । समुदायेषु प्रवृत्ताः शब्दा अवयवेष्वपि वर्तन्त इति न्यायात् । सुहुमणिगोदजीवअपज्जत्तयस्स[1] ओगाहणाए एगागासपंतीए वि ओगाहण-सण्णा अत्थि त्ति तद्देही खेत्तदो जहण्णिया ओहि त्ति किण्ण घेप्पदे ? ण, जहण्णभावेण विसेसिदओगाहणणिद्देसादो । ण च एगोली जहण्णोगाहणा होदि, समुदाए वक्कपरि-समत्तिमस्सिदूण तत्थतणसव्वागासपदेसाणं गहणादो । पादेक्कं वक्कपरिसमत्ती एत्थ ण गहिदा त्ति कधं णव्वदे ? आइरियपरंपरागदअविरुद्धुवदेसादो । तम्हा जद्देही जहण्णिया ओगाहणा तद्देही खेत्तदो जहण्णोहि[2] त्ति सिद्धं ।

एदं जहण्णोगाहणक्खेत्तं एगागासपदेसोलीए रचेदूण तदंते ट्ठिदं जहण्णदव्वं जाणदि त्ति किण्ण घेप्पदे ? ण, जहण्णोगाहणादो असंखेज्जगुणजहण्णोहिखेत्तप्पसंगादो । जं जहण्णोहि-

आहारको ग्रहण करनेवाले और तीसरे समयमें तद्भवस्थ हुए सूक्ष्म निगोद लब्ध्यपर्याप्तक जीवकी जघन्य अवगाहना होती है । 'जद्देही' अर्थात् जितनी यह अवगाहना होती है 'तद्देही' उतना ही क्षेत्रकी अपेक्षा जघन्य अवधिज्ञान होता है ।

शंका—'उतना ही' ऐसा अवधारण वचन किस प्रमाणसे उपलब्ध होता है ?

समाधान—सूत्रमें जो नियम पदका निर्देश किया है, उससे जाना जाता है कि यह सावधारण वचन है, क्योंकि, समुदायोंमें प्रवृत्त हुए शब्द अवयवोंमें भी रहते हैं, ऐसा न्याय है ।

शंका—सूक्ष्म निगोद लब्ध्यपर्याप्तक जीवकी अवगाहनाकी एक आकाशपंक्तिकी भी अवगाहना संज्ञा है, इसलिए क्षेत्रकी अपेक्षा जघन्य अवधिज्ञान तत्प्रमाण क्यों नहीं ग्रहण करते ?

समाधान—नहीं, क्योंकि जघन्य विशेषणसे युक्त अवगाहनाका निर्देश किया है । एक आकाशपंक्ति जघन्य अवगाहना होती है, यह कहना ठीक नहीं है; क्योंकि, समुदाय रूप अर्थमें वाक्यकी परिसमाप्ति इष्ट है । इसलिए सूक्ष्म निगोद लब्ध्यपर्याप्तक जीवकी अवगाहनामें स्थित सब आकाशप्रदेशोंका ग्रहण किया है ।

शंका—यहांपर अवयवरूप अर्थमें वाक्यकी परिसमाप्ति ग्रहण नहीं की गई है, यह किस प्रमाणसे जानते हो ?

समाधान—आचार्यपरम्परासे आए हुए अविरुद्ध उपदेशसे जानते हैं ।

इसलिए जितनी जघन्य अवगाहना होती है, उतना क्षेत्रकी अपेक्षा जघन्य अवधिज्ञान है; यह सिद्ध होता है ।

शंका—इस जघन्य अवधिज्ञानके क्षेत्रको एक अकाशप्रदेशपंक्तिरूपसे स्थापित करके उसके भीतर स्थित जघन्य द्रव्यको जानता है, ऐसा यहां क्यों नहीं ग्रहण करते ?

समाधान—नहीं; क्योंकि ऐसा ग्रहण करनेपर जघन्य अवगाहनासे असंख्यातगुणे जघन्य अवधिज्ञानके क्षेत्रका प्रसंग प्राप्त होता है । जो जघन्य अवधिज्ञानसे अवरुद्ध क्षेत्र है, वह

१ ताप्रतौ 'सुहुमणिगोदअपज्जत्तयस्स' इति पाठः । २ अप्रतौ 'जहण्णोहोदि' इति पाठः ।

णाणेण अवरुद्धखेत्तं तं जहण्णोहिखेत्तं णाम । तं च एत्थ जहण्णोगाहणादो असंखेज्जगुणं दिस्सदे । तं जहा— जहण्णोगाहणाखेत्तायामेण जहण्णदव्वविक्खंभुस्सेहेहि ट्ठिदओहिक्खेत्तस्स खेत्तफले आणिज्जमाणे जहण्णोगाहणाए जहण्णदव्वविक्खंभुस्सेहेहि गुणिदाए जहण्णोगाहणादो असंखेज्जगुणं खेत्तमुवलब्भदे । ण च एवं होदि त्ति वोत्तुं जुत्तं, जत्तिया जहण्णोगाहणा[1] तत्तियं चेव जहण्णोहिखेत्तमिदि सुत्तेण सह विरोहादो । ण च एवं ठविदजहण्णखेत्तस्स चरिमागासपदेसे जहण्णदव्वं सम्मादि, एगजीवपडिवद्धस्स विस्सासोवचयसहिदणोकम्मपिंडस्स घणलोगेण खंडिदएगखंडमेत्तस्स जहण्णदव्वस्स एगवग्गणाए वि अंगुलस्स असंखेज्जदिभागमेत्तओगाहणुवलंभादो । ण च ओहिणाणी एगागाससूचीए जाणदि त्ति वोत्तुं जुत्तं, जहण्णमदिणाणादो वि तस्स जहण्णत्तप्पसंगादो जहण्णदव्वअवगमोवायाभावादो च । तम्हा जहण्णोहिणाणेण अवरुद्धखेत्तं सव्वमुच्चिणिदूण घणपदरागारेण ट्ठइदे सुहुमणिगोदअपज्जत्तयस्स जहण्णोगाहणपमाणं होदि त्ति घेत्तव्वं । जहण्णोहिणिबंधणस्स खेत्तस्स को विक्खंभो को उस्सेहो को वा आयामो त्ति भणिदे णत्थि एत्थ उवदेसो, किंतु ओहिणिवद्धक्खेत्तस्स पदरघणागारेण ट्ठइदस्स पमाणमुस्सेहघणंगुलस्स असंखेज्जदिभागो त्ति उवएसो[2] । एवं जहण्ण-

जघन्य अवधिज्ञानका क्षेत्र कहलाता है। किन्तु यहांपर वह जघन्य अवगाहनासे असंख्यातगुणा दिखाई देता है। यथा—जितना जघन्य अवगाहनाके क्षेत्रका आयाम है तत्प्रमाण जघन्य द्रव्यके विष्कम्भ और उत्सेधरूपसे स्थित अवधिज्ञानके क्षेत्रका क्षेत्रफल लानेपर जघन्य अवगाहनाको जघन्य द्रव्यके विष्कम्भ और उत्सेधसे गुणित करनेपर जघन्य अवगाहनासे असंख्यात गुणा क्षेत्र उपलब्ध होता है। परन्तु यह क्षेत्र इसी प्रकार होता है, यह कहना भी योग्य नहीं है; क्योंकि "जितनी जघन्य अवगाहना है उतना ही जघन्य अवधिज्ञानका क्षेत्र है" ऐसा प्रतिपादन करनेवाले सूत्रके साथ उक्त कथनका विरोध होता है। और इस तरहसे स्थापित जघन्य क्षेत्रके अन्तिम आकाशप्रदेशमें जघन्य द्रव्य समा जाता है, ऐसा कहना ठीक नहीं है; क्योंकि, एक जीवसे सम्बन्ध रखनेवाले, विस्रसोपचयसहित नोकर्मके पिण्डरूप और घनलोकका भाग देनेपर प्राप्त हुए एक खण्डमात्र जघन्य द्रव्यकी एक वर्गणाकी भी अङ्गुलके असंख्यातवें भागप्रमाण अवगाहना उपलब्ध होती है। अवधिज्ञानी एक आकाशप्रदेशसूची रूपसे जानता है यह कहना भी युक्त नहीं है, क्योंकि, ऐसा माननेपर वह जघन्य मतिज्ञानसे भी जघन्य प्राप्त होता है और जघन्य द्रव्यके जाननेका अन्य उपाय भी नहीं रहता। इसलिए जघन्य अवधिज्ञानके द्वारा अवरुद्ध हुए सब क्षेत्रको उठाकर घनप्रतरके आकाररूपसे स्थापित करनेपर सूक्ष्म निगोद लब्ध्यपर्याप्तक जीवकी जघन्य अवगाहना प्रमाण होता है, ऐसा यहां ग्रहण करना चाहिए। जघन्य अवधिज्ञानसे सम्बन्ध रखनेवाले क्षेत्रका क्या विष्कम्भ है, क्या उत्सेध है और क्या आयाम है; ऐसा पूछनेपर कहते हैं कि इस सम्बन्धमें कोई उपदेश उपलब्ध नहीं होता। किन्तु घनप्रतराकाररूपसे स्थापित अवधिज्ञान सम्बन्धी क्षेत्रका प्रमाण उत्सेधघनांगुलके असंख्यातवें भाग है, यह उपदेश अवश्य ही उपलब्ध होता

१ ताप्रतौ 'जहण्णो गाहणा [ए]' इति पाठः। २ अवरोहिक्खेत्तदीहं वित्थारुस्सेहयं ण जाणामो। अण्णं पुण समकरणे अवरोगाहणपमाणं तु ॥ अवरोगाहणमाणं उस्सेहंगुलअसंखभागस्स। सूइस्स य घणपदरं होदि हु तक्खेत्तसमकरणे ॥ गो. जी. ३७८-७९.

मोहिक्खेत्तं तिरिक्ख-मणुस्सगइसंबंधियं परूवियं । संपहि ओहिणिबद्धखेत्तपडिबद्धकालस्स कालणिबद्धखेत्तस्स वा पदुप्पायणट्ठमुत्तरगाहाओ भणदि—

अंगुलमावलियाए भागमसंखेज्ज दो वि संखेज्जा ।
अंगुलमावलियंतो आवलियं चांगुलपुधत्तं[1] ॥ ४ ॥

एदिस्से गाहाए अत्थो वुच्चदे । तं जहा— अंगुलं ति वुत्ते पमाणघणंगुलं घेत्तव्वं[2], देव-णेरइय-तिरिक्ख-मणुस्साणमुस्सेहपरूवणं मोत्तूण अण्णत्थ पमाणांगुलादीणं गहणं कायव्व-

---

हैं । इस प्रकार तिर्यञ्च और मनुष्यगति सम्बन्धी जघन्य अवधिज्ञानके क्षेत्रका कथन किया ।

विशेषार्थ— यहां जघन्य अवधिज्ञानके क्षेत्रका विचार करते हुए उसे सूक्ष्म निगोद लब्ध्य-पर्याप्तककी तीसरे समयमें प्राप्त होनेवाली जघन्य अवगाहना प्रमाण बतलाया है । सूक्ष्म निगोद लब्ध्यपर्याप्तकके क्षुद्र भव ६०१२ होते हैं । जो जीव इन सब भवोंको क्रमसे धारणकर अन्तिम भवमें दो मोड़ा लेकर उत्पन्न होता है उसके यह जघन्य अवगाहना होती है और इतना ही अवधिज्ञानका जघन्य क्षेत्र होता है, यह उक्त कथनका तात्पर्य है । कितने ही आचार्य इस कथनका इस प्रकार व्याख्यान करते हैं कि सूक्ष्म निगोद लब्ध्यपर्याप्तकी जितनी जघन्य अवगाहना होती है उतने आकाशप्रदेशोंको एक श्रेणिमें स्थापित करनेपर अवधिज्ञानका जघन्य क्षेत्र होता है । पर यह कथन ठीक नहीं है, क्योंकि, ऐसा माननेपर एक तो यह क्षेत्र उक्त क्षेत्रसे असंख्यातगुणा हो जाता है और दूसरे इस प्रकारके क्षेत्रमें जघन्य अवधिज्ञानका द्रव्य नहीं माता । अतः पूर्वोक्त प्रकारसे ही अवधिज्ञानका जघन्य क्षेत्र मानना चाहिए और यह कथन इसका प्रतिपादन करने-वाले सूत्रका अविरोधी भी है ।

अब अवधिज्ञानके क्षेत्रसे सम्बन्ध रखनेवाले कालका और कालसे सम्बन्ध रखनेवाले क्षेत्रका कथन करनेके लिए आगेके गाथासूत्र कहते हैं—

जहां अवधिज्ञानका क्षेत्र घनाङ्गुलके असंख्यातवें भाग प्रमाण है वहां काल आवलिके असंख्यातवें भाग प्रमाण है । जहां क्षेत्र घनाङ्गुलका संख्यातवां भाग है वहां काल आवलीका संख्यातवां भाग है । जहां क्षेत्र घनाङ्गुलप्रमाण है वहां काल कुछ कम एक आवलि प्रमाण है । जहां काल एक आवलिप्रमाण है वहां क्षेत्र घनाङ्गुलपृथक्त्व प्रमाण है ॥ ४ ॥

अब इस गाथाका अर्थ कहते हैं । यथा— अंगुल ऐसा कहनेपर प्रमाणघनांगुल लेना चाहिए, क्योंकि देव, नारकी, तिर्यञ्च और मनुष्योंके उत्सेधके कथनके सिवा अन्यत्र प्रमाणांगुल

---

१ म. बं. १, पृ. २१. षट्खं. पु. ९, पृ. २४. अंगुलमावलियाणं भागमसंखिज्ज दोसु संखिज्जा । अंगुलमावलिअंतो आवलिया अंगुलपुहुत्तं ॥ नं. सू. गा. ५०. २ उस्सेहअंगुलेणं सुराण णर-तिरिय-णार-याणं च । उस्सेहंगुलमाणं चउदेवणिकेदणयराणि ॥ दीवोदहि-सेलाणं वेदीण णदीण कुंड-जगदीणं । वस्साणं च पमाणं होदि पमाणंगुलेणेव ॥ ति. प. १, ११०-११. अवरं तु ओहिखेत्तं उस्सेहं अंगुलं हवे जम्हा । सुहुमोगाहणमाणं उवरि पमाणं तु अंगुलयं ॥ गो. जी. ३८०.

मिदि गुरूवदेसादो। एदमंगुलमसंखेज्जखंडाणि कायव्वं। तत्थ एगखंडमेत्तं जस्स ओहिणाणस्स ओहिणिबद्धखेत्तं घणागारेण ट्ठइज्जमाणो[1] होदि सो कालदो आवलियाए असंखेज्जदिभागं जाणदि। कुदो? साभावियादो। आवलियाए असंखेज्जदिभागे काले तीदाणागयं च दव्वं जाणदि त्ति भणिदं होदि। ओहिणाणखेत्त-कालाणमेसो एगो चेव किं वियप्पो होदि आहो अण्णो वि अत्थि त्ति पुच्छिदे दो वि संखेज्जे त्ति भणिदं। खेत्त-काला दो वि संखेज्जदिभागमेत्ता वि होंति ति एत्थ संबंधो कायव्वो। केसिं संखेज्जदिभागमेत्ता? अंगुलस्स आवलियाए च। कुदोवगम्मदे? अहियाराणुवुत्तीदो। खेत्तदो अंगुलस्स संखेज्जदिभागं जाणंतो कालदो आवलियाए संखेज्जदिभागं[2] चेव जाणदि त्ति भणिदं होदि। कुदो? साभावियादो। खेत्तदो अंगुलं जाणंतो कालदो आवलियाए अंतो जाणदि। एत्थ अंगुलमिदि वुत्ते पमाणघणंगुलं घेत्तव्वं। आवलियंतो त्ति भणिदे देसूणावलिया घेत्तव्वा। जस्स ओहिणाणिस्स ओहिणिबद्धखेत्तं घणागारेण ट्ठइदं संतमंगुलपुधत्तं होदि सो कालदो सगलमावलियं जाणदि।

आदिका ग्रहण करना चाहिये, ऐसा गुरुका उपदेश है। इस अंगुलके असंख्यात खण्ड करने चाहिए। उनमेंसे एक खण्डमात्र जिस अवधिज्ञानका अवधिसे सम्बन्ध रखनेवाला क्षेत्र घनप्रतर आकाररूपसे स्थापित करनेपर होता है वह कालकी अपेक्षा आवलिके असंख्यातवें भागको जानता है, क्योंकि, ऐसा स्वभाव है। आवलिके असंख्यातवें भागप्रमाण कालके भीतर अतीत और अनागत द्रव्यको जानता है, यह उक्त कथनका तात्पर्य है। अवधिज्ञानके क्षेत्र और कालका क्या यह एक ही विकल्प होता है या अन्य भी विकल्प है, ऐसा पूछनेपर 'दो वि संखेज्जा' ऐसा कहा है। क्षेत्र और काल ये दोनों ही संख्यातवें भागप्रमाण भी होते हैं, ऐसा यहां सम्बन्ध करना चाहिए।

शंका— किनके संख्यातवें भागप्रमाण होते हैं?

समाधान— अंगुलके और आवलिके।

शंका— यह किस प्रमाणसे जाना जाता है?

समाधान— अधिकारकी अनुवृत्ति होनेसे। अंगुल और आवलिका यहां अधिकार है, उनकी अनुवृत्ति होनेसे यह जाना जाता है।

क्षेत्रकी अपेक्षा अंगुलके संख्यातवें भागको जाननेवाला कालकी अपेक्षा आवलिके संख्यातवें भागको ही जानता है, यह उक्त कथनका तात्पर्य है; क्योंकि, ऐसा स्वभाव है। क्षेत्रकी अपेक्षा एक अंगुलप्रमाण क्षेत्रको जाननेवाला कालकी अपेक्षा आवलिके भीतर जानता है। यहांपर 'अंगुलं' ऐसा कहनेपर प्रमाणघनांगुल लेना चाहिए और 'आवलियंतो' ऐसा कहनेपर कुछ कम एक आवलि लेनी चाहिए। जिस अवधिज्ञानीका अवधिसे सम्बन्ध रखनेवाला क्षेत्र घनप्रतराकाररूपसे स्थापित करनेपर अंगुलपृथक्त्व प्रमाण होता है वह कालकी अपेक्षा एक सम्पूर्ण आवलिकी बात जानता है।

---

१ अ-आ-काप्रतिषु 'ट्टइज्जमाणे' इति पाठः। २ अ-आप्रत्योः 'असंखे० भागं', ताप्रतौ '[अ] संखे० भागं' इति पाठः (काप्रतौ त्रुटितोऽत्र पाठः)।

आवलियपुधत्तं घणहत्थो[1] तह गाउअं मुहुत्तंतो ।
जोयण भिण्णमुहुत्तं दिवसंतो पण्णवीसं तु[2] ॥ ५ ॥

जस्स ओहिणाणिस्स ओहिणिबद्धक्खेत्तं घणपदरागारेण ट्ठइदं संतं घणहत्थो होदि [सो कालदो] आवलियपुधत्तं सत्तट्ठावलियाओ जाणदि । जस्स ओहिणाणिस्स ओहिणिबद्धक्खेत्तं घणागारेण ट्ठइदं संतं घणगाउअं होदि सो कालदो मुहुत्तंतो अंतोमुहुत्तं जाणदि । जस्स ओहिणाणिस्स ओहिणिबद्धक्खेत्तं घणागारेण ट्ठइदं संतं घणजोयणं होदि सो कालदो भिण्णमुहुत्तं समऊणमुहुत्तं जाणदि । किमट्ठं घणागारेण ट्ठइदूण ओहिणिबद्धक्खेत्तस्स णिद्देसो कीरदे ? ण, अण्णहा अद्धँपमाणेहिंतो पुधभूदस्स कहणोवायाभावादो । जोयणसूई जोयण-पदरं वा किण्ण घेप्पदे ? ण, जहण्णक्खेत्तादो एदस्स असंखेज्जगुणहीणत्तप्पसंगादो । ण च एवं । कुदो ? कालस्स भिण्णमुहुत्तुवदेसण्णहाणुववत्तीदो । जस्स ओहिणाणिस्स ओहि-णिबद्धक्खेत्तं घणागारेण ट्ठइदं संतं पंचवीसजोयणघणाणि होदि सो कालदो दिवसंतो देसूण-दिवसं जाणदि ।

जहां काल आवलिपृथक्त्वप्रमाण है वहां क्षेत्र घनहाथप्रमाण है । जहां क्षेत्र घनकोस-प्रमाण है वहां काल अन्तर्मुहूर्त है । जहां क्षेत्र घनयोजनप्रमाण है वहां काल भिन्नमुहूर्त है। जहां काल कुछ कम एक दिवसप्रमाण है वहां क्षेत्र पच्चीस घनयोजन है ॥ ५ ॥

जिस अवधिज्ञानीका अवधिसे सम्बन्ध रखनेवाला क्षेत्र घनप्रतराकार रूपसे स्थापित करनेपर घनहाथ प्रमाण होता है वह कालकी अपेक्षा आवलिपृथक्त्व अर्थात् सात-आठ आवलियोंकी बात जानता है। जिस अवधिज्ञानीका अवधिनिबद्ध क्षेत्र घनप्रतराकाररूपसे स्थापित करनेपर घनकोसप्रमाण होता है वह कालकी अपेक्षा ' मुहुत्तंतो ' अर्थात् अन्तर्मुहूर्तकी बात जानता है। जिस अवधिज्ञानीका अवधिनिबद्ध क्षेत्र घनाकाररूपसे स्थापित करनेपर घनयोजन प्रमाण होता है वह कालकी अपेक्षा भिन्नमुहूर्त अर्थात् एक समय कम मुहूर्तकी बात जानता है।

शंका— अवधिनिबद्ध क्षेत्रका घनाकाररूपसे स्थापित करके किसलिये निर्देश करते हैं ?

समाधान— नहीं, क्योंकि अन्यथा कालप्रमाणोंसे पृथग्भूत क्षेत्रके कथन करनेका अन्य कोई उपाय नहीं है। इसलिए अवधिनिरुद्ध क्षेत्रको घनाकाररूपसे स्थापित कर उसका निर्देश करते हैं।

शंका— यहांपर सूचीयोजन व प्रतरयोजन क्षेत्रका ग्रहण क्यों नहीं किया है ?

समाधान— नहीं, क्योंकि ऐसा होनेपर जघन्य क्षेत्रकी अपेक्षा यह असंख्यातगुणा हीन प्राप्त होता है। परन्तु ऐसा है नहीं, क्योंकि, कालका भिन्नमुहूर्तप्रमाण उपदेश अन्यथा बन नहीं सकता।

जिस अवधिज्ञानीका अवधिनिबद्ध क्षेत्र घनाकाररूपसे स्थापित करनेपर पच्चीस घन-योजन होता है वह कालकी अपेक्षा ' दिवसंतो ' अर्थात् कुछ कम एक दिवसकी बात जानता है।

---

१ ताप्रतौ '[पुण] घणहत्थो' इति पाठः । २ षट्खं. पु. ९, पृ. २५. ३ प्रतिषु 'अट्ट' इति पाठः ।

भरहम्मि अद्धमासं साहियमासं च जंबुदीवम्मि ।
वासं च मणुअलोए वासपुधत्तं च रुजगम्मि[1] ॥ ६ ॥

छव्वीसजोयणाहियपंचजोयणसयाणि छक्कला य भरहो त्ति भण्णदि[2] । कुदो ? समुदायेषु प्रवृत्ताः शब्दा अवयवेष्वपि वर्त्तन्त इति न्यायात् । एदस्स घणो एत्थ भरहो त्ति घेत्तव्वो, कार्ये कारणोपचारात् । एत्थ कालो अद्धमासो होदि । जस्स ओहिणाणिस्स ओहिणिबद्धक्खेत्तं घणागारेण ट्ठइदं संतं भरहघणमेत्तं होदि सो कालेण अद्धमासं जाणदि त्ति भणिदं होदि । पुव्वं व जोयणलक्खघणो जंबूदीवो णाम । तम्हि कालो मासो सादिरेयो । जं ओहिणिबद्धं खेत्तं घणागारेण ट्ठइदे जोयणलक्खघणमेत्तखेत्तं होदि तम्हि[3] कालो सादिरेयमासमेत्तो होदि त्ति भणिदं होदि । पणदालीसजोयणलक्खघणो पुव्वं व मणुवलोगो होदि, तम्हि मणुअलोए कालो एगं वस्सं । जम्हि ओहिणिबद्धक्खेत्ते घणागारेण ट्ठइदे पणदालीसजोयणलक्खघणो उप्पज्जदि तत्थ कालो एगवस्समेत्तो होदि त्ति भणिदं होदि । रुजगवरदीवस्स बाहिरदोपासपेरंताणं मज्झिमजोयणाणि रुजगवरं णाम, अवयवेषु प्रवृत्ताः शब्दाः समुदायेष्वपि वर्त्तन्ते इति न्यायात् । तस्स घणो वि रुजगवरो णाम, कार्ये कारणोपचारात् । तत्थ कालो वासपुधत्तं होदि । अद्धसयलयंदआगारेण संठिदभरह-

जहां घनरूप भरतवर्ष क्षेत्र है वहां काल आधा महीना है। जहां घनरूप जम्बूद्वीप क्षेत्र है वहां काल साधिक एक महीना है। जहां घनरूप मनुष्यलोक क्षेत्र है वहां काल एक वर्ष है। जहां घनरूप रुचकवर द्वीप क्षेत्र है वहां काल वर्षपृथक्त्व है ॥ ६ ॥

भरतक्षेत्र पांच सौ छब्बीस सही छह बटे उन्नीस योजनप्रमाण कहा जाता है, क्योंकि, समुदायमें प्रवृत्त हुए शब्द अवयवोंमें भी रहते हैं, ऐसा न्याय है। यहां इसका घनरूप भरतक्षेत्र लेना चाहिए, क्योंकि यहां कार्यमें कारणका उपचार किया गया है। यहां काल अर्ध मासप्रमाण होता है। जिस अवधिज्ञानीका अवधिनिबद्ध क्षेत्र घनाकाररूपसे स्थापित करनेपर भरत क्षेत्रके घनप्रमाण होता है वह कालकी अपेक्षा अर्ध मासकी बात जानता है, यह उक्त कथनका तात्पर्य है। यहां जम्बूद्वीप पदसे पहलेके समान एक लाख योजनके घनप्रमाण जम्बूद्वीप लिया गया है। इतना क्षेत्र होनेपर काल साधिक एक महिना होता है। जो अवधिज्ञानसे सम्बन्ध रखनेवाला क्षेत्र घनाकाररूपसे स्थापित करनेपर एक लाख योजनके घनप्रमाण होता है उसमें काल साधिक एक महीना होता है, यह उक्त कथनका तात्पर्य है। पैंतालीस लाख योजनके घनप्रमाण पहलेके समान मनुष्यलोक होता है, उस मनुष्यलोक प्रमाण क्षेत्रके होनेपर काल एक वर्ष प्रमाण होता है। जिस अवधिज्ञानसे सम्बन्ध रखनेवाले क्षेत्रके घनाकाररूपसे स्थापित करनेपर वह पैंतालीस लाख योजन घनप्रमाण होता है वहां काल एक वर्षमात्र होता है, यह उक्त कथनका तात्पर्य है। रुचकवर द्वीपके बाह्य दोनों पार्श्वों तक मध्यम योजनोंकी रुचकवर संज्ञा है, क्योंकि, अवयवोंमें प्रवृत्त हुए शब्द समुदायोंमें भी रहते हैं, ऐसा न्याय है। उसका घन भी रुचकवर कहलाता है, क्योंकि, यहां कार्यमें कारणका उपचार किया गया है। इतना क्षेत्र होनेपर काल वर्षपृथक्त्वप्रमाण होता है।

---

१ षट्खं. पु. ९, पृ. २५. २ ताप्रतौ 'भणदि' इति पाठः। ३ प्रतिषु 'तम्हा' इति पाठः।

जंबूदीव-मणुसलोअ-रुजगपहुडओ किण्ण घेप्पंते? ण, अंगुलादिसु वि तधा गहण-प्पसंगादो। ण च एवं, अव्ववत्थापसंगादो।

संखेज्जदिमे काले दीव-समुद्दा हवंति संखेज्जा।
कालम्मि असंखेज्जे दीव-समुद्दा असंखेज्जा[1] ॥ ७ ॥

कालपमाणादो ओहिणिबद्धखेत्तपमाणपरूवणट्ठमेसा गाहा आगया। 'संखेज्जदिमे काले' संखेज्जकाले संते[2] त्ति भणिदं होदि। एत्थतणकालसद्दो संवच्छरवाचओ, ण कालसामण्णवाचओ; जहण्णोहिखेत्तस्स वि असंखेज्जदीवसमुद्दजोयणघणपमाणत्तप्पसंगादो। कालो संवच्छरवाचओ त्ति कधं णव्वदे? सामण्णम्मि विसेससंभवादो समयावलिय-मुहुत्त-दिवसद्धमास-मासपडिबद्धो[3]हिखेत्तस्स परूविदत्तादो। संखेज्जेसु वासेसु ओहिणाणेण तीदमणागयं च दव्वं जाणंतो खेत्तेण किं जाणदि त्ति वुत्ते 'दीव-समुद्दा हवंति संखेज्जा' तस्स ओहिणिबद्धक्खेत्ते घणागारेण ट्ठइदे संखेज्जाणं दीव-समुद्दाणं आयामघणमेत्तं होदि।

शंका— पूर्ण चन्द्रके अर्ध आकाररूपसे स्थित भरत, जम्बूद्वीप, मनुष्यलोक और रुचकवर द्वीप आदि क्यों नहीं ग्रहण किये जाते हैं?

समाधान— नहीं, क्योंकि ऐसा माननेपर अंगुल आदिमें भी उस प्रकारके ग्रहणका प्रसङ्ग आता है। परन्तु ऐसा है नहीं, क्योंकि ऐसा माननेपर अव्यवस्थाका प्रसङ्ग आता है।

जहां काल संख्यात वर्ष प्रमाण होता है वहां क्षेत्र संख्यात द्वीप-समुद्रप्रमाण होता है और जहां काल असंख्यात वर्षप्रमाण होता है वहां क्षेत्र असंख्यात द्वीप-समुद्रप्रमाण होता है ॥ ७ ॥

कालके प्रमाणकी अपेक्षा अवधिज्ञानसे सम्बन्ध रखनेवाले क्षेत्रके प्रमाणका कथन करनेके लिए यह गाथा आई है। 'संखेज्जदिमे काले' अर्थात् संख्यात कालके होनेपर, यह उक्त कथनका तात्पर्य है। यहां 'काल' शब्द वर्षवाची लिया गया है, कालसामान्यवाची नहीं लिया गया, क्योंकि, अन्यथा जघन्य अवधिज्ञानका क्षेत्र भी असंख्यात द्वीप-समुद्रोंके घनयोजन प्रमाण प्राप्त होगा।

शंका— काल शब्द वर्षवाची है, यह किस प्रमाणसे जाना जाता है?

समाधान— क्योंकि, कालसामान्यमें विशेष कालका ग्रहण सम्भव है। और समय, आवलि, मुहूर्त, दिवस, अर्ध मास और माससे सम्बन्ध रखनेवाले अवधिज्ञानके क्षेत्रका निरूपण पहले कर आये हैं।

अवधिज्ञानके द्वारा संख्यात वर्षों सम्बन्धी अतीत और अनागत द्रव्योंको जानता हुआ क्षेत्रकी अपेक्षा कितना जानता है, ऐसा कहनेपर 'दीवसमुद्दा हवन्ति संखेज्जा' यह वचन कहा है। उस अवधिज्ञानके क्षेत्रको घनाकार रूपसे स्थापित करनेपर वह संख्यात द्वीप-समुद्रोंके

---

१ म. बं. १, पृ. २१. संखिज्जंमि उ काले दीव-समुद्दा वि हुंति संखिज्जा। कालंमि असंखिज्जे दीव-समुद्दा उ भइअव्वा॥ नं. सू. गा. ५३. २ अप्रतौ 'संति' इति पाठः। ३ आ-का-ताप्रतिषु 'दिवसद्धमासपडि-' इति पाठः।

'कालम्मि असंखेज्जे' असंखेज्जवासमेत्ते संते ओहिणिबद्धक्खेत्तं घणागारेण ट्ठइज्जमाणमसंखेज्जे दीव-समुद्दे आयामेण ओट्टहदि[1]। एवं तिरिक्ख-मणुस्साणं देसोहीए खेत्त-कालपमाणपरूवणा गदा। संपहि णाणाकालं णाणाजीवे च अस्सिदूण दव्व-खेत्त-काल-भावाणं वुड्ढिक्कमपरूवणट्ठमुत्तरसुत्तं भणदि—

कालो चदुण्ण वुड्ढी कालो भजिदव्वो[2] खेत्तवुड्ढीए।
वुड्ढीए दव्व-पज्जय भजिदव्वा खेत्त-काला दु[3] ॥ ८ ॥

'कालो चदुण्ण वुड्ढी' कालश्चतुर्णां वृद्धये भवति। केसिं चदुण्णं? काल-खेत्त-दव्व-भावाणं। काले वड्ढमाणे णियमा दव्व-खेत्त-भावा वि वड्ढंति त्ति भणिदं होदि। 'कालो भजिदव्वो खेत्तवुड्ढीए' खेत्ते वड्ढमाणे कालो कयावि वड्ढदि, कयावि णो वड्ढदि। दव्व-भावा पुण णियमा वड्ढंति, तेसिं वुड्ढीए विणा खेत्तवुड्ढीए[4] अणुववत्तीदो। 'वुड्ढीए दव्व-पज्जय' दव्व-पज्जयाणं वुड्ढीए संतीए खेत्त-कालाणं वुड्ढी भयणिज्जा। कुदो? साभावियादो। दव्ववुड्ढीए पुण णियमा पज्जयवुड्ढी, पज्जयवदिरित्तदव्वाभावादो, पज्जय-वुड्ढीए वि णियमा दव्ववुड्ढी, दव्ववदिरित्तपज्जायाभावादो। अत्र श्लोकः—

आयामघनप्रमाण होता है। कालके असंख्यात अर्थात् असंख्यात वर्ष प्रमाण होनेपर अवधिज्ञान सम्बन्धी क्षेत्र घनरूपसे स्थापित करनेपर असंख्यात द्वीप-समुद्रोंके आयामघनप्रमाण होता है।

इस प्रकार तिर्यंच और मनुष्योंके देशावधि सम्बन्धी क्षेत्र और कालके प्रमाणका कथन किया। अब नाना काल और नाना जीवोंका अवलम्बन लेकर द्रव्य, क्षेत्र, काल और भावोंके वृद्धि-क्रमका कथन करनेके लिए आगेका सूत्र कहते हैं—

काल चारोंकी वृद्धिके लिए होता है। क्षेत्रकी वृद्धि होनेपर कालकी वृद्धि होती भी है और नहीं भी होती। तथा द्रव्य और पर्यायकी वृद्धि होनेपर क्षेत्र और कालकी वृद्धि होती भी है और नहीं भी होती ॥ ८ ॥

'कालो चदुण्ण वुड्ढी' अर्थात् काल चारोंकी वृद्धिके लिए होता है। किन चारोंकी? काल, क्षेत्र, द्रव्य और भावोंकी। कालकी वृद्धि होनेपर द्रव्य, क्षेत्र और भाव भी नियमसे वृद्धिको प्राप्त होते हैं, यह उक्त कथनका तात्पर्य है। 'कालो भजिदव्वो खेत्तवुड्ढीए' क्षेत्रकी वृद्धि होनेपर काल कदाचित् वृद्धिको प्राप्त होता है और कदाचित् वृद्धिको नहीं भी प्राप्त होता है। परन्तु द्रव्य और भाव नियमसे वृद्धिको प्राप्त होते हैं; क्योंकि, द्रव्य और भावकी वृद्धि हुए विना क्षेत्रकी वृद्धि नहीं बन सकती। 'वुड्ढीए दव्वपज्जय' अर्थात् द्रव्य और पर्यायोंकी वृद्धि होनेपर क्षेत्र और कालकी वृद्धि होती भी है और नहीं भी होती; क्योंकि ऐसा स्वभाव है। परन्तु द्रव्यकी वृद्धि होनेपर पर्यायकी वृद्धि नियमसे होती है; क्योंकि, पर्याय अर्थात् भावके विना द्रव्य नहीं पाया जाता। इसी तरह पर्यायकी वृद्धि होनेपर भी द्रव्यकी वृद्धि नियमसे होती है; क्योंकि, द्रव्यके विना पर्यायका होना असम्भव है। इस विषयमें श्लोक है—

---

१ ताप्रतौ 'ओहट्टदि' इति पाठः। २ ताप्रतौ 'भजिदव्वो (व्व)' इति पाठः। ३ षट्खं. पु. ९, पृ. २९. ४ ताप्रतौ 'वड्ढंति। तेसिं वुड्ढीए विणा खेत्तवुड्ढीए [विणा, खेत्तवुड्ढीए]' इति पाठः।

नयोपनयैकान्तानां त्रिकालानां समुच्चयः ।
अविभ्राड्भावसम्बन्धो द्रव्यमेकमनेकधा[1] ॥ ३२ ॥

एदिस्से गाहाए जहा वेयणाए परूपणा कदा तहा एत्थ वि णिरवसेसा कायव्वा, भेदाभादादो । एसो गाहत्थो देसोहीए जोजेयव्वो, ण परमोहीए । कुदो णव्वदे ? आइ-रियपरंपरागयसुत्ताविरुद्धवक्खाणादो । परमोहीए पुण दव्व-खेत्त-काल-भावाणमक्कमेण वुड्ढी होदि त्ति वत्तव्वं । कुदो ? अविरुद्धाइरियवयणादो । दव्वेण सह खेत्त-कालाणं सण्णसण्णट्ट-मुत्तरगाहासुत्तं भणदि—

तेया-कम्मसरीरं तेयादव्वं च भासदव्वं च ।
बोद्धव्वमसंखेज्जा दीव-समुद्दा य वासा य[2] ॥ ९ ॥

तेजइयणोकम्मसंचिदपदेसापिंडो तेजासरीरं णाम । तं जाणंतो खेत्तदो असंखेज्जे दीव-समुद्दे जाणदि । कालदो असंखेज्जेसु वासेसु अदीदमणागयं च दव्वं जाणदि । अट्ठकम्माणं कम्मट्ठिदिसंचओ कम्मइयसरीरं णाम । तं[3] जाणंतो वि ओहिणाणी खेत्तदो असंखेज्जे दीव-समुद्दे कालदो असंखेज्जाणि वस्साणि जाणदि । णवरि तेजासरीरखेत्त-कालेहिंतो

नैगमादि नयोंके और उनकी शाखा उपशाखा रूप उपनयोंके विषयभूत त्रिकालवर्ती पर्यायोंका कथञ्चित् तादात्म्य रूप जो समुदाय है उसे द्रव्य कहते हैं । वह कथञ्चित् एक रूप है और कथञ्चित् अनेक रूप है ॥ ३२ ॥

इस गाथाका जैसा वेदनाखण्डमें कथन किया है उसी तरह यहाँ भी पूरी तरहसे कथन करना चाहिए; क्योंकि, उससे इसमें कोई भेद नहीं है । इस गाथाके अर्थकी देशावधि ज्ञानमें योजना करनी चाहिए, परमावधि ज्ञानमें नहीं ।

शंका— यह किस प्रमाणसे जाना जाता है ?

समाधान— वह आचार्यपरम्परासे आए हुए सूत्राविरुद्ध व्याख्यानसे जाना जाता है ।

परमावधि ज्ञानमें तो द्रव्य, क्षेत्र, काल और भावकी युगपत् वृद्धि होती है, ऐसा यहाँ व्याख्यान करना चाहिए; क्योंकि, सूत्रके अविरुद्ध व्याख्यान करनेवाले आचार्योंका ऐसा उपदेश है। अब द्रव्यके साथ क्षेत्र और कालकी सूक्ष्म-स्थूलता बतलानेके लिए आगेका गाथासूत्र कहते हैं—

जहाँ तैजसशरीर, कार्मण शरीर, तैजसवर्गणा और भाषावर्गणा द्रव्य होता है, वहाँ घनरूप असंख्यात द्वीप-समुद्र क्षेत्र होता है और असंख्यात वर्ष काल होता है ॥ ८ ॥

तैजस नोकर्मके संचित हुए प्रदेशपिण्डको तैजसशरीर कहते हैं । उसे जानता हुआ क्षेत्रकी अपेक्षा असंख्यात द्वीप-समुद्रोंको जानता है और कालकी अपेक्षा असंख्यात वर्ष सम्बन्धी अतीत और अनागत द्रव्यको जानता है । आठ कर्मों सम्बन्धी कर्मस्थितिके संचयको कार्मणशरीर कहते हैं । उसे जानता हुआ भी अवधिज्ञानी क्षेत्रकी अपेक्षा असंख्यात द्वीप-समुद्रोंको और कालकी अपेक्षा असंख्यात वर्षोंको जानता है । इतनी विशेषता है कि तैजसशरीर सम्बन्धी क्षेत्र

---

१ आ. मी. १०७. २ षट्खं. पु. ९, पृ. ३८. ३ अप्रतौ 'एदं' इति पाठः ।

इमस्स खेत्त-काला असंखेज्जगुणा । तेजइयसरीरणोकम्मसंचयादो कम्मइयसरीरसंचओ अणंतगुणो, तदो खेत्त-कालाणमसंखेज्जगुणत्तं ण जुज्जदि ? ण एस दोसो, पदेसं पडि अणंतगुणत्ते संते वि तेजइयक्खंधेहिंतो कम्मइयक्खंधाणमइसुहुमत्तेण तदसंखेज्जगुणत्तं पडि विरोहाभावादो । ण च गेज्झत्तं परमाणुपच्चयमहल्लत्तमुवेक्खदे, चक्खिंदियगेज्झभेंड-रज्जगिरिकणादो बहुपरमाणूहि आरद्धपवणम्मि तदणुवलंभादो । तेजइयओगाहणादो कम्मइयओगाहणा एगजीवदव्वाविणाभावेण सरिसा त्ति ण दोण्णमोहिगेज्झगुणाणं सरित्तं वोत्तुं जुत्तं, समाणोगाहणाए ट्ठिदओरालिय-कम्मइयसरूवेहि दुद्ध-पाणियसरूवेहि वा वियहिचारादो । तेजइयदव्वं णाम तेजइयवग्गणा एगा विस्ससोवचयविरहिदा । तिस्से गाहगं जमोहिणाणं तस्स ओहिणिबद्धखेत्तस्स पमाणमसंखेज्जा दीव-समुद्दा, कालो असंखेज्जाणि वस्साणि । णवरि कम्मइयसरीरखेत्त-कालेहिंतो इमस्स खेत्त-काला असंखेज्जगुणा । कुदो ? कम्मइयसरीरकम्मपुंजादो तेजइयएगवग्गणाए पदेसाणमणंतगुणहीणत्तुवलंभादो तत्तो सुहुमत्तादो वा । तेजादव्वमिदि वुत्ते तदेगसमयपबद्धस्स गहणं किण्ण कीरदे ? ण, दव्वसद्दस्स रूढिवसेण वग्गणासु चेव उवरि

और कालसे इसका क्षेत्र और काल असंख्यातगुणा होता है ।

शंका— तैजसशरीर नोकर्मके संचयसे कार्मणशरीरका संचय अनन्तगुणा होता है, इसलिए क्षेत्र और काल असंख्यातगुणे नहीं बनते ?

समाधान— यह कोई दोष नहीं है, क्योंकि, प्रदेशोंकी अपेक्षा अनन्तगुणे होनेपर भी तैजस स्कन्धोंसे कार्मण स्कन्ध अति सूक्ष्म होते हैं, इसलिए इसके क्षेत्र और कालके असंख्यातगुणे होनेमें कोई विरोध नहीं आता । दूसरे, ग्राह्यता (ग्रहणयोग्यता) कुछ परमाणुप्रचयके विस्तारकी अपेक्षा नहीं करती है, क्योंकि, चक्षुके द्वारा ग्रहण किये जाने योग्य भिण्डी और रजगिराके कणोंकी अपेक्षा बहुत परमाणुओंके द्वारा निर्मित पवनमें वह (ग्राह्यता) नहीं पाई जाती (?)। चूंकि तैजसशरीरकी अवगाहनासे कार्मणशरीरकी अवगाहना एक जीव द्रव्य सम्बन्धी होनेसे समान होती है, इसलिए अवधिज्ञानके द्वारा ग्राह्य गुण (ग्रहणयोग्यता) भी दोनोंके सदृश हों, ऐसा कहना भी युक्त नहीं है; क्योंकि, समान अवगाहनारूपसे स्थित औदारिकशरीर और कार्मणशरीरके साथ तथा दूध और पानीके साथ इस कथनका व्यभिचार आता है ।

तैजस द्रव्यका अर्थ विस्रसोपचयसे रहित एक तैजस वर्गणा है । उसे जो अवधिज्ञान ग्रहण करता है, उस अवधिज्ञानसे सम्बन्ध रखनेवाले क्षेत्रका प्रमाण असंख्यात द्वीप-समुद्र होता है और काल असंख्यात वर्ष होता है । इतनी विशेषता है कि कार्मणशरीरके क्षेत्र और कालसे इसका क्षेत्र और काल असंख्यातगुणा होता है, क्योंकि, कार्मणशरीरके कर्म-पुञ्जसे तैजसकी एक वर्गणाके प्रदेश अनन्तगुणे हीन उपलब्ध होते हैं या उससे सूक्ष्म होते हैं ।

शंका— 'तैजस द्रव्य' ऐसा कहनेपर उसका एक समयप्रबद्ध क्यों नहीं ग्रहण किया जाता है ?

१ अ-आ-काप्रतिषु 'गेज्झंतं परमाणुपचय', ताप्रतौ 'गेज्झत्तं परमाणुपच्चय-' इति पाठः । २ प्रतिषु 'भेंडरंडगिर-' इति पाठः । ३ प्रतिषु 'पवयणम्मि' इति पाठः ।

भण्णमाणदव्वट्ठदाए पवुत्तिदंसणादो। भासादव्वं णाम भासावग्गणाए[1] एगो खंधो। तस्स जं गाहयमोहिणाणं तदोहिणिबद्धखेत्तपमाणमसंखेज्जा दीव-समुद्दा। तक्कालो असंखेज्जाणि वस्साणि। किंतु तेजइयदव्व-कालेहिंतो भासाए खेत्त-काला असंखेज्जगुणा। तेजइयएगवग्गण-पदेसेहिंतो अणंतगुणपदेसेहि एगा भासावग्गणा णिप्पज्जदि। कधं तत्थ अइमहल्लक्खंधे वट्ट-माणस्स ओहिणाणस्स बहुत्तं जुज्जदे ? ण, तेजइयएगवग्गणाओगाहणादो असंखेज्जगुणहीणाए ओगाहणाए वट्टमाण[2]भासाएगवग्गणाए पदेसं पडि अणंतगुणाए वि वट्टमाणस्स ओहिणाणस्स बहुत्तं पडि विरोहाभावादो। भासावग्गणाए ओगाहणा[3] तत्तो असंखेज्जगुणहीणा त्ति कुदो णव्वदे ? सव्वत्थोवा कम्मइयसरीरदव्ववग्गणाए ओगाहणा। मणदव्ववग्गणाए ओगाहणा असंखेज्जगुणा। भासादव्ववग्गणाए ओगाहणा असंखेज्जगुणा। तेयासरीरदव्ववग्गणाए ओगाहणा असंखेज्जगुणा। आहारसरीरदव्ववग्गणाए ओगाहणा असंखेज्जगुणा। वेउव्वियसरीर-दव्ववग्गणाए ओगाहणा असंखेज्जगुणा। ओरालियसरीरदव्ववग्गणाए[4] ओगाहणा असंखेज्ज-

समाधान—नहीं, क्योंकि आगे कहे जानेवाले द्रव्यार्थता नामक अनुयोगद्वारमें द्रव्य शब्दकी रूढ़ि वश वर्गणा अर्थमें ही प्रवृत्ति देखी जाती है।

भाषा द्रव्यका अर्थ भाषावर्गणाका एक स्कन्ध है। उसे जो अवधिज्ञान जानता है उस अवधिज्ञानसे सम्बन्ध रखनेवाले क्षेत्रका प्रमाण असंख्यात द्वीप-समुद्र और कालका प्रमाण असंख्यात वर्ष है। किन्तु तैजसवर्गणा सम्बन्धी क्षेत्र और कालसे भाषावर्गणा सम्बन्धी क्षेत्र और काल असंख्यातगुणा होता है।

शंका—तैजसकी एक वर्गणाके प्रदेशोंसे अनन्तगुणे प्रदेशों द्वारा एक भाषावर्गणा निष्पन्न होती है। अतः ऐसे अत्यन्त भारी स्कन्धको विषय करनेवाला अवधिज्ञान बड़ा कैसे हो सकता है ?

समाधान—नहीं, क्योंकि तैजसकी एक वर्गणाकी अवगाहनासे असंख्यातगुणी हीन, अवगाहनाको धारण करनेवाली भाषावर्गणा यद्यपि प्रदेशोंकी अपेक्षा अनन्तगुणी होती है, फिर भी उसे विषय करनेवाले अवधिज्ञानके बड़े होनेमें कोई विरोध नहीं आता।

शंका—भाषावर्गणाकी अवगाहना तैजसवर्गणाकी अवगाहनासे असंख्यातगुणी हीन होती है, यह किस प्रमाणसे जाना जाता है ?

समाधान—वह "कार्मणशरीरद्रव्यवर्गणाकी अवगाहना सबसे स्तोक होती है। उससे मनोद्रव्यवर्गणाकी अवगाहना असंख्यातगुणी होती है। उससे भाषाद्रव्यवर्गणाकी अवगाहना असंख्यातगुणी होती है। उससे तैजसशरीरद्रव्यवर्गणाकी अवगाहना असंख्यातगुणी होती है। उससे आहारकशरीरद्रव्यवर्गणाकी अवगाहना असंख्यातगुणी होती है। उससे वैक्रियिक शरीरद्रव्यवर्गणाकी अवगाहना असंख्यातगुणी होती है। उससे औदारिकशरीरद्रव्यवर्गणाकी

१ ताप्रतौ 'पवुत्तिदंसणादो। भासादव्ववग्गणाए' इति पाठः। २ ताप्रतौ 'हीणाए वट्टमाण' इति पाठः। ३ अ-काप्रत्योः 'भासावग्गणाए ओगाहणाए', आप्रतौ 'भासावग्गणाओगाहणाए' इति पाठः। ४ ताप्रतौ 'ओरालियसरीरवग्गणाए' इति पाठः।

गुणा त्ति अप्पाबहुअवयणादो। णेदं पहाणं, ओगाहणडहरत्तं[1] णाणमहत्तस्स ण कारण-मिदि पुव्वं परूविदत्तादो। तेण सुहुमत्तं चेव भासाणाणमहल्लत्तस्स कारणमिदि घेत्तव्वं। किमेत्थ सुहुमत्तं? दुगेज्झत्तं। एसो अत्थो अण्णत्थ वि पओत्तव्वो। च-सद्दो किमट्ठो? अवुत्तसमुच्चयट्ठो। तेण मणदव्ववग्गणमेगं जाणंतो खेत्तदो असंखेज्जे दीव-समुद्दे कालदो असंखेज्जाणि वस्साणि जाणदि। णवरि भासाखेत्त-कालेहिंतो असंखेज्जगुणे जाणदि। जदि वि भासाए वग्गणपदेसेहिंतो अणंतगुणपदेसेहि एगा मणदव्ववग्गणा आरद्धा, तो वि मणदव्ववग्गणाए ओगाहणा भासावग्गणाओगाहणादो असंखेज्जगुणहीणा त्ति मणदव्ववग्गण-विसयमोहिणाणं बहुअमिदि भणिदं। कम्मइयदव्ववग्गणं जाणंतो खेत्तदो असंखेज्जे दीव-समुद्दे कालदो असंखेज्जाणि वस्साणि जाणदि। णवरि एयमणदव्ववग्गणविसयओहिणाणखेत्त-कालेहिंतो एयकम्मइयदव्ववग्गणविसयओहिणाणखेत्तकाला असंखेज्जगुणा। एवं तिरिक्ख-मणुस्से अस्सिदूण ओहिणाणदव्व-खेत्त-कालाणं परूवणं करिय देवाणमोहिणाणविसयपरूवणट्ठ-मुत्तरगाहासुत्तं भणदि—

अवगाहना असंख्यातगुणी होती है।" इस अल्पबहुत्वसे जाना जाता है।

किन्तु इसकी प्रधानता नहीं है, क्योंकि, अवगाहनाकी अल्पता ज्ञानके बड़ेपनका कारण नहीं है, यह पहिले कहा जा चुका है। इसलिए सूक्ष्मता ही भाषाज्ञानके बड़ेपनका कारण है, ऐसा यहां ग्रहण करना चाहिए।

शंका— यहां सूक्ष्म शब्दका क्या अर्थ है?

समाधान—जिसका ग्रहण करना कठिन हो वह सूक्ष्म कहलाता है।

यह अर्थ अन्यत्र भी कहना चाहिए।

शंका—गाथासूत्रमें 'च' शब्द किसलिए आया है?

समाधान— वह अनुक्त अर्थका समुच्चय करनेके लिए आया है।

इसलिए मनोद्रव्य सम्बन्धी एक वर्गणाको जाननेवाला क्षेत्रकी अपेक्षा असंख्यात द्वीप-समुद्रोंको और कालकी अपेक्षा असंख्यात वर्षोंको जानता है, इस अर्थका यहां ग्रहण होता है। इतनी विशेपता है कि यह भाषावर्गणा सम्बन्धी क्षेत्र और कालकी अपेक्षा असंख्यातगुणे क्षेत्र और कालको जानता है। यद्यपि भाषाकी एक वर्गणाके प्रदेशोंसे अनन्तगुणे प्रदेशों द्वारा एक मनोद्रव्यवर्गणा निष्पन्न होती है, तो भी मनोद्रव्यवर्गणाकी अवगाहना भाषावर्गणाकी अवगाहनासे असंख्यातगुणी हीन होती है, इसलिए मनोद्रव्यवर्गणाको विषय करनेवाला अवधिज्ञान बड़ा होता है, यह कहा है। कार्मणद्रव्यवर्गणाको जाननेवाला क्षेत्रकी अपेक्षा असंख्यात द्वीप-समुद्रोंको और कालकी अपेक्षा असंख्यात वर्षोंको जानता है। इतनी विशेपता है कि एक मनोद्रव्यवर्गणाको विषय करनेवाले अवधिज्ञानके क्षेत्र और कालकी अपेक्षा एक कार्मण-द्रव्यवर्गणाको विषय करनेवाले अवधिज्ञानका क्षेत्र और काल असंख्यातगुणा होता है। इस प्रकार तिर्यञ्च और मनुष्योंका आश्रय कर अवधिज्ञानके द्रव्य, क्षेत्र और कालका कथन करके अब देवोंके अवधिज्ञानके विषयका कथन करनेके लिए आगेका गाथासूत्र कहते हैं—

[1] प्रतिषु 'दहरत्तं' इति पाठः।

पणुवीस जोयणाणं ओही वेंतर-कुमारवग्गाणं ।
संखेज्जजोयणाणं जोदिसियाणं जहण्णोही[1] ॥ १० ॥

वेंतरे त्ति[2] भणिदे अट्ठविहा वाणवेंतरा घेत्तव्वा । कुमारा त्ति भणिदे दसविह-भवणवासियदेवा घेत्तव्वा । एदेसिं सव्वेसिं पि खेत्तदो जहण्णोहिपमाणं पणुवीसघणजोयणाणि होदि, तेसिमोहिणिबद्धखेत्ते घणागारेण ट्ठइदे पणुवीसजोयणघणमेत्तखेत्तुवलंभादो । कालदो पुण एदे देसूणं दिवसं जाणंति, "दिवसंतो पण्णुवीसं तु" इदि वयणादो । जोइसियाणं खेत्तदो जहण्णोहिपमाणं संखेज्जजोयणघणपमाणं होदि । णवरि वेंतरजहण्णोहिखेत्तादो जोइसियाणं जहण्णोहिखेत्तं संखेज्जगुणं । कुदो ? जोइसियजहण्णोहिणिबद्धखेत्ते घणागारेण ट्ठइदे पणुवीसजोयणाणि होंति त्ति अभणिदूण संखेज्जाणि जोयणाणि होंति त्ति वयणादो । होंतं पि पुव्विल्लखेत्तादो एदं खेत्तं संखेज्जगुणं कुदो णव्वदे ? गुरूवदेसादो । एदेसिं

व्यन्तर और भवनवासियोंका जघन्य अवधिज्ञान पच्चीस घनयोजनप्रमाण होता है और ज्योतिषियोंका जघन्य अवधिज्ञान संख्यात योजनप्रमाण होता है ॥ १० ॥

'व्यन्तर' ऐसा कहनेपर आठ प्रकारके वानव्यन्तरोंका ग्रहण करना चाहिए । 'कुमार' ऐसा कहनेपर दस प्रकारके भवनवासी देवोंका ग्रहण करना चाहिए । क्षेत्रकी अपेक्षा इन सबके ही जघन्य अवधिज्ञानका प्रमाण पच्चीस घनयोजन होता है, क्योंकि, उनके अवधिज्ञान सम्बन्धी क्षेत्रको घनाकाररूपसे स्थापित करनेपर पच्चीस योजनघनप्रमाण क्षेत्र उपलब्ध होता है । कालकी अपेक्षा तो ये कुछ कम एक दिनकी बात जानते हैं, क्योंकि 'दिवसंतो पण्णुवीसं' ऐसा सूत्र-वचन है । क्षेत्रकी अपेक्षा ज्योतिषी देवोंके जघन्य अवधिज्ञानका प्रमाण संख्यात घनयोजनप्रमाण होता है । इतनी विशेषता है कि व्यन्तरोंके जघन्य अवधिज्ञानके क्षेत्रसे ज्योतिषियोंके जघन्य अवधिज्ञानका क्षेत्र संख्यातगुणा है, क्योंकि, ज्योतिषियोंके जघन्य अवधिज्ञानके क्षेत्रको घनाकार-रूपसे स्थापित करनेपर वह 'पच्चीस योजन होता है' ऐसा न कहकर 'संख्यात योजन होता है' ऐसा कहा है ।

शंका— यद्यपि ऐसा है, तथापि पहलेके क्षेत्रसे यह क्षेत्र संख्यातगुणा है, यह किस प्रमाणसे जानते हो ?

समाधान— गुरुके उपदेशसे जानते हैं ।

---

१ षट्खं. पु. ९, पृ. २५. मूला. १२–१०९. असुरकुमारा णं भंते ? ओहिणा केवइयं खेत्तं जाणंति पासंति ? गोयमा ! जहन्नेणं पणवीसं जोअणाइं उक्कोसेणं असंखेज्जे दीव-समुद्दे ओहिणा जाणंति पासंति । नागकुमारा णं जहन्नेणं पणवीसं जोअणाइं, उक्कोसेणं संखेज्जे दीव-समुद्दे ओहिणा जाणंति पासंति । एवं जाव थणियकुमारा । ×××× वाणमंतरा जहा नागकुमारा । ×××× जोइसिया णं भंते ! केवतितं खेत्तं ओहिणा जाणंति पासंति ? गोयमा ! जहन्नेणं संखेज्जे दीव-समुद्दे, उक्कोसेण वि संखेज्जे दीव-समुद्दे । प्रज्ञापना ३३, ३–४. पणवीसजोयणाइं दसवाससहस्सिया ठिई जेसिं । दुविहोऽवि जोइसाणं संखेज्ज ठिई विसेसेणं ॥ वि. भा. ७०४. २ का-ताप्रत्योः 'वेंतरित्ति' इति पाठः ।

कालो पुण भवणवासियकालादो बहुगो। किंतु तत्तो विसेसाहिओ किं[1] संखेज्जगुणो त्ति ण णव्वदे, उवएसाभावादो। संपहि एदेसिमुक्कस्सोहिणाणस्स विसयपरूवणट्ठमुत्तर-गाहासुत्तं भणदि—

असुराणमसंखेज्जा कोडीओ सेसजोदिसंताणं।
संखातीदसहस्सा उक्कस्सं ओहिविसओ दु[2] ॥ ११ ॥

असुरा णाम भवणवासियदेवा। तेसिमुक्कस्सोहिखेत्ते घणागारेण ट्ठइदे असंखेज्जाओ जोयणकोडीओ होंति। णवरि भवणवासिय-वाणवेंतर-जोदिसियाणं देवाणं ओहिणिबद्ध-खेत्तमधो थोवं होदि, तिरिएण बहुअं होदि त्ति वत्तव्वं। सेसाणं भवणवासियादिजोदि-सियदेवपेरंताणं उक्कस्सओहिखेत्तमसंखेज्जजोयणसहस्सघणमेत्तं होदि। णवविहभवणवासीण-मट्ठविहवेंतराणं पंचविहजोइसियाणं जमुक्कस्सं ओहिक्खेत्तं तमसुरउक्कस्सखेत्तं पेक्खिदूण संखेज्ज-गुणहीणं होदि। तं कधं णव्वदे? असुराणमसंखेज्जाओ जोयणकोडीओ त्ति भणिदूण 'सेसजोदि-संताणमसंखेज्जाणि जोयणसहस्साणि' त्ति सुत्तणिद्देसादो। सहस्सादो कोडी संखेज्जगुणा त्ति

इनका काल यद्यपि भवनवासियोंके कालसे बहुत होता है, किन्तु वह उससे विशेष अधिक होता है या संख्यातगुणा होता है, यह नहीं जानते हैं; क्योंकि, इस प्रकारका कोई उपदेश नहीं पाया जाता।

अब इनके उत्कृष्ट अवधिज्ञानके विषयका कथन करनेके लिए आगेका गाथासूत्र कहते हैं—

असुरोंके उत्कृष्ट अवधिज्ञानका विषय असंख्यात करोड़ घनयोजन होता है तथा ज्योतिषियों तक शेष देवोंके उत्कृष्ट अवधिज्ञानका विषय असंख्यात हजार घनयोजन होता है ॥ ११ ॥

असुर पदसे यहां असुर नामके भवनवासी देव लिए गये हैं। उनके उत्कृष्ट अवधिज्ञानके क्षेत्रको घनाकाररूपसे स्थापित करनेपर वह असंख्यात करोड़ योजन होता है। इतनी विशेषता है कि भवनवासी, वानव्यन्तर और ज्योतिषी देवोंका अवधिज्ञान सम्बन्धी क्षेत्र नीचे अल्प होता है, किन्तु तिरछा बहुत होता है; ऐसा यहां कथन करना चाहिए। शेष भवनवासी देवोंसे लेकर ज्योतिषी देवों तक इन देवोंके उत्कृष्ट अवधिज्ञानका क्षेत्र असंख्यात हजार घनयोजन होता है। नौ प्रकारके भवनवासी, आठ प्रकारके व्यन्तर और पांच प्रकारके ज्योतिषी देवोंका जो उत्कृष्ट अवधिज्ञानका क्षेत्र होता है वह असुरोंके उत्कृष्ट क्षेत्रको देखते हुए संख्यातगुणा हीन होता है।

शंका—यह किस प्रमाणसे जाना जाता है?

समाधान—क्योंकि 'असुरोंके असंख्यात करोड़ योजन होता है' ऐसा कहकर 'ज्योतिषियों तक शेष देवोंका वह क्षेत्र असंख्यात हजार योजन होता है' ऐसा सूत्रवचन है। हजारकी अपेक्षा

---

१ ताप्रतौ 'बहुगो किंतु तत्तो विसेसाहिओ। किं' इति पाठः। २ ताप्रतौ 'होदि विसओदु' इति पाठः। षट्खं. पु. ९, पृ. २५. असुराणमसंखेज्जा कोडी जोइसिय सेसाणं। संखातीदा य खलु उक्कस्सोहीय विसओ दु ॥ मूला. १२-११०.

काढूण असुरोहिखेत्तं सेसोहिक्खेत्तादो संखेज्जगुणत्तणेण णव्वदि[1] त्ति भणिदं होदि। असुराण-मुक्कस्सकालो असंखेज्जाणि वस्साणि होदि। सेसाणं जोदिसंताणं पि देवाणं उक्कस्सओहिकालो असंखेज्जाणि वस्साणि होदि। णवरि असुरुक्कस्सकालादो सेसजोदिसंताणं देवाणमुक्कस्सोहि-कालो संखेज्जगुणहीणो। कुदो एदमवगम्मदे? गुरूवदेसादो। किं च— भवणवासियदेवा उक्कस्सेण पेक्खंता उवरि जाव मंदरचूलियचरिमं ताव पेक्खंति। संपहि कप्पवासियाण-मोहिणाणविसयपरूवणट्ठमुत्तरगाहसुत्तं भणदि—

सक्कीसाणा पढमं दोच्चं तु सणक्कुमार-माहिंदा।
तच्चं तु बम्ह-लंतय सुक्क-सहस्सारया चोत्थं[2] ॥ १२ ॥

सक्कीसाणा सोहम्मीसाणकप्पवासियदेवा सगविमाणउवरिमतलमंडलप्पहुडि जाव 'पढमं' पढमपुढविहेट्ठिमतले त्ति ताव दिवड्ढरज्जुआयदं एगरज्जुवित्थारखेत्तं पस्संति[3]।

करोड़ संख्यातगुणा होता है, ऐसा समझकर असुरोंके अवधिज्ञानका क्षेत्र शेष देवोंके अवधिज्ञानके क्षेत्रसे संख्यातगुणा जाना जाता है, यह उक्त कथनका तात्पर्य है। असुरोंका उत्कृष्ट काल असंख्यात वर्ष होता है तथा ज्योतिषियों तक शेष देवोंका भी उत्कृष्ट अवधिज्ञान सम्बन्धी काल असंख्यात वर्ष होता है। इतनी विशेषता है कि असुरोंके उत्कृष्ट कालकी अपेक्षा ज्योतिषियों तक शेष देवोंके अवधिज्ञानका उत्कृष्ट काल संख्यातगुणा हीन होता है।

शंका— यह किस प्रमाणसे जाना जाता है?

समाधान— वह गुरुके उपदेशसे जाना जाता है।

इसके अतिरिक्त भवनवासी देव ऊपर देखते हुए उत्कृष्ट रूपसे मेरुकी चूलिकाके अन्तिम भाग तक देखते हैं। अब कल्पवासियोंके अवधिज्ञानके विषयका कथन करनेके लिए आगेका गाथासूत्र कहते हैं—

सौधर्म और ईशान कल्पके देव पहली पृथिवी तक जानते हैं। सनत्कुमार और माहेन्द्र कल्पके देव दूसरी पृथिवी तक जानते हैं। ब्रह्म और लान्तव कल्पके देव तीसरी पृथिवी तक जानते हैं। तथा शुक्र और सहस्रार कल्पके देव चौथी पृथिवी तक जानते हैं ॥ १२ ॥

'सक्कीसाणा' अर्थात् सौधर्म और ईशान कल्पवासी देव अपने विमानके उपरिम तल-मण्डलसे लेकर प्रथम पृथिवीके नीचेके तल तक डेढ़ राजु लम्बे और एक राजु विस्तारवाले

---

१ अ-आ-काप्रतिषु '-गुणत्तणे णव्वदि' इति पाठः। २ ताप्रतौ 'वोत्थी (चोत्थि)' इति पाठः। षट्खं. पु. ९, पृ. २६. सक्कीसाणा पढमं बिदियं तु सणक्कुमार-माहिंदा। बंभालंतव तदियं सुक्क-सहस्सारया चउत्थी दु ॥ मूला. १२-१०७. ति. प. ८-६८५. ३ सोहम्मगदेवा णं भंते! केवतितं खेत्तं ओहिणा जाणंति पासंति? गोयमा! जहन्नेणं अंगुलस्स असंखेज्जदिभागं, उक्कोसेणं अहे जाव इमीसे रयणप्पभाए हिट्ठिल्ले चरमंते, तिरियं जाव असंखिज्जे दीव-समुद्दे, उड्ढं जाव सगाइं विमाणाइं ओहिणा जाणंति पासंति। एवं ईसाणदेवा वि। प्रज्ञापना ३३-४.

कालेण असंखेज्जाओ वरिसकोडीओ जाणंति। सुत्तेण विणा कधमेदं णव्वदे? गुरूवदेसादो। 'सणक्कुमार-माहिंदा' सणक्कुमार-माहिंदकप्पवासियदेवा सगविमाणधयदंडादो हेट्ठा 'दोच्चं तु' जाव विदियपुढविहेट्ठिमतले त्ति ताव चत्तारिरज्जुआयदं एगरज्जुवित्थारं खेत्तं पस्संति[२]। कालदो पलिदोवमस्स असंखेज्जदिभागे अदीदमणागयं च जाणंति। बम्ह-बम्होत्तर-कप्पवासियदेवा अप्पणो विमाणसिहरादो हेट्ठा 'तच्चं तु' जाव तदियपुढविहेट्ठिमतले त्ति ताव अद्धछट्ठरज्जुआयामं एगरज्जुवित्थारं खेत्तं पस्संति। कालदो पलिदोवमस्स असंखेज्जदिभागे अदीदाणागदं च जाणंति। लंतय-काविट्ठविमाणवासियदेवा सगविमाणसिहरादो जाव तदियपुढविहेट्ठिमतले त्ति ताव छरज्जुआयदं एगरज्जुवित्थारं खेत्तं पस्संति। एगरज्जु-*वित्थारो त्ति कधं णव्वदे? सीहावलोगणण्णाएण सव्वलोगणालिसद्दाणुवत्तीए छरज्जुआयदं* सव्वं लोगणालिं पस्संति त्ति सुत्तट्ठसिद्धीदो। एत्तो प्पहुडि जाव उवरिमगेवज्जे त्ति ताव कालो वि देसूणं पलिदोवमं होदि। बम्ह-बम्हुत्तरकप्पे कालो पलिदोवमस्स असंखेज्जदि-

क्षेत्रको देखते हैं। कालकी अपेक्षा वे असंख्यात करोड़ वर्षकी बात जानते हैं।

शंका—सूत्रके विना यह कैसे जाना जाता है?

समाधान—गुरुके उपदेशसे जाना जाता है।

'सणक्कुमारमाहिंदा' सनत्कुमार और माहेन्द्र कल्पवासी देव अपने विमानके ध्वजादण्डसे लेकर *नीचे 'दोच्चं तु' अर्थात् दूसरी पृथिवीके नीचेके तलभाग तक चार राजु लम्बे और* एक राजु विस्तारवाले क्षेत्रको जानते हैं। कालकी अपेक्षा ये पल्योपमके असंख्यातवें भागप्रमाण अतीत और अनागत विषयको जानते हैं। ब्रह्म और ब्रह्मोत्तर कल्पवासी देव अपने विमानशिखरसे लेकर नीचे 'तच्चं तु' अर्थात् तीसरी पृथिवीके नीचेके तलभाग तक साढ़े पांच राजु लम्बे और एक राजु विस्तारवाले क्षेत्रको जानते हैं। कालकी अपेक्षा ये पल्योपमके असंख्यातवें भागप्रमाण अतीत और अनागत विषयको जानते हैं। लान्तव और कापिष्ठ विमानवासी देव अपने विमानशिखरसे लेकर तीसरी पृथिवीके नीचेके तल तक छह राजु लम्बे और एक राजु विस्तारवाले क्षेत्रको देखते हैं।

शंका—वह क्षेत्र एक राजु विस्तारवाला है, यह किस प्रमाणसे जाना जाता है?

समाधान—यहां सिंहावलोकन न्यायसे आगेके गाथासूत्र (१४) में प्रयुक्त 'सव्वं च लोयणालिं' पदोंकी अनुवृत्ति आनेसे 'छह राजु आयत सब लोकनालीको देखते हैं' यह इस सूत्रका अर्थ सिद्ध है। इसीसे उक्त क्षेत्रका विस्तार एक राजु जाना जाता है।

यहांसे लेकर उपरिम ग्रैवेयक तकके देवोंका काल भी कुछ कम पल्योपमप्रमाण होता है।

शंका—ब्रह्म और ब्रह्मोत्तर कल्पोंमें काल पल्यका असंख्यातवां भाग कहा है। फिर

१ काप्रतौ 'असंखेज्जाओ वरिम-', ताप्रतौ 'असंखेज्जा उवरिम' इति पाठः। २ सणंकुमारदेवा वि एवं चेव। नवरं जाव अहे दोच्चाए सक्करप्पभाए पुढवीए हिट्ठिल्ले चरमंते। एवं माहिंददेवा वि। प्रज्ञापना ३३-४.

भागो त्ति वुत्तो, एत्थ पुण लंतय-काविट्ठदेवेसु तत्तो सादिरेयं खेत्तं पस्संतेसु कधं कालो किंचूण-पल्लमेत्तो होदि ? ण एस दोसो, भिण्णकप्पेसु भिण्णसहावेसु सगकप्पभेदेण ओहिणाणावर-णीयक्खओवसमस्स पुधभावं पडि विरोहाभावादो । खेत्तमस्सिदूण पुण काले आणिज्जमाणे सोहम्मप्पहुडि जाव सव्वट्ठसिद्धिविमाणवासियदेवे त्ति ताव पलिदोवमस्स संखेज्जदिभागेण कालेण होदव्वं, एगस्स घणलोगस्स जदि एगं पलिदोवमं लब्भदि तो घणलोगसंखेज्जदि-भागम्हि किं लभामो त्ति पमाणेण फलगुणिदिच्छाए ओवट्टिदाए पलिदोवमस्स संखेज्जदि-भागुवलंभादो । ण च एदं, एवंविहगुरूवएसाभावादो ।

सुक्क-महासुक्ककप्पवासियदेवा अप्पणो विमाणचूलियप्पहुडि जाव चउत्थपुढविहेट्ठिम-तले त्ति ताव अद्धट्ठमरज्जुआयदं एगरज्जुवित्थारं लोगणालिं पस्संति । सहस्सारया सदर-सहस्सारकप्पवासियदेवा अप्पप्पणो विमाणसिहरप्पहुडि हेट्ठिम जाव चउत्थीपुढविहेट्ठिमतले त्ति ताव अट्ठरज्जुआयदं एगरज्जुवित्थारं लोगणालिं पस्संति ।

आणद-पाणदवासी तह आरण-अच्चुदा य जे देवा ।
पस्संति पंचमखिदिं छट्ठिम गेवज्जया देवा ॥ १३ ॥

यहां उनसे कुछ अधिक क्षेत्रको देखनेवाले लान्तव और कापिष्ठ कल्पके देवोंमें उक्त काल कुछ कम पल्यप्रमाण कैसे हो सकता है ?

समाधान— यह कोई दोष नहीं है, क्योंकि, भिन्न स्वभाववाले विविध कल्पोंमें अपने कल्पके भेदसे अवधिज्ञानावरणीय कर्मके क्षयोपशमके भिन्न होनेमें कोई विरोध नहीं है । परन्तु क्षेत्रकी अपेक्षा कालके लानेपर सौधर्म कल्पसे लेकर सर्वार्थसिद्धि विमानवासी देवों तक उक्त काल पल्योपमका संख्यातवां भाग होना चाहिए, क्योंकि, एक घनलोकके प्रति यदि एक पल्य काल प्राप्त होता है तो घनलोकके संख्यातवें भागके प्रति क्या लब्ध होगा, इस प्रकार त्रैराशिक करके फलराशिसे गुणित इच्छाराशिमें प्रमाणराशिका भाग देनेपर पल्योपमका संख्यातवां भाग काल उपलब्ध होता है । परन्तु यह सम्भव नहीं है, क्योंकि, ऐसा गुरुका उपदेश नहीं पाया जाता । [अतः क्षेत्रकी अपेक्षा किये विना जहां जो काल कहा है, उसका ग्रहण करना चाहिए ।]

शुक्र और महाशुक्र कल्पवासी देव अपने विमानके शिखरसे लेकर चौथी पृथिवीके नीचेके तलभाग तक साढ़े सात राजु लम्बी और एक राजु विस्तारवाली लोकनालिको देखते हैं । शतार और सहस्रार कल्पवासी देव अपने विमानके शिखरसे लेकर नीचे चौथी पृथिवीके नीचेके तलभाग तक आठ राजु लम्बी और एक राजु विस्तारवाली लोकनालिको देखते हैं ।

आनत-प्राणतकल्पवासी और आरण-अच्युत कल्पके देव पांचवीं पृथिवी तक देखते हैं तथा ग्रैवेयकके देव छठी पृथिवी तक देखते हैं ॥ १३ ॥

---

१ षट्खं. पु. ९, पृ. २६. पंचमि आणद-पाणद छट्ठी आरणच्चुदा य पस्संति । णवगेवज्जा सत्तमि अणुदिस-अणुत्तरा य लोगंतं ॥ मूला. १२–१०८. ति. प. ८, ६८६. आनत-प्राणता ऽऽ रणाच्युतानां जघन्योऽवधिः पङ्कप्रभाया अधश्चरमः, उत्कृष्टस्तमःप्रभाया अधश्चरमः । त. रा. १, २१, ७. आणय-पाणयकप्पे देवा पासंति पंचमिं पुढविं । तं चेव आरणच्चुय ओहिण्णाणेण पासंति ॥ छट्ठिं हेट्ठिम-मज्झिम-

आणद-पाणदकप्पवासियदेवा सगविमाणसिहरप्पहुडि हेट्ठा जाव पंचमपुढविहेट्ठिमतले त्ति ताव अद्धसहिदणवरज्जुआयदं एयरज्जुवित्थारं लोयणालिं पस्संति। आरण-अच्चुदकप्प-वासियदेवा सगविमाणसिहरप्पहुडि हेट्ठा जाव पंचमपुढविहेट्ठिमतले त्ति ताव दसरज्जुआयदं एगरज्जुवित्थारं लोगणालिं पेक्खंति। 'छट्ठी गेवेज्जया देवा' णवगेवज्जविमाणवासियदेवा अप्पप्पणो विमाणसिहरप्पहुडि हेट्ठा जाव छट्ठिपुढविहेट्ठिमतले त्ति ताव विसेसाहियएक्कारहरज्जुआयदं रज्जुविक्खंभं लोगणालिं पेक्खंति।

सव्वं च लोगणालिं पस्संति अणुत्तरेसु जे देवा।
सक्खेत्ते य सकम्मे रूवगदमणंतभागं च[1] ॥ १४ ॥

'अणुत्तरेसु च' णवाणुद्दिस-पंचाणुत्तरविमाणवासियदेवा अप्पप्पणो विमाणसिहरादो हेट्ठा जाव णिगोदट्ठाणस्स बाहिरिल्लए वादवलए त्ति ताव किंचूणचोद्दसरज्जुआयदं रज्जुवित्थारं सव्वलोगणालिं पस्संति[2]। 'सव्वं च' एत्थ जो चसद्दो [सो] अवुत्तसमुच्चयट्ठो। तेण णवाणुद्दिसदेवाणं गाहासुत्ते अणुवइट्ठाणं[3] गहणं कदं। लोगणालीसद्दो अंतदीवओ त्ति

आनत और प्राणत कल्पवासी देव अपने विमानके शिखरसे लेकर नीचे पांचवीं पृथिवीके नीचेके तलभाग तक साढ़े नौ राजु लम्बी और एक राजु विस्तारवाली लोकनालीको देखते हैं। आरण और अच्युत कल्पवासी देव अपने विमानके शिखरसे लेकर नीचे पांचवीं पृथिवीके नीचेके तलभाग तक दस राजु लम्बी और एक राजु विस्तारवाली लोकनालीको देखते हैं। नौ ग्रैवेयक विमानवासी देव अपने अपने विमानोंके शिखरसे लेकर नीचे छठी पृथिवीके नीचेके तल भाग तक साधिक ग्यारह राजु लम्बी और एक राजु विस्तारवाली लोकनालीको देखते हैं।

अनुत्तरोंमें रहनेवाले जितने देव हैं वे समस्त ही लोकनालीको देखते हैं। ये सब देव अपने अपने क्षेत्रके जितने प्रदेश हों उतनी वार अपने अपने कर्ममें मनोद्रव्यवर्गणाके अनन्तवें भागका भाग देनेपर जो अन्तिम एक भाग लब्ध आता है उसे जानते हैं ॥ १४ ॥

नौ अनुदिश और पांच अनुत्तर विमानवासी देव अपने अपने विमानशिखरसे लेकर नीचे निगोदस्थानसे बाहरके वातवलय तक कुछ कम चौदह राजु लम्बी और एक राजु विस्तारवाली सब लोकनालीको देखते हैं। 'सव्वं च' यहांपर जो 'च' शब्द है वह अनुक्त अर्थका समुच्चय करनेके लिए है। इससे गाथासूत्रमें अनिर्दिष्ट नौ अनुदिशवासी देवोंका ग्रहण किया है। लोकनाली

गेविज्जा सत्तमिं च उवरिल्ला। संभिण्णलोयणालिं पासंति अणुत्तरा देवा॥ वि. भा. ६९९-७०० (नि. ४९-५०). आणय-पाणय-आरणच्चुय देवा अहे जाव पंचमाए धूमप्पभाए हेट्ठिल्ले चरिमंते, हेट्ठिम-मज्झिमगेवेज्जगदेवा अधे जाव छट्ठाए तमाए पुढवीए हेट्ठिल्ले जाव चरमंते। उवरिमगेविज्जगदेवा णं भंते! केयतियं खेत्तं ओहिणा जाणंति पासंति? गोयमा! जहन्नेणं अंगुलस्स असंखेज्जतिभागं, उक्कोसेणं अधे सत्तमाए हेट्ठिल्ले चरमंते, तिरियं जाव असंखेज्जे दीव-समुद्दे, उड्ढं जाव सयाइं विमाणाइं ओहिणा जाणंति पासंति। प्रज्ञापना ३३-४.

१ षट्खं. पु. ९, पृ. २६. ति. प. ८, ६८७. २ नवानामनुदिशानां पंचानुत्तरविमानवासिनां च लोकनालिपर्यन्तोऽवधिः। त. रा. १, २१, ७. ३ अ-आ-काप्रतिषु 'अणुद्दिसट्ठाणं', ताप्रतौ 'अणुद्दिट्ठाणं' इति पाठः।

कादूण सव्वत्थ जोजेयव्वो । तं जहा— सक्कीसाणा सगविमाणसिहरादो जाव पढमपुढवि त्ति सव्वं लोगणालिं पस्संति । सणक्कुमारमाहिंदा जाव विदियपुढवि त्ति सव्वं लोगणालिं पस्संति । एवं सव्वत्थ वत्तव्वं, अण्णहा णवाणुद्दिस-पंचाणुत्तरविमाणवासियदेवाणं सव्व-लोगणालिविसयं दंसणं होज्ज । ण च एवं, सग-सगविमाणसिहरादो उवरि गहणा-भावादो णवाणुद्दिस-चत्तारिअणुत्तरविमाणवासियदेवाणं सत्तमपुढविहेट्ठिमतलादो हेट्ठा गहणाभावादो च । सव्वट्ठसिद्धिविमाणवासियदेवा वि ण सव्वलोगणालिं पस्संति, सग-विमाणसिहरादो उवरिमभागकिंचूणिगिवीसजोयणबाहल्लरज्जुपदरपरिहीणसयललोगणालीए गहणादो । णवाणुद्दिस-चत्तारिअणुत्तरविमाणवासियदेवा सत्तमपुढविहेट्ठिमतलादो हेट्ठा ण पेच्छंति त्ति कुदो णव्वदे ? अविरुद्धाइरियवयणादो । णवाणुद्दिस-चत्तारिअणुत्तरविमाण-सव्वट्ठसिद्धिविमाणवासियदेवा[1] सिहरादो हेट्ठा जाव अंतिमवादवलओ त्ति रज्जुपदरविक्खंभेण सव्वलोगणालिं पेच्छंति त्ति के वि आइरिया भणंति तं जाणिय वत्तव्वं ।

सव्वे वि कालदो किंचूणपल्लं जाणंति । एसो वि गुरूवएसो चेव, वट्टमाणकाले

शब्द अन्तदीपक है, ऐसा जानकर उसकी सर्वत्र योजना करनी चाहिए । यथा— सौधर्म और ईशान कल्पवासी देव अपने विमानके शिखरसे लेकर पहली पृथिवी तक सब लोकनालीको देखते हैं । सानत्कुमार और माहेन्द्र कल्पवासी देव दूसरी पृथिवी तक सब लोकनालीको देखते हैं । इसी प्रकार आगे सर्वत्र कथन करना चाहिए । कारण कि इसके विना नौ अनुदिश और पांच अनुत्तर विमानवासी देवोंके सब लोकनालीविषयक अवधिज्ञान प्राप्त होता है । परन्तु ऐसा है नहीं, क्योंकि, प्रथम तो अपने अपने विमानोंके शिखरसे ऊपरके विषयका ग्रहण किसीको नहीं होता । दूसरे, नौ अनुदिश और चार अनुत्तर विमानवासी देवोंके सातवीं पृथिवीके अधस्तन तलसे नीचेका ग्रहण नहीं होता । तीसरे, सर्वार्थसिद्धि विमानवासी देव भी सब लोकनालीको नहीं देखते हैं, क्योंकि, उनके अपने विमानशिखरसे ऊपरका कुछ कम इक्कीस योजन बाहल्यवाले एक राजुप्रतररूप क्षेत्रके सिवा सब लोकनाली क्षेत्रका ग्रहण होता है ।

शंका— नौ अनुदिश और चार अनुत्तर विमानवासी देव सातवीं पृथिवीके अधस्तन तलसे नीचे नहीं देखते हैं, यह किस प्रमाणसे जाना जाता है ?

समाधान— वह सूत्राविरुद्ध आचार्योंके वचनसे जाना जाता है ।

नौ अनुदिश और चार अनुत्तर विमानवासी देव तथा सर्वार्थसिद्धि विमानवासी देव अपने विमानशिखरसे लेकर अन्तिम वातवलय तक एक राजुप्रतर विस्ताररूप सब लोकनालीको देखते हैं, ऐसा कितने ही आचार्य उक्त गाथासूत्रका व्याख्यान करते हैं; सो उसका जानकर कथनकरना चाहिए ।

ये सभी देव कालकी अपेक्षा कुछ कम एक पल्यके भीतर अतीत अनागत द्रव्यको जानते हैं । यह भी गुरुका उपदेश ही है, इस विषयका कथन करनेवाला वर्तमान कालमें कोई सूत्र

---

१ अप्रतौ 'अणुत्तरविमाणवासियदेवा सव्वट्ठसिद्धि सव्वट्ठसिद्धियविमाणवासियदेवा सिहरादो', काप्रतौ 'अणुत्तरविमाणवासियदेवा सव्वट्ठसिद्धिविमाणसिहरादो', ताप्रतौ 'अणुत्तरविमाणवासियदेवा सिहरादो' इति पाठः ।

सुत्ताभावादो। देवाणं विसईभूददव्वस्स पमाणपरूवणट्ठं गाहापच्छिमद्धं भणदि– सगक्खेत्ते सलागभूदे संते सगकम्मे मणदव्ववग्गणाए अणंतिमभागेण सलागं परिच्छिज्जमाणे जमंतिमं रूवगदं पोग्गलदव्वं [तं] तस्स विसओ होदि। एत्थ च-सद्दो अवुत्तसमुच्चयट्ठो। तेण मणदव्व-वग्गणाए अणंतिमभागभूदभागहारो तदवट्ठिदत्तं च सिद्धं।

एत्थ ताव सोहम्मीसाणदेवाणं दव्वपरूवणं कस्सामो। तं जहा– सगक्खेत्तं लोगस्स संखेज्जदिभागं सलागभूदं ट्ठवेदूण मणदव्ववग्गणाए अणंतिमभागं विरलेदूण सव्वदव्वं समखंडं कादूण एक्केक्कस्स रूवस्स दादूण सलागरासीदो एगागासपदेसो अवणेदव्वो। पुणो एत्थ एगरूवधरिदं घेत्तूण एदिस्से अवट्ठिदविरलणाए समखंडं करिय दाऊण विदिया सलागा अवणेदव्वा। एसो कमो ताव कायव्वो जाव सव्वाओ सलागाओ णिट्ठिदाओ त्ति। एत्थ जं सव्वपच्छिमकिरियाणिप्पण्णं पोग्गलदव्वमेगरूवधरिदं तं रूवगदं णाम। तं सोहम्मीसाण-देवा ओहिणाणेण पेक्खंति। एवं सव्वदेवेसु दव्वपरूवणा कायव्वा। णवरि सग-सगखेत्तं सलागभूदं ठवेदूण किरिया कायव्वा। एदं दव्वं देवेसु किमुक्कस्समाहो अणुक्कस्समिदि ? ण, देवेसु जादिविसेसेण णाणं पडि समाणभावमावण्णेसु उक्कस्साणुक्कस्सभेदाभावादो।

नहीं है। अब देवोंके विषयभूत द्रव्यके प्रमाणका कथन करनेके लिए गाथाके उत्तरार्धका व्याख्यान करते हैं— अपने अपने क्षेत्रको सलाकारूपसे स्थापित करके अपने अपने कर्ममें मन-द्रव्यवर्गणाके अनन्तवें भागका जितनी शलाकायें स्थापित की हैं उतनी बार भाग देनेपर जो अन्तिम रूपगत पुद्गल द्रव्य प्राप्त होता है वह उस उस देवके अवधिज्ञानका विषय होता है। यहांपर 'च' शब्द अनुक्त अर्थका समुच्चय करनेके लिए आया है। इससे मनद्रव्यवर्गणाके अनन्तवें भागरूप भागहार तदवस्थित रहता है, यह सिद्ध होता है।

अब यहांपर पहले सौधर्म और ऐशान कल्पवासी देवोंके द्रव्यके प्रमाणका कथन करते हैं। यथा— लोकके संख्यातवें भागप्रमाण अपने क्षेत्रको शलाकारूपसे स्थापित करके और मनद्रव्य-वर्गणाके अनन्तवें भागका विरलन करके विरलित राशिके प्रत्येक एकके प्रति सब द्रव्यको समान खण्ड करके देनेपर शलाका राशिमेंसे एक आकाशप्रदेश कम कर देना चाहिए। पुनः यहां विरलित राशिके एक अंकके प्रति जो राशि प्राप्त हो उसे उक्त अवस्थित विरलन राशिके ऊपर समान खण्ड करके स्थापित करे और शलाका राशिमेंसे दूसरी शलाका कम करे। यह क्रिया सब शलाकाओंके समाप्त होने तक करे। यहां सबसे अन्तिम क्रियाके करनेपर जो एक अंकके प्रति प्राप्त पुद्गल द्रव्य निष्पन्न होता है उसकी रूपगत संज्ञा है। उसे सौधर्म और ऐशान कल्पके देव अपने अवधिज्ञान द्वारा देखते हैं। इसी प्रकार सब देवोंमें अवधिज्ञानके विषयभूत द्रव्यके प्रमाणका कथन करना चाहिए। इतनी विशेषता है कि अपने अपने क्षेत्रको शलाकारूपसे स्थापित कर यह क्रिया करनी चाहिए।

शंका— यह द्रव्य देवोंमें क्या उत्कृष्ट है या अनुत्कृष्ट है ?

समाधान— नहीं, क्योंकि देव जातिविशेषके कारण ज्ञानके प्रति समान भावको प्राप्त होते हैं, अतएव उनमें अवधिज्ञानके द्रव्यका उत्कृष्ट और अनुत्कृष्ट भेद नहीं होता।

एदं[1] सुत्तं कप्पवासियदेवाणं चेव, सेसाणं ण होदि त्ति कधं णव्वदे? तिरिक्ख-मणुस्सेसु अंगुलस्स असंखेज्जदिभागमेत्तजहण्णोहिक्खेत्तपमाणपरूवणादो। ण च कम्मइयसरीरं जाणंताणं अंगुलस्स असंखेज्जदिभागममेत्तं जहण्णोहिखेत्तं होदि, असंखेज्जा दीव-समुद्दा त्ति सुत्तेण सह विरोहादो। पुणो तिरिक्ख-मणुस्सेसु ओरालियसरीरं विस्सासोवचयसहिदं एगघणलोगेण खंडिदे जमेगखंडं तं जहण्णोहिदव्वं होदि। पुणो मणदव्ववग्गणाए अणंतिमभागमवट्ठिदं विरलेदूण जहण्णोहिदव्वं समखंडं कादूण दिण्णे विदियओहिणाणस्स[2] दव्वं होदि। एवं "कालो चउण्ण वुड्ढी" एदस्स सुत्तस्स अत्थमवहारिय तिरिक्ख-मणुस्सेसु दव्व-खेत्त-काल-भावपरूवणा कायव्वा जाव देसोहीए सव्वुक्कस्सदव्व-खेत्त-काल-भावा जादा त्ति। सुत्तेण [विणा] कधमेदं वुच्चदे? अविरुद्धाइरियवयणादो। संपहि परमोहिदव्व-खेत्त-काल-भावपरूवणट्ठमुत्तरगाहासुत्तं भणदि—

परमोहि असंखेज्जाणि लोगमेत्ताणि समयकालो दु।

शंका—यह सूत्र कल्पवासी देवोंकी ही अपेक्षासे है, शेष जीवोंकी अपेक्षासे नहीं है; यह किस प्रमाणसे जाना जाता है?

समाधान—वह तिर्यञ्च और मनुष्योंमें अङ्गुलके असंख्यातवें भागप्रमाण जघन्य अवधिज्ञानके क्षेत्रका कथन करनेवाले सूत्र (गाथासूत्र ३) से जाना जाता है। और कार्मण शरीरको जाननेवाले जीवोंके अङ्गुलके असंख्यातवें भागप्रमाण जघन्य अवधिज्ञानका क्षेत्र होता है, यह कहना भी ठीक नहीं है, क्योंकि, इस कथनका 'असंखेज्जा दीव-समुद्दा' इस सूत्र (गाथासूत्र ९) के साथ विरोध आता है।

पुनः तिर्यञ्च और मनुष्योंमें विस्रसोपचयसहित औदारिक शरीरको एक घनलोकसे भाजित करनेपर जो एक भाग लब्ध आता है वह जघन्य अवधिज्ञानका द्रव्य होता है। पुनः मनोद्रव्यवर्गणाके अनन्तवें भागरूप अवस्थित विरलनराशिका विरलन करके उसपर जघन्य अवधिज्ञानके द्रव्यको समान खण्ड करके देयरूपसे देनेपर जो एक विरलनके प्रति द्रव्य प्राप्त होता है वह दूसरे अवधिज्ञानका द्रव्य होता है। इस प्रकार 'कालो चउण्ण वुड्ढी' इस सूत्रके अर्थका अवधारण करके तिर्यञ्च और मनुष्योंमें द्रव्य, क्षेत्र, काल और भावकी प्ररूपणा करनी चाहिए। और वह प्ररूपणा देशावधिज्ञानके सर्वोत्कृष्ट द्रव्य, क्षेत्र काल और भावके प्राप्त होने तक करनी चाहिए।

शंका—यह सूत्रके विना कैसे कहा जाता है?

समाधान—यह सूत्राविरुद्ध आचार्योंके वचनसे कहा जाता है।

अब परमावधिज्ञानके विषयभूत द्रव्य, क्षेत्र, काल और भावका कथन करनेके लिए आगेका गाथासूत्र कहते हैं—

परमावधिज्ञानका असंख्यात लोक प्रमाण क्षेत्र है और असंख्यात शलाकाक्रमसे

१ प्रतिषु 'एवं' इति पाठः। २ ताप्रतौ 'विदियं' इति पाठः।

रूवगद लहइ दव्वं खेत्तोवमअगणिजीवेहि[1] ॥ १५ ॥

परमोहि त्ति णिद्देसादो हेट्ठिमो सव्वो सुत्तकलाओ देसोहीए परूविदो त्ति घेत्तव्वो। परमा ओही मज्जाया जस्स णाणस्स तं परमोहिणाणं। किं परमं ? असंखेज्जलोगमेत्तसंजमवियप्पा। परमोहिणाणं संजदेसु चेव उप्पज्जदि। उप्पण्णे हि[2] परमोहिणाणे सो जीवो मिच्छत्तं ण कयावि गच्छदि, असंजमं पि णो गच्छदि त्ति भणिदं होदि। परमोहिणाणिस्स देवेसुप्पण्णस्स असंजमो किण्ण लब्भदि त्ति चे—ण, तत्थ परमोहिणाणीणं पडिवादाभावेण उप्पादाभावादो। देसं सम्मत्तं[3], संजमस्स अवयवभावादो; तमोही मज्जाया जस्स णाणस्स तं देसोहिणाणं। तत्थ मिच्छत्तं पि गच्छेज्ज असंजमं[4] पि गच्छेज्ज, अविरोहादो। सव्वं केवलणाणं, तस्स विसओ जो जो अत्थो सो वि सव्वं उवयारादो। सव्वमोही मज्जाया जस्स णाणस्स तं सव्वोहिणाणं। एदं पि णिग्गंथाणं चेव होदि। 'असंखेज्जाणि लोग-

---

लोकप्रमाण समय काल है। तथा वह क्षेत्रोपम अग्निकायिक जीवोंके द्वारा परिच्छिन्न होकर प्राप्त हुए रूपगत द्रव्यको जानता है ॥ १५ ॥

'परमावधि' ऐसा निर्देश करनेसे पिछला सब सूत्रकलाप देशावधिज्ञानका प्ररूपण करता है, ऐसा यहां ग्रहण करना चाहिए। परम अर्थात् असंख्यात लोकमात्र संयमभेद ही जिस ज्ञानकी अवधि अर्थात् मर्यादा है वह परमावधिज्ञान कहा जाता है।

शंका— यहां परम शब्दका क्या अर्थ है ?

समाधान— यहां परम शब्दसे असंख्यात लोकमात्र संयमके विकल्प अभीष्ट हैं।

परमावधिज्ञानकी उत्पत्ति संयतोंके ही होती है। परमावधिज्ञानके उत्पन्न होनेपर वह जीव न कभी मिथ्यात्वको प्राप्त होता है और न कभी असंयमको भी प्राप्त होता है, यह उक्त कथनका तात्पर्य है।

शंका— परमावधिज्ञानीके मरकर देवोंमें उत्पन्न होनेपर असंयमकी प्राप्ति कैसे नहीं होती है ?

समाधान—नहीं, क्योंकि परमावधिज्ञानियोंका प्रतिपात नहीं होनेसे वहां उनका उत्पाद सम्भव नहीं है।

'देश' का अर्थ सम्यक्त्व है, क्योंकि, वह संयमका अवयव है। वह जिस ज्ञानकी अवधि अर्थात् मर्यादा है वह देशावधिज्ञान है। उसके होनेपर जीव मिथ्यात्वको भी प्राप्त होता है और असंयमको भी प्राप्त होता है, क्योंकि, ऐसा होनेमें कोई विरोध नहीं है।

'सर्व' का अर्थ केवलज्ञान है, उसका विषय जो जो अर्थ होता है वह भी उपचारसे सर्व कहलाता है। सर्व अवधि अर्थात् मर्यादा जिस ज्ञानकी होती है वह सर्वावधिज्ञान है। यह भी निर्ग्रन्थोंके ही होता है। 'असंखेज्जाणि लोगमेत्ताणि' इसमें लोकमात्रका अर्थ एक घनलोक

---

१ षट्खं. पु. ९, पृ. ४२. सव्वबहुअगणिजीवा णिरंतरं जत्तियं भरिज्जंसु। खेत्तं सव्वदिसागं परमोहीखेत्त निद्दिट्ठो ॥ नं. सू. गा. ४९. वि. भा. ६०१ (नि. ३१). २ आ-का-ताप्रतिषु 'वि' इति पाठः। ३ प्रतिषु 'देससम्मत्तं' इति पाठः। ४ प्रतिषु 'असंजदं' इति पाठः।

मेत्ताणि ' लोगमेत्तं[1] णाम एगो घणलोगो, दोहि घणलोगेहि दोण्णि[2] लोगमेत्ताणि, एवं गंतूण असंखेज्जलोगमेत्ताणि घेत्तूण उक्कस्सं परमोहिखेत्तं होदि । एदेण परमोहिणिबद्धखेत्तपरूवणा कदा । 'समयकालो' समओ च सो कालो च समयकालो । किमट्ठं समएण कालो विसेसिदो ? आवलि-खण-लव-मुहुत्तादिपडिसेहट्ठं । दु-सद्दो वुत्तसमुच्चयट्ठो । तेण समयकालो वि असंखेज्जाणि लोगमेत्ताणि होंति त्ति सिद्धं । एदेण परमोहीए उक्कस्सकालो परूविदो । अगणिकाइयओगाहणट्ठाणाणि खेत्तं णाम । तेन क्षेत्रेण उपमीयन्त इति क्षेत्रोपमाः, क्षेत्रोपमाश्च ते अग्निजीवाश्च क्षेत्रोपमाग्निजीवाः । तेहि सलागभूदेहि परिच्छिण्णं दव्वं रूवगदं अणंत-परमाणुसमारद्धं परमोही लहदि जाणदि त्ति घेत्तव्वं । एदेण परमोहीए उक्कस्सदव्वपरू-वणा कदा ।

संपहि देसोहिउक्कस्सदव्वं मणदव्ववग्गणाए अणंतिमभागस्स समखंडं कादूण दिण्णे एक्केक्कस्स रूवस्स परमोहिजहण्णदव्वं पावदि । एगघणलोगमावलियाए असंखेज्जदिभागेण गुणिदे परमोहीए जहण्णखेत्तं होदि । तेणेव गुणगारेण समऊणपल्ले गुणिदे तस्सेव जहण्ण-कालो होदि । सलागादो एगरूवमवणेयव्वं । को एत्थ सलागरासी ? तेउक्काइयजहणो-

---

है । दो घनलोकोंसे दो लोकमात्र होते हैं । इस प्रकार आगे जाकर असंख्यात लोकमात्रोंको ग्रहणकर परमावधिज्ञानका उत्कृष्ट क्षेत्र होता है । इसके द्वारा परमावधिज्ञानसे सम्बन्ध रखनेवाले क्षेत्रका कथन किया गया है । 'समयकालो' यहां 'समय रूप जो काल समयकाल' इस प्रकार कर्मधारयसमास है ।

शंका—समय द्वारा काल किसलिए विशेषित किया गया है ?

समाधान—आवलि, क्षण, लव और मुहूर्त आदिका प्रतिषेध करनेके लिए कालको समयसे विशेषित किया गया है ।

'दु' शब्द उक्त अर्थका समुच्चय करनेके लिए आया है । इससे समय काल भी असंख्यात लोक प्रमाण है, यह सिद्ध होता है । इसके द्वारा परमावधिज्ञानके उत्कृष्ट कालका कथन किया है । अग्निकायिक जीवोंके अवगाहनास्थानोंका नाम क्षेत्र है । उस क्षेत्रके द्वारा जो उपमित किए जाते हैं वे क्षेत्रोपम कहलाते हैं । क्षेत्रोपम ऐसे जो अग्निजीव वे क्षेत्रोपम अग्निजीव हैं । शलाकारूप उन अग्निकायिक जीवोंके द्वारा परिच्छिन्न किये गये ऐसे अनन्त परमाणुओंसे आरब्ध रूपगत द्रव्यको परमावधिज्ञान उपलब्ध करता है अर्थात् जानता है, ऐसा यहां ग्रहण करना चाहिए । इसके द्वारा परमावधिज्ञानके उत्कृष्ट द्रव्यका कथन किया गया है ।

अब देशावधिज्ञानके उत्कृष्ट द्रव्यको मनोद्रव्य वर्गणाके अनन्तवें भागका विरलनकर उसके ऊपर समान खण्ड करके देनेपर एक एक विरलन अंकके प्रति परमावधिज्ञानका जघन्य द्रव्य प्राप्त होता है । एक घनलोकको आवलिके असंख्यातवें भागसे गुणित करनेपर परमावधिज्ञानका जघन्य क्षेत्र होता है । तथा उसी गुणकारसे एक समय कम पल्यको गुणित करनेपर उसीका जघन्य काल होता है । यहां शलाकामेंसे एक अंक कम कर देना चाहिए ।

---

१ आप्रतौ 'लोगमेत्ताणि' इति पाठः । २ अप्रतौ '-लोगेहि भागे हिदे दोण्णि' इति पाठः ।

गाहणं तस्सेव उक्कस्सोग्गाहणाए सोहिय सुद्धसेसम्मि रूवं पक्खिविय तेण तेउक्काइय-रासिम्हि गुणिदे सलागारासी होदि। पुणो परमोहिजहण्णदव्वमवट्ठिदविरलणाए समखंडं कादूण दिण्णे तत्थ एगखंडं परमोहीए विदियो दव्ववियप्पो होदि। पुणो परमोहिजहण्ण-खेत्त-काले पडिरासिय पुव्विल्लआवलियाए असंखेज्जदिभागस्स[2] वग्गेण गुणिदे खेत्त-कालाणं विदियवियप्पो होदि। एवं वेयणाए वुत्तविहाणेण[3] णेदव्वं जाव सलागरासी सव्वो णिट्ठिदो[4] त्ति। तत्थ चरिमो दव्ववियप्पो रूवगदं णाम। तं परमोहिउक्कस्सविसओ होदि। चरिमखेत्त-काला वि तस्स उक्कस्सखेत्त-कालवियप्पा होंति। एवं सव्वोहीए वि जाणिदूण परूवणा कायव्वा।

तेयासरीरलंबो[5] उक्कस्सेण दु तिरिक्खजोणिणिसु।
गाउअं[6] जहण्णओही णिरएसु अ जोयणुक्कस्सं[7] ॥ १६ ॥

'तिरिक्खजोणिणीसु' पंचिंदियतिरिक्ख-पंचिंदियतिरिक्खपज्जत्त-पंचिंदियतिरिक्ख-जोणिणीसु उक्कस्सेण दव्वं केत्तियं होदि? 'तेजासरीरलंबो' तेजइयसरीरसंचयभूदपदेस-

---

शंका— यहां शलाका राशि क्या है?

समाधान— तेजकायिक जीवकी जघन्य अवगाहनाको उसीकी उत्कृष्ट अवगाहनामेंसे घटाकर जो शेष रहे उसमें एक मिलाकर उसके द्वारा तेजकायिक जीवराशिको गुणित करनेपर शलाकाराशि होती है।

पुनः परमावधिज्ञानके जघन्य द्रव्यको अवस्थित विरलनराशिके ऊपर समान खण्ड करके देयरूपसे स्थापित करनेपर वहां प्राप्त एक खण्ड परमावधिज्ञानका दूसरा द्रव्यविकल्प होता है। पुनः परमावधिज्ञानके जघन्य क्षेत्र और कालको प्रतिराशि करके पूर्वोक्त आवलिके असंख्यातवें भागके वर्गसे गुणित करनेपर क्षेत्र और कालका दूसरा विकल्प होता है। इस प्रकार वेदना खण्ड (पु. ९, पृ. ४२–४७) में कही गई विधिके अनुसार पूरी शलाकाराशिके समाप्त होने तक कथन करना चाहिए। उसमें जो अन्तिम द्रव्यविकल्प है उसकी रूपगत संज्ञा है। वह परमावधिज्ञानका उत्कृष्ट विषय होता है। अन्तिम क्षेत्र और काल भी उसके उत्कृष्ट क्षेत्र और कालके भेद होते हैं। इसी प्रकार सर्वावधिज्ञानका भी जानकर कथन करना चाहिए।

पंचेन्द्रिय तिर्यंच, पंचेन्द्रिय तिर्यंच पर्याप्त और पंचेन्द्रिय तिर्यंच योनिनी जीवोंके तैजसशरीरका संचय उत्कृष्ट द्रव्य होता है। नारकियोंमें जघन्य अवधिज्ञानका क्षेत्र गव्यूति प्रमाण है और उत्कृष्ट क्षेत्र योजन प्रमाण है ॥ १६ ॥

'तिरिक्खजोणिणीसु' अर्थात् पञ्चेन्द्रिय तिर्यञ्च, पञ्चेन्द्रिय तिर्यञ्च पर्याप्त और पञ्चेन्द्रिय तिर्यञ्च योनिनी जीवोंके उत्कृष्ट द्रव्य कितना होता है? 'तेजाशरीरलंबो' अर्थात् तैजसशरीरके

---

१ ताप्रतौ 'जहण्णोगाहणं। तस्सेव' इति पाठः। २ ताप्रतौ 'असंखे० भागादिभागस्स' इति पाठः। ३ षट्खं. पु. ९, पृ. ४२–४७, ४ आ-का-ताप्रतिषु 'णिट्ठिहो' इति पाठः। ५ काप्रतौ 'तेयासरीर-लंओ' इति पाठः। ६ काप्रतौ 'आउअ' इति पाठः। ७ म. बं. १, पृ. २३. आहारतेयलंभो उक्कोसेणं तिरिक्खजोणीसु। गाउय जहण्णमोही नरएसु य जोयणुक्कोसो॥ वि. भा, ६९३. (नि. ४६).

मेत्तो होदि। खेत्तमुक्कस्सं पुण असंखेज्जदीव-समुद्दमेत्तं होदि। उक्कस्सकालो असंखेज्जाणि वस्साणि। कधमेदं णव्वदे ? 'तेयाकम्मसरीरं' एदम्हादो सुत्तादो णव्वदे। णेरइएसु जहण्णोहिक्खेत्तं गाउअमेत्तं होदि, उक्कस्सं पुण एगजोयणपमाणं। एदं सुत्तं देसामासियं, णिरएसु सामण्णेण जहण्णुक्कस्सोहिपरूवणादो[1]। तेणेदेण सूइदत्थस्स परूवणं कस्सामो। तं जहा– सत्तमाए पुढवीए णेरइयाणमुक्कस्सखेत्तं गाउअपमाणं होदि। तेसिमुक्कस्सकालो अंतोमुहुत्तं। छट्ठीए पुढवीए णेरइयाणमुक्कस्सोहिखेत्तं दिवड्ढगाउअपमाणं। तेसिं कालो वि अंतोमुहुत्तं। पंचमीए पुढवीए णेरइयाणं उक्कस्सोहिखेत्तं वेगाउअपमाणं। उक्कस्सकालो अंतोमुहुत्तं। चउत्थीए पुढवीए णेरइयाणमुक्कस्सोहिखेत्तमड्ढाइज्जगाउअपमाणं होदि। तस्सुक्कस्सकालो[2] अंतोमुहुत्तं। तदियाए पुढवीए णेरइयाणं उक्कस्सोहिक्खेत्तं तिण्णिगाउअ-पमाणं। तत्थ उक्कस्सकालो अंतोमुहुत्तं। बिदियाए पुढवीए णेरइयाणमुक्कस्सोहिक्खेत्तं अद्धुट्ठगाउअपमाणं[3]। तत्थुक्कस्सकालो अंतोमुहुत्तं। पढमाए पुढवीए णेरइयाणमुक्कस्सोहि-क्खेत्तं चत्तारिगाउअपमाणं[4]। तत्थुक्कस्सकालो मुहुत्तं समऊणं। सुत्ते अवुत्तकालो कुदो

संचयभूत प्रदेशों प्रमाण होता है। उसका उत्कृष्ट क्षेत्र असंख्यात दीप-समुद्र प्रमाण और उत्कृष्ट काल असंख्यात वर्ष होता है।

शंका— यह किस प्रमाणसे जाना जाता है ?

समाधान— वह 'तेया-कम्मसरीरं' इस सूत्र (गाथासूत्र ९) से जाना जाता है।

नारकियोंमें जघन्य अवधिज्ञानका क्षेत्र गव्यूति प्रमाण है और उत्कृष्ट क्षेत्र एक योजन प्रमाण है। यह सूत्र देशामर्शक है, क्योंकि, नारकियोंमें सामान्यरूपसे जघन्य और उत्कृष्ट अवधिज्ञानके क्षेत्रका कथन करता है। इसलिए इसके द्वारा सूचित होनेवाले अर्थका निरूपण करते हैं। यथा— सातवीं पृथ्वीमें नारकियोंके अवधिज्ञानका उत्कृष्ट क्षेत्र गव्यूति प्रमाण और वहां उत्कृष्ट काल अन्तर्मुहूर्त है। छठी पृथ्वीमें नारकियोंके उत्कृष्ट अवधिज्ञानका क्षेत्र डेढ़ गव्यूति प्रमाण है और उन्हींके उसका उत्कृष्ट काल अन्तर्मुहूर्त है। पांचवीं पृथ्वीमें नारकियोंके उत्कृष्ट अवधिज्ञानका क्षेत्र दो गव्यूति प्रमाण और उत्कृष्ट काल अन्तर्मुहूर्त है। चौथी पृथ्वीमें नारकियोंके उत्कृष्ट अवधिज्ञानका क्षेत्र अढ़ाई गव्यूति प्रमाण और वहां उत्कृष्ट काल अन्तर्मुहूर्त है। तीसरी पृथ्वीमें नारकियोंके उत्कृष्ट अवधिज्ञानका क्षेत्र तीन गव्यूति प्रमाण है और वहां उत्कृष्ट काल अन्तर्मुहूर्त है। दूसरी पृथ्वीमें नारकियोंके उत्कृष्ट अवधिज्ञानका क्षेत्र साढ़े तीन गव्यूति प्रमाण और वहां उत्कृष्ट काल अन्तर्मुहूर्त है। पहिली पृथ्वीमें नारकियोंके उत्कृष्ट अवधिज्ञानका क्षेत्र चार गव्यूति प्रमाण और वहां उत्कृष्ट काल एक समय कम मुहूर्त प्रमाण है।

शंका— सूत्रमें काल नहीं कहा गया है, वह किस प्रमाणसे जाना जाता है ?

---

१ काप्रतौ 'जहण्णुक्कस्सेहि-', ताप्रतौ 'जहण्णुक्कस्से (स्सो) हि-' इति पाठः। २ आ का-ताप्रतिपु 'तमुक्कस्सकालो' इति पाठः। ३ ताप्रतौ 'गाउपमाणं' इति पाठः। ४ रयणप्पहाए जोयणमेयं ओहिविसओ मुणेयव्वो। पुढवीदो पुढवीदो गाऊ अद्धद्धपरिहाणी ॥ मूला. १२–१११. रयणप्पहावणीए कोसा चत्तारि ओहिणाणखिदी। तप्परदो पत्तेकं परिहाणी गाउदद्धेण ॥ ति. प. २–२७१. चत्तारि गाउयाइं अद्धुट्ठाइं तिगाउयं चेव। अड्ढाइज्जा दोण्णि य दिवड्ढमेगं च नरएसु ॥ वि. भा. ६९६. (नि. ४७). प्रज्ञापना ३३–२.

णव्वदे ? "गाउअं मुहुत्तंतो । जोयण भिण्णमुहुत्तं" त्ति एदम्हादो सुत्तादो णव्वदे ।
जहण्णुक्कस्सओहिणाणीणं सामित्तपदुप्पायणट्ठमुत्तरसुत्तं भणदि—

उक्कस्स माणुसेसु य माणुस-तेरिच्छए जहण्णोही ।
उक्कस्स लोगमेत्तं पडिवादी तेण परमपडिवादी[1] ॥ १७ ॥

'उक्कस्स माणुसेसु य' उक्कस्सओहिणाणं तिरिक्खेसु देवेसु णेरइएसु वा ण होदि, किंतु मणुस्सेसु चेव होदि । च-सद्दो अवुत्तसमुच्चयट्ठो । तेण किं लद्धं ? उक्कस्समोहिणाणं महारिसीणं चेव होदि त्ति समुवलद्धं । 'माणुस-तेरिच्छए जहण्णोही' जहण्णमोहिणाणं देव-णेरइएसु ण होदि, किंतु मणुस्स-तिरिक्खसम्माइट्ठीसु चेव होदि । एगघणलोगेण ओरालियसरीरम्मि भागे हिदे जं भागलद्धं[2] तं जहण्णोहिणाणेण विसईकयदव्वं होदि । खेत्तं पुण अंगुलस्स असंखेज्जदिभागो होंतो वि सव्वजहण्णोगाहणमेत्तो । जहण्णोहिकालो आवलियाए असंखेज्जदिभागो । एत्तो प्पहुडि उवरिमसव्ववियप्पा तिरिक्ख-मणुस्सेसु वेयणाए वुत्तविहाणेण[3] णेदव्वा जाव अप्पप्पणो उक्कस्सदव्व-खेत्त-काला त्ति[4] । णवरि तिरिक्खेसु

समाधान— वह 'गाउअं मुहुत्तंतो । जोयणभिण्णमुहुत्तं' इस सूत्र (गाथासूत्र ५) से जाना जाता है ।

अब जघन्य और उत्कृष्ट अवधिज्ञानियोंके स्वामित्वका कथन करनेके लिए आगेका सूत्र कहते हैं ।

उत्कृष्ट अवधिज्ञान मनुष्योंके तथा जघन्य अवधिज्ञान मनुष्य और तिर्यंच दोनोंके होता है । उत्कृष्ट क्षेत्र लोक प्रमाण है । यह प्रतिपाती है, इससे आगेके अवधिज्ञान अप्रतिपाती हैं ॥ १७ ॥

'उक्कस्स माणुसेसु य' अर्थात् उत्कृष्ट अवधिज्ञान तिर्यंच, देव और नारकियोंके नहीं होता; किन्तु मनुष्योंके ही होता है । 'च' शब्द अनुक्त अर्थका समुच्चय करनेके लिए आया है । इससे क्या लब्ध होता है ? इससे यह लब्ध होता है कि उत्कृष्ट अवधिज्ञान महा ऋषियोंके ही होता है । जघन्य अवधिज्ञान देव और नारकियोंके नहीं होता, किन्तु सम्यग्दृष्टि मनुष्य और तिर्यंचोंके ही होती है । एक घनलोकका औदारिकशरीरमें भाग देनेपर जो भागलब्ध आता है वह जघन्य अवधिज्ञानका विषयभूत द्रव्य होता है । परन्तु क्षेत्र अंगुलके असंख्यातवें भाग प्रमाण होकर भी सबसे जघन्य अवगाहना प्रमाण होता है । जघन्य अवधिज्ञानका काल अवलिके असंख्यातवें भाग प्रमाण है । यहांसे लेकर आगेके सब विकल्प तिर्यञ्च और मनुष्योंके वेदनाखण्ड (पु. ९, पृ. १४–३९) में कही गई विधिके अनुसार अपने अपने उत्कृष्ट द्रव्य, क्षेत्र और कालके प्राप्त होने तक जानने चाहिए । इतनी विशेषता है कि तिर्यंचोंमें उत्कृष्ट द्रव्य तैजसशरीर प्रमाण,

१ ताप्रतौ 'पडिवादी [ए]' इति पाठः । म. बं. १ पृ. २२. उक्कोसो मणुएसुं मणुस्स-तेरिच्छिएसु य जहण्णो । उक्कोस लोगमेत्तो पडिवाइ परं अपडिवाई ॥ वि. भा. ७०६ (नि. ५३) २ ताप्रतौ 'भागं लद्धं' इति पाठः । ३ षट्खं. पु. ९, पृ. १४–३९. ४ अप्रतौ '–कालो त्ति' इति पाठः ।

उक्कस्सदव्वं तेजइयसरीरं। उक्कस्सखेत्तमसंखेज्जाणि जोयणाणि। उक्कस्सकालो असंखेज्जाणि वस्साणि। मणुस्सेसु उक्कस्सदव्वमेगो परमाणू। उक्कस्सखेत्त-काला असंखेज्जा लोगा। देसोहिउक्कस्सखेत्तं लोगमेत्तं, कालो समऊणपल्लं। एदं देसोहिणाणं पडिवादी होदि, तम्हि चेव भवे पडिवण्णमिच्छत्तजीवेसु विणासुवलंभादो। 'तेण परमप्पडिवादी' तत्तो उवरिमाणि परमोहि-सव्वोहिणाणाणि अप्पडिवादीणि अविणस्सराणि, केवलणाणंतियाणि होंति त्ति भणिदं होदि। जावदियाणि ओहिणाणाणि परूविदाणि तत्तियाओ चेव ओहिणाणावरणीयस्स पयडीओ होंति। विहंगणाणस्स जहण्णक्खेत्तं तिरिक्ख-मणुस्सेसु अंगुलस्स असंखेज्जदिभागो। उक्कस्सखेत्तं सत्तट्ठदीव-समुद्दा। एवमोहिणाणावरणीयस्स कम्मस्स परूवणा कदा।

मणपज्जवणाणावरणीयस्स कम्मस्स केवडियाओ पयडीओ? ॥ ६० ॥

सुगममेदं पुच्छासुत्तं।

मणपज्जवणाणावरणीयस्स कम्मस्स दुवे पयडीओ उजुमदिमणपज्जवणाणावरणीयं चेव विउलमदिमणपज्जवणाणावरणीयं चेव ॥

परकीयमनोगतोऽर्थो मनः, परि समन्तात् अयः विशेषः [पर्ययः], मनसः पर्ययः मनःपर्ययः, मनःपर्ययस्य ज्ञानं मनःपर्ययज्ञानम्। तस्स आवरणीयं मणपज्जवणाणावरणीयं।

उत्कृष्ट क्षेत्र असंख्यात योजन, और उत्कृष्ट काल असंख्यात वर्ष मात्र है। मनुष्योंमें उत्कृष्ट द्रव्य एक परमाणु तथा उत्कृष्ट क्षेत्र और काल असंख्यात लोक प्रमाण हैं। देशावधिज्ञानका उत्कृष्ट क्षेत्र लोक प्रमाण है और उत्कृष्ट काल एक समय कम पल्य प्रमाण है। यह देशावधिज्ञान प्रतिपाती होता है, क्योंकि, उसी भवमें जीवोंके मिथ्यात्वको प्राप्त हो जानेपर इसका विनाश देखा जाता है। उससे आगेके परमावधिज्ञान और सर्वावधिज्ञान अप्रतिपाती अर्थात् अविनश्वर हैं। अभिप्राय यह कि वे केवलज्ञानके उत्पन्न होने तक रहते हैं। जितने अवधिज्ञान कहे गये हैं उतनी ही अवधिज्ञानावरणीय कर्मकी प्रकृतियां हैं। विभङ्गज्ञानका जघन्य क्षेत्र तिर्यञ्च और मनुष्योंमें अंगुलके असंख्यातवें भाग प्रमाण होता है। उसका उत्कृष्ट क्षेत्र सात-आठ द्वीप समुद्र प्रमाण होता है। इस प्रकार अवधिज्ञानावरणीय कर्मका कथन किया।

मनःपर्ययज्ञानावरणीय कर्मकी कितनी प्रकृतियां हैं? ॥ ६० ॥

यह पृच्छासूत्र सुगम है।

मनःपर्ययज्ञानावरणीय कर्मकी दो प्रकृतियां हैं— ऋजुमतिमनःपर्ययज्ञानावरणीय और विपुलमतिमनःपर्ययज्ञानावरणीय ॥ ६१ ॥

परकीय मनोगत अर्थ मन कहलाता है। 'पर्यय' में परि शब्दका अर्थ सब ओर, और अय शब्दका अर्थ विशेष है। मनका पर्यय मनःपर्यय, और मनःपर्ययका ज्ञान मनःपर्ययज्ञान; इस प्रकार यहां षष्ठी तत्पुरुष समास है। उसका जो आवरण करता है वह मनःपर्ययज्ञानावरणीय कर्म है।

तस्स दुवे पयडीओ उजुमदि-विउलमदिमणपज्जयणाणावरणीयभेएण । एयं[1] मणपज्जवणाणावरणीयं ण दुब्भावं पडिवज्जदि, एयस्स दुब्भावविरोहादो । अह दुवे, ण तेसिमेयत्तं; दोण्णमेयत्तविरोहादो ? ण एस दोसो, उजु-विउलमदिविसेसणविरहिदणाणविवक्खाए णाणभेदाभावेण तदावरणस्स एयत्तुवलंभादो । उजु-विउलमदिविसेसणेहि विसेसिदमणपज्जवणाणस्स एयत्ताभावेण तदावरणस्स वि दुब्भावुवलंभादो । परेसिं[3] मणम्मि अट्ठिदत्थविसयस्स विउलमदिणाणस्स कधं मणपज्जवणाणववएसो ? ण, अचिंतिदं चेवट्ठं जाणदि त्ति णियमाभावादो । किंतु चिंतियमचिंतियमद्धचिंतियं च जाणदि[4] । तेण तस्स मणपज्जवणाणववएसो ण विरुज्झदे ।

जं तं उजुमदिमणपज्जवणाणावरणीयं णाम कम्मं तं तिविहं— उजुगं मणोगदं जाणदि उजुगं[5] वचिगदं जाणदि, उजुगं कायगदं जाणदि[6] ॥ ६२ ॥

जेण उज्जुगमणोगदट्ठविसयं उज्जुगवचिगदट्ठविसयं उज्जुगकायगदट्ठविसयं ति

उसकी ऋजुमतिमनःपर्ययज्ञानावरणीय और विपुलमतिमनःपर्ययज्ञानावरणीयके भेदसे दो प्रकृतियां हैं ।

शंका— एक मनःपर्ययज्ञानावरणीय कर्म दो प्रकारका नहीं हो सकता, क्योंकि, एकको दो रूप माननेमें विरोध आता है । और यदि वह दो प्रकारका है तो फिर वे एक नहीं हो सकते, क्योंकि, दोको एक माननेमें विरोध आता है ?

समाधान— यह कोई दोष नहीं है, क्योंकि ऋजुमति और विपुलमति विशेषणसे रहित ज्ञानकी विवक्षा होनेपर ज्ञानके भेदोंका अभाव होनेसे तदावरण कर्म एक प्रकारका उपलब्ध होता है । तथा ऋजुमति और विपुलमति विशेषणोंके द्वारा विशेषताको प्राप्त हुए मनःपर्ययज्ञानके एकत्वका अभाव होनेसे तदावरण कर्म भी दो प्रकारका उपलब्ध होता है ।

शंका— दूसरोंके मनमें नहीं स्थित हुए अर्थको विषय करनेवाले विपुलमतिज्ञानकी मनःपर्ययज्ञान संज्ञा कैसे है ?

समाधान— नहीं, क्योंकि अचिन्तित अर्थको ही वह जानता है, ऐसा कोई नियम नहीं है । किन्तु विपुलमतिज्ञान चिन्तित, अचिन्तित और अर्द्धचिन्तित अर्थको जानता है; इसलिए उसकी मनःपर्ययज्ञान संज्ञा होनेमें कोई विरोध नहीं आता ।

जो ऋजुमतिमनःपर्ययज्ञानावरणीय कर्म है वह तीन प्रकारका है— ऋजुमनोगतको जानता है, ऋजुवचनगतको जानता है और ऋजुकायगतको जानता है ॥ ६२ ॥

यतः ऋजुमनोगत अर्थको विषय करता है, ऋजुवचनगत अर्थको विषय करता है और

---

१ प्रतिषु 'एवं' इति पाठः । २ प्रतिषु 'दुब्भागं' इति पाठः । ३ आ-काप्रत्योः 'एदेसिं' इति पाठः । ४ चिंतियमचिंतियं वा अद्धंचिंतियमणेयभेयगयं । मणपज्जवं ति उच्चइ जं जाणइ तं खु णरलोए ॥ गो. जी. ४३७. ५ अ-आ-काप्रतिषु 'उज्जुगं' इति पाठः । ६ म. बं. १, पृ. २४.

तिविहमुजुमदिमणपज्जवणाणं तेण तदावरणं पि तिविहं होदि । मणस्स कधमुजुगत्तं ? जो जधा अत्थो ट्ठिदो तं तधा चिंतयंतो मणो उज्जुगो णाम । तव्विवरीयो मणो अणुज्जुगो । कधं वयणस्स उज्जुवत्तं ? जो जेम अत्थो ट्ठिओ तं तेम जाणावयंतं वयणं उज्जुवं णाम । तव्विवरीयमणुज्जुवं । कधं कायस्स उज्जुवत्तं ? जो जहा अत्थो ट्ठिदो तं तहा चेव अहिणइदूण दरिसयंतो[1] काओ उजुओ णाम । तव्विवरीयो अणुजुओ णाम । तत्थ जं उज्जुवं पउणं[2] होदूण मणस्स गदमट्ठं जाणदि तमुजुमदिमणपज्जवणाणं । अचिंतियमद्धचिंतियं विवरीयभावेण [चिंतियं च अट्ठं ण] जाणदि त्ति भणिदं होदि ।

जमुज्जुवं पउणं होदूण चिंतियं पउणं[3] चेव उल्लविदमट्ठं जाणदि तं पि उजुमदिमण-पज्जवणाणं णाम । अबोल्लिदमद्धबोल्लिदं विवरीयभावेण बोल्लिदं च अट्ठं ण जाणदि त्ति भणिदं होदि, ऋज्वी मतिर्यस्मिन् मनःपर्ययज्ञाने तत् ऋजुमतिमनःपर्य्ययज्ञानमिति व्युत्पत्तेः । उज्जुववचिगदस्स मणपज्जवणाणस्स उजुमदिमणपज्जववएसो[4] ण पावदि त्ति ? ण, एत्थ वि

ऋजुकायगत अर्थको विषय करता है; अतः ऋजुमतिमनःपर्ययज्ञान तीन प्रकारका है और इसीसे तदावरण कर्म भी तीन प्रकारका है ।

शंका—मनको ऋजुपना कैसे आता है ?

समाधान—जो अर्थ जिस प्रकारसे स्थित है उसका उस प्रकारसे चिन्तवन करनेवाला मन ऋजु है और उससे विपरीत चिन्तवन करनेवाला मन अनृजु है ।

शंका—वचनमें ऋजुपना कैसे आता है ?

समाधान—जो अर्थ जिस प्रकारसे स्थित है उसे उस प्रकारसे ज्ञापन करानेवाला वचन ऋजु है और उससे विपरीत वचन अनृजु है ।

शंका—कायमें ऋजुपना कैसे आता है ?

समाधान—जो अर्थ जिस प्रकारसे स्थित है उसको उसी प्रकारसे अभिनय द्वारा दिखलानेवाला काय ऋजु है और उससे विपरीत काय अनृजु है ।

उनमेंसे जो ऋजु अर्थात् प्रगुण होकर मनोगत अर्थको जानता है वह ऋजुमतिमनःपर्ययज्ञान है । वह अचिन्तित, अर्धचिन्तित और विपरीतरूपसे चिन्तित अर्थको नहीं जानता है; यह उक्त कथनका तात्पर्य है ।

जो ऋजु अर्थात् प्रगुण होकर विचारे गये व सरल रूपसे ही कहे गये अर्थको जानता है वह भी ऋजुमतिमनःपर्ययज्ञान है । यह नहीं बोले गये, आधे बोले गये और विपरीतरूपसे बोले गये अर्थको नहीं जानता है; यह उक्त कथनका तात्पर्य है, क्योंकि, जिस मनःपर्ययज्ञानमें मति ऋजु है वह ऋजुमतिमनःपर्ययज्ञान है; ऐसी इसकी व्युत्पत्ति है ।

शंका—ऋजुवचनगत मनःपर्ययज्ञानकी ऋजुमतिमनःपर्ययज्ञान संज्ञा नहीं प्राप्त होती ?

---

१ अ-आ-ताप्रतिषु 'दरिसमंतो' इति पाठः । २ अ-आप्रत्योः 'पउण्णं' इति पाठः । ३ का-ताप्रत्योः 'चिंतियपउणं' इति पाठः । ४ ताप्रतौ 'पजववएसो' इति पाठः ।

उज्जुवमणेण विणा उज्जुववयणपवुत्तीए अभावादो । चिंतिदं कहिदे संते जदि जाणदि तो मणपज्जवणाणस्स सुदणाणत्तं पसज्जदि त्ति वुत्ते— ण, एदं रज्जं एसो राया वा केत्तियाणि वस्साणि णंददि त्ति चिंतिय एवं चेव वोल्लिदे संते पच्चक्खेणं[1] रज्जसंताणपरिमाणं रायाउट्टिदिं[2] च परिच्छेदंतस्स सुदणाणत्तविरोहादो ।

जं[3]मुज्जुवभावेण चिंतिय उज्जुवसरूवेण अहिणइदमत्थं जाणदि तं पि उजुमदिमणपज्जवणाणं णाम, उजुमदीए विणा कायवावारस्स उज्जुवत्तविरोहादो । जदि मणपज्जवणाणमिंदिय-णोइंदिय-जोगादिणिरवेक्खं संतं उप्पज्जदि तो परेसिं मण-वयण-कायवावारणिरवेक्खं संतं किण्ण उप्पज्जदि ? ण, विउलमइमणपज्जवणाणस्स तहा उप्पत्तिदंसणादो[4] । उजुमदिमणपज्जवणाणं तण्णिरवेक्खं[5] किण्ण उप्पज्जदे ? ण, मनःपर्य्ययज्ञानावरणीयकर्म्मक्षयोपशमस्य वैचित्र्यात् । जहा ओहिणाणावरणीयक्खओवसमगदजीवपदेससंबंधिसंठाणपरूवणा कदा, मणपज्जवणाणावरणीयक्खओवसमगदजीवपदेसाणं संठाणपरूवणा तहा किण्ण कीरदे ? ण,

समाधान— नहीं, क्योंकि यहांपर भी ऋजु मनके विना ऋजु वचनकी प्रवृत्ति नहीं होती।

शंका— चिन्तित अर्थको कहनेपर यदि जानता है तो मनःपर्ययज्ञानके श्रुतज्ञानपना प्राप्त होता है ?

समाधान— नहीं, क्योंकि यह राज्य या यह राजा कितने दिन तक समृद्ध रहेगा; ऐसा चिन्तवन करके ऐसा ही कथन करनेपर यह ज्ञान चूंकि प्रत्यक्षसे राज्यपरम्पराकी मर्यादाको और राजाकी आयुस्थितिको जानता है, इसलिए इस ज्ञानको श्रुतज्ञान माननेमें विरोध आता है।

जो ऋजुभावसे विचार कर एवं ऋजुरूपसे अभिनय करके दिखाये गये अर्थको जानता है वह भी ऋजुमतिमनःपर्ययज्ञान है, क्योंकि, ऋजु मतिके विना कायकी क्रियाके ऋजु होनेमें विरोध आता है।

शंका— यदि मनःपर्ययज्ञान इन्द्रिय, नोइन्द्रिय और योग आदिकी अपेक्षा किये विना उत्पन्न होता है तो वह दूसरोंके मन, वचन और कायके व्यापारकी अपेक्षा किये विना ही क्यों नहीं उत्पन्न होता है ?

समाधान— नहीं, क्योंकि विपुलमतिमनःपर्ययज्ञानकी उस प्रकारसे उत्पत्ति देखी जाती है।

शंका— ऋजुमतिमनःपर्ययज्ञान उसकी अपेक्षा किये विना क्यों नहीं उत्पन्न होता ?

समाधान— नहीं, क्योंकि मनःपर्ययज्ञानावरणीय कर्मके क्षयोपशमकी यह विचित्रता है।

शंका— जिस प्रकार अवधिज्ञानावरणके क्षयोपशमगत जीवप्रदेशोंके संस्थानका कथन किया है उसी प्रकार मनःपर्ययज्ञानावरणीय कर्मके क्षयोपशमगत जीवप्रदेशोंके संस्थानका कथन

१ अ-काप्रत्योः 'पच्चक्खेप', ताप्रतौ 'पच्चक्खेप (ण)' इति पाठः। २ ताप्रतौ 'रायाउट्ठिदं' इति पाठः। ३ ताप्रतावतः प्राक् 'जदि मणपज्जव [णाणं]' इत्यधिकः पाठ उपलभ्यते। ४ इंदिय-णोइंदिय-जोगादिं पेक्खित्तु उजुमदी होदि। णिरवेक्खिय विउलमदी ओहिं वा होदि णियमेण ॥ गो. जी. ४४५. ५ प्रतिषु 'तं णिरवेक्खं' इति पाठः।

मणपज्जवणाणावरणीयकम्मक्खओवसमस्स दव्वमणपदेसे वियसियअट्ठच्छदारविंदसंठाणे समुप्पज्जमाणस्स तत्तो पुधभूदसंठाणाभावादो[1]। संपहि मणपज्जयस्स विसयभूदट्ठपरूवणट्ठमुत्तरसुत्तं भणदि—

मणेण माणसं पडिविंदइत्ता परेसिं सण्णा सदि मदि चिंता जीविद-मरणं लाहालाहं सुह-दुक्खं णयरविणासं देसविणासं जणवयविणासं खेडविणासं कव्वडविणासं मडंबविणासं पट्टणविणासं दोणामुहविणासं अइवुट्ठि अणावुट्ठि सुवुट्ठि दुवुट्ठि सुभिक्खं दुब्भिक्खं खेमाखेम-भय-रोग कालसं[प]जुत्ते अत्थे वि जाणदि[2] ॥ ६३ ॥

मणेण मदिणाणेण । कधं मदिणाणस्स मणव्ववएसो ? कज्जे कारणोवयारादो । मणम्मि भवं लिंगं माणसं, अधवा मणो चेव माणसो । पडिविंदइत्ता घेत्तूण पच्छा मणपज्जवणाणेण जाणदि । मदिणाणेण परेसिं मणं घेत्तूण चेव मणपज्जवणाणेण मणम्मि ट्ठिदअत्थे

क्यों नहीं करते ?

समाधान— नहीं, क्योंकि मनःपर्ययज्ञानावरणीय कर्मका क्षयोपशम विकसित आठ पाँखुड़ीयुक्त कमल जैसे आकारवाले द्रव्यमन प्रदेशमें उत्पन्न होता है, उससे इसका पृथग्भूत संस्थान नहीं होता ।

अब मनःपर्ययज्ञानके विषयभूत अर्थका कथन करनेके लिए आगेका सूत्र कहते हैं—

मनके द्वारा मानसको जानकर मनःपर्ययज्ञान कालसे विशेषित दूसरोंकी संज्ञा, स्मृति, मति, चिन्ता, जीवित-मरण, लाभ-अलाभ, सुख-दुःख, नगरविनाश, देशविनाश, जनपदविनाश, खेटविनाश, कर्वटविनाश, मडंबविनाश, पट्टनविनाश, द्रोणमुखविनाश, अतिवृष्टि, अनावृष्टि, सुवृष्टि, दुर्वृष्टि, सुभिक्ष, दुर्भिक्ष, क्षेम, अक्षेम, भय और रोग रूप पदार्थोंको भी जानता है ॥ ६३ ॥

मनसे अर्थात् मतिज्ञानसे ।

शंका— मतिज्ञानकी मन संज्ञा कैसे है ?

समाधान— कार्यमें कारणके उपचारसे मतिज्ञानकी मन संज्ञा सम्भव है ।

मनमें उत्पन्न हुए चिह्नको मानस कहते हैं । अथवा मनकी ही संज्ञा मानस है । ‘ पडिविंदइत्ता ’ अर्थात् ग्रहण करके पश्चात् मनःपर्ययज्ञानके द्वारा जानता है । मतिज्ञानके द्वारा दूसरोंके मानसको ग्रहण करके ही मनःपर्ययज्ञानके द्वारा मनमें स्थित अर्थोंको जानता है, यह

---

१ सव्वंगअंगसंभवचिण्हादुप्पज्जदे जहा ओही । मणपज्जवं च दव्वमणादो उप्पज्जदे णियमा ।। हिदि होदि हु दव्वमणं वियसियअट्ठच्छदारविंदं वा । अंगोवंगुदयादो मणवग्गणखंधदो णियमा ॥ गो. जी. ४४१-४२. २ ताप्रतौ ‘ विजाणदि ’ इति पाठः । म. बं. १, पृ. २४. कथमयमर्थो लभ्यते ? आगमाविरोधात् । आगमे ह्युक्तं मनसा मनः परिच्छिद्य परेषां संज्ञादीन् जानाति इति । त. रा. १, २३, ९.

जाणदि त्ति भणिदं होदि। एसो णियमो ण विउलमइस्स, अचिंतिदाणं पि अट्ठाणं विसईकरणादो। किं किमेदेण जाणदि त्ति वुत्ते मणपज्जवणाणविसयदिसा परूविज्जदे उत्तरसुत्तखंडेण— परेसिं सण्णा सदि मदि चिंता। जेण सद्दकलावेण अत्थो पडिवज्जाविज्जदि सो सद्दकलाओ सण्णा णाम। तमुजुमदिमणपज्जवणाणी पच्चक्खं पेच्छदि। दिट्ठ-सुदाणुभूदट्ठविसयणाणविसेसिदजीवो सदी[2] णाम। तं पि पच्चक्खं पेच्छदि। अमुत्तो जीवो कथं मणपज्जवणाणेण मुत्तट्ठपरिच्छेदियोहिणाणादो हेट्टिमेण परिच्छिज्जदे? ण, मुत्तट्ठकम्मेहि अणादिबंधणबद्धस्स जीवस्स अमुत्तत्ताणुववत्तीदो। स्मृतिरमूर्ता चेत्— न, जीवादो पुधभूदसदीए अणुवलंभा। अणागयत्थविसयमदिणाणेण विसेसिदजीवो मदी[3] णाम। तं पि पच्चक्खं जाणदि। वट्टमाणत्थविसयमदिणाणेण विसेसिदजीवो चिंता णाम। तं पच्चक्खं पेच्छदि। एदासिं तिविहचिंताणं विसईभूदअट्ठं पि जाणदि त्ति परूवणट्ठमुत्तरसुत्तखंडं भणदि— आउपमाणं जीविदं णाम। तस्स परिसमत्ती मरणं णाम। एदाणि दो वि जाणदि। जीविदणिद्देसो चेव कायव्वो, एत्तियाणि वस्साणि एसो जीवदि त्ति वयणेण चेव मरणाव-

उक्त कथनका तात्पर्य है। विपुलमतिमनःपर्ययज्ञानका यह नियम नहीं है, क्योंकि, वह अचिन्तित अर्थोंको भी विषय करता है। इसके द्वारा क्या क्या जाना जाता है, ऐसा पूछनेपर सूत्रके उत्तरार्ध द्वारा मनःपर्ययज्ञानके विषयकी दिशाका निरूपण करते हैं— 'परेसिं सण्णा सदि मदि चिंता'। जिस शब्दकलापके द्वारा अर्थका कथन किया जाता है उस शब्दकलापको संज्ञा कहते हैं। उसे ऋजुमतिमनःपर्ययज्ञानी प्रत्यक्ष देखता है। दृष्ट, श्रुत और अनुभूत अर्थको विषय करनेवाले ज्ञानसे विशेषित जीवका नाम स्मृति है। इसे भी वह प्रत्यक्षसे देखता है।

शंका— यतः जीव अमूर्त है अतः वह मूर्त अर्थको जाननेवाले अवधिज्ञानसे नीचेके मनःपर्ययज्ञानके द्वारा कैसे जाना जाता है?

समाधान— नहीं, क्योंकि संसारी जीव मूर्त आठ कर्मोंके द्वारा अनादिकालीन वन्धनसे बद्ध है, इसलिए वह अमूर्त नहीं हो सकता।

शंका— स्मृति तो अमूर्त है?

समाधान— नहीं, क्योंकि स्मृति जीवसे पृथक् नहीं उपलब्ध होती।

अनागत अर्थको विषय करनेवाले मतिज्ञानसे विशेषित जीवकी मति संज्ञा है, इसे भी वह प्रत्यक्ष जानता है। वर्तमान अर्थको विषय करनेवाले मतिज्ञानसे विशेषित जीवकी चिन्ता संज्ञा है, इसे भी वह प्रत्यक्ष देखता है। इन तीन प्रकारकी चिन्ताओंके विषयभूत अर्थको भी वह जानता है, इस बातका कथन करनेके लिए आगे सूत्रखण्ड कहते हैं— आयुके प्रमाणका नाम जीवित और उसकी परिसमाप्तिका नाम मरण है। इन दोनोंको भी जानता है।

शंका— सूत्रमें 'जीवित' पदका ही निर्देश करना चाहिये था, क्योंकि, यह इतने वर्षों तक जियेगा, इस वचनसे ही मरणका ज्ञान हो जाता है?

१ का-ताप्रत्योः 'ट्ठिद' इति पाठः। २ काप्रतौ 'सेदी', ताप्रतौ 'सदि' इति पाठः। ३ का-ताप्रत्योः 'मदि' इति पाठः। ४ प्रतिषु 'वट्टमाणत्थ' इति पाठः।

गमादो ? ण एस दोसो, दव्वट्ठिय-पज्जवट्ठियणयावलंबिसिस्साणुग्गहट्ठं तदुत्तीदो कदली-घादेण मरंताणमाउट्ठिदिचरिमसमए मरणाभावेण मरणाउट्ठिदि[1]चरिमसमयाणं समाणाहि-यरणाभावादो च। इच्छिदट्ठोवलद्धी लाहो णाम । तव्विवरीयो अलाहो । एदे वि पच्चक्खं जाणदि । एत्थ वि पुव्वं व परिहारो वत्तव्वो । इट्ठत्थसमागमो अणिट्ठत्थविओगो च सुहं णाम । अणिट्ठत्थसमागमो इट्ठत्थविओगो च दुःखं णाम । एत्तिएण कालेण सुहं होदि त्ति किं जाणदि आहो ण जाणदि त्ति ? विदिए ण पच्चक्खेण सुहावगमो, काल-पमाणावगमाभावादो । पढमपक्खे कालेण वि पच्चक्खेण होदव्वं, अण्णहा सुहमेत्तिएण कालेण एत्तियं वा कालं होदि त्ति वोत्तुमजोगादो । ण च कालो मणपज्जवणाणेण पच्चक्ख-मवगम्मदे, असुत्तम्मि तस्स वुत्तिविरोहादो त्ति ? ण एस दोसो, ववहारकालेण एत्थ अहि-यारादो । ण च मुत्ताणं दव्वाणं परिणामो कालसण्णिदो अमुत्तो चेव होदि त्ति णियमो अत्थि, अव्ववत्थावत्तीदो ।

चतुर्गोपुरान्वितं नगरम्[2], तस्स विणासो णगरविणासो । तमेत्तिएण कालेण होदि

समाधान— यह कोई दोष नहीं है, क्योंकि द्रव्यार्थिक और पर्यायार्थिक नयोंका अवलम्बन करनेवाले शिष्योंका अनुग्रह करनेके लिए दोनों वचन कहे गये हैं। दूसरे, कदलीघातसे मरनेवाले जीवोंका आयुस्थितिके अन्तिम समयमें मरण नहीं हो सकनेसे मरण और आयुस्थितिके अन्तिम समयका समानाधिकरण भी नहीं है, इसलिए भी उक्त दोनों ही वचन कहे गये हैं।

इच्छित अर्थकी प्राप्तिका नाम लाभ और इससे विपरीत अर्थात् इच्छित अर्थकी प्राप्तिका न होना अलाभ है। इन्हें भी प्रत्यक्ष जानता है। यहांपर भी उपस्थित होनेवाली शंकाका परिहार पहिलेके ही समान करना चाहिए। इष्ट अर्थके समागम और अनिष्ट अर्थके वियोगका नाम सुख है। तथा अनिष्ट अर्थके समागम और इष्ट अर्थ वियोगका नाम दुःख है। [इन्हें भी प्रत्यक्ष जानता है।]

शंका— इतने कालमें सुख होगा, इसे क्या वह जानता है अथवा नहीं जानता ? दूसरा पक्ष स्वीकार करनेपर प्रत्यक्षसे सुखका ज्ञान नहीं हो सकता, क्योंकि, उसके कालके प्रमाणका ज्ञान नहीं उपलब्ध होता। पहला पक्ष माननेपर कालका भी प्रत्यक्ष ज्ञान होना चाहिए, क्योंकि, अन्यथा इतने कालमें सुख होगा या इतने काल तक सुख रहेगा; यह नहीं कहा जा सकता। परन्तु कालका मनःपर्ययज्ञानके द्वारा प्रत्यक्ष ज्ञान होता नहीं है, क्योंकि, उसकी अमूर्त पदार्थमें प्रवृत्ति माननेमें विरोध आता है ?

समाधान— यह कोई दोप नहीं है, क्योंकि यहांपर व्यवहार कालका अधिकार है। दूसरे, काल संज्ञावाला मूर्त द्रव्योंका परिणाम अमूर्त ही होता है, ऐसा कोई नियम भी नहीं है; क्योंकि, ऐसा माननेपर अव्यवस्थाकी आपत्ति आती है।

जिसमें चार गोपुर अर्थात् दरवाजे हों उसकी नगर संज्ञा है और उसका विनाश

१ प्रतिषु ' मरणावुट्ठिदि ' इति पाठः। २ वइपरिवेढो गामो णयरं चउगोउरेहि रमणिज्जं। गिरि-सरिकदपरिवेढं खेडं गिरिवेढिदं च कव्वडयं ॥ पणसयपमाणगामप्पहाणभूदं मडंवणामं खु। वररयणाणं जोणी

त्ति जाणदि । णगरट्ठिदी किण्ण परूविदा ? ण, णगरविणासावगमस्स णगरट्ठिदिअवगमेण विणा उप्पत्तिविरोहादो । विणट्ठं पि णगरमेत्तिएण कालेण होदि त्ति जाणदि । सुत्तेण विणा कधमेदं णव्वदे । ण, एदस्स सुत्तस्स देसामासियत्तादो । अंग-वंग-कलिंग-मगधादओ देसो णाम । एदेसिं विणासो देसविणासो णाम । तं जाणदि । एत्थ वि पुव्वं व तिविहा परूवणा कायव्वा । देसस्स एगदेसो जणवओ णाम, जहा सूरसेण-गांधार-कासी-आवंति-आदओ । एदेसिं विणासो जणवयविणासो । तं जाणदि । एत्थ तिविहा परूवणा कायव्वा । सरित्पर्वतावरुद्धं खेडं णाम । तस्स विणासो खेडविणासो । एदम्हादो उवरिमसव्वविणासेसु तिविहा परूवणा कायव्वा । पर्वतावरुद्धं कव्वडं णाम । तस्स विणासो कव्वडविणासो । पंचशतग्रामपरिवारितं मडंबं णाम । तस्स विणासो मडंबविणासो । नावां पादप्रचारेण च यत्र गमनं तत्पत्तनं नाम । तस्स विणासो पट्टणविणासो । समुद्र-निम्नगासमीपस्थमवतरन्नौ-निवहं द्रोणामुखं नाम । तस्स विणासो दोणामुहविणासो । एदं देसामासियं काऊण एत्थ

नगरविनाश कहलाता है । वह नगरविनाश इतने कालमें होगा, इसे यह ज्ञान जानता है ।

शंका— सूत्रमें नगरकी स्थिति क्यों नहीं कही ?

समाधान— नहीं, क्योंकि नगरकी स्थितिका ज्ञान हुए विना नगरके विनाशके ज्ञानकी उत्पत्ति माननेमें विरोध आता है ।

विनष्ट हुआ भी नगर इतने कालमें बनेगा, इसे भी जानता है ?

शंका— सूत्रके विना यह बात किस प्रमाणसे जानी जाती है ?

समाधान— नहीं, क्योंकि यह सूत्र देशामर्शक है ।

अङ्ग, वङ्ग, कलिङ्ग और मगध आदि देश कहलाते हैं; इनके विनाशकी देशविनाश संज्ञा है । इसे वह जानता है । यहां पर भी पहलेके समान तीन प्रकारकी प्ररूपणा करनी चाहिए । देशका एक देश जनपद कहलाता है । यथा शूरसेन, गान्धार काशी और अवन्ती आदि । इनका विनाश जनपदविनाश कहलाता है । उसे भी वह जानता है । यहांपर भी तीन प्रकारकी प्ररूपणा करनी चाहिए । नदी और पर्वतसे अवरुद्ध नगरकी खेट संज्ञा है, इसका विनाश खेटविनाश कहलाता है । इससे आगेके सब विनाशोंकी तीन प्रकारकी प्ररूपणा करनी चाहिए । पर्वतोंसे रुके हुए नगरका नाम कर्वट है, तथा उसका विनाश कर्वटविनाश कहलाता है । पांच सौ ग्रामोंसे घिरे हुए नगरका नाम मडंब है, तथा उसका विनष्ट होना मडंबविनाश कहलाता है । नौकाके द्वारा और पैरोंसे चलकर जहां जाते हैं उस नगरकी पत्तन संज्ञा है, तथा उसका विनष्ट होना पत्तनविनाश कहलाता है । जो समुद्र और नदीके समीपमें स्थित है और जहां नौकायें आती जाती हैं उसकी द्रोणमुख संज्ञा है, तथा उसका विनष्ट होना द्रोणमुखविनाश कहलाता है ।

पट्टणणामं विणिद्दिट्ठं ॥ दोणामुहाभिधाणं सरिवइवेलाए वेढियं जाण । संवाहणं ति बहुविहरण्ण-महासेलसिहरत्थं ॥ ति. प. ४, १३९८-१४००. १ काप्रतौ 'गाथा' इति पाठः ।

घोसविणास-संवाहविणास-संणिवेसविणास-ट्ठाणविणास-गामविणासादओ वत्तव्वा । तत्र घोषो नाम व्रजः । यत्र शिरसा धान्यमारोप्यते स संवाहः । विषयाधिपस्य[1] अवस्थानं संनिवेशः । समुद्रावरुद्धः व्रजः स्थानं नाम, निम्नगावरुद्धं वा । वृतिपरिवृतो[2] ग्रामः । एदेसिमुप्पाद-ट्ठिदि-भंगे जाणदि त्ति भणिदं होदि ।

प्रमाणातिरिक्ता वृष्टिर्वर्षणमतिवृष्टिः । आवृष्टिर्वर्षणम्, तस्य अभावः अनावृष्टिः । सस्यसम्पादिका वृष्टिः सुवृष्टिः । अतिवृष्ट्यवृष्टिलिंगा[3] स्वगतक्षारत्वादिगुणेन सस्यसम्पादने अक्षमा वा दुर्वृष्टिः । सालि-व्रीहि-जव-गोधूमादिधण्णाणं सुलहत्तं सुभिक्खं णाम । तव्विवरीयं दुब्भिक्खं णाम । मारीदि-डमरादीणं[4] मभावो खेमं णाम तव्विवरीदमक्खेमं । परचक्कागमादओ भयं णाम । खय-कुट्ठ-जरादओ रोगो णाम । एदे अत्थे कालसंपजुत्ते कालेण विसेसिदे उजुमदिमणपज्जवणाणी पच्चक्खं जाणदि । एदेसिमुप्पाद-ट्ठिदि-भंगे[5] जाणदि त्ति भणिदं होदि ।

किंचि भूओ—अप्पणो परेसिं च वत्तमाणाणं[6] जीवाणं जाणदि

इसे देशामर्शक मानकर यहांपर घोषविनाश, संवाहविनाश, संनिवेशविनाश, स्थानविनाश और ग्रामविनाश आदिका कथन करना चाहिए। इनमेंसे घोषका अर्थ व्रज है। जहांपर शिरसे ले जाकर धान्य रक्खी जाती है उसका नाम संवाह है। देशके स्वामीके रहनेके स्थानका नाम संनिवेश है। समुद्रसे अवरुद्ध अथवा नदीसे अवरुद्ध व्रजका नाम स्थान है। जो वाड़ीसे घिरा हो उसका नाम ग्राम है। इनके उत्पाद, स्थिति और विनाशको वह जानता है; यह उक्त कथनका तात्पर्य है।

प्रमाणसे अधिक वर्षाका होना अतिवृष्टि है। आवृष्टिका अर्थ वर्षा है, उसका नहीं होना अनावृष्टि है। जिस वर्षासे धान्यकी अच्छी उत्पत्ति होती है वह सुवृष्टि है। अतिवृष्टि और अवृष्टि जिसका चिह्न है अथवा जो स्वगत क्षारत्व आदि गुणके कारण धान्यके उत्पन्न करनेमें असमर्थ है वह दुर्वृष्टि है। शालि, व्रीहि, जौ और गेहूं आदि धान्योंकी सुलभताका नाम सुभिक्ष तथा इससे विपरीत दुर्भिक्ष कहलाता है। मारी, ईति व राष्ट्रविप्लव आदिके अभावका नाम क्षेम है, तथा इससे विपरीत अक्षेम है। परचक्रके आगमन आदिका नाम भय है। क्षय, कुष्ट और ज्वर आदिका नाम रोग है। इन अर्थोंको 'कालसंपजुत्ते' अर्थात् कालसे विशेपित होनेपर ऋजुमति-मनःपर्ययज्ञानी प्रत्यक्ष जानता है। इनकी उत्पत्ति, स्थिति और विनाशको जानता है; यह उक्त कथनका तात्पर्य है।

और भी— व्यक्तमनवाले अपने और दूसरे जीवोंसे सम्बन्ध रखनेवाले अर्थको वह

---

१ प्रतिषु 'विषयाविषस्य' इति पाठः। २ प्रतिषु 'वृत्ति' इति पाठः। ३ आप्रतौ 'अतिवृष्टावृष्टिलिंगा', का-ताप्रत्योः 'अतिवृष्ट्यावृष्टिलिंगा' इति पाठः। ४ प्रतिषु 'मारीदिदमरादीण–' इति पाठः। ५ ताप्रतौ 'भंगो' इति पाठः। ६ काप्रतौ 'वट्टमाणाणं' इति पाठः।

णो अवत्तमाणाणं जीवाणं[1] जाणदि[2] ॥ ६४ ॥

किंचि अत्थं उजुमदिणाणसंबद्धं भूओ पुणो वि भणिस्सामो[3] । तं जहा— कार्ये कारणोपचाराच्चिन्ता मनः, व्यक्तं निष्पन्नं संशय-विपर्ययानध्यवसायविरहितं मनः येषां ते व्यक्तमनसः, तेषां व्यक्तमनसां जीवानां परेषामात्मनश्च सम्बन्धि वस्त्वन्तरं जानाति, नो अव्यक्तमनसां जीवानां सम्बन्धि वस्त्वन्तरम्; तत्र तस्य सामर्थ्याभावात् । कधं मणस्स माणववएसो ? ण, 'एए छच्च समाणा' त्ति विहिददीहत्तादो । अथवा, वर्तमानानां जीवानां वर्तमानमनोगतत्रिकालसम्बन्धिनमर्थं जानाति, नातीतानागतमनोविषयमिति सूत्रार्थो व्याख्येयः ।

दव्वदो जहण्णेण ओरालियसरीरस्स एयसमयणिज्जरमणंताणंतविस्सासोवचयपडिबद्धं जाणदि । उक्कस्सेण एयसमयइंदियणिज्जरं जाणदि[4] । तेसिं मज्झिमदव्ववियप्पे अजहण्ण-अणुक्कस्सउजुमदिमणपज्जवणाणी जाणदि । एवं जहण्णुक्कस्सदव्ववियप्पा सुत्ते असंता वि पुव्वाइरियोवदेसेण परूविदा । संपहि जहण्णुक्कस्सकालपमाणपरूवणट्ठ-मुत्तरसुत्तं भणदि—

जानता है, अव्यक्त मनवाले जीवोंसे सम्बन्ध रखनेवाले अर्थको नहीं जानता ॥ ६४ ॥

'किंचि' अर्थात् ऋजुमतिमनःपर्ययज्ञान सम्बन्धी अर्थको 'भूयः' अर्थात् फिरसे भी कहते हैं । यथा— कार्यमें कारणका उपचार होनेसे चिन्ताको मन कहा जाता है । 'व्यक्त'का अर्थ निष्पन्न होता है । अर्थात् जिनका मन संशय, विपर्यय और अनध्यवसायसे रहित है वे व्यक्त मनवाले जीव हैं; उन व्यक्त मनवाले अन्य जीवोंसे तथा स्वसे सम्बन्ध रखनेवाले अन्य अर्थको जानता है । अव्यक्त मनवाले जीवोंसे सम्बन्ध रखनेवाले अन्य अर्थको नहीं जानता है, क्योंकि, इस प्रकारके अर्थको जाननेका इस ज्ञानका सामर्थ्य नहीं है ।

शंका— मनको मान व्यपदेश कैसे किया है ?

समाधान— नहीं, क्योंकि 'एए छच्च समाणा' इस नियमके अनुसार यहां दीर्घ हो गया है । अथवा, वर्तमान जीवोंके वर्तमान मनोगत त्रिकाल सम्बन्धी अर्थको जानता है, अतीत और अनागत मनोगत विषयको नहीं जानता; इस प्रकार सूत्रके अर्थका व्याख्यान करना चाहिए ।

द्रव्यकी अपेक्षा वह जघन्यसे अनन्तानन्त विस्रसोपचयोंसे सम्बन्ध रखनेवाले औदारिकशरीरके एक समयमें निर्जराको प्राप्त होनेवाले द्रव्यको जानता है, और उत्कृष्ट रूपसे एक समयमें होनेवाले इन्द्रियके निर्जराद्रव्यको जानता है । इन उत्कृष्ट और जघन्यके मध्यके जितने द्रव्यविकल्प हैं उन्हें अजघन्यानुत्कृष्ट ऋजुमतिमनःपर्यज्ञानी जानता है । इस प्रकार यद्यपि जघन्य और उत्कृष्ट द्रव्यके विकल्प सूत्रमें नहीं कहे हैं तथापि पूर्व आचार्योंके उपदेशसे उनका कथन किया है । अब जघन्य और उत्कृष्ट कालका कथन करनेके लिए आगेका सूत्र कहते हैं—

---

१ काप्रतौ 'णाअवट्टमाणजीवाणं', ताप्रतौ 'अवत्तमाणजीवाणं' इति पाठः । २ म. बं. १, पृ. २४. व्यक्तमनसां जीवानामर्थं जानाति, नाव्यक्तमनसाम् । त. रा. १, २३, ९. ३ ताप्रतौ 'भणिस्सामो' इति पाठः । ४ अवरं दव्वमुरालियसरीरणिज्जिण्णसमयबद्धं तु । चक्खिंदियणिज्जिण्णं उक्कस्सं उजुमदिस्स हवे ॥ गो. जी. ४५०. तत्थ दव्वओ णं उज्जुमई अणंते अणंतपएसिए खंधे जाणइ पासइ । नं. सू. १८.

कालदो जहण्णेण दो-तिण्णिभवग्गहणाणि ॥ ६५ ॥

जदि दो चेव भवग्गहणाणि जाणदि तो ण तिण्णि जाणदि। अह तिण्णि जाणदि तो ण दोण्णि, तिण्हं दुब्भावविरोहादो त्ति ? ण एस दोसो, वट्टमाणभवग्गहणेण विणा दोण्णि, तेण सह तिण्णि भवग्गहणाणि जाणदि त्ति तदुत्तीदो।

उक्कस्सेण सत्तट्ठभवग्गहणाणि ॥ ६६ ॥

एत्थ वि वट्टमाणभवग्गहणेण विणा सत्त, अण्णहा अट्ठ जाणदि त्ति घेत्तव्वं। अणियदकालभवग्गहणणिद्देसादो एत्थ कालणियमो णत्थि त्ति अवगम्मदे।

जीवाणं गदिमागदिं पदुप्पादेदि[1] ॥ ६७ ॥

एदम्हि काले जीवाणं गदिमागदिं भुत्तं कयं पडिसेविदं पदुप्पादेदि जाणदि त्ति घेत्तव्वं।

खेत्तदो ताव जहण्णेण गाउवपुधत्तं उक्कस्सेण जोयणपुधत्तस्स अब्भंतरदो णो बहिद्धा[2] ॥ ६८ ॥

कालकी अपेक्षा जघन्यसे वह दो-तीन भवोंको जानता है ॥ ६५ ॥

शंका— यदि दो ही भवोंको जानता है तो वह तीनको नहीं जान सकता, और यदि तीनको जानता है तो दोको नहीं जानता, क्योंकि, तीनको दो रूप माननेमें विरोध आता है।

समाधान— यह कोई दोष नहीं है, क्योंकि, वह वर्तमान भवके विना दो भवोंकी और उसके साथ तीन भवोंकी बात जानता है, इसलिए दो और तीन भव कहे हैं।

उत्कर्षसे सात और आठ भवोंको जानता है ॥ ६६ ॥

यहांपर भी वर्तमान भवके विना सात, अन्यथा आठ भवोंको जानता है; ऐसा ग्रहण करना चाहिए। अनियत कालरूप भवग्रहणका निर्देश होनेसे यहां कालका नियम नहीं है, ऐसा जाना जाता है।

जीवोंकी गति और आगतिको जानता है ॥ ६७ ॥

इस कालके भीतर जीवोंकी गति, आगति, भुक्त, कृत और प्रतिसेवित अर्थको 'पदुप्पादेदि' अर्थात् जानता है, ऐसा यहां ग्रहण करना चाहिए।

क्षेत्रकी अपेक्षा वह जघन्यसे गव्यूतिपृथक्त्वप्रमाण क्षेत्रको और उत्कर्षसे योजनपृथक्त्वके भीतरकी बात जानता है, बाहरकी नहीं ॥ ६८ ॥

---

१ म. बं. १, पृ. २५. तत्र ऋजुमतिर्मनःपर्ययः कालतो जघन्येन जीवानामात्मनश्च द्वि-त्रीणि भवग्रहणानि, उत्कर्षेण सप्ताष्टौ गत्यागत्यादिभिः प्ररूपयति। स. सि. १-२३. त. रा. १, २३, ९. कालओ णं उज्जुमई जहन्नेणं पलिओवमस्स असंखिज्जइभागं, उक्कोसेण वि पलिओवमस्स असंखिज्जइभागं अतीयमणागयं वा कालं जाणइ पासइ। नं. सू. १८. २ म. बं. १, पृ. २५. क्षेत्रतो जघन्येन गव्यूतिपृथक्त्वम्, उत्कर्षेण योजनपृथक्त्वस्याभ्यन्तरं न बहिः। स. सि. १-२३. त. रा. १, २३, ९. खेत्तओ णं उज्जुमई अ जहन्नेणं अंगुलस्स असंखेज्जइभागं, उक्कोस्सेणं अहे जाव इमीसे रयणप्पभाए पुढवीए उवरिम-

वेहि दंडसहस्सेहि एयं गाउअं होदि । तमट्ठहि गुणिदे गाउअपुधत्तं । एदस्स घण-मेत्तं उजुमदिमणपज्जवणाणी जहण्णेण जाणदि । ओहिणाणस्स जहण्णखेत्तमंगुलस्स असंखेज्जदि-भागो त्ति वुत्तं । तक्कालो आवलियाए असंखेज्जदिभागो । इमस्स पुण ओहिणाणीदो ऊणयरस्स¹ खेत्तं गाउअपुधत्तं, कालो दो-तिण्णिभवग्गहणाणि त्ति भणिदं । कधमेदं घडदे ? ण, दोण्णं णाणाणं भिण्णजादित्तादो । तमोहिणाणं णाम संजदासंजदविसयं, मणपज्जवणाणं पुण संजदविसयं । तदो भिण्णजादित्तं गम्मदे । तेण दोण्णं णाणाणं ण विसएहि समाणत्तं । किंच— जहा चक्खिंदियं रसादिपरिहारेण रूवं चेव परिच्छिंददि तहा मणपज्जवणाणं पि भव-विसयासेसअत्थ²पज्जाएहि विणा जेण भवसण्णिददो-तिण्णिवंजणपज्जायाणं चेव परिच्छेदयं, तेण णेदमोहिणाणेण सरिसमिदि । ण च वहुएण कालेण णिप्पण्ण³सत्तट्ठभवग्गहणाणमपरिच्छेदयं, तस्स अविसईकदअसेसअत्थपज्जायस्स भवसण्णिदवंजणपज्जाए वावदस्स वहुसमयणिप्फण्णभवेसु पवुत्तिविरोहाभावादो⁴ । अट्ठहि दंडसहस्सेहि जोयणं, तमट्ठहि गुणिदे जोयणपुधत्तब्भंतरदंडाणं पमाणं होदि । एदेसिं घणो⁵ उजुमदिमणपज्जवणाणस्स उक्कस्सक्खेत्तं होदि ।

दो हजार धनुषकी एक गव्यूति होती है । उसे आठसे गुणित करनेपर गव्यूतिपृथक्त्व होता है । इसके घनप्रमाण क्षेत्रको ऋजुमतिमनःपर्ययज्ञानी जघन्यसे जानता है ।

शंका— अवधिज्ञानका जघन्य क्षेत्र अंगुलके असंख्यातवें भागप्रमाण कहा है और काल उसका आवलिके असंख्यातवें भागप्रमाण है । परन्तु अवधिज्ञानसे अल्पतर इस ज्ञानका क्षेत्र गव्यूतिपृथक्त्व कहा है और काल दो तीन भवग्रहणप्रमाण कहा है । यह कैसे बन सकता है ।

समाधान— नहीं, क्योंकि दोनों ज्ञान भिन्न भिन्न जातिवाले हैं । वह अवधिज्ञान संयत व असंयत सम्बन्धी है, परन्तु मनःपर्ययज्ञान संयतसम्बन्धी है । इससे इनकी पृथक् पृथक् जाति जानी जाती है । इसलिए दोनों ज्ञानोंमें विषयकी अपेक्षा समानता नहीं है । दूसरे, जिस प्रकार चक्षु इन्द्रिय रसादिको छोड़कर रूपको ही जानती है उसी प्रकार मनःपर्ययज्ञान भी भवविषयक समस्त अर्थपर्यायोंके विना यतः भवसंज्ञक दो तीन व्यञ्जनपर्यायोंको ही जानता है, इसलिये वह अवधिज्ञानके समान नहीं है । बहुत कालके द्वारा निष्पन्न हुए सात आठ भवग्रहणोंका यह अपरिच्छेदक है, यह कहना भी ठीक नहीं है, क्योंकि, अशेष अर्थपर्यायोंको नहीं विषय करनेवाले और भवसंज्ञक व्यञ्जनपर्यायोंको विषय करनेवाले उस ज्ञानकी बहुत समयोंसे निष्पन्न हुए भवोंमें प्रवृत्ति माननेमें कोई विरोध नहीं आता ।

आठ हजार धनुषोंका एक योजन होता है । उसे आठसे गुणित करनेपर योजनपृथक्त्वके भीतर धनुषोंका प्रमाण होता है । इनका घन ऋजुमतिमनःपर्ययज्ञानका उत्कृष्ट क्षेत्र होता है ।

हेट्ठिल्ले खुड्डुगपयरे, उड्ढं जाव जोइसस्स उवरिमतले, तिरियं जाव अंतोमणुस्सखित्ते अड्ढाइज्जेसु दीव-समुद्देसु पन्नरससु कम्मभूमिसु तीसाए अकम्मभूमिसु छप्पन्नाए अंतरदीवगेसु सन्निपंचेदिआणं पज्जत्तयाणं मणोगए भावे जाणइ पासइ । नं. सू. १८.

१ ताप्रतौ 'ऊणयरस्स' इति पाठः । २ ताप्रतौ 'सेसमत्थ–' इति पाठः । ३ अ-काप्रत्योः 'णिप्पण्णा' इति पाठः । ४ प्रतिषु 'वुप्पत्तिविरोहाभावादो' इति पाठः । ५ प्रतिषु 'एदेसि पुणो' इति पाठः ।

तं सव्वमुजुमदिमणपज्जवणाणावरणीयं णाम कम्मं ॥ ६९ ॥

तं सव्वं उजुमदिमणपज्जवणाणं उजुमदिमणपज्जवणाणावरणीयं कम्मं होदि । कुदो णाणस्स कम्मत्तं ? आवरणिज्जे आवरणोवयारादो । कुदो एगवयणणिद्देसो ? दव्वट्ठियणयावलंबणादो ।

जं तं विउलमदिमणपज्जवणाणावरणीयं णाम कम्मं तं छव्विहं– उज्जुगमणुज्जुगं मणोगदं जाणदि, उज्जुगमणुज्जुगं वचिगदं जाणदि, उज्जुगमणुज्जुगं कायगदं जाणदि[1] ॥ ७० ॥

जहत्थो मण-वयण-कायवावारो उज्जुवो णाम । संशय-विपर्ययानध्यवसायरूपो मणोवाक्कायव्यापारः अनृजुः । अर्द्धचिन्तनमचिन्तनं वा अनध्यवसायः । दोलायमानप्रत्ययः संशयः । अयथार्थचिन्ता विपर्ययः । चिंतिदूण जं विस्सरिदं तं पि जाणदि, जं पि चिंतइस्सिहिदि तं पि जाणदि; तीदाणागयपज्जायाणं सगसरूवेण जीवे संभवादो । जाणण-कम्मपरूवणट्ठमुवरिमसुत्तं भणदि—

मणेण माणसं पडिविंदइत्ता[2] ॥ ७१ ॥

वह सब ऋजुमतिमनःपर्ययज्ञानावरणीय कर्म है ॥ ६९ ॥

वह सब ऋजुमतिमनःपर्ययज्ञान ऋजुमतिमनःपर्ययज्ञानावरणीय कर्म है।

शंका— ज्ञानको कर्मपना कैसे प्राप्त होता है ?

समाधान— आवरणीयमें आवरणके उपचारसे ज्ञानको कर्मपना प्राप्त होता है।

शंका— सूत्रमें एक वचनका निर्देश किस कारणसे किया है ?

समाधान— द्रव्यार्थिक नयका अवलम्बन लेकर एक वचनका निर्देश किया है।

जो विपुलमतिमनःपर्ययज्ञानावरणीय कर्म है वह छह प्रकारका है— ऋजुमनोगतको जानता है, अनृजुमनोगतको जानता है, ऋजुवचनगतको जानता है, अनृजुवचनगतको जानता है, ऋजुकायगतको जानता है और अनृजुकायगतको जानता है ॥ ७० ॥

यथार्थ मन, वचन और कायका व्यापार ऋजु कहलाता है। तथा संशय, विपर्यय और अनध्यवसायरूप मन, वचन और कायका व्यापार अनृजु कहलाता है। अर्धचिन्तन या अचिन्तनका नाम अनध्यवसाय है। दोलायमान ज्ञानका नाम संशय है। अयथार्थ चिन्ताका नाम विपर्यय है। विचार करके जो भूल गये हैं उसे भी यह ज्ञान जानता है। जिसका भविष्यमें चिन्तवन करेंगे उसे भी जानता है, क्योंकि, अतीत और अनागत पर्यायोंका अपने स्वरूपसे जीवमें पाया जाना सम्भव है।

अब जानने रूप क्रियाके कर्मका कथन करनेके लिए आगेका सूत्र कहते हैं—

मनके द्वारा मानसको जानकर ॥ ७१ ॥

---

१ म. बं. १, पृ. २६. द्वितीयः षोढा ऋजु-वक्रमनोवाक्कायभेदात् । त. रा. १, २३, १०.

२ म. बं. १, पृ. २४.

मणेण मदिणाणेण, माणसं णोइंदियं मणोवग्गणखंधणिव्वत्तिदं, पडिविंदइत्ता घेत्तूण पच्छा मणपज्जवणाणेण जाणदि । णोइंदियमदिंदियं कधं मदिणाणेण घेप्पदे ? ण ईहालिंगावट्ठंभवलेण अदिंदिएसु वि अत्थेसु वुत्तिदंसणादो । अथवा, मणेण मदिणाणेण माणसं मदिणाणविसयं पडिविंदइत्ता उवलंभिय पच्छा मणपज्जवणाणं पयट्टदि त्ति वत्तव्वं । जदि मणपज्जवणाणं मदिपुव्वं होदि तो तस्स सुदणाणत्तं पसज्जदि त्ति णासंकणिज्जं, पच्चक्खस्स अवगहिदाणवगहिदत्थेसु वट्टमाणस्स मणपज्जवणाणस्स सुदभावविरोहादो ।

परेसिं सण्णा सदि मदि चिंता जीविद-मरणं लाहालाहं सुह-दुःक्खं णयरविणासं देसविणासं जणवयविणासं खेडविणासं कव्वड-विणासं मडंबविणासं पट्टणविणासं दोणामुहविणासं अदिवुट्ठि अणावुट्ठि सुवुट्ठि दुवुट्ठि सुभिक्खं दुब्भिक्खं खेमाखेमं भय-रोग काल-संपजुत्ते अत्थे जाणदि[1] ॥ ७२ ॥

एदस्स सुत्तस्स अत्थो जहा पुव्वं परूविदो तहा परूवेदव्वो ।

मन अर्थात् मतिज्ञानके द्वारा मानसको अर्थात् मनोवर्गणाके स्कन्धोंसे निष्पन्न हुई नोइन्द्रियको ' पडिविंदइत्ता ' अर्थात् ग्रहण करके पश्चात् मनःपर्ययज्ञानके द्वारा जानता है।

शंका— नोइन्द्रिय अतीन्द्रिय है, उसका मतिज्ञानके द्वारा कैसे ग्रहण होता है ?

समाधान— नहीं, क्योंकि ईहारूप लिंगके अवलम्बनके बलसे अतीन्द्रिय अर्थोंमें भी मतिज्ञानकी प्रवृत्ति देखी जाती है । अथवा, मन अर्थात् मतिज्ञानके द्वारा मानस अर्थात् मतिज्ञानके विषयको ग्रहण करके पश्चात् मनःपर्ययज्ञान प्रवृत्त होता है, ऐसा कथन करना चाहिए ।

शंका— यदि मनःपर्ययज्ञान मतिज्ञानपूर्वक होता है तो उसे श्रुतज्ञानपना प्राप्त होता है ?

समाधान— ऐसी आशंका करना ठीक नहीं है, क्योंकि, अवग्रहण किये गये और नहीं अवग्रहण किये गये पदार्थोंमें प्रवृत्त होनेवाले प्रत्यक्षस्वरूप मनःपर्ययज्ञानको श्रुतज्ञान माननेमें विरोध आता है ।

वह दूसरे जीवोंकी कालसे विशेषित संज्ञा, स्मृति, मति, चिन्ता, जीवित मरण, लाभ-अलाभ, सुख-दुःख, नगरविनाश, देशविनाश, जनपदविनाश, खेटविनाश, कर्वट-विनाश, मडम्बविनाश, पट्टनविनाश, द्रोणमुखविनाश, अतिवृष्टि, अनावृष्टि, सुवृष्टि, दुर्वृष्टि, सुभिक्ष, दुर्भिक्ष, क्षेम, अक्षेम, भय और रोग रूप इन अर्थोंको जानता है ॥ ७२ ॥

इस सूत्रका अर्थ जिस प्रकार पहले कह आये हैं उसी प्रकार यहांपर भी उसका कथन करना चाहिए ।

---

[1] म. बं. १, पृ. २४–२५. तथाऽऽस्मनः परेषां च चिन्ता-जीवित-मरण-सुख-दुःख-लाभालाभादीन् अव्यक्तमनोभिर्व्यक्तमनोभिश्च चिन्तितान् अचिन्तितान् जानाति विपुलमतिः । त. रा. १,२३,१०.

किंचि भूओ—अप्पणो परेसिं च वत्तमाणाणं[1] जीवाणं जाणदि अवत्तमाणाणं[2] जीवाणं जाणदि ॥ ७३ ॥

चिंताए अद्धपरिणयं विस्सरिदचिंतियवत्थु चिंताए[3] अवावदं च मणमव्वत्तं, अवरं वत्तं। वत्तमाणाणमवत्तमाणाणं[4] वा जीवाणं चिंताविसयं मणपज्जवणाणी जाणदि[5]। जं उज्जुवाणुज्जुवभावेण चिंतिदमद्धचिंतिदं चिंतिज्जमाणमद्धचिंतिज्जमाणं चिंतिहिदि अद्धं चिंतिहिदि वा तं सव्वं जाणदि त्ति भणिदं होदि[6]।

कालदो ताव जहण्णेण सत्तट्ठभवग्गहणाणि, उक्कस्सेण असंखेज्जाणि भवग्गहणाणि[7] ॥ ७४ ॥

सुगममेदं।

जीवाणं गदिमागदिं पदुप्पादेदि ॥ ७५ ॥

एदम्हि काले जीवाणं गदिमागदिं भुत्तं कयं पडिसेविदं च पच्चक्खं पदुप्पादेदि जाणदि त्ति भणिदं होदि।

और भी— व्यक्त मनवाले अपने और दूसरे जीवोंसे सम्बन्ध रखनेवाले अर्थको जानता है, तथा अव्यक्त मनवाले जीवोंसे सम्बन्ध रखनेवाले अर्थको जानता है ॥ ७३ ॥

चिन्तामें अर्ध परिणत, चिन्तित वस्तुके स्मरणसे रहित और चिन्तामें अव्यापृत मन अव्यक्त कहलाता है। इससे भिन्न मन व्यक्त कहलाता है। व्यक्त मनवाले और अव्यक्त मनवाले जीवोंके चिन्ताके विषयको मनःपर्ययज्ञानी जानता है। ऋजु और अनृजु रूपसे जो चिन्तित या अर्ध चिन्तित है, वर्तमानमें जिसका विचार किया जा रहा है या अर्ध विचार किया जा रहा है, तथा भविष्यमें जिसका विचार किया जायगा या आधा विचार किया जायगा उस सब अर्थको जानता है, यह उक्त कथनका तात्पर्य है।

कालकी अपेक्षा जघन्यसे सात आठ भवोंको और उत्कर्षसे असंख्यात भवोंको जानता है ॥ ७४ ॥

यह सूत्र सुगम है।

जीवोंकी गति और आगतिको जानता है ॥ ७५ ॥

इतने कालके भीतर जीवोंकी गति, आगति, भुक्त, कृत और प्रतिसेवित अर्थको प्रत्यक्ष ' पदुप्पादेदि ' अर्थात् जानता है, यह उक्त कथनका तात्पर्य है।

---

१ का-ताप्रत्योः ' वट्टमाणाणं ' इति पाठः। २ का-ताप्रत्योः ' अवट्टमाणाणं ' इति पाठः। ३ ताप्रतौ '-चिंतियवत्थु, चिंताए ' इति पाठः। ४ अ-आ-काप्रतिषु ' वत्तमण्णाणमवत्तमण्णाणं ' इति पाठः। ५ अप्रतौ ' जीवाणं जाणदि ' इति पाठः। ६ चिंतियमचिंतियं वा अद्धं चिंतियमणेयमेयगयं। ओहिं च विउलमदी लहिऊण विजाणए पच्छा ॥ गो. जी. ४४८. ७ म. बं. १, पृ. २६. द्वितीयं कालतो जघन्येन सप्ताष्टौ भवग्रहणानि, उत्कर्षेणासंख्येयानि गत्यागत्यादिभिः प्ररूपयति। स. सि. १-२३. त. रा. १, २३, १०. तं चेव विउलमई अब्भहियतरागं विउलतरागं विसुद्धतरागं वितिमिरतरागं जाणइ पासइ। नं. सू. १८.

खेत्तदो ताव जहण्णेण जोयणपुधत्तं ॥ ७६ ॥

सुगमं ।

उक्कस्सेण माणुसुत्तरसेलस्स अब्भंतरादो णो बहिद्धा ॥ ७७ ॥

माणुसुत्तरसेलो एत्थ उवलक्खणभूदो, ण तंतो; तेण पणदालीसजोयणलक्खखेत्तब्भंतरे ट्ठिदाणं चिंताविसयं तिकालगोयरं जाणदि त्ति भणिदं होदि । तेण माणुसोत्तरसेलस्स बाहिरे वि सगविसईभूदक्खेत्तंतो ट्ठाइदूण चिंतेमाणदेव-तिरिक्खाणं चिंताविसयं पि विउलमदिमणपज्जवणाणी जाणदि त्ति सिद्धं[2] । के वि आइरिया माणुसुत्तरसेलस्स अब्भंतरे चेव जाणदि त्ति भणंति । तेसिमहिप्पाएण माणुसोत्तरसेलादो बाहिरभावावगमो णत्थि । माणुसुत्तरसेलब्भंतरे चेव ट्ठाइदूण चिंतिदं जाणदि त्ति के वि आइरिया भणंति । तेसिमहिप्पाएण लोगंतट्ठियअत्थो वि पच्चक्खो[3] । एदे दो वि अत्था ण समंजसा, सगणाणपहुपदलंतो[4]पदिददव्वस्स अणवगमाणुववत्तीदो । ण च मणपज्जवणाणं माणुसुत्तरसेलेण पडिहम्मइ, अपरायत्तणेण ववहाणविवज्जियस्स बाहाणुववत्तीदो । ण च लोगंतट्ठियमत्थं जाणंतो तत्थट्ठिय-

क्षेत्रकी अपेक्षा जघन्यसे योजनपृथक्त्वप्रमाण क्षेत्रको जानता है ॥ ७६ ॥

यह सूत्र सुगम है ।

उत्कर्षसे मानुषोत्तर शैलके भीतर जानता है, बाहर नहीं जानता ॥ ७७ ॥

मानुषोत्तर शैल यहां उपलक्षणभूत है, वास्तविक नहीं है। इसलिये पैंतालीस लाख योजन क्षेत्रके भीतर स्थित जीवोंके चिन्ताके विषयभूत त्रिकालगोचर पदार्थको वह जानता है, यह उक्त कथनका तात्पर्य है। इससे मानुषोत्तर शैलके बाहर भी अपने विषयभूत क्षेत्रके भीतर स्थित होकर विचार करनेवाले देवों और तिर्यञ्चोंकी चिन्ताके विषयभूत अर्थको भी विपुलमतिमनःपर्ययज्ञानी जानता है, यह सिद्ध होता है ।

कितने ही आचार्य मानुषोत्तर शैलके भीतर ही जानता है, ऐसा कहते हैं। उनके अभिप्रायानुसार मानुषोत्तर शैलसे बाहरके पदार्थोंका ज्ञान नहीं होता। मानुषोत्तर शैलके भीतर ही स्थित होकर चिन्तित अर्थको जानता है, ऐसा भी कितने ही आचार्य कहते हैं। उनके अभिप्रायानुसार लोकके अन्तमें स्थित अर्थको भी प्रत्यक्ष जानता है। किन्तु ये दोनों ही अर्थ ठीक नहीं हैं, क्योंकि, तदनुसार अपने ज्ञानरूपी पुष्पदलके भीतर आये हुए द्रव्यका अनवगम बन नहीं सकता। मनःपर्ययज्ञान मानुषोत्तर शैलके द्वारा रोक दिया जाता है, यह तो कुछ सम्भव है नहीं; क्योंकि, स्वतन्त्र होनेसे व्यवधानसे रहित उक्त ज्ञानकी प्रवृत्तिमें बाधाका होना सम्भव नहीं है। दूसरे, लोकके अन्तमें स्थित अर्थको जाननेवाला यह ज्ञान वहां स्थित चित्तको नहीं जाने,

१ म. बं. १, पृ. २६. क्षेत्रतो जघन्येन योजनपृथक्त्वम्, उत्कर्षेण मानुषोत्तरशैलस्याभ्यन्तरं न बहिः। स. सि. १-२३. त. रा. १, २३, १० तं चेव विउलमई अड्ढाइज्जेहिमंगुलेहिं अब्भहिअतरं विउलतरं विसुद्धतरं वितिमिरतरागं खेत्तं जाणइ पासइ । नं. सू. १८. २ णरलोए त्ति य वयणं विक्खंभणियामयं ण वट्टस्स । जम्हा तग्घणपदरं मणपज्जवखेत्तमुद्दिट्टं ॥ ×××××तदपि कुतः मानुषोत्तराद्बहिश्चतुःकोणस्थिततिर्यगमराणां परिचिन्तितानां उत्कृष्टविपुलमतेः परिज्ञानात् । गो. जी. जी. प्र. ४५६. ३ प्रतिषु 'पच्चक्खाए' इति पाठः । ४ अ-आ-काप्रतिषु 'णाणवहुवदलंतो' इति पाठः ।

चित्तं ण जाणदि, सगखेत्तंतोट्ठियसगविसयत्थस्स अणवगमाणुववत्तीदो। ण च एवं, खेत्तपमाणपरूवणाए विहलत्तावत्तीदो[1]। पणदालीसजोयणलक्खब्भंतरे ट्ठाइदूण चिंतयंतजीवेहि चिंतिज्जमाणं दव्वं जदि मणपज्जवणाणपहाए ओट्ठद्धखेत्तब्भंतरे होदि तो जाणदि, अण्णहा ण जाणदि त्ति भणिदं होदि।

तं सव्वं विउलमदिमणपज्जवणाणावरणीयं णाम कम्मं ॥७८॥

सुगममेदं, पुव्वं वुत्तत्थत्तादो[2]। एवं मणपज्जवणाणावरणीयस्स कम्मस्स परूवणा गदा।

यह भी नहीं हो सकता; क्योंकि, अपने क्षेत्रके भीतर स्थित अपने विषयभूत अर्थका अनवगम बन नहीं सकता। परन्तु ऐसा सम्भव नहीं है, क्योंकि, ऐसा माननेपर क्षेत्रके प्रमाणकी प्ररूपणा निष्फल ठहरती है। इसलिए पैंतालीस लाख योजनके भीतर स्थित होकर चिन्तवन करनेवाले जीवोंके द्वारा विचार्यमाण द्रव्य यदि मनःपर्ययज्ञानकी प्रभासे अवष्टब्ध क्षेत्रके भीतर होता है तो जानता है, अन्यथा नहीं जानता है; यह उक्त कथनका तात्पर्य है।

विशेषार्थ— विपुलमतिमनःपर्यय ज्ञान कितने क्षेत्रके विषयको जानता है, इस बातका यहां विचार हो रहा है। सूत्रमें इतना ही कहा है कि मानुषोत्तर शैलके भीतरके विषयको जानता है, बाहरके विषयको नहीं जानता। वीरसेन स्वामी इसका यह व्याख्यान करते हैं कि यहां मानुषोत्तर शैल पद उपलक्षण है और इससे पैंतालीस लाख योजनका ग्रहण होता है। इसलिये पैंतालीस लाख योजनके भीतर जो भी चित्तगत पदार्थ स्थित हो उसे वह जानता है। पैंतालीस लाख योजनमें मानुषोत्तर शैलकी कोई मर्यादा नहीं। मानुषोत्तर शैलके बाहर भी यह क्षेत्र हो सकता है। इस विषयके दो व्याख्यान और उपलब्ध होते हैं। प्रथम तो यह कि 'मानुषोत्तर शैल' पद उपलक्षण नहीं है, किन्तु इसके भीतरके चित्तगत पदार्थको ही जानता है; और दूसरा यह कि इसके भीतर स्थित जीवोंके चित्तगत पदार्थको यद्यपि जानता है फिर भी चित्तगत वह पदार्थ लोकान्त तकका भी यदि हो तो उसे भी जानता है। किन्तु वीरसेन स्वामी इन दोनों व्याख्यानोंको स्वीकार नहीं करते। प्रथम मतके सम्बन्धमें उनका कहना है कि मानुषोत्तर शैलको यदि मर्यादा माना जाता है तो इसका यह अर्थ होता है कि वह शैल मनःपर्ययज्ञानमें रुकावट करता है। पर ऐसा हो नहीं सकता, क्योंकि, मनःपर्ययज्ञान पराधीन ज्ञान नहीं है। इसलिए यहां मानुषोत्तर शैलको पैंतालीस लाख योजन क्षेत्रका उपलक्षण ही मानना चाहिए। दूसरे मतके सम्बन्धमें उनका कहना यह है कि यदि विपुलमतिमनःपर्ययज्ञान मानुषोत्तर शैलके भीतर स्थित जीवोंके चित्तगत लोकान्त तकके विषयको जानता है तो वह लोकान्त तकके जीवोंके चित्तको भी जान सकता है, और ऐसी हालतमें फिर क्षेत्रकी मर्यादा मानुषोत्तर शैल तककी नहीं बन सकती। इसलिए यही निश्चित होता है कि मनःपर्ययज्ञानका जो क्षेत्र है उसके भीतर चित्तगत विषयको यदि वह उसके क्षेत्रके भीतर हो तो जानता है, अन्यथा नहीं जानता।

यह सब विपुलमतिमनःपर्ययज्ञानावरणीय कर्म है ॥ ७८ ॥

यह सूत्र सुगम है, क्योंकि इसका अर्थ पहले कहा जा चुका है। इस प्रकार मनःपर्ययज्ञानावरणीय कर्मका कथन किया।

---

१ प्रतिषु 'विहल्लत्तावत्तीदो' इति पाठः। २ ताप्रतौ 'वुत्तत्थादो' इति पाठः।

केवलणाणावरणीयस्स कम्मस्स केवडियाओ पयडीओ? ॥७९॥

सुगममेदं पुच्छासुत्तं।

केवलणाणावरणीयस्स कम्मस्स एया चेव पयडी ॥ ८० ॥

कुदो? बहूणं केवलणाणाणमभावादो। संपहि केवलणाणस्स लक्खणपरूवणट्ठमुत्तर-सुत्तं भणदि—

तं च केवलणाणं सगलं संपुण्णं असवत्तं[1] ॥ ८१ ॥

अखण्डत्वात् सकलम्। कथमस्याखण्डत्वम्? समस्ते बाह्यार्थे अप्रवृत्तौ सत्यां खण्डता। न च तदस्ति, विषयीकृताशेषत्रिकालगोचरबाह्यार्थत्वात्। अथवा, कलास्तावद-वयवा[2] द्रव्य-गुण-पर्य्ययभेदावगमान्यथानुपपत्तितोऽवगतसत्त्वाः, सह कलाभिर्वर्त्तत इति सकलम्। अनन्तदर्शन-वीर्य-विरति-क्षायिकसम्यक्त्वाद्यनन्तगुणैः सम्यक् परस्परपरिहारलक्षणविरोधे सत्यपि सहानवस्थानलक्षणविरोधाभावेन पूर्णत्वात् सम्पूर्णं केवलज्ञानम्, सकलगुणनिधानमिति यावत्। सपत्नाश्शत्रवः कर्माणि[3], न विद्यन्ते सपत्नाः यस्मिन् तदसपत्नं केवलज्ञानम्,

केवलज्ञानावरणीय कर्मकी कितनी प्रकृतियां हैं? ॥ ७९ ॥

यह पृच्छासूत्र सुगम है।

केवलज्ञानावरणीय कर्मकी एक ही प्रकृति है ॥ ८० ॥

क्योंकि, केवलज्ञान बहुत नहीं हैं। अब केवलज्ञानका लक्षण कहनेके लिए आगेका सूत्र कहते हैं—

वह केवलज्ञान सकल है, सम्पूर्ण है, और असपत्न है ॥ ८१ ॥

अखण्ड होनेसे वह सकल है।

शंका— यह अखण्ड कैसे है?

समाधान— समस्त बाह्य अर्थमें प्रवृत्ति नहीं होनेपर ज्ञानमें खण्डपना आता है, सो वह इस ज्ञानमें सम्भव नहीं है; क्योंकि, इस ज्ञानके विषय त्रिकालगोचर अशेष बाह्य पदार्थ हैं।

अथवा द्रव्य, गुण और पर्यायोंके भेदका ज्ञान अन्यथा नहीं बन सकनेके कारण जिनका अस्तित्व निश्चित है ऐसे ज्ञानके अवयवोंका नाम कला है; इन कलाओंके साथ वह अवस्थित रहता है इसलिए सकल है। 'सम्' का अर्थ सम्यक् है, सम्यक् अर्थात् परस्परपरिहार लक्षण विरोधके होनेपर भी सहानवस्थान लक्षण विरोधके न होनेसे चूंकि यह अनन्तदर्शन, अनन्तवीर्य, विरति एवं क्षायिकसम्यक्त्व आदि अनन्त गुणोंसे पूर्ण है; इसीलिये इसे सम्पूर्ण कहा जाता है। वह सकल गुणोंका निधान है, यह उक्त कथनका तात्पर्य है। सपत्नका अर्थ शत्रु है, केवलज्ञानके शत्रु कर्म हैं। वे इसके नहीं रहे हैं, इसलिए केवलज्ञान असपत्न है। उसने अपने प्रतिपक्षी

१ संपुण्णं तु समग्गं केवलमसवत्त सव्वभावगयं। लोयालोयवितिमिरं केवलणाणं मुणेयव्वं ॥ गो. जी. ४५९. २ अ-आ-काप्रतिषु 'कलास्थावयवा', ताप्रतौ 'कलास्था (स्तावद) वयवा' इति पाठः। ३ अ-आ-काप्रतिषु 'सयत्नाः शत्रवः कर्म्मणि', ताप्रतौ 'सपत्नास्शत्रवः, कर्मणि' इति पाठः।

निर्म्मूलोन्मूलितस्वप्रतिपक्षघातिचतुष्कमिति यावत् । एदं केवलणाणं सयं चेव उप्पज्जदि त्ति जाणावणट्ठं तव्विसयपरूवणट्ठं च उत्तरसुत्तं भणदि—

सइं भयवं उप्पण्णणाणदरिसी सदेवासुर-माणुसस्स लोगस्स आगदिं गदिं चयणोववादं बंधं मोक्खं इड्ढिं ट्ठिदिं जुदिं अणुभागं तक्कं कलं माणो माणसियं भुत्तं कदं पडिसेविदं आदिकम्मं अरहकम्मं सव्वलोए सव्वजीवे सव्वभावे सम्मं समं जाणदि पस्सदि विहरदि त्ति[1] ॥ ८२ ॥

ज्ञानधर्ममाहात्म्यानि भगः, सोऽस्यास्तीति भगवान् । उत्पन्नज्ञानेन द्रष्टुं शीलमस्येत्युत्पन्नज्ञानदर्शी, स्वयमुत्पन्नज्ञानदर्शी भगवान् सर्वलोकं जानाति । कथं ज्ञानस्य स्वयमुत्पत्तिः ? न, कार्य-कारणयोरेकाधिकरणत्वतो भेदाभावात् । सौधर्मादयो देवाः, असुराश्च भवनवासिनः । देवासुरवचनं देशामर्शकमिति ज्योतिषां व्यन्तराणां तिरश्चां च ग्रहणं कर्तव्यम् । सदेवासुर-मानुषस्य लोकस्य आगतिं जानाति । अण्णगदीदो इच्छिदगदीए आगमणमागदी णाम । इच्छिदगदीदो अण्णगदिगमणं गदी णाम । सोधम्मिदादिदेवाणं सगसंपयादो विरहो चयणं

घातिचतुष्कका समूल नाश कर दिया है, यह उक्त कथनका तात्पर्य है । यह केवलज्ञान स्वयं ही उत्पन्न होता है, इस बातका ज्ञान करानेके लिए और उसके विषयका कथन करनेके लिए आगेका सूत्र कहते हैं—

स्वयं उत्पन्न हुए ज्ञान और दर्शनसे युक्त भगवान् देवलोक और असुरलोक साथ मनुष्यलोककी आगति, गति, चयन, उपपाद, बन्ध, मोक्ष, ऋद्धि, स्थिति, युति, अनुभाग, तर्क, कल, मन, मानसिक, भुक्त, कृत, प्रतिसेवित, आदिकर्म, अरहःकर्म, सब लोकों, सब जीवों और सब भावोंको सम्यक् प्रकारसे युगपत् जानते हैं, देखते हैं और विहार करते हैं ॥ ८२ ॥

ज्ञान-धर्मके माहात्म्योंका नाम भग है, वह जिनके है वे भगवान् कहलाते हैं । उत्पन्न हुए ज्ञानके द्वारा देखना जिसका स्वभाव है उसे उत्पन्नज्ञानदर्शी कहते हैं । स्वयं उत्पन्न हुए ज्ञान-दर्शन स्वभाववाले भगवान् सब लोकको जानते हैं ।

शंका— ज्ञानकी उत्पत्ति स्वयं कैसे हो सकती है ?

समाधान— नहीं, क्योंकि कार्य और कारणका एकाधिकरण होनेसे इनमें कोई भेद नहीं है ।

सौधर्मादिक देव, और भवनवासी असुर कहलाते हैं । यहां देवासुर वचन देशामर्शक है इसलिए इससे ज्योतिषी, व्यन्तर और तिर्यञ्चोंका भी ग्रहण करना चाहिए । देवलोक और असुरलोकके साथ मनुष्यलोककी आगतिको जानते हैं । अन्य गतिसे इच्छित गतिमें आना आगति है । इच्छित गतिसे अन्य गतिमें जाना गति है । सौधर्मादिक देवोंका अपनी सम्पदासे

१ म. बं. १, पृ. २७.

णाम । अप्पिदगदीदो अण्णगदीए समुप्पत्ती उववादो णाम । जीवाणं विग्गहाविग्गहसरूवेण आगमणं गमणं चयणमुववादं च जाणदि त्ति भणिदं होदि । तहा पोग्गलाणमागमणं गमणं चयणंमुववादं च जाणदि । पोग्गलेसु अप्पिदपज्जाएण विणासो चयणं, अण्णपज्जाएण परिणामो उववादो णाम । धम्माधम्म-कालागासाणं चयणमुववादं च जाणदि, तेसिं गमणागमणाभावादो । लोक्यन्ते उपलभ्यन्ते अस्मिन् जीवादयः पदार्था इति आगासो चेव लोगो त्ति । तेण आधेये आधारोवयारेण धम्मादीणं पि लोगत्तसिद्धीए ।

बन्धनं बन्धः, बद्ध्यते अनेनास्मिन्निति वा बन्धः । सो च बंधो तिविहो— जीवबंधो पोग्गलबंधो जीव-पोग्गलबंधो चेदि । एगसरीरट्ठिदाणमणंताणंताणं णिगोदजीवाणं अण्णोण्ण-बंधो सो जीवबंधो णाम । दो-तिण्णिआदिपोग्गलाणं जो समवाओ सो पोग्गलबंधो णाम । ओरालिय-वेउव्विय-आहार-तेया-कम्मइयवग्गणाणं जीवाणं जो बंधो सो जीव-पोग्गलबंधो णाम । जेण कम्मेण जीवा अणंताणंता एक्कम्मि सरीरे अच्छंति तं कम्मं जीवबंधो णाम । जेण णिद्ध-ल्हुक्खादिगुणेण पोग्गलाणं बंधो होदि सो पोग्गलबंधो णाम । जेहि मिच्छत्तासंजम-कसाय-जोगादीहि जीव-पोग्गलाणं बंधो होदि सो जीव-पोग्गलबंधो णाम । एदं बंधं पि सो भयवंतो जाणदि ।

विरह होना चयन है । विवक्षित गतिसे अन्य गतिमें उत्पन्न होना उपपाद है । जीवोंके विग्रहके साथ तथा विना विग्रहके आगमन, गमन चयन और उपपादको जानते हैं; यह उक्त कथनका तात्पर्य है । तथा पुद्गलोंके आगमन, गमन, चयन और उपपादको जानते हैं । पुद्गलोंमें विवक्षित पर्यायका नाश होना चयन है । अन्य पर्यायरूपसे परिणमना उपपाद है । धर्म, अधर्म, काल और आकाशके चयन और उपपादको जानते हैं, क्योंकि, इनका गमन और आगमन नहीं होता । जिसमें जीवादिक पदार्थ लोके जाते हैं अर्थात् उपलब्ध होते हैं उसकी लोक संज्ञा है । यहां ' लोक ' शब्दसे आकाश लिया गया है । इसलिए आधेयमें आधारका उपचार करनेसे धर्मादिक भी लोक सिद्ध होते हैं ।

बंधनेका नाम बंध है । अथवा जिसके द्वारा या जिसमें बंधते हैं उसका नाम बंध है । यह बंध तीन प्रकारका है— जीवबंध, पुद्गलबंध और जीव-पुद्गलबंध । एक शरीरमें रहनेवाले अनन्तानन्त निगोद जीवोंका जो परस्पर बंध है वह जीवबंध कहलाता है । दो, तीन आदि पुद्गलोंका जो समवाय संबंध होता है वह पुद्गलबंध कहलाता है । तथा औदारिक वर्गणाएं, वैक्रियिक वर्गणाएं, आहारक वर्गणाएं, तैजस वर्गणाएं और कार्मण वर्गणाएं; इनका और जीवोंका जो बंध होता है वह जीव-पुद्गलबंध कहलाता है । जिस कर्मके कारण अनन्तानन्त जीव एक शरीरमें रहते हैं उस कर्मकी जीवबंध संज्ञा है । जिस स्निग्ध और रुक्ष आदि गुणके कारण पुद्गलोंका बंध होता है उसकी पुद्गलबंध संज्ञा है । जिन मिथ्यात्व, असंयम, कषाय और योग आदिके निमित्तसे जीव और पुद्गलोंका बन्ध होता है वह जीव-पुद्गलबन्ध कहलाता है । इस बन्धको भी वे भगवान् जानते हैं ।

---

१ काऽताप्रत्योः '-मागमणं चयण-' इति पाठः ।

मोचनं मोक्षः, मुच्यते अनेनास्मिन्निति वा मोक्षः । सो मोक्खो तिविहो— जीव-मोक्खो पोग्गलमोक्खो जीव-पोग्गलमोक्खो चेदि । एवं मोक्खकारणं तिविहं ति वत्तव्वं । बंधं बंधकारणं बंधपदेस-बद्ध-बज्झमाणजीवे पोग्गले च, मोक्खं मोक्खकारणं मोक्खपदेस-मुक्क-मुच्चमाणजीव-पोग्गले च तिकालविसए जाणदि त्ति भणिदं होदि । भोगोवभोगहय-हत्थि-मणि-रयणसंपया[1] संपयकारणं च इद्धी णाम । तिहुवणगयसयलसंपयाओ देवासुर-मणुव-संपयकारणाणि च जाणदि त्ति भणिदं होदि । छदव्वाणमप्पिदभावेण अवट्ठाणं अवट्ठाण-कारणं च ट्ठिदी णाम । दव्वट्ठिदि-कम्मट्ठिदि-कायट्ठिदि-भवट्ठिदि-भावट्ठिदिआदिट्ठिदिं च सकारणं जाणदि[2] त्ति भणिदं होदि । दव्वक्खेत्त-काल-भावेहि जीवादिदव्वाणं मेलणं जुडी णाम । युति-बन्धयोः को विशेषः ? एकीभावो बन्धः, सामीप्यं[3] संयोगो वा युतिः । तत्थ दव्वजुडी तिविहा— जीवजुडी पोग्गलजुडी जीव-पोग्गलजुडी चेदि । तत्थ एक्कम्हि कुले गामे णयरे बिले गुहाए अडईए जीवाणं मेलणं जीवजुडी णाम । वाएण हिंडिज्जमाणपण्णाणं व एक्कम्हि देसे पोग्गलाणं मेलणं पोग्गलजुडी णाम । जीवाणं पोग्गलाणं च मेलणं जीव-पोग्गलजुडी णाम । अथवा दव्वजुडी जीव-पोग्गल-धम्माधम्मकाल-आगासाणमेगादि-

---

छूटनेका नाम मोक्ष है, अथवा जिसके द्वारा या जिसमें मुक्त होते हैं वह मोक्ष कहलाता है। वह मोक्ष तीन प्रकारका है— जीवमोक्ष, पुद्गलमोक्ष और जीव-पुद्गलमोक्ष। इसी प्रकार मोक्षका कारण भी तीन प्रकार कहना चाहिए। बन्ध, बन्धका कारण, बंधप्रदेश, बद्ध एवं बध्यमान जीव और पुद्गल; तथा मोक्ष, मोक्षका कारण, मोक्षप्रदेश, मुक्त एवं मुच्यमान जीव और पुद्गल; इन सब त्रिकालविषयक अर्थोंको जानता है, यह उक्त कथनका तात्पर्य है। भोग व उपभोग रूप घोड़ा, हाथी, मणि व रत्न रूप सम्पदा तथा उस सम्पदाकी प्राप्तिके कारणका नाम ऋद्धि है। तीन लोकमें रहनेवाली सब सम्पदाओंको तथा देव, असुर और मनुष्य भवकी सम्प्राप्तिके कारणोंको भी जानता है; यह उक्त कथनका तात्पर्य है। छह द्रव्योंका विवक्षित भावसे अवस्थान और अवस्थानके कारणका नाम स्थिति है। द्रव्यस्थिति, कर्मस्थिति, कायस्थिति, भवस्थिति और भावस्थिति आदि स्थितिको सकारण जानता है, यह उक्त कथनका तात्पर्य है। द्रव्य, क्षेत्र, काल और भावके साथ जीवादि द्रव्योंके सम्मेलनका नाम युति है।

शंका— युति और बन्धमें क्या भेद है ?

समाधान— एकीभावका नाम बन्ध है और समीपता या संयोगका नाम युति है।

यहां द्रव्ययुति तीन प्रकारकी है—जीवयुति, पुद्गलयुति और जीव-पुद्गलयुति। इनमेंसे एक कुल, ग्राम, नगर, विल, गुफा या अटवीमें जीवोंका मिलना जीवयुति है। वायुके कारण हिलने-वाले पत्तोंके समान एक स्थानपर पुद्गलोंका मिलना पुद्गलयुति है। जीव और पुद्गलोंका मिलना जीव-पुद्गलयुति है। अथवा जीव, पुद्गल, धर्म, अधर्म, काल और आकाश इनके एक आदि संयोगके

---

१ ताप्रतौ 'मणिरयणं संपयासंपय-' इति पाठः। २ अप्रतौ '-ट्ठिदिं य जाणदि' इति पाठः। ३ आ-काप्रत्योः 'सामीणं', ताप्रतौ 'सामीणं (प्यं)' इति पाठः।

संजोगेण उप्पादेदव्वा । जीवादिदव्वाणं णिरयादिखेत्तेहि सह मेलणं खेत्तजुडी णाम । तेसिं चेव दव्वाणं दिवस-मास-संवच्छरादिकालेहि सह मेलणं कालजुडी णाम । कोह-माण-माया-लोहादीहि सह मेलणं भावजुडी णाम । एदं सव्वं पि जुडिवियप्पं तिकालविसयं सो भयवंतो जाणदि ।

छदव्वाणं सत्ती अणुभागो णाम । सो च अणुभागो छव्विहो— जीवाणुभागो पोग्गलाणुभागो धम्मत्थियअणुभागो अधम्मत्थियअणुभागो आगासत्थियअणुभागो कालदव्वाणुभागो चेदि । तत्थ असेसदव्वावगमो जीवाणुभागो । जर-कुट्टक्खयादिविणासणं तदुप्पायणं च पोग्गलाणुभागो । जोणिपाहुडे भणिदमंत-तंतसत्तीयो पोग्गलाणुभागो त्ति घेत्तव्वो । जीव-पोग्गलाणं गमणागमणहेदुत्तं धम्मत्थियाणुभागो । तेसिमवट्ठाणहेदुत्तं अधम्मत्थियाणुभागो । जीवादिदव्वाणमाहारत्तमागासत्थियाणुभागो । अण्णेसिं दव्वाणं कमाकमेहि परिणमणहेदुत्तं कालदव्वाणुभागो । एवं दुसंजोगादिणा अणुभागपरूवणा कायव्वा— जहा [मट्टिआ-] पिंड-दंड-चक्क-चीवर-जल-कुंभारदीणं घडुप्पायणाणुभागो । एदमणुभागं पि जाणदि । तर्को हेतुर्ज्ञापकमित्यनर्थान्तरम्[1] । एदं पि जाणदि । चित्तकम्म-पत्तच्छेज्जादी[2] कला णाम । कलं पि जाणदि । मणोवग्गणाए णिव्वत्तियं हिययपउमं मणो णाम, मणोजणिदणाणं

द्वारा द्रव्ययुति उत्पन्न करानी चाहिए । जीवादि द्रव्योंका नारकादि क्षेत्रोंके साथ मिलना क्षेत्रयुति है । उन्हीं द्रव्योंका दिन, महीना और वर्ष आदि कालोंके साथ मिलाप होना कालयुति है । क्रोध, मान, माया और लोभादिकके साथ उनका मिलाप होना भावयुति है । त्रिकालविषयक इन सब युतियोंके भेदको वे भगवान् जानते हैं ।

छह द्रव्योंकी शक्तिका नाम अनुभाग है । वह अनुभाग छह प्रकारका है— जीवानुभाग, पुद्गलानुभाग, धर्मास्तिकायानुभाग, अधर्मास्तिकायानुभाग, आकाशास्तिकायानुभाग और कालद्रव्यानुभाग । इनमेंसे समस्त द्रव्योंका जानना जीवानुभाग है । ज्वर, कुष्ठ और क्षय आदिका विनाश करना और उनका उत्पन्न कराना इसका नाम पुद्गलानुभाग है । योनिप्राभृतमें कहे गए मंत्र-तंत्र रूप शक्तियोंका नाम पुद्गलानुभाग है, ऐसा यहां ग्रहण करना चाहिए । जीव और पुद्गलोंके गमन और आगमनमें हेतु होना धर्मास्तिकायानुभाग है । उन्हींके अवस्थानमें हेतु होना अधर्मास्तिकायानुभाग है । जीवादि द्रव्योंका आधार होना आकाशास्तिकायानुभाग है । अन्य द्रव्योंके क्रम और अक्रमसे परिणमनमें हेतु होना कालद्रव्यानुभाग है । इसी प्रकार द्विसंयोगादि रूपसे अनुभागका कथन करना चाहिए । जैसे—मृत्तिकापिण्ड, दण्ड, चक्र, चीवर, जल और कुम्हार आदिका घटोत्पादन रूप अनुभाग । इस अनुभागको भी जानते हैं । तर्क, हेतु और ज्ञापक, ये एकार्थवाची शब्द हैं । इसे भी जानते हैं । चित्रकर्म और पत्रछेदन आदिका नाम कला है । कलाको भी वे जानते हैं । मनोवर्गणासे बने हुए हृदय-कमलका नाम मन है, अथवा मनसे उत्पन्न हुए ज्ञानको मन

---

१ अ-आ-ताप्रतिषु 'हेतु शापक-', काप्रतौ 'हेतु ज्ञायक' इति पाठः । २ अप्रतौ 'पत्तच्छेयादि', का-ताप्रत्योः 'पत्तछेज्जादि' इति पाठः ।

वा मणो वुच्चदे। मणसा चिन्तिदट्टा माणसिया। ते वि जाणदि। रज्ज-महव्वयादिपरि-पालणं भुत्ती णाम। तं भुत्तं जाणदि। जं किंचि तिसु वि कालेसु अण्णत्तो णिप्पण्णं तं कदं णाम। पंचहि इंदिएहि तिसु वि कालेसु जं सेविदं तं पडिसेविदं णाम। आद्यं कर्म्म आदियम्मं णाम। अत्थ-वंजणपज्जायभावेण सव्वेसिं दव्वाणमादिं जाणदि त्ति भणिदं होदि। रहः अन्तरम्, अरहः[1] अनन्तरम्, अरहः कर्म्म अरहस्कर्म[2]; तं जानाति। सुद्धदव्वट्ठियणयविसएण सव्वेसिं दव्वाणमणादित्तं जाणदि त्ति भणिदं होदि। सर्वस्मिन् लोके सर्वजीवान् सर्वभावांश्च जानाति।

सव्वजीवग्गहणं ण कायव्वं, बद्ध-मुत्तेहि गयत्थत्तादो? ण, एगसंखाविसिट्ठबद्ध-मुक्कगहणं मा तत्थ होहदि त्ति तप्पडिसेहट्ठं सव्वजीवणिद्देसादो। जीवा दुविहा— संसारिणो मुत्ता चेदि[3]। तत्थ मुत्ता अणंतवियप्पा, सिद्धलोगस्स आदि-अंताभावादो। कुदो तदभावो? पवाहसरूवेणाणुवत्तीएँ[4] "सव्वा सिद्धा सेहणं पडि सादिया, संताणं पडि अणादिया" त्ति सुत्तादो। संसारिणो दुविहा तसा थावरा चेदि[5]। तसा चउव्विहा—

कहते हैं। मनसे चिन्तित पदार्थोंका नाम मानसिक है। उन्हें भी जानते हैं। राज्य और महाव्रतादिका परिपालन करनेका नाम भुक्ति है। उस भुक्तको जानते हैं। जो कुछ तीनों ही कालोंमें अन्यके द्वारा निष्पन्न होता है उसका नाम कृत है। पांचों इन्द्रियोंके द्वारा तीनों ही कालोंमें जो सेवित होता है उसका नाम प्रतिसेवित है। आद्य कर्मका नाम आदिकर्म है। अर्थ-पर्याय और व्यञ्जनपर्याय रूपसे सब द्रव्योंकी आदिको जानता है, यह उक्त कथनका तात्पर्य है। रहस् शब्दका अर्थ अन्तर और अरहस् शब्दका अर्थ अनन्तर है। अरहस् ऐसा जो कर्म वह अरहःकर्म कहलाता है। उसको जानते हैं। शुद्ध द्रव्यार्थिक नयके विषय रूपसे सब द्रव्योंकी अनादिताको जानते हैं, यह उक्त कथनका तात्पर्य है। सम्पूर्ण लोकमें सब जीवों और सब भावोंको जानते हैं।

शंका— यहां 'सर्व जीव' पदको ग्रहण नहीं करना चाहिए, क्योंकि, बद्ध और मुक्त पदके द्वारा उसके अर्थका ज्ञान हो जाता है।

समाधान— नहीं, क्योंकि एक संख्या विशिष्ट बद्ध और मुक्तका ग्रहण वहांपर न होवे, इसलिए इसका प्रतिषेध करनेके लिए 'सर्व जीव' पदका निर्देश किया है।

जीव दो प्रकारके हैं— संसारी और मुक्त। इनमें मुक्त जीव अनन्त प्रकारके हैं, क्योंकि, सिद्धलोकका आदि और अन्त नहीं पाया जाता।

शंका— सिद्ध लोकके आदि और अन्तका अभाव कैसे है?

समाधान— क्योंकि, उसकी प्रवाह स्वरूपसे अनुवृत्ति है, तथा 'सब सिद्ध जीव सिद्धिकी अपेक्षा सादि हैं और सन्तानकी अपेक्षा अनादि हैं,' ऐसा सूत्रवचन भी है।

संसारी जीव दो प्रकारके हैं—त्रस और स्थावर। त्रस जीव चार प्रकारके हैं— द्वीन्द्रिय,

---

१ काप्रतौ 'अरहा' इति पाठः। २ ताप्रतौ 'रहस्कर्म' इति पाठः। ३ संसारिणो मुक्ताश्च। त. सू. २, १०. ४ अप्रतौ '-ऽणणवत्तीए' इति पाठः। ५ संसारिणस्त्रसस्थावरा त. सू. २, १२.

बीइंदिया तीइंदिया चउरिंदिया पंचिंदिया चेदि[1]। पंचिंदिया दुविहा सण्णिणो असण्णिणो चेदि। एदे सव्वे तसा दुविहा पज्जत्तापज्जत्तभेएण। अपज्जत्ता दुविहा लद्धि-अपज्जत्त-णिव्वत्तिअपज्जत्तभेएण। थावरा पंचविहा— पुढविकाइया आउकाइया तेउकाइया वाउकाइया वणप्फदिकाइया चेदि[2]। एदे पंच वि थावरकाया पादेक्कं दुविहा बादरा सुहुमा चेदि। तत्थ बादरवणप्फदिकाइया दुविहा पत्तेयसरीरा साहारणसरीरा चेदि। एत्थ पत्तेयसरीरा दुविहा बादरणिगोदपदिट्ठिदा बादरणिगोदअपदिट्ठिदा चेदि। एदे थावरकाया सव्वे वि पादेक्कं दुविहा पज्जत्ता अपज्जत्ता चेदि। अपज्जत्ता दुविहा लद्धिअपज्जत्ता णिव्वत्ति-अपज्जत्ता चेदि। तत्थ वणप्फदिकाइया अणंतवियप्पा, सेसा असंखेज्जवियप्पा। एदे सव्वजीवे सव्वलोगट्ठिदे जाणदि त्ति भणिदं होदि।

भावा णवविहा जीवाजीव-पुण्ण-पाव-आसव-संवर-णिज्जरा-बंध-मोक्खभेएण। तत्थ जीवा परूविदा। अजीवा दुविहा मुत्ता अमुत्ता चेदि। तत्थ मुत्ता एगूणवीसदिविधा। तं जहा— एयपदेसियवग्गणा संखेज्जपदेसियवग्गणा असंखेज्जपदेसियवग्गणा अणंतपदेसियवग्गणा आहारवग्गणा अगहणवग्गणा तेजइयसरीरवग्गणा अगहणवग्गणा भासावग्गणा अगहणवग्गणा मणोवग्गणा अगहणवग्गणा कम्मइयवग्गणा धुवखंधवग्गणा सांतर-णिरंतरवग्गणा धुवसुण्ण-वग्गणा पत्तेयसरीरवग्गणा धुवसुण्णवग्गणा बादरणिगोदवग्गणा धुवसुण्णवग्गणा सुहुम-णिगोदवग्गणा धुवसुण्णवग्गणा महाखंधवग्गणा चेदि। एत्थ तेवीसवग्गणासु चदुसु धुवसुण्ण-

---

त्रीन्द्रिय, चतुरिन्द्रिय और पंचेन्द्रिय। पंचेन्द्रिय जीव दो प्रकारके हैं— संज्ञी और असंज्ञी। ये सब त्रस जीव पर्याप्त और अपर्याप्तके भेदसे दो प्रकारके हैं। अपर्याप्त जीव लब्ध्यपर्याप्त और निर्वृत्त्यपर्याप्तके भेदसे दो प्रकारके हैं। स्थावर जीव पांच प्रकारके हैं—पृथ्वीकायिक, जलकायिक, अग्निकायिक, वायुकायिक और वनस्पतिकायिक। इन पांचों ही स्थावरकायिक जीवोंमें प्रत्येक दो प्रकारके हैं— बादर और सूक्ष्म। इनमें बादर वनस्पतिकायिक जीव दो प्रकारके हैं— प्रत्येक-शरीर और साधारणशरीर। यहां प्रत्येकशरीर जीव दो प्रकारके हैं— बादरनिगोदप्रतिष्ठित और बादरनिगोदअप्रतिष्ठित। ये सब स्थावरकायिक जीव भी प्रत्येक दो प्रकारके हैं— पर्याप्त और अपर्याप्त। अपर्याप्त दो प्रकारके हैं— लब्ध्यपर्याप्त और निर्वृत्त्यपर्याप्त। इनमेंसे वनस्पतिकायिक अनन्त प्रकारके और शेष असंख्यात प्रकारके हैं। केवली भगवान् समस्त लोकमें स्थित इन सब जीवोंको जानते हैं, यह उक्त कथनका तात्पर्य है।

जीव, अजीव, पुण्य, पाप, आस्रव, संवर, निर्जरा, बन्ध और मोक्षके भेदसे पदार्थ नौ प्रकारके हैं। उनमेंसे जीवोंका कथन कर आये हैं। अजीव दो प्रकारके हैं— मूर्त और अमूर्त। इनमेंसे मूर्त पुद्गल उन्नीस प्रकारके हैं। यथा— एकप्रदेशी वर्गणा, संख्यातप्रदेशी वर्गणा, असंख्यातप्रदेशी वर्गणा, अनन्तप्रदेशी वर्गणा, आहारवर्गणा, अग्रहणवर्गणा, तैजसशरीरवर्गणा, अग्रहणवर्गणा, भाषा-वर्गणा, अग्रहणवर्गणा, मनोवर्गणा, अग्रहणवर्गणा, कर्मणशरीरवर्गणा, ध्रुवस्कन्धवर्गणा, सान्तर-निरन्तरवर्गणा, ध्रुवशून्यवर्गणा, प्रत्येकशरीरवर्गणा, ध्रुवशून्यवर्गणा, बादरनिगोदवर्गणा, ध्रुवशून्य-वर्गणा, सूक्ष्मनिगोदवर्गणा, ध्रुवशून्यवर्गणा और महास्कन्धवर्गणा। इन तेईस वर्गणाओंमेंसे चार

---

१ द्वीन्द्रियादयस्त्रसाः। त. सू. २, १४. २ पृथिव्यप्तेजोवायु-वनस्पतयः स्थावराः। त. सू. २, १३.

वग्गणासु अवणिदासु एगूणवीसदिविधा पोग्गला होंति । पादेक्कमणंतभेदा । अमुत्ता चउव्विहा— धम्मत्थियो अधम्मत्थियो आगासत्थियो कालो चेदि । कालो घणलोगमेत्तो । सेसा एयवियप्पा । आगासो अणंतपदेसियो । कालो अपदेसियो । सेसा असंखेज्जपदेसिया ।

सुहपयडीओ पुण्णं । असुहपयडीओ पावं । तत्थ घाइचउक्कं पावं । अघाइचउक्कं मिस्सं, तत्थ सुहासुहपयडीणं संभवादो । मिच्छत्तासंजम-कसाय-जोगा आसवो । तत्थ मिच्छत्तं पंचविहं । असंजमो बादालीसविहो । वुत्तं च—

पंचरस-पंचवण्णा दोगंधा अट्ठफास सत्तसरा ।
मणसा चोद्दसजीवा बादालीसं तु अविरमणं[1] ॥ ३३ ॥

अणंताणुबंधि-पच्चक्खाण-अपच्चक्खाण-संजुलण[2]कोह-माण-माया-लोह-हस्स-रदि-अरदि-सोग-भय-दुगुंछा-इत्थि-पुरिस-णवुंसयभेएण कसाओ पंचवीसविहो । जोगो पण्णरसविहो । आसवपडिवक्खो संवरो णाम । गुणसेडीए एक्कारसभेदभिण्णाए कम्मगलणं णिज्जरा णाम । जीव-कम्माणं समवाओ बंधो णाम । जीव-कम्माणं णिस्सेसविसिलेसो मोक्खो णाम । एदे सव्वे भावे जाणदि । समं अक्कमेण । एदं समग्गहणं केवलणाणस्स अदिंदियत्तं

ध्रुवशून्यवर्गणाओंके निकाल देनेपर उन्नीस प्रकारके पुद्गल होते हैं और वे प्रत्येक अनन्त भेदोंको लिये हुए हैं । अमूर्त चार प्रकारके हैं—धर्मास्तिकाय, अधर्मास्तिकाय, आकाशास्तिकाय और काल । काल घनलोकप्रमाण है, शेष एक एक हैं । आकाश अनन्तप्रदेशी है, काल अप्रदेशी है, और शेष असंख्यातप्रदेशी हैं ।

शुभ प्रकृतियोंका नाम पुण्य है और अशुभ प्रकृतियोंका नाम पाप है । यहां घातिचतुष्क पाप रूप हैं । अघातिचतुष्क मिश्ररूप हैं, क्योंकि, इनमें शुभ और अशुभ दोनों प्रकृतियां सम्भव हैं । मिथ्यात्व, असंयम, कषाय और योग ये आस्रव हैं । इनमेंसे मिथ्यात्व पांच प्रकारका है । असंयम व्यालीस प्रकारका है । कहा भी है—

पांच रस, पांच वर्ण, दो गन्ध, आठ स्पर्श, सात स्वर, मन और चौदह प्रकारके जीव; इनकी अपेक्षा अविरमण अर्थात् इन्द्रिय व प्राणी रूप असंयम व्यालीस प्रकारका है ॥ ३३ ॥

अनन्तानुबन्धी क्रोध, मान, माया और लोभ; प्रत्याख्यानावरण क्रोध, मान, माया और लोभ; अप्रत्याख्यानावरण क्रोध, मान, माया और लोभ; संज्वलन क्रोध, मान, माया और लोभ; हास्य, रति, अरति, शोक, भय, जुगुप्सा, तथा स्त्रीवेद, पुरुषवेद और नपुंसकवेदके भेदसे कषाय पच्चीस प्रकारकी है । योग पन्द्रह प्रकारका है । आस्रवके प्रतिपक्षका नाम संवर है । ग्यारह भेदरूप गुणश्रेणिके द्वारा कर्मोंका गलना निर्जरा है । जीवों और कर्म-पुद्गलोंके समवायका नाम बन्ध है । जीव और कर्मका निःशेष विश्लेष होना मोक्ष है । इन सब भावोंको केवली जानते हैं । समं अर्थात् अक्रमसे । यहां जो 'समं' पदका ग्रहण किया है वह केवलज्ञान अतीन्द्रिय है और व्यवधानादिसे रहित है,

---

१ पचरस-पंचवण्णा दोगंधे अट्ठफास सत्तसरा । मणसा चोद्दसजीवा इंदिय-पाणा य संजमो णेओ ॥ मूला. ५, २२१. २ अ-आ-काप्रतिषु 'संजुलण-' इति पाठः ।

ववहाणादिणिवट्टणं च सूचेदि, अण्णहा समग्गहणाणुववत्तीदो । संशय-विपर्य्ययानध्यवसाया-भावतस्त्रिकालगोचराशेषद्रव्य-पर्यायग्रहणाद्वा सम्यग् जानाति[1] भगवान् केवली । अशेष-बाह्यार्थग्रहणे सत्यपि न केवलिनः सर्वज्ञता, स्वरूपपरिच्छित्त्यभावादित्युक्ते आह– 'पस्सदि' त्रिकालगोचरानन्तपर्यायोपचितमात्मानं च पश्यति । केवलज्ञानोत्पत्त्यनन्तरं कृत्स्नकर्मक्षये सति वितनोरुपदेशाभावात् तीर्थाभाव इत्युक्ते आह— 'विहरदि त्ति' चतुर्णामघातिकर्म्मणां सत्त्वात् देशोनां पूर्वकोटीं विहरतीति ।

केवलणाणं ॥ ८३ ॥

एवंगुणविसिट्ठं केवलणाणं होदि । कधं गुणस्स गुणा होंति ? केवलणाणेण केवलि-णिद्देसादो । एवंविहो केवली होदि त्ति भणिदं होदि । एवं केवलणाणावरणीयकम्मस्स परूवणा कदा होदि ।

दंसणावरणीयस्स कम्मस्स केवडियाओ पयडीओ ? ॥ ८४ ॥

सुगमं ।

दंसणावरणीयस्स कम्मस्स णव पयडीओ— णिद्दाणिद्दा

इस बातको सूचित करता है; क्योंकि, अन्यथा सब पदार्थोंका युगपत् ग्रहण करना नहीं बन सकता संशय, विपर्यय और अनध्यवसायका अभाव होनेसे अथवा त्रिकालगोचर समस्त द्रव्यों और उनकी पर्यायोंका ग्रहण होनेसे केवली भगवान् सम्यक् प्रकारसे जानते हैं । केवली द्वारा अशेष बाह्य पदार्थोंका ग्रहण होनेपर भी उनका सर्वज्ञ होना सम्भव नहीं है, क्योंकि, उनके स्वरूपपरिच्छित्ति अर्थात् स्वसंवेदनका अभाव है; ऐसी आशंकाके होनेपर सूत्रमें 'पश्यति' कहा है । अर्थात् वे त्रिकालगोचर अनन्त पर्यायोंसे उपचित आत्माको भी देखते हैं । केवलज्ञानकी उत्पत्ति होनेके बाद सब कर्मोंका क्षय हो जानेपर शरीररहित हुए केवली उपदेश नहीं दे सकते, इसलिए तीर्थका अभाव प्राप्त होता है; ऐसा कहनेपर सूत्रमें 'विहरदि' कहा है । अर्थात् चार अघाति कर्मोंका सत्त्व होनेसे वे कुछ कम एक पूर्वकोटि काल तक विहार करते हैं ।

ऐसा केवलज्ञान होता है ॥ ८३ ॥

इस प्रकारके गुणोंवाला केवलज्ञान होता है ।

शंका— गुणमें गुण कैसे हो सकते हैं ?

समाधान— यहां केवलज्ञानके द्वारा केवलज्ञानीका निर्देश किया गया है । इस प्रकारके केवली होते हैं, यह उक्त कथनका तात्पर्य है ।

इस प्रकार केवलज्ञानावरणीय कर्मका कथन किया ।

दर्शनावरणीय कर्मकी कितनी प्रकृतियां हैं ? ॥ ८४ ॥

यह सूत्र सुगम है ।

दर्शनावरणीय कर्मकी नौ प्रकृतियां हैं— निद्रानिद्रा, प्रचलाप्रचला, स्त्यानगृद्धि,

---

१ प्रतिषु 'जानातीति' इति पाठः । २ काप्रतौ 'जानातीति भगवान् केवलिनः' इति पाठः ।

वग्गणासु अवणिदासु एगूणवीसदिविधा पोग्गला होंति । पादेक्कमणंतभेदा । अमुत्ता चउव्विहा— धम्मत्थियो अधम्मत्थियो आगासत्थियो कालो चेदि । कालो घणलोगमेत्तो । सेसा एयवियप्पा । आगासो अणंतपदेसियो । कालो अपदेसियो । सेसा असंखेज्जपदेसिया ।

सुहपयडीओ पुण्णं । असुहपयडीओ पावं । तत्थ घाइचउक्कं पावं । अघाइचउक्कं मिस्सं, तत्थ सुहासुहपयडीणं संभवादो । मिच्छत्तासंजम-कसाय-जोगा आसवो । तत्थ मिच्छत्तं पंचविहं । असंजमो बादालीसविहो । वुत्तं च—

> पंचरस-पंचवण्णा दोगंधा अट्ठफास सत्तसरा ।
> मणसा चोद्दसजीवा बादालीसं तु अविरमणं[1] ॥ ३३ ॥

अणंताणुबंधि-पचक्खाण-अपच्चक्खाण-संजुलणं[2]कोह-माण-माया-लोह-हस्स-रदि-अरदि-सोग-भय-दुगुंछा-इत्थि-पुरिस-णवुंसयभेएण कसाओ पंचवीसविहो । जोगो पण्णरसविहो । आसवपडिवक्खो संवरो णाम । गुणसेडीए एक्कारसभेदभिण्णाए कम्मगलणं णिज्जरा णाम । जीव-कम्माणं समवाओ बंधो णाम । जीव-कम्माणं णिस्सेसविसिलेसो मोक्खो णाम । एदे सव्वे भावे जाणदि । समं अक्कमेण । एदं समग्गहणं केवलणाणस्स अदिंदियत्तं

ध्रुवशून्यवर्गणाओंके निकाल देनेपर उन्नीस प्रकारके पुद्गल होते हैं और वे प्रत्येक अनन्त भेदोंको लिये हुए हैं । अमूर्त चार प्रकारके हैं—धर्मास्तिकाय, अधर्मास्तिकाय, आकाशास्तिकाय और काल । काल घनलोकप्रमाण है, शेष एक एक हैं । आकाश अनन्तप्रदेशी है, काल अप्रदेशी है, और शेष असंख्यातप्रदेशी हैं ।

शुभ प्रकृतियोंका नाम पुण्य है और अशुभ प्रकृतियोंका नाम पाप है । यहां घातिचतुष्क पाप रूप हैं । अघातिचतुष्क मिश्ररूप हैं, क्योंकि, इनमें शुभ और अशुभ दोनों प्रकृतियां सम्भव हैं । मिथ्यात्व, असंयम, कषाय और योग ये आस्रव हैं । इनमेंसे मिथ्यात्व पांच प्रकारका है । असंयम व्यालीस प्रकारका है । कहा भी है—

पांच रस, पांच वर्ण, दो गन्ध, आठ स्पर्श, सात स्वर, मन और चौदह प्रकारके जीव; इनकी अपेक्षा अविरमण अर्थात् इन्द्रिय व प्राणी रूप असंयम व्यालीस प्रकारका है ॥ ३३ ॥

अनन्तानुबन्धी क्रोध, मान, माया और लोभ; प्रत्याख्यानावरण क्रोध, मान, माया और लोभ; अप्रत्याख्यानावरण क्रोध, मान, माया और लोभ; संज्वलन क्रोध, मान, माया और लोभ; हास्य, रति, अरति, शोक, भय, जुगुप्सा, तथा स्त्रीवेद, पुरुषवेद और नपुंसकवेदके भेदसे कषाय पच्चीस प्रकारकी है । योग पन्द्रह प्रकारका है । आस्रवके प्रतिपक्षका नाम संवर है । ग्यारह भेदरूप गुणश्रेणिके द्वारा कर्मोंका गलना निर्जरा है । जीवों और कर्म-पुद्गलोंके समवायका नाम बन्ध है । जीव और कर्मका निःशेष विश्लेष होना मोक्ष है । इन सब भावोंको केवली जानते हैं । समं अर्थात् अक्रमसे । यहां जो ' समं ' पदका ग्रहण किया है वह केवलज्ञान अतीन्द्रिय है और व्यवधानादिसे रहित है,

---

१ पचरस-पंचवण्णा दोगंधे अट्ठफास सत्तसरा । मणसा चोद्दसजीवा इंदिय-पाणा य संजमो णेओ ॥ मूला. ५, २२१. २ अ-आ-काप्रतिषु ' संजुलण- ' इति पाठः ।

कधं जीवो सामण्णं ? ण, इदं चेवत्थं जाणदि त्ति णियमाभावादो, राग-दोस-मोहाभावादो वा जीवस्स समाणत्तसिद्धीदो। एदासिं पंचण्णं पयडीणं बहिरंगंतरंगत्थगहणपडिकूलाणं कधं दंसणावरणसण्णा, दोण्णमावारयाणमेगावारयत्तविरोहादो ? ण, एदाओ पंच वि पयडीओ दंसणावरणीयं चेव, सगसंवेयणविणासकरणादो। बहिरंगत्थगहणाभावो वि तत्तो चेव होदि त्ति ण वोत्तुं जुत्तं, दंसणाभावेण तव्विणासादो। किमट्ठं दंसणाभावेण णाणाभावो ? णिद्दाए विणासिदवज्झत्थगहणजणणसत्तित्तादो। ण च तज्जणणसत्ती णाणं, तिस्से दंसणप्पयजीवत्तादो। चक्खुविण्णाणुप्पायणकारणं सगसंवेयणं चक्खुदंसणं णाम। तस्सावारयं कम्मं चक्खुदंसणावरणीयं। सोद-घाण-जिब्भा-फास-मणेहिंतो समुप्पज्जमाणणाणकारणसगसंवेयणमचक्खुदंसणं णाम। तस्स आवारयं अचक्खुदंसणावरणीयं। परमाणुआदिमहक्खंधंतपोग्गलदव्वविसयओहिणाणकारणसगसंवेयणं ओहिदंसणं। तस्स आवारयं ओहिदंसणावरणीयं। केवलणाणुप्पत्तिकारणसगसंवेयणं केवलदंसणं णाम। तस्स आवारयं

शंका— जीव सामान्य रूप कैसे हो सकता है ?

समाधान— नहीं, क्योंकि इसी अर्थको जानता है, ऐसा कोई नियम नहीं है। अथवा राग, द्वेष और मोहसे रहित होनेके कारण जीवके समानता सिद्ध है।

शंका— ये पांचों ही प्रकृतियां बहिरंग और अन्तरंग दोनों ही प्रकारके अर्थके ग्रहणमें बाधक हैं, इसलिए इनकी दर्शनावरण संज्ञा कैसे हो सकती है; क्योंकि, दोनोंका आवरण करनेवालोंको एकका आवरण करनेवाला माननेमें विरोध आता है ?

समाधान— नहीं, ये पांचों ही प्रकृतियां दर्शनावरणीय ही हैं, क्योंकि, वे स्वसंवेदनका विनाश करती हैं।

शंका— बहिरंग अर्थके ग्रहणका अभाव भी तो उन्हींसे होता है ?

समाधान— ऐसा कहना ठीक नहीं है, क्योंकि उसका विनाश दर्शनके अभावसे होता है।

शंका— दर्शनका अभाव होनेसे ज्ञानका अभाव क्यों होता है ?

समाधान— कारण कि निद्रा बाह्य अर्थके ग्रहणको उत्पन्न करनेवाली शक्तिकी विनाशक है। और बाह्यार्थग्रहणको उत्पन्न करनेवाली यह शक्ति ज्ञान तो हो नहीं सकती, क्योंकि, यह दर्शनात्मक जीव स्वरूप है।

चाक्षुप विज्ञानको उत्पन्न करनेवाला जो स्वसंवेदन है वह चक्षुदर्शन और उसका आवारक कर्म चक्षुदर्शनावरणीय कहलाता है। श्रोत्र, घ्राण, जिह्वा, स्पर्शन और मनके निमित्तसे उत्पन्न होनेवाले ज्ञानके कारणभूत स्वसंवेदनका नाम अचक्षुदर्शन और इसके आवारक कर्मका नाम अचक्षुदर्शनावरणीय है। परमाणुसे लेकर महास्कन्ध पर्यन्त पुद्गल द्रव्यको विषय करनेवाले अवधिज्ञानके कारणभूत स्वसंवेदनका नाम अवधिदर्शन है और इसके आवारक कर्मका नाम अवधिदर्शनावरणीय है। केवलज्ञानकी उत्पत्तिके कारणभूत स्वसंवेदनका नाम केवलदर्शन और

पयलापयला थीणगिद्धी णिद्दा य पयला य चक्खुदंसणावरणीयं अचक्खुदंसणावरणीयं ओहिदंसणावरणीयं केवलदंसणावरणीयं चेदि[1] ॥

जिस्से पयडीए उदएण अइणिब्भरं सोवदि, अण्णेहि उट्ठाविज्जंतो वि ण उट्टइ सा णिद्दाणिद्दा णाम। जिस्से उदएण ट्ठियो णिसण्णो वि सोवदि गहगहियो व सीसं धुणदि वायाहयलया व चदुसु वि दिसासु लोट्टदि सा पयलापयला णाम। जिस्से णिद्दाए उदएण जंतो वि थंभियो व णिच्चलो चिट्ठदि, ट्ठियो वि वइसदि, वइट्ठओ वि णिवज्जदि, णिवण्णओ वि उट्ठाविदो वि ण उट्ठदि, सुत्तओ चेव पंथे वहदि, कसदि लुणदि[2] परिवादिं कुणदि सा थीणगिद्धी णाम। जिस्से पयडीए उदएण अद्धजगंतओ सोवदि, धूलीए भरिया इव लोयणा होंति, गुरुवभारेणोट्ठद्धं व सिरमइभारियं होइ सा णिद्दा णाम। जिस्से पयडीए उदएण अद्धसुत्तस्स सीसं मणा मणा चलदि सा पयला णाम। सगसंवेयणविणासहेदुत्तादो एदाओ[3] पंचविहपयडीओ दंसणावरणीयं। "जं सामण्णं गहणं दंसणं" एदेण सुत्तेण[4] सह विरोहो किण्ण जायदे ? ण, जीवो सामण्णं णाम, तस्स गहणं दंसणं ति सिद्धीदो।

निद्रा, प्रचला, चक्षुदर्शनावरणीय, अचक्षुदर्शनावरणीय, अवधिदर्शनावरणीय और केवलदर्शनावरणीय ॥ ८५ ॥

जिस प्रकृतिके उदयसे अतिनिर्भर होकर सोता है और दूसरोंके द्वारा उठाये जानेपर भी नहीं उठता है वह निद्रानिद्रा प्रकृति है। जिसके उदयसे स्थित व निषण्ण अर्थात् बैठा हुआ भी सो जाता है, भूतसे गृहीत हुएके समान शिर धुनता है, तथा वायुसे आहत लताके समान चारों ही दिशाओंमें लोटता है वह प्रचलाप्रचला प्रकृति है। जिस निद्राके उदयसे जाता हुआ भी स्तम्भित किये गयेके समान निश्चल खड़ा रहता है, खड़ाखड़ा भी बैठ जाता है, बैठकर भी पड़ जाता है, पड़ा हुआ भी उठानेपर भी नहीं उठता है, सोता हुआ ही मार्गमें चलता है, मारता है, काटता है, और बड़बड़ाता है; वह स्त्यानगृद्धि प्रकृति है। जिस प्रकृतिके उदयसे आधा जागता हुआ सोता है, धूलिसे भरे हुएके समान नेत्र हो जाते हैं, और गुरु भारको उठाये हुएके समान शिर अतिभारी हो जाता है वह निद्रा प्रकृति है। जिस प्रकृतिके उदयसे आधे सोते हुएका शिर थोड़ा थोड़ा हिलता रहता है वह प्रचलता प्रकृति है। संवेदनके विनाशमें कारण होनेसे ये पांचों ही प्रकृतियां दर्शनावरणीय हैं।

शंका— 'जं सामण्णं गहणं दसणं–' इस सूत्रके साथ उक्त कथनका विरोध क्यों नहीं होता है ?

समाधान— नहीं, क्योंकि यहां जीव सामान्य रूप है। इसीलिये उसका ग्रहण दर्शन है, यह सिद्ध ही है।

१ षट्खं. जी. चू. १, १५–१६. २ काप्रतौ 'हुणदि' इति पाठः। ३ ताप्रतौ 'हेदुत्तादो। एदाओ' इति पाठः। ४ जं सामण्णग्गहणं दंसणमेयं विसेसियं णाणं। दोण्हं वि णयाण एसो पाडेक्कं अत्थपज्जाओ ॥ सं. सु. २–१.

सत् सुखम्, सदेव सातम्, यथा पंडुरमेव पांडुरं । सातं वेदयतीति[1] सातवेदणीयं, दुक्खपडिकारहेदुदव्वसंपादयं[2] दुक्खुप्पायणकम्मदव्वसत्तिविणासयं च कम्मं सादावेदाणीयं णाम । जीवस्स सुहसहावस्स दुक्खुप्पाययं दुक्खपसमणहेदुदव्वाणमवसारयं[3] च कम्ममसादा-वेदणीयं णाम । एवं दो चेव पयडीओ । अण्णाणं पि दुक्खुप्पाययं दिस्सदि त्ति तस्स वि असादावेदणीयत्तं किण्ण पसज्जदे ? ण, अणियमेण दुक्खुप्पाययस्स असादत्ते संते खग्ग-मोग्गरादीणं पि असादावेदणीयत्तप्पसंगादो ।

मोहणीयस्स कम्मस्स केवडियाओ पयडीओ ? ॥ ८९ ॥

सुगमं ।

मोहणीयस्स कम्मस्स अट्ठावीस पयडीओ[4] ॥ ९० ॥

एदं संगहणयविसयसुत्तं सुगमं । संपहि पज्जवट्ठियणयाणुग्गहट्ठमुत्तरसुत्तं भणदि—

तं च मोहणीयं दुविहं दंसणमोहणीयं चेव चरित्तमोहणीयं चेव[5] ॥ ९१ ॥

मोहयतीति मोहणीयं कम्मदव्वं । अत्तागम-पयत्थेसु पच्चओ रुई सद्धा पासो च

'सत्' का अर्थ सुख है, इसका ही यहां सात शब्दसे ग्रहण किया गया है; जैसे कि पण्डुरको पाण्डुर शब्दसे भी ग्रहण किया जाता है । सातका जो वेदन कराती है वह सातावेदनीय प्रकृति है । दुःखके प्रतीकार करनेमें कारणभूत सामग्रीका मिलानेवाला और दुःखके उत्पादक कर्मद्रव्यकी शक्तिका विनाश करनेवाला कर्म सातावेदनीय कहलाता है । सुख स्वभाववाले जीवको दुःखका उत्पन्न करनेवाला और दुःखके प्रशमन करनेमें कारणभूत द्रव्योंका अपसारक कर्म असातावेदनीय कहा जाता है । इस प्रकार वेदनीयकी दो ही प्रकृतियां हैं ।

शंका— अज्ञान भी तो दुःखका उत्पादक देखा जाता है, इसलिये उसे भी असाता-वेदनीय क्यों न माना जाय ?

समाधान— नहीं, क्योंकि अनियमसे दुःखके उत्पादकको असातावेदनीय मान लेनेपर तलवार और मुद्गर आदिको भी असातावेदनीय मानना पड़ेगा ।

मोहनीय कर्मकी कितनी प्रकृतियां हैं ? ॥ ८९ ॥

यह सूत्र सुगम है ।

मोहनीय कर्मकी अट्ठाईस प्रकृतियां हैं ॥ ९० ॥

यह संग्रहनयको विषय करनेवाला सूत्र सुगम है ।

अब पर्यायार्थिक नयवाले जीवोंका अनुग्रह करनेके लिए आगेका सूत्र कहते हैं—

वह मोहनीय कर्म दो प्रकारका है—दर्शनमोहनीय और चारित्रमोहनीय ॥ ९१ ॥

जो मोहित करता है वह मोहनीय नामक कर्मद्रव्य है । आप्त, आगम और पदार्थोंमें जो

१ अ-आप्रत्योः 'वेदनायतीति', काप्रतौ 'वेदणायतीति', ताप्रतौ 'वेदणीयतीति' पाठः । २ का-ताप्रत्योः 'संपातयं' इति पाठः । ३ ताप्रतौ 'दुक्खुपसमण-' इति पाठः । ४ षट्खं. जी. चू. १, १९. ५ षट्खं. जी. चू. १, २०.

केवलदंसणावरणीयं । किं च– छदुमत्थणाणाणि दंसणपुव्वाणि, केवलणाणं पुण केवल-दंसणसमकालभावी, णिरावरणत्तादो । सुद-मणपज्जवदंसणाणि किण्ण सुत्ते परूविदाणि ? ण, तेसिं मदिणाणपुव्वाणं दंसणपुव्वत्तविरोहादो । विहंगदंसणं किण्ण परूविदं ? ण, तस्स ओहिदंसणे अंतब्भावादो । तथा सिद्धिविनिश्चयेऽप्युक्तम्—"अवधिविभंगयोरवधिदर्शनमेव" इति । चक्खु-अचक्खु-ओहिदंसणाणमेत्थ वियप्पा किण्ण परूविदा ? ण, णाणभेदे अवगदे तक्कारणभेदो अवगदो चेव त्ति तप्परूवणाकरणादो ।

एवडियाओ पयडीओ ॥ ८६ ॥

जेण कारणेण दंसणावरणीयस्स अवराओ पयडीओ ण संभवंति तेण एवडिया [ओ] णव चेव पयडीओ होंति त्ति भणिदं ।

वेयणीयस्स कम्मस्स केवडियाओ पयडीओ ? ॥ ८७ ॥

सुगममेदं ।

वेयणीयस्स कम्मस्स दुवे पयडीओ– सादावेदणीयं चेव असादावेदणीयं चेवं । एवडियाओ पयडीओ ॥ ८८ ॥

उसके आवारक कर्मका नाम केवलदर्शनावरणीय है। इतनी विशेषता है कि छद्मस्थोंके ज्ञान दर्शनपूर्वक होते हैं, परन्तु केवलज्ञान केवलदर्शनके समान कालमें होता है; क्योंकि, ज्ञान और दर्शन ये दोनों निरावरण हैं ।

शंका— सूत्रमें श्रुतदर्शन और मनःपर्ययदर्शन क्यों नहीं कहे गये हैं ?

समाधान— नहीं, क्योंकि वे (श्रुतज्ञान और मनःपर्ययज्ञान) मतिज्ञानपूर्वक होते हैं, इसलिए उनको दर्शनपूर्वक माननेमें विरोध आता है ।

शंका— विभंगदर्शन क्यों नहीं कहा है ?

समाधान— नहीं, क्योंकि उसका अवधिदर्शनमें अन्तर्भाव हो जाता है। ऐसा ही सिद्धिविनिश्चयमें भी कहा गया है—' अवधिज्ञान और विभंगज्ञानके अवधिदर्शन ही होता है ।

शंका— चक्षुदर्शन, अचक्षुदर्शन और अवधिदर्शनके यहां भेद क्यों नहीं कहे ?

समाधान— नहीं, क्योंकि ज्ञानके भेदोंके ज्ञात हो जानेपर उनके कारणोंके भेदोंका ज्ञान हो ही जाता है, इसीलिए उनका कथन नहीं किया है ।

इतनी ही प्रकृतियां होती हैं ॥ ८६ ॥

जिस कारणसे दर्शनावरणीय कर्मकी अन्य प्रकृतियां सम्भव नहीं हैं, इसीलिये ये नौ ही प्रकृतियां होती हैं, ऐसा कहा है ।

वेदनीय कर्मकी कितनी प्रकृतियां होती हैं ? ॥ ८७ ॥

यह सूत्र सुगम है ।

वेदनीय कर्मकी दो प्रकृतियां हैं— सातावेदनीय और असातावेदनीय । इतनी ही प्रकृतियां होती हैं ॥ ८८ ॥

---

१ प्रतिषु 'पुव्वुत्त' इति पाठः । २ षट्खं. जी. चू. १, १७-१८.

सम्मत्तसहचारादो। सम्मत्त-मिच्छत्तभावाणं संजोगसमुब्भूदभावस्स उप्पाययं कम्मं सम्मामिच्छत्तं णाम। कधं दोण्णं विरुद्धाणं भावाणमक्कमेण एयजीवदव्वम्हि वुत्ती? ण, दोण्णं संजोगस्स कधंचि जच्चंतरस्स कम्मट्ठवणस्सेवं (?) वुत्तिविरोहाभावादो। अत्तागम-पयत्थेसु असद्धुप्पाययं[4] कम्मं मिच्छत्तं णाम। एवं दंसणमोहणीयं कम्मं तिविहं होदि।

जं तं चरित्तमोहणीयं कम्मं तं दुविहं कसायवेदणीयं णोकसायवेयणीयं चेव ॥ ९४ ॥

जस्स कम्मस उदएण जीवो कसायं वेदयदि तं कम्मं कसायवेयणीयं णाम। जस्स कम्मस्स उदएण जीवो णोकसायं वेदयदि तं णोकसायवेदणीयं णाम। सुख-दुःख-सस्य-कर्म-क्षेत्रं कृषन्तीति कषायाः। ईषत्कषायाः नोकषायाः। केन नोकषायाणामीषत्वम्? स्थितिबन्धेन अनुभवबन्धेन च। किं च— कषायान्नोकषायाः अल्पाः, क्षपकश्रेण्यां नोकषायोदये विनष्टे सति पश्चात् कषायोदयविनाशात् णोकसायोदयअणुबंधकालं पेक्खिदूण

शंका— इस कर्मकी सम्यक्त्व संज्ञा कैसे है?

समाधान— सम्यक्त्वका सहचारी होनेसे।

सम्यक्त्व और मिथ्यात्व रूप दोनों भावोंके संयोगसे उत्पन्न हुए भावका उत्पादक कर्म सम्यग्मिथ्यात्व कहलाता है।

शंका— सम्यक्त्व और मिथ्यात्व रूप इन दो विरुद्ध भावोंकी एक जीव द्रव्यमें एक साथ वृत्ति कैसे हो सकती है?

समाधान— नहीं, क्योंकि ⋯ (?) के समान उक्त दोनों भावोंके कथंचित् जात्यन्तरभूत संयोगके होनेमें कोई विरोध नहीं है।

आप्त, आगम और पदार्थोंमें अश्रद्धाको उत्पन्न करनेवाला कर्म मिथ्यात्व कहलाता है। इस प्रकार दर्शनमोहनीय कर्म तीन प्रकारका है।

जो चारित्रमोहनीय कर्म है वह दो प्रकारका है— कषायवेदनीय और नोकषायवेदनीय ॥ ९४ ॥

जिस कर्मके उदयसे जीव कषायका वेदन करता है वह कषायवेदनीय कर्म है। जिस कर्मके उदयसे जीव नोकषायका वेदन करता है वह नोकषायवेदनीय कर्म है। सुख और दुःख रूपी धान्यको उत्पन्न करनेवाले कर्मरूपी क्षेत्रको जो कृषते हैं अर्थात् जोतते हैं वे कषाय हैं। ईषत् कषायोंको नोकषाय कहा जाता है।

शंका— नोकषायोंमें अल्परूपता किस कारणसे है?

समाधान— स्थितिबन्ध और अनुभागबन्धकी अपेक्षा उनमें अल्परूपता है। तथा कषायोंसे नोकषाय अल्प हैं, क्योंकि, क्षपकश्रेणिमें नोकषायोंके उदयका अभाव हो जानेपर

१ ताप्रतौ 'समुद्भूद-' इति पाठः। २ अ-आ-काप्रतिषु 'ण' इति नास्ति। ३ काप्रतौ 'कवुरवणस्सेव', ताप्रतौ 'कम्मट्ठवणस्सेव' इति पाठः। ४ अ-आ-काप्रतिषु 'असद्दुप्पाययं' इति पाठः। ५ षट्खं. जी. चू. १, २२.

दंसणं णाम। तस्स मोहयं तत्तो विवरीयभावजणणं दंसणमोहणीयं णाम। रागाभावो चारित्तं, तस्स मोहयं तप्पडिवक्खभावुप्पाययं चारित्तमोहणीयं।

जं तं दंसणमोहणीयं कम्मं तं बंधदो एयविहं[1] ॥ ९२ ॥

तब्बंधकारणस्स बहुत्ताभावादो। कारणभेदेण कज्जभेदो होदि, ण अण्णहा। तदो दंसणमोहणीयं बंधदो एयविहं चेवेत्ति सिद्धं।

तस्स संतकम्मं पुण तिविहं सम्मत्तं मिच्छत्तं सम्मामिच्छत्तं[2] ॥ ९३ ॥

कधं बंधकाले एगविहं मोहणीयं संतावत्थाए तिविहं पडिवज्जदे? ण एस दोसो, एक्कस्सेव[3] कोद्दवस्स दलिज्जमाणस्स एगकाले एगकिरियाविसेसेण तंदुलद्धतंदुल-कोद्दवभावुवलंभादो[4]। होदु तत्थ तधाभावो सकिरियजंतसंबंधेण? ण, एत्थ वि अणियट्टिकरणसहिदजीवसंबंधेण एगविहस्स मोहणीयस्स तधाविहभावाविरोहादो। उप्पण्णस्स सम्मत्तस्स सिढिलं[5]-भावुप्पाययं अथिरत्तकारणं च कम्मं सम्मत्तं णाम। कधमेदस्स कम्मस्स सम्मत्तववएसो?

प्रत्यय, रुचि, श्रद्धा और दर्शन होता है उसका नाम दर्शन है। उसको मोहित करनेवाला अर्थात् उससे विपरीत भावको उत्पन्न करनेवाला कर्म दर्शनमोहनीय कहलाता है। रागका न होना चारित्र है। उसे मोहित करनेवाला अर्थात् उससे विपरीत भावको उत्पन्न करनेवाला कर्म चारित्रमोहनीय कहलाता है।

जो दर्शनमोहनीय कर्म है वह बन्धकी अपेक्षा एक प्रकारका है ॥ ९२ ॥

क्योंकि, उसके बन्धके कारण बहुत नहीं है। कारणके भेदसे ही कार्यमें भेद होता है, अन्यथा नहीं होता। इसलिये दर्शनमोहनीय कर्म बन्धकी अपेक्षा एक प्रकारका ही है, यह सिद्ध है।

किन्तु उसका सत्कर्म तीन प्रकारका है—सम्यक्त्व, मिथ्यात्व और सम्यग्मिथ्यात्व ॥

शंका— जो मोहनीय कर्म बन्धकालमें एक प्रकारका है वह सत्त्व अवस्थामें तीन प्रकारका कैसे हो जाता है?

समाधान— यह कोई दोष नहीं है, क्योंकि दला जानेवाला एक ही प्रकारका कोदों द्रव्य एक कालमें एक क्रियाविशेषके द्वारा चावल, आधे चावल और कोदों, इन तीन अवस्थाओंको प्राप्त होता है। उसी प्रकार प्रकृतमें भी जानना चाहिए।

शंका— वहां क्रियायुक्त जांते (एक प्रकारकी चक्की) के सम्बन्धसे उस प्रकारका परिणमन भले ही हो जावे, किन्तु यहां वैसा नहीं हो सकता?

समाधान— नहीं, क्योंकि यहांपर भी अनिवृत्तिकरण सहित जीवके सम्बन्धसे एक प्रकारके मोहनीयका तीन प्रकार परिणमन होनेमें कोई विरोध नहीं आता।

उत्पन्न हुए सम्यक्त्वमें शिथिलताका उत्पादक और उसकी अस्थिरताका कारणभूत कर्म सम्यक्त्व कहलाता है।

---

१ षट्खं. जी. चू. १, २१. २ षट्खं. जी. चू. १, २१. ३ अप्रतौ 'कम्मस्सेव' इति पाठः। ४ जंतेण कोद्दवं वा पढमुवसमसम्मभावजंतेण। मिच्छं दव्वं तु तिधा असंखगुणहीणदव्वकमा ॥ गो. क. २६. ५ काप्रतौ 'सिढिल', ताप्रतौ 'सिथिल' इति पाठः।

कुतस्तस्य सम्यक्त्वम् ? रत्नत्रयाविरोधात् । कोह-माण-माया-लोहेसु पादेक्कं संजलणणिद्देसो किमट्ठं कदो ? एदेसिं बंधोदया पुध पुध विणट्ठा, पुव्विल्लतियचउक्कस्सेव अक्कमेण ण विणट्ठा त्ति जाणावणट्ठं ।

जं तं णोकसायवेयणीयं कम्मं तं णवविहं– इत्थिवेदं-पुरिसवेद-णउंसयवेद-हस्स-रदि-अरदि-सोग-भय-दुगुंच्छा चेदि[1][2] ॥ ९६ ॥

जस्स कम्मस्स उदएण पुरिसाभिलासो होदि तं कम्मं इत्थिवेदो णाम । जस्स कम्मस्स उदएण मणुस्ससस्स इत्थीसु अहिलासो उप्पज्जदि तं कम्मं पुरिसवेदो णाम । जस्स कम्मस्स उदएण इत्थि-पुरिसेसु अहिलासो उप्पज्जदि तं कम्मं णवुंसयवेदो णाम । जस्स कम्मस्स उदएण अणेयविहो हासो समुप्पज्जदि तं कम्मं हस्सं णाम । जस्स कम्मस्स उदएण दव्व-खेत्त-काल-भावेसु जीवाणं रई समुप्पज्जदि तं कम्मं रई णाम । जस्स कम्मस्स उदएण दव्व-खेत्त-काल-भावेसु अरई समुप्पज्जदि तं कम्ममरई णाम । जस्स कम्मस्स उदएण जीवाणं सोगो समुप्पज्जदि तं कम्मं सोगो णाम । जस्स कम्मस्स उदएण जीवस्स सत्त भयाणि समुप्पज्जंति तं कम्मं भयं णाम । जस्स कम्मस्स उदएण दव्व-खेत्त-काल-भावेसु चिलिसा समुप्पज्जदि तं कम्मं दुगुंछा णाम । करुणाए कारणं कम्मं करुणे त्ति किं ण वुत्तं ? ण,

---

शंका— इसे सम्यक्पना कैसे है ?

समाधान— रत्नत्रयका विरोधी न होनेसे ।

शंका— क्रोध, मान, माया और लोभमेंसे प्रत्येक पदके साथ संज्वलन शब्दका निर्देश किसलिये किया गया है ?

समाधान— इनके बन्ध और उदयका विनाश पृथक् पृथक् होता है, पहिली तीन कषायोंके चतुष्कके समान इनका युगपत् विनाश नहीं होता; इस बातका ज्ञान करानेके लिए क्रोधादि प्रत्येक पदके साथ संज्वलन पदका निर्देश किया गया है ।

जो नोकषायवेदनीय कर्म है वह नौ प्रकारका है— स्त्रीवेद, पुरुषवेद, नपुंसकवेद, हास्य, रति, अरति, शोक, भय और जुगुप्सा ॥ ९६ ॥

जिस कर्मके उदयसे पुरुषविषयक अभिलाषा होती है वह स्त्रीवेद कर्म है । जिस कर्मके उदयसे मनुष्यकी स्त्रियोंमें अभिलाषा उत्पन्न होती है वह पुरुषवेद कर्म है । जिस कर्मके उदयसे स्त्री और पुरुष उभयविषयक अभिलाषा उत्पन्न होती है वह नपुंसकवेद कर्म है । जिस कर्मके उदयसे अनेक प्रकारका परिहास उत्पन्न होता है वह हास्य कर्म है । जिस कर्मके उदयसे जीवोंकी द्रव्य, क्षेत्र, काल और भावमें रति उत्पन्न होती है वह रति कर्म है । जिस कर्मके उदयसे द्रव्य, क्षेत्र, काल और भावमें अरति उत्पन्न होती है वह अरति कर्म है । जिस कर्मके उदयसे जीवोंके शोक उत्पन्न होता है वह शोक कर्म है । जिस कर्मके उदयसे जीवके सात प्रकारका भय उत्पन्न होता है वह भय कर्म है । जिस कर्मके उदयसे द्रव्य, क्षेत्र, काल और भावमें विचिकित्सा उत्पन्न होती है वह जुगुप्सा कर्म है ।

शंका— करुणाका कारणभूत कर्म करुणा कर्म है, यह क्यों नहीं कहा ?

---

१ ताप्रतौ 'णवविहं— तं इत्थिवेद-' इति पाठः । २ षट्खं. चू. १, २४. मूला. १२, १९२.

कसायोदयअणुबंधकालस्स अणंतगुणत्तुवलंभादो वा । कसायाणमुदयकालो अंतोमुहुत्तं, णोकसायस्स उदयकालो अणंतो, तेण णोकसाएहिंतो कसायाणं थोवत्तमत्थि त्ति सण्णाविवज्जासो किण्ण इच्छिदो ? ण, एवंविहविवक्खाभावादो ।

जं तं कसायवेयणीयं कम्मं तं सोलसविहं— अणंताणुबंधिकोह- माण- माया- लोहं अपच्चक्खाणावरणीयकोह- माण-माया- लोहं पच्चक्खाणावरणीयकोह-माण-माया-लोहं कोहसंजलणं माणसंजलणं मायासंजलणं लोभसंजलणं चेदि[1] ॥ ९५ ॥

सम्मद्दंसण-चारित्ताणं विणासया कोह-माण-माया-लोहा अणंतभवाणुबंधणसहावा अणंताणुबंधिणो णाम । अणंतेसु भवेसु अणुबंधो जेसिं ते वा अणंताणुबंधिणो भण्णंति[2] । ईषत्प्रत्याख्यानमप्रत्याख्यानमिति व्युत्पत्तेः अणुव्रतानामप्रत्याख्यानसंज्ञा । अपच्चक्खाणस्स आवारयं कम्मं अपच्चक्खाणावरणीयं । पच्चक्खाणं महव्वयाणि, तेसिमावारयं कम्मं पच्चक्खाणावरणीयं । तं चउव्विहं कोह-माण-माया-लोहभेएण । सम्यक् शोभनं ज्वलतीति संज्वलनः ।

तत्पश्चात् कषायोंके उदयका विनाश होता है । अथवा नोकषायोंके उदयके अनुबन्धकालको देखते हुए कषायोंके उदयका अनुबन्धकाल अनन्तगुणा उपलब्ध होता है, इस कारण भी नोकषायोंकी अल्पता जानी जाती है ।

शंका— कषायोंका उदयकाल अन्तर्मुहूर्त है, परन्तु नोकषायोंका उदयकाल अनन्त है; इस कारण नोकषायोंकी अपेक्षा कषायोंमें ही स्तोकपना है । इसीलिए इनकी उससे विपरीत संज्ञा क्यों नहीं स्वीकार की गई है ?

समाधान— नहीं, क्योंकि इस प्रकारकी यहां विवक्षा नहीं है ।

जो कषायवेदनीय कर्म है वह सोलह प्रकारका है—अनन्तानुबन्धी क्रोध, मान, माया, लोभ; अप्रत्याख्यानावरणीय क्रोध, मान, माया, लोभ, प्रत्याख्यानावरणीय क्रोध, मान, माया, लोभ; क्रोधसंज्वलन, मानसंज्वलन, मायासंज्वलन और लोभसंज्वलन ॥ ९५ ॥

जो क्रोध, मान, माया और लोभ सम्यग्दर्शन व सम्यक्चारित्रका विनाश करते हैं तथा जो अनन्त भवके अनुबन्धन स्वभाववाले होते हैं वे अनन्तानुबन्धी कहलाते हैं । अथवा, अनन्त भवोंमें जिनका अनुबन्ध चला जाता है वे अनन्तानुबन्धी कहलाते हैं । 'ईषत् प्रत्याख्यानं अप्रत्याख्यानम्' इस व्युत्पत्तिके अनुसार अणुव्रतोंकी अप्रत्याख्यान संज्ञा है । अप्रत्याख्यानका आवरण करनेवाला कर्म अप्रत्याख्यानावरणीय कर्म है । प्रत्याख्यानका अर्थ महाव्रत है । उनका आवरण करनेवाला कर्म प्रत्याख्यानावरणीय है । वह क्रोध, मान, माया और लोभके भेदसे चार प्रकारका है । जो 'सम्यक्' अर्थात् शोभन रूपसे 'ज्वलति' अर्थात् प्रकाशित होता है वह संज्वलनकषाय है ।

१ षट्खं. जी. चू. १, २३. २ अप्रतौ 'बंधिणो णाम भणंति' इति पाठः ।

णामस्स कम्मस्स बादालीसं पिंडपयडिणामाणि— गदिणामं जादिणामं[1] सरीरणामं सरीरबंधणणामं सरीरसंघादणामं[2] सरीर-संठाणणामं सरीरअंगोवंगणामं सरीरसंघडणणामं वण्णणामं गंधणामं रसणामं फासणामं आणुवुव्विणामं अगुरुगलहुअणामं उवघादणामं परघादणामं उस्सासणामं आदावणामं उज्जोवणामं विहायगदि-तस-थावर-बादर-सुहुम-पज्जत्त- अपज्जत्त- पत्तेय-साहारणसरीर- थिराथिर-सुहासुह-सुभग-दूभग-सुस्सर-दुस्सर- आदेज्ज- अणादेज्ज- जसकित्ति-अजसकित्ति-णिमिण-तित्थयरणामं चेदि[3] ॥ १०१ ॥

जं णिरय-तिरिक्ख-मणुस्स-देवाणं णिव्वत्तयं कम्मं तं गदिणामं । एइंदिय-बेइंदिय-तेइंदिय-चउरिंदिय-पंचिंदियभावणिव्वत्तयं जं कम्मं तं जादिणामं । जादी णाम सरिसप्पच्चयं-गेज्झा । ण च तण-तरुवरेसु सरिसत्तमत्थि, दोवंचिलियासु (?) सरिसभावाणुवलंभादो ? ण, जलाहारग्गहणेण दोण्णं पि समाणत्तदंसणादो । जस्स कम्मस्स उदएण ओरालिय-वेउव्विय-आहार-तेजा-कम्मइयसरीरपरमाणू जीवेण सह बंधमागच्छंति तं कम्मं सरीरणामं ।

नामकर्मकी ब्यालीस पिण्डप्रकृतियां हैं— गतिनाम, जातिनाम, शरीरनाम, शरीर-बन्धननाम, शरीरसंघातनाम, शरीरसंस्थाननाम, शरीरांगोपांगनाम, शरीरसंहनननाम, वर्णनाम, गंधनाम, रसनाम, स्पर्शनाम, आनुपूर्वीनाम, अगुरुलघुनाम, उपघातनाम, परघात-नाम, उच्छ्वासनाम, आतापनाम, उद्योतनाम, विहायोगतिनाम, त्रसनाम, स्थावरनाम, बादरनाम, सूक्ष्मनाम, पर्याप्तनाम, अपर्याप्तनाम, प्रत्येकशरीरनाम, साधारणशरीरनाम, स्थिरनाम, अस्थिरनाम, शुभनाम, अशुभनाम, सुभगनाम, दुर्भगनाम, सुस्वरनाम, दुस्वरनाम, आदेयनाम, अनादेयनाम, यशःकीर्तिनाम, अयशःकीर्तिनाम, निर्माणनाम और तीर्थंकरनाम ॥ १०१ ॥

जो नरक, तिर्यंच, मनुष्य और देव पर्यायका बनानेवाला कर्म है वह गतिनामकर्म है । जो कर्म एकेन्द्रिय, द्वीन्द्रिय, त्रीन्द्रिय, चतुरिन्द्रिय और पञ्चेन्द्रिय भावका बनानेवाला है वह जाति नामकर्म है ।

शंका— जाति तो सदृशप्रत्ययसे ग्राह्य है, परन्तु तृण और वृक्षोंमें समानता है नहीं; क्योंकि, दो वृक्षोंमें सदृशभाव उपलब्ध नहीं होता ?

समाधान— नहीं, क्योंकि जल व आहार ग्रहण करनेकी अपेक्षा दोनोंमें ही समानता देखी जाती है ।

जिस कर्मके उदयसे औदारिक, वैक्रियिक, आहारक, तैजस और कार्मण शरीरके परमाणु जीवके साथ बन्धको प्राप्त होते हैं वह शरीर नामकर्म है । जिस कर्मके उदयसे जीवके साथ

१ अ-आ-काप्रतिषु 'णाम' इति पाठः (अग्रेऽप्ययमेवास्ति पाठस्तत्र)। २ अ-आ-ताप्रतिषु '-सरीरसंघादणणामं', काप्रतौ 'सरीरसंघादणाम' इति पाठः । ३ षट्खं. जी. चू. १, २७-२८. ४ ताप्रतौ 'सरीरपच्चय-' इति पाठः ।

करुणाए जीवसहावस्स कम्मजणिदत्तविरोहादो। अकरुणाए कारणं कम्मं वत्तव्वं ? ण एस दोसो, संजमघादिकम्माणं फलभावेण तिस्से अब्भुवगमादो।

एवडियाओ पयडीओ ॥ ९७ ॥

णव चेव णोकसायपयडीओ, दसादीणमसंभवादो।

आउअस्स कम्मस्स केवडियाओ पयडीओ ? ॥ ९८ ॥

एति भवधारणं[1] प्रतीति आयुः[2]। सेसं सुगमं।

आउअस्स कम्मस्स चत्तारि पयडीओ— णिरयाउअं तिरिक्खाउअं मणुस्साउअं देवाउअं चेदि[3]। एवडियाओ पयडीओ ॥ ९९ ॥

जं कम्मं णिरयभवं धारेदि तं णिरयाउअं णाम। जं कम्मं तिरिक्खभवं धारेदि तं तिरिक्खाउअं णाम। जं कम्मं मणुसभवं धारेदि तं मणुसाउअं णाम। जं कम्मं देवभवं धारेदि तं देवाउअं णाम। एवं चत्तारि चेव आउपयडीओ होंति, पंचमादिभवाणमभावादो।

णामस्स कम्मस्स[4] केवडियाओ पयडीओ ? ॥ १०० ॥

नाना मिनोतीति नाम। सेसं सुगमं।

समाधान— नहीं, क्योंकि करुणा जीवका स्वभाव है, अत एव उसे कर्मजनित माननेमें विरोध आता है।

शंका— तो फिर अकरुणाका कारण कर्म कहना चाहिए ?

समाधान— यह कोई दोष नहीं है, क्योंकि उसे संयमघाती कर्मोंके फलरूपसे स्वीकार किया गया है।

नोकषायवेदनीयकी इतनी प्रकृतियां होती हैं ॥ ९७ ॥

नौ ही नोकषायप्रकृतियां होती हैं, क्योंकि, दस आदि प्रकृतियां सम्भव नहीं हैं।

आयु कर्मकी कितनी प्रकृतियां होती हैं ? ॥ ९८ ॥

जो भवधारणके प्रति जाता है वह आयु है। शेष सुगम है।

आयु कर्मकी चार प्रकृतियां हैं— नारकायु, तिर्यंचायु, मनुष्यायु और देवायु। उसकी इतनी प्रकृतियां होती हैं ॥ ९९ ॥

जो कर्म नरक भवको धारण कराता है वह नारकायु कर्म है। जो कर्म तिर्यंच भवको धारण कराता है वह तिर्यंचायु कर्म है। जो कर्म मनुष्य भवको धारण कराता है वह मनुष्यायु कर्म है। जो कर्म देव भवको धारण कराता है वह देवायु कर्म है। इस प्रकार आयु कर्मकी चार ही प्रकृतियां हैं, क्योंकि, पांचवें आदि भव नहीं पाये जाते।

नामकर्मकी कितनी प्रकृतियां हैं ? ॥ १०० ॥

जो नाना प्रकारसे बनाता है वह नामकर्म है। शेष कथन सुगम है।

---

१ का-ताप्रत्योः 'भवणधारणं' इति पाठः। २ एत्यनेन नारकादिभवमित्यायुः। स. सि. ८, ४. ३ षट्खं. जी. चू. १, २५–२६. ४ अ-आ-काप्रतिषु 'णामकम्मस्स' इति पाठः।

सरीरे आदाओ होदि तं आदावणामं । सोष्णप्रभा आतापः । जस्स कम्मस्सुदएण उज्जोओ होदि तं कम्ममुज्जोवं णामं । जस्स कम्मस्सुदएण भूमिमोट्टहिय अणोट्टहिय वा जीवाणमागासे गमणं होदि तं विहायगदिणामं । जस्स कम्मस्सुदएण जीवाणं सचरणासंचरणभावो होदि तं कम्मं तसणामं । जस्स कम्मस्सुदएण जीवाणं थावरत्तं होदि तं कम्मं थावरं णामं । आउ-तेउ-वाउकाइयाणं संचरणोवलंभादो ण तसत्तमत्थि, तेसिं गमणपरिणामस्स पारिणामियत्तादो । जस्स कम्मस्सुदएण जीवा बादरा होंति तं बादरणामं । जस्स कम्मस्सुदएण जीवा सुहुमे-इंदिया होंति तं सुहुमणामं । जस्स कम्मस्सुदएण जीवा पज्जत्ता होंति तं कम्मं पज्जत्तं णामं । जस्स कम्मस्सुदएण जीवा अपज्जत्ता होंति तं कम्ममपज्जत्तं णाम । जस्स कम्मस्सुदएण एक्कसरीरे एक्को चेव जीवो जीवदि तं कम्मं पत्तेयसरीरणामं । जस्स कम्मस्सुदएण एगसरीरा होदूण अणंता जीवा अच्छंति तं कम्मं साहारणसरीरं । जस्स कम्मस्सुदएण रसादीणं सग-सरूवेण केत्तियं पि कालमवट्ठाणं होदि तं थिरणामं । जस्स कम्मस्सुदएण रसादीणमुव-रिमधादुसरूवेण परिणामो होदि तमथिरणामं[१] । जस्स कम्मस्सुदएण चक्कवट्टि-बलदेव-वासुदेव-त्तादिरिद्धीणं सूचया संखंकुसारविंदादओ अंग-पच्चंगेसु उप्पज्जंति तं सुहणामं । जस्स कम्म-स्सुदएण असुहलक्खणाणि उप्पज्जंति तमसुहणामं । जस्स कम्मस्सुदएण जीवस्स सोहग्गं

कर्मके उदयसे शरीरमें आताप होता है वह आताप नामकर्म है । उष्णता सहित प्रभाका नाम आताप है । जिस कर्मके उदयसे शरीरमें उद्योत होता है वह उद्योत नामकर्म है । जिस कर्मके उदयसे भूमिका आश्रय लेकर या विना उसका आश्रय लिए भी जीवोंका आकाशमें गमन होता है वह विहायोगति नामकर्म है । जिस कर्मके उदयसे जीवोंके गमनागमन भाव होता है वह त्रस नामकर्म है । जिस कर्मके उदयसे जीवोंके स्थावरपना होता है वह स्थावर नामकर्म है ।

जल, अग्नि और वायुकायिक जीवोंमें जो संचरण देखा जाता है उससे उन्हें त्रस नहीं समझ लेना चाहिये; क्योंकि, उनका वह गमन रूप परिणाम पारिणामिक होता है । जिस कर्मके उदयसे जीव बादर होते हैं वह बादर नामकर्म है । जिस कर्मके उदयसे जीव सूक्ष्म एकेन्द्रिय होते हैं वह सूक्ष्म नामकर्म है । जिस कर्मके उदयसे जीव पर्याप्त होते हैं वह पर्याप्त नामकर्म है । जिस कर्मके उदयसे जीव अपर्याप्त होते हैं वह अपर्याप्त नामकर्म है । जिस कर्मके उदयसे एक शरीरमें एक ही जीव जीवित रहता है वह प्रत्येकशरीर नामकर्म है । जिस कर्मके उदयसे एक ही शरीरवाले होकर अनन्त जीव रहते हैं वह साधारणशरीर नामकर्म है । जिस कर्मके उदयसे रसादिक धातुओंका अपने रूपसे कितने ही काल तक अवस्थान होता है वह स्थिर नामकर्म है । जिस कर्मके उदयसे रसादिकोंका आगेकी धातुओं स्वरूपसे परिणमन होता है वह अस्थिर नामकर्म है । जिस कर्मके उदयसे चक्रवर्तित्व, बलदेवत्व और वासुदेवत्व आदि ऋद्धियोंके सूचक शंख, अंकुश और कमल आदि चिह्न अंग-प्रत्यंगोंमें उत्पन्न होते हैं वह शुभ नामकर्म है । जिस कर्मके उदयसे अशुभ लक्षण उत्पन्न होते हैं वह अशुभ नामकर्म है । जिस कर्मके उदयसे जीवके सौभाग्य होता है वह

१ अ-आ-ताप्रतिषु '-मुवरिमा' इति पाठः (काप्रतौ तु वाक्यमेवेदं नोपलभ्यते) । २ षट्खं. पु. ६, पृ. ६२.

जस्स कम्मस्स उदएण जीवेण संबद्धाणं वग्गणाणं अण्णोण्णं संबंधो होदि तं कम्मं सरीरबंधणणामं[1]। जस्स कम्मस्स उदएण अण्णोण्णसंबद्धाणं वग्गणाणं मट्ठत्तं तं सरीरसंघाद-णामं[2], अण्णहा तिलमोअओ व्व विसंठुलं[3] सरीरं होज्ज। जस्स कम्मस्स उदएण समचउरस-सादिय-खुज्ज[4]-वामण-हुंड-णग्गोहपरिमंडलसंठाणं सरीरं होज्ज तं सरीरसंठाणणामं[5]। जस्स कम्मस्सुदएण अट्ठण्णमंगाणमुवंगाणं च णिप्पत्ती होदि तं अंगोवंगं णामं। जस्स कम्मस्स उदएण सरीरे हड्डणिप्पत्ती होदि तं सरीरसंघडणं णामं[6]। जस्स कम्मस्स उदएण सरीरे वण्णणिप्पत्ती होदि तं वण्णणामं। जस्स कम्मस्सुदएण दुविहगंधणिप्फत्ती होदि तं गंधणामं। जस्स कम्मस्सुदएण सरीरे रसं[7]णिप्फत्ती होदि तं रसणामं। जस्स कम्मस्सुदएण सरीरे फास[8]णिप्फत्ती होदि तं फासणामं। जस्स कम्मस्सुदएण परिचत्तपुव्वसरीरस्स अ [ग-] हिदुत्तरसरीरस्स जीवपदेसाणं रचणापरिवाडी होदि तं कम्ममाणुपुव्वीणामं। जस्स कम्मस्सु-दएण जीवस्स सगसरीरं गुरु-लहुगभावविवज्जियं होदि तं कम्ममगुरुअलहुगं णाम। जस्स कम्मस्सुदएण सरीरमप्पणो चेव पीडं करेदि तं कम्ममुवघादं णामं, तस्स उदाहरणं दीह-सिंग-तुंडोदरादओ। जस्स कम्मस्सुदएण सरीरं परपीडायरं होदि तं परघादं णामं। जस्स कम्मस्स उदएण उस्सास-णिस्सासाणं णिप्फत्ती होदि तमुस्सासणामं। जस्स कम्मस्सुदएण

सम्बन्धको प्राप्त हुई वर्गणाओंका परस्पर सम्बन्ध होता है वह शरीरबन्धन नामकर्म है। जिस कर्मके उदयसे परस्पर सम्बन्धको प्राप्त हुई वर्गणाओंमें मसृणता आती है वह शरीरसंघात नाम-कर्म है, इसके बिना शरीर तिलके मोदकके समान विसंस्थुल (अव्यवस्थित) हो जायगा। जिस कर्मके उदयसे समचतुरस्र, स्वाति, कुब्जक, वामन, हुंड और न्यग्रोधपरिमण्डल संस्थानवाला शरीर होता है वह शरीरसंस्थान नामकर्म है। जिस कर्मके उदयसे आठ अंगों और उपांगोंकी उत्पत्ति होती है वह आंगोपांग नामकर्म है। जिस कर्मके उदयसे शरीरमें हड्डियोंकी निष्पत्ति होती है वह शरीरसंहनन नामकर्म है। जिस कर्मके उदयसे शरीरमें वर्णकी उत्पत्ति होती है वह वर्ण नामकर्म है। जिस कर्मके उदयसे शरीरमें दो प्रकारके गन्धकी उत्पत्ति होती है वह गन्ध नामकर्म है। जिस कर्मके उदयसे शरीरमें रसकी निष्पत्ति होती है वह रस नामकर्म है। जिस कर्मके उदयसे शरीरमें स्पर्शकी उत्पत्ति होती है वह स्पर्श नामकर्म है। जिस जीवने पूर्व शरीरको तो छोड़ दिया है, किन्तु उत्तर शरीरको अभी ग्रहण नहीं किया है उसके आत्मप्रदेशोंकी रचनापरिपाटी जिस कर्मके उदयसे होती है वह आनुपूर्वी नाम-कर्म है। जिस कर्मके उदयसे जीवका अपना शरीर गुरु और लघु भावसे रहित होता है वह अगुरुलघु नामकर्म है। जिस कर्मके उदयसे शरीर अपनेको ही पीड़ाकारी होता है वह उपघात नामकर्म है। इसका उदाहरण— जैसे दीर्घ सींग, मुख और पेट आदिका होना। जिस कर्मके उदयसे शरीर दूसरोंको पीड़ा करनेवाला होता है वह परघात नामकर्म है। जिस कर्मके उदयसे उच्छ्वास और निश्वासकी उत्पत्ति होती है वह उच्छ्वास नामकर्म है। जिस

१ अ-आ-काप्रतिपु 'सरीरबंधणं णाम' इति पाठः। २ अ-आ-काप्रतिपु 'सरीरसंघादं णाम' इति पाठः। ३ आप्रतौ 'विसरुलं', काप्रतौ 'विसरलं', ताप्रतौ 'विसंरुलं' इति पाठः। ४ काप्रतौ 'समचउ-रस्सादिखुज्ज-' इति पाठः। ५ अ-आ-काप्रतिपु '-संठाणं णाम' इति पाठः। ६ काप्रतौ '-संघडणं णाम' इति पाठः। ७ का-ताप्रत्योः '-स्सुदएण रस-' इति पाठः। ८ का-ताप्रत्योः 'स्सुदएण फास-' इति पाठः।

मायंग-तुरंगादीणं बहुत्ताणुववत्तीदो[1] । संपहि उत्तरुत्तरपयडिपमाणपरूवणट्ठमुत्तरसुत्तं भणदि—

जं तं गदिणामकम्मं तं चउव्विहं— णिरयगइणामं तिरिक्खगइणामं मणुस्सगदिणामं देवगदिणामं[2] ॥ १०२ ॥

जं तं जादिणामं तं पंचविहं— एइंदियजादिणामं बेइंदियजादिणामं तेइंदियजादिणामं चउरिंदियजादिणामं पंचिंदियजादिणामं चेदि[3] ॥ १०३ ॥

जं तं सरीरणामं तं पंचविहं— ओरालियसरीरणामं वेउव्वियसरीरणामं आहारसरीरणामं तेजइयसरीरणामं कम्मइयसरीरणामं चेदि[4] ॥ १०४ ॥

जं तं सरीरबंधणणामं तं पंचविहं— ओरालियसरीरबंधणणामं वेउव्वियसरीरबंधणणामं आहारसरीरबंधणणामं तेजइयसरीरबंधणणामं कम्मइयसरीरबंधणणामं चेदि[5] ॥ १०५ ॥

जं तं सरीरसंघादणणामं तं पंचविहं— ओरालियसरीरसंघादणणामं वेउव्वियसरीरसंघादणणामं आहारसरीरसंघादणणामं तेजइयसरीरसंघादणणामं कम्मइयसरीरसंघादणणामं चेदि[6] ॥ १०६ ॥

आदिक नाना भेद नहीं बन सकते हैं। इससे जाना जाता है कि त्रसादि प्रकृतियां बहुत हैं।

अब उत्तरोत्तर प्रकृतियोंके प्रमाणका कथन करनेके लिए आगेका सूत्र कहते हैं—

जो गति नामकर्म है वह चार प्रकारका है— नरकगति नामकर्म, तिर्यग्गति नामकर्म, देवगति नामकर्म और मनुष्यगति नामकर्म ॥ १०२ ॥

जो जाति नामकर्म है वह पांच प्रकारका है— एकेन्द्रियजाति, द्वीन्द्रियजाति, त्रीन्द्रियजाति, चतुरिन्द्रियजाति और पंचेन्द्रियजाति नामकर्म ॥ १०३ ॥

जो शरीर नामकर्म है वह पांच प्रकारका है— औदारिकशरीर, वैक्रियिकशरीर, आहारकशरीर, तैजसशरीर, और कार्मणशरीर नामकर्म ॥ १०४ ॥

जो शरीरबन्धन नामकर्म है वह पांच प्रकारका है— औदारिकशरीरबन्धन, वैक्रियिकशरीरबन्धन, आहारकशरीरबन्धन, तैजसशरीरबन्धन और कार्मणशरीरबन्धन नामकर्म ॥ १०५ ॥

जो शरीरसंघात नामकर्म है वह पांच प्रकारका है— औदारिकशरीरसंघात, वैक्रियिकशरीरसंघात, आहारकशरीरसंघात, तैजसशरीरसंघात और कार्मणशरीरसंघात नामकर्म ॥ १०६ ॥

१ ताप्रतौ 'बहुत्ताणुववत्ती' इति पाठः। २ षट्खं. जी. चू. १, २९. ३ षट्खं. जी. चू. १, ३०. ४ षट्खं. जी. चू. १, ३१. ५ षट्खं. जी. चू. १, ३२. ६ षट्खं. जी. चू. १, ३३.

होदि तं सुहगणामं। जस्स कम्मस्सुदएण जीवो दूहवो होदि तं दूभगं णामं। जस्स कम्मस्सुदएण कण्णसुहो सरो होदि तं सुस्सरणामं। जस्स कम्मस्सुदएण खरोट्टाणं व कण्णसुहो सरो ण होदि[1] तं दुस्सरणामं। जस्स कम्मस्सुदएण जीवो आदेज्जो होदि तमादेज्जणामं। जस्स कम्मस्सुदएण सोभणाणुट्टाणो वि जीवो ण गउरविज्जदि तमणादेज्जं णाम। जस्स कम्मस्सुदएण जसो कित्तिज्जइ कहिज्जइ जणवयेण तं जसगित्तिणामं। जस्स कम्मस्सुदएण अजसो कित्तिज्जइ[2] लोएण तमजसगित्तिणामं। जस्स कम्मस्सुदएण अंग-पच्चंगाणं ठाणं पमाणं च जादिवसेण णियमिज्जदि तं णिमिणणामं। जस्स कम्मसुदएण जीवो पंचमहाकल्लाणाणि पाविदूण तित्थं दुवालसंगं कुणदि तं तित्थयरणामं। एवमेदाओ बादालीसं पिंडपयडीयो। को पिंडो णाम? बहूणं पयडीणं संदोहो पिंडो। तसादिपयडीणं बहुत्तं णत्थि त्ति ताओ अपिंडपयडीओ त्ति ण घेत्तव्वं, तत्थ वि बहूणं पयडीणमुवलंभादो। कुदो तदुवलद्धी? जुत्तीदो। का जुत्ती? कारणबहुत्तेण विणा भमर-पयंग-

सुभग नामकर्म है। जिस कर्मके उदयसे जीवके दौर्भाग्य होता है वह दुर्भग नामकर्म है। जिस कर्मके उदयसे कानोंको प्यारा लगनेवाला स्वर होता है वह सुस्वर नामकर्म है। जिस कर्मके उदयसे गधा एवं ऊंटके समान कर्णोंको प्रिय लगनेवाला स्वर नहीं होता है वह दुःस्वर नामकर्म है। जिस कर्मके उदयसे जीव आदेय होता है वह आदेय नामकर्म है। जिस कर्मके उदयसे अच्छा कार्य करनेपर भी जीव गौरवको प्राप्त नहीं होता है वह अनादेय नामकर्म है। जिस कर्मके उदयसे जनसमूहके द्वारा यश गाया जाता है अर्थात् कहा जाता है वह यशःकीर्ति नामकर्म है। जिस कर्मके उदयसे लोग अपयश कहते हैं वह अयशःकीर्ति नामकर्म है। जिस कर्मके उदयसे अंग-प्रत्यंगका स्थान और प्रमाण अपनी अपनी जातिके अनुसार नियमित किया जाता है वह निर्माण नामकर्म है। जिस कर्मके उदयसे जीव पांच महाकल्याणकोंको प्राप्त करके तीर्थ अर्थात् बारह अंगोंकी रचना करता है वह तीर्थंकर नामकर्म है। इस प्रकार ये व्यालीस पिण्ड-प्रकृतियां हैं।

शंका— पिण्डका अर्थ क्या है।

समाधान— बहुत प्रकृतियोंका समुदाय पिण्ड कहा जाता है।

शंका— त्रस आदि प्रकृतियां तो बहुत नहीं हैं, इसलिए क्या वे अपिण्डप्रकृतियां हैं?

समाधान— ऐसा ग्रहण नहीं करना चाहिए, क्योंकि वहां भी बहुत प्रकृतियोंकी उपलब्धि होती है।

शंका— वहां बहुत प्रकृतियोंकी उपलब्धि कैसे होती है?

समाधान— युक्तिसे।

शंका— वह युक्ति कौनसी है?

समाधान— क्योंकि, कारणके बहुत हुए विना भ्रमर, पतङ्ग, हाथी और घोड़ा

१ अ-आ-काप्रतिषु 'सरो होदि' इति पाठः। २ प्रतिषु 'गित्तिज्जइ' इति पाठः।

शरीरसंस्थानम् । ह्रस्वशाखं[1] वामनशरीरम् । तस्य कारणकर्मणोऽप्येषैव संज्ञा । विषमपाषाण-भृतदृतिवत्[2] समन्ततो विषमं हुण्डम्, हुंडं च तत् शरीरसंस्थानं हुंडसरीरसंस्थानम् । एतस्य कारणकर्मणोऽप्येषैव संज्ञा ।

जं तं सरीरअंगोवंगणामं तं तिविहं— ओरालियसरीरअंगोवंगणामं वेउव्वियसरीरअंगोवंगणामं आहारसरीरअंगोवंगणामं चेदि[3] ॥

सुगममेदं ।

जं तं सरीरसंघडणणामं तं छव्विहं— वज्जरिसहवइरणारायण-सरीरसंघडणणामं वज्जणारायणसरीरसंघडणणामं णारायणसरीर[4]-संघडणणामं अद्धणारायणसरीरसंघडणणामं खीलियसरीरसंघडणणामं असंपत्तसेवट्टसरीरसंघडणणामं चेदि[5] ॥ १०९ ॥

वज्रमिव वज्रम्, वज्रऋषभः[6] वज्रनाराचश्च वज्रर्षभवज्रनाराचौ, तौ एवं[7] शरीरसंहननं वज्रऋषभवज्रनाराचशरीरसंहननम् । वज्राकारेण स्थितास्थः वेष्टकः ऋषभः तौ[8] भित्वा स्थित वज्रकीलक वज्रनाराच (?) । ऋषभरहितं[9] वज्रनाराचशरीरसंहननम् । ताभ्यां विना नाराच-

हों वह वामनशरीर है । उसका कारण जो कर्म है उसकी भी यही संज्ञा है । विषम पाषाणोंसे भरी हुई मशकके समान जो सब ओरसे विषम होता है वह हुण्ड कहलाता है, हुण्ड ऐसा जो शरीरसंस्थान वह हुण्डशरीरसंस्थान है । इसके कारणभूत कर्मकी भी यही संज्ञा है ।

जो शरीरआंगोपांग नामकर्म है वह तीन प्रकारका है— औदारिकशरीरआंगोपांग, वैक्रियिकशरीरआंगोपांग और आहारकशरीरआंगोपांग नामकर्म ॥ १०८ ॥

यह सूत्र सुगम है ।

जो शरीरसंहनन नामकर्म है वह छह प्रकारका है— वज्रऋषभवज्रनाराचशरीर-संहनन, वज्रनाराचशरीरसंहनन, नाराचशरीरसंहनन, अर्धनाराचशरीरसंहनन, कीलित-शरीरसंहनन और असंप्राप्तसेवार्तशरीरसंहनन नामकर्म ॥ १०९ ॥

जो वज्रके समान होता है वह वज्र कहलाता है । वज्रऋषभ और वज्रनाराच, इस प्रकार यहां द्वन्द्व समास है । इन दोनों रूप जो शरीरसंहनन है वह वज्रऋषभवज्रनाराचशरीर-संहनन कहलाता है । वज्ररूपसे स्थित हड्डी और ऋषभ अर्थात् वेष्टन इन दोनोंको भेद कर जिसमें वज्रमय कीलें स्थित हैं वह वज्रऋषभवज्रनाराचशरीरसंहनन है । जिसमें वज्रमय नाराच हों, पर ऋषभ रहित हो वह वज्रनाराचशरीरसंहनन है । इन दोनोंके विना जो शरीरसंहनन होता है

१ अ आ काप्रतिषु 'दह्यशाखं', ताप्रतौ 'दह्यशाखं' इति पाठः । २ ताप्रतौ 'पाषाणभृतदृतिवत्' इति पाठः । ३ षट्खं. जी. चू. १, ३५. ४ ताप्रतौ 'णाराइण' इति पाठः । ५ षट्खं. जी. चू. १, ३६. ६ काप्रतौ 'वज्रऋषभ' इति पाठः । ७ अ-आ-काप्रतिषु 'नाराचाः त एव', ताप्रतौ 'नाराचः व एव' इति पाठः । ८ काप्रतौ 'तो' इति पाठः । ९ अ-आ-काप्रतिषु 'वज्रकीलकवज्रनाराचऋषभरहितं', ताप्रतौ 'वज्रकीलक (:) वज्रनाराच (:) । ऋषभरहितं' इति पाठः ।

एदाणि सुत्ताणि सुगमाणि ।

जं तं सरीरसंठाणणामं तं छव्विहं— समचउरसरीर[1]संठाणणामं णग्गोहपरिमंडलसरीरसंठाणणामं सादियसरीरसंठाणणामं खुज्जसरीरसंठाणणामं वामणसरीरसंठाणणामं हुंडसरीरसंठाणणामं चेदि[2] ॥१०७॥

चतुरं शोभनम्, समन्ताच्चतुरं समचतुरम्, समानमानोन्मानमित्यर्थः । समचतुरं च तत् सरीरसंस्थानं च समचतुरशरीरसंस्थानम् । तस्य संस्थानस्य निवर्तकं यत् कर्म तस्याप्येषैव संज्ञा, कारणे कार्य्योपचारात् । न्यग्रोधो वटवृक्षः, समन्तान्मंडलं परिमण्डलम्, न्यग्रोधस्य परिमण्डलमिव परिमण्डलं यस्य सरीरसंस्थानस्य तन्न्यग्रोधपरिमण्डलशरीरसंस्थानं नाम । अधस्तात् श्लक्ष्णं उपरि विशालं यच्छरीरं तन्न्यग्रोधपरिमण्डलशरीरसंस्थानं नाम । एतस्य यत् कारणं कर्म तस्याप्येषैव संज्ञा, कारणे कार्योपचारात् । स्वातिर्वल्मीकः, स्वातिरिव शरीरसंस्थानं स्वातिशरीरसंस्थानम् । एतस्य यत् कारणं कर्म तस्याप्येषैव संज्ञा, कारणे कार्योपचारात् । दीर्घशाखं कुब्जशरीरम्, कुब्जशरीररस्य संस्थानं कुब्जशरीरसंस्थानम् । एतस्य यत् कारणं कर्म तस्याप्येतदेव नाम, कारणे कार्योपचारात् । वामनशरीरस्य संस्थानं वामन-

ये सूत्र सुगम हैं ।

जो शरीरसंस्थान नामकर्म है वह छह प्रकारका है— समचतुरशरीरसंस्थान, न्यग्रोधपरिमण्डलशरीरसंस्थान, स्वातिशरीरसंस्थान, कुब्जशरीरसंस्थान, वामनशरीरसंस्थान और हुण्डशरीरसंस्थान नामकर्म ॥ १०७ ॥

चतुरका अर्थ शोभन है, सब ओरसे चतुर समचतुर कहलाता है। समान मान और उन्मानवाला, यह उक्त कथनका तात्पर्य है । समचतुर ऐसा जो शरीरसंस्थान वह समचतुरशरीरसंस्थान है । उस संस्थानका निर्वर्तक जो कर्म है उसकी भी कारणमें कार्यका उपचार करनेसे यही संज्ञा होती है । न्यग्रोधका अर्थ वटका वृक्ष है, और परिमण्डलका अर्थ है सब ओरका मण्डल न्यग्रोधके परिमण्डलके समान जिस शरीरसंस्थानका परिमण्डल होता है वह न्यग्रोधपरिमण्डल शरीरसंस्थान है । जो शरीर नीचे सूक्ष्म और ऊपर विशाल होता है वह न्यग्रोधपरिमण्डलशरीरसंस्थान कहलाता है । इसका कारण जो कर्म है उसकी भी कारणमें कार्यका उपचार होनेसे यही संज्ञा है । स्वातिका अर्थ वल्मीक अर्थात् वामी है । स्वातिके समान जो शरीरसंस्थान होता है वह स्वातिशरीरसंस्थान कहलाता है । इस शरीरका कारण जो कर्म है उसकी भी यही संज्ञा है, क्योंकि, कारणमें कार्यका उपचार किया गया है । जिस शरीरकी शाखायें दीर्घ हों वह कुब्जशरीर है, कुब्जशरीरका जो संस्थान है वह कुब्जशरीरसंस्थान है । इसका कारण जो कर्म है उसका भी यही नाम है, क्योंकि, कारणमें कार्यका उपचार किया गया है । वामन शरीरका जो संस्थान है वह वामनशरीरसंस्थान है, अर्थात् जिसकी शाखायें ह्रस्व

१ प्रतिषु 'समचउरसंसरीर-' इति पाठः । २ षट्खं. जी. चू.१, ३४. ३ काप्रतौ वाक्यमिदं त्रुटितं जातम् ।

शरीरसंस्थानम् । ह्रस्वशाखं[1] वामनशरीरम् । तस्य कारणकर्मणोऽप्येषैव संज्ञा । विषमपाषाण-भृतदृतिवत्[2] समन्ततो विषमं हुण्डम्, हुंडं च तत् शरीरसंस्थानं हुंडसरीरसंस्थानम् । एतस्य कारणकर्मणोऽप्येषैव संज्ञा ।

जं तं सरीरअंगोवंगणामं तं तिविहं— ओरालियसरीरअंगोवंगणामं वेउव्वियसरीरअंगोवंगणामं आहारसरीरअंगोवंगणामं चेदि[3] ॥

सुगममेदं ।

जं तं सरीरसंघडणणामं तं छव्विहं— वज्जरिसहवइरणारायणसरीरसंघडणणामं वज्जणारायणसरीरसंघडणणामं णारायण[4]सरीरसंघडणणामं अद्धणारायणसरीरसंघडणणामं खीलियसरीरसंघडणणामं असंपत्तसेवट्टसरीरसंघडणणामं चेदि[5] ॥ १०९ ॥

वज्रमिव वज्रम्, वज्रऋषभः वज्रनाराचश्च वज्रर्षभवज्रनाराचौ, तौ एवं शरीरसंहननं वज्रऋषभवज्रनाराचशरीरसंहननम् । वज्राकारेण स्थितास्थः वेष्टकः ऋषभः तौ[8] भित्वा स्थित वज्रकीलक वज्रनाराचं (?) । ऋषभरहितं[9] वज्रनाराचशरीरसंहननम् । ताभ्यां विना नाराच-

---

हों वह वामनशरीर है । उसका कारण जो कर्म है उसकी भी यही संज्ञा है । विषम पाषाणोंसे भरी हुई मशकके समान जो सब ओरसे विषम होता है वह हुण्ड कहलाता है, हुण्ड ऐसा जो शरीरसंस्थान वह हुण्डशरीरसंस्थान है । इसके कारणभूत कर्मकी भी यही संज्ञा है ।

जो शरीरआंगोपांग नामकर्म है वह तीन प्रकारका है— औदारिकशरीरआंगोपांग, वैक्रियिकशरीरआंगोपांग और आहारकशरीरआंगोपांग नामकर्म ॥ १०८ ॥

यह सूत्र सुगम है ।

जो शरीरसंहनन नामकर्म है वह छह प्रकारका है— वज्रऋषभवज्रनाराचशरीर-संहनन, वज्रनाराचशरीरसंहनन, नाराचशरीरसंहनन, अर्धनाराचशरीरसंहनन, कीलित-शरीरसंहनन और असंप्राप्तसेवार्तशरीरसंहनन नामकर्म ॥ १०९ ॥

जो वज्रके समान होता है वह वज्र कहलाता है । वज्रऋषभ और वज्रनाराच, इस प्रकार यहां द्वन्द्व समास है । इन दोनों रूप जो शरीरसंहनन है वह वज्रऋषभवज्रनाराचशरीर-संहनन कहलाता है । वज्ररूपसे स्थित हड्डी और ऋषभ अर्थात् वेष्टन इन दोनोंको भेद कर जिसमें वज्रमय कीलें स्थित हैं वह वज्रऋषभवज्रनाराचशरीरसंहनन है । जिसमें वज्रमय नाराच हों, पर ऋषभ रहित हो वह वज्रनाराचशरीरसंहनन है । इन दोनोंके विना जो शरीरसंहनन होता है

---

१ अ आ काप्रतिषु 'दद्मशाखं', ताप्रतौ 'दह्मशाखं' इति पाठः । २ ताप्रतौ 'पाषाणभृतदृतिवत्' इति पाठः । ३ षट्खं. जी. चू. १, ३५. ४ ताप्रतौ 'णाराइग' इति पाठः । ५ षट्खं. जी. चू. १, ३६. ६ काप्रतौ 'वज्रऋषभ' इति पाठः । ७ अ-आ-काप्रतिषु 'नाराचाः त एव', ताप्रतौ 'नाराचः त एव' इति पाठः । ८ काप्रतौ 'तो' इति पाठः । ९ अ-आ-काप्रतिषु 'वज्रकीलकवज्रनाराचऋषभरहितं', ताप्रतौ 'वज्रकीलक (:) वज्रनाराच (:) । ऋषभरहितं' इति पाठः ।

शरीरसंहननम् । नाराचेन अर्द्धभिन्नं अर्द्धनाराचशरीरसंहननम् । अवज्रकीलैः कीलितं कीलितशरीरसंहननम् । स्नायुभिर्बद्धास्थि[1] असंप्राप्तसरिसृपादिशरीरसंहननम् । एतेषां कारणानि यानि कर्माणि तेषामेतान्येव नामानि । स्नाय्वन्त्र-सिरादीनां निर्वत्तकानि कर्म्माणि किन्नोक्तानि ? न, तेषामंगोपांगनाम्न्यन्तर्भावात् ।

जं तं वण्णणामकम्मं तं पंचविहं— किण्णवण्णणामं णीलवण्णणामं रुहिरवण्णणामं हलिद्दवण्णणामं सुक्किलवण्णणामं चेदि[2] ॥११०॥

जं तं गंधणामं तं दुविहं— सुरहिगंधणामं दुरहिगंधणामं चेदि[3] ॥ १११ ॥

जं तं रसणामं तं पंचविहं— तित्तणामं कडुवणामं कसायणामं अंबिलणामं महुरणामं चेदि[4] ॥ ११२ ॥

जं तं फासणामं तमट्ठविहं— कक्खडणामं मउअणामं गरुवणामं लहुअणामं णिद्धणामं लुक्खणामं सीदणामं उसुणणामं[5] चेदि[6] ॥११३॥

एदाणि सुत्ताणि सुगमाणि ।

वह नाराचशरीरसंहनन है । नाराचसे आधा भिदा हुआ संहनन अर्धनाराचशरीरसंहनन है । अवज्रमय कीलोंसे कीलित संहनन कीलितशरीरसंहनन है । जिसमें स्नायुओंसे हड्डियां बंधी होती हैं वह असंप्राप्तसरीसृपादिशरीरसंहनन है । इनके कारण जो कर्म हैं उनके भी ये ही नाम हैं ।

शंका— स्नायु, आंत और सिरा आदिके बनानेवाले कर्म क्यों नहीं कहे ?

समाधान— नहीं, क्योंकि उनका आंगोपांग नामकर्ममें अन्तर्भाव हो जाता है ।

जो वर्ण नामकर्म है वह पांच प्रकारका है—कृष्णवर्ण, नीलवर्ण, रुधिरवर्ण, शुक्लवर्ण और हरिद्रावर्ण नामकर्म ॥ ११० ॥

जो गन्ध नामकर्म है वह दो प्रकारका है – सुरभिगन्ध और दुरभिगन्ध नामकर्म ॥

जो रस नामकर्म है वह पांच प्रकारका है— तिक्त, कटुक, कषाय, आम्ल और मधुर नामकर्म ॥ ११२ ॥

जो स्पर्श नामकर्म है वह आठ प्रकारका है— कर्कश, मृदु, गुरु, लघु, स्निग्ध, रुक्ष, शीत और उष्ण नामकर्म ॥ ११३ ॥

ये सूत्र सुगम हैं ।

---

१ प्रतिषु '-वंध्नास्थि-' इति पाठः । २ षट्खं. जी. चू. १, ३७. ३ षट्खं जी. चू. १, ३८. ४ षट्खं. जी. चू. १, ३९. ५ अप्रतौ 'उण्हणामं' इति पाठः । ६ षट्खं. जी. चू. १, ४०.

जं तं आणुपुव्विणामं तं चउव्विहं—णिरयगइपाओग्गाणुपुव्विणामं तिरिक्खगइपाओग्गाणुपुव्विणामं मणुसगइपाओग्गाणुपुव्विणामं देवगइपाओग्गाणुपुव्विणामं चेदि[1] ॥ ११४ ॥

सुगममेदं सुत्तं । संपहि णिरयगइपाओग्गाणुपुव्विणामाए उत्तरपयडिपमाणपरूवणट्ठमुत्तरसुत्तं भणदि—

णिरयगइपाओग्गाणुपुव्विणामाए केवडियाओ पयडीओ ? ॥

सुगमं ।

णिरयगइपाओग्गाणुपुव्विणामाए पयडीओ अंगुलस्स असंखेज्जदिभागमेत्तबाहल्लाणि तिरियपदराणि सेडीए असंखेज्जदिभागमेत्तेहि ओगाहणवियप्पेहि गुणिदाओ । एवडियाओ पयडीओ ॥११६॥

मुक्कपुव्वसरीरस्स अगहिदुत्तरसरीरस्स जीवस्स अट्ठकम्मक्खंधेहि एयत्तमुवगयस्स हंसधवलविस्सासोवचएहि उवचियपंचवण्णकम्मक्खंधंतस्स[2] विसिट्ठमुहागारेण जीवपदेसाणं अणुपरिवाडीए परिणामो आणुपुव्वी णाम । कि मुहं णाम ? जीवपदेसाणं विसिट्ठसंठाणं ।

जो आनुपूर्वी नामकर्म है वह चार प्रकारका है—नरकगतिप्रायोग्यानुपूर्वी, तिर्यञ्चगतिप्रायोग्यानुपूर्वी, मनुष्यगतिप्रायोग्यानुपूर्वी और देवगतिप्रायोग्यानुपूर्वी नामकर्म ॥११४॥

यह सूत्र सुगम है ।

अब नरकगतिप्रायोग्यानुपूर्वी नामकर्मकी उत्तर प्रकृतियोंके प्रमाणका कथन करनेके लिए आगेका सूत्र कहते हैं—

नरकगतिप्रायोग्यानुपूर्वी नाम कर्मकी कितनी प्रकृतियां हैं ? ॥ ११५ ॥

यह सूत्र सुगम है ।

नरकगतिप्रायोग्यानुपूर्वी नामकर्मकी प्रकृतियां अंगुलके असंख्यातवें भाग मात्र तिर्यक्प्रतररूप बाहल्यको श्रेणिके असंख्यातवें भागमात्र अवगाहनाविकल्पोंसे गुणित करनेपर जो लब्ध आवे उतनी हैं। उसकी इतनी मात्र प्रकृतियां हैं ॥ ११६ ॥

जिसने पूर्व शरीरको छोड़ दिया है, किन्तु उत्तर शरीरको ग्रहण नहीं किया है, जो आठ कर्मस्कन्धोंके साथ एकरूप हो रहा है, और जो हंसके समान धवल वर्णवाले विस्रसोपचयोंसे उपचित पांच वर्णवाले कर्मस्कधोंसे संयुक्त है; ऐसे जीवके विशिष्ट मुखाकाररूपसे जीवप्रदेशोंका जो परिपाटीक्रमानुसार परिणमन होता है उसे आनुपूर्वी कहते हैं ।

शंका— मुख किसे कहते हैं ?

समाधान— जीवप्रदेशोंके विशिष्ट संस्थानको मुख कहते हैं ।

१ षट्खं. जी. चू. १, ४१. २ प्रतिषु 'कम्मक्खंधंतं तस्स' इति पाठः ।

णिरयगईए पाओग्गाणुपुव्वी [णिरयगइपाओग्गाणुपुव्वी]। तिस्से जं कारणं कम्मं तस्स वि एसा चेव सण्णा, कारणे कज्जुवयारादो। संठाणणामकम्मादो जेण सरीरसंठाणणिप्फत्ती तेण णिप्फला णिरयगइपाओग्गाणुपुव्वि त्ति ण वोत्तुं[1] जुत्तं, अगहिदओरालिय-वेउव्वियसरीरस्स जीवस्स संठाणाणमुदयाभावादो कम्मइयसरीरमसंठाणं[2] मा होहदि त्ति जीवपदेसाणं अण्णण्णाए अणुपरिवाडीए अवट्ठाणस्स कारणमाणुपुव्वि त्ति णिच्छिदव्वं।

उस्सेहघणंगुलस्स संखेज्जदिभागमेत्तसव्वजहण्णोगाहणाए णिरयगदिं गच्छमाणसित्थमच्छस्स विसिट्ठमुहागारेण ट्ठियस्स एगो णिरयगइपाओग्गाणुपुव्विवियप्पो लब्भइ। पुणो तीए चेव जहण्णोगाहणाए णिरयगदिं गच्छमाणस्स अवरस्स सित्थमच्छस्स बिदियो णिरयगइपाओग्गाणुपुव्विवियप्पो लब्भइ, पुव्विल्लजीवपदेसाणमणुपरिवाडीए अवट्ठाणादो पुव्विल्लागासपदेसादो पुधभूदआगासपदेससंबंधेण एत्थ अण्णारिसअणुपरिवाडीए अवट्ठाणदंसणादो। संपहि ताए चेव सव्वजहण्णोगाहणाए णिरयगइं गच्छमाणस्स अवरस्स सित्थमच्छस्स तदियो णिरयगइपाओग्गाणुपुव्विवियप्पो लब्भदि, पुव्विल्लअणुपरिवाडिअवट्ठाणादो पुव्विल्लागासपदेसादो पुधभूदआगासपदेससंबंधेण एत्थ वि अण्णारिसअणुपरिवाडीए अवट्ठाणस्स उवलंभादो। एदं कारणं सव्वत्थ वत्तव्वं। पुणो सव्वजहण्णोगाहणाए अलद्धपुव्वमुहागारेण

नरकगतिके योग्य जो आनुपूर्वी होती है वह नरकगतिप्रायोग्यानुपूर्वी है, और इसका कारण जो कर्म है उसकी भी यही संज्ञा है, क्योंकि, यहां कारणमें कार्यका उपचार किया गया है।

शंका—यतः संस्थान नामकर्मके उदयसे शरीरसंस्थानकी उत्पत्ति होती है अतएव नरकगतिप्रायोग्यानुपूर्वी प्रकृतिका मानना निष्फल है ?

समाधान—ऐसा कहना योग्य नहीं है, क्योंकि जिसने औदारिक और वैक्रियिकशरीरको ग्रहण नहीं किया है ऐसे जीवके चूंकि संस्थानोंका उदय रहता नहीं है अतएव उसका कार्मणशरीर संस्थानरहित न होवे, इसलिए जीवप्रदेशोंके भिन्न भिन्न परिपाटीक्रमानुसार अवस्थानका कारण आनुपूर्वी प्रकृति है, ऐसा यहां निश्चय करना चाहिए।

उत्सेध घनाङ्गुलके संख्यातवें भागमात्र सबसे जघन्य अवगाहनाके साथ नरकगतिको जानेवाले और विशिष्ट मुखाकाररूपसे स्थित सिक्थ मत्स्यके नरकगतिप्रायोग्यानुपूर्वीका एक विकल्प पाया जाता है। पुनः उसी जघन्य अवगाहनाके साथ नरकगतिको जानेवाले दूसरे सिक्थ मत्स्यके नरकगतिप्रायोग्यानुपूर्वीका दूसरा विकल्प पाया जाता है, क्योंकि, पहलेके जीवप्रदेशोंका अनुपरिपाटीसे जो अवस्थान पाया जाता है उससे यहांपर पहलेके आकाशप्रदेशोंसे पृथग्भूत आकाशप्रदेशोंके सम्बन्धसे भिन्न अनुपरिपाटीका अवस्थान देखा जाता है। अब उस ही सबसे जघन्य अवगाहनाके साथ नरकगतिको जानेवाले अन्य सिक्थ मत्स्यके नरकगतिप्रायोग्यानुपूर्वी नामकर्मका तीसरा विकल्प प्राप्त होता है, क्योंकि, पहलेकी अनुपरिपाटी रूपसे जो अवस्थान है इससे यहांपर भी पहलेके आकाशप्रदेशोंसे पृथग्भूत आकाशप्रदेशोंके सम्बन्धसे अन्य अनुपरिपाटीका अवस्थान उपलब्ध होता है। यह कारण सर्वत्र कहना चाहिए। पुनः सबसे जघन्य अवगाहनाके

---

१ अप्रतौ 'त्ति वोत्तुं' इति पाठः। २ ताप्रतौ 'भावादो। कम्मइय-' इति पाठः।

णिरयगइं गच्छमाणस्स अवरस्स सित्थमच्छस्स चउत्थो णिरयगइपाओग्गाणुपुव्विवियप्पो लब्भदि, अलद्धपुव्वमुहागारेण परिणयत्तादो । पुणो अवरस्स सित्थमच्छस्स ताए चेव सव्वजहण्णोगाहणाए णिरयगइं गच्छमाणस्स पंचमो णिरयगइपाओग्गाणुपुव्विवियप्पो लब्भइ, अलद्धपुव्वमुहागारेण परिणमिददव्वस्स कारणत्तादो । एवं छ-सत्त-अट्ठ-णव-दस-आवलिय-उस्सास-थोव-लवं-णालि-मुहुत्त-दिवस-पक्ख-मास-उडु-अयण-संवच्छर-जुग-पुव्वं- पल्ल-सागर-रज्जुतिरियपदरे त्ति णिरयगइपाओग्गाणुपुव्विवियप्पा परूवेयव्वा । पुणो एदेणेव कमेण दो-तिण्णिआदितिरियपदरवियप्पा वड्ढावेदव्वा जाव सूचिअंगुलस्स असंखेज्जदिभागमेत्त-तिरियपदराणं जत्तिया आगासपदेसा तत्तिया णिरयगइपाओग्गाणुपुव्विवियप्पा लब्भंति । णवरि णव-णवमुहवियप्पेहि णिरएसु उप्पज्जमाणसित्थमच्छाणं सा सव्वजहण्णोगाहणा धुवा कायव्वा । रज्जुपदरं रज्जुवग्गो तिरियपदरं ति एयट्ठो । सूचिअंगुलस्स असंखेज्जदिभागेण तिरियपदरे गुणिदे जत्तिया आगासपदेसा तत्तिया चेव णिरयगइपाओग्गाणुपुव्विवियप्पा सित्थमच्छसव्वजहण्णोगाहणमस्सिदूण लद्धा त्ति भणिदं होदि । एत्तो अहिया ण लब्भंति । कुदो ? साभावियादो ।

संपहि पदेसुत्तरसव्वजहण्णोगाहणाए णिरएसु मारणंतिएण तेण विणा वा विग्गह-गदीए उप्पज्जमाणसित्थमच्छाणं तत्तिया चेव णिरयगइपाओग्गाणुपुव्विवियप्पा लब्भंति ।

साथ अलब्धपूर्व मुखाकाररूपसे नरकगतिको जानेवाले अन्य सिक्थ मत्स्यके नरकगतिप्रायोग्यानुपूर्वीका चौथा विकल्प होता है, क्योंकि, पहले नहीं उपलब्ध हुए ऐसे मुखाकाररूपसे वह परिणत हुआ है । पुनः उसी सर्वजघन्य अवगाहनाके साथ नरकगतिको जानेवाले अन्य सिक्थ मत्स्यके नरकगतिप्रायोग्यानुपूर्वीका पांचवां विकल्प उपलब्ध होता है, क्योंकि, यह अलब्धपूर्व मुखाकाररूपसे परिणमित हुए द्रव्यका कारण है । इस प्रकार छह, सात, आठ, नौ, दस, आवलि, उच्छ्वास, स्तोक, लव, घटिका, मुहूर्त, दिवस, पक्ष, मास, ऋतु, अयन, वर्ष, युग, पूर्व, पल्य, सागर और राजु रूप तिर्यक्प्रतर तक नरकगतिप्रायोग्यानपूर्वीके विकल्प कहने चाहिए । पुनः इसी क्रमसे दो तीन आदि तिर्यक्प्रतरविकल्पोंको सूच्यंगुलके असंख्यातवें भाग मात्र तिर्यक्प्रतरोंके जितने आकाश-प्रदेश होते हैं उतने मात्र नरकगतिप्रायोग्यानपूर्वीके विकल्प प्राप्त होने तक बढ़ाते जाना चाहिए । इतनी विशेषता है कि नूतन-नूतन मुखविकल्पोंके साथ नरकोंमें उत्पन्न होनेवाले सिक्थ मत्स्योंकी वह सबसे जघन्य अवगाहना ध्रुव करनी चाहिए । राजुप्रतर, राजुवर्ग और तिर्यक्प्रतर, ये एकार्थ-वाची शब्द हैं । सूच्यंगुलके असंख्यातवें भागसे तिर्यक्प्रतरको गुणित करनेपर जितने आकाशप्रदेश उपलब्ध होते हैं उतने ही सिक्थ मत्स्यकी सबसे जघन्य अवगाहनाकी अपेक्षा नरकगतिप्रायोग्यानु-पूर्वीके विकल्प प्राप्त होते हैं, यह उक्त कथनका तात्पर्य है । इनसे अधिक विकल्प नहीं प्राप्त होते हैं, क्योंकि, ऐसा स्वभाव है ।

अब एक प्रदेश अधिक सबसे जघन्य अवगाहनाके साथ नरकोंमें मारणान्तिक समुद्घात करके या उसके विना विग्रहगति द्वारा उत्पन्न होनेवाले सिक्थ मत्स्योंके नरकगतिप्रायोग्यानपूर्वीके

---

१ अप्रतौ 'अव', का-ताप्रत्योः 'ताव' इति पाठः । २ का-ताप्रत्योः संवच्छर-पुव्व' इति पाठः ।

अहियोगाहणाए अहिया मुहागारा ण लब्भंति, कारणसत्तिभेदेण कज्जभेदुप्पत्तीदो । ण च एक्कम्हि कारणे समाणसत्तिसंखोवलक्खिए[1] संते कज्जसंखाविसयभेदो अत्थि, विरोहादो । जहण्णोगाहणमुहागारेहि पदेसुत्तरजहण्णोगाहणमुहागारा अण्णोण्णं किं सरिसा आहो विसरिसा त्ति ? जदि पढमादिया अणुपरिवाडीए पढमादिएहि सरिसा तो पदेसुत्तरजहण्णोगाहणाए लद्धणिरयगइपाओग्गाणुपुव्विवियप्पा पुणरुत्ता होंति । अह जदि ण सरिसा तो एदे मुहागारा णिरयगइपाओग्गाणुपुव्वीए ण होंति । अह होंति, जहण्णोगाहणाए अण्णेहि वि[2] मुहागारेहि होदव्वमिदि ? एत्थ परिहारो वुच्चदे— ण ताव पढमपक्खे वुत्तदोसो संभवदि, अणब्भुवँगमादो[3] । ण च असरिसपक्खे वुत्तदोसो वि संभवदि, अण्णाणुपुव्वीदो असरिसमुहागारुप्पत्तीए विरोहाभावादो । ण च जहण्णोगाहणाए एसा आणुपुव्वी सकज्जमुप्पादेदि, पदेसुत्तरओगाहणापडिबद्धाणुपुव्वीए सेसोगाहणासु वावारविरोहादो । ण च जहण्णोगाहणमुहागारेहि पदेसुत्तरजहण्णोगाहणमुहागाराणं सरिसत्तमत्थि, पुणरुत्तप्पसंगादो । एसा आणुपुव्वी पुव्विल्लाणुपुव्वीहिंतो पुधभूदे त्ति कधं णव्वदे ? भिण्णकज्जकरणादो । ण

उतने ही विकल्प प्राप्त होते हैं । अधिक अवगाहनाके अधिक मुखाकार नहीं प्राप्त होते, क्योंकि, कारण रूप शक्तिमें भेद होनेसे ही कार्यमें भेद उत्पन्न होता है । समान शक्तिसंख्यासे युक्त एक कारणके होनेपर कार्यमें संख्याविषयक भेद नहीं होता है, क्योंकि, ऐसा माननेमें विरोध आता है ।

शंका— जघन्य अवगाहनाके मुखाकारोंसे प्रदेशोत्तर जघन्य अवगाहनाके मुखाकार परस्परमें क्या समान होते हैं या असमान ? यदि प्रथमादि मुखाकार अनुपरिपाटीसे प्रथमादिकोंके साथ समान होते हैं तो एक प्रदेश अधिक जघन्य अवगाहनाके द्वारा प्राप्त हुए नरकगतिप्रायोग्यानुपूर्वीके विकल्प पुनरुक्त होते हैं । और यदि वे समान नहीं होते हैं तो ये मुखाकार नरकगतिप्रायोग्यानपूर्वीके नहीं हो सकते । यदि उसीके होते हैं तो जघन्य अवगाहनासे भिन्न भी मुखाकार होने चाहिए ?

समाधान— यहां इस शंकाका समाधान कहते हैं, प्रथम पक्षमें कहा हुआ दोष तो सम्भव नहीं है, क्योंकि, उसे स्वीकार ही नहीं किया है । तथा असमान पक्षमें कहा हुआ दोष भी सम्भव नहीं है, क्योंकि, अन्य आनुपूर्वीसे असमान मुखाकारोंकी उत्पत्ति होनेमें कोई विरोध नहीं आता । जघन्य अवगाहनाकी यह आनुपूर्वी अपने कार्यको उत्पन्न करती है, यह कहना ठीक नहीं है; क्योंकि, एक प्रदेश अधिक अवगाहनासे सम्बन्ध रखनेवाली आनुपूर्वीका शेष अवगाहनाओंमें व्यापार माननेमें विरोध आता है । जघन्य अवगाहनाके मुखाकारोंके साथ एक प्रदेशाधिक जघन्य अवगाहनाके मुखाकारोंकी समानता होती है, यह कहना भी ठीक नहीं है; क्योंकि, ऐसा माननेमें पुनरुक्त दोष आता है ।

शंका— यह आनुपूर्वी पहलेकी आनुपूर्वियोंसे भिन्न है, यह किस प्रमाणसे जाना जाता है ?

समाधान— उसका कार्य भिन्न है, इसीसे उसकी उनसे भिन्नता जानी जाती है । और भिन्न

---

१ अ-का-काप्रतिषु 'सखोवसक्कीए' ताप्रतौ 'संखोवलक्की (क्खी) ए' इति पाठः । २ अ-आप्रतिषु 'मि' इति पाठः । ३ ताप्रतौ 'अणुब्भुव-' इति पाठः ।

च भिण्णकज्जं कुणमाणाणं सत्ती समाणा, विरोहादो। ण च सत्तिभेदे संते वत्थुस्स अभेदो अत्थि, अव्ववत्थापसंगादो। एवं पादेक्कं सव्वोगाहणावियप्पेसु सूचीअंगुलस्स असंखेज्जदिभागगुणिदरज्जुपदरमेत्ता णिरगइयपाओग्गाणुपुव्विवियप्पा वत्तव्वा। एवं लब्भंति त्ति कादूण सित्थमच्छोगाहणं महामच्छोगाहणाए सोहिय सुद्धसेसम्मि जहण्णोगाहणवियप्पट्ठमेगरूवे पक्खित्ते सेडीए असंखेज्जदिभागमेत्ता ओगाहणवियप्पा होंति, संखेज्जवणंगुलेसु वि सेडीए असंखेज्जदिभागो त्ति संववहारुवलंभादो। पुणो जदि एगोगाहणवियप्पस्स अंगुलस्स असंखेज्जदिभागेण गुणिदतिरियपदरमेत्ता णिरयगदिपाओग्गाणुपुव्विवियप्पा लब्भंति तो संखेज्जघणंगुलमेत्तोगाहणवियप्पाणं केवडिए णिरयगइपाओग्गाणुपुव्विवियप्पे लभामो त्ति संखेज्जघणंगुलेहि सूचिअंगुलस्स असंखेज्जदिभागमेत्ततिरियपदरेसु गुणिदेसु जावदिया आगासपदेसा तावदिया चेव णिरयगइपाओग्गाणुपुव्वीए उत्तरोत्तरपयडीओ होंति।

तिरिक्खगइपाओग्गाणुपुव्विणामाए केवडियाओ पयडीओ ?॥ ११७॥

सुगममेदं।

तिरिक्खगइपाओग्गाणुपुव्विणामाए पयडीओ लोओ सेडीए[1]

कार्योंको करनेवालोंकी शक्ति समान होती है, यह कहना ठीक नहीं है; क्योंकि, ऐसा माननेमें विरोध आता है। शक्तिभेदके होनेपर भी वस्तुमें भेद नहीं होता, यह कहना भी ठीक नहीं है; क्योंकि; ऐसा माननेमें अव्यवस्थाका प्रसङ्ग आता है।

इस तरह पृथक् पृथक् सब अवगाहनाविकल्पोंमें नरकगतिप्रायोग्यानुपूर्वीके सूच्यंगुलके असंख्यातवें भागसे गुणित राजुप्रतर प्रमाण विकल्प कहने चाहिए। वे इस तरहसे प्राप्त होते हैं, ऐसा समझकर सिक्थ मत्स्यकी अवगाहनाको महामत्स्यकी अवगाहनामेंसे घटाकर जो शेष रहे उसमें जघन्य अवगाहनाके विकल्पकी अपेक्षा एक मिलानेपर श्रेणीके असंख्यातवें भाग मात्र अवगाहनाविकल्प होते हैं; क्योंकि, संख्यात घनाङ्गुलोंमें भी श्रेणीके असंख्यातवें भागरूप संख्याका व्यवहार होता हुआ देखा जाता है।

पुनः यदि एक अवगाहनाके विकल्पकी अपेक्षा नरकगतिप्रायोग्यानुपूर्वीके विकल्प अंगुलके असंख्यातवें भागसे गुणित तिर्यक्प्रतर प्रमाण प्राप्त होते हैं तो संख्यात घनाङ्गुल मात्र अवगाहनाविकल्पोंके कितने नरकगतिप्रायोग्यानुपूर्वीविकल्प प्राप्त होंगे, इस प्रकार संख्यात घनाङ्गुलोंसे सूच्यंगुलके असंख्यातवें भाग मात्र तिर्यक्प्रतरोंको गुणित करनेपर जितने आकाशप्रदेश होते हैं उतनी ही नरकगतिप्रायोग्यानुपूर्वीकी उत्तरोत्तर प्रकृतियां होती हैं।

तिर्यग्गतिप्रायोग्यानुपूर्वीकी कितनी प्रकृतियां होती हैं ? ॥ ११७ ॥

यह सूत्र सुगम है।

तिर्यग्गतिप्रायोग्यानुपूर्वी नामकर्मकी प्रकृतियां लोकको जगश्रेणीके असंख्यातवें

---

१ काप्रतौ 'पयडीओ ताओ सेडीए' इति पाठः।

असंखेज्जदिभागमेत्तेहि ओगाहणवियप्पेहि गुणिदाओ। एवडियाओ पयडीओ ॥ ११८ ॥

एदस्स सुत्तस्स अत्थविवरणं कस्सामो । तं जहा—सुहुमणिगोदअपज्जत्तएण उस्सेहघणंगुलस्स असंखेज्जदिभागमेत्तसव्वजहण्णोगाहणाए तिरिक्खेसु मारणंतिए मेल्लिदे एगो तिरिक्खगइपाओग्गाणुपुव्विवियप्पो लब्भदि, एगागासपदेससंबंधेण अपुव्वमुहागारेण परिणामहेदुत्तादो । पुणो बिदियसुहुमणिगोदअपज्जत्तएण ताए चेव जहणोगाहणाए तिरिक्खेसु उप्पण्णएण अपुव्वो मुहायारो संपत्तो । ताधे बिदियो तिरिक्खगइपाओग्गाणुपुव्विवियप्पो लब्भदि । एवमपुव्व-अपुव्वमुहागारेहि तिरिक्खेसु उप्पादेदव्वो जाव जहण्णोगाहणमस्सिदूण घणलोगमेत्ता तिरिक्खगइपाओग्गाणुपुव्वीए उत्तरोत्तरपयडिवियप्पा लद्धा त्ति । संपहि जहण्णोगाहणमस्सिदूण तिरिक्खगइपाओग्गाणुपुव्वीए वियप्पा एत्तिया चेव लब्भंति, एदेहिंतो अहियमुहागाराणमेत्थ असंभवादो । सुहुमणिगोदअपज्जत्ताणं सव्वजहण्णोगाहणाए तिरिक्खेसु उप्पज्जमाणाणं णव-णवमुहागारा पगरिसेण जदि बहुआ होंति तो घणलोगमेत्ता चेव होंति त्ति भणिदं होदि । पुणो पदेसुत्तरसव्वजहण्णोगाहणाए वि घणलोगमेत्ता चेव तिरिक्खगइपाओग्गाणुपुव्विणामाए पयडिवियप्पा लब्भंति । एवं दुपदेसुत्तरजहण्णोगाहणप्पहुडि महामच्छुक्कस्सोगाहणे त्ति ताव एदेसिं सव्वोगाहणाणं घणलोगमेत्ता तिरिक्खगइपाओग्गाणुपुव्विवियप्पा उप्पादेदव्वा ।

भाग मात्र अवगाहनाविकल्पोंसे गुणित करनेपर जो लब्ध आवे उतनी हैं । उसकी इतनी मात्र प्रकृतियां होती हैं ॥ ११८ ॥

इस सूत्रके अर्थका विवरण करते हैं । यथा— सूक्ष्म निगोद लब्ध्यपर्याप्त जीवके उत्सेधघनांगुलके असंख्यातवें भाग प्रमाण सबसे जघन्य अवगाहनाके द्वारा तिर्यंचोंमें मारणान्तिक समुद्घात करनेपर एक तिर्यंचगतिप्रायोग्यानुपूर्वीका विकल्प प्राप्त होता है, क्योंकि, वह एक आकाशप्रदेशके सम्बन्धसे अपूर्व मुखाकार रूपसे परिणमनका हेतु है । पुनः दूसरे सूक्ष्म निगोद लब्ध्यपर्याप्त जीवके उसी जघन्य अवगाहनाके साथ तिर्यंचोंमें उत्पन्न होनेपर अपूर्व मुखाकार प्राप्त होता है । उस समय दूसरा तिर्यंचगतिप्रायोग्यानुपूर्वीविकल्प होता है । इस तरह जघन्य अवगाहनाका आलम्बन लेकर घनलोक प्रमाण तिर्यंचगतिप्रायोग्यानुपूर्वीके उत्तरोत्तर प्रकृतिविकल्पोंके प्राप्त होने तक अपूर्व अपूर्व मुखाकारोंके साथ तिर्यंचोंमें उत्पन्न कराना चाहिए। जघन्य अवगाहनाका आलम्बन लेकर तिर्यंचगतिप्रायोग्यानुपूर्वीके इतने ही विकल्प उपलब्ध होते हैं, क्योंकि, इनसे अधिक मुखाकारोंका प्राप्त होना यहां सम्भव नहीं है । सूक्ष्म निगोद लब्ध्यपर्याप्तकोंके सबसे जघन्य अवगाहनाके साथ तिर्यंचोंमें उत्पन्न होनेपर नूतन नूतन मुखाकार उत्कृष्ट रूपसे यदि बहुत होते हैं तो वे घनलोक प्रमाण ही होते हैं, यह उक्त कथनका तात्पर्य है । पुनः एक प्रदेश अधिक सर्वजघन्य अवगाहनाके आश्रयसे भी घनलोकप्रमाण ही तिर्यंचगतिप्रायोग्यानुपूर्वी नामकर्मके प्रकृतिविकल्प होते हैं । इसी प्रकार दो प्रदेश अधिक जघन्य अवगाहनासे लेकर महामत्स्यकी उत्कृष्ट अवगाहना तक इन सब अवगाहनाओं सम्बन्धी अलग अलग घनलोक प्रमाण तिर्यंचगतिप्रायोग्यानुपूर्वीके विकल्प उत्पन्न कराने चाहिए ।

संपहि सुहुमणिगोदअपज्जत्तयस्स सव्वजहण्णोगाहणं महामच्छोगाहणाए सोहिय सुद्धसेसम्मि एगरूवे पक्खिविय पुणो एदेण सेडीए असंखेज्जदिभागेण घणलोगे गुणिदे जत्तिया आगासपदेसा तत्तिया चेव तिरिक्खगइपाओग्गाणुपुव्विणामाए उत्तरोत्तरपयडीओ होंति। के वि आइरिया तिरियपदरेण गुणिदघणलोगमेत्ता तिरिक्खगइपाओग्गाणुपुव्विवियप्पा एक्केक्किस्से ओगाहणाए होंति त्ति भणंति। तण्ण घडदे, सुत्तविरुद्धत्तादो—'लोगो[1] सेडीए असंखेज्जदिभागमेत्तेहि ओगाहणवियप्पेहि गुणिदाओ' त्ति। ण च एदम्हि सुत्ते रज्जुपदर-गुणिदघणलोगणिद्देसो अत्थि जेणेदं वक्खाणं सच्चं होज्ज। संपहि लोगो सेडीए असंखेज्जदि-भागमेत्तेहि ओगाहणवियप्पेहि गुणेयव्वो। एवं गुणिदाओ पयडीओ होंति त्ति सुत्तसंबंधो कायव्वो।

मणुसगइपाओग्गाणुपुव्विणामाए केवडियाओ पयडीओ ? ॥ ११९ ॥

सुगमं।

मणुसगइपाओग्गाणुपुव्विणामाए पयडीओ पणदालीसजोयण-सदसहस्सबाहल्लाणि तिरियपदराणि उड्ढकवाडछेदणणिप्फण्णाणि सेडीए असंखेज्जदिभागमेत्तेहि ओगाहणवियप्पेहि गुणिदाओ। एवडियाओ पयडीओ ॥ १२० ॥

अब सूक्ष्म निगोद लब्ध्यपर्याप्तककी सबसे जघन्य अवगाहनाको महामत्स्यकी अवगाहनामेंसे घटाकर जो शेष रहे उसमें एक अंक मिलाकर श्रेणिके असंख्यातवें भाग प्रमाण इससे घनलोकको गुणित करनेपर जितने आकाशप्रदेश होते हैं उतनी ही तिर्यंचगतिप्रायोग्यानुपूर्वी नामकर्मकी उत्तरोत्तर प्रकृतियां होती हैं। कितने ही आचार्य तिर्यक्प्रतरसे गुणित घनलोक प्रमाण एक एक अवगाहना सम्बन्धी तिर्यंचगतिप्रायोग्यानुपूर्वीके विकल्प होते हैं, ऐसा कथन करते हैं। परन्तु वह घटित नहीं होता, क्योंकि, इस कथनमें प्रकृत सूत्रसे विरोध आता है—'लोकको जगश्रेणीके असंख्यातवें भाग मात्र अवगाहनाविकल्पोंसे गुणित करे' यह उसका विरोधी सूत्रवचन है। इस सूत्रमें 'राजुप्रतरसे गुणित घनलोक' ऐसा उल्लेख नहीं है जिससे कि यह व्याख्यान सत्य माना जाय। अब लोकको जगश्रेणीके असंख्यातवें भाग प्रमाण अवगाहनाविकल्पोंसे गुणित करना चाहिए। इस प्रकार गुणित करनेपर उक्त प्रकृतियां होती हैं, ऐसा यहां सूत्रका सम्बन्ध करना चाहिए।

मनुष्यगतिप्रायोग्यानुपूर्वी नामकर्मकी कितनी प्रकृतियां होती हैं ? ॥ ११९ ॥

यह सूत्र सुगम है।

मनुष्यगतिप्रायोग्यानुपूर्वी नामकर्मकी प्रकृतियां ऊर्ध्वकपाटछेदनसे निष्पन्न पैंतालीस लाख योजन बाहल्यवाले तिर्यक्प्रतरोंको जगश्रेणीके असंख्यातवें भाग मात्र अवगाहनाविक-ल्पोंसे गुणित करनेपर जो लब्ध आवे उतनी हैं। उसकी इतनी मात्र प्रकृतियां होती हैं ॥

१ ताप्रतौ 'सुत्तविरुद्धत्तादो। 'लोगो' इति पाठः।

एदस्स सुत्तस्स अत्थपरूवणा कीरदे । तं जहा— उस्सेहघणंगुलस्स असंखेज्जदिभाग-मेत्तसव्वजहण्णोगाहणाए सुहुमणिगोदअपज्जत्तो विग्गहगदीए मणुस्सेसु उववण्णो । तत्थ एगो मणुसगइपाओग्गाणुपुव्विवियप्पो लब्भदि । किंफला एसा पयडी ? जहण्णोगाहणाए अपुव्व-संठाणणिप्पायणफला । खेत्तंतरगमणफला त्ति किण्ण वुच्चदे ? ण, आणुपुव्विउदयाभावेण उजुगदीए गमणाभावप्पसंगादो । पुणो विदिए सुहुमणिगोदअपज्जत्तजीवे जहण्णोगाहणाए विग्गहगदीए मणुस्सेसु उववण्णे विदिओ मणुसगदिपाओग्गाणुपुव्विणामाए वियप्पो होदि । पुणो तदिए सुहुमणिगोदअपज्जत्तजीवे जहण्णोगाहणाए अलद्धपुव्वेण मुहायारेण मणुस्सेसु उववण्णे[1] तदिओ मणुसगदिपाओग्गाणुपुव्वीए वियप्पो होदि, अण्णहा अपुव्वमुहागारुप्पत्ति-विरोहादो । ण च कज्जभेदादो कारणभेदो असिद्धो, अकारणकज्जुप्पत्तिप्पसंगादो । एदं सव्व-जहण्णोगाहणं णिरुंभिऊणं[2] अलद्धपुव्वणाणाविहमुहागारेहि मणुस्सेसु मारणंतियं करेमाण-सुहुमणिगोदजीवाणं मणुसगइपाओग्गाणुपुव्विपयडिवियप्पा[3] उप्पादेदव्वा जाव पणदालीस-जोयणसयसहस्सबाहल्लाणं तिरियपदराणं जत्तिया आगासपदेसा तत्तिया वियप्पा लद्धा त्ति ।

इस सूत्रके अर्थका कथन करते हैं । यथा—उत्सेध घनांगुलके असंख्यातवें भागप्रमाण सबसे जघन्य अवगाहनाके द्वारा सूक्ष्म निगोद लब्ध्यपर्याप्तक जीव विग्रहगतिसे मनुष्योंमें उत्पन्न हुआ । यहां मनुष्यगतिप्रायोग्यानुपूर्वीका एक विकल्प प्राप्त होता है ।

शंका— इस प्रकृतिका क्या फल है ?

समाधान— उसका फल जघन्य अवगाहनाके द्वारा अपूर्व संस्थानोंको निष्पन्न कराना है ।

शंका— क्षेत्रान्तरमें ले जाना, यह इस प्रकृतिका फल क्यों नहीं कहते ?

समाधान— नहीं, क्योंकि ऋजुगतिमें आनुपूर्वीका उदय नहीं होता, अतएव वहां ऋजुगतिसे अन्य गतिमें गमनके अभावका प्रसंग आता है ।

पुनः दूसरे सूक्ष्म निगोद लब्ध्यपर्याप्तक जीवके जघन्य अवगाहनाके साथ विग्रहगतिसे मनुष्योंमें उत्पन्न होनेपर दूसरा मनुष्यगतिप्रायोग्यानुपूर्वीका विकल्प होता है । पुनः तीसरे सूक्ष्म निगोद लब्ध्यपर्याप्तक जीवके जघन्य अवगाहनाके साथ अलब्धपूर्व मुखाकारके द्वारा मनुष्योंमें उत्पन्न होनेपर तीसरा मनुष्यगतिप्रायोग्यानुपूर्वीका विकल्प होता है, क्योंकि, अन्यथा अपूर्व मुखाकारकी उत्पत्ति होनेमें विरोध आता है । यदि कहो कि कार्यभेदसे कारणमें भेद मानना असिद्ध है, तो यह कहना ठीक नहीं है; क्योंकि, इस तरह कारणके विना ही कार्यकी उत्पत्तिका प्रसंग आता है । सबसे जघन्य इस अवगाहनाका आलम्बन लेकर अलब्धपूर्व नानाविध मुखाकारोंके साथ मनुष्योंमें मारणान्तिक समुद्घातको करनेवाले सूक्ष्म निगोद लब्ध्यपर्याप्तक जीवोंके पैंतालीस लाख योजन बाहल्य रूप तिर्यक्प्रतरोंके जितने आकाशप्रदेश होते हैं उतने विकल्प प्राप्त होने तक मनुष्यगतिप्रायोग्यानुपूर्वी प्रकृतिके विकल्प उत्पन्न कराने चाहिए । यहां जघन्य अवगाहनाका

१ का-ताप्रत्योः 'उववण्णो' इति पाठः । २ अ-आ-ताप्रतिषु 'णिरंभिऊण' इति पाठः । ३ अ-आ-काप्रतिषु '-पुव्विवियप्पा' इति पाठः ।

संपहि एत्थ जहण्णोगाहणमस्सिदूण मणुसगइपाओग्गाणुपुव्विवियप्पा एत्तिया चेव लब्भंति। कुदो? साभावियादो। ण च सहाओ परपज्जणियोगारुहो, अव्ववत्थावत्तीदो। के वि आइरिया मुहसंठाणाणि चेव आणुपुव्वीदो उप्पज्जंति त्ति भणंति। तण्ण घडदे, सेसावयवसंठाणाणमकारणुप्पत्तिप्पसंगादो।

एदाणि पणदालीसजोयणसदसहस्सबाहल्लाणि तिरियपदराणि कधमुप्पण्णाणि त्ति भणिदे उच्चदे— उड्ढकवाडच्छेदणणिप्पण्णाणि त्ति। इदरेसिमाणुपुव्विकम्माणं तिरियपदराणं घणलोगस्स य उप्पत्तिमपरूविय एदेसिं चेव तिरियपदराणमुप्पत्ती किमट्ठं परूविज्जदे? लोगसंठाणपरूवणट्ठं। उड्ढकवाडमिदि एदेण लोगो णिद्दिट्ठो। कधमेसा लोगस्स सण्णा? वुच्चदे[1]— ऊर्ध्वं च तत् कपाटं च ऊर्ध्वकपाटम्, ऊर्ध्वकपाटमिव[2] लोकः ऊर्ध्वकपाटम्। जेण लोगो चोद्दसरज्जुउस्सेहो सत्तरज्जुरुंदो मज्झे उवरिमपेरंते च एगरज्जुबाहल्लो उवरि बम्हलोगुद्देसे पंचरज्जु[3]बाहल्लो मूले सत्तरज्जुबाहल्लो अण्णत्थ जहाणुवड्ढिबाहल्लो, तेण उड्ढट्ठियकवाडोवमो। उड्ढकवाडस्स छेदणं उड्ढकवाडच्छेदणं, तेण[4] उड्ढकवाडछेदणेण णिप्पण्णाणि एदाणि पणदालीसजोयणसदसहस्सबाहल्लतिरियपदराणि।

आलम्बन लेकर मनुष्यगतिप्रायोग्यानुपूर्वीके इतने ही विकल्प उपलब्ध होते हैं, क्योंकि, ऐसा स्वभाव है। और स्वभाव दूसरोंके द्वारा प्रश्न करने योग्य नहीं होता, अन्यथा अव्यवस्था प्राप्त हो जावेगी। कितने ही आचार्य आनुपूर्वीसे मुखसंस्थान ही उत्पन्न होते हैं, ऐसा कथन करते हैं। वह घटित नहीं होता, क्योंकि, ऐसा माननेपर शेष अवयवोंके संस्थानोंकी अकारण उत्पत्तिका प्रसंग आता है।

ये पैंतालीस लाख योजन बाहल्य रूप तिर्यक्प्रतर कैसे उत्पन्न होते हैं, ऐसा कहनेपर सूत्रमें 'उड्ढकवाडच्छेदणणिप्पण्णाणि' यह वचन कहा है।

शंका— इतर आनुपूर्वी कर्मोंके तिर्यक्प्रतरोंकी और घनलोककी उत्पत्ति न कहकर इन्हीं तिर्यक्प्रतरोंकी उत्पत्ति किसलिए कही जाती है?

समाधान— लोकसंस्थानका कथन करनेके लिए। 'उड्ढकवाडं' इस पदके द्वारा यहां लोकका निर्देश किया है।

शंका— यह लोककी संज्ञा कैसे कही जाती है?

समाधान— ऊर्ध्व ऐसा जो कपाट वह ऊर्ध्वकपाट है, ऊर्ध्व कपाटके समान होनेसे लोक ऊर्ध्वकपाट कहलाता है। यतः लोक चौदह राजु ऊंचा, सात राजु चौड़ा, मध्यमें और ऊपर अन्तिम भागमें एक राजु बाहल्यवाला, ऊपर ब्रह्मलोकके पास पांच राजु बाहल्यवाला, मूलमें सात राजु बाहल्यवाला, तथा अन्यत्र वृद्धिके अनुरूप बाहल्यवाला है; अतः वह ऊर्ध्वस्थित कपाटके समान कहा गया है। ऊर्ध्वकपाटका छेदन ऊर्ध्वकपाटछेदन है, उस ऊर्ध्वकपाटछेदनसे ये पैंतालीस लाख योजन बाहल्यरूप तिर्यक्प्रतर निष्पन्न हुए हैं।

१ ताप्रतौ 'सण्णा वुच्चदे?' इति पाठः। २ अ-आ-काप्रतिषु 'कपाटं च ऊर्ध्वकपाटमिव' इति पाठः। ३ ताप्रतौ 'पंचरज्जु' इति पाठः। ४ ताप्रतौ 'उड्ढकवाडस्स छेदणं तेण' इति पाठः।

संपहि एत्थ उड्ढकवाडछेदणविहाणं वुच्चदे । तं जहा— सत्तरज्जुरुंदंतम्मि दोसु वि पासेसु तिण्णि-तिण्णिरज्जुआयामेण एगरज्जुविक्खंभेण उड्ढकवाडं छेत्तव्वं । पुणो पणदालीस-जोयणलक्खुस्सेहं मोत्तूण हेट्ठा उवरिं च मज्झिमदेसे उड्ढकवाडं छिंदिदव्वं । पुणो मुह १ भूमि ५ विसेसो ४ उच्छेय $\frac{७}{२}$ भजिदो वड्ढिपमाणं होदि $\frac{८}{७}$ । एदीए वड्ढीए पणदालीस-जोयणलक्खेसु वड्ढिदखेत्तं दोसु वि पासेसु अवणेदव्वं । एवमुड्ढकवाडच्छेदेणेण पणदालीस-जोयणसदसहस्सबाहल्लाणि तिरियपदराणि णिप्फण्णाणि । एदेण लोगो मज्झपदेसे विक्खंभा-यामेहि एगरज्जुमेत्तो होदूण हेट्ठा उवरिं च वड्ढमाणो गदो त्ति जो लोगोवदेसो[1] सो फेडिदो, तत्थ उड्ढट्ठियकवाडसंठाणाभावादो । तुम्भेहि वुत्तलोगो वि उड्ढकवाडसंठाणो[2] ण होदि, वड्ढि-हाणीहि गदबाहल्लत्तादो त्ति वुत्ते— ण, सव्वप्पणा सरिसदिट्ठंताभावादो । भावे वा चंदमुही कण्णे त्ति[3] ण घडदे, चंदम्मि भू-मुहक्खि-णासादीणमभावादो ।

के वि आइरिया उड्ढमुवरि त्ति भणंति, दो वि पासाणि कवाडमिदि भणंति । एदेसिं छेदेण पणदालीसजोयणसदसहस्सबाहल्लतिरियपदराणं णिप्पत्तिं[4] परूवेंति । तण्ण घडदे, दोण्णं पासाणं कवाडमिदि सण्णाभावादो । ण च अप्पसिद्धं वोत्तुं जुत्तं, अव्ववत्था-

अब यहां ऊर्ध्वकपाट अर्थात् लोककी छेदनविधि कहते हैं । यथा— सात राजु प्रमाण चौड़ाईमेंसे दोनों ही पार्श्व भागोंमें तीन-तीन राजु आयाम रूपसे और एक राजु विष्कम्भ रूपसे ऊर्ध्वकपाट अर्थात् लोकका छेदन करना चाहिए । पुनः पैंतालीस लाख योजन उत्सेधको छोड़कर नीचे व ऊपर मध्यभागमें ऊर्ध्वकपाटका छेदन करना चाहिए । पुनः मुख १ राजु और भूमि ५ राजु, इनका अन्तर ४ राजु, इसमें उत्सेध $\frac{७}{२}$ राजुका भाग देनेपर वृद्धिका प्रमाण $\frac{८}{७}$ होता है । इस वृद्धिके प्रमाणसे पैंतालीस लाख योजनोंमें बढ़े हुए क्षेत्रको दोनों ही पार्श्व भागोंमेंसे अलग कर देना चाहिए । इस प्रकार ऊर्ध्वकपाटका छेदन करनेसे पैंतालीस लाख योजन बाहल्यरूप तिर्यक्प्रतर निष्पन्न होते हैं । इस कथनसे 'लोक मध्य भागमें विष्कम्भ और आयाम रूपसे एक राजु प्रमाण हो करके नीचे और ऊपर वृद्धिगत होकर गया है' ऐसा जो लोकका उपदेश है वह खण्डित हो जाता है, क्योंकि, उसमें ऊर्ध्वस्थित कपाटके संस्थानका अभाव है । यहां शंकाकार कहता है कि तुम्हारे द्वारा कहा गया लोक भी ऊर्ध्वकपाटके संस्थानरूप नहीं होता है, क्योंकि, उसका बाहल्य वृद्धि और हानिको लिए हुए है । सो उसका ऐसा कहना ठीक नहीं है, क्योंकि, दृष्टान्त सर्वात्मना सदृश नहीं पाया जाता । यदि कहो कि सर्वात्मना सदृश दृष्टान्त होता है तो 'चन्द्रमुखी कन्या' यह घटित नहीं हो सकता, क्योंकि चन्द्रमें भ्रू, मुख, आंख और नाक आदिक नहीं पाए जाते ।

कितने ही आचार्य 'ऊर्ध्व' का अर्थ 'ऊपर' ऐसा कहते हैं और दोनों ही पार्श्व कपाट हैं, ऐसा कहते हैं । वे इनके छेदनसे पैंतालीस लाख योजन बाहल्यरूप तिर्यक्प्रतरोंकी निष्पत्ति कहते हैं । परन्तु यह घटित नहीं होता, क्योंकि, दोनों पार्श्वोंकी 'कपाट' यह संज्ञा नहीं है । और जो बात अप्रसिद्ध है उसका कथन करना उचित नहीं है, क्योंकि, इससे अव्यवस्थाकी आपत्ति

१ ताप्रतौ 'त्ति लोगोवदेसो' इति पाठः । २ काप्रतौ 'संठाणेण', ताप्रतौ 'संठाणे [णो]ण' इति पाठः । ३ ताप्रतौ 'चंदमुहीकरणेत्ति' इति पाठः । ४ ताप्रतौ 'णिप्पण्णं' इति पाठः ।

वत्तीदो। ण च उवमेयस्स उवमाणसण्णा असिद्धा, अग्गिसमाणमणुअम्मि अग्गिववएसुवलंभादो। के वि आइरिया एवं भणंति जहा पणदालीसजोयणलक्खाणं रज्जुपदरस्स य अद्धच्छेदणए[1] कदे पलिदोवमस्स असंखेज्जदिभागमेत्ताणि अद्धच्छेदणाणि लब्भंति। जत्तियाणि एदाणि अद्धच्छेदणाणि तत्तियमेत्ता[2] मणुसगइपाओग्गाणुपुव्विवियप्पा होंति त्ति। एत्थ उवदेसं लद्धूण एदं चेव वक्खाणं सच्चमण्णं असच्चमिदि णिच्छओ कायव्वो। एदे च दो वि उवएसा सुत्तसिद्धा। कुदो ? उवरि दो वि उवदेसे अस्सिदूण अप्पाबहुगपरूवणादो। विरुद्धाणं दोण्णमत्थाणं कधं सुत्तं होदि त्ति वुत्ते— सच्चं, जं सुत्तं तमविरुद्धत्थपरूवयं[3] चेव। किंतु णेदं सुत्तं, सुत्तमिव सुत्तमिदि एदस्स उवयारेण सुत्तत्तब्भुवगमादो। किं पुण सुत्तं ?

सुत्तं गणहरकहियं तहेव पत्तेयबुद्धकहियं च।
सुदकेवलिणा कहियं अभिण्णदसपुव्विकहियं च[4] ॥ ३४ ॥

ण च भूदबलिभडारओ गणहरो पत्तेयबुद्धो सुदकेवली अभिण्णदसपुव्वी वा जेणेदं सुत्तं होज्ज। जदि एदं सुत्तं ण होदि तो सव्व [मं[5]]प्पमाणत्तं किं ण पसज्जदे ? ण, एगुद्देसम्मि

आती है। उपमेयकी उपमान संज्ञा असिद्ध है, यह कहना भी ठीक नहीं है; क्योंकि, अग्निके समान मनुष्यकी अग्नि संज्ञा देखी जाती है।

कितने ही आचार्य ऐसा कहते हैं कि पैंतालीस लाख योजनों और राजुप्रतरके अर्द्धछेद करनेपर पल्योपमके असंख्यातवें भाग मात्र अर्द्धच्छेद उपलब्ध होते हैं। और जितने ये अर्द्धच्छेद होते हैं उतने ही मनुष्यगतिप्रायोग्यानुपूर्वीके विकल्प होते हैं। यहांपर उपदेशको प्राप्त करके यही व्याख्यान सत्य है, अन्य व्याख्यान असत्य है; ऐसा निश्चय करना चाहिए। ये दोनों ही उपदेश सूत्रसिद्ध हैं, क्योंकि, आगे दोनों ही उपदेशोंका आश्रय करके अल्पबहुत्वका कथन किया गया है।

शंका— विरुद्ध दो अर्थोंका कथन करनेवाला सूत्र कैसे हो सकता है ?

समाधान— यह कहना सत्य है, क्योंकि जो सूत्र है वह अविरुद्ध अर्थका ही प्ररूपण करनेवाला होता है। किन्तु यह सूत्र नहीं है, क्योंकि, सूत्रके समान जो होता है वह सूत्र कहलाता है, इस प्रकारसे इसमें उपचारसे सूत्रपना स्वीकार किया है।

शंका— तो फिर सूत्र क्या है ?

समाधान— " जिसका गणधरने कथन किया हो, उसी प्रकार जिसका प्रत्येकबुद्धोंने कथन किया हो, श्रुतकेवलियोंने जिसका कथन किया हो, तथा अभिन्नदशपूर्वियोंने जिसका कथन किया हो; वह सूत्र है " ॥ ३४ ॥ परन्तु भूतबलि भट्टारक न गणधर हैं, न प्रत्येकबुद्ध हैं, न श्रुतकेवली हैं, और न अभिन्नदशपूर्वी ही हैं; जिससे कि यह सूत्र हो सके।

शंका— यदि यह सूत्र नहीं है तो सबके अप्रमाण होनेका प्रसंग क्यों न प्राप्त होगा ?

---

१ ताप्रतौ 'अद्धच्छेदणाए' इति पाठः। २ ताप्रतौ 'असंखे० भागमेत्ताणि अद्धछेदणाणि तत्तियमेत्ता इति पाठः। ३ अ-आ-काप्रतिषु 'परूवणं' इति पाठः। ४ भ. आ. ३४. मूला. ५, ८०. ५ अ-आ-काप्रतिषु कोष्ठकस्थोऽयं पाठो नास्ति।

पमाणत्ते संदिद्धे संते सव्व] स्स अप्पमाणत्तविरोहादो । पमाणत्तं कुदो णव्वदे ? राग-दोस-मोहाभावेण पमाणीभूदपुरिसपरंपराए आगदत्तादो । अम्हाणं पुण[1] एसो अहिप्पाओ जहा पढमपरूविदअत्थो[2] चेव भद्दओ, ण विदिओ त्ति । कुदो ? पणदालीसजोयणलक्खबाहल्लाणं तिरियपदराणं[3] अद्धच्छेदणाणि सेडीए असंखेज्जदिभागमेत्तेहि ओगाहणवियप्पेहि गुणिदाओ त्ति सुत्ते संबंधुज्जोवछट्ठिअंतणिद्देसाभावादो णिरत्थयउड्ढकवाडच्छेदणयणिद्देसादो वा, केसु वि सुत्तपोत्थएसु विदियमत्थमस्सिदूणं परूविदअप्पाबहुआभावादो च । एदाए ओगाहणाए[4] लद्धआणुपुव्विपयडीओ ठविय सुहुमणिगोदजहण्णोगाहणं महामच्छुक्कस्सोगाहणाए सोहिय एगरूवे पक्खित्ते सेडीए असंखेज्जदिभागमेत्ता ओगाहणवियप्पा होंति । एदेहि ओगाहण-वियप्पेहि एगोगाहणआणुपुव्विवियप्पेसु गुणिदेसु मणुसगइपाओग्गाणुपुव्वीए सव्वपयडि-समासो होदि ।

देवगइपाओग्गाणुपुव्विणामाए केवडियाओ पयडीओ? ॥ १२१ ॥

सुगमं ।

देवगइपाओग्गाणुपुव्विणामाए पयडीयो णवजोयणसदबाह-

समाधान — नहीं, क्योंकि एक उद्देशमें प्रमाणताका सन्देह होनेपर सबको अप्रमाण माननेमें विरोध आता है ।

शंका — सूत्रकी प्रमाणता कैसे जानी जाती है ?

समाधान — राग, द्वेष और मोहका अभाव हो जानेसे प्रमाणीभूत पुरुषपरम्परासे प्राप्त होनेके कारण उसकी प्रमाणता जानी जाती है ।

हमारा तो यह अभिप्राय है कि पहले कहा गया अर्थ ही उत्तम है, दूसरा नहीं; क्योंकि 'पैंतालीस लाख योजन बाहल्यरूप तिर्यक्प्रतरोंके अर्द्धच्छेदोंको जगश्रेणीके असंख्यातवें भागमात्र अवगाहनाविकल्पोंसे गुणित करे' इस प्रकार सूत्रमें सम्बन्धको दिखानेवाले षष्ठयन्त निर्देशका अभाव है, अथवा ऊर्ध्वकपाट छेदनका निर्देश निरर्थक किया है, कितनी ही सूत्र-पोथियोंमें दूसरे अर्थका आश्रय करके कहे गए अल्पबहुत्वका अभाव भी है ।

इस अवगाहनासे प्राप्त आनुपूर्वी प्रकृतियोंको स्थापित करके सूक्ष्म निगोद लब्ध्यपर्याप्तककी जघन्य अवगाहनाको महामत्स्यकी उत्कृष्ट अवगाहनामेंसे घटाकर जो शेष रहे उसमें एक अंक मिलानेपर जगश्रेणीके असंख्यातवें भाग प्रमाण अवगाहनाविकल्प होते हैं । इन अवगाहनाविकल्पोंसे एक अवगाहना सम्बन्धी आनुपूर्वीविकल्पोंको गुणित करनेपर मनुष्यगतिप्रायोग्यानुपूर्वीके सब प्रकृतिविकल्पोंका जोड़ होता है ।

देवगतिप्रायोग्यानुपूर्वी नामकर्मकी कितनी प्रकृतियां हैं ? ॥ १२१ ॥

यह सूत्र सुगम है ।

देवगतिप्रायोग्यानुपूर्वी नामकर्मकी प्रकृतियां नौ सौ योजन बाहल्यरूप तिर्यक्प्रतरोंको

१ अप्रतौ 'अह्मं पुण', आ-काप्रत्योः 'अहमं पुण', ताप्रतौ 'अह्मंपुण (अम्हाणं पुण)' इति पाठः । २ अ-आ-काप्रतिषु 'पढमं परूविदं अत्थो' इति पाठः । ३ आ-का-ताप्रतिषु 'तिरियपदराणि' इति पाठः । ४ ताप्रतौ 'एदाए एगो [ओ] गाहणाए' इति पाठः ।

ल्लाणि तिरियपदराणि सेडीए असंखेज्जदिभागमेत्तेहि ओगाहण-वियप्पेहि गुणिदाओ । एवडियाओ पयडीओ ॥ १२२ ॥

'तिरियपदराणि' त्ति पुव्वं णवुंसयलिंगेण णिद्देसं काऊण पच्छा 'गुणिदाओ' त्ति तेसिमित्थिलिंगेण णिद्देसो ण जुज्जदे, भिण्णाहियरणत्तादो ? ण एस दोसो, तिरियपदराणं पयडि त्ति विवक्खाए इत्थिलिंगत्तुवलंभादो । उस्सेहघणंगुलस्स संखेज्जदिभागमेत्तसव्व-जहण्णोगाहणाए देवगइं गच्छमाणस्स सित्थमच्छस्स एगो देवगदिपाओग्गाणुपुव्विवियप्पो लब्भदि । पुणो तीए चेव सव्वजहण्णोगाहणाए अलद्धपुव्वेण मुहागारेण देवगइं गच्छमाणस्स सित्थमच्छस्स विदियो देवगदिपाओग्गाणुपुव्विवियप्पो लब्भदि । मुहं सरीरं, तस्स आगारो संठाणं त्ति घेतव्वं । अत्र श्लोकः—

मुखमर्द्धं शरीरस्य सर्वं वा मुखमुच्यते ।
तत्रापि नासिका श्रेष्ठा नासिकायाश्च चक्षुषी ॥ ३९ ॥

एवं पुणो पुणो अलद्धपुव्वमुहागारेण देवेसुप्पज्जमाणसित्थमच्छाणं णवजोयणसदबाह-ल्लाणं तिरियपदराणं जत्तिया आगासपदेसा तत्तिया चेव सव्वजहण्णोगाहणमस्सिदूण देवगइ-पाओग्गाणुपुव्विणामाए उत्तरोत्तरपयडिवियप्पा लब्भंति । संपहि पदेसुत्तरसव्वजहण्णोगाहणाए

जगश्रेणीके असंख्यातवें भागमात्र अवगाहनाविकल्पोंसे गुणित करनेपर जो लब्ध आवे उतनी होती हैं । उसकी इतनी मात्र प्रकृतियां हैं ॥ १२२ ॥

शंका— 'तिरियपदराणि' इस प्रकार पहले नपुंसकलिङ्ग रूपसे निर्देश करके पश्चात् 'गुणिदाओ' इस प्रकार उनका स्त्रीलिङ्ग रूपसे निर्देश करना योग्य नहीं है, क्योंकि, इस प्रकारसे इनका भिन्न अधिकरण हो जाता है ?

समाधान— यह कोई दोष नहीं है, क्योंकि तिर्यक्प्रतरोंकी 'प्रकृति' ऐसी विवक्षा होनेपर स्त्रीलिंगपना उपलब्ध हो जाता है ।

उत्सेध घनांगुलके संख्यातवें भागमात्र सर्वजघन्य अवगाहनाके द्वारा देवगतिको जानेवाले सिक्थ मत्स्यके एक देवगतिप्रायोग्यानुपूर्वीका विकल्प प्राप्त होता है । पुनः उसी सर्वजघन्य अव-गाहनाके द्वारा अलब्धपूर्व मुखाकारके साथ देवगतिको जानेवाले सिक्थ मत्स्यके दूसरा देवगति-प्रायोग्यानुपूर्वीविकल्प प्राप्त होता है । मुखका अर्थ शरीर है, उसका आकार अर्थात् संस्थान, ऐसा यहां ग्रहण करना चाहिए । इस विषयमें श्लोक है—

शरीरके आधे भागको मुख कहते हैं, अथवा पूरा शरीर ही मुख कहलाता है । उसमें भी नासिका श्रेष्ठ है और नासिकासे भी दोनों आंखें श्रेष्ठ हैं ॥ ३९ ॥

इस प्रकार पुनः पुनः अलब्धपूर्व मुखाकारके साथ देवोंमें उत्पन्न होनेवाले सिक्थ मत्स्योंके नौ सौ योजन बाहल्यरूप तिर्यक्प्रतरोंके जितने आकाशप्रदेश होते हैं उतने ही सबसे जघन्य अवगाहनाका आलम्बन लेकर देवगतिप्रायोग्यानुपूर्वीके उत्तरोत्तर प्रकृतिविकल्प प्राप्त होते हैं । अब एक प्रदेश अधिक सबसे जघन्य अवगाहनामें भी इतने ही प्रकृतिविकल्प प्राप्त होते हैं ।

---

१ ताप्रतौ 'जोजण' इति पाठः ।

वि एत्तिया चेव वियप्पा लब्भंति । एवं दुपदेसुत्तरसव्वजहण्णोगाहणप्पहुडि णेदव्वं जाव सव्वुक्कस्समहामच्छोगाहणे त्ति । संपहि एगोगाहणवियप्पस्स जदि णवजोयणसद[1]बाहल्लतिरियपदरमेत्ता देवगदिपाओग्गाणुपुव्विवियप्पा लब्भंति तो संखेज्जघणंगुलमेत्तोगाहणमेत्तवियप्पाणं केवडिए देवगइपाओग्गाणुपुव्विवियप्पे लभामो त्ति सयलोगाहणवियप्पेहि णवजोयणसद[2]बाहल्लतिरियपदरेसु गुणिदेसु देवगइपाओग्गाणुपुव्विणामाए उत्तरोत्तरपयडिसव्ववियप्पा होंति ।

[3]एत्थ अप्पाबहुगं ॥ १२३ ॥

किमट्ठमेदं कीरदे ? पयडीणं थोव-बहुत्तजाणावणट्ठं, अण्णहा अणुत्तसमाणत्तप्पसंगादो ।

सव्वत्थोवाओ णिरयगइपाओग्गाणुपुव्विणामाए पयडीओ ॥

कुदो ? सूचिअंगुलस्स असंखेज्जदिभागबाहल्लतिरियपदरेसु णिरएसुप्पज्जमाणजीवाणमोगाहणट्ठाणेहि गुणिदेसु तासिं पमाणुप्पत्तीदो ।

देवगइपाओग्गाणुपुव्विणामाए पयडीओ असंखेज्जगुणाओ ॥ १२५ ॥

एत्थ गुणगारो पलिदोवमस्स असंखेज्जदिभागो, हेट्ठिमतिरियपदरस्स उवरिमतिरियपदरं सरिसं, हेट्ठिमओगाहणट्ठाणेहि उवरिमओगाहणट्ठाणाणि सरिसाणि त्ति अवणिय

इस प्रकार दो प्रदेश अधिक सर्वजघन्य अवगाहनासे लेकर सबसे उत्कृष्ट महामत्स्यकी अवगाहना तक ले जाना चाहिए । अब यदि एक अवगाहनाविकल्पके नौ सौ योजन बाहल्यरूप तिर्यक्प्रतरप्रमाण देवगतिप्रायोग्यानुपूर्वीविकल्प प्राप्त होते हैं तो संख्यात घनांगुलमात्र अवगाहनाविकल्पोंके कितने देवगतिप्रायोग्यानुपूर्वीविकल्प प्राप्त होंगे, इस प्रकार समस्त अवगाहनाविकल्पोंके द्वारा नौ सौ योजन बाहल्यरूप तिर्यक्प्रतरोंको गुणित करनेपर देवगतिप्रायोग्यानुपूर्वी नामक प्रकृतिके सब उत्तरोत्तर प्रकृतिविकल्प प्राप्त होते हैं ।

अब यहां अल्पबहुत्व कहते हैं ॥ १२३ ॥

शंका— यह किसलिए कहा जा रहा है ?

समाधान— प्रकृतियोंके अल्प-बहुत्वका ज्ञान करानेके लिए, क्योंकि, अन्यथा अनुक्तके समान होनेका प्रसंग प्राप्त होता है ।

नरकगतिप्रायोग्यानुपूर्वी नामकर्मकी प्रकृतियां सबसे स्तोक हैं ॥ १२४ ॥

क्योंकि, नरकोंमें उत्पन्न होनेवाले जीवोंके अवगाहनास्थानोंसे सूच्यंगुलके असंख्यातवें भागप्रमाण बाहल्यरूप तिर्यक्प्रतरोंको गुणित करनेपर उनका प्रमाण उत्पन्न होता है ।

देवगतिप्रायोग्यानुपूर्वी नामकर्मकी प्रकृतियां असंख्यातगुणी हैं ॥ १२५ ॥

यहांपर गुणकार पल्योपमके असंख्यातवें भागप्रमाण है, क्योंकि, अधस्तन तिर्यक्प्रतरसे उपरिम तिर्यक्प्रतर सदृश है तथा अधस्तन अवगाहनास्थानोंसे उपरिम अवगाहनास्थान

---

१ ताप्रतौ 'जोजण' इति पाठः । २ काप्रतौ 'णयजोयण', ताप्रतौ 'णवयोजण' इति पाठः । ३ ताप्रतौ सूत्रमिदं कोष्ठक [ ] स्थमस्ति ।

हेट्ठिमअंगुलस्स असंखेज्जदिभागेण णवजोयणसदे भागे हिदे पलिदोवमस्स असंखेज्जदिभागुवलंभादो । हेट्ठिमसूचिअंगुलस्स पल्लस्स असंखेज्जदिभागो अवहारो होदि त्ति कुदो णव्वदे ? अविरुद्धाइरियवयणादो । एदेण णिरयगइपाओग्गाणुपुव्विवियप्पेसु गुणिदेसु देवगइपाओग्गाणुपुव्विवियप्पा होंति ।

मणुसगइपाओग्गाणुपुव्विणामाए पयडीओ संखेज्जगुणाओ ॥ १२६ ॥

एत्थ गुणगारो संखेज्जाणि रूवाणि, हेट्ठिमतिरियपदरेण उवरिमतिरियपदरं सरिसं त्ति अवणिय हेट्ठिमओगाहणट्ठाणेहिंतो उवरिओगाहणट्ठाणाणि विसेसाहियाणि त्ति ताणि वि अवणिय हेट्ठिमणवजोयणसदेण उवरिमपणदालीसजोयणसदसहस्सेसु ओवट्टिदेसु संखेज्जरूवोवलंभादो । एदेहि संखेज्जरूवेहि देवगइपाओग्गाणुपुव्विवियप्पेसु गुणिदेसु मणुसगदिपाओग्गाणुपुव्विवियप्पा होंति ।

तिरिक्खगइपाओग्गाणुपुव्विणामाए पयडीओ असंखेज्जगुणाओ ॥ १२७ ॥

एत्थ गुणगारो सेडीए असंखेज्जदिभागो । कुदो ? हेट्ठिमओगाहणट्ठाणेहि उवरिमओगाहणट्ठाणाणि सरिसाणि त्ति अवणिय पणदालीसजोयणसदसहस्सबाहल्लतिरियपदरेण

समान हैं, इसलिए इनको छोड़कर अधस्तन अंगुलके असंख्यातवें भागका नौ सौ योजनमें भाग देनेपर पल्योपमका असंख्यातवां भाग उपलब्ध होता है ।

शंका— अधस्तन सूच्यंगुलका पल्योपमका असंख्यातवां भाग अवहार है, यह किस प्रमाणसे जाना जाता है ?

समाधान— वह सूत्रसे अविरुद्ध कथन करनेवाले आचार्योंके वचनसे जाना जाता है ।

इससे नरकगतिप्रायोग्यानुपूर्वीके विकल्पोंको गुणित करनेपर देवगतिप्रायोग्यानुपूर्वीके विकल्प होते हैं ।

उनसे मनुष्यगतिप्रायोग्यानुपूर्वी नामकर्मकी प्रकृतियां संख्यातगुणी हैं ॥ १२६ ॥

यहांपर गुणकार संख्यात अंकप्रमाण है, क्योंकि, उपरिम तिर्यक्प्रतर अधस्तन तिर्यक्प्रतरके समान है, इसलिए उसे छोड़कर तथा अधस्तन अवगाहनास्थानोंसे उपरिम अवगाहनास्थान विशेष अधिक हैं, इसलिए उन्हें भी छोड़कर अधस्तन नौ सौ योजनका उपरिम पैंतालीस लाख योजनमें भाग देनेपर संख्यात अंक उपलब्ध होते हैं । इन संख्यात अंकोंसे देवगतिप्रायोग्यानुपूर्वीके विकल्पोंको गुणित करनेपर मनुष्यगतिप्रायोग्यानुपूर्वीके विकल्प होते हैं ।

उनसे तिर्यंचगतिप्रायोग्यानुपूर्वी नामकर्मकी प्रकृतियां असंख्यातगुणी हैं ॥ १२७ ॥

यहांपर गुणकार श्रेणीके असंख्यातवें भाग प्रमाण है, क्योंकि, पिछले अवगाहनास्थानोंसे अगले अवगाहनास्थान समान हैं, इसलिए उन्हें छोड़कर पैंतालीस लाख योजन बाहल्यरूप

---

१ प्रतिपु 'असंखेज्ज' इति पाठः ।

घणलोगे भागे हिदे सेडीए असंखेज्जदिभागस्स उवलंभादो ।

भूओ अप्पाबहुअं ॥ १२८ ॥

पुव्वमप्पाबहुगं भणिदूण किमट्ठं पुणो वुच्चदे ? अण्णं पि वक्खाणंतरमत्थि त्ति जाणावणट्ठं ।

सव्वत्थोवा मणुसगइपाओग्गाणुपुव्विणामाए पयडीओ[1] ॥ १२९ ॥

कुदो ? पणदालीसजोयणलक्खबाहल्लाणं तिरियपदराणमद्धच्छेदणएहि सव्वोगाहणट्ठाणेसु गुणिदेसु मणुसगइपाओग्गाणुपुव्विणामाए पयडीणं सव्ववियप्पुप्पत्तीदो ।

णिरयगइपाओग्गाणुपुव्विणामाए पयडीओ असंखेज्जगुणाओ ॥ १३० ॥

को गुणगारो ? असंखेज्जाणि जगपदराणि । कुदो ? हेट्ठिमओगाहणट्ठाणेहिंतो उवरिमओगाहणट्ठाणाणि विसेसहीणाणि त्ति अवणिय हेट्ठिमपलिदोवमस्स असंखेज्जदिभागेण अंगुलस्स असंखेज्जदिभागबाहल्लतिरियपदरे भागे हिदे असंखेज्जतिरियपदरुवलंभादो ।

देवगइपाओग्गाणुपुविणामाए पयडीओ असंखेज्जगुणाओ ॥ १३१ ॥

को गुणगारो ? पलिदोवमस्स असंखेज्जदिभागो । कारणं सुगमं ।

तिर्यक्प्रतरसे घनलोकको भाजित करनेपर श्रेणीका असंख्यातवां भाग उपलब्ध होता है ।

पुनः अल्पबहुत्व कहते हैं ॥ १२८ ॥

शंका— पहले इसी अल्पबहुत्वको कहकर अब उसे पुनः किसलिए कहते हैं ?

समाधान— अन्य भी व्याख्यानान्तर है, इस बातका ज्ञान करानेके लिए उसका कथन फिरसे भी किया जा रहा है ।

मनुष्यगतिप्रायोग्यानुपूर्वी नामकर्मकी प्रकृतियां सबसे अल्प हैं ॥ १२९ ॥

क्योंकि, पैंतालीस लाख योजन बाहल्यरूप तिर्यक्प्रतरोंके अर्द्धछेदोंसे सब अवगाहनास्थानोंको गुणित करनेपर मनुष्यगतिप्रायोग्यानुपूर्वी नामक प्रकृतिके सब विकल्प उत्पन्न होते हैं ।

उनसे नरकगतिप्रायोग्यानुपूर्वी नामकर्मकी प्रकृतियां असंख्यातगुणी हैं ॥ १३० ॥

गुणकार क्या है ? असंख्यात जगप्रतर गुणकार हैं, क्योंकि, पिछले अवगाहनास्थानोंसे अगले अवगाहनास्थान विशेष हीन हैं, इसलिए उन्हें छोड़कर पिछले पल्योपमके असंख्यातवें भागका अंगुलके असंख्यातवें भागप्रमाण बाहल्यरूप तिर्यक्प्रतरमें भाग देनेपर असंख्यात तिर्यक्प्रतर उपलब्ध होते हैं ।

उनसे देवगतिप्रायोग्यानुपूर्वी नामकर्मकी प्रकृतियां असंख्यातगुणी हैं ॥ १३१ ॥

गुणकार क्या है ? गुणकार पल्योपमका असंख्यातवां भाग है । कारण सुगम है ।

---

१ काप्रतौ 'मणुसजाइ' इति पाठः ।

तिरिक्खगइपाओग्गाणुपुव्विणामाए पयडीओ असंखेज्जगुणाओ ॥ १३२ ॥

सुगमं ।

अगुरुअलहुअणामं उवघादणामं परघादणामं उस्सासणामं आदावणामं उज्जोवणामं विहायगदिणामं तसणामं थावरणामं बादरणामं सुहुमणामं पज्जत्तणामं अपज्जत्तणामं पत्तेयसरीरणामं साधारणसरीरणामं थिरणामं अथिरणामं सुहणामं असुहणामं सुभगणामं दूभगणामं सुस्सरणामं दुस्सरणामं आदेज्जणामं अणादेज्जणामं जसकित्तिणामं अजसकित्तिणामं णिमिणणामं तित्थयरणामं[1] ॥ १३३ ॥

एदासिं पयडीणं उत्तरोत्तरपयडिपरूवणा जाणिदूण कायव्वा । ण च एदासिमुत्तरोत्तरपयडीओ णत्थि, पत्तेयसरीराणं धव-धम्ममणादीणं[2] साहारणसरीराणं मूलय-थूहल्लयादीणं बहुविहसर-गमणादीणमुवलंभादो ।

गोदस्स कम्मस्स केवडियाओ पयडीओ ? ॥ १३४ ॥

उच्च-नीचं[3] गमयतीति गोत्रम् । सेसं सुगमं ।

उनसे तिर्यंचगतिप्रायोग्यानुपूर्वी नामकर्मकी प्रकृतियां असंख्यातगुणी हैं ॥ १३२ ॥

यह सूत्र सुगम है ।

अगुरुलघुनाम, उपघातनाम, परघातनाम, उच्छ्वासनाम, आतापनाम, उद्योतनाम, विहायोगतिनाम, त्रसनाम, स्थावरनाम, बादरनाम, सूक्ष्मनाम, पर्याप्तनाम, अपर्याप्तनाम, प्रत्येकशरीरनाम, साधारणशरीरनाम, स्थिरनाम, अस्थिरनाम, शुभनाम, अशुभनाम सुभगनाम, दुर्भगनाम, सुस्वरनाम, दुःस्वरनाम, आदेयनाम, अनादेयनाम, यशःकीर्तिनाम, अयशःकीर्तिनाम, निर्माणनाम और तीर्थंकरनाम ॥ १३३ ॥

इन प्रकृतियोंकी उत्तरोत्तर प्रकृतियोंका कथन जानकर करना चाहिए । इनकी उत्तरोत्तर प्रकृतियां नहीं हैं, यह कहना ठीक नहीं है; क्योंकि, धव और धम्मगन आदि प्रत्येकशरीर; मूली और थूहर आदि साधारणशरीर; तथा नाना प्रकारके स्वर और नाना प्रकारके गमन आदि उपलब्ध होते हैं ।

गोत्रकर्मकी कितनी प्रकृतियां हैं ? ॥ १३४ ॥

जो उच्च और नीचका ज्ञान कराता है उसे गोत्र कहते हैं । शेष कथन सुगम है ।

---

१ षट्खं. जी. चू. १, ४२-४४. २ अप्रतौ 'धवध॰माणादीणं', आ-काप्रत्योः 'धुवधम्माणादीणं' ताप्रतौ 'धवधम्माणादीणं' इति पाठः । ३ काप्रतौ 'उच्चं णीचं' इति पाठः ।

गोदस्स कम्मस्स दुवे पयडीओ उच्चागोदं चेव णीचागोदं चेवं । एवडियाओ पयडीओ ॥ १३५ ॥

उच्चैर्गोत्रस्य क्व व्यापारः ? न तावद् राज्यादिलक्षणायां सम्पदि, तस्याः सद्वेद्यतः समुत्पत्तेः । नापि पंचमहाव्रतग्रहणयोग्यता उच्चैर्गोत्रेण क्रियते, देवेष्वभव्येषु च तद्ग्रहणं प्रत्ययोग्येषु उच्चैर्गोत्रस्य उदयाभावप्रसंगात् । न सम्यग्ज्ञानोत्पत्तौ व्यापारः, ज्ञानावरणक्षयोपशमसहायसम्यग्दर्शनतस्तदुत्पत्तेः । तिर्यग्-नारकेष्वपि उच्चैर्गोत्रस्योदयः स्यात्, तत्र सम्यग्ज्ञानस्य सत्त्वात् । नादेयत्वे यशसि सौभाग्ये वा व्यापारः, तेषां नामतः समुत्पत्तेः । नेक्ष्वाकुकुलाद्युत्पत्तौ, काल्पनिकानां तेषां परमार्थतोऽसत्त्वात् विड्-ब्राह्मणसाधुष्वपि उच्चैर्गोत्रस्योदयदर्शनात् । न सम्पन्नेभ्यो जीवोत्पत्तौ तद्व्यापारः, म्लेच्छराजसमुत्पन्नपृथुकस्यापि उच्चैर्गोत्रोदयप्रसंगात् । नाणुव्रतिभ्यः समुत्पत्तौ तद्व्यापारः, देवेष्वौपपादिकेषु उच्चैर्गोत्रोदयस्यासत्त्वप्रसंगात् नाभेयस्य नीचैर्गोत्रतापत्तेश्च । ततो निष्फलमुच्चैर्गोत्रम् । तत एव न तस्य कर्मत्वमपि । तदभावे न नीचैर्गोत्रमपि, द्वयोरन्योन्याविनाभावित्वात् । ततो गोत्रकर्माभाव

गोत्रकर्मकी दो प्रकृतियां हैं— उच्चगोत्र और नीचगोत्र । उसकी इतनी मात्र प्रकृतियां हैं ॥ १२५ ॥

शंका— उच्चगोत्रका व्यापार कहां होता है ? राज्यादि रूप सम्पदाकी प्राप्तिमें तो उसका व्यापार होता नहीं है, क्योंकि, उसकी उत्पत्ति सातावेदनीय कर्मके निमित्तसे होती है । पांच महाव्रतोंके ग्रहण करनेकी योग्यता भी उच्चगोत्रके द्वारा नहीं की जाती है, क्योंकि, ऐसा मानने-पर जो सब देव और अभव्य जीव पांच महव्रतोंको नहीं धारण कर सकते हैं, उनमें उच्चगोत्रके उदयका अभाव प्राप्त होता है । सम्यग्ज्ञानकी उत्पत्तिमें उसका व्यापार होता है, यह कहना भी ठीक नहीं है; क्योंकि, उसकी उत्पत्ति ज्ञानावरणके क्षयोपशमसे सहकृत सम्यग्दर्शनसे होती है । तथा ऐसा माननेपर तिर्यंचों और नारकियोंके भी उच्चगोत्रका उदय मानना पड़ेगा, क्योंकि, उनके सम्यग्ज्ञान होता है । आदेयता, यश और सौभाग्यकी प्राप्तिमें इसका व्यापार होता है; यह कहना भी ठीक नहीं है, क्योंकि, इनकी उत्पत्ति नामकर्मके निमित्तसे होती है । इक्ष्वाकु कुल आदिकी उत्पत्तिमें भी इसका व्यापार नहीं होता, क्योंकि वे काल्पनिक हैं, अतः परमार्थसे उनका अस्तित्व ही नहीं हैं । इसके अतिरिक्त वैश्य और ब्राह्मण साधुओंमें उच्चगोत्रका उदय देखा जाता है । सम्पन्न जनोंसे जीवोंकी उत्पत्तिमें इसका व्यापार होता है, यह कहना भी ठीक नहीं है; क्योंकि, इस तरह तो म्लेच्छराजसे उत्पन्न हुए बालकके भी उच्च गोत्रका उदय प्राप्त होता है । अणुव्रतियोंसे जीवोंकी उत्पत्तिमें उच्चगोत्रका व्यापार होता है, यह कहना भी ठीक नहीं है; क्योंकि, ऐसा माननेपर औपपादिक देवोंमें उच्चगोत्रके उदयका अभाव प्राप्त होता है, तथा नाभिपुत्र नीचगोत्री ठहरते हैं । इसलिए उच्चगोत्र निष्फल है, और इसीलिए उसमें कर्मपना भी घटित नहीं होता । उसका अभाव होनेपर नीचगोत्र भी नहीं रहता, क्योंकि, वे दोनों एक दूसरेके अविनाभावी हैं । इसलिए गोत्रकर्म है ही नहीं ?

१ षट्खं. जी. चू. १, ४५. २ ताप्रतौ 'ज्ञानवरण-' इति पाठः । ३ अ-आ-काप्रतिषु 'नाभेयश्च', ताप्रतौ 'नाभेयश्च (स्य)' इति पाठः ।

इति ? न, जिनवचनस्यासत्यत्वविरोधात् । तद्विरोधोऽपि तत्र तत्कारणाभावतोऽवगम्यते । न च केवलज्ञानविषयीकृतेष्वर्थेषु सकलेष्वपि रजोजुषां ज्ञानानि प्रवर्तन्ते येनानुपलम्भाज्जिन-वचनस्याप्रमाणत्वमुच्येत । न च निष्फलं गोत्रम्, दीक्षायोग्यसाध्वाचाराणां साध्वाचारैः कृतसम्बन्धानां[1] आर्यप्रत्ययाभिधान-व्यवहारनिबन्धनानां पुरुषाणां सन्तानः उच्चैर्गोत्रं तत्रो-त्पत्तिहेतुकर्माप्युच्चैर्गोत्रम्[2] । न चात्र पूर्वोक्तदोषाः सम्भवन्ति, विरोधात् । तद्विपरीतं नीचैर्गोत्रम् । एवं गोत्रस्य द्वे एव प्रकृती भवतः ।

अंतराइयस्स कम्मस्स केवडियाओ पयडीओ ? ॥ १३६ ॥

सुगमं ।

अंतराइयस्स कम्मस्स पंच पयडीओ— दाणंतराइयं लाहंतरा-इयं भोगंतराइयं परिभोगंतराइयं विरियंतराइयं चेदि[3] । एवडियाओ पयडीओ ॥ १३७ ॥

अन्तरमेति गच्छतीत्यन्तरायः[4] । रत्नत्रयवद्भ्यः स्ववित्तपरित्यागो दानं रत्नत्रयसाधन-दित्सा वा । अभिलषितार्थप्राप्तिर्लाभः । सकृद्भुज्यते[5] इति भोगः गन्ध-ताम्बूल-पुष्पाहारादिः ।

समाधान— नहीं, क्योंकि जिनवचनके असत्य होनेमें विरोध आता है । वह विरोध भी वहां उसके कारणोंके नहीं होनेसे जाना जाता है । दूसरे, केवलज्ञानके द्वारा विषय किये गये सभी अर्थोंमें छद्मस्थोंके ज्ञान प्रवृत्त भी नहीं होते हैं । इसीलिये यदि छद्मस्थोंको कोई अर्थ नहीं उपलब्ध होते हैं तो इससे जिनवचनको अप्रमाण नहीं कहा जा सकता । तथा गोत्रकर्म निष्फल है, यह बात भी नहीं है; क्योंकि, जिनका दीक्षायोग्य साधु आचार है, साधु आचारवालोंके साथ जिन्होंने सम्बन्ध स्थापित किया है, तथा जो 'आर्य' इस प्रकारके ज्ञान और वचनव्यवहारके निमित्त हैं; उन पुरुषोंकी परम्पराको उच्चगोत्र कहा जाता है । तथा उनमें उत्पत्तिका कारणभूत कर्म भी उच्चगोत्र है । यहां पूर्वोक्त दोष सम्भव ही नहीं हैं, क्योंकि, उनके होनेमें विरोध है ।

उससे विपरीत कर्म नीचगोत्र है । इस प्रकार गोत्रकर्मकी दो ही प्रकृतियां होती हैं ।

अन्तराय कर्मकी कितनी प्रकृतियां हैं ? ॥ १३६ ॥

यह सूत्र सुगम है ।

अन्तराय कर्मकी पांच प्रकृतियां हैं— दानान्तराय, लाभान्तराय, भोगान्तराय, परिभोगान्तराय और वीर्यान्तराय । उसकी इतनी मात्र प्रकृतियां हैं ॥ १३७ ॥

जो अन्तर अर्थात् मध्यमें आता है वह अन्तरायकर्म है । रत्नत्रयसे युक्त जीवोंके लिए अपने वित्तका त्याग करने या रत्नत्रयके योग्य साधनोंके प्रदान करनेकी इच्छाका नाम दान है । अभिलषित अर्थकी प्राप्ति होना लाभ है । जो एक वार भोगा जाय वह भोग है । यथा— गन्ध,

---

१ आ-का-ताप्रतिषु 'कृतसम्बन्धनानां' इति पाठः । २ काप्रतौ 'हेतुः कमप्युच्चः गोत्रं', ताप्रतौ 'हेतुकमप्युच्चैर्गोत्रं' इति पाठः । ३ षट्खं. जी. चू. १, ४६. ४ दातृ-देयादीनामन्तरं मध्यमेतीत्यन्तरायः । स. सि. ८, ४. दातृ-पात्रयोर्देयादेययोश्च अन्तरं मध्यम् एति गच्छतीत्यन्तरायः । त. वृ. ८. ४. ५ ताप्रतौ 'भुज्यत' इति पाठः ।

परित्यज्य पुनर्भुज्यत इति परिभोगः स्त्री-वस्त्राभरणादिः। तत्राभरणानि स्त्रीणां चतुर्दश। तद्यथा— तिरीट-मुकुट-चूडामणि-हारार्द्धहार-कटि-कंठसूत्र-मुक्तावलि-कटकांगदांगुलीयक-कुंडलग्रैवेय-प्रालंबाः। पुरुषस्य खड्ग-क्षुरिकाभ्यां सह षोडश। वीर्यः शक्तिरित्यर्थः। एतेषां विघ्नकृदन्तरायः। एवमंतराइयस्स पंच पयडीओ। एवं कम्मपयडीए समत्ताए दव्वपयडी समत्ता।

जा सा भावपयडी णाम सा दुविहा— आगमदो भावपयडी चेव णोआगमदो भावपयडी चेव ॥ १३८ ॥

आगमो सिद्धंतो सुदणाणं जिणवयणमिदि एयट्ठो। आगमदो अण्णो णोआगमो।

जा सा आगमदो भावपयडी णाम तिस्से इमो णिद्देसो— ठिदं जिदं परिजिदं वायणोवगदं सुत्तसमं अत्थसमं गंथसमं णामसमं घोससमं। जा तत्थ वायणा वा पुच्छणा वा पडिच्छणा वा परियट्टणा वा अणुपेहणा वा थय-थुदि-धम्मकहा वा जे चामण्णे एवमादिया उवजोगा भावे त्ति कट्टु जावदिया उवजुत्ता भावा सा सव्वा आगमदो भावपयडी णाम ॥ १३९ ॥

पान, पुष्प और आहार आदि। छोड़कर जो पुनः भोगा जाता है वह उपभोग है। यथा— स्त्री, वस्त्र और आभरण आदि। इनमें स्त्रियोंके आभरण चौदह होते हैं। यथा— तिरीट, मुकुट, चूड़ामणि, हार, अर्धहार, कटिसूत्र, कण्ठसूत्र, मुक्तावलि, कटक, अंगद, अंगूठी, कुण्डल, ग्रैवेय और प्रालम्ब। पुरुषके खड्ग और छुरीके साथ वे सोलह होते हैं। वीर्यका अर्थ शक्ति है। इनकी प्राप्तिमें विघ्न करनेवाला अन्तराय कर्म है। इस प्रकार अन्तराय कर्मकी पांच प्रकृतियां हैं।

इस प्रकार कर्मप्रकृतिके समाप्त होनेपर द्रव्यप्रकृति समाप्त हुई।

जो भावप्रकृति है वह दो प्रकारकी है— आगमभावप्रकृति और नोआगमभावप्रकृति ॥ १३८ ॥

आगम, सिद्धान्त, श्रुतज्ञान और जिनवचन, ये एकार्थवाची शब्द हैं। आगमसे अन्य नोआगम है।

जो आगमभावप्रकृति है उसका यह निर्देश है—स्थित, जित, परिजित, वाचनोपगत, सूत्रसम, अर्थसम, ग्रन्थसम, नामसम और घोषसम। तथा इनमें जो वाचना, पृच्छना, प्रतीच्छना, परिवर्तना, अनुप्रेक्षणा, स्तव, स्तुति, धर्मकथा तथा इनको आदि लेकर और जो उपयोग हैं वे सब भाव हैं; ऐसा समझकर जितने उपयुक्त भाव हैं वह सब आगमभावकृति है ॥ १३९ ॥

---

१ कुंडलमंगद-हारा मउडं केयूरपट्ट-कडयाइं। पालंबसुत्त-णेउर-दोमुद्दी-मेहलासि-छुरियाओ ॥ गेवज्जं कण्णपुरा पुरिसाणं होंति सोलसाभरणं। चोद्दस इत्थीआणं छुरिया-करवालहीणाइं ॥ कधय-कडिसुत्त-णेउर-तिरीरपालंबसुत्त-मुद्दोओ। हारा कुंडल-मउलद्धहार-चूडामणी वि गेविज्जा ॥ अंगद-छुरिया खग्गा, पुरिसाणं होंति सोलसाभरणं। चोद्दस इत्थीण तहा छुरियाखग्गेहिं परिहीणा ॥ ति. प. ४, ३६१–६४

२ आप्रतौ 'पंचपयडीए' इति पाठः। ३ षट्खं. क. अ. ५४–५५.

एदस्स सुत्तस्स अत्थो जहा वेयणाए परूविदो तहा परूवेयव्वो, विसेसाभावादो।

जा सा णोआगमदो भावपयडी णाम सा अणेयविहा । तं जहा— सुर- असुर- णाग- सुवण्ण- किण्णर- किंपुरिस- गरुड- गंधव्व- जक्ख- रक्खस- मणुअ- महोरग- मिय- पसु- पक्खि- दुवय- चउप्पय- जलचर- थलचर- खगचर- देव- मणुस्स- तिरिक्ख- णेरइयणियणुगा पयडी सा सव्वा णोआगमदो भावपयडी णाम ॥ १४० ॥

तत्र अहिंसाद्यनुष्ठानरतयः सुरा नाम। तद्विपरीताः असुराः। फणोपलक्षिताः नागाः। सुपर्णा नाम शुभपक्षाकारविकरणप्रियाः। गीतरतयः किन्नराः। प्रायेण मैथुनप्रियाः किम्पुरुषाः। गरुडाकारविकरणप्रियाः गरुडाः। इन्द्रादीनां गायकाः[1] गान्धर्वाः। लोभभूयिष्ठाः भाण्डागारे नियुक्ताः यक्षाः नाम। भीषणरूपविकरणप्रियाः राक्षसा नाम। मानुषीसु मैथुनसेवकाः मनुजा नाम। सर्पाकारेण विकरणप्रियाः महोरगाः नाम। रोमंथवर्जितास्तिर्यंचो मृगा नाम। सरोमंथाः पशवो नाम। पक्षवन्तस्तिर्यंचः पक्षिणः। द्वौ पादौ येषां ते द्विपादाः। चत्वारः पादाः येषां ते चतुष्पादाः। मकर-मत्स्यादयो जलचराः। वृक-व्याघ्रादयः[2]

इस सूत्रके अर्थकी प्ररूपणा जिस प्रकार वेदना अनुयोगद्वार (पु. ९, पृ. २५१–२६४) में की गई है उसी प्रकारसे यहां भी करनी चाहिए, क्योंकि, उससे यहां कोई विशेषता नहीं है।

जो नोआगमभावप्रकृति है वह अनेक प्रकारकी है। यथा— सुर, असुर, नाग, सुपर्ण, किंनर, किंपुरुष, गरुड़, गन्धर्व, यक्ष, राक्षस, मनुज, महोरग, मृग, पशु, पक्षी, द्विपद, चतुष्पद, जलचर, स्थलचर, खगचर, देव, मनुष्य, तिर्यंच और नारकी; इन जीवोंकी जो अपनी अपनी प्रकृति है वह सब नोआगमभावप्रकृति है ॥ १४० ॥

जिनकी अहिंसा आदिके अनुष्ठानमें रति है वे सुर कहलाते हैं। इनसे विपरीत असुर होते हैं। फणसे उपलक्षित नाग कहलाते हैं। शुभ पक्षोंके आकाररूप विक्रिया करनेमें अनुराग रखनेवाले सुपर्ण कहलाते है। गानमें रति रखनेवाले किंनर कहलाते हैं। प्रायः मैथुनमें रुचि रखनेवाले किंपुरुष कहलाते हैं। जिन्हें गरुड़के आकाररूप विक्रिया करना प्रिय है वे गरुड़ कहलाते हैं। इन्द्रादिकोंके गायकोंको गान्धर्व कहते हैं। जिनके लोभकी मात्रा अधिक होती है और जो भाण्डागारमें नियुक्त किये जाते हैं वे यक्ष कहलाते हैं। जिन्हें भीषण रूपकी विक्रिया करना प्रिय है वे राक्षस कहलाते हैं। मनुष्यिनियोंके साथ मैथुन कर्म करनेवाले मनुज कहलाते हैं। जिन्हें सर्पाकार विक्रिया करना प्रिय है वे महोरग कहलाते हैं। जो तिर्यंच रोंथते नहीं हैं वे मृग कहलाते हैं और जो रोंथते हैं वे पशु कहलाते हैं। पंखोंवाले तिर्यंच पक्षी कहलाते हैं। जिनके दो पैर होते हैं वे द्विपाद कहलाते हैं। जिनके चार पैर होते हैं वे चतुष्पाद कहलाते हैं। मगर-मछली आदि जलचर कहलाते हैं। भेड़िया और वाघ आदि स्थलचर कहलाते हैं। जो आकाशमें गमन करते हैं वे खचर कहलाते हैं।

१ का-ताप्रत्योः 'गायनाः' इति पाठः। २ ताप्रतौ 'वृकव्याघ्रादयः' इति पाठः।

स्थलचराः । खे चरन्तीति खचराः । अणिमादिगुणैर्दीव्यन्ति क्रीडन्तीति देवाः । मनसा उत्कटाः मानुषाः । तिरः अञ्चन्ति कौटिल्यमिति तिर्यंचः । न रमन्त इति नारकाः । एतेषां निजानुगा या प्रकृतिः सा सर्वा नोआगमभावप्रकृतिर्नाम । एतत्सूत्रं येन देशामर्शकं तेन ये केचन जीवभावाः कर्म्मवर्जितअजीवभावाश्च ते सर्वेप्यत्र वक्तव्याः । एवं नोआगमदो भावपयडीए सह भावपयडी समत्ता ।

एदासिं पयडीणं काए पयडीए पयदं? कम्मपयडीए पयदं ॥

एदमुवसंहारमस्सिदूण भणिदं । अणुवसंहारे पुण आसइज्जमाणे णोआगमदव्वपयडीए णोआगमभावपयडीए च अहियारो, तत्थ दोण्णं वित्थारपरूवणादो । एवं पगडिणिक्खेवे त्ति समत्तं ।

सेसं वेदणाए भंगो ॥ १४२ ॥

सेसाणिओगद्दाराणं जहा वेयणाए परूवणा कदा तहा कायव्वा ।

एवं पगदि त्ति समत्तमणियोगद्दारं ।



अबोधे बोधं यो जनयति सदा शिष्य-कुमुदे
प्रभूय प्रह्लादी दुरितपरितापोपशमनः ।
तपोवृत्तिर्यस्य स्फुरति जगदानन्दजननी
जिनध्यानासक्तो जयति कुलचन्द्रो मुनिरयम् ॥

जो अणिमा आदि गुणोंके द्वारा ' दीव्यन्ति ' अर्थात् क्रीड़ा करते हैं वे देव कहलाते हैं । जो मनसे उत्कट होते हैं वे मानुष कहलाते हैं । जो ' तिरः ' अर्थात् कुटिलताको प्राप्त होते हैं, वे तिर्यंच कहलाते हैं । जो रमते नहीं हैं वे नारक कहलाते हैं । इनकी अपने अनुकूल जो प्रकृति होती है वह सब नोआगमभावप्रकृति है । यह सूत्र यतः देशामर्शक है, अतः जो कोई जीवभाव हैं और कर्मसे रहित जितने अजीव भाव हैं वे सब यहांपर कहने चाहिए । इस प्रकार नोआगम-भावप्रकृतिके साथ भावप्रकृति समाप्त हुई ।

इन प्रकृतियोंमें किस प्रकृतिका प्रकरण है? कर्मप्रकृतिका प्रकरण है ॥ १४१ ॥

यह उपसंहारका आलम्बन लेकर कहा है । अनुपसंहारका आश्रय करनेपर तो नोआगम-द्रव्यप्रकृति और नोआगमभावप्रकृतिका भी अधिकार है, क्योंकि, वहां दोनोंका विस्तारसे कथन किया है । इस प्रकार प्रकृतिनिक्षेप अनुयोगद्वार समाप्त हुआ ।

शेष कथन वेदना अनुयोगद्वारके समान है ॥ १४२ ॥

शेष अनुयोगद्वारोंकी जिस प्रकार वेदना अनुयोगद्वारमें प्ररूपणा की है उसी प्रकार यहां भी करनी चाहिए ।

इस प्रकार प्रकृति नामक अनुयोगद्वार समाप्त हुआ ।



फासाणिओगद्दारसुत्ताणि

सूत्र संख्या	सूत्र	पृष्ठ
२४	सो अट्ठविहो— कक्खडफासो मउवफासो गरुवफासो लहुवफासो णिद्धफासो लुक्खफासो सीदफासो उण्हफासो। सो सव्वो फासफासो णाम।	२४
२५	जो सो कम्मफासो [णाम]।	२६
२६	सो अट्ठविहो— णाणावरणीय-दंसणावरणीय-वेयणीय- मोहणीय- आउअ-णामा-गोद-अंतराइयकम्मफासो। सो सव्वो कम्मफासो णाम।	"
२७	जो सो बंधफासो णाम।	३०
२८	सो पंचविहो— ओरालियसरीरबंधफासो एवं वेउव्विय- आहार– तेया-कम्मइयसरीरबंधफासो। सो सव्वो बंधफासो णाम।	"
२९	जो सो भवियफासो णाम।	३४
३०	जहा विस-कूड-जंत-पंजर-कंदय-वग्गुरादीणि कत्तारो समोद्दियारो य भवियो फुसणदाए णो य पुण ताव तं फुसदि सो सव्वो भवियफासो णाम।	"
३१	जो सो भावफासो णाम।	३५
३२	उवजुत्तो पाहुडजाणओ सो सव्वो भावफासो णाम।	"
३३	एदेसिं फासाणं केण फासेण पयदं ? कम्मफासेण पयदं।	३६
	(कम्माणिओगद्दारसुत्ताणि)	
१	कम्मे त्ति।	३७
२	तत्थ इमाणि सोलस अणियोगद्दाराणि णादव्वाणि भवंति— कम्मणिक्खेवे कम्मणयविभासणदाए कम्मणामविहाणे कम्मदव्वविहाणे कम्मखेत्तविहाणे कम्मकालविहाणे कम्मभावविहाणे कम्मपच्चयविहाणे कम्मसामित्तविहाणे कम्मकम्मविहाणे कम्मगइविहाणे कम्मअणंतरविहाणे कम्मसंणियासविहाणे कम्मपरिमाणविहाणे कम्मभागाभागविहाणे कम्मअप्पाबहुए त्ति।	३८
३	कम्मणिक्खेवे त्ति।	"
४	दसविहे कम्मणिक्खेवे— णामकम्मे ठवणकम्मे दव्वकम्मे पओअकम्मे समुदाणकम्मे आधाकम्मे इरियावहकम्मे तवोकम्मे किरियाकम्मे भावकम्मे चेदि।	"
५	कम्मणयविभासणदाए को णओ के कम्मे इच्छदि ?	"
६	णेगम-ववहार-संगहा सव्वाणि।	३९
७	उजुसुदो ट्ठवणकम्मं णेच्छदि।	"
८	सद्दणओ णामकम्मं भावकम्मं च इच्छदि।	४०
९	जं तं णामकम्मं णाम।	"
१०	तं जीवस्स वा अजीवस्स वा जीवाणं वा अजीवाणं वा जीवस्स च अजीवस्स च जीवस्स च अजीवाणं च जीवाणं च अजीवस्स च जीवाणं च अजीवाणं च जस्स णामं कीरदि कम्मे त्ति तं सव्वं णामकम्मं णाम।	"
११	जं तं ठवणकम्मं णाम।	४१
१२	तं कट्ठकम्मेसु वा चित्तकम्मेसु वा पोत्तकम्मेसु वा लेप्पकम्मेसु वा लेणकम्मेसु वा सेलकम्मेसु वा गिहकम्मेसु वा भित्तिकम्मेसु वा दंतकम्मेसु वा भेंडकम्मेसु वा अक्खो वा वराडओ वा जे चामण्णे एवमादिया ठवणाए ठविज्जदि कम्मे त्ति तं सव्वं ठवणकम्मं णाम।	"
१३	जं तं दव्वकम्मं णाम।	४२

सूत्र संख्या	सूत्र	पृष्ठ
८९	मोहणीयस्स कम्मस्स केवडियाओ पयडीओ ?	३५७
९०	मोहणीयस्स कम्मस्स अट्ठावीस पयडीओ।	"
९१	तं च मोहणीयं दुविहं दंसणमोहणीयं चेव चरित्तमोहणीयं चेव।	"
९२	जं तं दंसणमोहणीयं कम्मं तं बंधदो एयविहं।	३५८
९३	तस्स संतकम्मं पुण तिविहं सम्मत्तं मिच्छत्तं सम्मामिच्छत्तं।	"
९४	जं तं चरित्तमोहणीयं कम्मं तं दुविहं कसायवेदणीयं णोकसायवेदणीयं चेव।	३५९
९५	जं तं कसायवेयणीयं कम्मं तं सोलसविहं—अणंताणुबंधिकोह-माण-माया-लोहं अपच्चक्खाणावरणीयकोह-माण-माया-लोहं पच्चक्खाणावरणीय-कोह-माण-माया-लोहं कोहसंजलणं माणसंजलणं मायासंजलणं लोभसंजलणं चेदि।	३६०
९६	जं तं णोकसायवेयणीयकम्मं तं णवविहं— इत्थिवेद-पुरिसवेद-णउंसय-वेद-हस्स-रदि-अरदि-सोग-भय-दुगुंछा चेदि।	३६१
९७	एवडियाओ पयडीओ।	३६२
९८	आउअस्स कम्मस्स केवडियाओ पयडीओ ?	"
९९	आउअस्स कम्मस्स चत्तारि पयडीओ— णिरयाउअं तिरिक्खाउअं मणुस्साउअं देवाउअं चेदि। एवडियाओ पयडीओ।	"
१००	णामस्स कम्मस्स केवडियाओ पयडीओ ?	"
१०१	णामस्स कम्मस्स बादालीसं पिंडपयडिणामाणि— गदिणामं जादिणामं सरीरणामं सरीरबंधणणामं सरीरसंघादणामं सरीरसंठाणणामं सरीरअंगोवंगणामं सरीरसंघडणणामं वण्णणामं गंधणामं रसणामं फासणामं आणुपुव्विणामं अगुरुगलहुअणामं उवघादणामं परघादणामं उस्सासणामं आदावणामं उज्जोवणामं विहायगदि-तस-थावर-बादर-सुहुम-पज्जत्त-अपज्जत्त-पत्तेय-साहारण-सरीर-थिराथिर-सुहासुह-सुभग-दूभग-सुस्सर-दुस्सर-आदेज्ज-अणादेज्ज-जसकित्ति-अजसकित्ति-णिमिण-तित्थयरणामं चेदि।	३६३
१०२	जं तं गदिणामकम्मं तं चउव्विहं— णिरयगइणामं तिरिक्खगइणामं मणुस्सगदिणामं देवगदिणामं।	३६७
१०३	जं तं जादिणामं तं पंचविहं— एइंदियजादिणामं बेइंदियजादिणामं तेइंदियजादिणामं चउरिंदियजादिणामं पंचिंदियजादिणामं चेदि।	"
१०४	जं तं सरीरणामं तं पंचविहं— ओरालियसरीरणामं वेउव्वियसरीरणामं आहारसरीरणामं तेजइयसरीरणामं कम्मइयसरीरणामं चेदि।	"
१०५	जं तं सरीरबंधणणामं तं पंचविहं— ओरालियसरीरबंधणणामं वेउव्वियसरीरबंधणणामं आहारसरीरबंधणणामं तेजइयसरीरबंधणणामं कम्मइयसरीबंधणणामं चेदि।	"
१०६	जं तं सरीरसंघादणणामं तं पंच-	

गाहा-सुत्ताणि

(फासाणिओगद्दार)

क्रमसंख्या	गाथा	पृष्ठ
१	सव्वे एदे फासा बोद्धव्वा होंति णेगमणयस्स । णेच्छदि य बंध-भवियं ववहारो संगहणओ य ॥	४
२	एयक्खेत्तमणंतरबंधं भवियं च णेच्छदुज्जुसुदो । णामं च फासफासं भावप्फासं च सद्दणओ ॥	६

(पयडिअणिओगद्दार)

क्रमसंख्या	गाथा	पृष्ठ
१	संजोगावरणट्ठं चउसट्ठिं थावए दुवे रासिं । अण्णोण्णसमब्भासो रूवूणं णिद्दिसे गणिदं ॥	२४८
२	पज्जय-अक्खर-पद-संघादय-पडिवत्ति-जोगदाराइं । पाहुडपाहुड-वत्थू पुव्व समासा य बोद्धव्वा ॥	२६०
३	ओगाहणा जहण्णा णियमा दु सुहुमणिगोदजीवस्स । जद्देही तद्देही जहण्णिया खेत्तदो ओही ॥	३०१
४	अंगुलमावलियाए भागमसंखेज्ज दो वि संखेज्जा । अंगुलमावलियंतो आवलियं चांगुलपुधत्तं ॥	३०४
५	आवलियपुधत्तं घणहत्थो तह गाउअं मुहुत्तंतो । जोयण भिण्णमुहुत्तं दिवसंतो पण्णवीसं तु ॥	३०६
६	भरहम्मि अद्धमासं साहियमासं च जंबुदीवम्मि । वासं च मणुअलोए वासपुधत्तं च रुजगम्मि ॥	३०७
७	संखेज्जदिमे काले दीव-समुद्दा हवंति संखेज्जा । कालम्मि असंखेज्जे दीव-समुद्दा असंखेज्जा ॥	३०८
८	कालो चदुण्ण वुड्ढी कालो भजिदव्वो खेत्तवुड्ढीए । वुड्ढीए दव्व-पज्जय भजिदव्वा खेत्त-काला दु ॥	३०९
९	तेया-कम्मसरीरं तेयादव्वं च भासदव्वं च । बोद्धव्वमसंखेज्जा दीव-समुद्दा य वासा य ॥	३१०
१०	पणुवीस जोयणाणं ओही वेंतर-कुमारवग्गाणं । संखेज्जजोयणाणं जोदिसियाणं जहण्णोही ॥	३१४
११	असुराणमसंखेज्जा कोडीओ सेसजोदिसंताणं । संखातीदसहस्सा उक्कस्सं ओहिविसओ दु ॥	३१५

क्रमसंख्या	गाथा	पृष्ठ
१२	सक्कीसाणा पढमं दोच्चं तु सणक्कुमार-माहिंदा । तच्चं तु बम्ह-लंतय सुक्क-सहस्सारया चोत्थं ॥	३१६
१३	आणद-पाणदवासी तह आरण-अच्चुदा य जे देवा । पस्संति पंचमखिदिं छट्ठिम गेवज्जया देवा ॥	३१८
१४	सव्वं च लोगणालिं पस्संति अणुत्तरेसु जे देवा । सक्खेत्ते य सकम्मे रूवगदमणंतभागं च ॥	३१९
१५	परमोहि असंखेज्जाणि लोगमेत्ताणि समयकालो दु । रूवगद लहइ दव्वं खेत्तोवमअगणिजीवेहि ॥	३२२
१६	तेयासरीरलंबो उक्कस्सेण दु तिरिक्खजोणिणिसु । गाउअ जहण्णओही णिरएसु अ जोयणुक्कस्सं ॥	३२५
१७	उक्कस्स माणुसेसु य माणुस-तेरिच्छए जहण्णोही । उक्कस्स लोगमेत्तं पडिवादी तेण परमपडिवादी ॥	३२७

---

२ अवतरण-गाथा-सूची

क्रमसंख्या	गाथा	पृष्ठ	अन्यत्र कहां
	(स्पर्शानुयोगद्वार)		
३	खंधं सयलसमत्थं	१३	पंचा. ७५. मूला. ५, ३४. ति.प. १, ९५. गो. जी. ६०३.
१	प्रमाणनयनिक्षेपै-	४	ति. प. १, ८२. वि.भा.२७६४.
२	लोगागासपदेसे	१३	गो. जी. ५८८
४	सत्ता सव्वपयत्था	१६	पंचा. ८
	(कर्मानुयोगद्वार)		
३१	अकसायमवेदत्तं	७०	भग. २१५७
३७	अणुवगयपराणुग्गह–	७१	
६०	अत्थाण वंजणाण य	७८	भग. १८८२
६३	" "	७९	" १८८५
२	अप्पं बादर मवुअं	४८	
६	अप्रवृत्तस्स दोपेभ्य–	५५	
६७	अभयासंमोहविवेग–	८२	
७२	अविदक्कमवीचारं	८३	भग. १८८६
७७	" "	८७	
६४	अह खंति-मद्दवज्जव	८०	
५२	अंतोमुहुत्तपरदो	७६	
५१	अंतोमुहुत्तमेत्तं	"	
२४	आगमउवदेसाणा	"	
२१	आलंवणाणि वायण	६७	

क्रमसंख्या	गाथा	पृष्ठ	अन्यत्र कहां
	(प्रकृत्यनुयोगद्वार)		
७	अट्ठेव धणुसहस्सा	२२९	
१०	अन्यथानुपपन्नत्वं	२४६	न्या. विनि. २, १५४–५५
९	उणतीसजायणसया	२२९	
६	उणसट्ठिजोयणसया	,,	
१२	एकमात्रो भवेद्ध्रस्वो	२४८	
१४	एकोत्तरपदवृद्धो	२५४	
१७	,, ,,	२५८	
१३	एयट्ठ च च य छ सत्तयं	२५४	गो. जी. ३५३
३१	कोटिकोट्यो दशैतेषां	३०१	
१६	गच्छकदी मूलजुदा	२५६	
४	चत्तारि धणुसयाइं	२२९	
२६	जवणालिया मसूरी	२९७	मूला. १२, ५०
२२	जह जह सुदमोगाहिदि	२८१	भग. १०५
२३	जं अण्णाणी कम्मं	,,	प्र. सा. ३, ३८ भग. १०८
२४	णेरइय-देव-तित्थयरो-	२९५	नं.सू.गाथा ६४
३०	ततो वर्षशते पूर्णे	३००	
१	तद विददो घण सुसिरो	२२२	
२७	तिण्णि सहस्सा सत्त य	३००	
१९	तिविहं पदमुद्दिट्ठं	२६६	
११	तेत्तीसवंजणाइं	२४८	गो. जी. ३५२
३२	नयोपनयैकान्तानां	३१०	आ. मी. १०७
२	पभवच्चुदस्स भागा	२२३	
३३	पंचरस-पंचवण्णा	३५२	मूला. २२१
८	पासे रसे य गंधे	२२९	
२८	पुव्वस्स दु परिमाणं	३००	स. सि. ३, ३१ जं.प.१३–१२ प्र.सारो.१३८७
२०	बारससदकोडीओ	२६६	
३	भासागदसमसेढिं	२२४	
२५	मसुरिय-कुसग्गबिंदू	२९७	मूला. १२, ४८
३५	मुखमर्द्धं शरीरस्य	३८३	
२९	योजनं विस्तृतं पल्यं	३००	
१	वाग्दिगम्या-	२०१	
२१	सज्झायं कुव्वंतो	२८१	भग. १०४, मूला.५,२१३
९	सचेत्तालसहस्सा	२२९	
१५	संकलणरासिमिच्छे	२५६	
३४	सुत्तं गणहरकहियं	३८१	भग. ३४ मूला. ५, ८०
१८	सोलससदचोत्तीसं	२६६	गो. जी. ३३५

३ न्यायोक्तियां

क्रमसंख्या	न्याय	पृष्ठ
१	जहा उद्देसो तहा णिद्देसो त्ति णायादो····भणदि–	२
२	समुदायेषु प्रवृत्ताः शब्दा अवयवेष्वपि वर्त्तन्त इति न्यायात् ।	३०२, ३०७
३	अवयवेषु प्रवृत्ताः शब्दा समुदायेष्वपि वर्त्तन्त इति न्यायात् ।	,,
४	सीहावलोगणणाएण सव्वलोगणालिसद्दाणुवत्तीए छरज्जुआयदं लोगणालिं पस्संति त्ति सुत्तट्ठसिद्धीदो ।	३१७

४ ग्रन्थोल्लेख

१ खण्डग्रन्थ

१ एदं खंडगंथमज्झप्पविसयं पडुच्च कम्मफासे पयदमिदि भणिदं । ३६

२ जीवस्थान

२ जीवट्ठाणादिसु ओहिणाणस्स जहण्णकालो अंतोमुहुत्तमिदि पढिदो ।····
जीवट्ठाणे जेण सामण्णोहिणाणस्स कालो परूविदो तेण तत्थ अंतो-
मुहुत्तमेत्तो होदि । २९९

३ तत्त्वार्थसूत्र

१ वितर्कः श्रुतं (त. सू. ९–४३) द्वादशांगम् । ७७

२ ' अनन्तगुणे परे ' इति तत्त्वार्थसूत्रनिर्देशात् । १८७

३ ण, रूविणो पोग्गला (त. सू. १५–५) इच्चेवमाईसु णिच्चजोगे वि
मदुप्पच्चयस्स उप्पत्तिदंसणादो । २०७

४ ण च मदिपुव्वं सुदमिच्चेदेण सुत्तेण (त. सू. १-२०) सह विरोहो
अत्थि, तस्स आदिप्पउत्तिं पडुच्च परूविदत्तादो । २१०

५ ' रूपिष्ववधेः ' (त. सू. १-२७) इति वचनात् । २११

६ ' न चक्षुरनिन्द्रियाभ्याम् ' (त. सू. १-१९) इति तत्र तस्य प्रतिषेधात् । २२०

७ परदो किण्ण गच्छंति ? धम्मात्थिकायाभावादो (त. सू. १०-८) । २२३

८ ' बहु-बहुविध-क्षिप्रानिःसृतानुक्त-ध्रुवाणां सेतराणाम् ' (त. सू. १-१६)
संख्या-वैपुल्यवाचिनो बहुशब्दस्य ग्रहणमविशेषात् । २३४

९ न ' सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्राणि मोक्षमार्गः ' (त.सू.१-१) इत्यनेन विरोधः, २८८

४ परिकर्म

१ 'अपदेसं णेव इंदिए गेज्झं' इदि परमाणूणं णिरवयवत्तं परियम्मे वुत्तमिदि
णासंकणिज्जं,····त्ति परियम्मे वुत्तो । १८

२ सव्वजीवरासीदो लद्धिमक्खरमणंतगुणमिदि कुदो णव्वदे ? परियम्मादो । २६२

३ पुणो एगजीवस्स····पावदि त्ति परियम्मे भणिदं । २६३

४ संखेज्जावलियाहि एगो उस्सासो, सत्तुस्सासेहि एगो थोवो होदि
त्ति परियम्मवयणादो । २९९

५ भावविधान

१ पुणो एदस्सुवरि भावविहाणकमेण····दुचरिमट्ठाणे त्ति । २६३

२ एत्थ भावविहाणक्कमो चेव होदि त्ति कधं णव्वदे ?····भावविहाणक्कमो
पसज्जदे ? २६४

६ महाकर्मप्रकृतिप्राभृत

१ महाकम्मपयडिपाहुडे पुण दव्वफासेण सव्वफासेण कम्मफासेण पयदं । ३६

२ महाकम्मपयडिपाहुडे किमट्ठं तेहि अणियोगद्दारेहि तस्स परूवणा कदा ? १९६

७ मूलतंत्र

८ योनिप्राभृत

९ वेदना

१० सन्मतिसूत्र

११ सिद्धिविनिश्चय

अनिर्दिष्टनाम

८ प्राकृते ' एदे छच्च समाणा ' इत्यनेन ईत्वम् । २४२
९ एदं णिरावरणं, अक्खरस्साणंतिमभागो णिच्चुग्घाडियो त्ति वयणादो····। २६२
१० जत्तिया जहण्णोगाहणा तत्तियं चेव जहण्णोहिखेत्तमिदि सुत्तेण सह विरोहादो । ३०२
११ भासावग्गणाए ओगाहणा तत्तो असंखेज्जगुणहीणा त्ति कुदो णव्वदे ?··· त्ति अप्पाबहुअवयणादो । ३१२
१२ ण, ' एए छच्च समाणा ' त्ति विहिददीहत्तादो । ३३७
१३ के वि आइरिया माणुसुत्तरसेलस्स अब्भंतरे चेव जाणदि त्ति भणंति ।···· माणुसुत्तरसेलब्भंतरे चेव ट्ठाइदूण चिंतिदं जाणदि त्ति के वि आइरिया भणंति । ३४३
१४ ····सव्वा सिद्धा सेहणं पडि सादिया, संताणं पडि अणादिया त्ति सुत्तादो । ३५०

आचार्यपरम्परागत उपदेश

१ कुदो एदं णव्वदे ? सुत्ताविरुद्धाइरियवयणादो । २२२
२ ण च सव्वे पोग्गला एगसमएण चेव लोगंतं गच्छंति त्ति णियमो,····त्ति उवदेसादो । २२३
३ ····णाहीए हेट्ठा सरडादिअसुहसंठाणाणि होंति त्ति गुरूवदेसो, ण सुत्तमत्थि । २९८
४ पादेक्कं वक्कपरिसमत्ती एत्थ ण गहिदा त्ति कधं णव्वदे ? आइरियपरंपरागदअविरुद्धुवदेसादो । ३०२
५ जहण्णोहिणिबंधणस्स खेत्तस्स को विक्खंभो··· त्ति भणिदे णत्थि एत्थ उवदेसो, किंतु····त्ति उवएसो । ३०३
६ ···मोत्तूण अण्णत्थ पमाणंगुलादीणं गहणं कायव्वमिदि गुरूवदेसादो । ३०४
७ कुदो णव्वदे ? आइरियपरंपरागयसुत्ताविरुद्धवक्खाणादो । ××× कुदो ? अविरुद्धाइरियवयणादो । ३१०
८ होंतं पि पुव्विल्लखेत्तादो एदं संखेज्जगुणं कुदो णव्वदे ? गुरूवदेसादो । ३१४
९ कुदो एदमवगम्मदे ? गुरूवदेसादो । ३१६
१० ····हेट्ठा ण पेच्छंति त्ति कुदो णव्वदे ? अविरुद्धाइरियवयणादो । ३२०
११ एसो वि गुरूवएसो चेव, वट्टमाणकाले सुत्ताभावादो । "
१२ सुत्तेण [विणा] कधमेदं वुच्चदे ? अविरुद्धाइरियवयणादो । ३२२
१३ एवं जहण्णुक्कस्सदव्ववियप्पा सुत्ते असंता वि पुव्वाइरियोवदेसेण परूविदा । ३२७
१४ के वि आइरिया माणुसुत्तरसेलस्स अब्भंतरे चेव जाणदि त्ति भणंति । ····माणुसुत्तरसेलब्भंतरे चेव ट्ठाइदूण चिंतिदं जाणदि त्ति के वि आइरिया भणंति । ३४३
१५ ····अवहारो होदि त्ति कुदो णव्वदे ? अविरुद्धाइरियवयणादो । ३८२

---

५ पारिभाषिक शब्द-सूची